हर अंक विशेषांक की तरह आकर्षक, हर अंक सुन्दर और संग्रहणीय

(नयी पीढी का नया मासिक)

अनेक नये आकर्षण और रोचक कहानियों
से भरपूर फरवरी अंक सर्वत्र उपलब्ध हैं।

इस अंक के विशिष्ट लेखक

मोहन राकेश, बिमल मित्र, भगवद्दत्त शिशु, मनोहरश्याम जोशी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

कुछ विशेष-कहानियां

बिना हाड-मास के आदमी, बका की गुरु दक्षिणा, एक परी और सफेद कौआ, एक बौना और उडने वाला घोडा, शरीर बदलने वाला राजा।

कुछ विशेष फीचर

- ★ रंगीन चित्रों सहित संसार के नौ आश्चर्यों की कहानी
- ★ रेल यात्रा में सावधान, टेलीविजन की कहानी, सोने का कंगन, कार्टून—कहानी

मार्च अंक – होली विशेषांक

'नंदन' का मार्च अंक होली विशेषांक होगा। अपने बच्चों के लिए यह विशेष उपहार खरीदना न भूलिए।

इस अंक में अमृतलाल नागर, फिक्र तौंसवी, जिलानी बानो, नवतेज-सिंह, कन्हैयालाल कपूर, वीरेंद्र मित्र, सोहनलाल द्विवेदी, डा० जाकिर हुसैन आदि की विशेष कहानियां।

ये शीर्षक पढ़ कर हंसिए—

अंगूठाराम, एक नक्कटे की कहानी, शेखचिल्ली, चपपट और खटपट।

मूल्य—४० पैसे

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन

कादम्बिनी

मासिक प्रकाशन

आकल्पं कविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

वर्ष ५, अंक ४
फरवरी, १९६५,
पो० बा० ४०
नयी दिल्ली-१

सम्पादक
रामानन्द 'दोषी'

एक वर्ष १०.००
दो वर्ष १८.००
तीन वर्ष २६.००

निबन्ध एवं लेख

कविताएँ

कथा-साहित्य

शिकार

हास्य-व्यंग्य

स्तम्भ

चित्र-परिचय

मुखपृष्ठ : शृंगार (चंबा शैली)
छायाकार—उषा अग्रवाल

स्वर्गीय
मैथिलीशरण
गुप्त : छायाकार—एस. जे. सिंह

तिब्बती भिक्षु : छायाकार—एम. एल. खुल्लर

दुर्गा : छायाकार—उमेश

दुलहन : छायाकार—रनवीर एस. वख्शी

गिरते बाल
आसानीसे रोके जा सकते हैं।
आप केवल यही करें कि.....
आप जिस हेअर ऑईलका इस्तेमाल करते हैं, उसमें अथवा आधा किलो खोपरेके तेलमें या एरण्डीके तेलमें झरण की एक बोतल मिलालें। इस तरहसे बना हुआ विशेष गुणकारी तेल, हररोज इस्तेमाल करके बाल गिरनेकी मुसिबतसे आप छुटकारा पाईये ! इतनाही नहीं बल्की आप फिरसे घने और लम्बे बाल प्राप्त किजीये।
झरणा
घने और लम्बे बाल के लिए
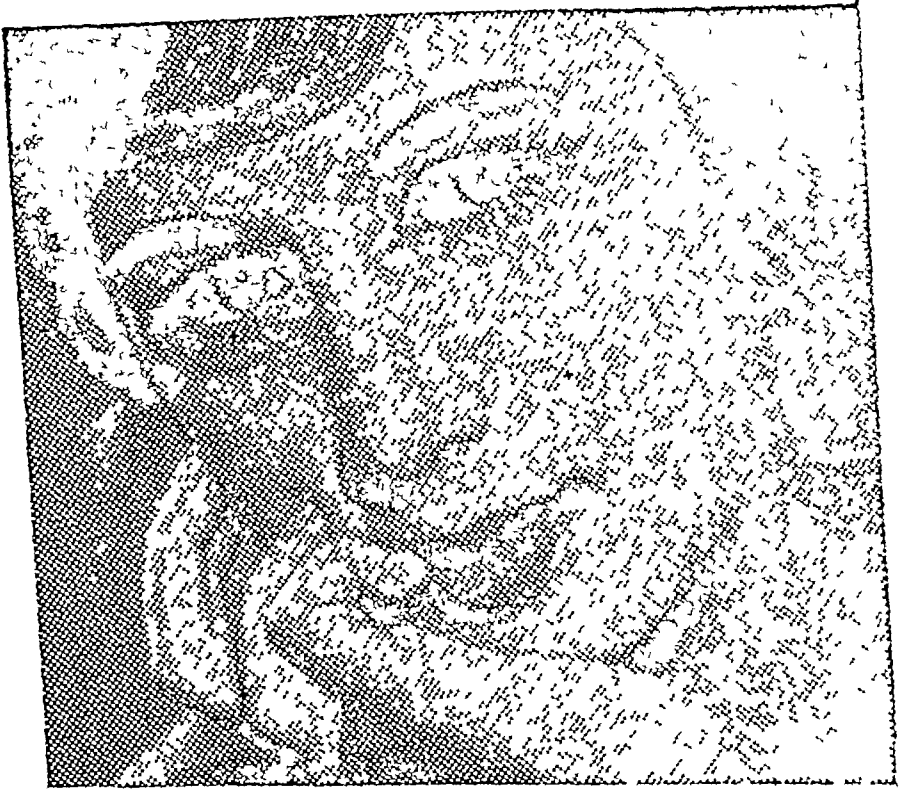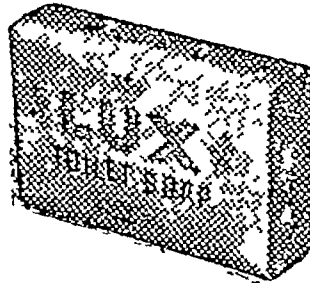
सिरदर्द में पक्का आराम पाइये

'एनासिन' इसलिए इतनी असरदार है कि इस में डाक्टर के नुस्खे की तरह कई दवाइयां हैं — इसी कारण वह फौरन और पूरा आराम देती है।

- 'एनासिन' में तत्वों का अनोखा मेल है, इसलिए दर्द में फौरन आराम मिलता है।
- 'एनासिन' घबराहट दूर करती है — सिरदर्द अक्सर इसी से होता है।
- 'एनासिन' सर्दी-जुकाम व इन्फ्लूएंजा का बुखार घटाती है।
- 'एनासिन' दर्द में अक्सर महसूस होनेवाली बेचैनी व थकावट को मिटाती है।

HIN

एनासिन बेहतर है क्योंकि इसके ४ फायदे हैं

Registered User
GEOFFREY MANNERS & CO LTD.

बताइये

शब्द-सामर्थ्य की कमी प्रायः उन्नति में बाधक होती है। वह सरलता से दूर की जा सकती है। निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये। उत्तरों में दिये चिह्नों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तत्०=तत्सम, सं०=संज्ञा, वि०=विशेषण, पुं०=पुंलिंग, स्त्री०=स्त्रीलिंग, क्रि० वि०=क्रिया विशेषण। यदि आप के ७ उत्तर सही हैं तो परिणाम साधारण, ११ सही हैं तो संतोषजनक और सब सही हैं तो उत्तम है—

१. मरीचिका : क. एक रोग, ख. सूर्य, ग. मृगतृष्णा, घ. मृत्यु।

२. संवरण : क. छिपाव, ख. स्वयंवर, ग. अभिनंदन, घ. निग्रह करना।

३. सुकर : क. सरल, ख. सुअर, ग. अच्छा हाथ, घ. पुण्य।

४. पथ्य : क. मार्ग, ख. पथिक, ग. बुरा, घ. हितकर।

५. सुहृद : क. मित्र, ख. सरोवररूप, ग. सहृदय, घ. सुन्दर।

६. अर्धचंद्र देना : क. आधा चंद्रमा देना, ख. गरदनिया देना, ग. हिलाल देना, घ. पुरस्कार देना।

७. ईषत् : क. ईश्वरीय, ख. ईशान कोण, ग. किंचित्, घ. इष्ट।

८. प्रलंब : क. लंबा, ख. दीर्घकाय, ग. अवलंब, घ. लटकता हुआ।

९. वैशाखनंदन : क. गधा, ख. वैशाखी का त्योहार, ग. उत्सव, घ. वृक्ष।

१०. उन्मेष : क. ऊनवाली भेड़, ख. उत्साह, ग. उद्रेक, घ. विस्तार।

११. विगलित : क. जो गल गया हो, ख. सूखा हुआ, ग. स्थिर, घ. अस्थिर।

१२. विरल : क. अनोखा, ख. अद्वितीय, ग. घना, घ. विरला।

१३. धानी : क. घानी, ख. धान की वस्तु, ग. स्थान, घ. नगर।

१४. उन्मना : क. उच्चमना, ख. अन्यमनस्क, ग. सावधान, घ. हर्षित।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. मरीचिका : ग मृगतृष्णा, मृग-जल, मरुस्थल या दृढ भूमि पर सूर्य की किरणें पड़ने से होने वाला जल का भ्रम, कोई भी आशा या प्रयत्न जिस का सफल होना असम्भव हो — चीन भारत का मित्र हो जायेगा, यह मरीचिका मात्र है। (तत्०, स०, स्त्री०)

२. संवरण : घ निग्रह करना, रोकना, विचार या इच्छा आदि को दबा लेना—लोभ का संवरण, क्रोध-संवरण —मैं आप के दर्शनों की इच्छा का संवरण नहीं कर सका। (तत्०, स०, पु०)

३. सुकर : क सरल, सुसाध्य, आसान, दुष्कर का उलटा — हिमालय यात्रा भले दुष्कर हो, विश्व-यात्रा सुकर हो गयी है। (तत्०, वि०, स०—सुकरता, सौकर्य)

४. पथ्य : घ हितकर, रोग में या रोग के अन्त में लाभकर तथा उपयुक्त भोजन—जीवन में पथ्य-अपथ्य का ध्यान रखना। (तत्०, स०, पुं०)

५. सुहृद (सुहृत्) : क मित्र, सखा, प्रेमी — आप का सुहृद (सुहृत्)। (तत्० वि०, पुं०, स० — सौहार्द, सौहार्द्य, सौहृदय, सौहृद, हिन्दी—सुहृद, सुहृदता)

६. अर्धचंद्र देना : ख गरदनिया देना, पंजे का आधा चंद्र-जैसा बना कर गले में धक्का मारना — और कुछ न सही, इन्हें अर्धचंद्र दे कर तो विदा करो। (तत्०, स०, पुं०)

७. ईषत् : ग किंचित्, थोड़ा-सा, अल्प—ईषत् हास्य, ईषत पुरुष—नीचा पुरुष। (तत्०, क्रि० वि०)

८. प्रलंब (प्रलंबित) : घ. लटकता हुआ, लंबा-लंबा, आगे निकला हुआ—प्रलंब केश, प्रलंब बाहु, प्रलंब नासिका। (तत्०, वि०, सं०—प्रलंबन)

९. वैशाखनंदन : क. गधा — वैशाखनन्दन ने अपनी सुरीली तान से दिशाओं को नादित कर दिया (तत्०, स० पुं०)

१०. उन्मेष : ग. उद्रेक, खुल जाना, खिल जाना, उन्मीलन — ज्ञान, प्रतिभा, भाव, विकारों का उन्मेष। (तत्०, सं०, पु०, क्रि०—उन्मेषित)

११. विगलित : क जो गल गया हो, द्रव हो कर बहने लगा हो, शिथिल हो कर स्खलित हो गया हो—विगलित हिम, अश्रु। (तत्०, वि०, पु०)

१२. विरल : घ विरला, इक्के-दुक्के, जो घना न हो, जिन का सिलसिला बंधा न रहता हो—ऐसे पुरुष विरल होते हैं, विरल वन, केश, पंक्ति। (तत्०, वि०, पुं०, विपरीत अर्थ—अविरल)

१३. धानी : ग स्थान, निधान, मुख्य स्थान — राजधानी, प्रजाधानी। (तत्०, सं०, स्त्री०)

१४. उन्मन : ख. अन्यमनस्क, दुचित्ता, जिस का मन न लग रहा हो, खिन्न—कक्षा में उन्मन रहता है, आज आप उन्मन हैं (तत्०, वि०, रूप —उन्मना, उन्मने, उन्मनी)

—सीताचरण दीक्षित
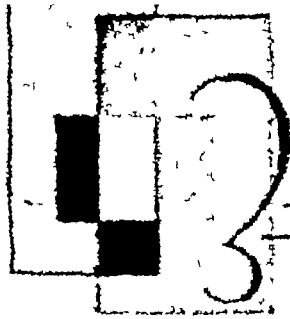
'कादम्बिनी' के जनवरी अंक में श्री प्रबोधकुमार मजुमदार का वह पत्र देखा, जिस में उन्होंने दिसंबर अंक में प्रकाशित मेरी कहानी 'सिद्धांत का प्रश्न' को अगस्त, १९६४ की 'वनिता' में प्रकाशित श्री महेन्द्र भाम्ब की कहानी का भावानुवाद बताते हुए मुझे 'बधाई' दी है। श्री भाम्ब की कहानी मैं ने न तो छपने से पहले देखी थी (श्री भाम्ब इस की पुष्टि करेंगे) और न उसे देखने का सुयोग मुझे अब तक प्राप्त हुआ है। मैं तो इतना जानता हूं कि यह कहानी मैं ने अप्रैल, १९६४ में लिखी थी और जुलाई, १९६४ के दूसरे सप्ताह में 'कादम्बिनी' में इसे प्रकाशनार्थ स्वीकृत किया गया था। चूंकि श्री भाम्ब मेरे सहकर्मी ही नहीं मित्र भी हैं, इसलिए अपनी कुछ अन्य कहानियों की भांति यह कहानी भी मैं ने उन्हें सुनायी थी और इस के प्रकाशन से संबंधित हर सूचना मैं उन्हें देता रहा था। श्री भाम्ब ने अपनी कहानी के संबंध में मुझे कुछ नहीं बताया। ऐसी स्थिति में अच्छा यही होगा कि वे स्वयं वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालें। वैसे, श्री मजुमदार को मैं उन की 'बधाई' के लिए धन्यवाद देता हूं।

—विद्याभूषण श्रीरश्मि, दिल्ली

जनवरी अंक में प्रकाशित श्री मजुमदार के पत्र के सम्बंध में मुझे इतना कहना है कि दोनों कहानियां स्वतंत्र रूप से एक ही घटना पर लिखी गयी हैं। श्रीरश्मिजी ने मुझे अपनी कहानी सुनायी थी, पर अपनी कहानी के बारे में मैं ने उन्हें कोई सूचना इसलिए नहीं दी कि कहीं वे अपनी कहानी को छपवाने का इरादा न छोड़ दें।

—महेन्द्र भाम्ब, दिल्ली

'जीवन एक अनबूझ पहेली' के अन्तर्गत जनवरी अंक में बृजेशकुमार सक्सेना का संस्मरण पढ़ा। पढ़ कर आश्चर्य हुआ कि जब यह विद्यार्थी सीप और पाइला में अन्तर ही नहीं जानता तो उस का नाड़ी-संस्थान किस प्रकार निकाल सकता था। पाइला शंख के समान होता है जब कि सीप में दो आवरण होते हैं। अंगरेजी में सीप को यूनियो कहते हैं। शंख के आकार के एक कीड़े (घोंघे) को अंगरेजी में पाइला कहते हैं।

—प्रो. यदु सहाय, सागर विश्वविद्यालय

पहली बार 'कादम्बिनी' हैदराबाद के बुक स्टाल पर देखी थी। आकर्षक मुखपृष्ठ बरबस अपनी ओर खींच रहा था। मन में आया कि आकर्षक मुखपृष्ठ वाली पत्रिकाएं सामग्री की दृष्टि से प्रायः निकृष्ट होती हैं। पर मैं अपने को रोक नहीं सका और अंक

खरीद लिया । अब तो यह हाल है कि जब तक नया अंक पढ़ न लूं, चैन नहीं पड़ता । सैनिक जीवन की व्यस्तता के बावजूद 'कादम्बिनी' पढ़ने के लिए समय निकाल लेता हूं ।

—सिगनलमैन मुनेश्वरदास, दिल्ली कैंट

मोहन राकेश की कहानी में सामंजस्य का प्रत्येक सूत्र टूट-सा गया है । 'सोया हुआ शहर' में जो 'कहानी' वे लक्षित करते हैं, वह कहीं नहीं दिखायी पड़ती । यह कहानी नहीं कही जा सकती ।

शचीन्द्र भटनागर और मणि मधुकर के गीत उत्तम हैं ।

—शिवशंकर मिश्र, मुजफ्फरपुर

मोहन राकेश की कहानी सराहनीय तो नहीं कही जा सकती, पर छोटी से छोटी बात को प्रभावशाली शैली में व्यक्त करने में उन्होंने सफलता पायी है । मंडन बाग संबंधी रचना रोचक थी ।

—रामपाल कटारिया, लश्कर

'आज की कहानी बोध और दिशाएं' स्तंभ बहुत पसन्द आया । 'गोष्ठी' पाठकों के ज्ञान में वृद्धि करती है ।

—त्रिलोकचंद गुप्त, कलकत्ता

राष्ट्रभाषा की प्रगति में 'कादम्बिनी' का विशेष योग है । स्तंभों में मुझे 'बिन्दु-बिन्दु विचार', 'शब्द सामर्थ्य बढ़ाइये', 'हास्य-व्यंग्य' और 'जीवन एक अनबूझ पहेली' अधिक प्रिय हैं ।

—सत्यवती, बंबई

'बिन्दु-बिन्दु विचार' विचारोत्तेजक लगा । मोहन राकेश की कहानी बहुत अस्पष्ट बिम्बों को ले कर लिखी गयी है । मणि मधुकर और भूपेन्द्रकुमार स्नेही की कविताएं अच्छी लगीं । 'अत्रे की हास्य कथाएं' की कमी अखरी ।

—विजयकुमार शर्मा, दिल्ली

'कादम्बिनी' साहित्यिक क्षेत्र के वाद-विवादों से पृथक ही रही है । अच्छा होगा यदि आगे भी यह इन चक्करों से दूर रहे ।

—महेंद्र एन. पुरोहित, बांसवाडा

वाराणसी में गंगा स्नान करने के लिए दशाश्वमेध घाट पर पहुंचा तो देखा कि सैकड़ों अपंग और गंदे भिखारियों की लाइन सड़क के दोनों ओर लगी है । अचानक मेरी दृष्टि भिखारियों की एक टोली पर गयी । एक विदेशी उन के हाथों पर पैसे रखता जा रहा था । शायद किसी भिखारी ने अपने बराबर वाले की बारी आने पर हाथ बढ़ा कर पैसा ले लिया था । तुरन्त सारे भिखारी एक दूसरे पर पिल पड़े । विदेशी ने पीछे घूम कर देखा और सारे पैसे उन के बीच में फेंक कर आगे बढ़ गया । सब के सब पैसे लूटने दौड़ पड़े । मुझे यह देख कर बहुत दुख हुआ । हमारे देश के प्रति उस विदेशी ने क्या धारणा बनायी होगी, यह स्पष्ट है । तीर्थ-स्थानों में ऐसी बातों पर रोक लगनी चाहिये ।

—सतीश भट्ट, बांदा

नवम्बर १९६४ अंक के मुखपृष्ठ पर जो चित्र छपा था, उस के छायाकार श्री आर. पी. टंडन का नाम छपने से रह गया था ।

—सम्पादक

बिन्दु बिन्दु विचार
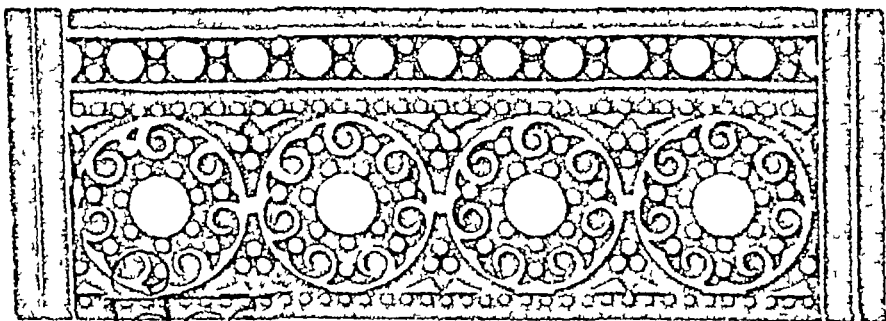
★ यह एक मन्दिर है—विशाल और दिव्य, वास्तुकला का जीवित आदर्श। यहां आ कर हमारे विकारों का शमन हो जाता है।

★ यह एक मीनार है—ऊंची और भव्य, किसी कारीगर के संतुलन-बोध की प्रत्यक्ष साक्षी। इस पर चढ़ कर मुल्ला अजान देता है कि उठो और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करो!

★ यह एक सड़क है—सुदीर्घ और सुदृढ़, किसी इंजीनियर के अनुभवों और प्रयोगों की जाग्रत निशानी। यह मानव के विकास और सभ्यता की प्राण-रेखा है।

★ यह एक कारखाना है—

★ यह एक हाट है—

★ यह एक औषधि है—

★ ये सब प्रगति के कारवां के पद-चिन्ह हैं—

★ ये सब आदमी की बुद्धि और परिश्रमशीलता के प्रति श्रद्धांजलियां हैं।

★ बुद्धि और परिश्रम बड़ी चीजें हैं—बहुत बड़ी चीजें; लेकिन क्या ये ही पर्याप्त और सब-कुछ हैं?

★ नहीं। और निश्चयात्मक रूप से नहीं।

★ असह्य पीड़ा पहुंचाने वाले यातना-यंत्र—

★ विध्वंस-वाहिनी तोपें—

★ अपने क्रोड़ में प्रलय को प्रश्रय देने वाले बम—
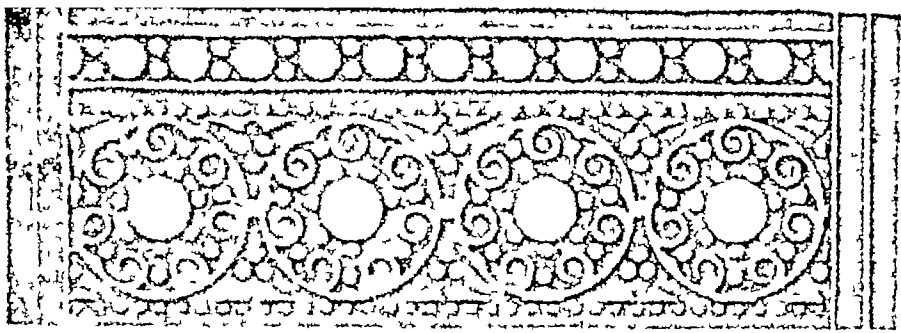
★ सहस्रों को सुख और शान्ति से वंचित करने वाले शोषण के नानाविध प्रकट-प्रच्छन्न उपाय—

★ ये भूख, ये बेकारी और ये घुला-घुला कर मारने वाले जहर—

★ ये सब अवनति की राह पर आदमी द्वारा छोड़ गये भयावने और भद्दे निशान हैं।

★ और ये सब आदमी की बुद्धि और परिश्रमशीलता के प्रति निन्दा के पारित प्रस्ताव हैं।

★ तो हम मानें कि बुद्धि और परिश्रम बड़ी चीजें हैं—बहुत बड़ी चीजें, लेकिन न ये पर्याप्त हैं और न सब-कुछ।

★ इन से ऊपर जो है, वह है आदमी का विवेक।

★ आदमी की तहजीब और तरक्की के लिए जितनी बुद्धि और परिश्रम लगाया गया है, उसे बर्बर और पशु बनाने के लिए उस से कम बुद्धि और परिश्रम का व्यय नहीं हुआ है। हिसाब लगा कर देखें तो प्राणदायी बूटी और प्राणघातक विष दोनों ही समान बुद्धि और परिश्रम के प्रतिफलन हैं। अफीम की खेती गेहूं उपजाने से अधिक ही कष्टकर है, कम नहीं।

★ बंधु, विवेक की वल्गा को कसोगे नहीं, तो बुद्धि और परिश्रम का तुरंग तुम्हें रसातल से इधर पटकने वाला नहीं है।

★ और यह न चेतावनी है, न धमकी और न परामर्श—

★ यह केवल तथ्य है!

वीतराग
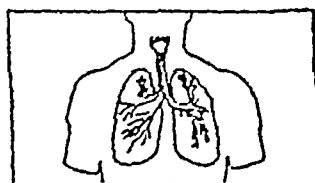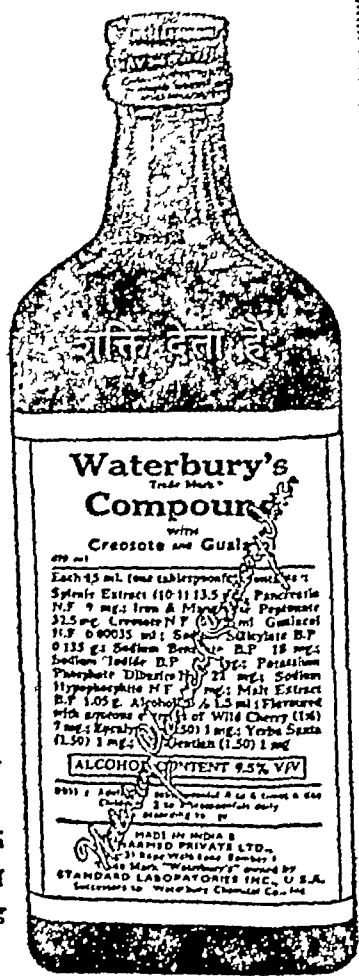
जैन दार्शनिक कवि हेमचंद्र सौराष्ट्र के गांवों में विचरण करते हुए निकले। सर्वत्र अभाव और दैन्य देख कर उन का हृदय करुणा से भर उठा। एक किसान ने सूत और सन से मिला कर बुना हुआ एक मोटा वस्त्र आचार्य के चरणों में रखते हुए कहा, "यह वस्त्र मेरी पत्नी ने आप के लिए बुना है। आप इसे स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।"

कवि हेमचंद्र ने तत्काल राज्य प्रदत्त वस्त्र उतार कर यह मोटा वस्त्र पहन लिया और सीधे राजधानी पाटण लौट गये। उन के आगमन का समाचार सुन महाराज कुमारपाल सामंतों और श्रेष्ठियों के साथ उन के स्वागत को आये। किन्तु राजकवि के वस्त्र पर दृष्टि पड़ते ही उन्हें घोर पीड़ा हुई—"यह तो गुर्जर देश का दुर्भाग्य है, आचार्य! यह मेरे लिए मरण का विषय है।"

जैन संत ने तीखे स्वर में कहा, "तुम्हारी अधिकांश प्रजा ऐसे ही वस्त्र तो पहनती है। इस से तुम्हें पीड़ा एवं मरण का अनुभव नहीं होता? भला मुझ वीतराग के प्रति तुम्हारी ऐसी अनुभूति क्यों? तुम मुझे चीनांशुक पहना कर प्रजा की सुख-समृद्धि नहीं छीन सकते। मेरा यह ग्राम्य वस्त्र कोटि-कोटि राजवस्त्रों से श्रेष्ठ है।"

जितेन्द्र गुप्त

सैनिक शक्ति बढ़ाने का उद्देश्य आत्मरक्षा हो या अन्य कोई निहित स्वार्थ, पर आकड़े गवाह है कि इस मद पर अपार धन-राशि व्यय हो रही है। प्रकाशित और अनुमानित अंको के आधार पर संयुक्त राष्ट्र-संघ ने हिसाब लगाया है कि इस समय सभी देश मिल कर सैनिक तैयारी पर ६०,००० करोड रुपया प्रति वर्ष खर्च कर रहे है। इस का अधिकांश भाग (करीब ८५ प्रति शत) अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, पश्चिमी जरमनी, फ्रांस, चीन और कनाडा खर्च करते है। यह राशि दक्षिण अमरीका, एशिया और अफ्रीका के अविकसित राष्ट्रों की राष्ट्रीय आय के दो-तिहाई के बराबर है।

अस्त्र-शस्त्र संचय करने वाले बडे राष्ट्रों का कहना है कि विश्व में शान्ति की रक्षा और अपने बचाव के लिए वे ऐसा कर रहे है। यानी यदि वे ऐसा न करें तो उन से सशक्त राष्ट्र उन्हें दबा लेंगे या नये राष्ट्रों पर अपना दबदबा जमा लेंगे। नतीजा यह है कि सभी समर्थ राष्ट्र अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने या बढ़ाने के लिए शस्त्रास्त्र-भण्डारों का आकार बढ़ाने की होड़ में पानी की तरह रुपया बहा रहे है।

पर मूल प्रश्न है कि प्रतिरक्षा-साधनों में प्रति क्षण ७ करोड़ रुपये की पूंजी लगा कर क्या ये देश सचमुच विश्व में शान्ति कायम रखना चाह रहे है जब कि, दो-तिहाई देश गरीबी,
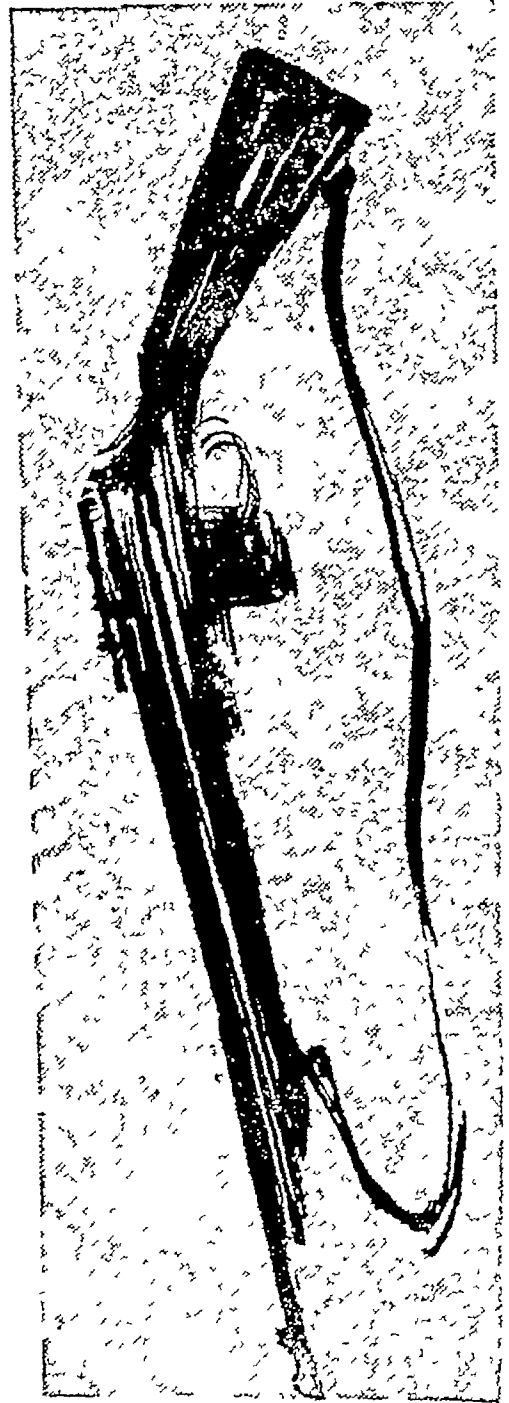
अशिक्षा और भुखमरी के गर्त में डूबे हुए हैं। इस से भी बड़ा विरोधाभास यह है कि प्रतियोगिता के कारण संहारक अस्त्र इतने अधिक परिमाण में जमा हो गये हैं कि वे समूचे संसार के बड़े-बड़े शहरों को भस्म कर देने के लिए पर्याप्त हैं। और पते की बात यह है कि इस संहारक शक्ति को संभाल कर रखना जोखिम का काम बन गया है। कहीं अनजाने में तकनीकी भूल से एक भी स्वचालित अस्त्र क्रियाशील हो गया तो तत्क्षण जवाबी आक्रमण हो जायेगा और देखते-देखते प्रलय का दृश्य उपस्थित हो जायेगा।

प्रोफेसर लाइनस पालिंग का, जिन्हें १९६२ में शान्ति-प्रयास और १९५४ में रसायन विज्ञान में खोज के लिए दो बार नोबेल पुरस्कार मिल चुका है, खयाल है कि अग्रणी देशों के केवल अणु-बमों की संहारक शक्ति ३२,००० मेगाटन के बराबर है। स्टैंडर्ड अणु-बम की संहारक शक्ति २० मेगाटन मानी जाती है। इस शक्ति का एक बम बड़े-से-बड़े नगर को धूल में मिला सकता है। जहां वह गिरेगा वहां १२ मील व्यास का सैकड़ों फुट गहरा गड्ढा बन जायेगा और चारों ओर २५ से ७० मील की दूरी तक के जीव और वनस्पतियां झुलस जायेंगी। रेडियो-सक्रिय धूल के बादल केन्द्र से २०० मील तक फैल कर लोगों का जीवन संकट में डाल सकते हैं।

अमरीका के पास १ किलोटन से ४० मेगाटन तक के छोटे-बड़े करीब ३५ हजार बम हैं जो विभिन्न केन्द्रों से बटन दबाते ही गन्तव्य की ओर उड़ने के लिए तैयार हैं। उन्हें भेजने के लिए 'एटलस', 'टिटन', 'पोलरिस' आदि प्रक्षेपास्त्र हर समय तैयार रहते हैं। पोलरिस ए-२ दो हजार मील दूर की मार कर सकता है। बचाव के लिए भी द्रुतगामी (दो हजार मील प्रति घण्टा) प्रक्षेपास्त्र बनाये गये हैं। सोवियत संघ ने भी पूरी मोर्चेबन्दी कर रखी है। १९६१ में उस ने ६० मेगाटन बम का परीक्षणात्मक विस्फोट किया था और अब तक सम्भवतः वह १०० मेगाटन का बम विकसित कर चुका होगा।

ऐसे-ऐसे ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग समूची सभ्यता और संस्कृति को ध्वस्त कर देगा और शायद नये सिरे से सृष्टि-रचना की प्रक्रिया दोहरायी जाये।

इस महाशक्ति की प्राप्ति के लिए पिछले वर्षों में किये गये परीक्षणों के विषैले प्रभाव ने अभी से गुल खिलाने शुरू कर दिये हैं। आणविक विकिरण के परिणाम की जांच करने के लिए

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा नियुक्त वैज्ञानिकों की समिति का और अमरीका की सर्वीय विकिरण परिषद का निष्कर्ष है कि अब तक हुए परीक्षणों के फलस्वरूप अगली पीढ़ियों के डेढ़ करोड़ शिशु शारीरिक या मानसिक विकृति के शिकार होंगे और अल्पायु में ही मर जायेंगे। कारण, विकिरण के फलस्वरूप इस पीढ़ी के लोगों में ऐसी विकृति आ जायेगी जो विकृत सन्तान के जन्म का कारण बनेगी।

इस के अतिरिक्त, आणविक विकिरण कैन्सर-सरीखे असाध्य रोगों का भी जन्मदाता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि करीब २० लाख व्यक्ति कैन्सर, ल्युकेमिया आदि रोगों से अभिशप्त होंगे और पूर्णायु से १०-२० वर्ष पूर्व ही इस संसार से विदा हो जायेंगे। इस का अर्थ हुआ कि १,५०० आदमियों के पीछे १ आदमी घोर यातना के बाद अकाल-मृत्यु को प्राप्त होगा।

तीसरा पहलू आर्थिक-सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित है। विश्व के कुछ भागों के व्यक्ति सम्पन्नता के शिखर पर भले ही पहुंच रहे हों, पर उन के बीच एक उपेक्षित वर्ग है, और अधिकांश देशों के अधिकांश लोग जीवन की सामान्य सुविधाओं से भी वंचित हैं। अमरीका सब से सम्पन्न देश है, लेकिन आबादी का पांचवां भाग, यानी साढ़े तीन करोड़ व्यक्ति अभावग्रस्त हैं। अकेले न्यूयार्क में साढ़े तीन लाख व्यक्ति सरकारी सहायता से जिन्दगी बसर करते हैं। वहां की सरकार जिन को रोजी नहीं दे पाती, उन्हें गुजारा-भत्ता देती है। १९६४ में करीब ८० लाख व्यक्ति यह भत्ता पा रहे थे।

सोवियत संघ में, जहां राष्ट्रीय आय का पांचवां भाग सैनिक व्यय के लिए सुरक्षित रहता है, अभी तक मास्को के निवासियों को आलू, डबलरोटी, आटा, कोयला आदि के लिए दुकानों के सामने पंक्ति लगानी पड़ती है। चीन ने पिछले वर्ष अक्तूबर में अणु परीक्षण किया, हालांकि यह बात और है कि चीनवासियों को पेट-भर भोजन, तन ढकने को कपड़ा और रहने के लिए मकान नसीब न हो।

जब बड़े-बड़े देशों का यह हाल है तो अविकसित देशों की स्थिति का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। कम से कम भारतवासी उस से पूरी तरह परिचित हैं। इन देशों में प्राकृतिक साधनों का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य-सेवा, परिवहन, औद्योगीकरण, सघन खेती—सभी विकास की अपेक्षा रखते हैं।

शस्त्रीकरण की प्रतियोगिता में आगे निकलने की होड़ में अपने को कल्याणकारी और जनवादी कहनेवाले राज्य जन-हित को तिलांजलि दे कर साधारण जनता के जीवन को सुखमय बनाने के बदले, उन के लिए सर्वनाश की अहर्निश आशंकाएं, यातनादायी बीमारियां और अभाव के दलदलों की व्यवस्था कर रहे हैं। समय की विडम्बना ही तो है यह!

आज राष्ट्रों की अवस्था अभिमन्यु-सरीखी हो रही है जो शस्त्रीकरण के चक्र-व्यूह में घुसना तो जानते हैं, पर शायद उस से निकलने का उपाय

नहीं। राष्ट्रनेता भविष्य से आशंकित हैं, पर मुक्ति पाने के एकमात्र उपाय निःशस्त्रीकरण की व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं। इस के लिए चाहिये 'एक विश्व' की भावना में अटूट विश्वास, साहस और संयत आचरण का संकल्प, जिस के बिना निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों का व्यापार बेमानी ही रहेगा।

अणु-शक्ति के धनी राष्ट्रों में भस्मासुर की शक्ति है। अतः आत्मरक्षा की सहजवृत्ति कभी-कभी सिर उठाती है, जिस से उन्हें निःशस्त्रीकरण की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। १९६३ में मास्को में हुई अणु-परीक्षण-निषेध-सन्धि इस का प्रमाण है। सोवियत संघ, ब्रिटेन, आयरलैंड और अमरीका ने तय किया कि वे भूमि या समुद्र पर और वायुमण्डल में अणु-परीक्षण नहीं करेंगे। यह सन्धि अधूरी है, क्योंकि इस में भूगर्भ परीक्षणों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है और न अणु-अस्त्रों के निर्माण या संग्रह पर अंकुश लगाया गया है। दूसरे, यद्यपि १०० से अधिक देश इस सन्धि पर हस्ताक्षर कर चुके हैं, तथापि फ्रांस और चीन ने इस का विरोध किया है।

निःशस्त्रीकरण के बारे में कुछ लोग यह दलील पेश करते हैं कि इस से देशों की अर्थ-व्यवस्था पर बुरा असर पड़ेगा—सामरिक महत्त्व के उद्योगों में लगी मशीनें और आदमी बेकार हो जायेंगे। वस्तुतः इस दलील में कोई सार नहीं है। थोड़ी-बहुत तात्कालिक असुविधाएं हो सकती हैं, लेकिन सुनियोजित ढंग से काम करने पर कोई कठिनाई कदापि नहीं होगी। कारण, अधिकांश मशीनों और उन के उत्पादन का उपयोग असैनिक कार्यों के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए टैंक के स्थान पर ट्रैक्टर, जलपोत के स्थान पर मालवाही जहाज, इलेक्ट्रॉनिक मशीनों की जगह स्वचालित मशीनें, टेलीविजन आदि सरलता से बनाये जा सकते हैं। कुछ कारखाने बन्द करने पड़ सकते हैं, जिन में काम करने वालों को अन्य उद्योगों में खपाया जा सकता है।

दूसरे महायुद्ध के बाद ब्रिटेन और अमरीका में सेना और युद्ध-सामग्री के उत्पादन में कटौती की गयी थी। उस समय ब्रिटेन में ५१ लाख सैनिक थे और ३९ लाख व्यक्ति सामरिक उद्योगों में लगे थे। साल भर के भीतर १५ लाख सैनिक और नागरिक उद्योगों के १४ लाख व्यक्तियों को छुट्टी दे दी गयी, लेकिन योजनाबद्ध रीति से इस प्रकार यह काम किया गया कि एक-एक व्यक्ति को वैकल्पिक काम मिल गया और समग्र राष्ट्रीय उत्पादन में कमी भी नहीं आयी। इसी तरह अमरीका में भी आंशिक निःशस्त्रीकरण का कार्यक्रम निर्विघ्न सम्पन्न हुआ।

अतः निःशस्त्रीकरण की ओर बढ़ने में आर्थिक अव्यवस्था उत्पन्न होने की आशंका निर्मूल है। अमरीका के अर्थ-शास्त्री, जेम्स पी. वारबर्ग ने अपनी पुस्तक "निःशस्त्रीकरण : इस दशक की चुनौती" में लिखा है कि यदि अमरीकी सरकार ने अपेक्षाकृत गरीब वर्ग (आबादी का दसवां भाग) के लिए

सार्वजनिक निर्माण और सामाजिक सेवा-कार्य आरम्भ न किया तो निःशस्त्रीकरण से बेकार होने वाले ७५ लाख व्यक्तियों को वैकल्पिक काम देने में कठिनाई होगी। साथ ही श्री बारबर ने सुझाव दिया है कि सरकार को अन्य देशों की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिये और इस के लिए "अमरीकी अर्थव्यवस्था को तदनुरूप ढालना चाहिये।"

जहां तक काम करने वालों का प्रश्न है, स्थिति यह है कि श्रम-विभाजन के इस युग में वे किसी भी चीज का प्रायः एक पुरजा तैयार करते हैं, और जो पुरजे वे तैयार करते हैं उस का उपयोग प्रायः अन्य चीजों में भी हो सकता है।

कुछ मामलों में, खास कर जहां दीर्घ योजना पर काम हो रहा हो, या बड़े काम का ठेका दे दिया गया हो, वास्तविक कठिनाई पैदा हो सकती है। जैसे ब्रिटेन ने अणु-चालित 'पोलारिस' पनडुब्बियां बनाने का ठेका दे रखा है। एक पनडुब्बी की कीमत २६,००,०००,००० रुपये है। काम शुरू हो गया है और काफी रुपया लग चुका है। पर उन की डिजाइन में परिवर्तन करके उन्हें मालवाही पनडुब्बी का रूप दिया जा सकता है और उन का उपयोग अधिकांश समय बर्फ से जमे रहने वाले बन्दरगाहों को खोलने में किया जा सकता है। कनाडा में हडसन खाड़ी ९ महीने बर्फ से पटी रहती है इसलिए उत्तरी तट के बन्दरगाह भी बन्द रहते हैं। इन बन्दरगाहों से मध्य-वर्ती कनाडा का माल बहुत कम खर्च पर निर्यात किया जा सकता है, इसलिए वहां की सरकार ने अणु-पनडुब्बी का उपयोग करने की सम्भावना पर विचार किया; किन्तु खर्चीली होने के कारण हिम्मत न कर सकी। अब यदि ब्रिटेन अपनी पनडुब्बियां इस काम के लिए दे सके तो दोनों देशों की समस्या सुलझ सकती है।

यह हुई बड़े-बड़े देशों की बात जहां युद्ध-उद्योग आर्थिक साधनों का एक बड़ा हिस्सा पी जाते हैं। अविकसित देशों को जिन्हें विकासशील देश की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, निःशस्त्रीकरण का पहला लाभ यह होगा कि युद्ध-सामग्री पर व्यय की जाने वाली विदेशी मुद्रा साफ बच जायेगी तथा वे हथियारों के बदले कच्चा औद्योगिक माल तथा मशीनरी और आर्थिक साधनों के विकास के लिए अधिक उपकरण मंगा सकेंगे। स्वास्थ्य और शिक्षा-सेवाओं के विस्तार के लिए अतिरिक्त औषधियों, टीकों, पाठ्य-पुस्तकों, प्रयोगशालाओं के यन्त्रों आदि का आयात किया जा सकता है।

विदेशी मुद्रा के अलावा जो रकम बचेगी उस का उपयोग स्वभावतः विकास की गति बढ़ाने में लगेगा। भारत को ही लीजिये। १९६३-६४ का कुल बजट १,८७२.४० करोड़ रुपयों का था, जिस का ३८ प्रति शत प्रतिरक्षा के लिए रखा गया—यानी ७०८.९१ करोड़ रुपया। यदि यह धन आर्थिक सामाजिक विकास में लगाया जाये तो पंचवर्षीय योजनाओं का काम दुगनी रफ्तार से हो सकता है। ●

[illegible]
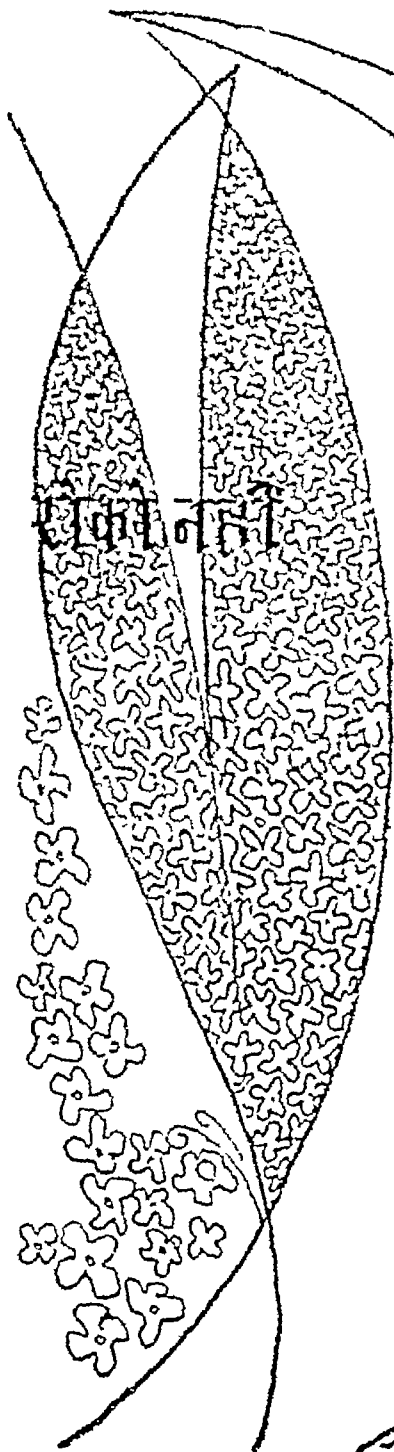
सोचने की आल में सल पड़ गये
नजर के अंदाज में बल पड़ गये

उन्हें ऊपर के गगन पर नाज है
मुझे नीचे की धरा पर गर्व है
चोटियां हिमशैल की उन के लिए
भूमि का कीचड़ हमारा पर्व है

भला मंदिर ढूंढ़ते हो देव का
देव अलगोजा बजाते खेत में
उगने में होड़-सी लेते हुए
प्राण के दाने हरे हैं रेत में

तुम भले मुझ से मिलो या मत मिलो
नर्मदा में दौड़ता आता मिलन
जहां पृथ्वी पर पड़ा दाना वहां
मिली हरियाली, उठानों की सिलन

मैं सदा ही मेरु मौहं प्यार में
रेख कट जावे भले फन की मधुर
रोज गंगाजल बदल लेती नदी
भला मानव मानवी सीखें न गुर

क्रूरता के पैर क्यों पड़ने लगे
भीरुता से जोड़ क्यों नाता लिया
इस जरा से लाड़ले संघर्ष में
प्रेम के भगवान तुम ने क्या किया

पतन में अवसर दिया इमान ने
जिसे यह उत्थान भूला ही किया
जो जिया उन्मत्त सुविधा के लिए
नयन के मेहमान, बोलो क्या जिया

जो बहा, बलिदान बूंदों, वह सुधी
वर्ण है पथ का, उसे रोको नहीं
सोचने की आल में सल पड़ गये
प्रकृति सुलझाये, उसे रोको नहीं

— माखनलाल चतुर्वेदी —

आज की कहानी : बोध और दिशाएं

इस स्तंभ के अंतर्गत अभी तक आप कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर तथा मोहन राकेश की कहानियां पढ़ चुके हैं। अब प्रस्तुत है राजेन्द्र यादव की कहानी तथा उन का तत्संबंधी वक्तव्य। आगामी अंकों में भी प्रख्यात कहानीकारों की रचनाओं की प्रतीक्षा करें

कहानी की चर्चा में शिल्प के साथ मेरा नाम जोड़ने की एक प्रथा चल पड़ी है। सचाई यह है कि मेरी समझ में आज तक न शिल्प आया, न इस विशेषण की सार्थकता। बंगला में कलाकार को शिल्पी कहते हैं, हिन्दी में ये दो अलग व्यंजनाएं हैं। अपनी बात कहने का सब से प्रभविष्णु कोण और तरीका क्या होगा, इस का विवेक यदि कलाकार-धर्म से च्युत कर देता हो तो बात दूसरी है। जिसे अपनी हर कहानी एक कोरी शुरूआत लगे और अपनी हर बात के लिए उस का उपयुक्ततम कोण तलाश करना पड़े, उस की एक कहानी प्रायः ही दूसरी से अलग होगी। इसे शिल्पाग्रह नहीं कथ्य और प्रभाव की खोज, या विधा की संभावनाओं के साथ सफल-असफल प्रयोग कहना ज्यादा सही है।

लिखने के लिए लिखना, अपने ही स्वर पर बार-बार मुग्ध होने के लिए कुछ न कुछ बोलते रहना जैसा है—और दोनों बात पर नहीं, अंदाजेबयां पर जोर देते हैं। मैं ने इसे सिद्ध नहीं किया। 'साधने' की कला भी नहीं आती। कहानी मेरे लिए टुकड़ों-टुकड़ों में जिंदगी को जीने और समझने की प्रक्रिया है। स्वीकारने में संकोच भी नहीं है कि मेरे कुछ साथी—विशेषकर वे, जिन्होंने अभी
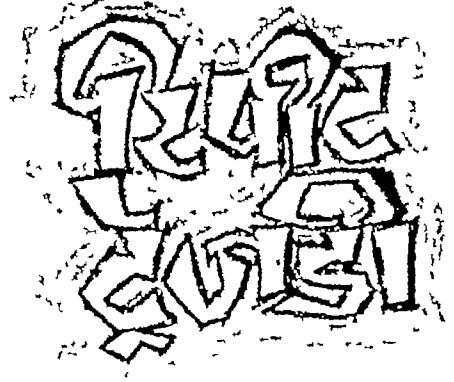
तीन-चार सालों से ही लिखना शुरू किया है, इस प्रक्रिया में मुझ से ज्यादा ईमानदार और सफल हैं। स्वभावतः अधिकांश अपने से पहले के दिये गये और स्वयं अपने बनाये संस्कारों और रूढ़ियों के पास आने में ही नष्ट हुआ है। कुछ ने इसे परम्परा-द्रोह का नाम दिया है। सामंती संस्कार, इस औद्योगिक युग में साथ भी कितना देंगे।

अपनी उम्र के हिसाब से मुझे जीने के अभ्यास या अनुभव है—इसी आधार पर मुझे 'पेशेवर जीवित रहनेवाला' नहीं कहा जा सकता। किसी भी 'ग्रोइंग' (विकासशील ?) लेखक को 'अभ्यास के हवाले' पर 'पेशेवर लेखक' कहना कुरुचि का प्रदर्शन करना है। दूसरों के जिये हुए पर मार्के-बेमार्के, सोचे-बेसोचे राय देनेवाले को 'पेशेवर उपदेशक' या साहित्य में आलोचक जरूर कहते हैं। औपचारिकता के इस युग में साफगोई बहुत बड़ा गुण है—लेकिन इस गुण की प्रशंसा कुछ को 'पेशेवर मुंहफट' बना देती है। लेकिन इस से क्या ? निहायत बदजबान, गाली-नवाज 'साधुओं' की बदबू सहते हुए भी बड़े-बड़े लोग सट्टे का नंबर पूछने जाते हैं, शायद उन्हीं का भाग्य खुल जाये। मुझे न सट्टे का शौक है, न ऐसे 'पेशेवर साधुओं' से कोई लगाव-शिकायत।

उसका नाम सरिता था और वह मेरे कमरे में बैठी रो रही थी तभी जीत ने आ कर घण्टी बजायी थी। इस लड़की को रविवार के दिन नहीं आना चाहिये था। पता नहीं है कि आज जाने कौन किस क्षण टपक पड़े। सोमवार या मंगलवार को भी तो आ सकती थी। एक बार मैं ने घण्टी अनसुनी कर दी, यों ही किसी लड़के-बच्चे ने बजा दी होगी या कोई गलत आदमी आ गया होगा . . नीचेवाले समझा देंगे तो लौट जायेगा। मैं भरसक हमदर्दी से उसे समझाता रहा—"सरिता यों रो-रो कर जी खराब मत करो। देखो हिम्मत से काम लो। शान्त हो कर सोचो कि क्या किया जा सकता है।" लेकिन सरिता का रोना रुकता ही नहीं था। कुछ देर चुप रहती, रूमाल से आंखें रगड़ती, फिर उस के होंठ कांपते, पलकें ऊपर-नीचे गिरतीं और चेहरा विकृत हो कर रुलाई में बदल जाता।

दोबारा घण्टी बजी तो मैं ने बड़े रूखे स्वरों में आसन बदला, "कौन आ मरा ?" उठ कर बाहर जाते हुए कहा—"अच्छा अब चुप हो जाओ देखो कोई आया है . . " जाते हुए कमरे का परदा ठीक कर दिया।

बरामदा पार करके दरवाजा खोला तो जरसी की दोनों बाहों का फंदा गले में लटकाये जीत खड़ा-खड़ा हंस रहा था—"अबे सुबह-सुबह रो रहा था ? इतवार सभी का होता है। हम किदवईनगर से चले आ रहे हैं..."

मैं ने चेहरे पर हंसी नहीं आने दी। पूछा—"अकेला है न ?"

"अकेला नहीं हूं, सभी लोग हैं—पम्मी, डाली सभी हैं। अजमलखां रोड पर शॉपिंग कर रहे हैं। मैं ने कहा—तुम इधर ही रहो, मैं अभी आता हूं उसे ले कर।"

"मैं तो अभी नहीं जा सकता," मैं ने उदास स्वर में कहा। बिना मुड़े ही सिर के पीछे की आंखों से देखा, परदा तो ठीक से तना है न, इसे कुरसी पर बैठी सरिता तो नहीं दीख रही। कहीं अकेले में और भी न रो रही हो।

"क्या मुसीबत हो गयी ?" उस ने उसी हल्के अंदाज में कहा—"मजाक है, नहीं चलेगा ? मैं उन्हें छोड़ कर आया हूं वहां। चल, जल्दी से ताला डाल। वहीं कहीं रेस्त्रां में खाना खायेंगे यार, बीबी-बच्चों के लिए कोई और दिन तो मिलता नहीं है। बाहर निकलने के लिए तरस जाते हैं। मैं ने सोचा, चलो आज ही घुमा लाते हैं। समय हुआ तो सिनेमा चलेंगे। अपनी तरफ तो आज बाजार-आजार सब बन्द रहते हैं, हम ने कहा सण्डे इधर ही सही.. "

मैं ने उसे बीच में रोक कर भीतर ले लिया, दरवाजा बन्द किया और धीरे से समझाने के स्वर में कहा—"तू समझ नहीं रहा। भीतर मामला बड़ा गंभीर है।"

अब वह चौंका—"खैरियत तो है ? कौन है ?"

"सरिता आयी है," मैं ने फुसफुसा कर कहा।

"कौन सरिता ?" उस ने रहस्य पूछने के अन्दाज में सवाल किया—"तेरी कोई फ्रेण्ड है ? चल उसे भी ले चलते हैं। इस में ऐसी डरने की क्या बात है ? पम्मी क्या तुझे जानती नहीं है ?" उस के चेहरे पर फिर मुसकान आ गयी—"या कुछ और प्रोग्राम है ?"

मैं ने उस के मजाक को दरगुजर कर दिया। जल्दी से कहा—"मेरी नहीं, मेरा वो दोस्त है न, विपिन, उसी की फ्रेण्ड है . . ." उस के कुछ पूछने से पहले ही कहा—"चल, तू भी अंदर आ न . ." पता नहीं, सरिता क्या सोचे .. मैं कहां बातों में लग गया ? उस बेचारी दुखी लड़की को यों अकेले छोड़ना गलत है। अपनी उपेक्षा समझेगी।

"नहीं, मैं चलूंगा। पम्मी अकेली घबरायेगी। तू आध-पौन घंटे में इस के साथ या अकेले 'दीपक' में आ जाना। तब तक हम लोग भी वहीं पहुंचते हैं।" लेकिन वह मेरे साथ कमरे में चला आया। शायद उसे भी उत्सुकता थी कि देखें, सरिता क्या और क्यों है . .

मेरा कमरा मेन आर्य-समाज रोड पर था और पहाड़ी नदी की तरह मोटरें, बसें, टैक्सियां, स्कूटर, साइकिलें, पैदल लोगों का सैलाब लगातार शोर करता गुजरता रहता था। अभी-अभी

एक बस घड़ड़-घड़ड़ करती इस तरह गुजरी थी कि डीजल की बदबू से जी मितलाने लगा था और मकान की घरेती दीवारों के खिड़की-दरवाजे सब खड़खड़ा उठे थे, कांच खनखनाने लगे थे। सड़क के किनारेवाले इन मकानों की जिन्दगी जरूर आठ-दस साल कम होगी। मैं अक्सर बाल-कनी में खड़ा होकर ठण्डी मुंडेर पर हाथ रखे, बसों-ट्रकों से उस का थरांना मालूम करता रहता, भीड़ को चौंककर देखता . . . ये पागल गति में पड़े लोग क्या जरा देर रुक कर भी नहीं सोचते कि कहां जाना है ? शीशे का एक चौंधा बालकनी तथा परदे के कटावदार त्रिकोण पर घूमता चला गया . . . कोई कार मुड़ी होगी।

"आ !" मैं परदा हटा कर पहले अंदर आ गया। सरिता वैसे ही कुरसी के हत्थे पर कुहनी और उस पर ठोडी टिकाये बैठी थी —उदास और विषण्ण। पीछे उस की अटैची खड़ी थी— मेज पर पर्स लेटा था और उस से पहले ही खिड़की की सलाखों से कटी धूप का ऊपरी सिरा था . . . मेज बहुत अस्त-व्यस्त थी।

मैं कुछ और गंभीर हो गया। आ कर पलंग के सिरे पर बैठ गया, जीत की ओर इशारा किया—"बैठो।"

कमरे की बोझिलता देख कर जीत भी सहम गया था। वह झिझकता-सा कुरसी पर बैठा तो मैं ने धीरे से कहा —"यह जीत है, मेरा बहुत अच्छा दोस्त . . . जैसे वहां विपिन था। और जीत, ये सरिता हैं—विपिन की फ्रेण्ड . "

जीत ने हाथ जोड़े तो सरिता ने उसी उदासीन निर्लिप्तता से हाथ उठा दिये—बिना उस ओर देखे। "विपिन की बहुत बातें सुनी हैं . . . आप कब आयीं ?"

वह गला खराश कर धीरे से बोली—"अभी आ रही हूं।"

उस स्वर से 'कब तक रहेंगी' का सवाल ठंडा हो गया। तीनों चुप हो गये। इस स्थिति से बचाने के लिए मैं ने सिगरेट निकाल कर मुंह में लगायी, एक जीत को बढ़ा दी। सफेद साड़ी और हलके हरे ब्लाउज में सरिता मुझे ऐसी लग रही थी जैसे वह किसी कोर्ट में बैठी हो। अब वह एक अंगुली के सुनहरे छल्ले को घुमा रही थी। शायद बहुत सचेत थी कि उस के पांव के पंजे और चप्पलें साड़ी से बाहर न झांकें। दिमाग के पीछे कहीं हलकी भनभनाहट सी सुनायी दी 'मुसम्मात सरिता, तुम्हें दो वर्ष की सख्त सजा और..' कभी कोर्ट में जा कर सुनूंगा वहां की भाषा क्या होती है।

"मैं तो यों ही चला आया था . . . सोचा इन्हें घुमा लाऊं," जीत ने जैसे इस घुटन से ऊब कर कहा। फिर सफाई दी—"सण्डे का दिन है...."

मुझे ध्यान आया, जाने कितने वर्षों से मैं सोच रहा हूं कि किसी सण्डे को ओखला जाऊंगा। हर बार कुछ न कुछ हो जाता है। जब कुछ नहीं होता तो आलस आ जाता है। अभी तक छट्टीवाला टिकट लेकर सारे दिन बसों में चक्कर नहीं लगाये। एक बार बहुत खूबसूरत लड़की आ कर मेरी ही सीट पर बैठ गयी थी। पौन घंटे तक उस की बांह दबाने का खेल चलता रहा था। मान लो, रात होती, बस की बत्तियां खराब होतीं और मैं उस बांह-दबी लड़की को चूम लेता ? जरूर शोर कर देती। इस खेल में बात-चीत या 'इस तरह' की घनिष्ठता नहीं होती, दोनों पक्ष एक-दूसरे से उदासीन और बहुत असम्पृक्त बने इस खेल को खेलते हैं, बस से उतरने के बाद मुड़ कर 'बिछुड़न' की प्रतिक्रिया भी नहीं देखते, तब तक खाली जगह दूसरा आ बैठता है, फिर बस के झटकों के बहाने नया खेल शुरू हो जाता है..

"आप चले जाइये . . . मैं . . ." उस के होंठ फिर कांपे। मैं चौंक कर सोचता रहा, सरिता ने मुझ से यह बात कही है या मुझे ऐसा लगा है।

"नहीं . . नहीं तुम बैठो," जीत ने दोनों हत्थों पर हाथ रखे और उठने के अंदाज में बोला—"मैं चलता हूं।"

अगर मैं इस के साथ खाना खा लेता हूं तो मेरे होटल का खाना बेकार जायेगा। कायदे से मुझे इन लोगों को निमंत्रित करना चाहिये। सरिता भी भूखी होगी।

"चल मैं नीचे तक छोड़ देता हूं।" मैं उठ खड़ा हुआ। इस का यहां रहना कुछ नहीं कर पायेगा। सरिता को भी अजब लग रहा होगा। सरिता को देख कर जीत को भी लगा होगा कि मैं उसे टाल नहीं रहा। पता नहीं, पम्मी से जा कर क्या भिड़ायेगा। मेरे कमरे के पर्दे पम्मी ने ही पसन्द किये और सिये थे। खिड़की-दरवाजों में लगा कर मुसकरायी थी। अकसर पर्दों के त्रिकोण उस की अर्थमय मुसकान में बदल जाते

है...

"रहने दो . . ."

"नहीं चल न . . . सरिता, मैं इसे छोड़ कर आता हूं।" मैं ने धीरे से परदा एक ओर उठा दिया।

"अच्छा सरिताजी, फिर मुलाकात होगी . . ." उस ने सिगरेट फंसी उंग-लियों से ही 'नमस्ते' कहा।

सरिता ने हाथ जोड़ दिये—पूरी आंखें उठा कर उस ओर देखते हुए। मैं बाहर देखने लगा। मान लो, सरिता घर वापस न गयी तो इस छोटी-सी अटैची में कितने कपड़े होंगे?

बाहर आ कर ऐसा लगा जैसे कोई बहुत गमगीन फिल्म में तीन घंटे गुजार कर हाल से बाहर आये हों। सड़क और फलवालों की आवाजें नये सिरे से सुनायी देने लगीं. सामने 'यूनिवर्सल चिट फंड' के विज्ञापनवाली छत पर एक औरत कपड़े सुखा रही थी। नीचे खिड़की में खड़ा बच्चा गुब्बारेवाली पीपनी बजा रहा था।

दरवाजे पर उस ने कहा—"तू वापस जा! वह अकेली बैठी है।" गौर से देखा उस के चेहरे पर मजाक नहीं था। "चला जाऊंगा। नीचे तक छोड़ आता हूं तुझे। मेरी ओर से पम्मी भाभी से माफी मांग लेना।"

उस ने कुछ नहीं कहा। तीन-चार सीढ़ियां उतर कर बोला—"तेरा कमरा यार, बड़े मौके की जगह है। मन होता है दोबारा बैचलर हो जाऊं और यह कमरा ले लूं।"

"शोर बहुत है," मैं ने उस की बातों पर टिप्पणी नहीं की . . "पहले कुछ दिनों तो लगता था कि प्लेटफार्म पर सो रहा हूं। रात में स्कूटरों की आवाज तो नेजे की तरह धंसती चली जाती थी। अब तो. ."

हम लोग नीचे आ गये। "उस विज्ञापनवाली जगह ऐप्लीकेशन भेज दो?"

"अभी नहीं। भेजूंगा," मैं ने जवाब दिया। कहा—"भाभी से कहना, कोई अच्छा-सा बेड कवर दीखे तो खरीद लें।" कमरे में बैठी सरिता को शायद खयाल भी नहीं आयेगा कि चारपाई पर बेड कवर नहीं है।

"तुझे घर आ कर लाना होगा। यहां से खरीद भी ले जायें तो तुझे देंगे कैसे?"

"ले आऊंगा यार, लेकिन वहां से आने की मुसीबत है। यहां की बसें खुदा जाने कभी ठीक होंगी भी या नहीं," मैं अतिरिक्त चिन्ता से बोला।

"बसों का क्या है, हमें तो कोई सेकेण्ड-हैण्ड गाड़ी मिले तो काम चले।"

उस ने विदा के लिए मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"बहुत पैसे हो गये हैं, मुझे उधार दे दे।" मैं ने डरते-डरते ऊपर अपने कमरे की ओर देखा।

"ले," उस ने जेब से मुट्ठी भर मूंगफलियां निकाल कर मेरे हाथ में रख दीं और मेरी मुट्ठी बन्द कर दी। "अच्छा, अब चलें . ."

"अच्छा यार जरूर चलता, लेकिन . . "

लेकिन वह कुछ हिचका, बड़े कैजु-अली पूछा—"विपिन की शादी कब है?"

"कल ।"

थोडी देर दोनों चुप, एक-एक मूंगफली छील-छील कर खाते रहे । मैं ने चिंता से पूछा—"यार, कुछ बता न, रास्ता तेरे साथ भी तो यही हुआ था ।"

इस बार बड़ा-सा मुंह फाड कर एक छिला दाना भीतर फेंकते हुए वह जोर से हंस पडा और हंसता रहा । मुझे लगा, जब से मेरे कमरे में गया था तभी से इस हंसी को टाल रहा था । कहा—"अबे इस में हंसने की क्या बात है?"

वह उसी तरह हंसता रहा, और पसलियों पर हथेली रख कर उठती हंसी को दबाता रहा । किसी तरह बीच-बीच में तोड कर बात पूरी की—"कोई बात नहीं मुझे यों ही हंसी आ रही थी . सचमुच कोई बात नहीं ।" लेकिन फिर भी जब हंसी नहीं रुकी तो ऊपर हाथ हिलाता जल्दी-जल्दी चल दिया ।

मैं ने आश्चर्य से वहीं खड़े-खड़े उसे रोका—"अरे, सुन तो सही . . . एक जरूरी बात है, ठहर, सुन ।"

"नहीं, पम्मी और डाली राह देख रही हैं ." रूमाल मुंह पर रख कर हंसते हुए बडे-बडे कदम रखता जीत मुझे देर तक दिखायी देता रहा ।

मैं ने एक बार ऊपर अपनी खिड़की की ओर देखा और मूंगफली खाता रहा । ये पन्द्रह-बीस मूंगफलियां खा कर ही जाऊंगा . साला हंस किस बात पर रहा था ? और अनजाने ही मैं खुद मुसकराने लगा । फिर झटके से चेहरे को गंभीर कर लिया ।

बिटिया रानी मां के साथ किताब पढ़ रही थीं । एक जगह अंगुली रख कर मां ने पूछा, "बताओ तो बिटिया, क्या लिखा है ?"

"तुम्हें नहीं मालूम मम्मी ?"

"मुझे तो पता है, पर मैं यह मालूम करना चाहती हूं कि तुम्हें भी पता है ?"

"मुझे मालूम है," बिटिया ने टालने के स्वर में कहा ।

"तो हमें बताओगी ?"

"ओ हो मम्मी ! जब तुम्हें पता है कि यह क्या है और मुझे पता है कि यह क्या है, तो फिर पचड़े में पड़ने से क्या फायदा ?"

*

एक स्टेशन पर छह वर्षीय जैक ने स्टेशनमास्टर से पूछा, "दूसरी गाड़ी कितने बजे आती है ?"

"मैं तुम्हें पहले ही चार बार बता चुका हूं कि वह चार : चौवालीस पर आती है ? बार-बार क्यों पूछता है ?"

"क्योंकि चार : चौवालीस बोलते समय जब आप के गलमुच्छे हिलते हैं, तो मुझे बड़ा मजा आता है ।"
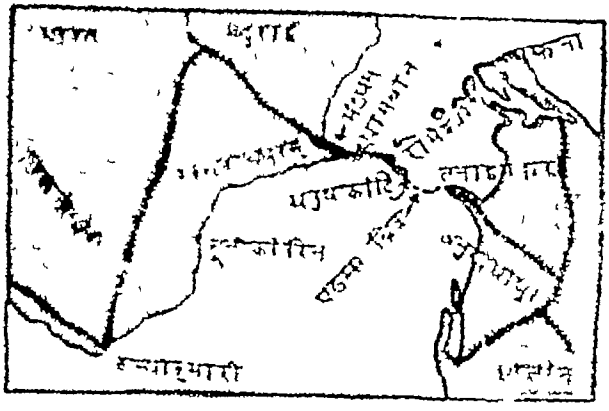
सपनकुमार

दक्षिण भारत २२ और २३ दिसंबर, १९६४ को कभी न भूल सकेगा। ये वे वेदनापूर्ण दिन थे जब दक्षिण भारत ने अपने इतिहास का संभवतः सब से भयंकर तूफान देखा। पाम्बान या पंबन के पास रामेश्वरम टापू को भारत से जोड़ने के लिए ब्रिटिश युग में जो एक मील लंबा पुल बनाया गया था वह इंजीनियरी का एक आश्चर्य ही था। वह पुल इस तूफान में समूचा बह गया। निशानी के तौर पर कहीं-कहीं अवशेष बच गये हैं।

रामेश्वरम शंख के आकार का टापू है। जब उस एक मील लंबे पुल पर से रेल गुजरती थी, तो दोनों ओर लहराते समुद्र का सौंदर्य इतना लुभावना लगता था कि उस विशाल जल-राशि का भय भी आनंददायक रोमांच में परिवर्तित हो जाता था। कहा नहीं जा सकता कि यह पुल फिर से कब बन सकेगा।

रामेश्वरम २४ वर्ग मील का टापू है। एक युग था जब न केवल रामेश्वरम बल्कि लंका द्वीप भी भारत के साथ जुड़ा हुआ था। बाद में धरती के आन्तरिक परिवर्तनों के कारण पहले लंका जुदा हुआ और फिर रामेश्वरम। रामेश्वरम को एक मील लंबे रेलवे पुल ने भारत के साथ इतनी अच्छी तरह मिला दिया गया था कि उस के और भारत के बीच समुद्र की आड़ होने का अहसास ही न होता था। काश, वह तूफान न आया होता!

धनुषकोटि दक्षिण रेलवे का अंतिम छोर है। रामेश्वरम से धनुषकोटि पैदल जाने में दो घंटे से कम ही समय लगता होगा लेकिन रेल से यात्रा

करने पर यह सफर प्रायः चार घंटे में हो पाता है। रेल चक्कर लगा कर जाती है। इस रेल-यात्रा में प्राकृतिक सौंदर्य के जो दर्शन होते हैं, उस से कश्मीर भी एक बार फीका लगने लगता है।

पामबान से रामेश्वरम पहुंचने के लिए रेल समुद्र पर से गुजरती है। रामेश्वरम से धनुषकोटि का रेल-मार्ग भी बीच-बीच में समुद्र के अन्दर से जाता है। समुद्र कहीं-कहीं रेलवे पुल के इतने पास आ गया है कि उस की लहरों की फुहार रेलगाड़ी को छूती है। वही समुद्र २२-२३ दिसम्बर, १९६४ को पूरे धनुषकोटि का भक्षण कर गया।

जेम्स फर्ग्युसन ने, जो प्राचीन भारतीय स्थापत्यकला के प्रसिद्ध अध्ययनकर्ता हैं, कहा है कि रामेश्वरम का मंदिर द्राविड स्थापत्य कला का एकमात्र ऐसा नमूना है, जो पूर्ण है। हमें इसी से तसल्ली करनी चाहिये कि इस तूफान में रामेश्वरम के मंदिर को विशेष क्षति नहीं पहुंची है। मीनाक्षी के मंदिर को अपवाद मान लें तो दक्षिण भारत का शायद ही कोई ऐसा मंदिर होगा जो रामेश्वरम के मंदिर की बराबरी कर सकता हो। कहा जाता है कि यह मंदिर साढ़े तीन सौ वर्षों में पूरा हो पाया था। लंका के एक राजकुमार ने इस का निर्माण करवाया था। मंदिर की विशालकाय शिलाएं लंका से ही तराश कर लायी गयी थीं। न केवल दीवारों पर, बल्कि छतों पर भी विराट शिलाएं लगायी गयी हैं। कई छतें पचास

अच्छा किया

हर स्वप्न-भीने गीत को
तुम ने मिटाया
औ सुनाया जिन्दगी को
घिस-पिटी सच्चाइयों का मर्सिया
तुम ने बहुत अच्छा किया

ताजे गुलाबों की
महक सा
जान देना भूल थी
जीवन महज रोमांस है
यह मान लेना भूल थी
होता रहा, होता रहा
हर काम मेरा अनकिया
तुम ने बहुत अच्छा किया

कागज पड़े हैं कुछ
बहुत नजदीक
किन्तु विचित्र-से
प्यार था तुम को
बहुत मुझ से
यही लगता तुम्हारे पत्र से
पर की समझदारी बड़ी तुम ने
हृदय केवल मिलें जिस में
उस अनूठे प्यार को
तुम ने अमर बतला दिया
नटखट प्रिया
तुम ने बहुत अच्छा किया

—शेरजंग गर्ग—

फुट से भी ज्यादा ऊंची है ।

इस मंदिर के पीछे ही शंकराचार्य का नया मंदिर निर्मित हुआ था। सुखद आश्चर्य है कि इस मंदिर को भी तूफान में विशेष नुकसान नहीं हुआ है, यद्यपि धनुषकोटि लगभग पूरा ही पानी में डूब गया और रामेश्वरम भी आधे से ज्यादा नष्ट हो गया है । करोड़ों रुपयों के नुकसान के अलावा सैंकड़ों लोग मारे गये । असंख्य परिवारों द्वारा मजबूरन उठाया गया यह नुकसान कभी पूरा न हो सकेगा।

अधिकांश धनुषकोटि रेल और बंदरगाह के कर्मचारियों तथा चुंगी विभाग के कर्मचारियों से बसा हुआ है, अथवा था। सामने ही श्रीलंका का तलाइमनार बंदरगाह है। दोनों के बीच जहाज चलते हैं। धनुषकोटि यात्रा-स्थल है लेकिन तस्कर व्यापार के केंद्र के रूप में उस की कहीं ज्यादा प्रसिद्धि है।

धनुषकोटि वह जगह है, जहां भारत की सब से महंगी बैलगाड़ी चलती है। सेतुबंध, जो धनुषकोटि से सिर्फ एक मील दूर है, पहुंचने के लिए बैलगाडी ही मिलती है। लेकिन उतनी यात्रा के लिए कम से कम पांच रुपये देने पड़ते हैं। लंका की दिशा में दृष्टि दौड़ाने पर छिछले समुद्र और रेतीले टीलों की श्रृंखला-सी दिखायी देगी। कहा जाता है कि रामचंद्रजी ने यहां तैरते पत्थरों का पुल बनाया था। मुमकिन है, उस जमाने में यहां का समुद्र और भी छिछला रहा हो और रामचंद्रजी ने यहां पत्थरों की कोई पगडंडी निर्मित की हो लेकिन सेतुबंध अब एक वीरान जगह है।

मीठे पानी का अभाव तो धनुषकोटि से ही प्रारंभ हो जाता है। यहां गरजता समुद्र जितना डरावना है, उतना ही खौफ शायद उन भिखारियों का भी है जिन के कुनबे के कुनबे सेतुबंध में इसलिए बस गये हैं कि धर्म के नाम पर लोग उन्हें मुफ्त का खाना देते हैं। झोपड़ियां ही सेतुबंध के होटल हैं। इन के मालिक उन भिखारियों की तरफदारी करने का कोई मौका नहीं चूकते। वे तो चाहते ही हैं कि बेचारे (!) भिखारियों को श्रद्धालु जन अधिक से अधिक भोजन करायें। सेतुबंध को अंगरेजों ने आदम का पुल (एडम्स ब्रिज) नाम दिया था।

धनुषकोटि को आधुनिक बंदरगाह के रूप में विकसित करने के लिए १९१३ में जो योजनाएं बनी थीं, उन्हीं के अनुसार रामेश्वरम तक आयी हुई रेलवे लाइन को वहां तक ले जाया गया। कई कारणों से (मुख्यतः प्राकृतिक कारण) धनुषकोटि एक सामान्य बंदरगाह का भी महत्व प्राप्त न कर पाया।

"एक रोटी और लाना वेटर !"
"और कुछ भी लाऊं साहब ?"
"एक पेपरवेट भी ले आना, क्योंकि पिछला सैंडविच उड़ गया था।"

उग्रसेन गोस्वामी

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन का एक प्रेरक प्रसंग

एक कारवाँ एक सफ़र

२३ अप्रैल, १९४५ को रंगून में खबर पहुंची कि जापानी फौज और आजाद हिन्द फौज के पांव उखड़ गये हैं और अंगरेजी फौजें रंगून में आने ही वाली हैं। आजाद भारत की अस्थायी सरकार का मुख्य कार्यालय तब रंगून में ही था। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी तब वहीं थे। नेताजी के साथियों ने उन्हें मजबूर किया कि वे रंगून से चले जायें, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि नेताजी बंदी बना लिये जायें।

परन्तु आजाद हिन्द फौज के पास अपनी मोटर-लारियां तो थीं नहीं। जापानियों से लारियां देने के लिए अनुरोध किया गया। शुरू में तो उन्होंने आनाकानी की, परन्तु बहुत कुछ कहने-सुनने और नेताजी के व्यक्तिगत हस्तक्षेप करने पर दूसरे दिन उन्होंने आजाद हिन्द फौज के लिए चार कारों और एक दर्जन लारियों का प्रबंध कर दिया। २४ अप्रैल की शाम को आजाद हिन्द फौज के कोई ढाई सौ व्यक्तियों का काफिला बैंकाक की ओर रवाना हुआ जो वहां से तीन सौ मील परे था। काफिले में रानी झांसी रेजीमेंट की रंगून में स्थित लगभग सौ महिलाएं भी थीं।

तब कौन जानता था कि तीन सौ मील का यह रास्ता तय करने में पूरे तीन सप्ताह लग जायेंगे और दुश्मन के आग तथा मौत उगलते हवाई जहाजों

के नीचे बर्मा और थाईलैंड की सीमा पर वर्षा के कारण दलदल घने जंगल में से भूखे-प्यासे गुजरना होगा। २५ अप्रैल की सुबह को यह काफिला 'था' नाम के गांव से कुछ मील इधर रुक गया। पौ फटने लगी थी, इसलिए खुली सड़क पर दिन में चलना दुश्मन के हवाई जहाजों को अपने ऊपर बम-बारी करने का न्योता देने के बराबर था। गोधूलि होते न होते काफिला फिर बढ़ चला, परन्तु 'था' गांव तक पहुंचते-पहुंचते इतनी वर्षा हुई कि सारी धरती में कीचड़ और पानी भर गया। काफिला वर्षा के पानी को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था कि तभी नेताजी की कार गलती से पानी के एक गड्ढे में चली गयी और डूबने लगी। परंतु इस से पहले कि कोई उन की सहायता को पहुंचे, वे फुर्ती से कार से बाहर निकल आये और बाकी काफिले को उस गड्ढे से बचाने के लिए संकेत देने लगे। नेताजी के नेतृत्व ने काफिले को एक गंभीर कठिनाई से उबार लिया। उन की कार को बाहर निकाला गया और फिर काफिला आगे बढ़ा। दलदली जमीन पर चलता हुआ यह काफिला बड़ी कठिनाई से 'था' नदी पर पहुंचा। परन्तु यहां तो जापानियों की सैकड़ों लारियों और कितने ही व्यक्तियों की भीड़ जमा हो रही थी। ये लारियां और व्यक्ति रातोंरात ही नदी के उस पार ले जाने थे, क्योंकि अगली सुबह को दुश्मन के हवाई जहाजों के लिए सैकड़ों लारियों को निशाने के लिए प्रस्तुत करना मूर्खता ही थी। तब से बड़ी बात यह कि वहां पर केवल एक ही नाव थी, जिस से सब को और लारियों को दूसरे किनारे पहुंचाया जाना था। रात भर में ऐसा हो पाना संभव नहीं था। अतः नेताजी ने निश्चय किया कि रानी झांसी रेजीमेंट की महिलाएं गरदन तक ऊंचे पानी में से हो कर दूसरी ओर जायें। ये वीर ललनाएं बिना किसी हिचक के पानी लांघ कर दूसरी ओर जा पहुंचीं। नेताजी ने तब तक नदी पार न की जब तक कि अन्य लोग किनारे पर न पहुंच गये। तब तक सुबह हो गयी थी। सभी को पास के गांव के मंडप में शरण लेनी पड़ी, क्योंकि दुश्मन के हवाई-जहाजों ने आग और मौत बरसाने का अपना काम शुरू कर दिया था।

शाम को काफिला सितांग नदी की ओर चला। उस रात को सितांग नदी पार न की जा सकी, क्योंकि हजारों जापानी पहले ही पार जाने के लिए वहां जमा थे। यहां भी एक ही नाव उपलब्ध थी और इसे पैदल भी पार नहीं किया जा सकता था। दूसरी रात को आदमी तो पार हो गये परन्तु सिवाय नेताजी की कार के कोई दूसरी लारी दूसरी ओर न पहुंचायी जा सकी।

नेताजी सब से अधिक ध्यान रानी झांसी रेजीमेंट की लड़कियों का रखते थे और फिर अपने दूसरे साथियों का। अपनी तो उन्हें कोई चिंता ही नहीं थी। यदि वे चाहते तो कार में आगे जा सकते थे, परन्तु उन महान आत्मा को यह कैसे गवारा हो सकता था। जब तक लड़कियों को और उन के दूसरे सभी साथियों को परिवहन की सुविधाएं

न मिलें, तब तक उन्होंने कार में सफर करने से इनकार कर दिया। जो व्यक्ति उन की एक आवाज पर जीवन का मोह छोड कष्टों और कठिनाइयों की दल-दल में कूद पड़े थे, उन्हें वह सूरमा भला इस हालत में छोड कर स्वयं कार में कैसे जा सकता था!

सफर का सब से कष्टदायक भाग अब शुरू होना था। अब सारे काफिले को पैदल मार्च करना था। मेजर जनरल जमान कयानी को पार्टी का नेतृत्व सौंपा गया और यह काफिला रात के अंधेरे में आगे बढ चला। नेताजी टाप बूट पहने थे। टाप बूट पहन कर लंबा सफर करना बहुत कठिन होता है, परंतु नेताजी उन्हीं में चलते रहे। कितने लोगों के पावों में तो पहली रात के सफर में ही छाले पड़ गये थे। दूसरी रात के सफर में उन की स्थिति और भी बिगड गयी। दूसरी रात के सफर के बाद नेताजी के पाव भी छालों से भर गये थे। परन्तु अभी तो गंतव्य बहुत दूर था।

तीसरी रात को सफर शुरू होने से पहले जापानियों द्वारा भेजी गयी तीन-चार लारियां इस काफिले के लिए पहुंच गयीं। रानी झांसी रेजीमेंट की लड़कियों को और कुछ अन्य साथियों को उन लारियों द्वारा भेज कर नेताजी शेष के साथ छालों भरे पावों से आगे बढ चले। "जब तक मेरे एक भी साथी को पैदल चलना पड़ेगा, मैं कभी गाडी में नहीं बैठूंगा," नेताजी की इस दृढ प्रतिज्ञा के आगे उन के उन शुभचिंतकों की एक न चली जो चाहते थे कि नेताजी गाड़ी में चले जायें। सारी रात नेताजी अपने साथियों के साथ चलते और दिन को कोई सुरक्षित स्थान ढूंढ कर मिट्टी में ही सो जाते। भारत की अस्थायी सरकार का प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री यह सूरमा अपने साथियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने में स्वयं को भी भूल गया था। उन्हें केवल इसी बात की चिंता थी कि वे किसी प्रकार अपने आदमियों को यहां से सुरक्षित निकाल कर ले जायें। पांच दिन की इस कठोर पैदल-यात्रा के बाद जापानी शेष के लिए और लारियां जुटा पाये। १ मई को यह काफिला रंगून से १०० मील दूर मुलमेन नगर में पहुंचा। मुलमेन में लगातार बमबारी होने के कारण दल को पांच दिन तक वहीं रुकना पड़ा। ६ मई को पूरी तरह से पत्तों से ढकी एक रेलगाडी इस दल को बैंकाक की ओर ले चली। चींटी की चाल से चलती तथा जहां-तहां रुकती यह गाड़ी १४ मई को दो मील दूर बैंकाक पहुंच पायी। इस बीच कितनी ही बार यात्रियों को दुश्मन के हवाईजहाजों की मार से बचने के लिए गाडी छोड़ कर जंगलों में छिपना पड़ा।

शीला : तुम आदमी हो या चूहे?
मदन : अगर मैं चूहा होता तो डर के कारण इस समय तुम मेज पर खडी हो कर 'बचाओ, बचाओ' चिल्लाती होतीं।

विष्णु प्रभाकर

२५ मई, १९६४।

आज के अखबारों में यह समाचार प्रमुख स्थान पर छपा है : "रात को नेहरू पार्क में कुलदीप नाम के एक व्यक्ति ने प्रदीप के संपादक श्री प्रदीपकुमार पर छुरे से आक्रमण किया। वह मुलतान का कुख्यात दुश्चरित्र व्यक्ति कहा जाता है। उस ने झूठ बोल कर एक दुकान भी अपने नाम एलाट करा ली है। प्रदीपकुमार मुलतान के सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला दीनदयाल के पुत्र हैं। वे इस बात को जानते हैं, इसलिए कुलदीप कई दिनों से उन को परेशान कर रहा था। सुना है, उस ने उन के कालेज की प्राध्यापिका श्रीमती शतरूपा को भी परेशान किया ..."

विपिन इस समाचार को पढ़ लेता है, लेकिन उसे तनिक भी आश्चर्य नहीं होता। कुछ क्षणों के लिए वह अंतर्मुखी हो उठता है। कुछ तसवीरें, कुछ घटनाएं स्तब्ध परछाइयों की तरह उस की आंखों में डूबने-उतराने लगती हैं।

२१ मई, १९६४!

सूर्य अभी-अभी अस्त हुआ है और जहां विपिन बैठा है, वहां धीरे-धीरे अंधेरा घिरता आ रहा है। उस के भीतर भी उदासी का अंधेरा है। वह कहीं दूर, बहुत दूर भाग जाना चाहता है इसलिए उस का मन बहुत-कुछ सोच रहा है, मानो चिंतन उस की पनाहगाह हो। मात्र सोचना भागना ही तो है। जहां वह बैठा है, वह पार्क है और अंधेरे के साथ-साथ बहुत-से साये उस के आसपास मंडराते हैं। अजीब-अजीब आवाजें उभर कर आती हैं जो उस के कानों से हो कर वक्ष में बज उठती हैं।

वह एकांत चाहता है इसलिए इन आवाजों को सुनने से इनकार कर देता है। परंतु आवाजें उस के इनकार को स्वीकार नहीं करतीं। वह उठ कर शेफालिका के कुंजों की ओर जा निकलता है। पुराने झरे पत्ते उस के पैरों के नीचे आ कर हलकी चौंका देने वाली आवाजें करते हैं, पर वह बढ़ता ही जाता है। उधर रोशनी कुछ कम है। उस मलिन आलोक में शेफालिका के फूल भी जैसे अस्तित्व खो

बैठे हों। कितने कोमल हैं ये फूल! डर लगता है कि हाथ लगाते ही ये मुरझा जायेंगे लेकिन व्यापारी हैं कि इन के पीले वर्णों को केसर कह कर बाजार में चलाते हैं। इतने सुन्दर, इतने प्यारे पुष्प और मनुष्य उन का भी व्यापार करता है!

अचानक यह विचार विपिन के मन में कौंध जाता है कि व्यापार सौंदर्य और सुकुमारता को ले कर ही तो होता है। नहीं, नहीं, वह चीख उठेगा। परन्तु वह चीखता नहीं, एक बेंच पर बैठ जाता है। उसी समय कुंज के समीप एक-दूसरे में उलझे दो साये कसमसाते हैं। एक क्षण के लिए वह ठिठकता है। एक अत्यंत कामुक स्वर उस के शरीर में झुर-झुरी उठा जाता है। यह एक स्त्री का स्वर है, "डार्लिंग, किस मी!"

दूसरा स्वर एक क्षण बाद मानो कहीं बहुत दूर से उभरता है, "ठहरो, ठहरो, डियर! आर्ट पेपर के इंपोर्ट लाइसेंस की डेट खत्म होने वाली है।"

"कल रात कहाँ तो गयी थी। लेकिन यहां शेफालिका के कुंजों में क्या तुम्हें व्यापार की बात ही सूझनी है? अब तुम मुझ से शादी कर लो। पत्नी को छोड़े तो तुम्हें तीन वर्ष हो चुके हैं।"

पुरुष मानो व्यन्ग्य से हंसता है: "शादी यानी मैरेज! नो, नो, नो मैरेज! शादी के बाद तुम यहां नहीं आ सकोगी। पत्नी बन जाओगी।"

स्त्री के स्वर में दृढ़ता है, "क्यों न आ सकूंगी? मैं आऊंगी, मैं सब काम करूंगी। डार्लिंग, प्लीज, मैं आ सकूंगी।"

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा जाता है। फिर पुरुष का स्वर उभरता है, "तुम ने कागज के व्यापारियों से बातें की थीं? क्या वे आर्ट पेपर पहले के भावों पर खरीद लेंगे?"

स्त्री के स्वर में शिकायत है, "पुरुष केवल व्यापार की भाषा जानता है। सदा की तरह इस बार भी 'सदीप' की केवल सौ प्रतियां आर्ट पेपर पर छपेंगी। शेष सब न्यूजप्रिंट पर। क्या तुम डरते हो?"

जैसे यह चुनौती हो। सरसराहट की हलकी सी आवाज होती है। विपिन

अनुभव करता है कि पुरुष ने जैसे स्त्री को कस कर भींच लिया है। कहता है, "मैं डरूंगा ? मैं अंगरेजों की गोलियों के नीचे से निकल चुका हूं। पिताजी छह बार जेल गये हैं।"

"और तुम ?"

"तुम्हारी बाहों की जेल ही मेरी जेल है।"

"ओह डार्लिंग !"

फिर एक कामुक कहकहा उठता है। ऐसा कि अंधकार और सन्नाटा दोनों सिहर-सिहर जाते हैं। विपिन उन सायों से दूर भाग जाना चाहता है क्योंकि चांद ऊपर आ गया है और उस की पीली मलिन रोशनी उदासी को और भी गहरा कर रही है। वह दोनों सायों को पहचानता है। पुरुष का नाम प्रदीप है जो मुलतान के सुप्रसिद्ध देशभक्त लाला दीनदयाल का आवारा बेटा है। आज वह एक प्राइवेट कालेज का मालिक और एक मासिक पत्रिका का संचालक-संपादक है। आर्ट पेपर का लाइसेंस उस के पास है, जिसे वह ब्लैक में बेचता है।

नहीं, नहीं, वह उस के बारे में नहीं सोचेगा। दुनिया ऐसे ही चलती है। ऐसे ही चलती रहेगी। और वह रोशनी में आ जाता है। उस के सामने नये बाजार की आलीशान दुकानें नियोन लाइट में दमक रही हैं और पार्क की झाड़ियों में छायाएं हैं। उदासी का वातावरण एक मादक गंध में डूबता जा रहा है। विवश-सा वह फिर एक बेंच पर बैठ जाता है। तभी अनुभव करता है कि जैसे एक साया ठीक उस के पास बेंच पर आ गया है। वह कांप जाता है। सचमुच एक पुरुष उस के पास आ बैठा है। उस के हाथ में एक पत्र है। वह कहता है—जरा पढ़िये।

कई तहों वाला वह पत्र सरकार के शरणार्थी विभाग से आया है। उस में किसी कुलदीपसिंह के नाम आदेश है—तुम को दुकान नंबर ३० अलाट की जाती है, इत्यादि।

पत्र पढ़ कर विपिन ने पूछा, "तुम को दुकान मिल गयी ?"

"जी, क्या करूं ले कर ?"

विपिन को विस्मय होता है, "क्यों ?"

पुरुष उसी उदासी से कहता है, "जी, रहने के लिए घर नहीं। गांठ में पैसा नहीं। पत्नी थी, वह राह में मर गयी। बस अब दो बेटियां हैं। पर न उन का पेट भर पाता हूं, न स्कूल भेज पाता हूं।"

एक सांस में वह बहुत-कुछ कह जाता है। वह मुलतान का रहने वाला है। कभी बहुत आवारा था। सारा मुलतान उस से घृणा करता था।

कहते-कहते वह दीर्घ श्वास खींचता है—'क्या कहूं भाई साहब ! अचानक एक दिन वह हो गया जो सोचा भी नहीं सकता था। १९४२ के विद्रोह के दिनों की बात है। सहसा एक दिन लाला दीनदयाल ने मुझे बुलाया और कहा, 'कुलदीप, आज मुलतान की इज्जत का सवाल है।'

"मैं चकित-सा उन की ओर देखता रहा। कुछ समझ न सका। वे बोले, 'तुम्हें अचरज होता है क्योंकि तुम आवारा लड़के हो। लेकिन मैं जानता हूं कि आज तुम ही हमारी रक्षा

कर सकोगे ।'

"गर्व से मेरा सीना तन गया । बोल उठा, 'मुझे क्या करना होगा ?'

"लालाजी बोले, 'कुलदीप, आज कचहरी पर तिरंगा फहराना है । तुम जानते हो, मुलतान की जेल देश-दीवानों से भरी है । मैं चाहता हूं कि वे जान लें कि मुलतान उन के साथ है । झंडा फहराना चाहिये । फौज है लेकिन . . .' मैं चीख उठा, 'मुझे फौज की चिंता नहीं है । आप ने मुझे इस लायक समझा है तो आप को लज्जित नहीं होना पड़ेगा, झंडा फहरेगा ।'

"और झंडा फहरा । गोली भी चली । देखिये, दाहिने हाथ पर यह निशान है ।"

कुलदीप ने हाथ ऊपर उठा कर दिखाया । निशान काफी गहरा है । विपिन विमुग्ध-सा बोल उठा, "फिर तुम जेल भी गये ?"

"जी, तीन वर्ष वहां रहा । पर वह सजा नहीं थी । मेरा पुनर्जन्म था । लेकिन भाई साहब, उन्हीं लाला देवीदयाल का बेटा प्रदीप है । वह आज बड़ा आदमी है । पत्नी को छोड़ चुका है । ब्लैक करता है । सरकार की आंखों में धूल झोंकता है । एक खूबसूरत लड़की उस के पास है । अपनी काली अमीरी से अब वह मुझे भी खरीदना चाहता है ।"

उत्सुक सा विपिन बोला, "क्या मतलब ?"

"मुझ से कहता है, दुकान मुझे दे दो । दो हजार रुपये तुरंत ले लो और फिर सौ रुपये प्रति मास लेते रहो । ठीक है, कभी साथी रहा हूं पर अब तो मैं सब-कुछ पीछे छोड़ आया हूं ।"

विपिन फिर कुलदीप की ओर देखता है । वह कुछ कहना चाहता है पर उसे झिझक होती है । कुलदीप की दुकान है, वह जो चाहे करे । कुलदीप कहे जा रहा है, "भाई साहब, दुकान मुझे इसलिए मिली है कि मैं उस का उपयोग करूं । किसी को किराये पर उठाना तो ब्लैक होगा । मैं ब्लैक नहीं करूंगा ।"

विपिन अब भी कुछ नहीं कह पाता । उस की ओर देखता रहता है । फिर एकाएक किसी बालक के रोने का स्वर सुनायी देता है । कुलदीप हड़बड़ा कर उठता है और उसी ओर चला जाता है । विपिन की उदासी और भी गहरा उठती है । दिल में तीखा दर्द उमड़ता है । एक सड़ांध-सी उस के नथुनों में आ भरती है । उसे लगता है जैसे उस के चारों ओर दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध है ।

२४ मई १९६४ ।

विपिन अनुभव करता है कि उस के अंतर की उदासी निरंतर गहराती जा रही है । चारों ओर से उठती बोझिल सडांध से उस की शिराएं फटने लगती हैं और वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ है । करने के लिए प्रमाण चाहियें । और प्रमाण हैं कि हो कर भी अशरीरी हैं, पकड़ने में ही नहीं आते । भ्रष्टाचार एक ऐसा खेल है कि जो उस में जीतता है, वह ऊंचा

ही रहता है और जो हारता है वह खीझ कर आचार की आड लेता है, आन्दोलन करता है।

इसी चिन्ता में ग्रस्त विपिन फिर अपने को उसी पार्क में पाता है। सूर्य को अस्त हुए काफी समय वीत चुका है। उस उदास, शिथिल, रक्तिम सध्या को देख कर उसे लगता है जैसे सूर्य ने आत्महत्या कर ली है। जहा वह बैठा है, वहा से शेफालिका के कुज बहुत दूर नही हैं। सहसा कुछ आवाजें तेज हो कर उस के कानो से आ टकराती हैं। ये परिचित स्वर हैं। उसी स्त्री का कामुक स्वर उभरता है, "डार्लिंग, तुम समझते क्यों नही ? वे तुम्हारे दोस्त हैं।"

दूसरा स्वर वेहद रूखा और तेज है, "नहीं, वह अब मेरा दोस्त नहीं है। उस का और मेरा रास्ता अलग-अलग है।"

"नहीं डार्लिंग, दोस्त सदा दोस्त रहते हैं। और देखो अब तो मैं भी तुम्हारी दोस्त हू। हूं न, डार्लिंग, प्लीज ! यह तुम्हारे लाभ की बात है। तुम दुकान उसे दे दो। तुम आखिर उस का क्या करोगे ? तुम कहोगे तो तीन हजार भी दिला सकती हू और सौ के स्थान पर प्रति मास तुम्हें सवा सौ रुपये मिलते रहेंगे। मजूर है ? कहो 'हां' डार्लिंग, प्लीज !"

हवा में सरसराहट बढ जाती है। स्त्री शायद उस के और पास आ गयी है, सट गयी है। और शायद इसी-लिए पुरुप एकाएक शात हो कर कहता है, "मैं तुम्हारी बात मान सकता हू पर एक शर्त है।"

स्त्री का स्वर विजय-गर्व से और भी कामुक हो उठता है, "तुम्हारी एक हजार शर्तें भी मुझे मजूर हैं।"

"मुझे रुपया नही चाहिये। मैं चाहता हू . . . "

"हा, हां, क्या चाहते हो ? जल्दी कहो। प्लीज, डार्लिंग। तुम जो कहोगे, करूगी।"

पुरुप के दृढ स्वर मे एक क्षण को कपन-सा उभरता है फिर वह तुरंत कह देता है, "तुम मुझ से शादी करोगी ? मेरे दोनों बच्चों की मां बनोगी ?"

एक क्षण के लिए मानो सृष्टि की गति रुक जाती है। सब-कुछ स्तब्ध हो रहता है। फिर स्त्री की हसी का स्वर वहा गूंजता है और वह खिल-खिला कर कहती है, "डार्लिंग, तुम कैसा मजाक करते हो ? नो, नो, यू आर नाट सीरियस अबाउट इट। शादी कैसे हो सकती है। नो मैरेज। डार्लिंग, प्लीज ! सोचो तो, तब मैं यहा कैसे आ सकती हू ? तब मैं पत्नी बन जाऊगी न ! कोई और शर्त डार्लिंग ?"

"नहीं, और कोई शर्त नही।"

"नो, डार्लिंग ! मैं सब-कुछ कर सकती हू पर शादी नहीं। शादी से प्यार मर जाता है।"

"प्यार नही मरता, व्यापार मरता है," पुरुप का स्वर जैसे वक्ष को चीर जाता है और तभी एक दूसरा साया उधर से हो कर उन के ऊपर झुकने लगता है। स्त्री का साया उसे देखते ही पहले पुरुप के साये से छिटक कर दूर हो जाता है। नवागतुक मानो

शरारत से मुसकराता है और हंस कर कहता है, "एकान्त में खलल डालने के लिए माफ़ी चाहता हूं, दोस्त ।"

पहला प्रश्न भावना से कहता है, "यह तुम हो प्रदीप !"

"हां दोस्त मैं ही हूं । उठो, हम लोग आज किसी शानदार रेस्तरां में खाना खायेंगे ।"

"हम लोग ?"

"हां । तुम, शतरूपा और मैं । हम तीनों ।"

फिर वह मुड़ कर शतरूपा से कहता है, "तुम चलो रूपा । मैं इन्हें ले कर अभी आता हूं । तुम कार ले जा सकती हो । हम दोनों दोस्त घूमते हुए आते हैं ।"

शतरूपा स्निग्ध स्वर में बोलती है, "दीप, मैं तुम्हारी राह देखूंगी ।"

और उस का साया जब वहां से बहुत दूर चला जाता है तब प्रदीप कहता है, "चलो दीप, रास्ते में बातें करते चलेंगे । बहुत दिन हो गये ।"

कुलदीप विरक्तता से उत्तर देता है, "मैं नहीं जाऊंगा ।"

प्रदीप उस के कंधे पर हाथ रख देता है और स्वर में माधुर्य भर कर कहता है, "दीप, हम पुराने मित्र हैं । मित्र के लिए इतना भी नहीं करोगे ? आखिर उस दुकान का तुम करोगे भी क्या ? किसी और को दोगे ?"

"मैं कुछ भी करूं लेकिन . . ."

"नहीं, तुम सोचो तो कि तुम्हें कितना लाभ है ? मैं तुम्हारा मित्र हूं । उस मित्रता को निभाने के लिए कुछ भी करने को तैयार हूं । तुम्हें और भी पैसा दे सकता हूं ।"

कुलदीप उसी दृढ़ स्वर में कहता है, "प्रदीप तुम मेरे दोस्त हो तो फिर मुझे रुपया क्यों देते हो ?"

"तो फिर तुम क्या चाहते हो ?"

इस बार कुलदीप का स्वर तनिक भी नहीं कांपता । तीखी दृढ़ता से कहता है, "तुम उस लड़की से कह सकते हो कि मुझ से शादी कर ले ?"

एक क्षण के लिए जैसे वातावरण स्तब्ध हो उठता है । अपने-अपने स्थान पर दोनों मानो अंतर की रेंगती बेचैनी का अनुभव करते हैं । फिर प्रदीप एकाएक उबलता है और साप की तरह ऐंठता हुआ कहता है, "तो यह बात है । तुम्हारी इतनी जुर्रत ?"

विपिन को लगा जैसे कोई सिगार के लम्बे-लम्बे कश ले रहा है । फिर वह प्रदीप का चुनौती भरा भयावह स्वर

"इ का चस्मा दिये हो डाग्दरजी, इह में तो मेरी भैंस भी काले अच्छर-जैसी दीसे सै !"

सुनाता है, "तुम ने सुना, तुम्हें दुकान देनी होगी, नहीं तो . . ."

उत्तर में कुलदीप अवज्ञा भरी हंसी हंसता है। और कहता है, "नहीं तो ?"

"नहीं तो, तुम्हारे पुराने भेद खोल दूंगा। पुलिस में झूठी रिपोर्ट करूंगा। अखबारों में तुम्हारे खिलाफ लिखूंगा। कि तुम ने शरणार्थी को परेशान किया। यहां पार्क में ला कर . . ."

"तुम जो चाहो, कर सकते हो, पर दुकान नहीं पा सकते।"

"तुम्हें दुकान देनी ही होगी।"

अब कर्कश स्वर और कर्कश होते हैं, मानो प्रतिद्वंद्विता का चरम बिंदु आ पहुंचा है और फिर अचानक पलक झपकते जितने समय में अघटित घट जाता है। कुलदीप प्रदीप के कंधे में छुरा घोंप देता है। एक चीख उठती है, फिर आनन-फानन में भीड़ घिर आती है। आश्चर्य है कि कुलदीप वहां से हिलता तक नहीं। पुलिस के आने पर भी नहीं। उस भीड़ में वह विपिन को पहचान लेता है। विपिन आहत स्वर में कहता है, "यह तुम ने क्या किया कुलदीप ?"

वह दृढ़ स्वर में उत्तर देता है, "मुझे दुख है कि मैं ने कानून का विश्वास नहीं किया। पर क्या आप सोचते हैं कि वह विश्वास करने योग्य रह गया है ?"

विपिन कहता है, "लेकिन इस का यह अर्थ तो नहीं कि . . ."

"छोड़िये भाई साहब, यह आप के कहने योग्य बात नहीं है। लेकिन डरिये नहीं, घाव गहरा नहीं है। मैं उसे मारना चाहता भी नहीं था। मैं जानता हूं, वह शक्तिशाली है। देशभक्तों के इन बेटों की मैं उसी शक्ति को तोड़ना चाहता हूं। मैं ने अंगरेज फौज की गोलियों की चिन्ता नहीं की, इस की क्या चिन्ता करूंगा।"

वह क्षण भर रुकता है। एक उदासी-सी उस के चेहरे पर फैलती जाती है। स्वर में भी जैसे बेचैनी उभर उठी हो। फिर कहता है, "लेकिन भाई साहब, मुझे डर यही है कि मेरे भीतर पुराना कुलदीप जाग आया है। क्या हम किसी बात से पूरी तरह मुक्ति नहीं पा सकते ?"

वह आगे कुछ कह सकता कि पुलिस के सिपाही उसे ले जाते हैं। जाते-जाते विपिन की दृष्टि उस के चेहरे पर पड़ती है। इतना करुण विषाद उस ने शायद ही कभी देखा हो। वह सहसा कांप उठता है। भूल जाता है कि उस से पूछे कि उस की बेटियां कहां हैं। उस के जाने पर ही वह जागता है और बेंच पर आ बैठता है। वहां फिर बंधा-सा सन्नाटा छा जाता है। वह अनुभव करता है कि रात धीरे-धीरे खिसक रही है।

"तुम अपने नाई से हमेशा मौसम के बारे में क्यों बात करते हो ?"

"तो आप क्या यह चाहते हैं कि जिस आदमी के एक हाथ में उस्तरा हो और दूसरे हाथ में मेरा गला, उस से मैं राजनीति-जैसे गरम विषय पर बात करूं ?"

रसिकबिहारी

आधुनिक युग में कवि की स्थिति हमारी सभ्यता की आनुषंगिक समस्याओं और जटिलताओं के कारण कठिन हो गयी है। उस की भाषा, व्यंजना, भाव में भी बहुत कुछ विलक्षणता आ गयी है। उस की दृष्टि अधिक व्यापक और सूक्ष्म, 'टेकनीक' सांकेतिक और भाषा लाक्षणिक बन गयी है। इस युग के महान स्रष्टा टी. एस. इलियट ने इसीलिए कविता की एक अभिनव परिभाषा दी है—"कविता आवेगों का मुक्त रूप नहीं, वरन आवेगों से मुक्ति है, यह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, वरन व्यक्तित्व-बंधन से छूट है।" आज का मानव उदासीनता, लक्ष्यहीनता और व्यग्रता का शिकार हो रहा है। सामाजिक जीवन नीरस हो गया है। जीवन की दिशा ही बदल गयी है।

तभी तो कवि कहता है—

> काफी के चम्मचों से मैं ने
> माप लिया है जीवन को

इलियट की कविता में हमें कवि के मानस और व्यक्तित्व से उतना परिचय नहीं होता जितना युग की धारा से। उन की रचनाओं की दुरूहता का भी यही कारण है। युग-प्रकृति की अमिट छाप है उन की रचनाओं में।

वास्तव में यह छाप युग के व्यक्तित्व की है। जब वे कहते हैं—

> आओ चलें हम, मैं और तुम
> जब छा जाये संध्या आकाश पर
> (आपरेशन) टेबिल पर पड़े बेहोश
> मरीज की तरह

तब वे आवेग और व्यक्तित्व-बंधन से बचते हुए पाठक के सामने एक विषम स्थिति का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इलियट एक जागरूक कलाकार हैं। कविता के उद्देश्य और तत्व से वे पूर्णतया परिचित हैं। हमारी यह दुनिया, जिस की कोई दृढ धुरी नही है, जो यात्रिक बन गयी हैं और क्लान्त हैं, कवि पर इतना असर डालती हैं कि वह काव्य की संभावनाओं का पुनर्निर्माण करता हैं। स्वय वह एक ऐसे समाज का सदस्य हैं जिस में महत्वाकांक्षाओं के बाहुल्य और इंद्रिय-सुख की लालसा ने उथल-पुथल मचा रखी हैं। तीव्र सवेदनशीलता के कारण इस स्थिति से सतप्त हो कर कवि समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाना चाहता हैं। कविता, इलियट के मतानुसार, स्वाभाविक रूप से सान्त्वना और आनन्द दे सकती हैं। कविता जनता का मनोरजन कर सकती हैं। कविता और भी बहुत कुछ कर सकती हैं— जैसे हमारी चिंतन-धारा में क्राति लाने का साधन बन सकती हैं, हमें प्रचलित रूढ़ियों की शृखला से मुक्त कर सकती हैं; संसार को देखने की नयी दृष्टि दे सकती हैं, आदि। इलियट ने कहा हैं—"यह समय-समय पर अंतस्तल के गहन में स्थित उन अनामा भावों की उपस्थिति की सूचना दे सकती हैं जिन पर हमारा अस्तित्व निर्भर करता हैं और जिन तक हम कठिनता से पहुंच पाते हैं, क्योंकि जीवन में सब से अधिक दुराव और छल हम स्वयं अपने-आप से ही करते हैं।" इलियट की इस उक्ति से हमें कविता की अपार शक्ति का बोध होता हैं।

युग की प्रमुख समस्याओं से वे भली भांति परिचित हैं। समाज में वे अपने स्थान को भी जानते हैं। आत्मज्ञान के अभाव से मानव की अनुभूतियों की आतरिक एकता नष्ट हो गयी हैं। इलियट के अनुसार इस का कारण हैं संसार से प्राचीन 'कैथोलिक' (उदार) दृष्टिकोण का लोप। पहले यथार्थ को जानने की विविध विधियों को इसी दृष्टि-क्रम ने एक सूत्र में बाध रखा था। कविता की वह महान परंपरा जिस में 'क्रिश्चियन' विचारों और मानववाद का सुन्दर समन्वय हुआ था, अब समाप्तप्राय हैं। इस से स्थिति और बिगड गयी हैं। आधुनिक युग की सब से बडी बीमारी हैं अन्तर्द्वन्द्व। इस के कारण भी शक्ति का बहुत पतन हुआ हैं। इस युग के मनुष्य, विशेषतया नगरवासी समय की सक्रामक विषमताओं के कारण क्रमश निर्जीव और पौरुषहीन होते चले जा रहे हैं। उन में बाह्य अव्यवस्था का साहसपूर्वक सामना करने का आत्म-विश्वास बहुत-कुछ नष्ट हो गया हैं। हमारी पीढी अपनी भौतिक आवश्यकताओं और आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए ऊचा से ऊचा मूल्य देने को प्रस्तुत हैं, और साथ ही अपने आदर्शों को भी काफी ऊचा रख छोडा हैं। इलियट का विश्वास हैं कि इस विषम परिस्थिति में, केवल नैतिक परिवर्तन ही मानव को अपने मौलिक गुण-शील की पुन प्राप्ति करा सकता हैं।

इलियट को यह शिकायत नही हैं कि लोग अनैतिक या पुरानी परिपाटी में अविश्वास करते हैं, पर उन की शिकायत तो यह हैं कि वे जीवन के गंभीर प्रश्नों की ओर उदासीन हो गये

है। आध्यात्मिक चिंतन, जिस पर संस्कृति पनपती है, अब उन के जीवन में नहीं रहा। उन के मन, मस्तिष्क और हृदय पर एक प्रकार की शून्यता छायी हुई है। आधुनिक समाज के लोगों के मन में जब तक मानसिक ग्रंथियां रहेंगी, जो कि अत्यधिक मात्रा में हैं, तब तक उन में किसी प्रकार की आध्यात्मिक चेतना का उदय होना कठिन है। जीवन की गहरी अनुभूतियों में भी उन की वृत्ति और इंद्रियां पथभ्रष्ट हो रही हैं। उन में उचित और अनुचित का भेद-विचार नहीं रहा। ईलयट ने इसी स्थिति का विश्लेषण अपनी आरंभ और मध्य की कविताओं में किया है। इन में व्यंजना-वृत्ति विशेष रूप से प्रयुक्त हुई है। वे 'ऐश वेन्सडे' के द्वितीय भाग में एक जगह कहते हैं—

भूल कर अपने को और सब को
मिले हम मरुभूमि की शांति में

यहां स्पष्ट है कि हमारी लुप्त आध्यात्मिक चेतना ही 'मरुभूमि की शांति' है। मानवता अपनी अपरिमित संभावनाओं के साथ दबी पड़ी है, यह बात कवि को विशेष प्रभावित करती है।

जिस अविश्वासमय वातावरण में आज हम हैं उस में एक वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण ही हमारे लिए उपयोगी हो सकता है, जिसे स्वस्थ मानस और धार्मिक अनुशासन ही उत्पन्न कर सकता है। ईलियट के भारतीय दर्शन के अध्ययन ने इस मत को और भी पुष्ट कर दिया है। उन के विचार में किसी धर्म के श्रेष्ठ अंश की मान्यता का कारण है उस का जीवन के सत्य से संबंधित होना, अथवा मानव का ईश्वरीय शक्ति पर निर्भर होना। उन का कथन धर्मशास्त्र के आचार्य का कथन नहीं है, क्योंकि धर्मशास्त्राचार्य बनने की अभिलाषा उन के मन में नहीं है। वे तो केवल यही चाहते हैं कि हमारे जीवन से सात्त्विक भावनाएं बिलकुल दूर न हो जायें।

ईलयट अतीत में एक विशेष गुण देखते हैं—वह है उस समय की उच्चस्तरीय अनुभूति। यद्यपि परंपरा काल, संघर्षपूर्ण और सुप्रतिष्ठित जीवन की देन है, फिर भी उस की निरंतर समीक्षा होती रहनी चाहिये, जिस से वह स्वस्थ, सबल और दोष-मुक्त बनी रहे। वर्तमान समय में अधिकांश लोगों का धार्मिक विश्वास, चाहे वह कोई भी धर्म हो, यत्रवत है—एक रूढ़िगत अंधविश्वास मात्र। वे केवल प्राणहीन बाह्य अनुष्ठान को पकड़े हुए हैं। ईलयट चाहते हैं कि हम वस्तु-स्थिति को समझते हुए यह महसूस करें कि धर्म जीवन का अपरिहार्य अंग है। एक सुसंगठित जीवन द्वारा ही इस सत्य की उपलब्धि संभव है। यौन-भावना, जो कि सभ्यता के प्रारंभ से धर्म से संबंधित रही है, अवहेलना की वस्तु नहीं है। उन का यह मत गौरव-ग्रंथों (क्लासिक्स) और मानवजाति-शास्त्र (एंथ्रोपोलोजी) के अध्ययन पर आधारित है।

ईलयट के परंपरा संबंधी विचार के विषय में लोगों को अक्सर भ्रम हो जाता है। उन के लिए परंपरा का अर्थ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'क्रिश्चियन' परंपरा है, जिस का स्पष्ट और सीधा संबंध उस परिपाटी से है

जो हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में सचेतन बुद्धि के प्रयोग का निर्देश देती है। वे तो इतना तक कहने को तैयार हैं कि यदि 'क्रिश्चियनिटी' चली जायेगी तो मानव-संस्कृति ही चली जायेगी। अव्यवस्थित विश्वास और मृत परंपरा के बीच संस्कृति नहीं बच सकती।

मांटेन और पास्केल, दोनों ने अपने विचार के विभिन्न क्षेत्रों में संदेहवाद (स्केप्टीसिज्म) का समर्थन किया है। तीक्ष्ण शंका विश्वास का प्रथम चरण है। आज की दशा में, इलियट के अनुसार भी, हमें संदेहवाद की ही आवश्यक्ता है। संदेहवाद का अर्थ, जैसा कि साधारणतया लगाया जाता है, अविश्वास नहीं है, जिस से मानसिक आलस्य उत्पन्न होता है। वीरतापूर्वक किसी निश्चय पर पहुंचना और प्रदत्त सामग्री की विधिवत परीक्षा करने की प्रवृत्ति ही उचित अर्थ में संदेहवाद है। इलियट इसी संदेहवाद का समर्थन करते हैं। आध्यात्मिक चेतना की पहली सीढ़ी है शुभाशुभ विवेक, जिस का आज की दुनिया में सर्वथा अभाव है। सामाजिक विधि-निषेध और जीर्ण नैतिकता की शृंखला से जकड़े होने के कारण आज हमारा ओज मंद पड गया है। इसीलिए इलियट ने संगत जीवन और यौन-भावना की विशेष चर्चा की है। एक स्थान पर 'दी रॉक' में वे कहते हैं—

मानव संयोग है देह और आत्मा का
दोनों ही तभी होंगे उस के रूप
देह और आत्मा
दृश्य और अदृश्य
इन द्विभुवनों का संगमस्थल है
मानव
जहां मिलेंगे दृश्य औ' अदृश्य
देह को करो न अस्वीकार

इलियट की प्रारंभिक रचनाओं में कुछ हद तक अनुभूतियों की असंबद्धता पायी जाती है। उन की बाद की रचनाओं में मानव में आध्यात्मिक चेतना के जागने का स्पष्ट संकेत मिलता है। उन की रचनाओं में आशा का आलोक और निराशा का अंधकार दोनों ही वर्तमान हैं। उन के काव्यमय नाटकों में समाज-व्यवस्था, पाप, शहीदी आदि समस्याओं पर एक नये ढंग का विवेचन मिलता है। 'फोर क्वारटेट्स' (१९४४) में उन की मनीषा का पूर्ण विकास पाया जाता है। अत इलियट को इस युग का मूर्धन्य सर्जक और महान द्रष्टा मानना समीचीन ही है, जिन का व्यापक और स्थायी प्रभाव भारतीय साहित्यकारों पर भी पड़ा है।

इलियट का देहावसान ४ जनवरी १९६५ को ७६ वर्ष की अवस्था में हुआ। अपने जीवनकाल में वे एक साहित्यकार के काम्य सर्वोच्च सन्मान को प्राप्त कर चुके थे।

"पिछले महीने मैं ने आप की साइकिल वापस कर दी थी?"
"नहीं।"
"अब क्या हो? मुझे आज फिर चाहिये थी।"

इतिहास के झरोखे से

लगभग तीन मील लंबे और एक मील चौड़े क्षेत्र में बसा हुआ श्रीरंगपट्टण कावेरी नदी के आलिंगन में अपनी सुध बुध खो चुका था। नगर के चारों ओर नदी के किनारे-किनारे दस गज ऊंचे काले पत्थरों का परकोटा खिंचा था। नगर से बाहर निकलने के लिए आठ बड़े-बड़े द्वार थे, जो विभिन्न नामों से जाने जाते थे। नगर के मध्य का मार्ग ही मुख्य मार्ग था। इस के दोनों ओर आम के पेड़ लगे थे। नगर के अंतिम छोर पर तीन वर्षीय राजा कृष्णराज का सुंदर भवन था, जो एक दूसरे परकोटे से घिरा हुआ था। भवन के सामने एक मैदान था, जहां नाना प्रकार के फव्वारों से निकलता हुआ पानी बाग की शोभा में एक विशेष आकर्षण उत्पन्न करता रहता था। राजभवन के परकोटे के बाहर दलवई (सेनापति) देवराज तथा उस के अनुज सर्वाधिकारी (प्रधान मंत्री) नंजराज के अलग-अलग भवन थे। यह नगर मैसूर राज्य की राजधानी था। यह काल १७ वीं शताब्दी

उमाशंकर

एक अनशन : सदियों पहले

के मध्य का था।

युवक किशनराज मैसूर राज्य का अधिपति ही नहीं, सर्वाधिकारी नजराज की इकलौती पुत्री का पति भी था। पत्नी को पति से जो सुख मिलने चाहियें, वे उसे नहीं मिल रहे थे और इस का कारण था उस का पिता नजराज। नजराज अपनी धूर्तता से राज्य की सारी शक्ति अपने हाथों में समेट कर सर्वेसर्वा बन बैठा था और किशनराज केवल नाममात्र का राजा रह गया था। इतना ही नहीं, नजराज ने अपने बड़े भाई देवराज को भी विवश कर दिया था कि वे दलवई का भार उसे सौंप कर पूजापाठ में अपना जीवन व्यतीत करें। वृद्ध दलवई ने ऐसा ही किया। उस का जीवन एकाकी था—न पत्नी थी और न संतान।

किशनराज की पत्नी ने बार-बार अपनी सफाई दे कर पति को समझाने का प्रयत्न किया परंतु किशनराज ने उन्हें संदेह की दृष्टि से ही हमेशा देखा। किशनराज कहता था कि यदि वह चाहे तो नजराज उस के हाथों में सत्ता सौंपने के लिए आसानी से विवश हो सकता है। पत्नी ने अपनी सचाई के प्रमाण में पुनः कसमें खायीं और उस के संतोष के लिए अपने पिता से भेंट की। उसे अपनी स्थिति समझायी और राजा को ही पूरी सत्ता सौंप देने को कहा। नजराज ने लड़की और उस के पति को नासमझ बता कर ऐसा करने से इनकार कर दिया। उस के मतानुसार किशनराज अभी शासन चलाने के अयोग्य था। पत्नी दुःखी हो कर लौट आयी।

इस बार किशनराज को पत्नी की बात की सत्यता पर कुछ-कुछ विश्वास अवश्य हुआ परंतु पूरी तरह नहीं। वह कई दिन तक इस जटिल समस्या पर सोचता रहा। नयी-नयी योजनाएं मस्तिष्क में बनाता-बिगाड़ता रहा। अंत में उस ने अपनी शक्ति, बुद्धि और चतुराई का सहारा ले कर कुछ कर डालने का निश्चय किया। स्वामी हो कर सेवक की तरह जीने से मर जाना ही कहीं अच्छा था। उस ने सर्वाधिकारी नजराज के विरुद्ध षड्यंत्र का श्रीगणेश कर दिया। वह भूतपूर्व सर्वाधिकारी वेंकटापति अय्यन से बातचीत करने लगा। उस का कहना था कि यदि वेंकटापति के सहयोग से उसे नजराज से सत्ता छीनने में सफलता मिली तो वह वेंकटापति को पुनः सर्वाधिकारी बनाने में प्रसन्नता का अनुभव करेगा। वेंकटापति सहमत हो गया। नजराज ने अपनी धूर्तता के बल पर ही वेंकटापति को भी निकाल बाहर किया था।

षड्यंत्र का पहिया घूमने लगा। किशनराज और भूतपूर्व सर्वाधिकारी की गुप्त बैठकें और मंत्रणाएं होने लगीं, किन्तु दुर्भाग्य को क्या कहा जाये कि षड्यंत्र का भेद पहले ही खुल गया। नजराज के क्रोध का ठिकाना न रहा। उस ने वेंकटापति के मकान को घेर कर लुटवा लिया। तत्पश्चात उसे और उस की पत्नी को बंदी बना कर मवल्ली दुर्ग में तथा उस के लड़के और दामाद को क्वाल दुर्ग में भेज दिया गया। उधर राजा के महल के चारों ओर भी सैनिकों की तैनाती हो गयी। किसी से मिलने-जुलने पर रोक-थाम लगा दी

सभी तथा गुप्तचरों को भी तैनात कर दिया गया, जो क्षण-क्षण की खबरें नंजराज को देने वाले थे।

यद्यपि युवक राजा की असफलता ने उसे क्षुब्ध अवश्य कर दिया, तथापि हताश नहीं। उसे अब पराधीन जीवन नहीं व्यतीत करना था। उस ने नंजराज से सत्ता छीनने का निश्चय कर लिया और इस के लिए दूसरे षड्यंत्र की भूमिका आरंभ कर दी। इस बार वह किसी बाहरी शक्ति के सहयोग से अपने मंसूबे पूरे करना चाहता था। इस के लिए पत्रों का आदान-प्रदान होने लगा।

किशनराज के दुर्भाग्य से नंजराज को इस षड्यंत्र की भी भनक पड़ गयी। उधर किशनराज को भी भेद खुल जाने की जानकारी हो गयी। संध्या होते-होते उसे यह भी सूचना मिली कि नगर के सारे द्वार बंद करा दिये गये हैं और महल के चारों ओर तोपें लगवाने का भी आदेश दे दिया गया है। उस ने नंजराज के मनोभावों का अनुमान लगा लिया। वह अपनी वर्तमान परिस्थिति पर शांत मन से विचार करने लगा। वह कायर नहीं था। अगर वह मार सकता था तो मरने की भी हिम्मत रखता था। अब उस ने खुल कर नंजराज का सामना करने का ही निष्कर्ष निकाला, परंतु पत्नी से इस संबंध में कोई चर्चा नहीं की।

दूसरे दिन पौ फटते ही किशनराज ने सैनिक-वेश धारण किया। तलवार कमर में लटकायी और अपने एक हजार अंगरक्षकों का नेतृत्व करता हुआ महल के बाहर निकला। कुछ भी हो, राजा राजा ही था। उस के बाहर आते ही नंजराज द्वारा तैनात सैनिकों में भगदड़ मच गयी और जिस ने भागना उचित न समझ कर सामना करने का साहस किया, वह मौत के घाट उतार दिया गया। राजा ने संतोष की सांस ली और अपने अंगरक्षकों सहित पुन महल में वापस आ गया।

अभी आधा पहर भी न बीता होगा कि नंजराज स्वयं एक दस्ते का संचालन करता हुआ राजमहल की ओर बढ़ा। उस ने महल में प्रवेश करते ही नादिरशाह की भांति कत्लेआम का आदेश दे दिया। वह स्वयं म्यान से तलवार निकाल कर एक तरफ से दास-दासियों का सिर कलम करने लगा। महल में हाहाकार मच गया। किशनराज की पत्नी दौड़ कर बाहर आयी। देखा तो देखती रह गयी। किशनराज अपने अंगरक्षकों को आदेश देता हुआ दिखलायी पड़ा; रानी का कलेजा तो सूख गया। वह भागी और पति के पैरों से चिपट गयी। उस की आंखों से आंसुओं की धारा बह चली थी। पति ने छुड़ाना चाहा लेकिन पत्नी लता-जैसी लिपटी थी। उधर अंगरक्षकों की आगे वाली पंक्ति नंजराज के सैनिकों से गुथ चुकी थी। किशनराज ने पत्नी को ऊपर उठाया और बड़े सीधे ढंग से थोड़े में अपनी इच्छा व्यक्त कर दी। वह इस कष्टप्रद जीवन से मर जाना अच्छा समझता था। वह अब किसी भी हालत में अपना निर्णय बदलने वाला नहीं था। अंतिम निर्णय हो चुका था।

कम संख्या में होने के कारण किशन-राज के सैनिक अपने कर्त्तव्यों का पालन

करके भी स्वामी की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे। वे एक के बाद एक वीरगति को प्राप्त होते जा रहे थे। यह निश्चित हो जाने पर कि पति का अंतिम निर्णय हो चुका है, पत्नी ने तत्काल दूसरा उपाय सोचा। वह मुड़ी और अपने जीवन का मोह किये बिना सैनिकों के बीच से भागती हुई, पिता के पैरों से जा लिपटी। पिता गरज पड़ा, "हट जा मेरे सामने से! मैं तेरे पति का वध किये बिना नहीं मानूंगा। अगर वह मेरे खून का प्यासा है तो मैं भी आज उस के खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाऊंगा।"

पुत्री ने भी दृढ़ता दिखायी। वह उठी और तन कर पिता के सामने खड़ी हो गयी। उस ने पिता को खरी-खोटी सुनायी और इस के पहले कि वह किशनराज के खून से तलवार की प्यास बुझाये, उस ने अपना सिर आगे बढ़ा दिया। पिता की तलवार रुक गयी परंतु प्रतिहिंसा की जलती हुई आग को वह फिर भी बुझाने में असमर्थ रहा। उस ने किशनराज तथा उस के परिवार के अन्य सदस्यों को बंदी बना कर महल के एक भाग में डाल दिया। जो कुछ होने को था, वह भी समाप्त हो गया। सर्वाधिकारी पूर्ण सर्वाधिकारी बन बैठा।

पुत्री के बहुत कहने पर भी पिता ने किशनराज को मुक्त नहीं किया, तब उस ने देवराज से बातचीत की। वृद्ध आंसू बहाने के अतिरिक्त कुछ करने में असमर्थ था। अबला के सामने विषम परिस्थिति आ खड़ी हुई। उस के पिता का क्या भरोसा? वह अपनी स्थिति को दृढ़ बनाने के लोभ में किसी दिन उस के पति का भी वध करा सकता था। उस की चिंता बढ़ गयी। वह कई दिनों तक नाना प्रकार के उपायों को सोचती रही और अंत में उस ने अनशन करने का फैसला कर लिया। यही मार्ग उस के लिए एकमात्र हितकर था। पिता की मति बदले तब तो कोई बात नहीं, अन्यथा पति-धर्म के आदर्श के लिए वह एक मिसाल तो कायम कर ही सकती थी। यह क्या कम था? अभी न सही, आने वाला जमाना तो उस से शिक्षा लेगा। उस ने अनशन आरंभ कर दिया।

एक-एक करके दिन बीतने लगे। अनशन करनेवाली की दशा धीरे-धीरे बिगड़ने लगी। खबर फैली। लोग उस के पास आने-जाने लगे। वृद्ध देवराज भी आया। सब ने समझाया। अनशन तोड़ने के लिए कहा किन्तु उस ने इनकार कर दिया। वह अपने व्रत पर दृढ़ रही। दशा शोचनीय होने लगी। तब पिता आया और अनशन तोड़ने के लिए कहा। पुत्री ने अपनी शर्त रख दी। दुष्ट पिता उस शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं था। वह किशनराज को नहीं छोड़ सकता था। वह चला गया। कुछ दिन और बीते। दशा अत्यधिक शोचनीय हो गयी और एक दिन उस देवी का प्राणांत भी हो गया। पिता के विरुद्ध पुत्री का यह अनशन इतिहास की घटनाओं में एक अनोखी घटना है।

वृद्ध देवराज की आत्मा विलख

उठी। हत्यारे नजराज के साथ एक पल भी रहना उस के लिए असह्य प्रतीत होने लगा। उस ने श्रीरंगपट्टण छोड़ा और सतमंगला को प्रस्थान कर दिया। नगर के वातावरण में भी परिवर्तन आया। इधर-उधर नंजराज के विरोध में हलचल होने लगी। नयी समस्याओं का जन्म हुआ, उन में जटिलताएं पनपीं और एक दिन ऐसा भी आया कि उन जटिलताओं के आगे सर्वाधिकारी को घुटने टेकने पड़े। विजनराज को बंदीगृह से मुक्त किया गया। राजा ने पुनः नजराज के विरुद्ध षड्यन्त्र किया और उस में सफलता प्राप्त की। नजराज से सर्वाधिकारी का पद छीन लिया गया।

●

स्वर्गीय
मदन गोपाल
सिंहल

मेरठ के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार एवं जनसेवी श्री मदनगोपाल सिंहल का गत १७ दिसम्बर को अचानक स्वर्गवास हो गया। सिंहलजी ने लगभग पैंतीस वर्ष तक साहित्य, शिक्षा एवं समाज की सेवा की। वे एक व्यक्ति न हो कर स्वयं में एक संस्था थे।

"आप की कोई अन्तिम इच्छा है क्या?" अंतिम क्षणों में पं. गजाधर तिवारी वैद्य ने उन से प्रश्न किया।

सिंहलजी ने आंखें खोलीं, "विल्वेश्वर संस्कृत विद्यालय का भवन अधूरा ही . . ." वे अधिक न कह सके। दो मिनट बाद पुनः उन्होंने धीरे-से कहा, "गूंगे-बहरों की पढ़ाई बन्द न हो जाये।"

उन्होंने न अपने नन्हे पोते को याद किया और न ही परिवार की ममता की कोई बात की। केवल चिन्ता थी तो जन-सेवा की—गूंगे बहरों के भविष्य की।

—शिवकुमार गोयल

आचार्य अत्रे की हास्य कथाएँ

जार्ज वर्नार्ड शा ने किसी फोटोग्राफर से कुछ फोटो खिचवाये। विल आया दो सौ पौंड का। शा ने फोटोग्राफर को दस दस पौंड के वीस चेक दस्तखत करके दे दिये। फोटोग्राफर ने पूछा, "साहव, दो सौ पौंड का एक चेक देने के वजाय आप मुझे दस-दस पौंड के वीस चेक क्यों दे रहे हैं ?"

शा ने हंस कर कहा, "तुम्हारी समझ में कुछ नही आयेगा। आजकल मेरा हस्ताक्षर पचीस पौंड में विक रहा है। प्रत्येक चेक को वेच कर तुम आसानी से तीन सौ पौंड कमा सकते हो। और जो आदमी ये चेक खरीदेगा वह मेरे हस्ताक्षर के लिए उसे अपने पास सुरक्षित रखेगा। वैंक में भुनाने के फेर में नही पड़ेगा—अर्थात, इस से मुझे भी दो सौ पौंड का फायदा हो जायेगा।"

मास्टर साहव के घर आज एक सेठ आने वाले थे। उन्हें आशा थी कि सेठ के लडके की ट्यूशन जरूर मिल जायेगी। कहा तो एक-एक महीने तक उन के कमरे की सफाई नही होती था, कहा आज विस्तर से उठते ही उन्होंने कमरे मे झाड़ू लगायी। पडोस से वे एक दरी और कुरसी भी माग लाये। निश्चित समय पर सेठ आये। मास्टर साहव उन से इधर-उधर की गप्पें हाकने लगे।

इतने में रसोईघर में से मास्टर साहव की पत्नी वहा आयी और वड़ी वेअदवी से वोली, "आज तरकारी कौन सी वनेगी ?"

मास्टर साहव ने सोचा कि अगर सेठ को यह मालूम हो गया कि यह मेरी पत्नी है तो मेरी वडी भद्द होगी। उन्होंने उसी समय कहा, "यहा मुझ से क्या पूछती हो ? अन्दर जा कर अपनी मालकिन से पूछो।"

जमुना चाची-जैसी मुंहफट पूरे मुहल्ले में नहीं थी। उन के पति को डर लगा रहता था कि न जाने कब वह उन की इज्जत उछाल दे।

एक बार उन्हें अपने एक रिश्तेदार के यहां शादी में जाना पड़ा। वे एक कोने में जा कर चुपचाप बैठ गये। इतने में जमुना चाची वहां आ पहुंची और उन की ओर हाथ नचा-नचा कर बोलीं, "बड़े मर्द बने फिरते हैं! हाथों में चूड़ियां क्यों नहीं पहन लेते? चौबीस घंटे घर में बैठे रहते हैं। शर्म नहीं आती? ऐसे मर्दों को तो बोरे में भर कर समुद्र में फेंक देना चाहिये।"

जमुना चाची के ओजस्वी संवाद सुन कर वहां अच्छी-खासी भीड़ एकत्र हो गयी। लेकिन जमुना चाची के पति ने अपने चेहरे की गंभीरता नष्ट नहीं होने दी। पत्नी का भाषण समाप्त होते ही उन्होंने चेहरे को और गंभीर बना कर कहा, "तो तुम ने उस से यह सब कहा? धन्य हो। अच्छा सबक सिखाया उसे।"

एक गांव में बहुत चोरियां हुईं। चोर घरों में से गायें तथा बछड़े तक चुरा कर ले जाते थे। चिंता के कारण शिवांबा पाटिल रह रह कर नींद से जाग पड़ते।
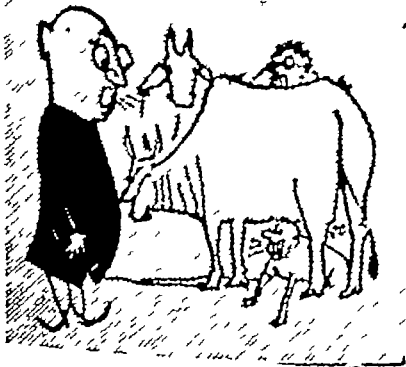
एक रात उन्हें कुछ खड़खड़ाहट सुनायी दी। वे तुरंत बिस्तर से उठ कर आंगन में आये और जोर से चिल्लाये, "आंगन में कौन है?"

आंगन में से एक पतली सी आवाज आयी, "और कोई नहीं, हम बछड़े खेल-कूद कर रहे हैं।"

मोटूमल अपने नाम की ही तरह मोटा-ताजा था। मास्टर साहब किसी न किसी बहाने उसे चिढ़ाया करते थे।

सालाना परीक्षा में मोटूमल फेल हो गया। मास्टर साहब ने हाथ नचा कर मोटूमल से कहा, "खा खा कर हाथी की तरह मोटे तो हो रहे हो, पर पढ़ाई के मामले में बिलकुल जीरो हो।"

मोटूमल ने चिढ़ कर कहा, "आप ठीक कहते हैं, सर! खाने का काम मुझ अकेले को ही करना पड़ता है, इसलिए मैं उसे अच्छी तरह कर लेता हूं। लेकिन पढ़ाई के मामले में मुझे आप पर निर्भर रहना पड़ता है।"
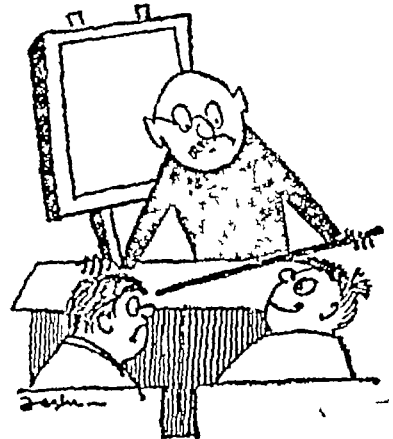
"मेरी प्यारी मां, जब तुम्हें यह पत्र मिलेगा, मैं मर चुका होऊंगा। मैं ने एक भयंकर काम के लिए स्वेच्छा से अपनी सेवाएं अर्पित की हैं किन्तु सफलता संदिग्ध है।" क्रिसमस से ने तो यहां तक कहा कि यह मौलिकता-पूर्ण साहस की अतुलनीय घटना है।

द्वितीय महायुद्ध नाजुक स्थिति से गुजर रहा था। इन्हीं दिनों डी ला पेने को हुक्म मिला कि वह भूमध्य-

सिकंदरिया का वह जंगी बेड़ा

जे० डी० रैडक्लिफ

पहले इटालियन नौसेना के लेफ्टीनेंट लुइर्जी डी ला पेने ने अपनी मां को तीन पत्र भेजे थे। उपर्युक्त पत्रांश पहले पत्र का है। दूसरे पत्र में उस ने लिखा था कि उस का ध्येय सफल हुआ और तीसरे पत्र में सूचना थी कि वह युद्धबंदी है।

२७ वर्षीय खूबसूरत युवा डी ला पेने का कसरती शरीर छह फुट लंबा था। द्वितीय महायुद्ध के इतिहास में जो साहसपूर्ण गाथाएं लिखी गयीं, उन में इस युवक की कहानी पहला स्थान रखती है। सिकंदरिया बंदरगाह स्थित ब्रिटिश नौ-बेड़े पर निहत्थे आक्रमण करने वाले व्यक्तियों के दल का वह प्रधान था। ३२,००० टन वाले जंगी जहाजों के खिलाफ बारह स्टोन की नौकाएं भिड़ा कर उस ने महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की। उस की वीरता के शिकार भी उस की प्रशंसा करने को विवश हो गये। चर्चिल
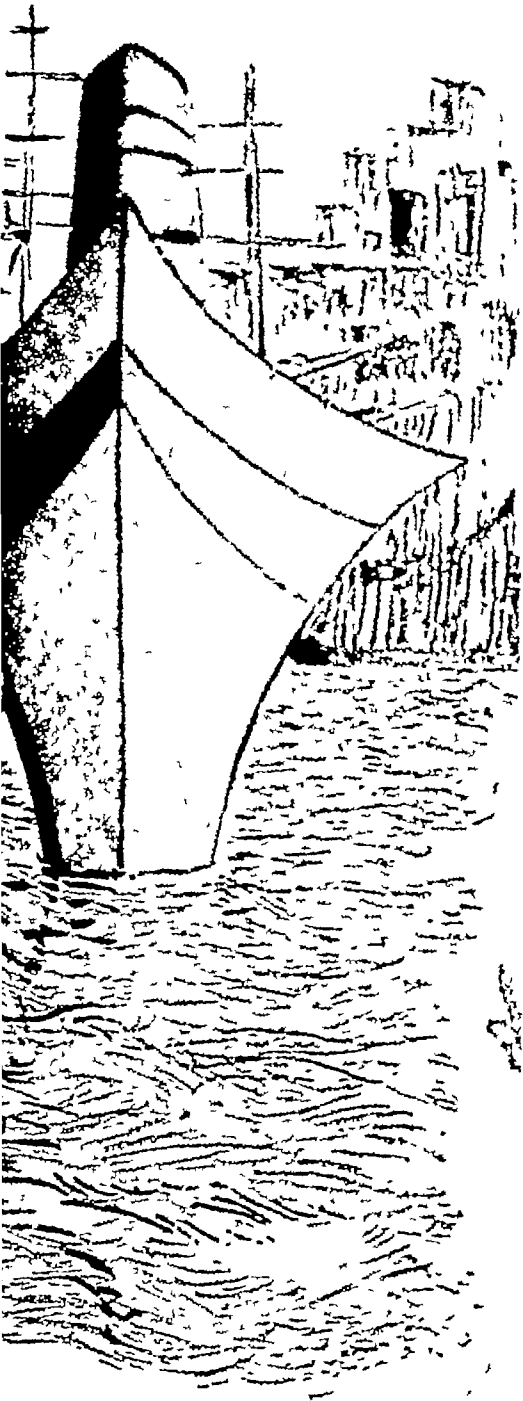
सागर स्थित ब्रिटिश नौ-बेड़े को डुबा दें। एक इटालियन पनडुब्बी ने कुछ समय पहले ही एक ब्रिटिश जंगी जहाज और एक वायुयान-वाहक जहाज को डुबा दिया था। शेष दो जंगी जहाजों ने बच कर सिकंदरिया में शरण ली थी। डी ला पेंने को वालंटियरों सहित छोटी पनडुब्बियों, 'पिग्स' में सिकंदरिया जा कर इन दोनों जहाजों को नष्ट कर देना था।

२२ फुट लम्बी तथा २१ इंच व्यास वाली 'पिग' ध्वनिरहित विद्युत-मोटर से चलती थी। इस की गति दो से तीन मील प्रति घंटा और क्षमता कुल दस मील की थी। यह ६६० पौंड वजन के विस्फोटक पदार्थ लाद सकती थी। डी ला पेंने के दल को उन पर जा कर विस्फोटक पदार्थों को जहाज के पेंदे में चिपकाना और संभव हो तो लौट आना था। इस दल के सैनिकों का बच निकलना प्रायः असंभव था। डी ला पेंने और उस के साथियों को वसीयतें लिखने और सामानों का उत्तराधिकारी चुनने के लिए समय दिया गया। किंतु डी ला पेंने हंस कर बोला कि वह नहीं मरेगा। वसीयत लिखने के लिए दी गयी अवधि में उस ने जिनेवा की एक खूबसूरत युवती वालेरिया बूटी से विवाह किया और हनीमून मना कर ड्यूटी पर वापस आ गया।

१८ दिसंबर को आक्रामकों के तीन दल 'सीरे' नामक पनडुब्बी पर सवार हो कर सिकंदरिया के निकटवर्ती समुद्र में पहुंचे। अंतिम सूचना से ज्ञात हुआ था कि बंदरगाह में इस समय

ब्रिटिश जंगी जहाज 'एच एम एस वेलिएंट' और 'एच एम. एस एलिजाबेथ' मौजूद थे।

डी ला पेने अपने साथी एमिलो बियाची के साथ 'वेलिएंट' पर हमला बोलने वाला था। दूसरी 'पिग' में सवार लेफ्टिनेंट एंटोनिओ और स्पार्टोकी का लक्ष्य 'क्वीन एलिजाबेथ' था और तीसरा दल ब्रिटिश बेड़े के १६,००० टन वाले तेलवाही को ध्वस्त करने के लिए था। जहाजों में विस्फोट हो जाने के बाद इन दलों को बंदरगाह पर भी बम फेंकने थे। काम खत्म कर इन्हें एक मछली पकड़ने वाली नाव चुरा कर दिसंबर तक एक निश्चित स्थान पर पहुंचना था, जहां एक इटालियन पनडुब्बी उन की प्रतीक्षा करने वाली थी।

रात को नौ बजे इटालियन नाविकों ने रबड़ की चुस्त पोशाकें पहनीं। उन की छोटी-छोटी पनडुब्बियां धीरे-धीरे बंदरगाह के लाइटहाउस की ओर बढ़ीं। उन्होंने सीलबंद डिब्बों से ठंडी मुरगी और बोतलों से शैम्पेन निकाली। दावत खत्म हुई तो तीनों दल एक-दूसरे से हाथ मिला कर अलग हुए।

बंदरगाह के द्वार पर पहुंच कर पिगें रुक गयीं। यहां सुरक्षा के लिए पानी के अंदर स्टील का जाल लगा हुआ था। इटालियन नाविकों के पास काटनेवाले हलके औजार थे किंतु इन के प्रयोग से आवाज होने की आशंका थी। जल में लगी सुरंगें विस्फोट भी कर सकती थीं। डी ला पेने आगे बढ़ने का उपाय सोच ही रहा था कि लाइटहाउस और बंदरगाह अचानक प्रकाश से नहा उठे। यह किसी जहाज के बंदरगाह में प्रवेश करने की सूचना थी। अंदर जाने वाले जहाज के साथ ही डी ला पेने का दस्ता भी बंदरगाह में घुस गया।

सामने अंधकार में तीन जंगी जहाज खड़े थे। डी ला पेने के संकेत पर तीनों पिगें अपने-अपने लक्ष्य की ओर चल पड़ीं। डी ला पेने वेलिएंट के पास जा पहुंचा। जहाज के चारों ओर रक्षात्मक जाल लगा था। बियाची ने उसे उठाने की कोशिश की किंतु भारी होने के कारण वह उसे उठा न सका। अब एक ही रास्ता था—पिग सहित बिना किसी की नजर पड़े जाल के ऊपर खिसकना। डी ला पेने अपने साथी सहित शीघ्र डुबकी मार गया।

विस्फोटक पदार्थ जहाज में चिपकाने के लिए सर्वोत्तम स्थान बुर्ज नंबर एक का बीच का हिस्सा था। बियाची पिग पर ही रहा और डी ला पेने विस्फोटक चिपकाने की जगह तलाश करने के लिए बुर्ज के नीचे गया। एक चरखी के सहारे पानी की सतह पर डोर फैलाकर उस ने पिग तक लौटने का रास्ता साफ रखा था। बुर्ज के नीचे पहुंच कर उस ने डोर खींची लेकिन पिग न चली। वह मदद के लिए बियाची की ओर मुड़ा लेकिन बियांची तब तक जा चुका था। डी ला पेने को अब अकेले ही सारा काम खत्म करना था। वह अब भी सही स्थान से १०० फुट दूर था। ६६० पौंड के भारी वजन को ठंडे-ठिठुरते हाथों से खींच कर जहाज के पेंदे तक ले जाना सरल

ना था। डी ला पेंने पूरी तरह थका हुआ था लेकिन उस ने पूरी तत्परता से काम पूरा किया। इस समय रात के तीन बज रहे थे। विस्फोट होने में सिर्फ तीन घंटे शेष थे।

डी ला पेंने का दम टूटने को हो रहा था। वह हल्के प्रयास के साथ पानी की सतह पर आ गया किन्तु यह प्रयास संतरी को सतर्क करने के लिए काफी था। सर्चलाइट की तेज रोशनी उस पर केन्द्रित हो गयी। गोलियों की बाढ़ दगी। डी ला पेंने सियार्ची के साथ डुबकी मार कर भागा किन्तु उन का सांस लेने का यंत्र बेकार हो गया था। वह डूबते उतराते फिर सतह पर आ गया। शीघ्र ही एक नाव ने दोनों को ऊपर उठा लिया।

साढ़े तीन बजे रात को वह 'वेलिएट' के एक्जीक्यूटिव अफसर के सामने खड़ा था। पूछ-ताछ किये जाने पर उस ने अपने रैंक और नंबर के सिवा कुछ न बतलाया। दोनों बंदियों को अलग कर दिया गया। डी ला पेंने को 'वेलिएट' के निचले भाग के एक स्टोर रूम में रखा गया। यह स्थान चिपकाये गये विस्फोटक पदार्थों के बिलकुल ऊपर था किन्तु एक गिलास रम को घूंट-घूंट पीते और सिगरेट फूंकते डी ला पेंने को मौत की कोई फिक्र न थी। उस की लापरवाह दृष्टि रह-रह कर घड़ी की ओर घूम जाती। अब सुबह के पांच बज कर चालीस मिनट हो रहे थे। तभी दूर पर जोर का विस्फोट हुआ और बेड़े का विशाल तेलवाही जहाज आग की लपटों में खो गया। उस का सारा सामान बरबाद हो गया और पास खड़ा विध्वंसक जहाज भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हुआ।

छह बज कर चौबन मिनट पर डी ला पेंने ने दरवाजे पर धक्के दिये और संतरी से कहा कि उसे तुरंत 'वेलिएट' के कमांडर से मिला दिया जाये। उस की इच्छा पूरी की गयी। "आप का जहाज सिर्फ दस मिनट बाद आग की लपटों में होगा," उस ने कमांडर चार्ल्स मारगन की ओर लापरवाही से घूरते हुए कहा, "मेरी सलाह मानिये, कर्मचारियों को डेक पर बुला लीजिये। मैं व्यर्थ ही लोगों की हत्या नहीं करना चाहता।"

मारगन का चेहरा सख्त हो गया, "तुम्हें बताना पड़ेगा कि बम कहां रखे गये हैं? अगर तुम जवाब नहीं दोगे तो तुम्हें जहाज के निचले हिस्से में बंद कर दिया जायेगा।"

डी ला पेंने ने अवज्ञाभरी दृष्टि मारगन पर डाली, "मैं इस बारे में कुछ नहीं बतलाऊंगा। शायद तुम मुझे समझने में भूल कर रहे हो।"

मारगन ने उसे निचले कक्ष में वापस भेज दिया। जहाज का लाउडस्पीकर चीख-चीख कर कर्मचारियों को डेक पर बुला रहा था। 'वेलिएट' में अनिश्चय, आशंका और घबराहट की लहर दौड़ गयी। दस मिनट में ही वह शानदार जहाज विनाश के जबड़े में चला जाने वाला था। किंतु निचले हिस्से में बंदी एकमात्र मनुष्य डी ला पेंने अब भी लापरवाही से सिगरेट फूंक रहा था। उस की दृष्टि अब

भी घडी पर जमी थी ।

छह बज कर छह मिनट पर भयकर धमाके के साथ 'वैलिएंट' डगमगा उठा । सारे कक्ष धुएं से भर उठे । धड़ाके ने डी ला पेने को कक्ष से बाहर फेंक दिया । वह लगभग १५ मिनट के लिए अचेत हो गया ।

उस के होश में आते ही ६ बज कर १५ मिनट पर 'क्वीन एलिजाबेथ' में धमाका हुआ । इंजन-कक्ष के ठीक नीचे रखे गये बमों ने कहर ढा दिया । जहाज की चिमनियों से तेल की धार फूटी और बंदरगाह तथा 'वैलिएंट' पर बरसने लगी । इटालियन सरफरोशों का लक्ष्य पूरा हो गया । तीनों जहाज समुद्र में समा गये ।

किंतु मुसोलिनी ने इस विनाश का कोई लाभ नहीं उठाया । उसे हवाई-जहाज से ली गयी तसवीरें और गुप्त रिपोर्टें दिखायी गयीं, जो सिद्ध करती थीं कि सिकंदरिया का ब्रिटिश नौ-बेडा पूर्णतया ध्वस्त हो चुका है । किंतु मुसोलिनी विशेषज्ञों की इस राय से सहमत नहीं हुआ । वह चाहता तो इस अवसर से लाभ उठा कर सिकंदरिया को हथिया लेता अथवा जरमन और इटालियन दस्तों द्वारा उत्तरी अफ्रीका के मोर्चे बढ़ा सकता था ।

ब्रिटिश अधिकारियों ने भी मुसोलिनी की इस मूर्खता को बढावा देने में कोई कसर न छोडी । क्षतिग्रस्त जहाजों की चिमनियां धुआं उडातीं, डेक पर बैंड बजते और भोज होता । किंतु तलों में अनवरत रूप से मरम्मत का काम चालता रहा ।

इस आक्रमण के छहों सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये । डी ला पेने को काहिरा भेजा गया । वहा से फिलिस्तीन ले जाते समय वह सीरिया की ओर भाग निकला । उसे पकड कर भारत भेज दिया गया, किन्तु यहां से भी वह एक बार भाग निकला और फिर पकडा गया । १९४३ में इटली परास्त हो गया तो डी ला पेने को मुक्त कर दिया गया ।

—अनु० नरेश मिश्र

एक प्रसिद्ध साहित्यकार को किसी साहित्यिक संस्था ने व्याख्यान देने के लिए बुलाया । व्याख्यान समाप्त होने के बाद संस्था के मंत्री एक चेक ले कर साहित्यकार के पास गये । साहित्यकार ने बड़ी विनम्रता से कहा कि इस का उपयोग किसी धर्मार्थ कार्य में कर लें ।

मंत्री ने कहा, "अगर इस राशि को हम अपने 'विशेष कोष' में शामिल कर लें तो आप को कोई एतराज तो न होगा ?"

साहित्यकार बोले, "पर 'विशेष कोष' का उद्देश्य क्या है ?"

"इस की सहायता से हमें आगामी वर्ष और अच्छे साहित्यकार बुलाने में सहायता मिलेगी," मंत्री ने उत्तर दिया ।

तोड़ो, तोड़ो

तोड़ो, तोड़ो, ओ अनस्पृश्य, ओ महाख्यात
विस्मृत-संचेता अन्तर्भुक्ता सांझ का भ्रम
तोड़ो अवचेतन के उभार, ओ गंध-पवन
मृगजल-यात्री की द्रुत अन्तर्गत लहरों का क्रम

तोड़ो अलीक निर्धारित कुंठित सपनों को
तोड़ो स्थिर विगत-वयस्का तृष्णा की कारा
तोड़ो नभ में ही उगा कुम्हलाया तामस
कुंठित घटिकाओं का अनगायापन सारा

तोड़ो उत्कंठित उर्वरता के बीजांकुर
ऋतु-आह्वानित स्वाती के पकने के पहले
तोड़ो अंकित दर्पण की सहमी छांहों में
रंगीन इशारों के जकड़े अनुबंध ढले

तोड़ो पावन भावना के मृत भुजपाशों को
औन्नति से बिछुड़ गया जिन का आशय बुझ कर
तोड़ो अनार्त गौरव नक्षत्रों का अनुशय
तोड़ो अतमय का अंतर्हीन काष्ठक दुस्तर

— अंचल —

फाटक पर संतरी रोकता है—"पास !"

"मैं यहीं काम करता हूं," वह धीरे से कहता है, क्योंकि वह समझता है कि उस के ये शब्द 'पास' का ही काम करेंगे ।

संतरी नहीं मानता । वह उत्तर चाहता है कि उस के पास 'पास' है कि नहीं ।

"नहीं," वह दयनीय भाव से उस की ओर देखता है, लेकिन उसे बता नहीं पाता कि उस के पास 'पास' क्यों नहीं है । क्या कहे कि अपने यहां के बाबुओं से रोज-रोज याचना करते वह थक गया है और वे अपना समय ले कर ही कुछ करेंगे ?

नहीं कह पाता । केवल इतना कह पाता है—"भई बन जायेगा । अभी दिल्ली आये मुझे थोड़े दिन ही तो हुए हैं ।"

संतरी उस पर विश्वास कर लेता है और वह तेज कदमों से इमारत के भीतर की ओर लपकता है ।

लिफ्ट !

नहीं, वह लिफ्ट पर चढ़नेवालों की पंक्ति काट कर अपने कमरे की ओर बढ़ता है । लिफ्ट के इंतजार में और समय लग सकता है ।

दफ्तर अभी सुनसान पड़ा है । उस के दूसरे साथी अभी नहीं आये हैं । समय पर यहां कोई नहीं आता । किन्तु एक दिन वह देर से आया था तो बास सब केबिनों के दरवाजे खोल-खोल कर देख रहा था ।

उस के मन में कुछ रंज होता है । गिला हो भी तो कैसे जाहिर कर सकता है ?

अपनी केबिन में घुसता है और जोर से उस का दरवाजा बंद करता है, ताकि बास यदि हो तो उसे पता चल जाये कि वह आ गया है ।

हां, आ गया है वह, लेकिन उस की मेज को किसी ने पोंछा नहीं । जगह-जगह चाय के प्यालों के निशान लगे हैं । कहीं-कहीं धूल भी अटी पड़ी है ।

झुक कर पंखा खोलना चाहता है, लेकिन पंखा बंद ही रहना चाहता है । फिर कोशिश करता है । स्विच को इधर-उधर घुमाता है, लेकिन पंखे में कोई हरकत नहीं होती । पंखे के तार के साथ टेबिल-लैम्प का तार भी जुड़ा

● श्रवण दिव्य

हुआ है। इसलिए लैम्प भी नहीं जल रहा है।

केबिन के दूधिया शीशे में से बाहर बैठे चपरासी का साया-सा दीखता है। शायद उस की सहायता से पता चल पड़े। घंटी बजाता है। लेकिन उस साये में कोई हरकत नहीं होती। फिर बजाता है। इस बार साया थोड़ा हिला है, लेकिन फिर स्थिर हो गया है। अब देखता है कि उस साये के पास एक और साया भी है। फिर ज़ोर से घंटी का बटन दबाता है। यहां टन-टन बजती है, लेकिन साये आपस में ऐसे गुथे हुए हैं जैसे एकरूप हो गये हों।

उठता है और उठ कर बाहर आता है। साये भी जैसे एकाएक लोप हो गये हैं। बाहर कोई चपरासी नहीं। इधर-उधर नज़र दौड़ाता है, लेकिन चपरासी नज़र नहीं आता। एकाएक चिढ़-सा उठता है वह, और उसी चिढ़ में दफ्तर से बाहर आता है। देखता है, दरवाज़े के पास दोनों चपरासी खड़े बीड़ी पी रहे हैं और जम्हाइयां भी ले रहे हैं।

कुछ नहीं बोल पाता उन से और वैसे ही अंदर चला आता है। चपरासी भी उस के पीछे-पीछे भागे चले आ रहे हैं। क्यों? देखता है कि साहब दरवाज़े तक आ पहुंचे हैं।

तपाक से सावधान हो कर दोनों चपरासी साहब को सैल्यूट मारते हैं और साथ में वह भी उन को 'विश' करता है और साहब अपने कमरे की ओर, उन की ओर किंचित देखते हुए, निकल जाते हैं। साहब के निकल
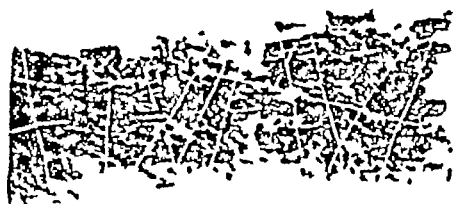
जाने के बाद दोनों चपरासी रास्ते में रखी अपनी-अपनी कुरसियों पर डट कर बैठ गये हैं। उन की बीडियां न जाने कहां से फिर प्रकट हो गयी हैं।

"भई, जरा मेरे पंखे को तो देख दो," वह मिन्नत से कहता है।

चपरासी एक क्षण के लिए उस की ओर देखते हैं, लेकिन उत्तर देना उचित नहीं समझते। वह फिर अनुरोध-भरे स्वर में कहता है। इस बार उत्तर तुरंत आता है, "आप 'डीलिंग क्लर्क' से कहिये। वह बिजलीवाले को फोन कर देगा।"

डीलिंग क्लर्क! हां, उसी से कहना चाहिये था—उसे अपनी भूल पर अफसोस होता है। और वह प्रशासनिक कक्ष की ओर बढ जाता है।

"गुडमार्निंग, फ्रेंड," वह क्लर्क को संबोधित करते हुए कहता है, "मेरा पंखा काम नहीं कर रहा है।"

डीलिंग क्लर्क का जैसे मूड भंग हो गया है। वह आराम की मुद्रा में अपनी कुरसी पर अधलेटा-सा, कुछ-कुछ आंखें बंद किये, सिगरेट का आनंद ले रहा है। आंखें वह खोलता है और अपने बिखरते आनंद को समेटते हुए कहता है, "बादशाहो, अभी आ कर बैठा ही हूं। जरा सांस तो ले लेने दिया होता।"

वह कहता है, "भई, गरमी का मौसम है, इसलिए मेरे लिए वहां बैठना बहुत मुश्किल है। आप किसी को मेहरबानी करके बोल दीजिये।"

पास में कार्यालय-अधीक्षक महोदय भी मग्न रहे हैं। उन को भी शायद उन की बात नागवार गुजरती है। "भैया, ये टेकनीकल लोग भी कभी चैन नहीं लेने देते," वे झुंझलाहट में कहते हैं, "कभी पंखा नहीं चलता। कभी 'गेट-पास' चाहिये। कभी सी एच एस का कार्ड तुरंत बनवा दो। कभी हाउस-अलाटमेंट के फार्म चाहियें—अभी आये दस दिन हुए नहीं और रोज-रोज का तकाजा!"

उसे इतने लंबे उत्तर की अपेक्षा न थी। उस का धीरज जैसे टूटने को होता है, लेकिन वह उसे टूटने नहीं देता, "हां, मैं ने आप को अपनी सर्विस-बुक तथा एल. पी सी मंगवा लेने को भी कहा था। यदि आप मेरे दफ्तर से जल्दी मंगवा लेंगे तो मुझे भी तनख्वाह मिल जायेगी। आज पंद्रह तारीख होने को है!"

"कैसे संभव है इतनी जल्दी सब कुछ?" वे बडबडा उठते हैं, "मेरी अपनी एल. पी. सी तीन महीने में आयी थी। सर्विस-बुक को आने में डेढ साल लगा था और . . ." वे बहुत कुछ कहना चाह रहे हैं, लेकिन उन की बात बीच में ही रह जाती है, क्योंकि बडे साहब ने उसे पेश होने को कहा है।

"गुडमार्निंग सर," वह साहब को फिर 'विश' करता है, और कुरसी ले कर उन के सामने बैठ जाता है।

साहब जानना चाहते हैं कि उसे कोई तकलीफ तो नहीं है।

तकलीफ? नहीं, उसे कोई तकलीफ नहीं है। "आ' एम पर्फेक्टली ऐट ईज सर," वह कह देता है, लेकिन उस के भीतर जबरदस्त कशमकश होने लगती है। क्या वह अपने भाव व्यक्त कर दे? उसे कठिन अभिनय करना

पड़ रहा है।

साहब चाहते हैं कि यदि उन्हें कुछ तकलीफ नहीं है तो वह उठ कर काम करें, क्योंकि उन्हें बहुत एप्लिकेशनें डिस्पोज़ करनी हैं। छः महीने से उन के पास उन के स्थान पर कोई आदमी नहीं था।

हां, वह उठ कर काम करेगा, ज़रूर करेगा—वह उन को आश्वासन देता है। लेकिन . . . वह आगे कह नहीं पाता। शिकायत करोगे तो और परेशान हो जाओगे—उसे एक साथी की हिदायत याद आती है। लोग बात-बात पर बदले लेंगे, दफ्तर में घुसना हराम कर देंगे।

भीरुता ने जैसे उसे अपने वशीभूत कर लिया है। नहीं-नहीं, वह बोलेगा, ज़रूर बोलेगा। वह मन ही मन दृढ़-प्रतिज्ञ होता है। लेकिन फिर भी मुंह से शब्द नहीं निकालता और धीरे से उठ आता है।

बाहर आता है तो देखता है कि दोनों चपरासी अपनी-अपनी कुर्सियों में ऊंघ रहे हैं। क्या जगाये इन को? नहीं-नहीं, सोने दो, सोने दो इन को। उसे इन से कोई काम नहीं।

वह अपनी केबिन का दरवाजा खोलता है और अनमना-सा अपनी सीट पर बैठ जाता है। उस के पीछे पीछे उस का साथी भी आ पहुंचा है और किंचित मुस्करा कर अपनी सीट की ओर बढ़ जाता है। उस के हाथ में एक भरी हुई बोतल भी है।

"क्यों, पंखा काम नहीं कर रहा है?" वह अपने माथे का पसीना पोंछते हुए पूछता है।

उत्तर में वह थोड़ा मुस्करा देता है।

साथी अपनी बोतल का ढक्कन खोलता है और उस को गिलास में उड़ेलने लगता है। फिर स्वयं ही स्पष्टीकरण में कहता है कि वह बोतल में उबला हुआ पानी लाया है, क्योंकि बाढ़ के कारण नलों में गंदा पानी होने से भयानक रोगों के होने की आशंका उत्पन्न हो गयी है।

साथी ठीक ही कहता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रति ऐसा ही मोह होना चाहिये।

"तुम क्यों नहीं एक नोट लिखते कि दफ्तर में उबला हुआ पानी मिलना चाहिये?" साथी उसे सुझाव देता है, "तुम नोट लिखो और मैं भी उस पर सिग्नेचर कर दूंगा।"

वह थोड़ा हंस कर बात को टाल देता है और मनाता है कि उस के बेजान तन में जान आ जाये।

उस का साथी अपनी जेब से एक बीड़ी निकालता है और ज़रा ओट करके उसे सुलगाता है। केबिन में बीड़ी का धुआं अजब-सी घुटन भर देता है।

क्या करे वह? कैसे करे वह?

वह अपनी उधेड़-बुन में लगा रहता है।

उस के साथी का स्वर उस के कानों में फिर टकराता है। "जानते हो मैं बीड़ी क्यों पीता हूं?" वह कहता है।

नहीं, वह इस बारे में कुछ भी नहीं जानता, किन्तु इतना भर जानता है कि अब वह महंगाई-भत्ते के बारे में कुछ कह रहा है। वह कह रहा है कि हम को सरकार की नीति का विरोध करना चाहिये, क्योंकि 'रिलीफ' तुरंत न मिल

कर यदि छह मास के बाद मिली तो वह अर्थहीन होगी। महंगाई देखो किस कदर बढ़ गयी है। ऐसी 'क्राइसिस' पहले कभी नहीं हुई। इतिहास देखो, क्रांति होने से पहले प्राय ऐसी स्थिति ही उत्पन्न हुई है।

उस का साथी एक सांस में ही बहुत कुछ कह गया है। लेकिन 'क्राईसिस' शब्द उसे काफी छू गया है, और वह सहज ही कह उठता है—"हां 'क्राइसिस आव फेथ! क्राइसिस आव फेथ!' —जब व्यक्ति को व्यक्ति के प्रति विश्वास नहीं रहता, जब विश्वास की जड़ें खोखली हो जाती हैं, जब सब अविश्वास की घुटन में घुटते रहते हैं।"

इसी बीच उस का साथी उठ कर कहीं चला गया है। वह चाहता है कि कुछ काम करे लेकिन बिना रोशनी तथा हवा के कुछ भी करने को मन नहीं होता, और ऐसे ही हाथ पर हाथ धरे वह बैठा रहता है। हां, यह 'क्राइ-सिस आव फेथ' ही है, वह एक बार फिर अपने मन ही मन में कहता है।

उस का साथी लौट आया है। वह कह रहा है कि जब हमारी 'वर्किंग कंडी-शंस' इतनी 'पुअर' हैं तो हम से काम की कोई क्या उम्मीद कर सकता है। वह कह रहा है कि पंखा न चलने के कारण उस का 'मूड' खराब हो गया है। वह फिर कहता है कि रात भर उस को नींद नहीं आयी, इसलिए उस की आखों में पीडा हो रही है। वह फिर कहता है कि एक 'डेंटल सर्जन' से उस का 'अप्वाइंटमेंट' है और उसे जाना है।

उस का साथी कुछ न कुछ कहे जाता है। वह कहता है कि 'सेक्स' का अर्थ आदमी और औरत के लिए अलग-अलग है। वह कहता है कि औरत की 'सेक्सुअल इम्पल्स' प्यार से अलग नहीं की जा सकती, जब कि आदमी की 'प्योरली सेक्सुअल' भी हो सकती है। वह कहता है कि महंगाई-भत्ता यदि समय पर न बढ़ाया गया तो चप-रासी-क्लर्क भूखे मर जायेंगे। वह कहता है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली विज्ञानोन्मुख होनी चाहिये।

सुनते-सुनते एकाएक उस के कान बंद हो गये हैं और वह सुन नहीं पाता तो उस का साथी थोड़ी देर के लिए फिर बाहर चला जाता है और फिर लौट आता है।

ऐसे उस के साथी ने पचास चक्कर लगाये हैं और अब शाम होने को आ गयी है।

वह भी आज दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा है। शायद कल भी बैठा रहेगा, शायद परसों भी

अब दोनों बार-बार घड़ी की तरफ देखते हैं और एक-दूसरे की तरफ भी, और देख-देख कर मुसकराते हैं।

हां, वे बार-बार घड़ी की तरफ देखते हैं कि कब पांच बजें और कब छुट्टी हो।

"आप को अपने दूसरे उपन्यास का 'प्लाट' कहां से मिला?"
"अपने पहले उपन्यास के फिल्मीकरण से।"

प्रकाश सक्सेना
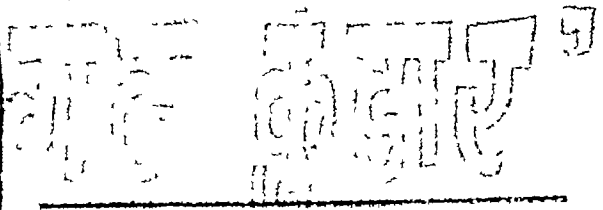
प्रत्येक सफल कथा-कृति में कुछ पात्र इतने जीवन्त होते हैं और वे पाठक की संवेदनशीलता को इतना झकझोर देते हैं कि वह मानने को तैयार नहीं होता कि वास्तविक जीवन में रचयिता से उन की भेंट न हुई होगी । आज भी अनेक साहित्य-रसिक अंगरेजी तथा फ्रांसीसी नाटकों और उपन्यासों के पात्रों को इटली और फ्रांस के पुराने नगरों में खोजते हुए देखे जा सकते हैं । फिर सदा ऐसा भी नहीं होता कि पात्रों का निर्माण करते समय कथाकार की दृष्टि में उन का वास्तविक प्रतिरूप कभी रहता ही न हो । उस के हृदय के गुह्यतम प्रदेश में कुछ स्मृतियां, कुछ झलकियां अवश्य पड़ी होती हैं, जिन के विषय में वह भले ही आजीवन मौन रहे, परन्तु पात्रों को गढ़ते समय वे अनायास उस के मानस-चक्षुओं के समक्ष नाचने लगते हैं । इन्हीं स्मृतियों और झलकियों को कथाकार अपने सारे कौशल का अर्घ्य चढ़ाता है । कुछ स्मृतियां इतनी पवित्र और सुखद होती हैं कि कथाकार उन पर किसी प्रकार का अनाचार सहन नहीं कर सकता और इस कारण उन के पात्रों में एक अभूतपूर्व गरिमा का उद्भव होता है । यह तो जब कहीं आ कर जैनेन्द्रजी ने अपनी नायिका की खोज का भेद श्रीमती अमृता प्रीतम को बताया है—

"मैं कोई बारह-चौदह वर्ष का बालक था जब हमारे पड़ोस में एक लड़की रहा करती थी । मैं जब भी उसे देखता था मुझे ऐसा लगता था जैसे उस के बदन पर शबनम के वस्त्र हों ।"

यद्यपि वह फिर कभी नहीं दिखायी दी, परन्तु जैनेन्द्रजी ने उस का कल्पित नाम 'महारानी' रख लिया और वह उन के उपन्यासों की नायिका

हुई। इसी प्रकार यशपाल और अज्ञेय के भी अनेक पात्र जाने-माने व्यक्ति हैं।

सामाजिक उपन्यासों में जहां कथाकार को एक प्रकार की अबाध स्वतंत्रता होती है, ऐतिहासिक पात्रों का बंधन उसे मनमानी नहीं करने देता। परन्तु मैं ने जब-जब श्री वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास 'गढ़ कुंडार' पढ़ा, मुझे उस की प्रधान नायिका 'तारा' के चरित्र में एक असंगति-सी प्रतीत हुई है। उपन्यासकार उस भोली-भाली बालिका को जबरदस्ती देवी के स्थान पर प्रतिष्ठित करने में सचेष्ट है। उस के व्यक्तित्व में सहज माधुर्य, त्याग, उत्सर्ग और अटूट संयम के गुणों को कूट-कूट कर भरा गया है। आरम्भ से ही कथाकार इस चरित्र को एक निराली भूमि पर स्थापित करने में तत्पर दीखता है।

'गढ़ कुंडार' उपन्यास में प्रथम बार जब तारा के रूप का वर्णन आता है तो लेखक उस पतली अंगुलियों और मुंदे हुए कमल सदृश पहुंचेवाली कन्या के लिए यह लिखना नहीं भूलता—

"आंखों के किसी कोने में छल-कपट या अविश्वास की किंचित छाया भी नहीं मिल सकती थी। आकृति से ऐसी लगती थी जैसे देवी हो—दुर्गा नहीं, किन्तु ब्राह्ममुहूर्त की अधिष्ठात्री ऊषा, ऋषियों के होम का आशीर्वाद, विष्णु के पुजारियों की पूजा।"

इस के आगे भी जहां अवसर मिलता है लेखक इस प्रेम की देवी की पवित्रता के पहलू को बार-बार उभारता है—

"जिस समय तारा घाटियों के बीच में से मैदान में निकल पड़ती थी, ऐसा जान पड़ता था जैसे हिमालय से गंगा नि:सृत हुई हो।"

हेमवती से बातचीत करते समय तारा की आंखों में आंसू आ जाते हैं। कथाकार यहां भी नहीं चूकता। अगले वाक्य में ही नग जड़ा जाता है—

"जैसे देवताओं ने समुद्र को मथ कर रत्न निकाला हो।"

इसी प्रकार अग्निदत्त के स्वास्थ्य-लाभ का विश्वास हो जाने पर तारा की मुखमुद्रा का वर्णन करते हुए लेखक लिख जाता है—

"इसलिए मुखमुद्रा पर उसी तरह के सौंदर्य का गौरव झलक आया था जैसा पानी बरस जाने के पश्चात संगमरमर की चट्टान पर धुली हुई चंद्रिका के छिटकने का हो।"

आखिर इस अपार पवित्रता का निरन्तर आग्रह क्यों चल रहा है? दिवाकर और तारा का एक-दूसरे के प्रति आकर्षण एक साधारण मानवीय स्तर पर क्यों नहीं रहने दिया जाता और क्यों पाठक के स्वाभाविक कल्पना-प्रवाह को लेखक बार-बार अपनी मन-चाही दिशा में मोड़ ले जाना चाहता है?

तारा और दिवाकर के प्रेम में भी दोनों ओर भारी नियंत्रण और आत्मसंयम का प्रदर्शन कराया गया है, जिस की इतनी मात्रा में आवश्यकता नहीं थी। दिवाकर के मन में इस निर्दोष कन्या के प्रति कभी कोई निंद्य भाव ही नहीं उठता। अग्निदत्त की सुश्रूषा, तारा के सर्पदंशन के उपचार

और तीन महीने के व्रत-अनुष्ठान में निरन्तर तत्पर रहते हुए भी किसी प्रकार का प्रेम निवेदन नहीं होता। पूजा करने के बाद भी दिवाकर यही प्रार्थना करता है—

"हे भगवान, यदि मेरे हृदय में स्वार्थ नहीं है तो ऐसी सुमति देना कि वह अपने लिए अपनी जाति का योग्य सुपात्र वर ग्रहण करे और मुझे इतनी शक्ति कि मैं सदा तारा को अपने हृदय-सिंहासन पर बिठलाये रहूं।"

अंत में तारा देवता नदी के तल-घर में बंद दिवाकर की खोज में पहुंचती है। निपट एकांत है। गुदड़ा इतना लंबा नहीं कि तलघर तक पहुंच सके। यह धनशाली स्त्री अपने प्रियतम की रक्षा के लिए आधी धोती फाड़ कर अर्धनग्न अवस्था में ही उतरने का निश्चय कर डालती है। परन्तु, लेखक यहां भी पाठक की कल्पना को भटकने से रोकने के लिए शिव की तरह गंगा को जटाओं में बांधने का असाधारण कौशल करता है।

तारा मन ही मन सोचती है कि यह देह किसी दिन भस्म हो जायेगी। अब और किस काम में आना है। आगे के दो-चार संकेत उपन्यासकार के उद्देश्य को पूर्ण कर देते हैं—

"और वे आंखें ऐसी उज्ज्वल हुई जैसे होम-कुंड में प्रवेश करने के पहले आहुति। यज्ञ की लौ के समान तारा के नेत्र उस चांदनी में जगमगा उठे और उस ने साड़ी को कमर तक पहने रख कर बीच से साड़ी को फाड डाला और कमर से ऊपर कछोटा कस लिया।"

कहीं वासना की गंध मात्र नहीं। निर्मल त्याग की चांदनी छायी हुई है। तलघर में तारा की आंखों से आंसू निकलते हैं, जैसे पवित्र मंदाकिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए हों।

तलघर के ऊपर आ कर जब दिवाकर प्रकृतिस्थ होता है तो कहता है—

"वर्णाश्रम-धर्म हमारी देहों के संयोग का निषेध कर सकता है, परन्तु आत्माओं के संयोग को निषेध नहीं कर सकता। तारा, हम लोग योग-साधना करेंगे।"

युवक-युवती की प्रेम-कहानी में इस अशरीरी आत्मिक प्रेम की उद्भावना की क्या आवश्यकता थी? क्या इस शक्तिवान उपन्यासकार में वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध विद्रोह करने की उस समय भी क्षमता नहीं थी जब आर्य-समाज रूढ़िगत परम्पराओं पर अपने हल चला चुका था? शुचिता और देवत्व का हर स्थल पर आवरण क्यों डाला गया? इन प्रश्नों का समाधान वर्षों तक नहीं हो सका। हर बार मेरे मस्तिष्क में शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' की मिरांडा का ध्यान आता, जिस के व्यक्तित्व में भी नाटककार ने सहज अबोधता, पवित्रता और मृदुता का अपूर्व समावेश किया है। सांसारिक छल-कपट से दूर एक निर्जन टापू में रहनेवाली मिरांडा के चरित्र में तो निर्दोषिता और माधुर्य का प्राबल्य समझ में आता है, परन्तु छल, प्रपंच और क्षुद्रता के वातावरण से ग्रसित कुंडार राज्य के श्रेष्ठी विष्णुदत्त पांडे

की कन्या मे इन उदात्त भावों का समाहार उपन्यासकार को क्यों करना पडा ?

इन प्रश्नों का समाधान तब तक नही हो सका जब तक कि शर्माजी से परिचय होने के उपरान्त मेरी उन से यथेष्ठ घनिष्ठता नहीं हो गयी। 'तारा' अब भी मेरे दिमाग से उतरी नही थी। बड़ी कठिनाई से एक दिन भेद खुल सका—

"पिताजी तब गरौंठा तहसील में नौकर थे। गरमियों की छुट्टियों में गरौंठा अधिक रहना होता था। दिन भर लखेरी नदी में तैरना, उस के दहों में भटकना, अखाड़े में कसरत और कुश्ती का कार्यक्रम रहता तो रात मे कभी-कभी साड़ियों के पर्दे लटका कर नाटक भी खेले जाते। पड़ोस के स्त्री-बच्चे इन नाटकों को बडी रुचि से देखने आते थे। इन्हीं में एक अति रुपवती लडकी भी आती थी, जिस ने एक बार नाटक की समाप्ति पर एकात में पूछा, 'अब फिर कब आओगे और नाटक करोगे ?' उस का नाम मुझे नही पता। परतु यह प्रसग मेरे लिए इतना पवित्र रहा है कि आज तक कभी किसी से इन का जिक्र नहीं किया। मेरे 'गढ़ कुडार' की तारा यही है।"

"फिर कभी वह लड़की आप को मिली या नही ?" मैं ने पूछा।

"नही। उन के बाद कभी उस लडकी को नहीं देखा। और न यह पता कि वह जीवित है या अमरत्व प्राप्त कर गयी।"

अमरत्व तो खैर उस ने उपन्यास में प्राप्त कर ही लिया। हृदय-मंजूषा में इतने यत्नपूर्वक सुरक्षित इस पवित्र स्मृति पर उपन्यासकार कोई अनाचार किस प्रकार सहन कर सकता था। तारा के चरित्र की सारी असंगतियों का जैसे एक समाधान हो गया। इतने वर्षों बाद तारा की खोज पर अतीव संतोष होना स्वाभाविक ही था। और तारा की खोज के बाद तो मैं दावे से कह सकता हू कि धीर प्रधान का बेटा दिवाकर—जिसे काव्य, सगीत, शिकार से प्रेम है और जो कुचक्र से समझौता न कर अपने सिद्धात पर रहते हुए अपने पिता से कह सकता है कि देह आप की दी हुई है और आत्मा भगवान की—कोई अन्य नही बल्कि उपन्यासकार स्वय ही है।

प्रकाश मुह लटकाये हुए स्कूल से घर आया और मां से बोला, "अम्मा, मेरे पेट में दर्द हो रहा है।" मां ने बड़े लाड से कहा, "बेटे, तुम्हारा पेट खाली है। कुछ इस में डाल लोगे तो ठीक हो जाओगे।"

शाम को उस के पिताजी दफ्तर से आये और बोले, "आज सारे दिन मेरे सिर में दर्द रहा।"

रमेश ने तुरन्त कहा, "पिताजी, आप का सिर खाली है। इस में कुछ डाल लेंगे तो ठीक हो जायेंगे।"

○ जयंत मेहता चकित

हर कहानी के पीछे कहानी

जन्म अपना मालवा की राम्य-श्यामला भूमि में एक काफी मोटे गद्दे पर हुआ। जन्म-स्थल का अपने जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ा। खाने-पीने, मिलने-जुलने और ओढ़ने-पहनने में हमें मोटी-भरी चीजें ही अधिक पसंद आती हैं। शायद यही कारण है कि हम अपनी रचनाओं में आदर्श पात्रों को तंदुरुस्त रखते हैं। जहां तक बन सके लुच्चे-लफंगों का वजन हम एक सौ दस पौंड के आगे नहीं बढ़ने देते हैं।

कहते हैं 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' लेखक बनने के लक्षण बचपन में आरंभ से ही थे। दादी बताती हैं, जन्म के चन्द घंटे बाद से ही हम ने रुलने में असाधारण दिलचस्पी लेनी प्रारंभ कर दी थी। पड़े पड़े घंटों छत निहारते। भूख लगती तो किल-कारियां मारते। जागते तो घरवालों के प्रति उदासीनता प्रकट कर मुंह खोल कर सो जाते। बुजुर्गों ने अपनी पसंद पर रोष व्यक्त किया। पालने में पूत के पांव देख वे घबरा गये। उस की मौजूदगी में हमें जबरन दीवार की ओर करवट दिलवायी जाने लगी। काश वे हमारे अंदर के लेखक का निर्दोष कौतूहल पहचान कर दमन की नीति न अपनाते! इसी कारण अपनी कहानियां बताती हैं कि किस तरह बुड्ढों के साफ हो जाने पर घर का वातावरण जीने काबिल बन गया। ('मृत्यु का सौंदर्य')

रट्टू शिक्षा-प्रणाली से अपन ने कभी समझौता नहीं किया। पिताजी ने स्कूल से उठा लिया। उन्हें पूरा भरोसा था कि 'अगर इसे टैक्सी दिला देंगे तो कोई वजह नहीं कि यह न कमा खाये।' हम उन की आशाओं को पूरा करते, इस के पहले ही उन के एक मित्र ने हम में न जाने कौन-सी छिपी प्रतिभा देख ली और जोर दे कर मिडिल में भरती करवा दिया। हम ने उन की लाज रख ली। सारे महल्ले को चकित करते हुए हम मिडिल और नवीं से सफा निकल गये। दसवीं में आ कर शिक्षा-प्रणाली में 'दण्ड का विधान' पर गणित के मास्टर से सैद्धान्तिक मतभेद हो जाने से स्कूल छोड़ दिया। यही के असर से अपन ने अपनी एक कहानी में गणित के मास्टर के हाथ से एक
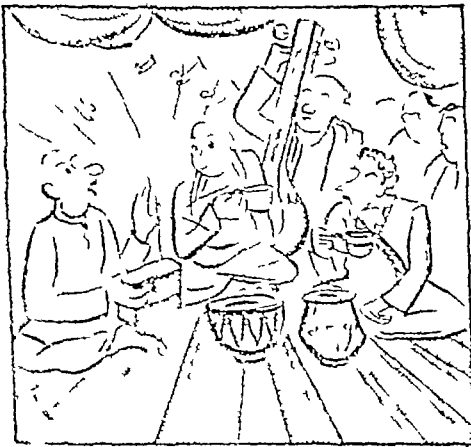
"जब तक आप चाय पी रहे हैं, बोरियत दूर करने के लिए जरा 'सीलोन' सुन लूं।"

कोमल विद्यार्थी को अधमरा करवाया और फिर भारतीय न्याय-व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए उस निर्दयी से पचीस साल तक चक्की चलवायी। ('शिक्षक या राक्षस ?')

बचपन में मां ने हमें रामायण' महाभारत, शिवाजी तथा महाराणा प्रताप की कहानियां कभी नहीं सुनायीं। इन अमर ग्रन्थों के बारे में हम इतना ही जानते थे कि ये गीता प्रेस, गोरखपुर की अमूल्य देन हैं। वैसे इन महापुरुषों के बारे में नौकर ने अवश्य जानकारी दे दी थी कि किस चतुराई से राणा प्रताप ने अकबर को बघनख से मारा और कैसे शिवाजी ने शब्दवेधी बाण से महमूद गजनवी का काम तमाम किया। मां की शिक्षा-प्रद कहानियों में यही संदेश रहता था कि 'खबरदार ! भागते चोर का पीछा न करो, जान का खतरा है। सड़क पर कुत्ता दिखायी दे तो सांस रोक कर लेट जाओ, वह सूंघ कर आगे बढ़ जायेगा। एकांत में कोई माचिस मांगे तो चुपचाप हाथ की घडी उस के हवाले कर दो, अगर भला आदमी होगा तो स्वयं वापिस कर देगा।' गर्ज यह कि इस क्षत्रिय-कुल-भूषण लेखक को उन्होंने इस योग्य बना दिया है कि जब भी यह मरे तो केवल खटिया पर, लम्बी बीमारी से। यही कारण है कि अपनी कहानियों में साहस की बडी आग्रहपूर्ण योजना रहती है। कभी हम अपनी कहानी में मेज पर छुरा गाड कर नकल करने-वाले छात्र को छुरा भोंक देते हैं ('शिक्षक का दायित्व'), तो कभी पूरे

बदन पर साबुन मल नगर-निगम के नल पर नहाने का उपक्रम करते हैं। ('गर्मी कम, धुआं अधिक')

कहानी लिखने की प्रथम प्रेरणा कुछ विचित्र रही। बचपन में अक्सर झगड़े हुआ करते थे। झगड़े के बाद जितनी जल्दी हो सके, शत्रु दुश्मन का नाम रख एक पिल्ला पाल लेते थे। पिल्ले के द्वारा शत्रु का मान घटाने में बड़ी सुविधा रहती थी। धीरे-धीरे जब शत्रु-शिविरों में भी लेखक के नाम के इतने कुत्ते पल गये कि महल्ले में निकलना मुश्किल हो गया, तब हम ने दूसरी नीति अपनाने की सोची। मानसिक विकास हो चला था। समझ में आ गया, इस से सस्ता तो यही है कि कहानी लिख कर नालायक चरित्रों पर दुश्मन का नाम और हुलिया फिट कर दिया जाये। बस, तभी से यह सरस्वती की साधना जारी है। स्पष्ट है अपनी कहानियां सोद्देश्य रहती हैं। उन में एक कसक रहती है, और शायद इसीलिए अभिव्यक्ति की ईमानदारी भी।

उम्र के साथ-साथ हम यथार्थवादी हो चले हैं। अब हम अनुभव करते हैं कि कहानी लिखने के लिए, एक सीमा तक, लेखक की सांस चलना आवश्यक है—और सांस चलाने के लिए आटे की व्यवस्था।

इधर अपनी कहानियों में पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने की तीव्र छटपटाहट होने लगी है। कई प्रयोग आप कर रहे हैं। जहां मौका मिला, स्टाफ-रूम में प्राध्यापकों के बीच शासन के समाजवाद पर लम्बी बहस छिड़वा देते हैं। ('तुम मुझे वोट दो, मैं तुम्हें फोटो दूंगा')

जब सुविधा हुई हम नीना के जूड़े में राजेश से फूल लगवाते हुए कहलवाते हैं, "जानती हो, नीना! चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में निजी और सहकारी क्षेत्रों के उद्योगों में संतुलन स्थापित करने का लक्ष्य रखा गया है।" ('बाजरे के खेत में ढलती शाम')

अब लिखना कम होता जा रहा है। गोष्ठियों में अधिक समय निकल जाता है। घटनाओं और कुंठाओं के शिकार आजकल हम कम हो रहे हैं। उन की होमियोपैथी अधिक करते हैं।

विटू के घरवालों ने किराये का मकान छोड़ कर अपना घर बनवा लिया। एक बार उस की मां उसे साथ ले कर पुराने मकान में गयीं। वहां जो नये किरायेदार थे, उन का एक बड़ा प्यारा बच्चा था। विटू को वह बहुत पसंद आया। घर लौटते समय वह मां से बोला, "अम्मा, वह घर छोड़ कर हम ने बड़ी गलती की। थोड़े दिन अगर हम वहां और रह जाते, तो वह बच्चा हमारा होता।"

उर्दू कहानी

रजिया फसीह अहमद

पहली बार बर्फ पड़ती देखने की आशा में उस रात दिल में कैसी गुदगुदी-सी हो रही थी! दिसम्बर के मध्य में लगातार दो दिन ओले गिरने से हिमपात होने का विश्वास हो गया था। किसी प्रतीक्षित अतिथि के
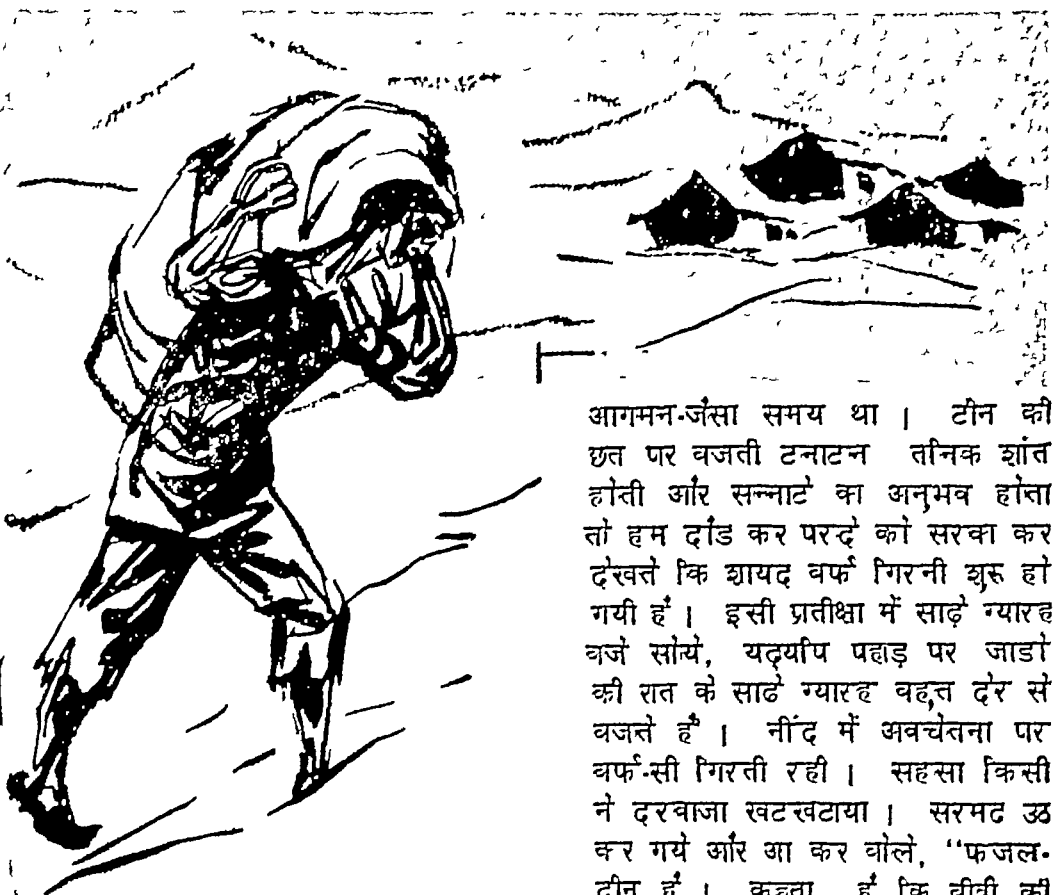
आगमन-जैसा समय था। टीन की छत पर बजती टनाटन तनिक शांत होती और सन्नाटे का अनुभव होता तो हम दौड़ कर परदे को सरका कर देखते कि शायद बर्फ गिरनी शुरू हो गयी है। इसी प्रतीक्षा में साढ़े ग्यारह बजे सोये, यद्यपि पहाड़ पर जाड़ों की रात के साढ़े ग्यारह बहुत देर से बजते हैं। नींद में अवचेतना पर बर्फ-सी गिरती रही। सहसा किसी ने दरवाजा खटखटाया। सरमद उठ कर गये और आ कर बोले, "फजल-दीन है। कहता है कि बीबी की तबीयत खराब है।" मैं घबरा गयी, क्योंकि मुझे मालूम था कि उसे क्या बीमारी है। "उस से कहो, किसी दाई को बुलाये। मैं भी चलती हूं," मैं ने कहा। फजलदीन यहां का चौकीदार भी है, जमादार भी और मालिकों की अनुपस्थिति में मालिक

भी। नौकर ने फ़ज़ली का पक्ष भी करता है। वह झूठ बहुत बोलता है। किरायेदारों से रुपये ले कर आधे खुद खा जाता है। ठर्रा पी कर बीवी को मारता है। क्रोध में आ कर लोगों के सिर भी फोड़ देता है। फिर

रात के उस सन्नाटे में इस बेपनाह सर्दी के बावजूद उस क्वारी बर्फ पर चलना कितना भला प्रतीत हो रहा था—बर्फ पड़ती देखने की इच्छा अब भी पूरी न हुई थी।

फज़लदीन की बीवी प्रसव-पीड़ा में

भी उस के दुख में उस का साथ न देना मानवीयता के विपरीत था।

दरवाजा खोल कर मैं बाहर निकली तो आंखों में चकाचौंध-सी हो गयी। रात की स्याही में बर्फ की सफेदी कितनी सुन्दर लग रही थी। बर्फ उस नटखट अतिथि की तरह हमें जुल दे गयी थी जो दिन भर प्रतीक्षा करवाये और रात को आ कर घरवालों को सूचना दिये बिना अतिथिशाला में सो जाये। मैं इस दृश्य में खो-सी गयी। छतों पर जमे हुए बर्फ के कतले, बर्फ से पटी हुई ढलानें, वृक्षों की बर्फ से बनी फूली हुई बाहें—बर्फ ही बर्फ, रात की कालिमा में जगमगाता हुआ बर्फ का उजाला।

"जाना है तो जल्दी से जाओ," सरमद की आवाज ने मुझे चौंका दिया। मैं ने आगे कदम बढ़ाये।

कराह रही थी। मैं सोचने लगी, अगर दाई समय पर न आयी तो मैं क्या करूंगी? मैं ने तो आज तक किसी को इस दशा में देखा भी नहीं था। मैं उसे सान्त्वना देने लगी। मेरी जबान उसे समझा रही थी और आंखें उस क्वार्टर का निरीक्षण कर रही थीं। छोटा-सा कमरा था, जिस में एक ओर स्टोव जल रहा था, टीन का पाइप ऊपर छत से बाहर निकला हुआ था जिस ने सारे कमरे को खूब गरम कर दिया था। स्टोव पर रखी केतली सूं-सूं कर रही थी। कमरे की दीवारें और फर्श चिकनी मिट्टी से सुघड़तापूर्वक लीपी गयी थीं। इस मिट्टी में सुर्खी थी। दीवारों पर अंगरेजी पत्रिकाओं से कटी हुई रंगीन तसवीरें कीलों से जड़ी हुई थीं। उन में न कोई खास तरतीब थी, न कला फिर भी वे कमरे के वातावरण

को एक सुखद-सी ताजगी दे रही थीं। कमरे में एक ओर दो-एक बाक्स ऊपर-तले रखे थे। अलमूनियम और चीनी के बरतन और कुछ शीशियां थीं। कमरे में केवल एक ही चारपाई थी, जिस पर फजलदीन की बीबी सुर्ख छींट का लिहाफ ओढ़े लेटी थी।

बाहर से बातों और कदमों की धीमी आवाज सुनायी दी। दरवाजा खुला और दो औरतें अन्दर आयीं। एक दाई थी और दूसरी फजलदीन के किसी दोस्त की बीबी। पीछे फजलदीन था, जो दरवाजे के बाहर खड़ा था। खुले दरवाजे में इन औरतों के पीछे से मैं ने देखा कि मुरमुरी-सी सफेद चीज वायुमण्डल में लहराती हुई नीचे आ रही है। जिन्दगी में बर्फ पड़ती देखने का यह पहला अवसर था, इसलिए मैं भूल गयी कि यहां क्यों आयी थी। दाई के आने से भी कुछ निश्चित हो गयी थी। फजलदीन यह कह कर चला गया कि वह बराबर के क्वार्टर में मुहम्मददीन के पास बैठा है। मैं देखती रही। पहले सफेद पाउडर-सा, फिर हलके-हलके रुई के गाले बिना आवाज के गिरते चले जाते। हवा का तेज झोंका आता तो ये गाले वायुमण्डल में आगे-पीछे गोलाई में घूमते और नीचे उतरते, जैसे बहुत-सी चंचल तितलियां एक-दूसरे का पीछा कर रही हों। मैं सोचने लगी—क्या इतनी हलकी-फुलकी नाजुक चीज फुटों से नापी जा सकती है? क्या यह वही बर्फ है जो मकानों के दरवाजे तक ढांप लेती है, जो राह-भटकते यात्रियों को अपने सफेद, ठण्डे चंगुल में दबा कर मार डालती है? भला कैसे! इतनी नाजुक, इतनी हलकी-फुलकी चीज जिस के जमीन और टीन की छत पर गिरने की आवाज तक न हो।

"दरवाजा बन्द कर दो री," दाई ने कठोरता से कहा।

लज्जित हो कर मैं ने दरवाजा बन्द कर दिया और अंगीठी में से झांकते हुए लाल अंगारों को ताकने लगी। दाई और दूसरी औरत अपनी सटर-पटर में लगी हुई थीं। मैं ने यह बात पूरी तरह अनुभव की कि यहां मेरी उपस्थिति फजलदीन की बीबी के लिए उपयोगी हो तो हो, दाई के लिए जरा भी लाभप्रद नहीं। अंदर घुसते ही उस ने जो नजर मुझ पर डाली थी और अब जिस तरह मुझे नजरअन्दाज कर रही थी, उस से स्पष्ट था कि वह मुझे दखल देनेवाले से अधिक महत्त्व देने को तैयार नहीं थी। मैं ने भी उस के काम में बाधक होना ठीक न समझा और स्टोव की गरमी से फायदा उठाते हुए मैं पहली बार पड़नेवाली बर्फ और पहली बार सांस लेनेवाली जिंदगी के बारे में सोचने लगी। कहते हैं जब बच्चा पैदा होता है तो उस का मन और मस्तिष्क एक सादी तख्ती की तरह सफेद और साफ होता है—शायद हमारे घर की छत पर जमी हुई बर्फ की सिल की तरह। आज अपनी कल्पनाओं और विचारों से बर्फ के विचार को अलग रखना कितना कठिन हो रहा था, इस हद तक कि जब मैं ने संसार में आनेवाली आत्मा को पहले-पहल देखा तो वह

मुझे बिलकुल बर्फ के गाले-सी लगी—सफेद, नरम और नाजुक। मैं ने उस के हाथ को छुआ। लम्बी-लम्बी सफेद अंगुलियां हाथ में आयीं, जैसे रुई का फाहा। नन्हे-नन्हे सफेद पांव, हर चीज नन्ही और अविश्वसनीय सीमा तक नरम-नाजुक। क्या यही आदमी फजलदीन भी बन सकता है? पहाड़ की तरह ताकतवर और चट्टान की तरह अटल; दो मन बोझ ले कर पहाड़ की सीधी चढ़ाइयों पर चढ़ता चला जानेवाला; बर्फ पड़ती रात में एक कमीज और पुराने स्वेटर में आसमान तले घूमनेवाला; ठर्रा पी कर बीवी को कोसनेवाला और जरा से मतभेद पर विरोधी के सीने में चाकू घोंप देने की धमकी देनेवाला फजलदीन और यह नन्ही आत्मा! यह कैसे संभव है—अविश्वसनीय!

जब सब-कुछ ठीक हो गया और फजलदीन के दोस्त की बीवी ने फजल को बुला कर 'आल-क्लीअर' होने का सिगनल दे दिया तो मैं भी उस से यह कह कर बाहर आ गयी कि उसे जिस चीज की आवश्यकता हो, निस्संकोच कहलवा दे।

पौ फट रही थी। बर्फ पहले से अधिक हो गयी थी। उस में अब पहली-सी नरम कचर-कचर के बजाय सख्ती आ गयी थी। बर्फ की सफेदी का उजाला आखों को नया और असाधारण रूप से सुन्दर लग रहा था। प्रति दिन उस समय इतना प्रकाश नहीं होता था। यह उस बर्फ की चकाचौंध थी। मेरी दृष्टि बर्फ के ढलवानों पर से फिसलती हुई, सड़क को

लकीरें

चांद मेरा, शुक्र उन का
और मंगल था तुम्हारा
बुध बृहस्पति शनि वरुण यम
और राहु केतु और उन के
यह विभाजन ही अगर करना तुम्हें है
तो बांट कर भी कहां तुम
कौन-सा सुख, शान्ति ऐसी
प्राप्त कर लोगे कि जिस के
लिए तुम यह भूमि छोड़े जा रहे हो

यह तुम्हारा सृष्टि का सीमा-विभाजन
फूल का सौंदर्य सौरभ
अधखिली कोमल कली को
काट चाकू या छुरी से
बांट लेने की तरह है
धूप छाया
तोल कर कांटे तराजू में बिकीं कब
वायु किरणें
मीटरों में नाप कर ली दी न जातीं
चांद पर जा बस रुपहली चांदनी को
फैलने से किस तरह तुम रोक लोगे

युद्ध या अधिकार की परकार से तुम
कल्पनाओं की लकीरें
इस धरा पर खींच गहरे गाड़ खम्भे
बांध उन में तार कांटेदार सीमाएं बना कर
यह समझते हो कि ऐसे ही हवा को
बांध कर तुम
मुक्त नीलाकाश में बहने न दोगे
कोयले से
खींच रेखाएं समुन्दर की सतह पर
क्या लहरियां गिन उन्हें तुम बांट लोगे

— निरंकार देव सेवक —

पार कर चढाई पर होती हुई हिमालय की पर्वत-शृंखला तक पहुंच गयी। अब चोटियों से मुझ तक बर्फ ही बर्फ थी। मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे इन ऊंचे-ऊंचे पहाडों से मेरा कोई सनातन सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

सर्दी ने अपनी श्वेत पताका फहरा दी थी और लोग तेजी से मैदान की ओर उतरने शुरू हो गये थे। देखते ही देखते चारों ओर नीरवता छाने लगी। रही-सही दुकानें भी बन्द हो गयीं और स्कूलों के बन्द हो जाने से एकदम उल्लू बोलने लगे। हम ने भी सामान बांधा, और तीन महीने के लिए नीचे उतर आये।

मार्च में वापसी हुई। दूर के पहाडों पर बर्फ ज्यों-की-त्यों मौजूद थी, किन्तु यहां की बर्फ धूप और वर्षा के थपेड़ों में बह गयी थी। स्थानीय लोगों ने बताया कि इस बार सर्दियों में बहुत बर्फ पडी, किन्तु अपेक्षाकृत शीघ्र पिघल गयी। बर्फ अब भी सड़कों के किनारे तथा छायादार जगहों पर थी। लेकिन किस रूप में। क्या उसे भी बर्फ कहते हैं? सड़क के दोनों किनारों पर जो बर्फ थी उसे सडक साफ करते हुए किनारों पर इकट्ठा कर दिया गया था। छोटे-छोटे, ऊंचे-नीचे बर्फ के ढेर थे जिन में सूखी घास, पत्ते, मिट्टी और कीचड मिली हुई थी।

बस से सामान उतरने लगा। कुलियों में फजलदीन भी था, जो कबाडी से खरीदे गये किसी मेम के फर लगे हाफ-कोट में हास्यास्पद नजर आ रहा था। उस के मजबूत पैरों में टाट के टुकडे बंधे हुए थे। मैं सरक कर एक ओर खड़ी हो गयी और नीचे झांकने लगी। वहां एक नाला बहता है। नाले के ऊपर एक तरफ बर्फ का ढेर था, जिस पर कोयले की स्याही जगह-जगह मौजूद थी। नाले की कीचड किसी भंगी ने निकाल कर उस बर्फ पर फैला दी थी। केले और माल्टों के छिलके, सिगरेटों की खाली डिब्बियां, कागज तथा हर रंग और साइज के चिथडे इस बर्फ में आपस में गुत्थम-गुत्था थे। हाय री बर्फ! इस काली बर्फ को देख कर रोना आया, जैसे किसी गुलनार बच्चे की काली गरदन, फटी एडियां, सुडकती नाक और गंदे-फटे कपडे देख कर रोना आता है। मुझे बर्फ की वे सिलें याद आयीं जो उस पहली रात सारे घरों की छतों पर दूध की कुलफी की तरह जमी हुई थीं और उस के साथ ही मुझे फजलदीन का वह बच्चा याद आया, जो बर्फ के गाले की तरह सफेद और नरम था। फिर मुझे उस रात के उस खयाल का खयाल आया कि जब बच्चा पैदा होता है तो उस का मन और मस्तिष्क एक सफेद और साफ तख्ती होता है जैसे बर्फ की सिल। और तब मैं ने एक बार फिर उस कूडे-भरी स्याह बर्फ पर नजर डाली और झुरझुरी ले कर वापस फेर ली। फजलदीन और उस के साथी भारी सामान सिर पर रखे, मूंज के बने हुए जूतों तले सीली सडक को थपथपाते हुए तेजी से तीखी चढ़ाई पर चढ़ते चले जा रहे थे।

था लेकिन आज उन में से केवल एक था। हम ने अनुमान लगाया कि वह एक तेंदुआ नर ही होना चाहिये क्योंकि मादा बच्चों का साथ नहीं छोड़ सकती थी।

सूर्यास्त होने में केवल डेढ़ घंटा शेष था। हम ने आदिवासियों को हांके के लिए तैयार किया तथा स्वयं इस प्रकार नाकेबंदी कर खड़े हो गये ताकि तेंदुआ रायफल की हद में भी रहे और गोली किसी को लगे भी नहीं। हम लोग मचानों से शिकार खेलना पसंद नहीं करते थे। हांका समाप्त हो गया पर तेंदुआ नहीं निकला। सब परेशान थे कि आखिर तेंदुआ छिप कहां गया। तभी मेरे दिमाग में एक विचार आया। हो सकता है कि तेंदुआ उसी नाके के नीचे छिपा हो जिस पर हम खड़े थे।

"यह कैसे हो सकता है ?" आदिवासियों ने शंका प्रकट की।

"फिर भी देखने में क्या हर्ज है ?" मैं ने कहा।

हांका उस नाके को घेर कर फिर शुरू हुआ और हम लोग नीचे जा कर जम गये। एकाएक तेंदुआ तड़प कर दहाड़ मारता हुआ उछला और हांकेवालों के बीच से छलांग लगा कर भागा। उस के इस तरह अचानक प्रकट होने से हांका करनेवालों में भगदड मच गयी और वे चीखने-चिल्लाने लगे।

मैं और कुंवरसिंह दहाड और चीखने की आवाजें सुन आवाज की दिशा में भागे। हम दोनों ही यह समझ रहे थे कि तेंदुए ने किसी हांकेवाले को

शिकार-कथा
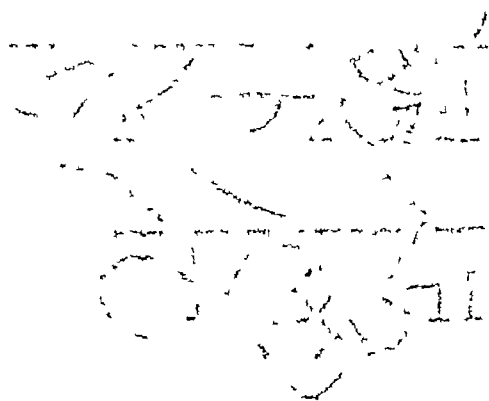
● कुंवर गजराजसिंह

पकड़ लिया है। अचानक कुंवरसिंह ठिठक गये। वे बोले, "सावधान! तेंदुआ इसी ओर आ रहा है।" मैं भी सतर्क हो गया। मुझे तेंदुआ तो नहीं दिखायी पड़ रहा था लेकिन ३०-४० गज की दूरी से उस के दहाड़ते हुए इसी ओर आने का आभास अवश्य हो रहा था। तभी २० गज की दूरी पर वह मुझे दिखायी पड गया। हम दोनों ने रायफलें सीधी की और निशाना लिया। ट्रिगर दबाने ही वाले थे कि तेंदुए का पीछा करते हुए आने वाले २०-२५ आदिवासियों की कतार सामने आ गयी। रायफल का चलाना संभव नहीं था। अब तेंदुआ लगभग दस गज की ही दूरी पर रह गया था। हम लोगों ने उस की बगल से निशाना लेना चाहा। उस के दौडने के साथ हम रायफलें घुमाते हुए निशाना जमाने लगे। जब तेंदुआ कुल पांच गज की दूरी पर ही रह गया तो हम ने फिर ट्रिगर दबाना चाहा। लेकिन

दुर्भाग्य का भी कोई अन्त था ? तभी एक आदिवासी मारे घबराहट के ठीक हमारे सामने आ कर खड़ा हो गया। अब तेंदुआ बिलकुल हमारे सामने था।

"अब तो यह हमारे सिर पर ही आ गया, अब इस से कुश्ती लड़ने के सिवा कोई चारा नही है, "कुंवरसिंह चीख कर बोले। तभी तेंदुए ने दहाड़ते हुए उन की एक भुजा को पकड़ कर इस तेजी का झटका दिया कि वे पके आम की तरह जमीन पर जा गिरे। रायफल उन के हाथों से छूट कर करीब पांच हाथ दूर जा गिरी। अब तेंदुआ उन के ऊपर था और वे नीचे। अचानक उन्होंने तेंदुए को तेजी का धक्का दिया। फलस्वरूप अब वे तेंदुए के ऊपर थे। कुहनियों से उन्होंने तेंदुए के अगले पैरों तथा घुटनों से उस के पिछले पैरों को दबा रखा था। हथेलियों से वे उस के सिर को काबू में किये हुए थे। इस क्रिया में उन का मुंह तेंदुए के मुंह से केवल तीन-चार इंच दूर रह गया था।

"गोली चलाओ . . . गोली चलाओ," वे चीख-चीख कर मुझे आदेश दे रहे थे।

लेकिन मैं गोली कैसे चलाता। दोनों एक-दूसरे से इस तरह गुंथे हुए थे कि गोली तेंदुए को लगने के बजाय उन्हें भी लग सकती थी। मैं देख रहा था कि तेंदुए का कोई खाली अंग दीखे, तो गोली चलाऊं लेकिन दोनों चिपटे हुए हिल भी रहे थे। रायफल तेंदुए के किसी अंग पर टिका कर भी नही चलायी जा सकती थी क्योंकि गोली जमीन से टकरा कर या तेंदुए की चमड़ी को चीर कर भी उन्हें लग सकती थी। "जब तक आप तेंदुए को छोड़ कर अलग नहीं होंगे, मैं गोली नही चलाऊंगा," मैं ने कहा।

"अगर मैं इसे छोड़ दूं तो यह मुझे क्या छोड़ेगा ?" उन्होंने कहा। सचमुच बड़ी विषम परिस्थिति थी। तभी उन्होंने मुझ से कुछ कहने के लिए अपना सिर घुमाया और इस क्रिया में तेंदुए के सिर की पकड़ कुछ ढीली हो गयी। तेंदुए ने तुरंत ही इस का फायदा उठाया। उस ने कुंवरसिंह की बांह मुंह में डाल ली। उन्होंने झटके से अपना हाथ उस के जबड़ों से खींचा। हाथ तो बाहर निकल आया लेकिन तेंदुए ने तुरंत ही उन की पिंडली को नोंच लिया। अब वे फिर से तेंदुए को दबोचने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। "छोड़िये इसे और मुझे गोली चलाने दीजिये," मैं ने चीख कर कहा। उन्होंने तेंदुए को पीछे ढकेला ही था कि मैं ने गोली चला दी। लेकिन किस्मत उस दिन धोखा देने पर ही तुली थी। गोली तेंदुए के पेट की चमड़ी को छीलती हुई जमीन से टकरायी। मुझे दुख था कि दो हाथ दूर पड़े तेंदुए पर मैं ठीक निशाना नहीं लगा पाया था। शायद मैं भी काफी घबरा गया था।

अचानक तेंदुआ कुंवरसिंह का खयाल छोड़ कर मुझ पर झपटा किंतु वह बंदूक की नली पर ही अटक गया। इस तरह मुंह मेरे उस हाथ तक ही पहुंच पा रहा था जिस से मैं ने बंदूक पकड़ रखी थी। उस ने मेरे हाथ से गोश्त का एक बड़ा टुकड़ा नोंच लिया और देखते-देखते निगल गया।

कुबेरसिंह वेहद घायल हो चुके थे लेकिन जब उन्होंने तेंदुए को मुझ से जूझता देखा तो वे घिसटते हुए उस स्थान तक गये जहां उन की रायफल पड़ी हुई थी। वे रायफल से निशाना लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। अब तेंदुए ने मेरी गरदन दबोचनी चाही। इस कोशिश में उस का सिर मेरे कंधे से करीब एक फुट दूर हुआ ही था कि अचानक कुबेरसिंह की रायफल गरज उठी। गोली ठीक तेंदुए की कनपटी पर लगी और वह लुढ़क गया। उसे देखने से पता चला कि वह तेंदुआ मादा थी। हम दोनों काफी घायल थे अतः हम दोनों को चिकित्सा के लिए रतलाम ला कर मिशन अस्पताल में दाखिल कर दिया गया।

मिशन अस्पताल में एक नर्स कुमारी मंगला हमारे शिकार की कहानियां बड़ी उत्सुकता से सुनती थी। उस ने हम से आग्रह किया कि अगले शिकार में जब भी हम लोग जायें, उसे भी अवश्य साथ लें। और वह समय भी शीघ्र ही आ गया। अभी हम पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए थे कि हमारे पास खबर आयी कि मठमठ के जंगलों में एक नर तेंदुआ अपने दो बच्चों सहित बड़ा उत्पात मचा रहा है। वह स्त्रियों को विशेष रूप से अपना शिकार बनाता था। पिछले पांच दिनों में दो औरतों को उस ने खा लिया था। औरतें तेज भाग नहीं सकती अथवा उस का मुकाबला नहीं कर सकती —इसीलिए तेंदुआ औरतों पर ही हमला करता है, यह हम समझ गये। इस से यह भी स्पष्ट हो गया कि वह तेंदुआ बूढ़ा होगा तभी कमजोर प्राणी पर हमले कर रहा है।

दूसरे दिन हमारा दल उस तेंदुए के घूमने की जगह की ओर चल पड़ा। साथ में उत्साही नर्स मंगला भी थी। सूर्योदय के समय हम ग्राम मठमठ में पहुंचे। तय किया गया कि तेंदुए को ललचाने के लिए 'चारा' बांधा जाये। हम उसी जगह गये जहां पहले उस की मादा मारी गयी थी। हम ने साथ में 'चारे' के लिए एक कुत्ता भी ले लिया था। कुत्ते को सांकल द्वारा एक पेड़ से बांध दिया गया। हम लोग कुत्ते से [illegible] गज हट कर झाड़ियों [illegible] ऊपर बैठ गये।

मगला तथा कुंवर हटेसिंह को एक मचान पर बैठाया गया क्योंकि वे दोनों नये शिकारी थे। अब हम लोग तेंदुए की प्रतीक्षा करने लगे।

कुत्ता अपने-आप को अकेला पा कर बुरी तरह चीख रहा था। प्रतीक्षा में चार घंटे बीत गये। मचान पर बैठे मगला तथा कुंवर उकता कर उपन्यास पढ़ने में तल्लीन हो गये थे। फिर दो घंटे और निकल गये, तभी कुत्ता शांत हो कर जमीन से चिपक कर लेट गया। हम लोग सतर्क हो गये। तेंदुआ जरूर ही आसपास है, यह स्पष्ट था। तभी मेरी नजर मगला के मचान के नीचे गयी। उस पेड़ के नीचे तेंदुआ पैर पर पैर चढ़ाये बैठा हुआ कुत्ते की तरफ तिरछी नजर से देख रहा था। अगले मचान पर मगला तथा कुंवर निश्चिंतता से उपन्यास पढ़ने में तल्लीन थे। हमें उन लोगों पर बेहद क्रोध आ रहा था। तेंदुआ हमारी रायफलों की रेंज के बाहर था और आगे बढ़ने से आहट होती। तभी कुंवर साहब को छींक आ गयी। इस आवाज से तेंदुआ चौंका और उछल कर गुर्राता हुआ झाड़ियों में गायब हो गया। तेंदुए की गुर्राहट सुन कर मचान वालों की तंद्रा टूटी और उन दोनों ने हड़बड़ा कर उपन्यास फेंक रायफलें संभाली। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

दूसरे दिन पता चला कि तेंदुआ अपने बच्चों सहित रोज सूर्यास्त के समय पास ही के एक पहाड़ी नाले में पानी पीने आता था। नाले के आस-पास झाड़ियां आदि नहीं थीं, अतः छिप कर नहीं बैठा जा सकता था।

अब एक साहसिक योजना बनायी मगला ने। उस ने कहा कि वह आदिवासी स्त्री के कपड़े पहन कर नाले के पास जायेगी और तेंदुए को देख कर चीखने लगेगी। फिर हम लोग कुछ फासले की चट्टानों से तेंदुए को गोली मार देंगे। आदिवासी वस्त्र इसलिए आवश्यक थे क्योंकि शहरी वस्त्रों को देख कर तेंदुआ कुछ दाल में काला होने का शक कर सकता था।

मगला शाम का धुंधलका होते ही ग्रामीण वस्त्र पहन नाले के किनारे बैठ गयी। हम लोग कुछ दूर की चट्टानों के पीछे छिपे थे। लगभग पौने सात बजे मंगला ने रोना शुरू किया। तेंदुआ अपने दोनों बच्चों सहित उस की ओर बढ़ रहा था। मगला से लगभग २०० गज की दूरी पर आ कर तेंदुए रुक गये। मगला और जोर-जोर से रोने का अभिनय करने लगी। अब तेंदुए समझ गये कि गांव की औरत अकेली डरी हुई है। तेंदुआ तो बैठा रहा और बच्चे आगे बढ़े। किन्तु वे बच्चे हम से लगभग ७५ गज की दूरी पर आ कर खेलने लगे। अब हम सब रायफलें साधे गोली चलाने को तैयार थे। तेंदुआ फिर ५०-६० गज आगे बढ़ा और फिर बैठ गया। अचानक वह मगला पर उछला और तभी तड़ातड़ तीन-चार गोलियों ने उसे बेध डाला। तेंदुए के ढेर होते ही उस के दोनों बच्चे भी उसी ओर दौड़े, शायद पिता की रक्षा के लिए। तभी दोबारा रायफलें गरजी और दोनों के शरीर छलनी हो गये। ●

नवल किरन, भूल गगन, धरती सी हो गयी

निखर हरित दूब मगन
पुरइन के पात सघन
दिन व्यापित कोक-मिलन
विरहिन के तरल नयन
अंकुराये बीज सलज रजनी जो सो गयी

निर्भय भ्रमित चकित हिरन
स्वर्णाभरन मर्मरित वन
लतिका - रत - आलिंगन
कामिनि-कर क्वणित कंगन
कमल-कोष-मुक्त भ्रमर-गानों में खो गयी

परस सरल सरस सुमन
मलयाचल शिथिल पवन
अलसित सरि सरस पुलिन
प्रमुदित शिशु, चपल चरन
पुलक कली-अंग मृदुल, शबनम जो धो गयी

इस गीत के रचयिता श्री राजपति दुबे 'बालेन्दु' को 'कादम्बिनी गीत प्रतियोगिता' में ७५ रुपये का पुरस्कार मिला है। जन्म—५ फरवरी, १९२९, ग्राम मदरावली, जिला मैनपुरी। प्रथम श्रेणी में हाईस्कूल परीक्षा पास की। १९५० से सहायक स्टेशन-मास्टर के पद पर कार्य कर रहे हैं। बंगला, गुजराती, पंजाबी तथा उर्दू का भी अध्ययन किया है। अवकाश के क्षण साहित्य-साधना में लगाते हैं।

स्कूल के हेडमास्टर विद्यार्थियों को मेहनत से पढ़ने की सलाह काफी देर से दे रहे थे। वे कहने लगे, "अब परीक्षा भी नजदीक आ गयी है। मैं चाहता हूं, आप सब अच्छे नंबरों से पास हों। देरी की गुंजाइश अब बिलकुल नहीं रही। प्रश्नपत्र छपने जा चुके हैं। हां, मुझ से कोई सलाह चाहिये, तो आप खड़े हो कर पूछ सकते हैं!"

एकसाथ कई लड़के बोल पड़े, "प्रश्नपत्र किस छापेखाने में छप रहे हैं?"

★

"तुम रामायण का पाठ प्रति दिन करते हो, नन्हे?"

"जी।"

"इस में जो है, वह बता सकते हो?"

"जी हां, मैं सब कुछ बता सकता हूं।"

"अच्छा! तो बताओ हमें।"

"देखिये, इस में दीदी के फोटो, अम्मा के उबटन का नुस्खा, मुण्डन के समय कटे मेरे बालों का गुच्छा और पिताजी के स्कूटर का लाइसेंस है।"

★

मास्टर साहब लड़कों को समझा रहे थे कि कोई जरूरी बात कहनी हो तो पहले पचास तक गिनती गिन लेनी चाहिये और अगर कोई बहुत जरूरी बात हो तो सौ तक गिन लेना चाहिये।

दूसरे दिन जब मास्टर साहब स्प्रिट-लैम्प की तरफ पीठ करे हुए कोई प्रयोग समझा रहे थे तो उन्होंने देखा कि कुछ लड़के बड़ी तेजी से अपने होंठ हिला रहे हैं।

एकाएक पूरी कक्षा चिल्ला उठी, "अट्ठानवे, निन्यान्वे, सौ। मास्साब, आप का कोट जल रहा है।"

★

इतवार की छुट्टी थी। सतीश बड़े प्रेम से लान में बच्चागाड़ी घुमा रहा था। "जरा सुनो," पत्नी ने छत पर से आवाज दी।

"कान मत खाओ," सतीश ने कहा और फिर गाड़ी घुमाने

लगा। पंद्रह मिनट बाद फिर उस की पत्नी ने आवाज लगायी।
इस बार गाड़ी को छोड़ कर रातीश ने झल्लाते हुए कहा, "आखिर मामला क्या है ? आग लग गयी क्या घर में ?"
"नहीं जी, बात यह है कि तुम इतनी देर से बेबी की गुड़िया को सैर करा रहे हो, अब जरा बेबी को भी तो घुमा दो।"

★

कथा समाप्त करने के बाद पंडितजी ने चंदू के सिर पर हाथ रखा और बोले, "बेटा, तुम्हारी आंख कैसे सूज गयी ? मालूम होता है तुम लड़े थे किसी से। मैं भगवान से प्रार्थना करूंगा कि तुम्हारी किसी से दोबारा लड़ाई न हो और फिर कभी तुम्हारी आंख न सूजे।"
"आप बड़े दयालु हैं, लेकिन आप घर जा कर अपने लड़के के लिए प्रार्थना करिये। मैं ने उस की दोनों आंखें सुजा दी हैं।"

★

"सुशील," मास्टर ने कहा, "तुम अपना मुंह क्यों नहीं साफ करते ? तुम्हारा चेहरा देख कर साफ पता चल जाता है कि तुम आज क्या खा कर आये हो।"
"तो बताइये फिर," सुशील ने कहा।
"अरहर की दाल और चावल।"
"आप गलत बता रहे हैं। वह तो मैं ने कल खाया था।"

★

"कल रात स्वप्न में देखा कि मैं ने एक नये प्रकार के नाश्ते का आविष्कार किया है और मैं उसे चख ही रहा था कि . ."
"हां, हां, आगे कहो।"
"मेरी नींद खुल गयी और मैं ने देखा कि चटाई का एक कोना गायब था।"

★

आलोचक : मैं जब तुम्हारे चित्र को देखता हूं तो आश्चर्य करता हूं कि . . .
चित्रकार : कि मैं ने इसे कैसे बनाया ?
आलोचक : नहीं, कि तुम ने इसे क्यों बनाया।

नरेन्द्र धीर

'सोहनी-महींवाल' पंजाब की अति प्रसिद्ध लोक-गाथा है। अनेक लोक-कवियों ने भी इसे अपनी लेखनी का शृंगार बनाया है। इस की विभिन्न कथाएं मिली हैं। फजलशाह द्वारा रचित किस्सा सब से प्रामाणिक माना जाता है। इस का रचनाकाल १८४६ ई० बताया जाता है। प्रस्तुत कथासार इसी पर आधारित है।

चिनाब के किनारे पंजाब के गुजरात जिले में तुल्ला नामक एक कुम्हार रहता था। वह बहुत अच्छा कलाकार था। उस की शासन एवं जनता में भी मान-मर्यादा थी।

तुल्ला के घर की रौनक उस की एकमात्र पुत्री सोहनी थी। वह परम सुन्दरी थी। उस के सौन्दर्य की आभा चर्तुदिक फैल गयी। तुल्ला का कार्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। दूर-दूर से ग्राहक आने लगे।

जब सोहनी सात वर्ष की थी तभी वह कुरान-शरीफ पढ़ने लगी थी। उस की प्रतिभा को देख मौलवी भी चकित था। जब उस की अवस्था लगभग चौदह वर्ष की हुई तो वह घर के कार्यों में भी निपुण हो गयी। उस ने अपनी मां तथा पिता के कार्य का भार हलका कर दिया।

बुखारा नामक नगर में एक धनी मुगल रहा करता था। उस का नाम अली मिरजा था। उस के पास धन तथा मान-मर्यादा की कमी न थी, परन्तु वह नि:सन्तान था। वह सदैव ही चिन्तित रहता कि उस की इस धन-राशि को सम्भालेगा कौन? एक दिन वह एक कन्दरा में जा पहुंचा, जहां उसे एक फकीर के दर्शन हुए। फकीर की दुआ से अली मिरजा के घर एक पुत्र हुआ, जिस का नाम इज्जत बेग रखा गया। इज्जत बेग पढ़ने-लिखने में बहुत निपुण निकला। उस ने कुरान कंठस्थ कर लिया था। वाद-विवाद आदि में वह अपने प्रदेश का होनहार युवक माना जाता था। तीरन्दाजी, नेजेबाजी, घुड़सवारी आदि में वह शीघ्र प्रवीण हो गया। सभी उस का सम्मान करते थे। उसे विभिन्न स्थल देखने का बहुत चाव था।

इज्जत बेग ने अपने बचपन में भारत की अनेक लोक-कथाएं अपने बड़े-बूढ़ों से सुनी थीं। वह भारत को देखने के लिए उत्सुक था, अतः उस ने व्यापार के बहाने भारत आने की योजना बनायी। व्यापार से आय भी होगी और सैर भी। अन्ततः अपने पिता को सहमत करने में वह सफल

सोहनी महीवाल
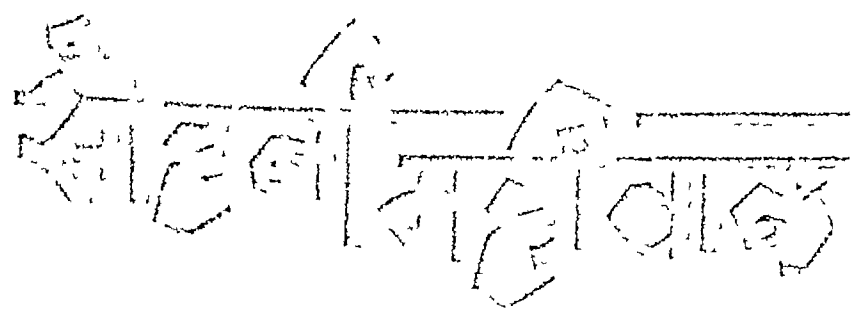
हुआ। पिता ने उस के लिए आवश्यक सामग्री तथा बहुमूल्य उपहार ऊंटों पर लदवा कर उसे भारत-यात्रा के लिए रवाना कर दिया।

मार्ग की दुर्गम घाटियों को पार करता हुआ इज्जत बेग का काफिला दिल्ली जा पहुंचा। वह सम्राट के लिए कुछ उपहार ले कर दरबार में उपस्थित हुआ।

दिल्ली में सम्मान प्राप्त कर इज्जत-बेग लाहौर की सैर के लिए चल पड़ा। लाहौर से वह पंजाब के गुजरात प्रदेश में आ गया। वहां एक सराय में वह ठहरा। इज्जत बेग को भारतीय संगीत बड़ा रुचिकर लगा। उस ने उस सराय में एक संगीत-गोष्ठी का आयोजन किया, जिस की सभी ने बड़ी प्रशंसा की। एक ही रात्रि में इज्जत बेग सम्पूर्ण गुज-रात में प्रसिद्ध हो गया। लोग उस से मिलने आने लगे। एक आगन्तुक ने तुल्ला कुम्हार के बरतनों की कला की अत्यंत प्रशंसा की। इज्जत बेग ने तुरन्त ही अपने सेवक को तुल्ला की दुकान पर भेजा। तुल्ला ने अपनी पुत्री सोहनी से आगन्तुक को बरतन दिखाने को कहा। आगन्तुक सोहनी को देख कर उस के रूप का रसपान करने लगा। बरतनों की प्रशंसा करता करता वह मन ही मन प्रकृति की इस अनोखी कलाकृति की प्रशंसा में तल्लीन हो गया। उस ने एक बरतन खरीदा और स्वामी के पास लौटा।

इज्जत बेग ने उस सुराही की बड़ी प्रशंसा की जो सेवक लाया था। अब सेवक से रहा न गया। उस ने अपने स्वामी से सोहनी के रूप-लावण्य की प्रशंसा की, जिसे सुन कर इज्जत बेग अधीर हो उठा। वह स्वयं बरतन खरीदने के बहाने तुल्ला की दुकान पर जा पहुंचा। तुल्ला की बरतनों की भट्टी चढ़ने को थी। स्वयं व्यस्त होने के कारण उस ने सोहनी को बर-तन दिखाने भेज दिया।

इज्जत बेग के समक्ष सोहनी इस तरह अवतरित हुई मानो बादलों में से चौदहवीं का चांद छिटका हो। बेग उस के रूप को निहारता ही रह गया। बाद में उस ने एक-एक कर सारे बरतन देखे, परन्तु खरीदा एक भी नहीं। उसे तो सोहनी का रूप डस गया था, स्वयं की सुध ही न रही थी। अब सोहनी खीजने लगी।

जब इज्जत बेग को सोहनी के रोष का आभास हुआ तो उस ने तुरन्त ही बहुत-सारे बरतन खरीद लिये। सोहनी ने प्रत्येक बरतन का जो भी मूल्य बताया वही उस ने दे दिया। सराय में पहुंच कर इज्जत बेग की दशा बिन पानी की मछली-सी हो गयी। वह सारी रात तड़पता रहा। प्रात: वह पुन: उस की दुकान पर पहुंच गया। फिर कुछ बरतन खरीदे। व्यापार से धन कमाने की बात इज्जत बेग भूल गया था। अब तो वह प्यार के व्या-पार में लग गया था। उस का धन बरतनों में परिवर्तित हो गया और बरतन प्यार सजोने का साधन बन गये। प्रतिदिन ही दस-पंद्रह बरतन वह खरीदता। तुल्ला को मुंहमांगा धन मिलता। इज्जत बेग ने अब बरतनों की दुकान लगा ली थी। वह अधिक

मूल्य के बरतन लाता और नाममात्र के मूल्य में बेच देता। परन्तु धन कहां तक इज्जत बेग का साथ देता। उस की सम्पत्ति समाप्त हो गयी। उस के सारे साथी धीरे-धीरे उसे छोड़ गये। वह तुल्ला का ऋणी हो गया। ऋण चुकाने के उद्देश्य से उस ने तुल्ला से प्रार्थना की कि वह उसे अपना सेवक बना ले। तुल्ला ने स्वीकार कर लिया। बेग तुल्ला के घर का सारा काम-काज करता। मिट्टी रौंदता, चाक चलाता, घर की सफाई करता, मिट्टी ढो कर लाता। तुल्ला उस की कार्य-कुशलता देख अति प्रसन्न था। अब उस ने बेग को भैंसें चराने का काम सौंप दिया और इस प्रकार वह महीवाल (भैंसों का चरवाहा) बन गया।

जिस सोहनी के लिए वह महीवाल बना था, उस से वह अभी तक प्यार-भरी दो बातें भी न कर सका था। एक दिन अवसर पा कर उस ने अपने हृदय की बात सोहनी के सामने रख ही दी। सोहनी उस के प्रेम का आभास पहले ही पा चुकी थी, वह भी महीवाल पर रीझ गयी।

आंखें चार हो चुकी थीं। लाज का घूंघट उठ गया था। अब दोनों प्रति-दिन ही एक-दूसरे के हृदय की गह-राई मापते। कभी घर में, कभी बाहर, कभी पनघट पर, कभी खेत में, कभी खलिहान में, कभी सुबह, कभी दोपहर, कभी सांझ और कभी तारों की शीतल छाया में वे मिलते।

सोहनी अवसर पाते ही जंगल की ओर चल पड़ती। वहां घंटों वह महीवाल के साथ प्यार की बातें करती रहती, सपनों में खो जाती।

जब प्यार का वृक्ष फल-फूल उठा तो लोगों की आंखों में अखरने लगा। सारे गुजरात में दोनों के प्यार की चर्चा फैल गयी। लोगों ने आ-आ कर सोहनी के मां-बाप को व्यन्य-बाणों से छेद दिया। वे तिलमिला उठे। परन्तु सोहनी का प्यार सच्चा था। उस ने मां-बाप को बता दिया कि वह मही-वाल के लिए जियेगी और उसी के लिए मरेगी। बात हद से आगे बढ़ चुकी थी। अततः तुल्ला ने महीवाल को नौकरी से पृथक कर दिया।

तुरन्त ही सोहनी का विवाह कर दिया गया। वह रोती-बिलखती रही, पर उसे पति के डोले में डाल दिया गया। किस से कहती कि उस के साथ अन्याय हो रहा है! किन्तु सोहनी का भाग्य उस का सहायक ही था। उस का पति नपुंसक था। उस ने अपनी एक दासी द्वारा महीवाल को सूचना भिजवायी कि वह उस से जोगी के वेश में आ कर मिल जाये। महीवाल वेश बदल कर सोहनी से मिलने आया। सोहनी ने महीवाल से कहा कि वह चिनाव के किनारे झोंपडी बना कर रहने लगे और उस से प्रतिदिन रात्रि को मिला करे। महीवाल ने ऐसा ही किया। हर रात को वह सोहनी के लिए एक मछली पका कर ले जाता। दोनों मछली खाते, प्यार की बातें करते और सुबह के तारे के उदय के पूर्व ही पृथक हो जाते। बहुत दिन यही क्रम चला।

आषाढ़ के बादल घिर आये। तूफान के साथ वर्षा उमड़ पड़ी। दिन भर खोजने पर भी महीवाल को कोई

मछली न मिली। वह अपने क्रम में शिथिल नहीं होना चाहता था। उस ने अपनी जांघ की मछली का मांस काट लिया और उस का कबाब पका कर सोहनी के पास पहुंचा।

जब महीवाल सोहनी के पास पहुंचा और उसे उस ने वह कबाब दिया तो सोहनी की बांछें खिल गयीं। उस का प्रियतम इतना आंधी-पानी और नदी की बाढ़ के बावजूद पार आ पहुंचा था। उस ने ज्यों ही कबाब का एक टुकड़ा मुंह में डाला कि उसे उस का स्वाद कुछ विचित्र-सा लगा। उस ने महीवाल से पूछा कि यह क्या वस्तु है। पहले तो महीवाल ने इस घटना को छिपाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह छिपा न सका। सुन कर सोहनी को बड़ा दुःख हुआ। लेकिन अब हो क्या सकता था! उस ने महीवाल से वहां न आने का अनुरोध किया और विश्वास दिलाया कि वह स्वयं ही रात्रि को उस से मिलने चिनाब को पार कर पहुंचा करेगी।

सोहनी हर रात घड़े के सहारे चिनाब पार कर प्रियतम से मिलती और लौट आती। घड़े को वह झाड़ियों की ओट में छिपा देती थी। एक बार रात्रि को सोहनी की ननद जाग रही थी। उसे कुछ शंका हुई और उस ने उस का पीछा किया। छिप कर वह उस के सारे कृत्य देखती रही। सोहनी के घर लौटने से पूर्व उस की ननद भी लौट आयी और सो गयी। दूसरी रात्रि जब सोहनी अपने प्रियतम के पास जाने के लिए घड़ा लेने पहुंची तो कच्चा घड़ा देख कर उस का माथा ठनका। वह धर्मसंकट में फंस गयी। यदि कच्चे घड़े के सहारे चिनाब में कूद पड़ी तो डूब जायेगी। यदि न जायेगी तो प्यार बदनाम हो जायेगा। अंततः उस ने डूबना स्वीकार कर लिया, किन्तु प्यार से विमुख न हुई। चिनाब की लहरें उस दिन वेगवती थीं। हवा तेजी पर थी। सोहनी अपने प्रियतम के मिलन के लिए हाथ-पांव छटपटा रही थी। उस की एक-एक श्वास महीवाल को पुकार रही थी। उस की भुजाओं में ऐसी शक्ति आ गयी थी जो चिनाब की उठती लहरों को चीर दे। वह तनिक भी न घबरायी और घड़े के घुलने के साथ-साथ ही वह अपना प्यार चिनाब की लहरों में घोलती गयी।

उधर जब सोहनी को आने में विलम्ब हुआ तो महीवाल की शंका भी बलवती हो उठी—कहीं उस की सोहनी चिनाब में . . .

वह चिनाब में कूद पड़ा। एक ओर से सोहनी चीखती-चिल्लाती अपने प्यार की श्वासों के सहारे बढ़ी आ रही थी. दूसरी ओर से महीवाल लहरों से लड़ता बढ़ा जा रहा था।

सोहनी एक भंवर में फंस गयी। उधर महीवाल भी ठीक उसी समय वहां जा पहुंचा। आकाश में बिजली चमक उठी। सोहनी की बंद होती आंखों ने महीवाल को देखा। बांहें तड़प कर महीवाल के गले में अटक गयीं। महीवाल ने सोहनी को अपनी भुजाओं में कस लिया। भंवर से निकलने का उस ने पर्याप्त प्रयत्न किया, परन्तु भंवर तीव्र से तीव्रतम होती गयी। सोहनी-महीवाल, दोनों ही चिनाब की लहरों में खो गये। ●

● शीला शर्मा

माता जी
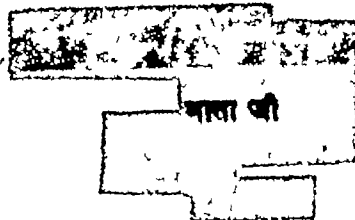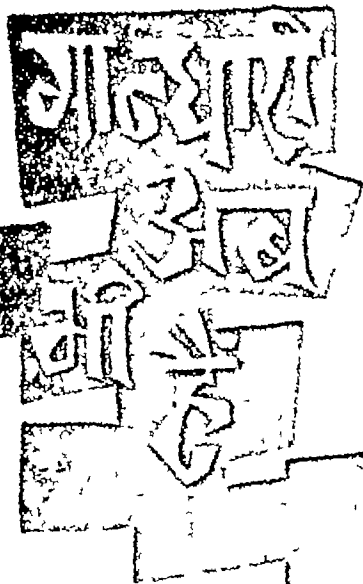
मेरी बाल-सहेली कैलाश की माताजी वास्तव में स्नेह की मूर्ति थीं। हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, गौर-वर्ण, न अधिक लंबी, न अधिक छोटी, हाथों में चार-चार सोने की चूड़ियां, प्रायः श्वेत सूती धोती पहने, चश्मा लगाये वे बड़ी भव्य लगतीं। उन के मुख पर सदैव मुसकराहट रहती। वे बहुत कम और धीरे बोलतीं, लेकिन बहुत प्यार से। स्वच्छता केवल उन के वस्त्रों में ही नहीं, घर के कोने-कोने में तथा जीवन में व्याप्त थी। पंजाबियों का गौरव उन के मुख पर झलकता था। साथ ही उत्तरप्रदेश की शालीनता, उन के व्यवहार में दिखायी देती थी। वे कभी पंजाबी बोलतीं, कभी हिन्दी — या यों कहूं कि पंजाबी-हिन्दी का मधुर संगम उन के घर में बहा करता था।

कैलाश के साथ ही मुझे माताजी का प्यार बहुत मिला। उस अल्हड़ उम्र में पता भी न लगा कि उन्होंने ममता की कैसी वर्षा मेरे ऊपर की थी, परंतु आज जब उन दिनों की याद करती हूं तब उन का प्रेम बेले के फूल की सुगंध की तरह पुलकित कर

देता है ।

मेरी मा को असहयोग-आन्दोलन मे छह महीने की सजा हो गयी थी । उस समय मैं छोटी-सी थी । मा का वियोग अखरा तो बहुत परंतु देशभक्ति-जैसे पवित्र कार्य में जाने के कारण मैं ने अपनी पीड़ा को कभी प्रगट न किया । बच्चों तक में देश-प्रेम की भावना भरी थी । यह मेरे लिए एक गौरव की बात थी कि मा जेल में थीं ।

कैलाश के यहां मेरा बहुत मन लगता था, अत. प्राय. मैं वहां पहुंच जाती थी । तीन-चार दिन यदि मैं न जाऊं तो माताजी का कैलाश को आदेश मिलता कि स्कूल की बस से ही सीधे मैं उन के यहा पहुंचू । स्कूल से लौटते समय पहले मेरा घर पड़ता था, नही तो सभवत नित्य ही मुझे माताजी उतार लिया करती ।

एक बार की बात है । गुलाबी सर्दी पड रही थी । मैं बिना बाहों का हलका स्वेटर पहने थी । माताजी बोलीं, "अब तुम पूरी बाह की स्वेटर पहना करो ।" शैशव का भोलापन—अनजाने ही मैं ने कहा, "मेरे पास पूरी बाह का स्वेटर है ही नही ।" फिर हम सब खेलने लगे ।

तीसरे ही दिन, स्कूल में कैलाश ने कहा, "आज माताजी ने तुम्हें बुलाया है ।"स्कूल से सीधे मैं वही पहुची । जलपान के पश्चात हमारा खेल प्रारम्भ हो गया । सायकाल नौकर मुझे लेने आया । चलने को हुई तो माताजी ने पूरी बांह का स्वेटर मुझे पहना दिया । मैं समझी कि शायद कैलाश का स्वेटर है, अत पहनने में सकोच किया । माताजी समझ गयी । बडे प्यार से बोली, "यह तुम्हारे लिए ही मैं ने बनाया है ।" मुझे स्मरण है वह नीले रग का स्वेटर था । बाह, कमर तथा गले की पट्टी में दो-दो लाइनें भूरे रग की पडी थी । स्वेटर पहन कर मैं फूली न समा रही थी । पहनाने वाली माताजी जो थी—प्यार की जीवन्त प्रतिमा । उस के बाद मैं ने न जाने कितने स्वेटर पहने और स्वयं बुने, परन्तु वैसा एक भी न बन सका । उस ऊन के धागे में माताजी ने निश्छल प्रेम जो बुन दिया था—मा से दूर बालिका के प्रति ममता जो पिरो दी थी । उस के बाद ही जब मा से मिलने जेल गयी तो उसी स्वेटर को पहन कर गयी । उन के कुछ पूछने क पूर्व ही मैं ने पूरा वृतान्त सुना डाला । मा की गोद मे बैठी बडी उमग से मैं सब सुना रही थी । जब सुना चुकी तो देखा मां की आखों मे आसू छलछला रहे हैं । पता नही माताजी के प्रति कृतज्ञता का वह मूक निवेदन कभी उन तक पहुंचा या नही, परन्तु मेरे चित्त में आज भी सुरक्षित है ।

हम सब बडे होते गये । कब, कैसे माताजी की सौम्यता का प्रभाव हम सब पर पडता रहा, इसे हम जान भी न पाये । वे बडी कर्मठ थी । सर्दी के प्रारम्भ से अन्त तक खाली समय में निरन्तर बुनाई करती रहती थी । कितने गरीबों को, मित्रों के कितने बच्चों को उन्होंने स्वेटर पहनाये, इस का कोई हिसाब

रहा। बुनाई-सिलाई सीखने की उत्सुक महिलाओं से उन का घर भरा रहता था। माताजी ये सभी कार्य बहुत अच्छे ढंग से करती थीं। घर का वातावरण बड़ा पवित्र रहता था। पूजा-स्थान पर स्वामी रामकृष्ण का चित्र रहता था जिन की वे भक्त थीं। समय पाते ही वे धर्मग्रंथ पढ़ा करती थीं। भूखे को भोजन देने में तथा निर्वस्त्र को वस्त्र पहनाने में उन्हें बड़ा सुख मिलता था।

मेरी सहेली कैलाश से छोटे चार भाई थे, जिन में बलवीर सब से बड़ा था। वह माताजी का विशेष स्नेह भाजन था। बड़े स्नेह से वे उसे 'काके' कहती थीं। कैलाश के ताऊजी तथा चचेरे भाई फौजी विभागों में ऊंचे-ऊंचे पदों पर थे। बलवीर की भी रुचि उसी ओर थी। अतः उस ने अर्जी भेज दी और उस का चुनाव भी हो गया। जब उस के जाने का समय आया तब माताजी विचलित हो उठीं। बलवीर से अलग होना उन के लिए बड़ा कठिन था। परन्तु बलवीर रोका न जा सका। कहां माताजी समझाया करती थीं, कहां बलवीर उन्हें समझाने बैठ गया। अन्त में मां को बेटे की इच्छा के आगे झुकना ही पड़ा। आंखों में आंसू भरे, मुंह से आशीर्वचन देती हुई माताजी ने बलवीर को विदा कर तो दिया, परन्तु लगा मानो शरीर से आत्मा चली गयी हो! बलवीर की वस्तुएं तथा उस के पत्र ही उन के जीवनाधार हो गये। उन के कमरे में लगा बलवीर का हंसता हुआ एक चित्र ही माताजी का अवलम्ब था।

दुर्भाग्यवश कैलाश के पिताजी पर पक्षाघात का आक्रमण हो गया। उन

याद
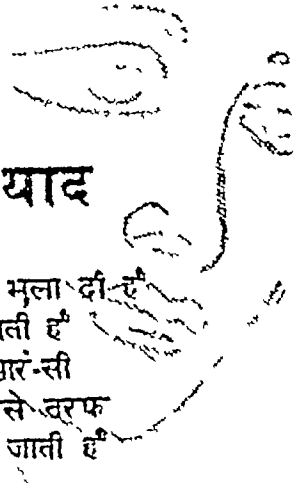
कौन-सी चीजें भुला दी हैं
बराबर याद आती हैं
कुछ हलके इशारे-सी
इस तरफ, उस तरफ
रह-रह कौंध जाती हैं

कभी कोई पत्र पा कर, कभी कोई
छुअन, कभी होने की
निरन्तर एक गहरी चुभन
में उभरती, टीसती-सी
गुजर जाती हैं . .

कौन-से बिखराव हैं
जो जानते ही नहीं हैं ठहराव
अधर में लटके हुए हैं
कई जाने भाव

कई टूटी हुई सड़कें और
चलने के लिए
दिन ढले में याद आती हैं

— प्रयाग शुक्ल —

की वाक्-शक्ति सर्वथा जाती रही । वे अपने एक पुत्र के पास चले गये और वहीं चिकित्सा कराने लगे, परन्तु उन की खोयी हुई वाणी लौट न सकी ।

पिताजी की असहायावस्था को देख कर माताजी बड़ी व्यथित होतीं । वे मानो उन की छाया ही बन गयीं—उन्हीं की नींद सोतीं, उन्हीं की नींद जागतीं । वे जो खाते वही करतीं । अपने को उन्होंने ऐसा साध लिया था कि पिताजी जो चाहते, माताजी जान जातीं और उसी वस्तु को प्रस्तुत कर देतीं ।

इतना ही नहीं, धीरे-धीरे माताजी ने भी मौन-व्रत प्रारम्भ कर दिया । सप्ताह में एक दिन वे मौन रखतीं । धीरे-धीरे एक दिन का स्थान दो दिन ने ले लिया । जिस सुख से पति वंचित हो उस सुख का किसी प्रकार भी उपभोग करना उन्हें अभीष्ट न था । बाद में दो दिन से तीन दिन, तीन दिन से चार दिन और फिर पूर्ण मौन धारण कर लिया ।

वर्षों पश्चात बलवीर आने को था । माताजी बड़ी आनन्दित थीं । चुन-चुन कर वे उन्हीं चीजों को बना रही थीं जो बलवीर को अत्यन्त प्रिय थीं । कभी उस का कमरा ठीक करतीं, कभी उस की चीजों को संवारतीं । सभी को विश्वास हो चला था कि बलवीर को देख कर माताजी अवश्य बोलेंगी । बलवीर आया । माताजी से लिपट गया । कौन कहेगा कि आज यह भारतीय नौ-सेना का एक बड़ा अधिकारी है ! वैसे ही मचल कर उस ने माताजी के आंचल में मुंह छिपा लिया । माताजी ने बड़े प्रेम से उस का मुंह उठाया, एकटक देखती रहीं और प्यार से उसे अपनी छाती से लगा लिया । अविरल अश्रुधारा उन के नेत्रों से बह कर बलवीर का मुख भिगोती रही, मानो प्रवासी पुत्र का अभिषेक कर रही हों । परन्तु, उन के मुंह से कोई बोल न निकला । उन के नेत्र ही आशीर्वाद और प्रेम की ऐसी भाषा बोल रहे थे जिसे वाणी भी न कह सकती थी ।

आज तीन वर्षों से पूर्ण मौन-व्रत धारण किये हुए वे अनवरत सेवा कर रही हैं । वे तपस्विनी की भांति अविचल भाव से सभी कार्य करती हैं । गान्धारी का पातिव्रत्य आदर्श माताजी में साकार रूप में देखने को मिलता है । उन के प्रति असीम श्रद्धा से किसका मस्तक झुक न जायेगा !

गणेश और सुरेश जुड़वां भाई थे । एक-एक करके दोनों को दादी ने नहलाया और बिस्तरे में लिटा दिया । कुछ देर बाद जब वे फिर उधर आयीं तो उन्होंने देखा कि एक तो जोर-जोर से हंस रहा है और दूसरा गुमसुम पड़ा है । उन्होंने हंसने का कारण पूछा तो वह बोला, "दादी, आज बेचारे सुरेश को तो तुम ने दो बार नहला दिया और मुझे एक बार भी नहीं ।"

हमें लज्जा आनी चाहिये

● सरस्वती चौधरी

जब मैं भारत से नाइजीरिया के लिए चली तो मन में बड़ा उत्साह था। मैं उस देश की रहने वाली हूं, जिस की संस्कृति और आदर्शों से प्रभावित हो कर पश्चिमी अफ्रीका के नवस्वतंत्रता-प्राप्त विभिन्न राष्ट्रों ने विविध क्षेत्रों के लिए हम भारतीयों को ही चुना था। अपने भारतीय होने का गर्व लिये जब मैं हवाई-जहाज से नाइजीरिया की धरती पर उतरी तो मेरा गर्व खंडित हो कर वास्तविकता के धरातल पर चूर-चूर हो गया।

नाइजीरिया पश्चिमी अफ्रीका के उन नवोदित राष्ट्रों में से एक है जो बड़ी तेजी से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। पिछले तीन-चार वर्षों में वहां काफी भारतीय शिक्षकों, डाक्टरों, इंजीनियरों तथा अन्य बहुत-से पदों पर नियुक्त हो पहुंचे हैं। ये सभी लोग वहां बड़ी-बड़ी सुविधाएं दे कर बुलाये गये हैं। भारतीयों को इतनी विशाल संख्या में बुलाने का प्रमुख कारण यह था कि उन लोगों ने भारत के बारे में बहुत-कुछ पढ़ा और सुना था और वे भारत के आदर्शों से प्रभावित थे। वे अपने उगते हुए राष्ट्र को भारत की ही समानता में देखना चाहते थे। किंतु भारतीयों ने जिस मनोवृत्ति का परिचय वहां जा कर दिया, वह हम सब के लिए लज्जाजनक तो है ही, वहां के लोगों के लिए भी निराशाजनक रही।

मैं जानती थी कि वहां की परम्पराएं हम लोगों से भिन्न हैं, पर मेरा मन यह मानने को कभी तैयार नहीं था कि हमारी अपनी विशिष्टता है ही नहीं। यहां आ कर तो लगा कि विशिष्टता-जैसे शब्द के शायद अर्थ भी हम नहीं समझते। यहां पर आ कर भारतीयों ने पहला काम जो किया, वह था शराब का अधिकाधिक सेवन। आते ही उन्होंने फ्रिज को बियर की बोतलों से भर

दिया, अल्मारियों में तरह तरह की शराबों के अंबार लगा दिये। शराब यहां पर काफी सस्ती है और इसलिए भारत से आये हुए ये लोग शराब पर ठीक उसी तरह टूट पड़े जैसे कि अकालपीड़ित देश के लोग अनाज के दानों पर टूटते हों। यहां के लोग भी यह देख कर आश्चर्य करते हैं क्योंकि भारत के बारे में तो उन्होंने कुछ और ही सुना था। पहले तो नाइजीरिया के लोग भारतीयों को शराब पेश करते हुए कतराते थे और स्वयं भी इन के सामने पीने में हिचकते थे क्योंकि वे सोचते थे कि इस आदत से वे भारतीयों की नजरों में गिर जायेंगे। पर धीरे धीरे जब उन्होंने देखा कि ये लोग तो उन से भी ज्यादा बाजी मार ले गये तो उन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

"यहां जो न पिये वह बेवकूफ समझा जाता है," मुझे एक भारतीय सज्जन ने यहां पहुंचते ही बताया था, पर बाद में मुझे स्वयं ही पता लग गया कि यह दलील कितनी बेकार और थोथी थी। मुझे तो कभी-कभी ऐसा लगने लगता है कि यहां जा कर भारतीयों का उद्देश्य शायद रात-दिन पीना और बहकना ही रह गया है। अपने मोटे-मोटे वेतनों का अधिकतर भाग भारतीय शराब पर ही लुटा रहे हैं। बड़े-बड़े अफसर, शिक्षक, डाक्टर, इंजीनियर—सभी अधिक पैसा और सुविधाएं पा कर कुछ इतरा से गये हैं। सुबह, दोपहर, शाम—हरदम पीना, पीने के बाद बहकना और अश्लील बातें करना वहां रोज की बातें हैं।

जो भारतीय भारत में बड़े ही सदाचार और नियम से रहते थे, वे भी वहां किसी क्लब या अन्य सार्वजनिक स्थान पर झूमते हुए देखे जा सकते हैं। कभी-कभी तो नौबत यहां तक पहुंच जाती है कि शराब और बोतलें एक-दूसरे पर फेंकी जाती हैं और उचित-अनुचित का खयाल किये बिना ही ये लोग ऐसे कार्य कर बैठते हैं जो वहां निंदा का कारण बनते हैं। हर समय हलके मजाक और अश्लील बातें। कभी-कभी तो संदेह होने लगता है कि क्या वास्तव में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले ये ही लोग हैं? शिक्षक को कभी पढ़ाई-लिखाई की बातें करते नहीं सुना जाता, अफसरों को कभी नयी योजनाओं के बारे में विचार-विमर्श करते नहीं देखा जाता। बस, हर व्यक्ति किसी तरह खींचखांच कर ड्यूटी पूरी कर रहा है। किसी सज्जन ने कुछ दिन पहले मेरी शंका का समाधान करते हुए ठीक ही कहा था : "बहिनजी, यहां आप किस चक्कर में पड़ी हैं? क्या आप सोचती हैं कि यहां आ कर भारतीयों ने अपने विषय के संबंध में ज्ञान बढ़ाया है या यहां के लोगों की ज्ञान-वृद्धि की है? यहां तो हर व्यक्ति केवल अधिकाधिक शराब पीने और 'स्मगलिंग' की नयी नयी योजनाएं बनाने में ही लगा हुआ है।"

वहां गये हुए हर व्यक्ति का आरंभ में बहुत सम्मान था। मिनिस्टरी में, क्लब में, आफिस में—हर जगह

लोग उन का आदर करते थे और खड़े हो कर सम्मान देते थे। "आप हमारे देश की मदद करने आये हैं, हम आप के आभारी हैं। आप गांधी की धरती से आये हैं, हम आप का स्वागत करते हैं।" परन्तु देखते-देखते ही यह सब सम्मान हवा हो गया और तीन-चार वर्षों की इस अवधि में भारतीयों का मूल्य वहां के लोगों की नजरों में गिर गया। इस का कारण भारतीयों की अपनी ही करतूतें था। रहने के लिए बढ़िया सजे मकान मिले, जिन में फर्नीचर, पलंग, बिस्तर, क्राकरी, फ्रिज सभी-कुछ था परन्तु आभार प्रकट करने की अपेक्षा इन लोगों ने नाक-भौं सिकोड़ कर उस का स्वागत किया। यह बात और थी कि भारत में जिन वेतनों पर ये लोग थे, उन में इन सब चीजों का सपना भी नहीं देख सकते थे। लेकिन यहां आ कर हर भारतीय ने अपने को मिनिस्टर से कम नहीं समझा। उन की फरमाइशें बढ़ती रहीं—पलंग सभी चौड़े चाहियें, परदे दीवारों से मैच नहीं कर रहे, हर कमरे में मारबिल का टब क्यों नहीं है, 'बेबी काट' क्यों नहीं दी गयी, और न जाने क्या-क्या! भारतीयों ने ऐसे नखरे किये जैसे वहां दामाद बन कर गये हों। जैसे, अवन दी है, तो सिलेंडर भी दें, या उस के पैसे दें, मेजपोश पुराने हो गये हैं तो नये दें या फिर उन्हें खरीदने के लिए पैसे दें। एक ताला भी चाहिये तो खुद नहीं खरीदा, सरकार से मांगा। वहां सरकारी कर्मचारियों को इलाज की सभी सुविधाएं मुफ्त में मिलती हैं और अस्पताल तक आने-जाने का खर्च भी मिलता है। यदि सिर के दर्द की किसी गोली की भी जरूरत पड़ी तो भारतीय पास के स्टोर से न खरीद कर तीन मील दूर अस्पताल से लेने जाते हैं और पेट्रोल का खर्च तथा गोली के दाम का बिल सरकार को पेश कर देते हैं। एक सज्जन छुट्टियों में भारत गये, वहां उन की पत्नी को जुकाम हो गया। वापस आने पर लगभग छः रुपये का बिल उन्होंने नाइजीरिया की सरकार से वसूल किया।

कुछ लोग भारत लौटते समय मकानों के परदे तक उतार कर ले गये, क्राकरी पेटियों में दबा कर रख ली, बगीचे के पेड़ कटवा कर बेच दिये, आदि। मकानों की भी कुछ लोगों ने बुरी हालत कर दी। जगह-जगह फर्श पर दाग डाल दिये, मारबिल के टबों को कपड़े कूट-कूट कर तोड़ डाला, वाशबेसिन के पाइप को ब्लाक कर दिया और कमरों की दीवारों को काला कर दिया।

वहां के लोग भारतीयों से बहुत-कुछ जानना चाहते हैं, भारत की संस्कृति के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाना चाहते हैं, पर किसे इतनी फुरसत है कि इस ओर ध्यान दे। भारतीय नृत्य वहां के लोगों को बहुत पसंद है, भारतीय पोशाक, विशेषकर साड़ी और कुहनियों तक आस्तीनवाले ब्लाउजों के प्रति वे लोग बहुत आकर्षित हैं, परन्तु यहां किसी को भी इतनी फुरसत नहीं कि एक भारतीय क्लब बना कर कभी-कभी सांस्कृतिक कार्य-

क्रम का प्रदर्शन करते रहें। ऐसा प्रस्ताव रखा भी जाये तो कोई सह-योग नहीं मिलता और जवाब मिल जाता है—हम यह सब करने नहीं आये हैं।

हाल ही में वहां घटी एक घटना ने सब भारतीयों के मुख पर कालिख पोत दी है। एक भारतीय सज्जन अपनी पत्नी के साथ सिनेमा देखने गये। चित्र की समाप्ति पर राष्ट्रगान के समय वे चुप खडे हो कर सम्मान देने के बजाय मौका देख कर अपनी पत्नी को चूमने लगे। राष्ट्रगान की समाप्ति पर एक व्यक्ति ने उन्हें टोका तो बिगड पडे। बडी मुश्किल से अन्य भारतीयों ने आ कर उन्हें शांत करवाया। अगले दिन वहां के एक अखबार के मुखपृष्ठ पर जो सविस्तार वर्णन छपा तो किसी को मुंह छिपाने की जगह न रही। भारतीयों के आपसी झगड़ों और फूट ने उन्हें वहां के लोगों और सरकार की नजरों में बहुत नीचे गिरा दिया है। एक-दूसरे को नीचा दिखाना, उच्च अधिकारियों के कान भर देना और मौका पड़ने पर एक-दूसरे को नुकसान पहुंचाना—शायद यही हमारे चरित्र की विशेषता रह गयी है। कोई भारत से वहां आ रहा हो तो व्यर्थ में उस की बुराइयां करके अधिकारियों के कान भर देंगे और कोई वापस जा रहा हो तो ठीक हवाई-जहाज छूटने से पहले कोई अडंगा डलवा कर उसे मुसीबत में डाल देंगे। ऐसी ही शिकायतों से तंग आये वहां के एक अधिकारी ने कहा था "आप लोग आखिर मिल-जुल कर क्यों नहीं रहते, इस तरह तो आप हमारी भी परेशानियां बढ़ाते हैं।"

देश से बाहर आये हैं तो भी आत्म-सम्मान का कोई खयाल नहीं। पैसा, पैसा और पैसा—चाहे जिस तरह हो। नौकरियों के तीन-तीन साल के कांट्रेक्ट थे किन्तु पूरा होने से पहले ही इस लिए भागदौड़ की कि किसी तरह नौकरी की अवधि और बढ़ जाये। कुछ लोगों ने तो संबंधित अधिकारी के पास जा कर उस की खुशामद की, अपनी गरीबी और भारत में जा कर फिर कम वेतन मिलने का रोना रोया और कुछ लोगों ने पहला कांट्रेक्ट भी तोड देने की धमकी दी क्योंकि वे जानते थे कि इतना खर्च उठाने के बाद उन्हें वहां की सरकार सपरिवार वापस भारत भेज कर और घाटा नहीं उठा-येगी। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ है कि वहां की सरकार अब भारत से किसी को भी बुलाने में कत-राने लगी है।

पिछले दिनों एक भारतीय शिष्ट-मंडल वहां पहुंचा था और उस ने वहां रहने वाले भारतीयों से मिलने की इच्छा प्रकट की थी। उस के सदस्यों से मिलने के बाद जो बात मेरे दिमाग में आयी, वह यह कि अपने देश का प्रतिनिधित्व दूसरे देश में ऐसे मिशन के द्वारा नहीं हो सकता। असली प्रतिनिधित्व तो विदेशों में रहने वाले भारतीय ही करते हैं जिन के रहन-सहन, आचार विचार और चारि-त्रिक गुणों को देख-परख कर ही बाहर के लोग भारत के बारे में अपनी धारणा बनाते हैं। ●
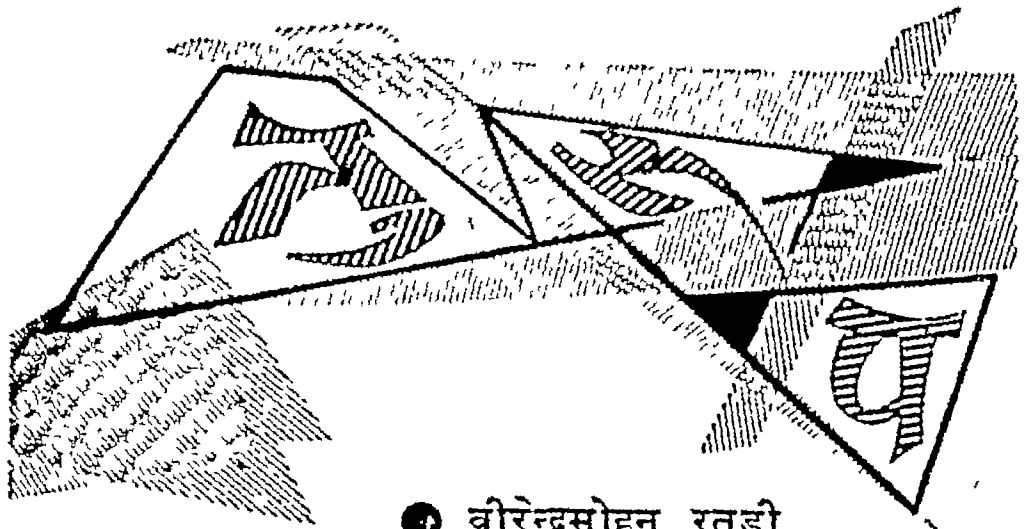
वीरेन्द्रमोहन रतूड़ी

दद्दा की बात

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अब हमारे बीच नहीं रहे। लेकिन सत्संग और साहित्य के रूप में उन्होंने जो कुछ दिया, वह हमेशा याद रहेगा। 'तुरुप' के पाठकों को सम्भवतः याद होगा कि सितम्बर, १९६३ के अंक में इसी स्तम्भ में "समदर्शी" शीर्षक के अन्तर्गत एक रोचक प्रसंग छपा था—एक भाषा-शास्त्री की पत्नी ने एक कवि से, जो कार के अन्दर एक कुत्ता भी बैठा देख कर अन्दर जाने से हिचक रहे थे, कहा था, "आप तो ज्ञानी हैं गीता में लिखा है कि 'पंडित लोग समदर्शी होते हैं,' फिर आप क्यों हिचकिचा रहे हैं ?" इस पर कवि महोदय ने उत्तर दिया था, "मैं अभी इतना समदर्शी नहीं हुआ कि (भाषा-शास्त्री की ओर इशारा करते हुए) इन में और कुत्ते में भेद न कर सकूं।"

वास्तव में वे कवि महोदय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ही थे, जिन्हें आत्मीयता में सब 'ददा' कहते थे।

ददा की एक बात और सुनिये—१२ फरवरी, १९६४ को संसदीय कांग्रेस दल ने कांग्रेस अध्यक्ष श्री कामराज के सम्मान में एक गोष्ठी की। श्री कामराज अंगरेजी कम ही जानते हैं फिर भी प्रशासक तथा राजनीतिक नेता के रूप में उन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। उन की कार्यकुशलता की ओर संकेत करते हुए राष्ट्रकवि ने ये पंक्तियां रच कर सुनायीं—

अंगरेजी के बिना राष्ट्र का
नहीं रुकेगा काम
सिद्ध कर दिया कामराज ने
सादर उन्हें प्रणाम

जोड़ी मिली

प्रेमचन्दजी उन दिनों 'माधुरी' के सम्पादक थे। वहीं वे पाठ्य-पुस्तकें

भी तैयार करते थे। प्रेस में मुहम्मद आसकरी उर्दू का काम करते थे। उन्होंने प्रेमचन्दजी को मामूली पाठ्य-पुस्तकों पर समय नष्ट करते देख कर कहा, "प्रेमचन्दजी, देखिये घुडदौड का घोडा इक्के-तांगे में जुते तो कैसा चलेगा ?"

संयोग की बात कि कुछ ही दिनों बाद असकरी साहब को भी उर्दू पाठ्य-पुस्तकें देखने का काम सौंप दिया गया।

तब प्रेमचन्दजी ने कहा, "मिर्जा साहब, अब तो जोडी हो गयी।"

बदली आदत

एक लेखिका के घर पर श्री सुमित्रा-नन्दन पन्त बैठे थे। किसी नयी पुस्तक का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा, "उसे न जाने कौन मुझ से मांग कर ले गया। इस तरह मेरी न जाने कितनी पुस्तकें इधर-उधर हो गयी। लोग वापस करना भूल जाते हैं और मैं ले जाने वाले का नाम ही भूल जाता हूं। यह भी होता है कि कभी कहीं ठहरता हूं और किताबें वहीं भूल जाता हूं।"

"तब तो पन्तजी," लेखिका ने आग्रह किया, "आप कुछ दिन के लिए हमारा आतिथ्य अवश्य स्वीकार कीजिये।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं," पन्तजी ने हंस कर कहा, "लेकिन इधर मेरी पुरानी आदत बदल गयी है, इसलिए घाटे में आप ही रहेंगी। पीछे न कहियेगा कि मेरी लाइब्रेरी में कोई अच्छी किताब दिखायी ही नहीं देती।"

तान्त्रिक राहुल

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जब बनारस में संस्कृत पढ रहे थे, तभी छात्रों में यह बात फैल गयी थी कि वे मंत्र-तंत्र के धुरन्धर ज्ञाता हैं।

एक दिन एक गरीब छात्र रोता हुआ उन के पास पहुंचा। बेचारे ने दक्षिणा का एक-एक पैसा जोड़ कर भागवत की पोथी खरीदी थी और वह भी किसी ने तिडी कर दी। तब वह मन्त्रशक्ति से उस चोर का नाम जानने और पोथी वापस पाने की इच्छा ले कर राहुलजी के घर पहुंचा।

राहुलजी ने गम्भीर हो कर कहा, "घबराओ मत। तुम्हारी पुस्तक कोई हजम नहीं कर सकता। जाओ और लोलार्क कुण्ड पर देवी के चबूतरे की एक ईंट उलट दो और इस मंत्र का सवा लाख जाप करो। हां, पहले पास-पडोस में बतला देना कि तुम भयकर तांत्रिक क्रिया करने जा रहे हो। एक बात और, अपनी कोठरी में ताला लगाये बिना, कभी-कभी इधर-उधर चले जाना।"

शाम को वह छात्र राहुलजी के पास पहुचा और धन्यवाद दे कर बोला, "आप की कृपा से ही पोथी मिली। मैं कोठरी में बिना ताला लगाये बाहर गया और शाम को लौट कर देखा कि पुस्तक भीतर पडी है। मैं जाप भी शुरू न कर पाया था। बस ईंट उल-टने ने ही गजब ढा दिया।"

तलाशी

माखनलाल चतुर्वेदी युवावस्था में

क्रान्तिकारी भी रहे हैं।

उन के पास क्रान्तिकारी पुस्तकें पढ़ने और बांटने के लिए भी आती थीं। एक दिन उन के पास रूस की क्रान्ति पर एक पुस्तक पहुंची। अंगरेजों के गुप्तचर विभाग को पता लगा कि चतुर्वेदीजी के पास रूस से कोई पार्सल आया है, शायद पिस्तौल हो। तुरन्त ही तलाशी के लिए पुलिस पहुंची।

इन्सपेक्टर ने कहा, "हम आप के कार्यालय की तलाशी लेना चाहते हैं।"

चतुर्वेदीजी ने प्रेस के व्यवस्थापक को बुलाया और उस से कहा, "देखो, इन्हें 'कर्मवीर' कार्यालय की तलाशी लेनी है। तुम कोई नयी किताब ले कर वहीं बैठ कर पढो, तब तक ये तलाशी ले लेंगे।"

व्यवस्थापक इशारा समझ गया। उस ने पुलिस को तलाशी लेने दी और स्वयं एक ओर बैठ कर वही रूसवाली पुस्तक पढने लगा। पुलिस को तलाशी में कुछ भी नहीं मिला।

पैरोडी

"नीरज" राजस्थ के एक कवि-सम्मेलन में गये। वहां उन्होंने अपनी एक कविता सुनायी—

आज मेरे ताले की चाबी कहीं खो गई है

जब वे मंच से उतरे तो जूता गायब। संयोजक ने माइक पर एलान किया कि 'नीरज' जी का जूता खो गया है, किसी सज्जन को मिला हो तो लौटा दे। एलान करना था कि एक श्रोता बोल उठा—

आज मेरे पैरों की जूती कहीं
खो गयी है

दोस्तों का दुख

लोगों ने मित्रता के बहुत गुण गाये हैं। लेकिन 'बेधड़क' जी तो मित्रों से कोसों दूर भागते हैं—कारण उन्हीं से सुनिये—

नाम मेरा हो भले ही 'बेधड़क'
दोस्तों से बहुत ही डरता हूं मैं
'एक्सक्यूज मी' कहते हुए घर में घुसे
'प्लीज' कह कर मांग ली मेरी किताब
'थैंक्यू' कह कर वे चलते बने
आजकल की दोस्ती ऐसी जनाब

मेहमान के सामने माता-पिता अपने रामू की तारीफों के पुल बांध रहे थे। प्रभावित हो कर मेहमान ने पूछा, "वर्णमाला तो उसे याद होगी ही ?"

"अरे साहब, पूरी याद है।"

प्रशंसात्मक दृष्टि से रामू को देखते हुए मेहमान ने पूछा, "वर्णमाला में कौन-सा अक्षर पहला है, बेटे ?"

"अ," रामू ने उत्तर दिया।

"शाबाश," मेहमान ने कहा, "और 'अ' के बाद ?"

"बाकी सारे अक्षर," रामू का उत्तर था।

रूसी कहानी

इस कहानी का अनुवाद भी एक रूसी सज्जन —बोरीस आंद्रिआनोव— ने किया है। इस से उन के हिन्दी-प्रेम तथा उन की साधिकार भाषा का परिचय मिलता है

एक दक्षिणी नगर में मैं ने और मेरे एक दोस्त ने एक समझौता किया और उसे एक अमिट रंग से स्टेट बैंक की पत्थर की दीवार पर लिख दिया। इस के अनुसार मेरे दोस्त ने वादा किया था कि दस साल बाद वह अपनी चमड़े के म्यानवाली छुरी मुझे दे देगा। दीवार पर हम ने एक मुहर लगायी थी (अब मुझे यह याद नहीं कि यह मुहर कहां से मिल गयी थी) जो लाल पत्थर पर उस समय भी धुंधली ही दिखायी देती थी। उस पर अपने दस्तखत हम ने एक बड़ी कील से खोद कर किये थे।

मैं ने निर्धारित अवधि पूरी कर दी है और फिर अपने नगर लौट आया हूं, मैं इसी जगह के पास से गुजर रहा हूं, जहां बैंक की ऊंची इमारत थी, उस की दीवार पर हमारा करार लिखा हुआ था और जिस के अनुसार मुझे यह अनमोल भेंट पानी थी।

लेकिन पता चला कि पत्थर के चबूतरेवाली वह ऊंची इमारत अब है ही नहीं, नगर से हटते समय जरमनों ने उसे उड़ा दिया था। न अब वे सड़कें ही रहीं, जिन के प्यारे नाम आज तक मेरे दिल में हैं। मेरा दोस्त शूर्का भी अब नहीं है। वह १९४३ में स्तालिनग्राद के पास मारा गया था। कोई भी ऐसा नहीं रहा जिस के साथ मेरी दोस्ती अथवा झगड़ा था। वे लड़कियां भी अब नहीं हैं जिन के प्यार में मैं पागल था। अब यह एक पराया शहर है।

शूर्का का घर मैं ने बिना किसी कठिनाई के तलाश कर लिया। कभी

● याकोव वोलचेक

मैं यहां रोज आया करता था। यहां एक आदमी से मेरी मुलाकात हुई थी जिसे मैं अब तक अपना गुरु मानता आया हूं—यद्यपि मैं इस बात का शायद निश्चय नहीं कर सकता कि उस ने मुझे सिखाया क्या था।

तीसरी मंजिल के जीने पर मैं आंखें बंद किये चढ़ रहा हूं। मेरी कल्पना में कई चीजें उभर रही हैं—चमड़ा-मढ़ा दरवाजा, नीला लेटरबाक्स और मेरे दोस्त का सफेद नामपट्ट। मैं आंखें खोलता हूं—सब कुछ वही है जो मेरी याद में था। लेकिन यह कैसे हो सकता है? शूर्का को तो वोल्गा नदी के पास दफना दिया गया था। उस की मां भी मर गयी थी और उस के पिता तो उन दोनों से पहले ही नहीं रहे थे।

शायद उन में से कोई जीवित रह हो गया हो तो? चमत्कार भी तो होते हैं। दरवाजे पर खड़े हो कर अपने प्रिय दोस्त से यह कहना कितनी खुशकिस्मती की बात होगी कि मैं छुरी और म्यान लेने के लिए आ गया हूं।

ड्रेसिंग-गाउन पहने एक नव-युवती दरवाजा खोल कर मुझे देखती है। फिर वह निरपेक्ष भाव से किसी को बुलाती है, "वित्या, ये तुम से मिलने आये हैं।"

उतावलेपन से कमीज के बटन लगाता हुआ एक नौजवान आता है। मैं उस के चेहरे पर परिचित छवि खोज रहा हूं। "जी हां, मैं शूर्का का बेटा हूं," वह मेरे अनुमान की पुष्टि करता है।

अपने पिता की उसे बिलकुल

जिल्द पर धब्बा

इस कहानी का अनुवाद भी एक रूसी सज्जन —वोरीस आंद्रिआनोव— ने किया है। इस से उन के हिन्दी-प्रेम तथा उन की साधिकार भाषा का परिचय मिलता है

एक दक्षिणी नगर में मैं ने और मेरे एक दोस्त ने एक समझौता किया और उसे एक अमिट रंग से स्टेट बैंक की पत्थर की दीवार पर लिख दिया। इस के अनुसार मेरे दोस्त ने वादा किया था कि दस साल बाद वह अपनी चमड़े के म्यानवाली छुरी मुझे दे देगा। दीवार पर हम ने एक मुहर लगायी थी (अब मुझे यह याद नहीं कि यह मुहर कहां से मिल गयी थी) जो लाल पत्थर पर उस समय भी धुंधली ही दिखायी देती थी। उस पर अपने दस्तखत हम ने एक बड़ी कील से खोद कर किये थे।

मैं ने निर्धारित अवधि पूरी कर दी है और फिर अपने नगर लौट आया हूं, मैं इसी जगह के पास से गुजर रहा हूं, जहां बैंक की ऊंची इमारत थी, उस की दीवार पर हमारा करार लिखा हुआ था और जिस के अनुसार मुझे यह अनमोल भेंट पानी थी।

लेकिन पता चला कि पत्थर के चबूतरेवाली वह ऊंची इमारत अब है ही नहीं, नगर से हटते समय जरमनों ने उसे उड़ा दिया था। न अब वे सड़कें ही रहीं, जिन के प्यारे नाम आज तक मेरे दिल में हैं। मेरा दोस्त शुर्का भी अब नहीं है। वह १९४३ में स्तालिनग्राद के पास मारा गया था। कोई भी ऐसा नहीं रहा जिस के साथ मेरी दोस्ती अथवा झगड़ा था। वे लड़कियां भी अब नहीं हैं जिन के प्यार में मैं पागल था। अब यह एक पराया शहर है।

शुर्का का घर मैं ने बिना किसी कठिनाई के तलाश कर लिया। कभी

● याकोव वोल्चेक

मैं यहां रोज आया करता था। यहां एक आदमी से मेरी मुलाकात हुई थी जिन्हें मैं अब तक अपना गुरु मानता आया हूं—यद्यपि मैं इस बात का शायद निश्चय नहीं कर सकता कि उस ने मुझे सिखाया क्या था।

तीसरी मंजिल के जीने पर मैं आंखें बंद किये चढ रहा हूं। मेरी कल्पना में कई चीजें उभर रही हैं—चमड़ा-मढा दरवाजा, नीला लेटरबाक्स और मेरे दोस्त का सफेद नामपट्ट। मैं आंखें खोलता हूं—सब कुछ वही है जो मेरी याद में था। लेकिन यह कैसे हो सकता है? शूर्का को तो धोल्गा नदी के पास दफना दिया गया था। उस की मां भी मर गयी थी और उस के पिता तो उन दोनों से पहले ही नहीं रहे थे।

शायद उन में से कोई जीवित रह ही गया हो तो? चमत्कार भी तो होते हैं। दरवाजे पर खड़े हो कर अपने प्रिय दोस्त से यह कहना कितनी खुशकिस्मती की बात होगी कि मैं छुरी और म्यान लेने के लिए आ गया हूं।

ड्रेसिंग-गाउन पहने एक नवयुवती दरवाजा खोल कर मुझे देखती है। फिर वह निरपेक्ष भाव से किसी को बुलाती है, "वित्या, ये तुम से मिलने आये हैं।"

उतावलेपन से कमीज के बटन लगाता हुआ एक नौजवान आता है। मैं उस के चेहरे पर परिचित छवि खोज रहा हूं। "जी हां, मैं शूर्का का बेटा हूं," वह मेरे अनुमान की पुष्टि करता है।

अपने पिता की उसे बिलकुल

याद नहीं। पिता के मोर्चे पर जाते समय उस की आयु केवल छह साल थी। अपने दादा को तो वह जानता ही नहीं।

"माफ कीजिये, इस कमरे में पहले क्या था?" मैं पूछता हूं।

वह विस्मित हो जाता है। "खाने का कमरा! हमारे यहां यह हमेशा से खाने का कमरा ही रहा है।"

"लेकिन पहले, बहुत साल पहले?"

वह कंधे हिला देता है।

लेकिन मुझे याद आ चुका है। इस समय यहां खाली दीवारें, बरतन रखने की अलमारी और एक गोल मेज है, तब इस कमरे की दीवारों के पास किताबों की अलमारियां थीं और फर्श पर मोटा कालीन बिछा था। यहां किताबों से अटी एक बड़ी मेज थी। उस मेज पर एक सफेद बालों वाला, झाड़ीदार मूंछों वाला और जोरदार आवाज में बोलने वाला आदमी काम किया करता था, जिसे मैं पिता की तरह मानता और प्यार करता था।

इस घर में मैं पहली बार बारूद बनाने के लिए आया था। मुझे शूर्का ही बुला कर लाया था। भूरे चेहरे और बादाम-जैसी आंखोंवाला यह अद्भुत लड़का हमारे स्कूल में नया-नया आया था। हमें पास-पास ही बैठाया गया था। शूर्का ने मुझे बताया कि वह रसायनों का अध्ययन कर रहा है और पत्थरों तथा कीलों से सोना बनाने में उस ने लगभग निपुणता प्राप्त कर ली है। अपनी होशियारी साबित करने के लिए उस ने शुरू में ही बारूद बनाने के इरादे की घोषणा कर दी थी।

कुछ दिन तैयारियां करने में ही लग गये। गंधक और शोरा हमें ऊंची कक्षा में पढ़नेवाली एक लड़की से मिला। लकड़ी का कोयला घर में ही मिल गया था, लेकिन हमारे लिए सब से कठिन काम था, इस के रहस्य को छिपा रखना। शूर्का की आशंका उचित ही थी, क्योंकि उसे मालूम था कि रसायन के प्रति उस के अनुराग से घर में किसी को प्रसन्नता नहीं होती। वैसे, खतरा शूर्का की मां से ही हो सकता था। मोटी चाची मारूस्या से तो डरने की कोई बात ही नहीं थी। वे बहुत नेक स्वभाव की महिला थीं। शूर्का के पिता को मैं ने केवल एक बार सरसरी नजर से देखा था। दरवाजे के पास एक तांगा आया करता था और वे सफेद सूट पहने उस पर बैठ कर अदालत चले जाते थे। हम नहीं चाहते थे कि हमारे अनुसंधान-कार्य में कोई आ कर बाधा दे, अतः हम ने सावधानी रखी थी। शूर्का के कमरे के दरवाजे के ऊपर एक बड़ी कील ठुकी हुई थी। हम ने रसोईघर से एक बाल्टी चुरा कर उसे पानी से भर कर इस कील पर इस तरह टांग दिया कि कोई अचानक दरवाजा खोल दे, तो बाल्टी उस के सिर पर उलट कर गिर जाये। इस तरह हम ने वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए उचित परिस्थितियां पैदा कीं।

फर्श पर हम ने गंधक, शोरा और लकड़ी का कोयला छोटे-छोटे ढेरों में इकट्ठा किया। जब मैं

इस नारकीय मिश्रण को खरल में पीसने लगा, तभी दरवाजा अचानक खुल गया। दालान में सफेद सूट और काले हैट की झलक क्षण भर के लिए मिली। बाल्टी उलटी और ऊपर से पानी की धार तेजी से शूर्का के पिता पर गिरी। हमारे कानों में गाली की आवाज आयी और फिर सन्नाटा।

बड़ी तेजी के साथ हम ने बिखरे चूर्ण को समेटा और बिना कुछ बोले पलंग के नीचे घुस गये। वहां हम लगभग बिना सांस लिये पड़े थे। कुछ क्षणों के बाद दालान में स्लीपरों की आवाज सुनायी दी। दरवाजे के पास खड़ी हो कर चाची मरूस्या ने धीमे स्वर में आवाज दी, "दरवाजा खोलो लड़को!"

"शूर्का, कहां हो तुम?" तलाश देर तक नहीं चली। पलंग के नीचे, जहां हम पड़े थे, उन्होंने झाड़ू डाल कर कहा, "निकल आओ आवारा छोकरो। पिताजी बुला रहे हैं!"

"हम नहीं जायेंगे," शूर्का ने कहा।

"पागल तो नहीं हुए?" चाची मरूस्या बोलीं और हम लोगों को नीचे ले गयीं।

"यह किस ने किया? बताओ?" शूर्का के पिता ने कड़कती आवाज में पूछा।

"मैं . . ."

"मैं . . ." मैं ने और शूर्का ने एकसाथ रिरियाते हुए कहा।

इस जवाब ने उन को विचलित कर दिया। आरामकुरसी पर बैठ कर उन्होंने शांतिपूर्वक कहा, "मरूस्या, रसोई में कुछ जल रहा है।" मरूस्या तुरंत चली गयी।

"तुम ने यह किया क्यों?" उन्होंने पूछा।

शूर्का ने उन्हें उस का भेद बताया। वे समझ नहीं सके और परेशानी से अपना माथा मलने लगे। फिर बोले, "चलो, करके दिखाओ।"

वे हांफते हुए पानी भरी बाल्टी लाये और उसे कील पर लटका दिया। "मरूस्या!" उत्सुक आवाज में उन्होंने पुकारा।

चाची मरूस्या ने बेधड़क हो दरवाजे को धक्का दिया और पानी की बौछार में बुत बन कर रह गयीं।

उन के मन में हमेशा ही शरारत बसी रहती थी, लेकिन यह जानने में मुझे बहुत समय लगा। पहले तो मुझे उन से बहुत डर लगता था। एक बार मैं बिना किसी से पूछे उन के कमरे में किताबों की खोज करने जा घुसा। अचानक वे आ गये। मैं चौंक पड़ा और मैं ने पूरी अलमारी गिरा दी। मैं ने किताबों को समेटना चाहा, लेकिन इस कोशिश में कांच तोड़ दिया। फिर मैं वहां से भाग आया।

बाद में चाची मरूस्या मुझे पेशी के लिए उन के कमरे में ले गयीं। वे बेहद नाराज थीं। "हरेक अलमारी में ताक-झांक करेगा और कांच तोड़ने लगेगा तो क्या होगा?"

शूर्का के पिता ने अपनी अंगूठीवाली अंगुली मेरे सिर से छुआ कर बड़े जोश के साथ घोषणा की, "इस-शोर करने-वाले लड़के को मेरे पुस्तकालय से

पुस्तकें ले जाने की छूट है ।"

मुझे एक नयी किताब देते हुए शूर्का ने कहा, "तुम उन्हें पसंद आये हो ।" पुस्तक थी—'विप्लव' और उस की जिल्द तथा लाल अक्षरों में छपा नाम बड़ा आकर्षक था । इस पुस्तक के साथ एक दुर्घटना हो गयी । मेरी बहिन ने इस के लिए छीनाझपटी की और किताब पर उस के शोरबे से सने हाथों का बड़ा धब्बा लग गया । अब डर के मारे मैं ने शूर्का के घर जाना बंद कर दिया ।

"तू मुझ से नाराज हो गया है ?" मेरा दोस्त रोज मुझ से पूछता, लेकिन मैं कुछ जवाब न दे पाता ।

सैकड़ों बार मैं ने इस धब्बे को दूर करने की कोशिश की, लेकिन मेरी हर कोशिश के बावजूद धब्बा गहरा ही होता गया । लाल अक्षर भी धुंधले पड़ गये । पैसे इकट्ठे करके मैं हर दुकान पर भटकता फिरा, पर वह किताब नहीं मिली ।

"पिताजी ने मुझ से पता करने के लिए कहा है कि तू हमारे घर क्यों नहीं आता ?" एक दिन शूर्का ने नाराज हो कर मुझ से पूछा ।

अगले दिन मैं हिम्मत करके धब्बेवाली किताब स्कूल ले आया । "शूर्का, अपने पिताजी से कह दो कि मैं घर आने लायक नहीं रहा," इस वाक्य को मैं ने रास्ते में सोच रखा था ।

उसी शाम शूर्का अपने पिता का संदेश ले कर मेरे घर आया कि मैं अपनी बात समझाने के लिए उन के पास जाऊं ।

दरवाजे के पास मैं ने बातचीत का शोर सुना । घर में मेहमान आये हुए थे । मेरे घुसते ही कोई बोला, "लो, यह रहा किताबें गंदी करनेवाला लड़का !"

तभी दरवाजे के भारी परदे को एक तरफ सरका कर शूर्का के पिताजी आ गये और मुझे मेज के पास ले आये । "देखिये," उन्होंने मुसकरा कर ऊंची आवाज में कहा, "आप लोगों में से कोई ऐसा है, जो इस लड़के की तरह किताबें पसंद करता हो ?"

फिर खुद ही उन्होंने इस का जवाब भी दिया, "नहीं ! यह लड़का एक महीने से यहां इसलिए नहीं आया क्योंकि इस से किताब गंदी हो गयी थी । यह बहुत बड़ा त्याग है ।"

फिर हम ने मेहमानों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया । अब इस सजे कमरे में सिर्फ हम थे । वे देर तक मेरी आंखों में देखते रहे—जैसे मेरे मन की परतें छान रहे हों । इस छाप को मैं ने अंकित कर लिया—जीवन भर के लिए ।

आज मैं फिर उसी घर में हूं । मेरे सामने मेरे दोस्त का बेटा है, लेकिन वह अपने संबंधियों, पिता या दादा, के बारे में बहुत कम जानता है, मेरे-जैसे पराये आदमी से भी कम ।

आखिरी चीज जो मैं ने जाते समय देखी, वह थी दीवार पर टंगी शूर्का की तस्वीर—सिपाहियों की वरदी और टोपी में । बहुत समय बीत चुका है, लेकिन मेरे लिए यह सोच पाना मुश्किल है कि ये लोग सचमुच मर चुके हैं । ●

पुरुष स्त्री से क्या चाहता है ?

● जोहरा जमाल

यदि महिलाओं से प्रश्न किया जाये कि 'पुरुष स्त्री से क्या चाहता है ?' तो बहुत-सी बहिनें जवाब देंगी : "सौंदर्य . . . आकर्षक वेश-भूषा . . . प्रेम . . ." बड़ी हद तक पुरुष स्त्री से संतुष्ट यौन-प्रेम का इच्छुक होता है। वह सुन्दरता, कोमलता, बनावट-सजावट भी चाहता है। लेकिन क्या केवल यही चीजें उसे संतुष्ट कर देती हैं ? जी नहीं !

वह प्रायः स्त्री में सरलता, सदाचार, गंभीरता और प्यार की गहनता ढूंढ़ता है। वह चाहता है कि उस में विचार-शीलता तथा अनुभव और भावना को समझने वाली क्षमता भी हो। साथ ही वह दिमागी रूप से समकक्ष पत्नी भी चाहता है।

पुरुष को गुड्डे की तरह बहलाना ही स्त्री के लिए काफी नहीं है—बल्कि मैं तो इसे अनावश्यक ही समझती हूं। स्त्री और पुरुष के बीच बनावट की अपेक्षा पवित्र, गंभीर और मैत्रीपूर्ण संबंध आवश्यक है—ऐसे संबंध कि पुरुष को अपनी सहचरी में परायेपन का बोध न हो। वह यह अनुभव करे कि वह उसे सदा से जानता है, पत्नी उस के दुःख-सुख और अच्छे-बुरे दिनों की साथिन है, जिस की सहानुभूति उस की अपनी पूंजी है। वास्तव में पुरुष बहुत कमजोर होता है और स्त्री का नाजुक-सा सहारा दरअसल उस की ताकत है। लेकिन यदि स्त्री केवल बनाव-सिंगार से उस को संतुष्ट करना चाहती है, गहराई और समझदारी से उस की भावनाओं का साथ नहीं देती तो वह सफल नहीं कही जा सकती।

स्त्री भी पुरुष की भांति मानसिक तृष्णा अनुभव करती है—पुरुष के प्रेम और मैत्री के लिए। वह चाहती है कि पुरुष के कंधे पर सिर रख कर जीवन का सारा बोझ उतार फेंके। और पुरुष चाहता है उस के घने केशों में आश्रय पा कर जीवन की कटुताओं को भुला दे। दोनों एक-दूसरे से सहारा मांग रहे हैं। लेकिन पहल कौन करे? कभी-कभी दोनों उलझ और लड भी सकते हैं, क्योंकि दोनों प्यासे हैं। और यहां चरित्र का ऊंचा होना जरूरी है। पुरुष सामाजिक तौर पर केवल यह अनुभव करने का आदी है कि स्त्री उस की सुन्दर शरण है, लेकिन वह यह भूल जाता है कि स्त्री भी जीवन की धूप से तप रही है। उस में रुखाई और चिडचिडापन इसलिए पैदा हो गया है कि वह भी सिर का बोझ रखती है। इस कटु यथार्थ के होते हुए भी मैं स्त्री से ही कहूंगी कि वह चिन्ताओं और परेशानियों में भी मुस-करायें और पुरुष को सहारा दे। वह अभी सामाजिक तौर पर बच्चा है।

बहुत-से जीवन इसीलिए कटुतापूर्ण होते हैं कि वर्षों के साथ के बाद भी पति-पत्नी एक-दूसरे से मानसिक तौर पर दूर रहते हैं। शादी मां-बाप की पसंद की है—पत्नी पति से इतनी सहमी रहती है कि उस की समस्याओं में किसी प्रकार की रुचि लेने का साहस ही नहीं करती। लेकिन यह ढंग स्वयं पुरुष को एकाकीपन का शिकार बना देता है। पुरुष के जीवन में पति-पत्नी की मानसिक समता जितनी महत्व-पूर्ण है, उतनी और कोई चीज नहीं। यह दोनों के सफल एवं सुखमय जीवन का आधार है। जीवन भर परस्पर निकट होने और एक दूसरे की पसंद को अप-नाने का प्रयत्न कीजिये। यह स्वाभा-विक होना चाहिये और बहुत हद तक यह बात पैदा भी की जा सकती है। यदि ऐसा नहीं है तो पति कितने ही उच्च व्यक्तित्व का क्यों न हो, घर उस के लिए नरक रहेगा और पत्नी के लिए वह दुनिया का बुरे से बुरा व्यक्ति साबित होगा। लेकिन, वह कहीं तो आसरा लेगा ही। आप क्या करेंगी? क्यों न खुद को बदलें?

यदि आप का पति दार्शनिक है तो आप दर्शन से परिचय प्राप्त कीजिये और भगवान के लिए उसे कभी अपने रूखे चेहरे से बेरुखी का अंदाजा न होने दीजिये। आप साधारण-से-साधारण बात में भी दार्शनिक पहलू निकालना सीख जाइये। यदि पति आलोचक है तो उस की हर आलोचना को सर-लता से स्वीकार कीजिये, लेकिन उस की कोई आलोचना मत कीजिये। उसे आत्मालोचन का अवसर दीजिये। अगर आप एक लेखक की पत्नी हैं तो आप उन पत्रों पर कभी मत लड़िये जो पति के नाम लडकियों ने लिखे हों, बल्कि उन्हें पढिये ही नहीं। पति सुनायें तभी आप दिलचस्पी लीजिये। वह जो कुछ लिखता है वह बहुत-से दिलों और दिमागों को प्रभावित करता है। अब अगर आप बुरा मानेंगी तो यह आप की कमजोरी और तंगदिली है।

फिर, पति को ताना भी मत दीजिये कि 'घर में खाने को नहीं है और कहां-

लिया लिख रहे हैं।' यह आप से दूर हो जायेगा। उसे उलझनों से बचाया करें। पड़ोसिन से लड़ाई हो गयी तो किसी और पड़ोसिन को सुना दीजिये। पति को ही सुनाना क्या जरूरी है! कभी उस ने भी कुछ सुना कीजिये न! पति की महानता का आदर कीजिये। आप उन्हें 'दाल बरा-बर' समझ कर न छोड़ दें—'घर की मुरगी' को आप हमेशा यह समझें कि सोने का अंडा देनेवाली मुरगी है। फिर मजाल है कि पति को शिकायत हो। उस के दोस्तों के आगे उस से लड़िये मत, न ही उन के दोस्तों से लड़िये, वरना वह लज्जित होगा। उन की इज्जत कीजिये और विशाल हृदय बनिये।

यदि आप कवि की पत्नी हैं तो यह समझिये कि सितार के नाजुक तारों को छेड़ते रहना ही आप की जिंदगी है। सुन्दर बनी रहिये, मुसकराती रहिये और सच्चे दिल से पति से प्रेम कीजिये। उस का हृदय बहुत कोमल और नाजुक है। वह आप को चोट नहीं पहुंचायेगा। कवि-पत्नी बनने के लिए इस्पात का दिल पैदा कीजिये। जिंदगी की उलझनों को आप अकेली झेल जायें। हां, अपनी सास, ननद, देवर आदि से और उस के मित्रों से प्रेम बनाये रखें — घर में झगड़ा, तू-तू मैं-मैं न होने दें, वरना उस की भाव-नाओं को ठेस पहुंचायेंगी। आप अपने में कविता का शौक जरूर पैदा कीजिये। अच्छी कविताएं पढ़ना और उन की सरा-हना करना सीखिये। अपने घर को फूलों से सजाइये। हलके और आंखों को भले लगनेवाले रंगों का इस्तेमाल कीजिये। अधिक बनावट से काम न लें। कवि सरलता और कोमलता पर ध्यान देता है। दूसरों की अपेक्षा उस पर भरोसा रखिये और उस की मामूली बातों का भी आदर कीजिये।

हां, अपने कवि पति के सामने इस बात का आप ध्यान रखें कि जिस कवि को आप पसंद करें वह स्वर्गीय हो, उस का समकालीन न हो और यदि सम-कालीन हो तो उस के जोड़ का न हो।

अपने पति की भावनाओं का आदर और उन पर भरोसा स्त्री के लिए आधार-भूत बात है। वह आप में सुन्दरता चाहता है—आप की प्रत्येक भाव-भंगिमा और विचार में उस के प्रति भावनात्मक निष्कपटता रखें, क्योंकि कवि हर चीज

फोटोग्राफर का पुत्र : पिताजी, निगेटिव ऐसा ही होता है ?

की यथार्थता को सूंघ लेता है। उस के साथ सुन्दर प्राकृतिक स्थानों की सैर कीजिये। उस की कोई अच्छी कविता सुना कीजिये।

यदि आप का पति प्रोफेसर है, तो आटे-दाल से ले कर दुनिया की हर समस्या पर हर समय लेक्चार सुनने को स्वेच्छा से उद्यत रहिये। आप का पति एम. एल. ए या मंत्री है तब तो आप उसे सन्तुष्ट रखती ही होंगी। चुनाव का काम भी करती होंगी। लेकिन उस की जिम्मेदारिया भी समझिये और उन में साथ दीजिये। उसे कुनबा-परस्ती से रोकिये और कर्त्तव्यपरायणता का आदी बनाइये। आलोचना सहने का माद्दा पैदा कीजिये, खुशामद से दूर रखिये।

यदि पति सरकारी पदाधिकारी है, तो हर मामले में टिपटाप रहिये। ये लोग बड़े फैशनपसन्द होते हैं। अलबत्ता उन से दफ्तर की बातों के बजाय इधर-उधर की बातें कीजिये ताकि मानसिक बोझ उतरे। हा, उसे रिश्वत न लेने दीजिये।

यदि आप का पति धनी है, तो उस की दौलत को दिमाग पर लादे मत फिरिये। दौलत से इतना प्रभावित मत होइये कि पति यह यकीन करने लगे कि आप की तमाम रुचियों का केन्द्र उस की दौलत है। आप धन से उदासीन हो कर पति के व्यक्तित्व के उस शून्य को भरने का प्रयत्न करें जो हर धनी की जिंदगी में होता है। धन का सदुपयोग कीजिये और पति का सच्चा और पूरा साथ दीजिये। यह नहीं कि आप सोने-चांदी तथा हीरे-जवाहरात के व्यापारियों और कपड़े की दुकानों में ही खो कर रह जायें, आप केवल कीमती वस्त्रों और जेवरों से सजी हुई एक गुड़िया बन जायें और पति अपने घर को एक 'शोकेस' समझने लगे।

अगर आप का पति गरीब है तो उसे केवल पति समझिये, गरीब नहीं। कहिये कि आप को जेवरों का तो बिलकुल शौक ही नहीं है। मामूली वस्त्रों में भी अपनी खूबसूरती निखारिये। चिंता और दुख-क्लेश से बचा कर आप यह समझिये कि आप जिंदगी के मोर्चे पर हैं, जहां दिन भर शत्रु से लड़ना तथा रात में होशियार सोना पड़ता है लेकिन भरोसा और हौसला बनाये रखना होता है। अपनी आत्मा और मस्तिष्क को स्वस्थ रखिये। आप महान स्त्री हैं, जो अपने पति को अपने प्रेम से इतना सुख दे सकती हैं कि केवल आप के प्रेम ही को वह अपना सुख समझ सके। सारा समय मुसीबतों से मुकाबला करने में गुजारिये। सुनहरे दिन आप की गोद में मुसकरायेंगे।

—अनु० जफर अहमद

विरोधी दल का सदस्य मंत्री महोदय से मिलने गया। उन के सचिव ने कहा, "मुझे दुख है कि आप की भेंट न हो सकेगी। मंत्री महोदय की पीठ में बहुत दर्द है।"

सदस्य ने कहा, "तुम उन से कहो कि मैं कुश्ती लड़ने नहीं बातचीत करने आया हूं।"

● दिग्विजय सिंह

उन दिनों मैं महल्ला मोतीनगर, थाना आलमबाग, चौकी नाका हिण्डोला, शहर लखनऊ खास में आबाद था। पेशा था, अखबारनवीसी। सेहत इस कदर खस्ता कि लगड़े-लूलों को भी मुझ पर तरस आ जाये। सारे दिन सिगरेटें फूंकना और खबरों के लिए नेताओं के दरवाजों की खाक छानना—यही मेरी दिनचर्या थी। इसी फांकेमस्ती के आलम में एक दिन घर के सामने स्थित अखाड़े के सरगना पहलवान जालिमसिंह सुबह-सुबह मेरे घर आ टपके। आते ही उन्होंने पहलवानों की तरह दोनों हथेलियां गरदन तक उठा कर एक कसरती नमस्ते जमायी और कुरसी पर बैठते हुए बडी आत्मीयता के साथ बोले, "आप ही को जनाब दुर्गविजे सींग साहब कहते हैं?"

"हां!"

"जी, दुर्गविजे के क्या मायने हुए? सींग के मतलब तो साफ हैं। अव्वल तो सींग गाय-भैंस के होते हैं और सींग शेर बब्बर को भी कहा जाता है। बड़ा कुव्वतवाला जानवर होता है," पहलवान ने अपनी मूंछ मरोड़ते हुए कहा, "हर इनसान को शेर के माफिक फौलादी होना चाहिये।"

मैं इस सवाल पर बहुत झेंपा। धीरे से अपने नाम का अर्थ बताया जिसे सुनते ही पहलवान जोश के साथ तड़प कर बोले, "अजी आप क्या दिशाएं जीतेंगे? आप को तो अपने अखाड़े में चार दंड और आठ बैठकें निकालनेवाला अप्रेंटिस छोकरा ही चित कर देगा।"

अपनी जिस्मानी छीछालेदर पर मुझे बडी कुढ़न हुई। अपना बचाव करते हुए मैं ने कहा, "लेकिन पहलवान साहब, इस में मैं कहां खतावार ठहरता हूं? सारी गलती तो मेरे बाप की है।

मेरे पैदा होते ही उन्होंने उत्साह में आ कर मेरा नाम दिग्विजयसिंह रख दिया लेकिन बाद में मेरी जिस्मानी तरक्की देखते हुए उन्हें मेरा नाम मुलायमसिंह या इसी किस्म का कोई दूसरा अहिंसावादी नाम रख देना चाहिये था। हां कहिये, आप की क्या सेवा की जाये ?"

इस प्रश्न पर पहलवान पशोपेश में पड़ गये। उन्होंने जेब से सिगरेट का एक पैकेट निकाल कर मेरे सामने रख दिया और निहायत आजिजी के साथ बोले, "आप को एक राज की बात बता रहा हूं जनाब। अभी किसी से कहियेगा नहीं। मुझे एक लड़की से मोहब्बत हो गयी है।"

किसी कदर अपनी हंसी दबाते हुए मैं ने कहा, "अजी इस में घबरानेशरमाने की कौन-सी बात है ? जब मोहब्बत हो ही गयी है तो कीजिये डट कर।"

इस तटस्थ दृष्टिकोण पर पहलवान थोड़ा निराश हुए और बोले, "मैं चाहता हूं कि कि मेरी कहानी लिख कर अखबारों में छाया कर दें। छपने की तारीख तक यह राज पोशीदा रहे और अचानक लोगों पर बिजली-सी टूटे कि उस्ताद अखाड़े के फन में नहीं, इश्क के फन में भी कमाल रखते हैं।"

अब तक मैं सिगरेट की पूरी डिब्बी फूंक चुका था और पहलवान ने दूसरी मेरे सामने रख दी थी। कहानी लिखूं तो कैसे, किस प्लाट पर और न लिखूं तो पहलवान सामने बैठा है। आखिर मैं ने हिम्मत बांध कर कहा, "तो ठीक है। आप की कहानी लिख दी जायेगी। आप सिर्फ उस खुशनसीब का नाम भर बता दीजिये जिस पर आप-जैसे आला इनसान की नजर पड़ी। बाकी सब मुझ पर छोड़ दीजिये। दो हफ्ते में आप को कहानी मिल जायेगी।"

पहलवान इतनी जल्दी टलनेवाले न थे। कुरसी पर और भी पसरते हुए बोले, "नहीं साहब, यहां असली नाम नहीं चलेंगे। मेरा जिस्म, लंबाईचौड़ाई, नाक-नक्शा सब कुछ वही रहेगा। केवल नाम बदल दिये जायेंगे। जालिमसिंह नाम का नायक इस कहानी में नहीं चल सकता। इस नाम को आप ने मजाक समझ रखा है ? बड़ेबड़े मर्द इस नाम से थर्राते हैं।"

मैं ने इस समस्या का हल तुरन्त सुझाया, "ठीक है, आप का कोई ऐसा रसीला नाम रख दिया जायेगा कि हीरोइन तो हीरोइन, उस के मां-बाप, भाई-बहन, यहां तक कि उस के रिश्तेदार भी आप के नाम की माला जपने लगेंगे। हां, यह बताइये कि शरत के उपन्यासों की फूल-सी कोमल, मृदु, स्वभाववाली किसी नायिका को आप के साथ रख दिया जाये तो ठीक रहेगा न ?"

इस प्रस्ताव का पहलवान ने जोरदार शब्दों में विरोध किया, "नहीं साहब, मुझ-जैसे इनसान का नाजुक नायिका के साथ गुजर नहीं हो सकता।"

"आप बेफिक्र रहिये," मैं ने पहलवान को इत्मीनान दिलाते हुए कहा, "आप के लायक मुनासिब हीरोइन खोज निकालना मेरा जिम्मा रहा। हां,

यह बताइये कि मोहब्बत में पहल कौन करेगा ?''

"पहल वही करें," पहलवान बोले, "मैं क्यों करूं ? पहलवान हूं, शरीफ आदमी हूं, उसूलन किसी औरत को देखना या उस से आंखें लड़ाना मेरी निगाह में एक गैरशरीफाना हरकत है ।''

"चलिये यह भी माना । अब यह बताइये कि मोहब्बत शुरू कहां की जाये ?''

"इस में कौन-सी मुश्किल है ? पिछले बरस मैं ने अंबाले के जमनागिरी पहलवान को पटका था, आप उसी मजमे में दस रुपये का टिकट दिलवा कर हीरोइन को बुलवा लीजिये । अखाड़े में बजरंगबली की मूरत के सामने मैं जमनागिरी को पटकता हूं और वह उसी मुकाम पर अपना दिल मुझे दे बैठती है ।''

मैं ने समझाते हुए कहा, "उस भीड़भाड़ में दिल दे बैठना मुमकिन नहीं है । उस मौके पर आप कुश्ती लड़ेंगे या आंख लड़ायेंगे ?''

"तो फिर यह मुलाकात आखिर कहां होगी ?''

"आप नायिका से किसी ऐसी बियाबान जगह पर मिलिये जहां मनुष्य-गंध तक न आती हो ।''

पहलवान बेचैनी के साथ हथेली मसलते हुए बोले, "मगर इस कमबख्त शहर में ऐसी बियाबान जगह मिलेगी कहां ? यह शहर क्या है, आफत है । हर जगह दस-पांच शोहदों का जमाव रहता है ।''

"आप जून के महीने में गोमती के किनारे बांध के पास मोहब्बत कर डालिये । इस महीने में स्कूल-कालेज बंद रहते हैं । चिलचिलाती धूप में पतंगबाजी का भी सवाल नहीं उठता । बांध के पास बस आप होंगे और आप की महबूबा । सीन कुछ इस तरह का होगा—हीरोइन आप को चोर कहेगी जिस का आप शांतिपूर्वक विरोध करेंगे और उस से अपने चोर होने का सबूत तलब करेंगे । सबूत में आप की प्रेमिका कहेगी कि आप ने उस के दिल की चोरी की है । अब आप को तस्लीम करना पड़ेगा कि आप वाकई चोर हैं । इस के बाद आप दो मिनट तक चुप रहेंगे और फिर आप हीरोइन

पर भी अपने दिल की चोरी का इल-जाम लगा देंगे।"

पहलवान खिसिया कर बोले, "नहीं साहब, मैं चोर नहीं बनूंगा। माना कि यह दिल की चोरी होगी लेकिन चोरी चोरी ही है। जरा गौर कीजिये, मैं इलाके का सब से बड़ा पहलवान हो कर चोरी करूं? ये ही बातें तो पहल-वानों को बदनाम करती हैं। जोरे-बाज़ू से दिल जीतने का कोई तरीका निकालिये?"

"फिर हीरोइन के पीछे गुंडे लगाने पड़ेंगे," मैं ने दूसरी तरकीब सुझायी, "और आप मौके पर पहुंच कर उसे गुंडों के पंजे से छुड़ा लेंगे। मेरे खयाल से आप जैसा कद्दावर पहलवान बीस गुंडों के लिए अकेला काफी होगा।"

"लेकिन एक साथ बीस गुंडे आयेंगे कहां से?"

"इस में कौन-सी मुश्किल है? आप अपने अखाड़े के सभी चेलों को लगा दीजिये। बीस क्या पचास मिल जायेंगे।"

पहलवान को अपने चेलों से गुंडों का काम लेना तनिक भी पसंद न आया। तुनक कर बोले, "जनाब, उन की मैं ने औलाद की तरह परवरिश की है। मेरा हाथ वैसे भी करारा पडता है। किसी गरीब के ज्यादा चोट आ गयी तो मेरे बदन की मालिश कौन करेगा?"

मैं ने समझाया, "अरे, आप उन्हें सचमुच थोड़े ही मारेंगे। ऐसा तो तो सिर्फ कहानी में लिखा जायेगा।"

पहलवान ने फिर विरोध किया, "नहीं साहब, शागिर्द सोचेंगे कि आज उस्ताद ने कहानी में पीटा है, कल हकीकत में पीटेंगे।"

"तो फिर मैं नायिका को नदी में कुदाये देता हूं। आप तैर कर उसे बीच धारा में से निकाल लाइये।"

पहलवान भर्राये गले से बोले, "मुझे तैरना नहीं आता।"

"तो फिर यों कीजिये," मैं ने कहा, "सौ-पचास रुपये खर्च कर डालिये। आजकल रुपयों से भी दिल जीतने का रिवाज है।"

"नहीं साहब, मैं इन मामलों में रुपये-पैसे का कायल नहीं हूं। हां, प्रेम हो जाने के बाद मैं अलबत्ता सौ-पचास खर्च कर सकता हूं। लेकिन प्रेम से पहले पैसा खर्च करना मुझे पसंद नहीं।"

अब मेरा प्रेस जाने का समय हो चला था। सिगरेट की दोनों खाली डिब्बियों को मैं ने रद्दी की टोकरी में फेंकते हुए कहा, "अच्छा तो अब आप बाकी मेरे ऊपर छोड दीजिये। मैं आप का प्रेम पहली नजर में कराये देता हूं। दृश्य कुछ इस प्रकार होगा—आप पसारी की दुकान पर बादाम लेने जाते हैं और हीरोइन उसी समय उसी दुकान में हल्दी लेने जाती है। उधर पसारी पुड़िया बांधता है और इधर आप दोनों एक-दूसरे को पहली नजर में दिल दे बैठते हैं। कई फिल्मों में ऐसा हुआ है।"

पहलवान को यह प्रस्ताव भी कुछ जमता नजर नहीं आया लेकिन मज-बूरन सहमत होते हुए बोले, "वैसे तो मैं बादाम लेने कभी जाता नहीं। यह काम चेले करते हैं। लेकिन आप

जिद करते हैं तो पंसारी की दुकान तक चला जाऊंगा। इन तीन में आप यह दिखाइयेगा कि मैं पाव-आध सेर नहीं, पूरे पांच सेर बादाम खरीदता हूं। अब आप नौरंगाबाद में कुछ खानगी लाइये।"

"वह मैं ले आऊंगा," मैं ने कहा, "अब मुझे आज्ञा दीजिये। दस बज रहा है, प्रेस देर से पहुंचूंगा तो संपादक जी डांटेंगे।"

पहलवान तेजी से बोले,, "कौन है आप के संपादक? मुझे एक बार बस दिखा दीजिये, एक-एक नस न ढीली कर दूं तो मेरा नाम बदल दीजियेगा।"

मैं ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "नहीं साहब, भगवान के लिए उन की एक भी नस न ढीली कीजियेगा वरना वे नौकरी से जवाब दे कर मेरी नसें ढीली कर देंगे।"

पहलवान अब कुरसी से उठ खड़े हुए। जाते-जाते बोले, "मैं खरा आदमी हूं। साफ बात कहता हूं और साफ बात ही सुनना पसंद करता हूं। आप को मैं चार सेर खालिस घी, दो सेर बादाम और सिगरेट के दस पैकेट दूंगा। इस के अलावा आप को नकदी की शक्ल में वाजिब मेहनताना भी दिया जायेगा। मंजूर है?"

स्वीकृतिसूचक सिर हिला कर मैं ने किसी तरह उस भीम को टाला।

वादे के मुताबिक पहलवान ने सभी चीजें भेज दीं। मैं इन चीजों को लेने से सचमुच इनकार करना चाहता था लेकिन न कर सका। आखिर मुझे भी हर आदमी की तरह अपने शरीर की एक-एक नस प्यारी है।

निर्धारित अवधि बीत जाने के बाद रोज पहलवान के शागिर्द आते रहे और मैं उन यमदूतों को कल पर टालता रहा। हर रात मुझे सपने में अपनी हड्डी-पसली टूटी नजर आती। आखिर भगवान सब की सुनता है। इन्हीं दिनों मुझे एक दूसरे शहर में अच्छी नौकरी मिल गयी और मैं रातों-रात सारे शहर से नजर बचा कर वहां भाग गया

प्रेमिका सम्पन्न परिवार की थी। प्रेमी निर्धन पर ईमानदार था। एक बार प्रेमी ने उस से पूछा, "क्या तुम बहुत धनी हो?"

"हां," प्रेमिका ने कहा, "मैं दो लाख रुपये की स्वामिनी हूं।"

"और मैं बहुत निर्धन हूं।"

"हां।"

"क्या तुम मुझ से विवाह करोगी?"

"नहीं।"

"मैं जानता था।"

"फिर पूछा क्यों?"

"सिर्फ यह जानने के लिए कि दो लाख रुपये हाथ से निकल जाने पर आदमी कैसा महसूस करता है।"

किरातकूट भग्न मन्दिरों की बस्ती

● मदनराज दौलतराम मेहता

मध्यकाल में पुराण, महाभारत तथा रामायण के दृश्यों के आधार पर मंदिरों की दीवारों पर असंख्य अलंकृत मूर्तियों का निर्माण किया गया। इन मूर्तियों में हमें अपनी संस्कृति के दर्शन तो होते ही हैं, साथ में अलंकार मूर्तियों में अभिव्यक्त भाव, लावण्य-योजना एवं सादृश्य से हमें अपनी कला की सार्वभौमिकता भी प्रतीत होती है। कवियों ने अपने काव्य में जिस मादक सौंदर्य का वर्णन किया है, उस का इन अलंकार मूर्तियों में सजीव अंकन हुआ है।

१३ वीं से १५ वीं शताब्दी के मध्य राजस्थान में अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ, जो अपनी कला की उत्कृष्टता के कारण आज भी दर्शनीय हैं। लेकिन राजस्थान के सुदूर पश्चिम में, मरुस्थल के बीच स्थित किराडू (किरातकूट) के मंदिर दर्शनीय होते हुए भी, एकान्त में स्थित होने से उपेक्षित रहे हैं। उत्तर रेलवे के बाडमेर-मुनावा रेलमार्ग के खडीन स्टेशन से कोई तीन मील की दूरी पर भग्न मंदिरों की एक बस्ती है जो किराडू के नाम से प्रसिद्ध है। शिलालेखों के आधार पर विद्वानों ने इस स्थान का प्राचीन नाम 'किरातकूट' माना है।

किराड, के मंदिर एक मील के क्षेत्र में फैले हैं। कहा जाता है कि किसी समय यहां पर २५ मंदिर विद्यमान थे। कालांतर में किसी कारण से यह क्षेत्र उजड़ गया। शताब्दियों तक उपेक्षित अवस्था में भग्न होते होते इन मंदिरों में से अब केवल पांच मंदिर

जित दृश्य अत्यंत मनोहर एवं आकर्षक हैं। गर्भगृह के बाहरी भाग पर रामायण संबंधी अनेक दृश्य हैं। इन दृश्यों में सुग्रीव-वाली युद्ध, अशोक वाटिका के उद्यान में हनुमान, वानरों द्वारा सेतु-निर्माण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

वाली-सुग्रीव युद्ध (किरातकूट)

रह गये हैं। इन में से भगवान सोमेश्वर का मंदिर आज भी अपने कलाकारों के यशवर्द्धन में संलग्न है।

सोमेश्वर मंदिर के बाहरी भाग पर कृष्णलीला संबंधी अनेक दृश्य उत्कीर्ण हैं। मंदिर के दक्षिणी भाग में अमृत-मंथन के पौराणिक आख्यान से संब-

मंदिर के बाहरी भाग में उत्कीर्ण इन विभिन्न दृश्यों से तत्कालीन वेश-भूषा, रहन-सहन यात्रा एवं युद्धों संबंधी अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं। किराड, गुर्जर नरेश कुमारपाल सोलंकी के सामंत अल्हणदेव के अधीन रहा।
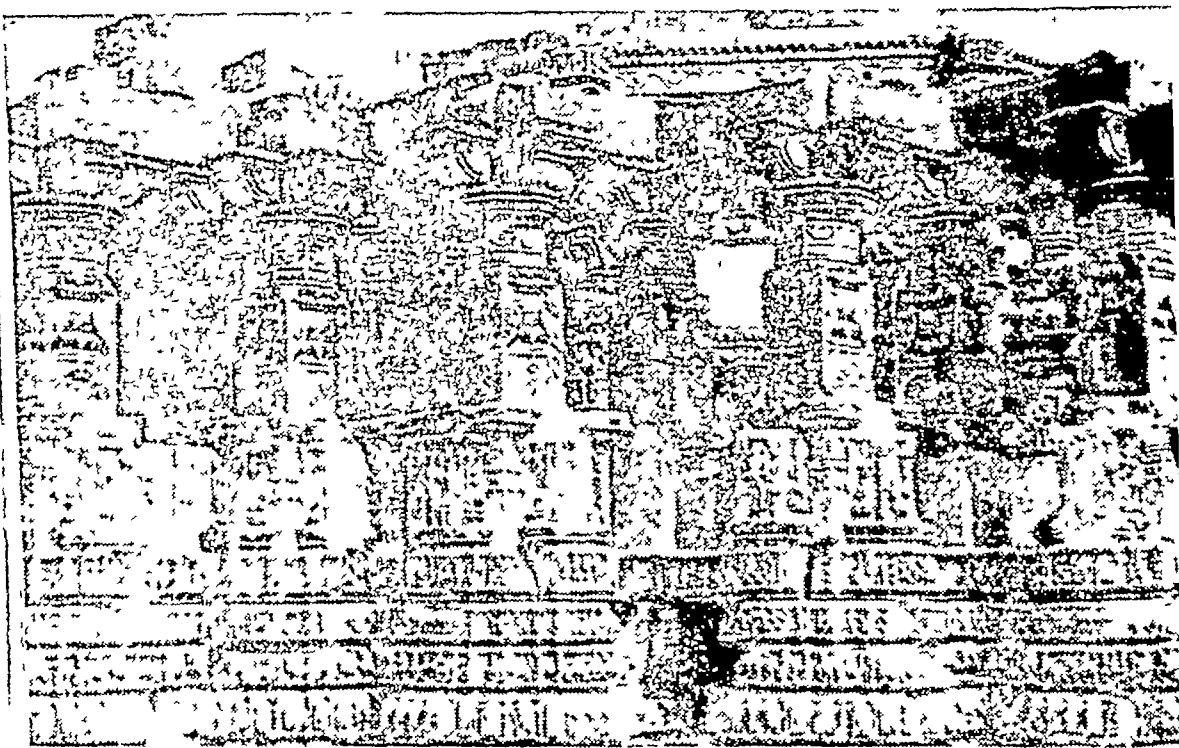
एक भग्न मंदिर (किरातकूट)

किराड, के सोमेश्वर मंदिर के प्रवेश-द्वार पर १३वीं शताब्दी के एक शिला-लेख से यह सूचना मिलती है ।

किराड, का ऐश्वर्य उस की अलंकार मूर्त्तियां तो हैं ही, उस से भी अधिक वह कलात्मक नक्काशी है जिस से प्राय उस के सभी मंदिर ढके हुए हैं । किराड, में प्रवेश करते ही हम एक ऐसे लोक में पहुंच जाते हैं जहां का प्रत्येक पत्थर सजीव प्रतीत होता है ।

"इस दर्जे में जो मूर्ख हो वह खड़ा हो जाये," मास्टर साहब ने कहा। कुछ देर चुप्पी छायी रही और फिर एक भोंदू-सा लड़का खड़ा हो गया। मास्टर साहब के चेहरे पर मुसकान फैल गयी। उन्होंने कहा, "तो तुम अपने को मूर्ख समझते हो ?"

"जी यह बात नहीं है, पर सिर्फ आप खड़े रहें यह अच्छा नहीं लगता।"

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

पुराणों में ऐसे कई उदाहरण आये हैं जिन से सिद्ध होता है कि ऋषियों की आयु कई कई हजार वर्ष की हुआ करती थी। हिन्दी के बहुत-से शब्द भी ऋषियों की-सी लम्बी आयु वाले हैं। जिन की जन्म-कुण्डली ऋग्वेद के पन्नों पर मिलती हो, उन्हें हम चार हजार वर्ष से कम का कैसे मान सकते हैं? कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्होंने महर्षि दधीचि से ले कर सन्त विनोबा तक का जमाना अच्छी तरह से देखा है।

वैदिक काल में कृषि-कर्म समुन्नत दशा में था। उस समय जौ, गेहूं, मूंग, मसूर और तिल की खेती अधिक होती थी। कृषि एवं कृषक-जीवन से संबंधित जो राष्ट्रभाषा हिन्दी के शब्द हमें प्राप्त हैं, उन में से अधिकांश का जन्म वैदिक काल में हो गया था। तिल (वै० तिल), मसूर (वै० मसूर), मूंग (वै० मुद्ग), जौ (वै० यव), गेहूं (वै० गोधूम), सवां (वै० श्याम) आदि शब्द वैदिक काल में उत्पन्न हुए थे। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में एक मंत्र आया है, जिस में उल्लेख किया गया है—

व्रीहयश्च मे, यवाश्च मे, माषाश्च मे, तिलाश्च मे, मुद्गाश्च मे, खल्वाश्च प्रियंगवश्च मे, अणवश्च मे, श्यामाश्चा मे, नीवाराश्च मे, गोधूमाश्च मे, मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

(वाजसनेयी संहिता, १८।१२)

खेती अर्थात् किसानी करनेवाला व्यक्ति किसान कहलाता है। इस की व्युत्पत्ति सं 'कृषण' से है। किन्तु वैदिक साहित्य में 'कीनाश' शब्द कई स्थलों पर 'किसान' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः
(ऋक् ४।५७।८; यजु. १२।६९)
अर्थात किसान सुखपूर्वक बैलों के साथ-साथ चलें।

कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।
(तैत्तिरीय ब्रा २।४।८।७)
अर्थात उत्तम अन्नादि के दाता किसान मरुत्त कहलाते हैं।

कालान्तर में कीनाश शब्द के अर्थ में हेठापन आ गया। परिणाम यह हुआ कि उस में अर्थापकर्ष आ गया। फिर पाणिनीय संस्कृत में कीनाश शब्द यमराज का पर्यायवाची बन गया। हिन्दी में इसे ही कनास कहते हैं।

किसान अपने खेतों में बम्बे (रजवहा) का पानी एक नाली द्वारा पहुंचाते हैं, जिसे हिन्दी में गूल कहते हैं। यह शब्द वैदिक शब्द कुल्या से व्युत्पन्न है। वैदिक कोश 'निघण्टु' (१।१३) में जहां नदी के सैंतीस नाम गिनाये गये हैं, उन में बाईसवां नाम कुल्या भी है। हिन्दी तक आते-आते इस में अर्थ-सकोच उत्पन्न हो गया। फिर गूल शब्द नदी-अर्थ से सिमटते-सिमटते नाली का अर्थ देने लगा।

पानी से भरा हुआ पुर अर्थात चरस (स पुट—पुर) जिस मोटी रस्सी द्वारा कुएं में से बैलों द्वारा ऊपर लाया जाता है—वह रस्सी वर्त कहलाती है। इस शब्द का जन्म अथर्ववेद की रचना से पहले हो गया था। अथर्ववेद में लिखा हुआ है—

शुनं वरत्रा बध्यन्ताम्।
(अथर्व. ३।१७।६)
सुखपूर्वक अर्थात अच्छी तरह वर्त से बांधा जाये।

वै० वरत्रा, वरत्त, वर्त—यह विकास-क्रम संभव है। निश्चित रूप से वर्त की आयु चार हजार वर्ष से कम नहीं है।

खेत की जुताई में काम आनेवाला मुख्य यंत्र फाला तथा फसल काटने में काम आनेवाला मुख्य यंत्र दरांत है। दरांत को हंसिया या हसिया भी कहते हैं। फाला और दरांत शब्दों का जन्म ऋग्वेद काल में हो गया था। ऋग्वेद में मिलता है—

शुनं न फाला विकृषन्तु भूमिम्।
(ऋग्वेद ४।५७।८)
अर्थात फाले हमारी धरती को अच्छी तरह जोतें।

वैदिक काल से ले कर आज तक फाला शब्द में अन्तर नहीं आया है। दरांत वास्तव में वैदिक शब्द दात्र ही है, जो काल के प्रभाव से अब बुड्ढा-सा लगता है और कुछ-कुछ नाक के स्वर में भी बोलने लगा है। ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है, "हे इन्द्र! तेरे ऊपर आशा करके ही मैं इस दरांत को अपने हाथ में लेता हूं।"

यास्क ने भी 'निरुक्त' नामक ग्रंथ में देश भेद के कारण शब्द भेद का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उत्तर भारत में लोग जिसे दात्र कहते हैं, उसे ही पूर्व में लोग दाति कहते हैं। दरांत के पर्यायवाची शब्द हंसिया का जन्म भी वैदिक काल में ही हुआ था। जन्म के समय ऋषियों ने इस का नाम असिद रखा था। वै० दात्र, हि० दरांत। वै० असिद, हि० हंसिया। असिद के सम्बन्ध में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है,

"मानव श्रौत सूत्र में 'हंसिया' के लिए 'असिद' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उसी से लोक में 'हंसिया' शब्द बना है। किन्तु इस का साहित्यिक प्रयोग वैदिक काल के उपरान्त फिर देखने में नहीं आया।"

हेमचन्द्र ने 'देशीनाममाला' (१।१४) में दरांत के अर्थ में आसिअ शब्द का उल्लेख किया है। यही आसिअ कालान्तर में अपने काकल (स्वर-यंत्र-मुख) को कुछ अधिक प्रयोग करने लगा। इस से नाद में महाप्राणता बढ़ गयी। परिणाम यह हुआ कि पहले 'ह्' ध्वनि कुछ श्रुति (पूर्व श्रुति) के रूप में निकली और फिर शनैः शनैः एक स्वतंत्र मूल ध्वनि का रूप धारण कर गयी। अतः आसिअ फिर हासिअ बन गया। मानव श्रौत सूत्र का आसिअ ही हासिअ बन कर हंसिया रूप ग्रहण कर गया है। इस का एक दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। दोनों प्रकार की श्रुतियों को इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

हंसिया = | ह् ˇ अ स इ य् ˇ आ |
(अ = १, स = २, इ = ३, आ = ४)

हंसिया शब्द में ४ (अ स इ आ) मूल प्रबल स्वतंत्र ध्वनियां हैं, किन्तु 'ह्' पूर्व श्रुति तथा 'य्' परश्रुति है जो वस्तुतः निर्बल तथा अस्पष्ट ध्वनि के रूप में ही अपना अस्तित्व रखती होंगी। श्रुतियां प्रबल और सुस्पष्ट बन कर ही तो स्वतंत्र ध्वनि (वर्ण) की संज्ञा ग्रहण करती हैं।

किसान जब बुरजी में पूरी तरह भुस भर लेते हैं तब उस के चारों ओर नरई (गेहूं के पौधे का सूखा तथा पका हुआ तना) से बना हुआ एक मोटा रस्सा-सा लपेटते हैं, जिसे जूना या जूनी कहते हैं। पुरानी रस्सी की गुंजल्क, जो बर्तन मांजने में काम आती है, जूना कहाती है। हिन्दी के इस शब्द का जन्मदिन भी वैदिक काल में पड़ता है। कात्यायन श्रौत सूत्र में यून शब्द का उल्लेख रस्सी के अर्थ में ही हुआ है। वैदिक तथा संस्कृत कालीन य् ध्वनि (असंयुक्त 'य्' ध्वनि) प्राकृत काल में ही ज् ध्वनि में बदल गयी थी। प्राकृत तथा अपभ्रंश के जक्ख (सं० यक्ष), जमल (सं० यमल), जोव्वण (सं० यौवन) आदि शब्द इस के प्रमाण हैं। इस से सिद्ध है कि वैदिक काल में उत्पन्न होनेवाला यून आज तक जीवित है। यह बात अलग है कि उस में कुछ परिवर्तन आ गया है। काल तो प्रभाव डालता ही है। ●

हरिया नौकरी के लिए सेठजी के पास पहुंचा।
सेठजी ने पूछा, "इस से पहले कहीं काम किया है तुम ने? सर्टीफिकेट दिखाओ।"
हरिया ने सार्टीफिकेट पेश कर दिया। लिखा था—
"यह आदमी मेरे यहां एक महीने काम करके छोड़ रहा है। मैं बहुत खुश हूं।"

आंख गयी दर्पन की

आम झरे, नीम झरी, सूख गये महुआ
अब आये हो किस का रूप तुम निहारने

बेरहम हवाओं ने इस तरह परीक्षा ली
पात-पात झुलस गये छांह में प्रतीक्षा की

अरुण चंद्र धवल हुआ श्वेत हुए बादल
अब आये हो किस के केश तुम संवारने

बिरना के बिरवे में फूट गयी शाख नई
बाबा के कंगना की खसक गयीं ईंट कई

आंसू पीते-पीते प्यास मरी मेरी
अब आये हो किस घर सावन तुम वारने

घर की दीवारों में लोना है बेध रहा
आंगन के घावों में उभरा है दर्द नया

आंख गयी दर्पन की, दरक गयी चूड़ी
अब आये हो किस की पालकी उघारने

— रामबहादुरसिंह भदौरिया —
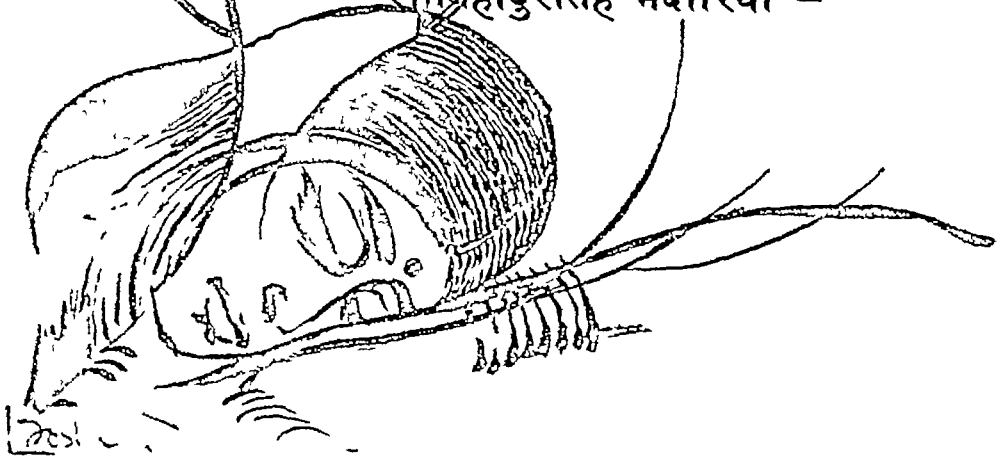
● जमाल कायमी

देश-प्रेम की भावना जगाने में उर्दू कवियों के योगदान की हम प्रायः सराहना करते हैं, किन्तु उर्दू की उन कवयित्रियों की ओर हमारा समुचित ध्यान नहीं गया है जिन्होंने राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत कविताओं की रचना की है। ख्याति से अछूती रहने पर भी काव्य-क्षेत्र में उन का अंशदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उन की कविताओं का रसास्वादन कर हम उन के प्रति वास्तविक सम्मान प्रकट कर सकते हैं।

वतन के सिपाही को इंगित करती हुई सरदार बेगम 'अख्तर' हैदराबादी मधुर एवं उत्साहपूर्ण लय में गा उठती है—

वतन जिसका ईमां, वतन जिस का प्यारा
वतन के मुकद्दर का रौशन सितारा
जवां बाजुओं पर रवां पारा-पारा
जबीं से नुमायां मगर नूरे शाही
वह आया, वह आया वतन का सिपाही
वह थर्रा उठी जुल्मो ताकत की दुनिया
वह घबरा उठी किब्रो नख्वत की दुनिया
वह गरमा उठी अज्मो हिम्मत की दुनिया
वह लहरा उठा परचमे बे-गुनाही
वह आया, वह आया, वतन का सिपाही

(जबीं=ललाट, नुमाया=प्रकट; किब्रो नख्वत=घमण्ड, परचमे बेगुनाही=निर्दोषिता का ध्वज)

अब गौहर इकबाल 'हूर' मेरठी की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति देखिये। एक जागरण-गीत 'नवाए अमल' किस स्वाभाविक ढंग से तरंगित हो उठता है—

जागो जागो बहनो जागो
कौम है मुरदा जान तुम्हीं हो
जीने का सामान तुम्हीं हो
शान है तुम से, शान तुम्हीं हो
शान तुम्हीं हो, आन तुम्हीं हो
अहदे गुलामी मौत से बदतर
सारी बलाएं ले लो सर पर

छाओ जहां पर रहमत बन कर
पहनो आजादी का जेवर
हम से लगी हैं कौम की आंखें
हम से बंधी हैं सारी उमीदें
मिल के जो हम मैदान में निकलें
भारत को आजाद करा दें
जागो जागो बहनो जागो

'खातूने वतन से' कविता से 'हया' मेरठी का एक शेर प्रस्तुत है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय नारी के नाम उन का यह अमर संदेश है—

गौर करके अपने नस्ब-उल्ऐन को तबदील कर
मकसदे आजादिए अक्वाम की तकमील कर

(नस्ब-उल्ऐन—वास्तविक उद्देश्य; अक्वाम=कौमों, राष्ट्रों, तकमील=पूर्ति)

'जेब' उसमानिया लुधियानवी ने विविध विषयों पर काव्य-रचना की है। स्वदेश-प्रेम के विषय में उन का एक अमिट शेर है—

दिलों में डाल के कौमो वतन का जौके गलत
है मक्र जज्बे मुरव्वत की दर्स-फरमाई

(जौके गलत=दृढ़ कामना, मक्र=छल; दर्स-फरमाई=प्रेम-भावना का पाठ)

'जोश' मलीहाबादी के रंग में रंगी एक कवयित्री, जो स्वयं को 'शमीम' मलीहाबादी लिखती हैं, स्वतन्त्रता से पूर्व देश की दुरावस्था का वर्णन करते हुए 'दुख्तरे हिन्द' से कहती हैं—

आह ! ये आफात, ये बरबादियां
हिन्द की और आह ये शहजादियां
आह ! ऐ हिन्दोस्ताने खस्ताहाल
भूख से बेताब हों यों तेरे लाल
आह ! ऐ जन्नतनिशां हिन्दोस्तां
तू कहां और यह तेरी हालत कहां
काश ! पलटा खायें रोजो माहो साल
तू हो औ तेरा वही जाहो जलाल

(आफात=आपदाएं, जन्नतनिशां=स्वर्ग के समान, जाहो जलाल=वैभव)

उन्हीं की कविता 'पैगामे अमल' का एक प्रसिद्ध शेर है—

कब से छाया है फजाओं पे फलाकत का गुबार
हिन्द की खाक से फिर लालो गुहर पैदा कर

(फलाकत=निर्धनता)

औरत के बारे में उन का एक शेर सुनिये—

आज भी बेदार कर सकती है तू अक्वाम को
आज भी हर मुल्क की किस्मत जगा सकती है तू

भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम तथा महिलाओं में जागरण पैदा करने के विषय में सईदा जहां मुखफी की कविताएं महत्त्वपूर्ण हैं। 'बेदारिए निस्वां' (नारी-जागरण) कविता में वे कहती हैं—

अपनी खोयी हुई तौकीर नुमायां कर दें
क्यों न तारीकिए महफिल को फिरोजां कर दें
तफरके सारे ये आलम के मिटा डालें हम
आओ ! अब जुर्रते निस्वां को नुमायां कर दें
हिन्द वीरान हुआ हम को ही मुखफी रख कर
उट्ठो ! इस उजड़े गुलिस्तां में बहारां कर दें

(तौकीर=प्रतिष्ठा; तारीकिए मह-फिल=सभा का अंधेरा, फिरोजां=प्रकाशमान, तफरके=भेदभाव, निस्वां=महिलाएं)

उन की 'उम्मीद' कविता के दो पद हैं—

शम्मे बेदारिए निस्वां ही चिरागां होगी
जिन्दगी सर बकफ एहसास पे नाजां होगी
आगही जर्रे निस्वां पे जो रक्सां होगी

तथा

हिन्द गुलजार, गुल अफरोज, गुल अफ्शां होगा
जगमगा दूंगा जहां को यह मेरा अज्मे सईद
हां, हिला दूंगा फलक को यह मेरा अज्मे सईद
अब मिटा दूंगा गुलामी को मेरा अज्मे सईद
दिले पजमुर्दा जो रुखसार पे खन्दां होगा

(शम्मे बेदारिए निस्वां=महिलाओं की जागरण-ज्योति, चिरागां=प्रकाशमान, सर बकफ=हथेली पर सिर रखे हुए, नाजां=गर्वान्वित, आगही=वृद्धि, गुल-अफशां=पुष्पित, अज्मे सईद=पुनीत प्रण, फलक=आकाश, पजमुर्दा=व्यथित, खन्दा=हंसता हुआ)

'मुखफी' अपनी एक अन्य कविता में कहती हैं—

याद कर पिछले सबक, पिछली वफा, पहली वह शान
याद कर वह आन अब ऐ दुख्तरे हिन्दोस्तान

रफीआ बानो 'मुजमिर' ने अनेक साहित्यिक विषयों पर अपनी लेखनी के जौहर दिखाये हैं। राष्ट्रीयता उन की घुट्टी में पड़ी है। 'अज्म' कविता के कुछ शेर प्रस्तुत हैं—

यह महकूमी, यह बंदिश, यह मजाको फिक्र की पस्ती
यह रूहों की गुलामी यह सियहकारी, यह बद-मस्ती
यह खाको खून में लिथड़े हुए अफ्कारे इनसानी
यह महकूमी की कुर्बांगाह पर जहनों की कुर्बानी
समाजी कुव्वतों को जोरे बाजू से मसल दूंगी
मैं इस तहजीब की नागिन को पैरों से कुचल दूंगी
बदल दूंगी निजामे जिन्दगी को सइए पैहम से
जमाना कांप उट्ठेगा मेरे अज्मे मुसम्मम से

(महकूमी=पराधीनता, मजाको फिक्र=कला-कौशल, पस्ती=अवनति, सियहकारी=पाप-कर्म, अफकारे इनसानी=मानवीय सृजनशीलता, कुर्बांगाह=बलि-स्थान, सइए पैहम=निरन्तर प्रयत्न, मुसम्मिम=दृढ निश्चय)

बरजीस जुद 'नाजिश' ने अठारह वर्ष की अल्पायु में ही अपनी काव्य-प्रतिभा से साहित्य-जगत को आलोकित कर दिया। इन में राष्ट्र-भावना कूट-कूट कर भरी थी। इन की कविता 'हिन्दी जवान से' ने इन की ख्याति में चार चांद लगा दिये हैं—

तू सो गया है राह में उठ जाग ऐ हिन्दी जवां
सब काफिले मंजिल पे हैं पीछे है तेरा कारवां
तेरे कबा है मुजमहिल, आंखें तेरी

बेनूर है
हुशियार हो, हुशियार हो, हैं मौत के
ये सब निशां
मजमूनबंदी छोड़ कर अब तू वफा
की फिक्र कर
किस काम की हैं यादें गुल जब जल
चुका हो आशियां
हां इल्म है दौलत बड़ी लेकिन है
मुहताजे अमल
तू भी बढ़ा आगे कदम कौमों का है
यह इम्तहां
(कवा=अवयव, मुजमहिल=क्लांत, दुर्बल)

अंत में आमना 'बरजीस' की एक विचार-प्रधान तथा देश-प्रेम से परिपूर्ण कविता 'नगमाए बेदारी' सुनिये—

हुशियार हो ऐ अरबाबे वतन
बेदार हो ऐ अरबाबे वतन
जुल्मत का गिरेबां चाक है फिर
दामाने सहर नमनाक है फिर
अब शोलानफस इदराक है फिर
देखो यह चमन बरबाद न हो
पामाले गमे बेदाद न हो
फिर चर्खे सितम-ईजाद न हो
ये जग की सूनी तदबीरें
ये जबूं हवस की ताजीरें
डूबी हैं लहू में शमशीरें
लेकिन, यह जमाना बदलेगा
इस दिन यह फसाना बदलेगा
खूंरेज तराना बदलेगा
हुशियार हो ऐ अरबाबे वतन
बेदार हो ऐ अरबाबे वतन

(अरबाबे वतन=देशवासियो; जुल्मत=अंधेरा; दामाने सहर=उषा का आंचल; नमनाक=आर्द्र; शोला-नफस=प्रज्वलित श्वास; इदराक—ज्ञान; पामाल=पददलित, बेदाद=अत्याचार, चर्ख=आकाश; सितमईजाद=अत्याचार का आविष्कारक, हवस=लालसा, ताजीरें=दण्ड, खूंरेज=रक्तरंजित) ●
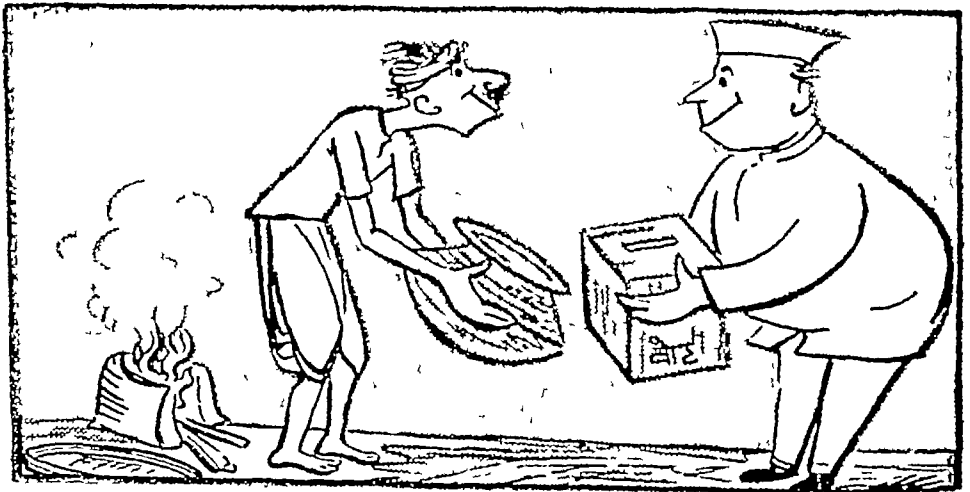
पिताजी को संग्रहणी थी। उन्हें बहुत दस्त हुए। लगा अब नहीं बचेंगे। मरणासन्न जान कर उन्हें आंगन में लिटा दिया गया। पर मेरे ज्योतिषी नाना ने कहा, "मरेंगे नहीं। कुण्डली में तो केवल 'मृत्युवत कष्टम्' लिखा है।" वैद्यजी ने सोने की कटोरी में मकरध्वज लिया और उन के मुख में डालने लगे।

वैद्यजी के आदेशानुसार रोशनी से पिताजी को बचाने के लिए दरवाजों पर बजनी काले पर्दे डाल दिये गये। रात भर तो अंधेरा था ही, सुबह की चिंता थी। सौभाग्यवश दूसरे दिन बादल छाये रहे। तीसरे दिन पिताजी की आंखें खुली तो उन्होंने कहा, "बोलने में असमर्थ था फिर भी मेरी चेतना ठीक थी। बस, सांय-सांय की आवाज कानों में जोर-जोर से गूंज रही थी। थोड़ी देर बाद मैं ने देखा कि घने अंधेरे में कुछ जुगनू-सा चमक रहा है। धीरे-धीरे उस की चमक बढ़ती गयी। लगता था कि कोई दीपक जल रहा है, पर केवल लौ दिखायी देती थी। प्रतिक्षण वह लौ मेरे समीप आने लगी। लौ को देखने से बड़ी शान्ति मिली। लोगों की बात-चीत मुझे मक्खी की भनक-सी सुनायी पड़ रही थी। जब मकरध्वज दिया गया, तो लगा कि कोई जोर-जोर से मेरी सूखी नसों में गरम हवा फूंक रहा है।"

पिताजी जब स्वस्थ हो गये तो उन्हें सांसारिक जीवन से विरक्ति हो गयी। रात में वे चारपाई पर बैठे जाने क्या टकटकी लगा कर देखते रहते थे। पूछने पर वे बताते थे कि मरणासन्न अवस्था में जो दीपक की लौ देखी थी, उसी का ध्यान कर रहा हूं। उस लौ की दिव्यता से अभिभूत हो कर वे संन्यासी हो गये पर वह लौ फिर कभी उन्हें दिखायी न दी।

—मालती मिश्र, वाराणसी

शास्त्री-परीक्षा देने मैं एक साथी के साथ सोनीपत गया था। रात के करीब दो बज चुके थे। मैं अपने बिस्तर पर लेटा हुआ टिप्पणियों का आवर्तन कर रहा था। न जाने कब झपकी लग गयी। मुझे एक बुरा स्वप्न दीखा —दिल्ली की सब्जीमंडी। विचारों में मग्न पिता जी पैदल चले जा रहे हैं। सड़क पार करने के लिए वे मुड़ते ही हैं कि तेजी से एक भारी

ट्रक उन के ऊपर से गुजर जाता है और वे उस के नीचे दब जाते हैं। दृश्य बदलता है। परिवार के सारे सदस्य रोते-कलपते नजर आते हैं। मुझे सूचना भेजने का विचार किया जाता है, पर मेरी परीक्षा पर बुरा असर पड़ने के डर से विचार बदल देते हैं।

एकाएक मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। व्याकुलता के कारण सुबह तक मैं न तो सो पाया और न पढ़ ही सका। परीक्षा समाप्त होने पर जब मैं घर लौटा तो सारा वातावरण भयानक चुप्पी से व्याप्त था। पता चला कि जिस समय मुझे स्वप्न दिखायी दिया था कि उसी समय पिताजी पर एकाएक पक्षाघात का आक्रमण हो गया था और तभी से वे मृत्यु से संघर्ष कर रहे हैं।

—कौटिल्य उदियानी, नयी दिल्ली

सन १९४६ में मेरठ में अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। मैं स्वागत-समिति का एक मंत्री था। खुले अधिवेशन वाले दिन की पहली रात को लगभग दस बजे कांग्रेस के महामंत्री डा० केसकर एक प्रस्ताव ले कर मेरे पास आये और बोले, "सुबह पांच बजे तक इस की ५,००० प्रतियां छपवा कर दे दीजिये। नगर में कर्फ्यू लगा हुआ था। छुरेबाजी की घटनाएं हो रही थीं।

मजबूरी में मैं ने विलिंगडन प्रेस के मालिक को उन के घर जा कर जगाया। वे कहने लगे कि उन के कर्मचारी मुसलमान हैं, कौन उन्हें बुला कर लाये? मैं ने दो मोटरें, दो गैस की लालटेनें और एक सिपाही का प्रबंध कर दिया। इन की सहायता से उन्होंने अपने कर्मचारी इकट्ठे किये।

लगभग डेढ़ बजे रात को प्रेस के मालिक प्रूफ ले कर आ गये। प्रूफ पढ़ने की जिम्मेदारी लेने को वे बिलकुल तैयार नहीं थे। प्रस्ताव स्वयं नेहरूजी के हाथ का लिखा हुआ था। हम जानते थे कि यदि कोई गलती हुई तो पंडितजी सब को डांटेंगे।

हम दोनों ने दो बजे रात को डा० केसकर को जगाया और प्रूफ दिखा कर उन के हस्ताक्षर ले लिये। सुबह पांच बजे ५,००० प्रतियां छप कर आ गयीं। डाक्टर केसकर पंडितजी के पास ही बैठे थे। मैं इस आशय से कि शाबाशी मिलेगी, वहीं चला गया। छपा हुआ प्रस्ताव देख कर पंडितजी आग-बबूला हो गये। बोले, "क्या मेरठ में ऐसी ही छपाई होती है? यह छपाई है या मजाक? ऐसी नामाकूल छपाई होगी, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता था।" लेकिन फौरन ही उन्हें ध्यान आया कि यह तो वह प्रस्ताव है जो रात को नौ बजे पास हुआ था। वे हंसने लगे और बोले, "इतनी जल्दी यह काम हो गया! यह बहुत बढ़िया हुआ।" मैं तो गद्गद् हो गया।

—परमानंद, कानपुर

उन दिनों मैं प्रखंड विकास कार्यालय मडरिया में नियुक्त था। जगह आवागमन के साधनों से रहित थी। नजदीकी बस-स्टेशन तक १२ मील पैदल चलने के बाद ही पहुंचा जा सकता था। मेरे एक सहकर्मी

बीमार थे, पर ज्वर में तपते हुए भी वे पैदल ही बस-स्टैंड तक जाने को उद्यत थे। न जाने किस प्रेरणावश उन्हें समझा-बुझा कर अपने डेरे पर ले आया। दवा के प्रयोग से उन का ज्वर रात के तीसरे पहर जा कर कुछ कम हुआ। पैर में कटोरी रगड़ते, माथा दबाते, माथे पर जल की पट्टी बदलते, सांत्वना देते हुए रात जागते बीती। सुबह तक ज्वर बिलकुल उतर गया। वे कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए अपने डेरे गये।

छठे दिन घर से पिता जी का पत्र मिला — पिछले शनिवार, दिनांक १८-८-६२ को भगवान के आशीर्वादस्वरूप नाती (मेरा पुत्र) का जन्म हुआ। डिप्थीरिया जैसा काल भी वह अपने साथ ही लाया। १२ घंटे मौत की गोद में खेलने के बाद वह खतरे से बाहर हुआ। तुम वहां भगवान की पूजा करना और कथा सुन लेना।

मेरे दिमाग में बिजली-सी कौंध गयी। १८ तारीख! तो क्या उस रात मैं अपने उस सहकर्मी की नहीं, अपने नवजात शिशु की सेवा करता रहा?

—अनिरुद्धप्रसाद महात्मा, लातेहर

मैं ने कालेज छोड़ कर पलाना की कोयला खान में 'इलेक्ट्रीशियन हेल्पर' की नौकरी कर ली। मेरे साथ एक और हेल्पर था। हम दोनों हमेशा खान के अंदर घंटी तथा इलेक्ट्रिक मोटर का निरीक्षण करने जाया करते थे। वह विनोदी स्वभाव का था। जब हम खान के अंदर चलते तो वह कैपलाइट बत्ती बुझा कर चुपचाप आगे चला जाता या कहीं दुबक जाता। मैं नया-नया काम पर लगा था इसलिए अंधेरे में बहुत परेशान होता। आखिर मैं ने भी उस का हल निकाल लिया। उस दिन उस ने ज्यों ही बत्ती बुझायी मैं ने उस की कमीज पकड़ कर उसे पीछे खींच लिया। उसी समय हमारे सामने जोर से कुछ गिरने की आवाज हुई। हम दोनों भयभीत हो एक दूसरे से चिपट गये। कुछ देर बाद हम ने बत्ती जला कर देखा तो विस्मय से चीख निकल गयी। जहां हम खड़े थे, वहां से दो फुट की दूरी पर गैलरी की छत से गिरे कोयले के कई बड़े-बड़े ढेले पड़े थे। अगर वह बत्ती बुझा कर मजाक नहीं करता तो हम सीधे चलते जाते और कोयले हमारे ऊपर गिरते।

—भैरूसिंह 'नाशाद', पलाना

इस अंक के पुरस्कार-विजेता क्रमशः इस प्रकार हैं—भैरूसिंह 'नाशाद', अनिरुद्धप्रसाद महात्मा, मालती मिश्र। प्रथम पुरस्कार २५ रुपये, द्वितीय १५ रुपये तथा तृतीय १० रुपये। शेष प्रकाशित संस्मरणों पर ५-५ रुपये।

यहां हम जरमन लघु उपन्यास 'मित वोल्फन साल मैंन निच्श्ट स्पीलन' का संक्षिप्त रूपांतर पेश कर रहे हैं। इस के लेखक जोसेफ मारटिन बाएर का जन्म १९०१ में तार्पीकरशेन नामक कसबे में हुआ था। यह कसबा उत्तर बवेरिया में है। ३१ वर्ष की उम्र में लेखक को 'एवार्ड फार यंग जरमन राइटर्स' नामक पुरस्कार मिला। 'सोवीत दी फूसे ट्रेजन' उपन्यास ने उन्हें विश्व-प्रसिद्ध कर दिया। यह एक युद्ध-उपन्यास है जो १२ भाषाओं में अनूदित हो चुका है। इस की दस लाख से भी अधिक प्रतियां हाथोंहाथ बिक गयीं। 'द सोंताग्स्लुग्नर' उन का दूसरा बहुचर्चित उपन्यास है जिस में एक सेल्समेन के दैनिक जीवन की करुणा चित्रित की गयी है।

दो और उपन्यासों के बाद उन का कहानी-संग्रह 'मेन्स्च एन दे वेंड' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसी संग्रह में प्रस्तुत लघु-उपन्यास भी है। मानवीय स्वाभाव की कमजोरियों का इतना सरस लेकिन व्यंग्यपूर्ण चित्रण बहुत कम साहित्यकार कर पाते हैं। इस का हिन्दी रूपांतर किया है मनहर चौहान ने।

मौत नाच रही थी, लेकिन

कई बातों के प्रति शुरू-शुरू में हम इतने क्रूर होते हैं कि उन्हें किसी भी रूप में स्वीकार ही नहीं करते। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, हमें उन की आदत पड़ जाती है और तब हम इतना गौर नहीं करते कि जो कुछ हम स्वीकार कर चुके हैं, सच मान बैठे हैं, वह वाकई मुमकिन है भी या नहीं।

उस आदमी के साथ भी यही हुआ। कुछ ही समय पहले वह उस छोटे-से कसबे में आया था और उस के बारे में बात फैल गयी थी कि उस की नाक अनोखी है। कठोर जमीन पर किसी के चलने का निशान न पड़ा हो तो भी केवल सूंघ कर बता सकता था कि यहां से कौन गुजरा है। न केवल इतना, वह तो यहां तक बता सकता था कि ...न-सा व्यक्ति कुछ ही घंटों में मर ... । है—

भले ही उस व्यक्ति को कोई बीमारी न हो और वह पूरी तरह स्वस्थ दिखायी पडता हो।

लोग कहते हैं कि कुछ ही घटों में जिस की मौत आने वाली होती है, उस के शरीर से एक खास किस्म की बू आती है, लेकिन मानवीय नाक उस की पहचान नही कर सकती। कास्पर, हा यही उस का नाम था — कास्पर इगेंतर। वह मौत की बू पहचान लेता था। वह कहता कुछ नही था लेकिन ज्यों ही उसे पता चलता कि फला आदमी दो-चार दिनों में मरने वाला है, तुरंत ही वह उस आदमी से अलग रहना शुरू कर देता। यदि सयोगवश वह आदमी करीब आ जाता तो कास्पर लगभग भाग जाता।

उसी कसबे में मिस्टर दोमरेल रहते थे। उन के विशाल खेतों में जौ, चुकन्दर तथा अन्य चीजो की सुव्यवस्थित खेती हुआ करती थी। जुलाई और अक्तूबर के महीनों मे उन्हें मजदूरो की सख्त जरूरत होती। इन मजदूरों के लिए निवास की बहुत अच्छी व्यवस्था तो मिस्टर दोमरेल नही कर पाते थे लेकिन उन के यहा जो मजदूरी मिलती थी, वह इतनी अच्छी थी कि मजदूर कभी शिकायत न करते। जैसा भोजन मजदूरों को दिया जाता, वैसा ही स्वयं मिस्टर दोमरेल को मिलता।

कास्पर इगेंतर सीमात के किसी दुर्गम प्रदेश में रहता था, जहां से वह हर साल उस समय इस कसबे में आता जब जौ की फसल का पकना शुरू हो चुका होता। पिछले छह वर्षों से वह नियमित रूप से आ रहा था। वह मिस्टर दोमरेल से मिलता और उन से पूछता कि उन्हें कितने मजदूरों की जरूरत किस समय होगी ताकि ऐन मौके पर इस समस्या का सामना न करना पड़े।

जहां तक जौ की फसल उतारने का सवाल था, मजदूरो की समस्या गभीर नही थी क्योंकि जौ की फसल बहुत जल्द उतर जाती थी, लेकिन जब पाला पडना शुरू होता तो केवल वे ही मजदूर मिस्टर दोमरेल की मजदूरी में टिके रहते जो कास्पर द्वारा लाये जाते थे। दूसरे मजदूर तुरत भाग खडे होते या नखरों पर उतारू हो जाते। कास्पर के मजदूर, चाहे कितना भी पाला होता, काम करते। कास्पर खुद भी उन के साथ खून-पसीना एक करता।

सभी का खयाल था कि कास्पर का स्वभाव खानाबदोश है। यदि उस से कहा जाये कि कहीं बध कर रहो तो निश्चित रूप से वह साफ इनकार कर देगा। इसीलिए पूरे छह वर्षों तक मिस्टर दोमरेल इस बारे में चुप्पी साधे रहे। देखने-सुनने में मिस्टर दोमरेल किसी मजदूर-जैसे ही लगते थे, अगर उन्हें मजदूरों द्वारा मालिक कह कर न पुकारा जाता तो धोखा होने की पूरी संभावना थी। नये मजदूरों को तो धोखा हो ही जाता था। वे मिस्टर दोमरेल को 'हाथ पर हाथ रख कर एक तरफ खडा' देखते तो डांट देते कि अरे ओ, काम क्यों नही करता? और फिर झेपते कि हाय, किस के लिए ऐसी बात मुंह से निकल गयी।

सातवें साल मिस्टर टॉमरेल ने कास्पर को अपना 'इटालियन हाउस' दिखाया जो खाली पड़ा था और पूछा कि क्या वह इस में हमेशा के लिए रहना पसन्द करेगा? अप्रत्याशित रूप से कास्पर ने 'मालिक' का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु उस की एक शर्त थी। उस ने कहा कि वह यहां रह जरूर सकता है लेकिन हमेशा के लिए रहने का वादा नहीं कर सकता। कास्पर ने यह भी कहा कि यदि मिस्टर टॉमरेल किराया छोड दें तो बदले में वह उन के खेतों में एक भी छछूंदर जीवित न रहने देगा. अन्य प्राणियों से भी फसल को बचाये रखेगा। लेकिन यहां भी एक शर्त थी—कास्पर जो भी प्राणी मारेगा, उस के मांस और चमड़े पर उसी का हक होगा। मिस्टर टॉमरेल ने दोनों शर्तें मंजूर कर लीं।

उस मकान का नाम 'इटालियन हाउस' इटली के एक कुम्हार वेलास्को की यादगार में रखा गया था। वह कुम्हार चालीस वर्ष पहले उस में रहता था और तब तक उसे छोड़ कर नहीं गया था, जब तक आसपास की सारी अच्छी मिट्टी खत्म न हो गयी थी। 'इटालियन हाउस' भवन-निर्माण-कला का बढ़िया नमूना नहीं था, न वह बहुत मजबूत ही था, लेकिन उस मामूली मकान में कास्पर ने बडे चाव से एक पलंग सजाया और पास में ही एक स्टूल रखा। दराजों वाली एक पुरानी मेज भी वह खरीद लाया। पुराने फैशन का लेकिन मजबूत स्टोव भी उसे कहीं से मिल गया। मिट्टी के तेल की बोतल और एक बड़ी सी टिवनी का भी उस ने जुगाड़ किया। कमरे को गरम रखने के लिए जलाने की लकड़ियां वह प्रायः रोज ही लाता। मतलब यह कि वह सचमुच वहां रहने लगा। वह कुछ हद तक एक डरावनी खामोशी के साथ रहता था, इतनी खामोशी के साथ कि लगता 'इटालियन हाउस' अभी तक खाली पडा है।

लोगों ने कास्पर को ऐसे आदमी के रूप में पहचान लिया, जिसे प्राय. हर दरवाजे को पार करने से पहले अपना शरीर झुकाना पड़ता था। सचमुच कास्पर इतना लंबा था कि एकाएक विश्वास न हो पाये। उस की बड़ी लापरवाही से चलने की आदत थी। कई बार तो यहां तक लगता कि वह चल नहीं रहा है, बल्कि अपने को घसीट रहा है। अपने मकान से बाहर आ कर वह एक बार जोर से खखारता, फिर कुत्ते की तरह हवा में सूंघ कर पता लगाता कि उसे किस दिशा में जाना चाहिये, ताकि शिकार मिल सके। कंधों पर टिकी लाठी से वह कई तरह के जाल झुलाये रहता। नाक में हुई संवेदना के आधार पर वह चल देता—मैदानों, ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों और चरागाहों को पार करता हुआ। वह ज्यादा से ज्यादा चुप रहता। अत. रहस्यमय लगता था।

कई बार दिन भर में उस के गले से सिर्फ एक बार आवाज निकलती; जब वह कमरे से बाहर आ कर आदतन खखारता और हवा में सूंघ कर अपनी राह चल देता। उस के जालों में लगे लोहे का खनकना भी प्राय एक

यहां हम जरमन लघु उपन्यास 'मित वोल्फन साल मैन निच्स्ट स्पीलन' का संक्षिप्त रूपांतर पेश कर रहे हैं। इस के लेखक जोसेफ मारटिन वाएर का जन्म १९०१ में तार्फकरशेन नामक कसबे में हुआ था। यह कसबा उत्तर बेवेरिया में है। ३१ वर्ष की उम्र में लेखक को 'एवार्ड फार यंग जरमन राइटर्स' नामक पुरस्कार मिला। 'सोवीत दी फूसे ट्रेजन' उपन्यास ने उन्हें विश्व-प्रसिद्ध कर दिया। यह एक युद्ध-उपन्यास है जो १२ भाषाओं में अनूदित हो चुका है। इस की दस लाख से भी अधिक प्रतियां हाथोंहाथ बिक गयीं। 'दे सोंताग्स्लूग्नर' उन का दूसरा बहुचर्चित उपन्यास है जिस में एक सेल्समेन के दैनिक जीवन की करुणा चित्रित की गयी है।

दो और उपन्यासों के बाद उन का कहानी-संग्रह 'मेन्स्च एन दे वेंड' हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसी संग्रह में प्रस्तुत लघु-उपन्यास भी है। मानवीय स्वाभाव की कमजोरियों का इतना सरस लेकिन व्यंग्यपूर्ण चित्रण बहुत कम साहित्यकार कर पाते हैं। इस का हिन्दी रूपांतर किया है मनहर चौहान ने।

मौत नाच रही थी, लेकिन

कई बातों के प्रति शुरू-शुरू में हम इतने क्रूर होते हैं कि उन्हें किसी भी रूप में स्वीकार ही नहीं करते। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, हमें उन की आदत पड़ जाती है और तब हम इतना गौर नहीं करते कि जो कुछ हम स्वीकार कर चुके हैं, सच मान बैठे हैं, वह वाकई मुमकिन है भी या नहीं।

उस आदमी के साथ भी यही हुआ। कुछ ही समय पहले वह उस छोटे-से कसबे में आया था और उस के बारे में बात फैल गयी थी कि उस की नाक अनोखी है। कठोर जमीन पर किसी के चलने का निशान न पड़ा हो तो भी वह केवल सूंघ कर बता सकता था कि यहां से कौन गुजरा है। न केवल इतना, वह तो यहां तक बता सकता था कि कौन-सा व्यक्ति कुछ ही घंटों में मर जाने वाला है—

भले ही उस व्यक्ति को कोई बीमारी न हो और वह पूरी तरह स्वस्थ दिखायी पड़ता हो।

लोग कहते हैं कि कुछ ही घंटों में जिस की मौत आने वाली होती है, उस के शरीर से एक खास किस्म की बू आती है, लेकिन मानवीय नाक उस की पहचान नहीं कर सकती। कास्पर, हां यही उस का नाम था — कास्पर इर्गेनर। वह मौत की बू पहचान लेता था। वह कहता कुछ नहीं था लेकिन ज्यों ही उसे पता चलता कि फलां आदमी दो-चार दिनों में मरने वाला है, तुरंत ही वह उस आदमी से अलग रहना शुरू कर देता। यदि संयोगवश वह आदमी करीब आ जाता तो कास्पर लगभग भाग जाता।

उसी कसबे में मिस्टर दोमरेल रहते थे। उन के विशाल खेतों में जौ, चुकंदर तथा अन्य चीजों की सुव्यवस्थित खेती हुआ करती थी। जुलाई और अक्तूबर के महीनों में उन्हें मजदूरों की सख्त जरूरत होती। इन मजदूरों के लिए निवास की बहुत अच्छी व्यवस्था तो मिस्टर दोमरेल नहीं कर पाते थे लेकिन उन के यहां जो मजदूरी मिलती थी, वह इतनी अच्छी थी कि मजदूर कभी शिकायत न करते। जैसा भोजन मजदूरों को दिया जाता, वैसा ही स्वयं मिस्टर दोमरेल को मिलता।

कास्पर इर्गेनर सीमान के किसी दुर्गम प्रदेश में रहता था, जहां से वह हर साल उस समय इस कसबे में आता जब जौ की फसल का पकना शुरू हो चुका होता। पिछले छह वर्षों से वह नियमित रूप से आ रहा था। वह मिस्टर दोमरेल से मिलता और उन से पूछता कि उन्हें कितने मजदूरों की जरूरत किस समय होगी ताकि ऐन मौके पर इस समस्या का सामना न करना पड़े।

जहां तक जौ की फसल उतारने का सवाल था, मजदूरों की समस्या गंभीर नहीं थी क्योंकि जौ की फसल बहुत जल्द उतर जाती थी, लेकिन जब पाला पड़ना शुरू होता तो केवल वे ही मजदूर मिस्टर दोमरेल की मजदूरी में टिके रहते जो कास्पर द्वारा लाये जाते थे। दूसरे मजदूर तुरंत भाग खड़े होते या नखरों पर उतारू हो जाते। कास्पर के मजदूर, चाहे कितना भी पाला होता, काम करते। कास्पर खुद भी उन के साथ खून-पसीना एक करता।

सभी का खयाल था कि कास्पर का स्वभाव खानाबदोश है। यदि उस से कहा जाये कि कहीं बंध कर रहो तो निश्चित रूप से वह साफ इनकार कर देगा। इसीलिए पूरे छह वर्षों तक मिस्टर दोमरेल इस बारे में चुप्पी साधे रहे। देखने-सुनने में मिस्टर दोमरेल किसी मजदूर-जैसे ही लगते थे, अगर उन्हें मजदूरों द्वारा मालिक कह कर न पुकारा जाता तो धोखा होने की पूरी संभावना थी। नये मजदूरों को तो धोखा हो ही जाता था। वे मिस्टर दोमरेल को 'हाथ पर हाथ रख कर एक तरफ खड़ा' देखते तो डांट देते कि अरे ओ, काम क्यों नहीं करता? और फिर झेंपते कि हाय, किस के लिए ऐसी बात मुंह से निकल गयी।

सातवें साल मिस्टर डोमरेल ने कास्पर को अपना 'इटालियन हाउस' दिखाया जो खाली पड़ा था और पूछा कि क्या वह इस में हमेशा के लिए रहना पसंद करेगा ? अप्रत्याशित रूप से कास्पर ने 'मालिक' का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया किन्तु उस की एक शर्त थी। उस ने कहा कि वह यहां रह जरूर सकता है लेकिन हमेशा के लिए रहने का वादा नहीं कर सकता। कास्पर ने यह भी कहा कि यदि मिस्टर डोमरेल किराया छोड़ दें तो बदले में वह उन के खेतों में एक भी छछूंदर जीवित न रहने देगा, अन्य प्राणियों से भी फसल को बचाये रखेगा। लेकिन यहां भी एक शर्त थी—कास्पर जो भी प्राणी मारेगा, उस के मांस और चमड़े पर उसी का हक होगा। मिस्टर डोमरेल ने दोनों शर्तें मंजूर कर लीं।

उस मकान का नाम 'इटालियन हाउस' इटली के एक कुम्हार वेलास्को की यादगार में रखा गया था। वह कुम्हार चालीस वर्ष पहले उस में रहता था और तब तक उसे छोड़ कर नहीं गया था, जब तक आसपास की सारी अच्छी मिट्टी खत्म न हो गयी थी। 'इटालियन हाउस' भवन-निर्माण-कला का बढ़िया नमूना नहीं था, न वह बहुत मजबूत ही था, लेकिन उस मामूली मकान में कास्पर ने बड़े चाव से एक पलंग सजाया और पास में ही एक स्टूल रखा। दराजों वाली एक पुरानी मेज भी वह खरीद लाया। पुराने फैशन का लेकिन मजबूत स्टोव भी उसे कहीं से मिल गया। मिट्टी के तेल की बोतल और एक बड़ी सी ढिबरी का भी उस ने जुगाड़ किया। कमरे को गरम रखने के लिए जलाने की लकड़ियां वह प्रायः रोज ही लाता। मतलब यह कि वह सचमुच वहां रहने लगा। पर कुछ हद तक एक डरावनी खामोशी के साथ रहता था, इतनी खामोशी के साथ कि लगता 'इटालियन हाउस' अभी तक खाली पड़ा है।

लोगों ने कास्पर को ऐसे आदमी के रूप में पहचान लिया, जिसे प्राय हर दरवाजे को पार करने से पहले अपना शरीर झुकाना पड़ता था। सचमुच कास्पर इतना लंबा था कि एकाएक विश्वास न हो पाये। उस की बड़ी लापरवाही से चलने की आदत थी। कई बार तो यहां तक लगता कि वह चल नहीं रहा है, जबरन अपने को घसीट रहा है। अपने मकान से बाहर आ कर वह एक बार जोर से खखारता, फिर कुत्ते की तरह हवा में सूंघ कर पता लगाता कि उसे किस दिशा में जाना चाहिये, ताकि शिकार मिल सके। कंधों पर टिकी लाठी से वह कई तरह के जाल झुलाये रहता। नाक में हुई संवेदना के आधार पर वह चल देता—मैदानों, ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों और चरागाहों को पार करता हुआ। वह ज्यादा से ज्यादा चुप रहता। अतः रहस्यमय लगता था।

कई बार दिन भर में उस के गले से सिर्फ एक बार आवाज निकलती, जब वह कमरे से बाहर आ कर आदतन खखारता और हवा में सूंघ कर अपनी राह चल देता। उस के जालों में लगे लोहे का खनकना भी प्राय एक

ही बार सुनायी देता क्योंकि जब कास्पर मैदानों और चरागाहों को पार करना शुरू कर देता तो लोहा भी न खनके, इस की सावधानी बरतता।

मिस्टर दोमरेल के शिकारी कुत्तों का रखवाला कास्पर के बारे में विचित्र हकीकतें बयान करता था। उस का दावा था कि कास्पर लोहे की पतली छड़ से ही लोमड़ी जैसे चालाक और फुर्तीले जानवर का शिकार कर सकता है। हां, यह कास्पर ही कर सकता था। क्योंकि उस की-जैसी खामोशी से चलना किसी और के लिए मुमकिन नहीं था। किसी झाड़ी में छिप कर कई-कई घंटों तक लगातार बुत की तरह स्थिर बैठे रहना, यहां तक कि शायद पलकें भी न झपकाना और किस को आता था? कुत्तों का रखवाला बड़े विस्तार से बताया करता कि अपने कमरे में बैठ कर किस तरह दूर से उस ने साफ-साफ देखा था कि कास्पर कैसे एकाएक स्थिर हो जाता था, मानो पानी बर्फ में बदल गया हो। ऐसी अविश्वसनीय स्थिरता में भी कास्पर चालाक लोमड़ी से ज्यादा चालाक और फुर्तीला रहता था। वह बताता कि एक घंटा, दो घंटे और कई-कई घंटे बीत जाते और जब कोई लोमड़ी उधर से गुजरने की कोशिश करती तभी अकस्मात कास्पर उस पर टूट पड़ता।

कास्पर लोमड़ी का बिल ढूंढ़ लेता — बल्कि हवा में सूंघ लेता — और लोमड़ी जब मौत के घाट उतरती तो उस का आधा शरीर बिल के बाहर होता और आधा अंदर ही रह जाता। कुत्तों के रखवाले ने एक नहीं, कई कहानियां कास्पर के बारे मे फैला दीं और यह असंभव था कि ये कहानियां मिस्टर दोमरेल तक न पहुंचतीं। मिस्टर दोमरेल ने लापरवाही से सिर हिलाया और कहा, "जब तक वह छछूंदर और लोमड़ियां मार रहा है, उस से डरने की जरूरत नहीं है। कास्पर विचित्र आदमी हो सकता है लेकिन खतरनाक नहीं। मैं उसे क्यों रखे हुए हूं? इसलिए कि उसे कोई दूसरा न रख ले। समझे आप? जाइये। अच्छे-बुरे की सीख मुझे नहीं चाहिये।'

बारबरा नाम की एक सुन्दर लड़की थी—छरहरी, गोरी और नन्हे-नन्हे लेकिन कठोर उरोजों वाली। वह बहुत मेहनती थी, किसी मिल में काम करती थी और इतनी समझदार थी कि मिल का सारा काम उस के भरोसे छोड़ा जा सकता था मानो वह कोई पुरुष हो। उस ने भी कास्पर के बारे में सुना।

'इटालियन हाउस' का यह नया निवासी छछूंदर और लोमड़ियों की खालें सुखाने के लिए सहन में डाल देता और यदि वे लंबे समय तक सहन में न सूख पातीं तो उन्हें बिना सुखाये ही कमरे के भीतर लटका देता। तब पूरा मकान एक विचित्र गंध से भर उठता। ऐसे समय में अगर कोई मुलाकात के लिए आ जाता तो बाहर निकलते ही वह फिर कभी न आने का प्रण करता। खुद कास्पर के जिस्म से खास तरह की हलकी गंध आती थी —छछूंदर और लोमड़ी की मिली-जुली

गंध और यह गंध उन लोगों ने बड़ी सहजता से स्वीकार कर ली थी जिन्हें रोज ही कास्पार से वास्ता पड़ता था। अथवा यों कहिये कि उन्होंने कास्पर को आधा आदमी और आधा जानवर समझ लिया था और यह विचार उन के लिए अब पुराना भी होने लगा था। कास्पार के मुंह से कभी किसी ने ईश्वर का नाम नहीं सुना था, न कास्पार ने कभी किसी से यह कहा था कि तुम मुझे पसंद हो या नापसंद हो।

आम जनता कास्पर से डरती थी, यद्यपि उस ने कभी किसी को नुकसान नहीं पहुंचाया था। मिस्टर दोमरेल को लोगों के इस डर का निरीक्षण करने में अनचूका आनंद आता था। उन का दृढ विश्वास था कि कास्पर अपने पिछले जन्म में शिकार होने वाले जानवरों में से कोई एक जानवर रहा है, तभी इस जन्म में वह आधे जानवर-जैसा मालूम देता है।

बारबरा कहती थी : "जो व्यक्ति आदमी कम और भेडिया ज्यादा हो और जो शत प्रतिशत अपनी आदिम प्रवृत्तियों के भरोसे जिंदा हो, उस के साथ रहने में सचमुच बहुत मजा आयेगा क्योंकि उस का व्यक्तित्व लाखों में एक होगा और उस में सभ्य पुरुषों के चोंचले नहीं होंगे।"

"चली जाओ न उस के पास, इतना ही प्यार आता है तो," बारबरा की सहेलियों ने छेड़ा।

"फिर तुम्हारे शरीर से भी छछूंदर और लोमड़ी की गंध आयेगी," कोई मजाक करता।

और सचमुच वह उस के पास चली गयी।

पहले वह 'इटालियन हाउस' गयी। लेकिन कास्पर उस समय अनुपस्थित था। बारबरा ने सुना था कि कई बार वह पांच-पांच, छह छह दिनों तक वापस नहीं आता, शिकार करता रहता है। संयोग से अगले ही दिन बारबरा की उस से मुलाकात हुई। उस समय वह खेत के करीब बने हुए उस रसोईघर में अपने भोजन के सिलसिले में आया था। इस से पहले उन दोनों की कभी बातचीत नहीं हुई थी लेकिन उस ने सीधा ही प्रश्न किया, "कल तुम मेरे यहां आयी थीं ?"

"हां," बारबरा ने कहा। न जाने क्यों उसे झुरझुरी हो आयी। यह आदमी, जो कई बातें केवल सूंघ कर जान लेता था, उस के ठीक सामने खड़ा था और उस की यही तो खासियत थी कि बारबरा उस के पास आने के लिए मजबूर हो गयी थी। उस ने कास्पर को इतने करीब से पहले कभी नहीं देखा था। "चालीस से कम उमर न होगी," बारबरा ने सोचा।

"क्यों ?" उस ने पूछा लेकिन यह उस ने शायद कुछ कहने के लिए ही कह दिया था। अपना सिर झुका कर वह भूखी उत्सुकता से शोरबे और मांस तथा सब्जियों की तरफ देखने लगा। ये चीजें अलग-अलग तश्तरियों में थीं और इन को एक पर एक सजा कर रखने वाला कैरियर कास्पर के हाथ में था। ये भूखी, उत्सुक, लालची आंखें! बारबरा ने सोचा कि ऐसी आंखें कुत्तों की होती हैं। वह मन ही मन कास्पर के चेहरे

की तुलना कुत्ते के चेहरे से करने लगी। कास्पर ने सब से ऊपर की तश्तरी का ढक्कन उठाया और बडी स्फूर्ति से मास का एक टुकडा हाथ मे ले लिया।

"मै जाऊंगी। मिल पहुचने का समय हो रहा है," बारबरा ने कहा। अकस्मात उसे भय लगने लगा कि कही यह जंगली आदमी मास के उस टुकडे को आगे बढा कर उस के मुह में न ठूस दे। तभी कास्पर ने मास का टुकडा मुह की ओर बढाया, लेकिन बारबरा के नही, स्वयं अपने मुह की ओर, और अब वह बिना किसी झिझक के उसे चबा रहा था। बारबरा ने उस की अगुलियों पर गौर किया। वे ऐसी नही थी कि किसी परिश्रमी आदमी या मक्कार शिकारी की लगें। वे अगुलिया यदि इतनी पतली और नाजुक न होतीं तो बारबरा शायद चीख पडती, "कास्पर, सचमुच तुम जानवर हो।" रसोईघर से बाहर निकलने से पहले वह जरा हिचकिचायी। इस से कास्पर को कुछ कहने का मौका मिला। वह बोला, "जब मैं घर पर होऊं, तुम कभी भी आ सकती हो।"

वह जानती कि कि 'इटालियन हाउस' के भीतर जाना तो दूर, वह कभी उस के करीब से भी नही गुजरेगी, गुजर नहीं पायेगी, भले ही वह बहुत साहसी और आत्मविश्वासी हो। उसे बिलकुल यही लगा क्योंकि मास के टुकडे वाला वह डर अभी तक उस के मन में समाया हुआ था।

दो दिन के बाद कास्पर के विषय में एक गरमागरम अफवाह फैली। पूरे कसबे में सब की जबान पर बस इसी की चर्चा थी। इधर-उधर जाल बिछा चुकने के बाद कास्पर ने उन का अंतिम निरीक्षण किया था। फिर एक शराबखाने में जा कर उस ने बीयर की बोतल मगवायी। आसपास कौन-कौन बैठे हुए हैं, इस पर उस ने ध्यान नही दिया था। अभी मुश्किल से उस ने दो-चार घूट ही बीयर पी होगी कि सहसा वह चौंका। उस ने दो-चार गहरी सासें ले कर हवा में कुछ सूघा, फिर बीयर ज्यों की त्यों छोड कर लपकता हुआ वह शराबखाने से बाहर चला गया। जिस टेबिल पर वह बैठा था, उसी पर चार किसान और बैठे हुए थे। कास्पर के एकाएक उठ कर भाग जाने पर वे चकित रह गये थे। चारों किसान स्वस्थ और रीछ की तरह मस्त थे। कास्पर का अचानक उठ कर भागना बेमानी नहीं था, इस का पता तब चला जब उन चार में से एक किसान की अगले ही दिन किसी ने हत्या कर दी। कई घंटों तक उस का शव सड़क पर लावारिस पड़ा रहा।

इस के बाद लोगों ने ध्यान दिया कि कास्पर जब भी अमहोल्ट्ज के मकान के पास से निकलता है, तुरंत हवा में कुछ सूघना शुरू कर देता है और शीघ्रातिशीघ्र वहां से दूर चला जाता है। अमहोल्ट्ज पानी के नल बैठाने और ठीक करने वाला कारीगर था। उस की पत्नी कैंसर की मरीज थी और कई दिनों से खाट पर पडी हुई थी। पडोसिन ने अमहोल्ट्ज की पत्नी को बता दिया कि कास्पर तुम्हारे

घर से दूर रहता है, यदि ध्यान आ जाता है तो हवा में कुछ सूघने और नाक-लाने लगता है। दूसरे ही दिन सुना उस औरत ने फैरार से छुटकारा पा लिया—वह मर गयी।

कास्पर को सचमुच मौत की गंध का पता चल जाता है या यह उसकी कोई चाल है—इस की परीक्षा करने के लिए मिस्टर दोमरेल के कुत्तों के उक्त रखवाले ने एक प्रयोग किया। उस ने कास्पर से कहा, "मैं ने एक बहुत बड़े ऊदबिलाव का बिल देख लिया है, तुम उस का शिकार करना जरूर पसंद करोगे? चलो मेरे साथ, मैं बिल दिखाता हूं।"

कास्पर को आपत्ति नहीं हुई। कुत्तों का रखवाला बिल ढूंढने के बहाने कास्पर को कई गलियों में घुमाता रहा, फिर वह उसे सेंगविर्स के मकान के पास ले गया। इसी मकान में सेंग-विर्स की लड़की कई दिनों से बीमार चल रही थी और अब तो उसे मौत का ही इंतजार था। कास्पर एकाएक ठिठक कर खड़ा हो गया और कुत्ते की तरह हवा में सूघने लगा। उस ने पूछा, "बिल का कोई और रास्ता नहीं है क्या? यहां कोई मरने वाला है—शीघ्र ही। मैं आगे नहीं बढ़ूंगा। लौट चलो।"

उसी शाम वह लड़की अपनी आखिरी सांसें गिन चुकी थी।

इस विचित्र प्रयोग का कुत्तों के रखवाले ने पूरे कसबे में रस ले-ले कर प्रचार किया। जब मिस्टर दोमरेल तक यह खबर पहुंची, उन्हें बड़ा संतोष हुआ कि उन का नौकर इतना अनोखा आदमी है। श्रीमती दोमरेल, जिन का शरीर भरा हुआ था, घर में फूली-फूली घूमीं। वे सोच रही थीं कि कभी वे कास्पर को बुलायेंगी और उस से देर तक बातें करेंगी। कितना चालाक, होशियार और डरावना लेकिन निरापद आदमी है वह, जो बता सकता है कि खुद श्रीमती दोमरेल की मौत कब आने वाली है! वे कास्पर से पूछेंगी कि उसे किसी तरह की असुविधा तो नहीं है? वह उसे हर प्रकार की सहायता देने का वचन देंगी, वह नहीं मांगेगा तो भी।

श्रीमती दोमरेल 'इटालियन हाउस' गयीं और जब वापस लौटीं तो बहुत खुश थीं। उन्होंने सब को बताया कि अभी उन की जिंदगी के काफी दिन बाकी हैं क्योंकि उन्हें करीब पा कर भी कास्पर ने अकुलाहट के साथ हवा में सूघा नहीं था। कास्पर के कमरे में चमड़े और मांस की बदबू अवश्य थी लेकिन उस का व्यवहार बहुत अच्छा था। जब उस ने श्रीमती दोम-रेल को अपने यहां देखा तो चौंक गया क्योंकि उस ने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि उस के मालिक की नाजुक पत्नी उस के फूहड़ घर में आने की कृपा करेंगी। श्रीमती दोमरेल बार-बार दोहराती रहीं कि कास्पर ने किन शब्दों में उन के सौंदर्य की प्रशंसा की, उन की मीठी आवाज के गुण गाये।

"श्रीमती दोमरेल उस कमरे का वातावरण सह गयीं"—यह एक चर्चा का विषय बन गया क्योंकि वह एक छोटा-सा, पिछड़ा हुआ कसबा था। निहायत मामूली घटना भी वहां सन-सनी पैदा कर सकती थी। जब बार-

बरा ने यह सुना तो उसे लगा कि मांस के टुकड़े वाला जो बचकाना भय उस ने महसूस किया था, निश्चित रूप से बेकार था। तब बारबरा ने घोषणा कर दी कि वह कास्पर से मिलने के लिए 'इटालियन हाउस' जाने वाली है। उस ने सोचा था कि इस घोषणा के समाचार कास्पर तक नहीं पहुंच पायेंगे क्योंकि कास्पर की शायद ही किसी से कोई बातचीत होती थी। उस की थोड़ी बहुत दोस्ती कुत्तों के उस रखवाले से थी, बस।

जब बारबरा 'इटालियन हाउस' पहुंची तो कास्पर दरवाजे पर खड़ा इंतजार कर रहा था, जैसे उसे पहले से मालूम हो कि बारबरा आने वाली है। बारबरा सोच ही रही थी कि बिना सूचना दिये आ धमकने के लिए वह किस तरह माफी मांगे, लेकिन उस से पहले ही कास्पर बोला, "मुझे खुशी है कि तुम आयीं।" उस ने अपना असाधारण रूप से लंबा और दुबला हाथ बारबरा के कंधे पर रख दिया। बारबरा ने न केवल हाथ रखा जाना महसूस किया, बल्कि उसे दहशत हो आयी कि अब यदि वह 'इटालियन हाउस' के भीतर न चली गयी तो यह आदमी न जाने क्या कर बैठेगा।

भीतर जा कर उस ने देखा कि छछूंदर का कोई चमड़ा सूखने के लिए नहीं लटक रहा था। न कोई बदबू ही थी, जिसे सूंघने की उस के नथुनों ने आशा की थी। घर का हर कोना जैसे अभी-अभी साफ किया हुआ था। क्रिसमस के समय जो विशेष खुशबू हर ओर फैली रहती है, कुछ कुछ वैसी ही खुशबू कास्पर के कमरे में थी। "किसी काम से चीड़ की लकड़ियां जलाई होंगी," बारबरा ने सोचा। उस ने कास्पर के पलंग की तरफ देखा और देखती रह गयी। जो चादर बिछी हुई थी, वह बहुत सुन्दर थी। "यह आधा आदमी सोने का इंतजाम तो पूरे आदमी-जैसा ही रखता है," उस ने अपने-आप से मजाक किया।

"बैठो," कास्पर ने कहा और पलंग की ओर इशारा कर दिया। वह बैठ गयी। कास्पर ने स्टूल ले लिया। पलंग के सिवा बैठने की यही एकमात्र चीज उस छोटे-से कमरे में थी। कास्पर को बार-बार उठना पड़ता था क्योंकि स्टोव पर उस ने कोई चीज उबलने के लिए रखी थी। उस का निरीक्षण स्टूल पर बैठे-बैठे संभव नहीं था। कुछ समय बाद उस ने मेज पर दो प्लेटें सजायीं और उन में स्वादिष्ट मांस के टुकड़े रखे। उस समय बारबरा को लगा कि यह आदमी काफी अरसे तक रसोइए का धंधा करता रहा है।

"खाओ," कास्पर का आज्ञा-जैसा स्वर सुनायी दिया और बारबरा इसलिए खाने लगी कि अगर न खाती तो क्या करती। यदि पहले से मालूम होता कि 'इटालियन हाउस' में उसे कोई चीज खानी पड़ेगी तो शायद यहां आने का इरादा ही उस ने छोड़ दिया होता। भले ही यह मांस अच्छा पका हुआ था लेकिन जिस ने उसे तैयार किया था, वह आदमी कम, जानवर अधिक था। घर में सिर्फ एक व्यक्ति के लिए छुरी, कांटे और चम्मच का इंतजाम था। ये

चीजें कास्पर ने बारबरा को दे दीं और खुद अपने हाथों का ही इस्तेमाल करने लगा। खाते समय वह बिलकुल चुप था और उस की आंखों में लालची चमक थी, किसी जानवर की तरह। बारबरा को ऐसी खराश महसूस हुई कि अभी अपनी प्लेट एक तरफ ठेल दे, उठ खड़ी हो और बाहर चली जाये। किसी तरह उस ने अपने को रोका। बाद में एकाएक उसे सारा वातावरण माफिक आ गया और लगा कि वाकई कास्पर बहुत अच्छा रसोइया है। तब उस ने खुद ही हाथ बढ़ा कर एक उबलरोटी उठा ली। फिर उस ने कल्पना की कि उस कमरे में यदि वह मालकिन बन कर आ जाये तो कैसा रहे। यह मजाकिया किस्म का ख्वाब था जो उसे बुरा न लगा। किसी स्त्री की इतनी लंबी मौजूदगी से कास्पर उत्साहित हो गया था। जब बरतन साफ करने का मौका आया तो उस ने बारबरा को हाथ तक न लगाने दिया। बारबरा देखती रही कि वह कितनी नजाकत से सफाई करता है।

फिर ऐसा लगा कि यहां जो चीजें हैं, उन में एक अनोखी आत्मीयता है। उस ने अपने चेहरे के करीब ही जब वह चेहरा देखा तो भीतर कोई दीपक-सा जलता महसूस किया . . . करीब आता पुरुष-चेहरा . . . करीब . . और करीब . . . और वे आंखें। बारबरा के चप्पे-चप्पे को सावधानी से नाप रही वे चौकन्नी आखें।

कास्पर ने उस से कहा कि वह गाये। बारबरा ने झेंपते हुए उत्तर दिया कि उसे गाना नहीं आता। कोई बात नहीं, हां बारबरा बातें तो कर सकती है। लेकिन कास्पर लगातार खामोश था, बारबरा के लिए यह बहुत मुश्किल हो गया कि अकेली ही बोलती रहे। आखिर वह कब तक बोले? ज्यों ही वह अपनी मधुर आवाज रोकती, कास्पर कहता तो कुछ नहीं, लेकिन अपनी कुहनी से उस की कमर के पास कोंचने लगता। पहली बार बारबरा को यह बहुत ही बुरा, घिनौना-सा लगा लेकिन उस के बाद ऐसे व्यवहार के अनोखेपन ने उसे खुशी से भर दिया। अनोखापन ही तो। कास्पर के सिवा और कौन ऐसा कर सकता था?

"बोलती जाओ, रुको मत। बस, बोलती जाओ," उस ने कहा।

बारबरा ने उसे अपने बचपन की घटनाएं सुनायीं।

"और बोलो!"

बारबरा का बचपना जाग आया और उस ने नकल करके बताया कि श्रीमती दोमरेल किस तरह बातें करती हैं। वह हंसने लगी। उस ने कहा कि श्रीमती दोमरेल के थोड़ी-थोड़ी मूंछें हैं लेकिन शायद वे बुरी नहीं लगतीं। वह मिस्टर दोमरेल के फार्म-मैनेजर की नकल उतारती रही। फिर वह बच्चों और पालतू जानवरों की बातें करती रही। वह चाहता था कि बारबरा की आवाज सुनता ही जाये क्योंकि आज उस की जिंदगी का पहला मौका था जब कोई उस के करीब बैठ कर केवल उस के लिए इतनी आत्मीयता से बातें कर रहा था।

"फिर आना, अच्छा!" जब सुबह की सूचना देता हुआ धुंधला उजाला

आग्नश में पुतने लगा और वारवरा ने जाने की तैयारी की, कास्पर बड़ी विनम्रता से बोला।

मतलब यह कि वारवरा चली गयी और फिर से आयी।

कुछ ही दिनों में कसबे का हर आदमी इस बात को जान गया कि वारवरा अपनी रातें कास्पर के साथ बिताती है, उस आधे आदमी के साथ जो 'इटालियन हाउस' में रहता है। फार्म-मैनेजर नाराज हो गया क्योंकि वारवरा उसे पसन्द थी। उस के पास सिवा इस के और कोई चारा नहीं था कि जोर-जोर से चिल्ला कर अपने नीचे के लोगों को डाटता रहे। मिस्टर दोमरेल को वारवरा वाली जानकारी मिली। उन्हें खुशी हुई कि कास्पर को कहीं तो अपनापन मिला। लेकिन उन के मन में कहीं आशंकाए भी छिपी हुई थीं क्योंकि वारवरा के अत्यंत चंचल स्वभाव से वे परिचित थे। वारवरा किसी वदरिया की तरह थी। छोटी-छोटी वातों में उसे बहुत दिलचस्पी हो जाती थी लेकिन यह दिलचस्पी बहुत जल्द खत्म भी हो जाती थी। कास्पर से परिचय होने के पहले वह दो-एक वार थोड़ी-बहुत मुहब्बत कर चुकी थी।

वास्तव में वारवरा जिन पुरुषों के सामीप्य में आयी थी, उन से उसे मुहब्बत नहीं थी। उन के साथ उस की केवल दोस्ती ही थी जिसे कसबे के लोगों ने मुहब्बत का नाम दे दिया था। यह वह दोस्ती थी जो वारवरा की सहज उत्सुकताओं के कारण पैदा हुई थी। यहां एक सवाल यह भी सामने आता था कि कास्पर के साथ भी कहीं वह केवल दोस्ती ही न कर रही हो। मिस्टर दोमरेल ने यह विचार अपनी पत्नी के सामने जाहिर किया और श्रीमती दोमरेल ने कहा कि उन्हें भी कुछ-कुछ इसी तरह का शक है।

"डर? कास्पर से डर? किस बात का डर?" श्रीमती दोमरेल ने जब कुरेद कर पूछा तो वारवरा ने हंसते हुए उत्तर दिया।

"तुम उस से मुहब्बत करती हो?"

"इस का जवाब देना मुश्किल है, श्रीमती दोमरेल, क्योंकि . . क्योंकि जवाब खुद मुझे नहीं मालूम।"

"तब वारवरा, तुम्हें सावधान रहना चाहिये। मान लो, कास्पर को तुम से मुहब्बत हो गयी और तुम्हें उस से न हो पायी तब नतीजा बुरा हो हो सकता है। भेड़ियों से न खेलना ही अच्छा होता है।"

"मुझे तो कोई खतरा नजर नहीं आता," वारवरा ने लापरवाही से कहा।

"कास्पर निश्चित रूप से किसी जानवर-जैसा है, खूंखार जानवर-जैसा लेकिन पालतू जानवर को भी अगर छेड़ा जाये तो वह बगावत कर देता है।"

"श्रीमती दोमरेल, मेरे दूसरे ही विचार हैं।"

"क्या?"

"कास्पर खानाबदोश है। किसी में भी वह हमेशा के लिए दिलचस्पी नहीं ले सकता। मुझ में भी नहीं,

यद्यपि मैं उसे इस समय तो बहुत ही अच्छी लगती हूं। क्या होगा, जानती हो? किसी दिन एकाएक उस का खानाबदोश खून उबलेगा और वह सब कुछ छोड़ कर कहीं चला जायेगा। न आप का 'इटालियन हाउस' उसे बांध कर रख सकेगा, न मेरी खूबसूरती।"

"फिलहाल तो उस के जाने की गुंजाइश नहीं है। गरमियां आ रही हैं और इस मौसम में कास्पर हमारे लिए काम जरूर करता है।"

"फिर भी कुछ नहीं कहा जा सकता," कह कर बारबरा चली गयी।

गरमियां आयीं और बारबरा अब हर रात 'इटालियन हाउस' जाने की नियमितता भंग करने लगी। जल्दी या देर से, होना भी यही था। मिल बंद हो चुकी थी क्योंकि उस के सभी मजदूरों की खेतों में आवश्यकता थी। चिलचिलाती धूप में कठोर मेहनत करके बारबरा शाम तक बेहद थक जाती। खेतों में काम करनेवाली अन्य लड़कियों के साथ वह तालाब में नहाने चली जाती और कभी-कभी उसे बिलकुल ही याद न आता कि कास्पर उस का इंतजार कर रहा होगा। उतनी धूप में उतना काम करने के बाद सचमुच यह टेढ़ी खीर थी कि घंटों किसी के साथ जागो और रात भर काम बस इतना हो कि लगातार बोलते जाओ—हुंकारी न मिले तो भी। दूसरा कोई भी पुरुष ऐसी कठोर मांग नहीं कर सकता।

'इटालियन हाउस' जाने में पहले जो अंतर एक दिन का था, वह क्रमशः दो दिनों का, फिर तीन दिनों का और उस के बाद और भी ज्यादा दिनों का हो गया। जब बारबरा शिकायत करती कि कास्पर के कमरे में असहनीय गंध होती है तो यह तय था कि वह सच नहीं बोलती थी। कास्पर ने खाल सुखाना तो दूर, कमरे में अपने शिकार की खाल उतारना भी बंद कर दिया था। इस के अलावा, गरमियों में शिकार भी कम मिलते थे। अगर कम न मिलें तो भी उन के लिए समय कहां था? कमरे में चीड़ की ताजा डालियों की महक बसी रहती, और इस साल तो चीड़ में और भी ज्यादा महक थी।

केवल चीड़ की महक लेने के लिए 'इटालियन हाउस' क्यों जाया जाये? यह महक तो इस साल हर जगह थी—मैदानों में, खेतों में, तालाब के किनारे। शामें खुश्क हो उठी थीं और तालाब के उस घाट पर नहाने में और भी मजा आने लगा था। पानी में दूर तक लकड़ी की आड़ खड़ी कर पुरुषों और स्त्रियों के नहाने की जगहें अलग कर दी गयी थीं। उस दिन बारबरा तैरती हुई उस आड़ की ओर बढ़ी। आड़ की दरारों में से उस ने उस व्यक्ति की तरफ देखा जो उसे अब पहले से ज्यादा अच्छा लगने लगा था। उस का नाम था जोकिम। 'जोकिम मन में बसता जा रहा है,' इस का पता बारबरा को तब चला था, जब उस ने देखा कि कास्पर के साथ कभी-कभी बीतने वाली रातों में वह कास्पर के सामने ही कई बार जोकिम का उल्लेख करने लगी

है। ऐसे मौकों पर कास्पर चुप रह जाता था और वैसे भी वह चुप ही रहने वाला इनसान था। कास्पर ने जोकिम को कई बार देखा था लेकिन कभी उस ने उसे छेड़ा या धमकाया नहीं था जैसे कि उसे परवाह ही न हो कि बारबरा जोकिम में दिलचस्पी लेने लगी है। जोकिम एकाध बार कास्पर के सहयोगी के रूप में भी खेतों में काम कर चुका था लेकिन इन दोनों में शायद ही कभी बातचीत हुई हो।

कास्पर के चेहरे से कतई इस बात का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि उस के भीतर क्या घट रहा है। वह उसी तरह रहस्यमय और खामोश था, जिस तरह वह बारबरा के परिचय में आने से पहले हुआ करता था। बिना कुछ बोले, केवल हाथ के इशारे से वह अपने मजदूरों को काम शुरू करने का आदेश देता और जब काम खत्म हो जाता तो उस समय भी वह छुट्टी होने का एक इशारा भर करता। शाम को जब बारबरा जोकिम के साथ घूमने या नहाने चली जाती तो कास्पर 'इटालियन हाउस' के दरवाजे पर तटस्थता के साथ बैठा रहता। उस का चेहरा हथेलियों पर टिका होता और वह क्षितिज के पास दिन का धीमे-धीमे डूबना देखता रहता . . देखता ही रहता . . . उसे बारबरा की पोशाकों के रंग याद थे और उस की आखें इतनी तेज थीं कि दूसरों को जब धुंधली छायाओं के सिवा कुछ नजर न आता, उस समय भी वह बारबरा के कपड़ों के रंग साफ-साफ देख लेता।

जैसा कि लोगों ने सोचा था और जैसा कि बारबरा का स्वभाव था, कुछ दिनों में बारबरा की दिलचस्पी जोकिम में भी कम होने लगी। एक शाम वह किसी छोटी-सी बात पर जोकिम के साथ झगड बैठी और अचानक उसे लगा कि इस से तो अच्छा है कि कास्पर से ही मुहब्बत की जाये। जोकिम को उस झाडी के पास अकेला छोड़ कर वह 'इटालियन हाउस' की तरफ लौट चली। 'इटालियन हाउस' करीब आया तो उस ने देखा कि भीतर रोशनी है और दरवाजे खुले हुए हैं। उस की आखों में चमक आ गयी और चाल में तेजी भर गयी।

उस ने 'इटालियन हाउस' में प्रवेश किया। कास्पर एक कोने में उस की तरफ पीठ कर के खडा था। इस से पहले कि वह उस का नाम ले कर पुकारती और कहती कि वह माफी चाहती है, कास्पर उस की तरफ घूमा। उस का चेहरा कठोर और आंखें निर्दयी लग रही थीं। बारबरा को देखते ही उस ने चौंक कर हवा में सूघा—एक बार, दो बार और फिर कई बार। फिर वह हड़बडाता हुआ दरवाजे से बाहर निकल कर रात के अंधेरे में गायब हो गया।

बारबरा जब पहली बार कास्पर से मिली थी तब उसे झुरझुरी हो आयी थी। वैसी ही, बल्कि उस से भी अधिक खौफनाक झुरझुरी इस बार हो आयी। परेशान हो कर, लेकिन अपने को काफी दिलासा देते हुए, उस ने 'इटालियन हाउस' छोड़ा। रात भर उसे नींद न आयी और सुबह जब थोड़ी-सी आयी तो डरावने सपनों ने झकझोर

कर उसे जगा दिया।

तैयार हो कर काम करने के लिए वह खेत जा पहुंची। वहां कास्पर मौजूद था। वह मजदूरों को कुछ हिदायतें दे रहा था। वारवरा चुपके-से कास्पर के पीछे खड़ी हो गयी। उसे विश्वास था कि कास्पर ने उसे नहीं देखा है। सहसा कास्पर चौंका। जो वाक्य उस के मुंह से निकल रहा था, वह अधूरा ही छूट गया। घूम कर उस ने जलती आंखों से वारवरा की तरफ देखा और हवा में दो-चार गहरी सांसें लीं। वारवरा ने अपनी झुरझुरी रोकने की असफल चेष्टा की। वह कास्पर से कम से कम पचास फुट दूर खड़ी थी। कास्पर के चेहरे पर उत्तेजना उभर रही थी। उस के नथुने कांप-से रहे थे और फैल गये थे। मजदूर सहम गये और पीछे हटने लगे। कास्पर की इन गहरी सांसों का क्या मतलब था, वे खूब समझते थे। मौत! किस की मौत? किस के मरने की सूचना? सब ने देखा कि कास्पर की निगाहें वारवरा पर टिकी हैं। तब उन की भी निगाहें निरीहता के साथ वारवरा पर टिक गयीं। "बेचारी, बेचारी वारवरा! कितनी जवान! और . . . और वह . . ." वे आपस में बुदबुदाने लगे।

और कास्पर! वह पीछे हटने लगा। वह करीब आठ डग पीछे हटा, फिर पलट कर जल्दी-जल्दी दूर जाने लगा। वारवरा चीखी और जमीन पर गिर कर बिलखने लगी।

जब कास्पर आंखों से ओझल हो गया तो जो मजदूर वारवरा से दूर सरक गये थे, वे सहानुभूति जताने के लिए करीब आने लगे। वारवरा ने हथेलियों से चेहरा ढांप रखा था। उस ने हथेलियां हटायीं। सब ने देखा कि वह हंस रही है। अधिकांश ने यही समझा कि वारवरा दहशत के कारण पागल हो गयी है। वारवरा अब उठ खड़ी हुई थी।

वह खिलखिलाने लगी और बोली, "खूब, अच्छा मजाक रहा! कौन कहता है, मैं मर जाऊंगी? मुझे कोई रोग नहीं है। मेरा कोई दुश्मन भी नहीं है जो मुझे छुरा मार दे। समझ गयी, समझ गयी मैं। कास्पर मुझ से नाराज है, इसीलिए मुझे तंग कर रहा है। ओह, कितना डरावना मजाक!"

वारवरा की आवाज कांप रही थी और आंखें चू रही थीं। टांगों की झुरझुरी को काबू में लाते हुए वह मुसकराने लगी। अगले ही क्षण मुसकान बुझ गयी क्योंकि उस ने देखा कि किसी ने भी उस के शब्दों पर विश्वास नहीं किया था। सभी की आंखों में दया तैर रही थी। "नहीं," वारवरा चिल्लायी, "मैं नहीं मरूंगी। नहीं मरूंगी। कास्पर झूठा है।"

बहुत लापरवाही और तल्लीनता से वारवरा खेत में आयी और काम करने लगी। वह कुछ गुनगुना भी रही थी। मजदूर-मजदूरिनें चुप थीं और अपने काम में लगी थीं।

दोपहर के बाद उन्होंने काम करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि उन्हें डर लग रहा है। डर इसलिए कि वारवरा कुछ ही दिनों में मर जायेगी और उस के साथ खेत में काम करना

"सावधान, किस से ?"

"तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना न हो।"

"मैं सावधान हूं।"

बारबरा ने विदा लेते हुए कहा कि वह कल फिर आयेगी और कल वह इसलिए आयेगी क्योंकि कल भी वह जिन्दा रहेगी, कल और परसों और उस से भी आगे . . .

दूसरे दिन भर बारबरा दिखायी न दी। खेत के मजदूर यही कहते रहे कि वह अपने घर में सारे दरवाजे-खिड़कियां बंद करके बैठी होगी और डर रही होगी। बहरहाल, शाम को बारबरा श्रीमती दोमरेल के यहां पहुंची। कास्पर के बारे में आज उन्होंने कोई बातचीत नहीं की। मौसम, फसल, बारिश, ठंड, बच्चों का भोलापन, मक्कार लोमड़ियां—ऊटपटांग विषयों पर वे बेकार ही बोलती रहीं।

अंधेरा हो चला था। एकाएक दोनों ने देखा कि दूर से कास्पर इसी दिशा में बढ़ा आ रहा था। श्रीमती दोमरेल ने बारबरा को धक्का दे कर खिड़की से दूर हटा दिया ताकि कास्पर न देख पाये। फिर श्रीमती दोमरेल को न जाने कैसे यह सूझा कि उन्होंने बगल के कमरे का दरवाजा खोल कर बारबरा को उस में बंद कर दिया। कुछ ही देर में कास्पर ने कमरे में प्रवेश किया। श्रीमती दोमरेल उस के स्वागत में मुसकराने लगीं और बोलीं, "कहो ? कैसे आये ?"

कास्पर ने बताया कि वह फसल के बारे में एक जरूरी मशवरे के लिए आया है। श्रीमती दोमरेल ने कुरसी की तरफ इशारा किया कि वह उस पर बैठ जाये। कास्पर न बैठा।

उस के चेहरे की रगें तनने लगीं और नथुने फैल आये। उस ने क्षमा-याचना की, फिर हवा में दो-तीन बार गहराई से सूंघा। वह दो कदम पीछे हटा और बेहद चौकन्ना और खामोश हो गया। वह दरवाजे से निकल गया। निकलते हुए उस ने जरा ऊंची आवाज में कहा कि वह इस मशवरे के लिए फिर कभी मिस्टर दोमरेल से ही मिल लेगा।

श्रीमती दोमरेल ने कांपते हाथों से बगल के उस कमरे का दरवाजा खोला और फटती बुदबुदाहट में कहा, "बारबरा !"

बारबरा दरवाजा पार करके कमरे में आ गयी। बंद दरवाजे के उस तरफ से उस ने आवाजों के आधार पर अंदाजा लगाया था कि उधर क्या हो रहा है। वह जबरन मुसकरायी लेकिन श्रीमती दोमरेल के होश फाख्ता थे। उन्होंने कहा, "बारबरा ! कास्पर ने तुम्हें मेरे कमरे में नहीं देखा था। फिर भी उसे गंध आ गयी। जरूर तुम . . तुम . . ."

बारबरा भी एक क्षण के लिए सहम गयी, किन्तु शीघ्र ही उस के चेहरे पर मुसकान आ गयी। वह बोली, "सब झूठ है।"

"नहीं, यह झूठ नहीं हो सकता।"

"मैं ने इस पर बहुत सोचा है," बारबरा ने कहा।

"क्या ? "

"आप ने ध्यान दिया होगा कि कास्पर ने जितने भी लोगों के मरने की गंध सूंघी थी, वे सब इसलिए नहीं मरे कि कास्पर ने गंध सूंघी, बल्कि वे इसलिए मरे कि उन्हें मरना था।"

"मैं मतलब नहीं समझी।"

"सब को मालूम है कि अमहोल्ट्ज की बीवी कैंसर की मरीज थी। उस के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। कास्पर ने उस की मौत न सूंघी होती, तो भी वह मर जाती। इसी प्रकार सेर्गवर्त की लड़की भी इतनी बीमार थी कि वह बच नहीं सकती थी। कास्पर की चेतावनी का उस की मौत से कोई ताल्लुक नहीं हो सकता।"

"बारबरा, तुम गलती पर हो। तुम अपने-आप को धोखा दे रही हो। कास्पर को सचमुच मौत का पता चल जाता है," श्रीमती दोमरेल की आवाज उसी तरह कांप रही थी, "वरना अभी वह क्यों भाग जाता? उसे नहीं मालूम था कि तुम बगल के कमरे में छिपी हो।"

"उस की आंखें बहुत तेज हैं। मैं उस के साथ रही हूं। मैं जानती हूं, अंधेरे में भी उसे काफी दिखायी पड़ता है।"

"तो?"

"यहां आते समय दूर से उस ने मुझे देख लिया होगा।"

श्रीमती दोमरेल चुप हो गयीं। फिर बोलीं, "लेकिन एक बार कास्पर ने एक मजबूत किसान की भी मौत की चेतावनी दी थी। तुम्हें मालूम होगा, वह किसान बीमार नहीं था।"

"मैं ने उस पर भी सोचा है। और . . . और . . ." बारबरा रुकी मानो जो वह कहने जा रही थी, वह उसे नहीं कहना चाहिये था। आखिर उस ने कह दिया, "श्रीमती दोमरेल . आप को मालूम है, वह किसान . . वह मरा नहीं था।"

"झूठ! वह मरा था। सब जानते हैं कि वह मर गया था, भले ही वह बीमार नहीं था और पहले से उस का मरना तय नहीं था। कास्पर को उस की मौत का पता कैसे चला?"

"यही तो फर्क है!" बारबरा की मुट्ठियां भिंच गयीं, "वह मरा नहीं था, वह मारा गया था। उस की हत्या हुई थी।"

"उस से क्या फर्क पड़ता है?"

"कास्पर को उस से बैर रहा होगा। उस ने शराबखाने में उस की मौत सूंघने का ढोंग किया। फिर मौका देख कर उसे मार डाला अथवा मरवा दिया।"

"बारबरा!" श्रीमती दोमरेल चीखीं।

बारबरा हंसी, फिर गंभीर हो गयी। बोली, "मैं आप से एक प्रार्थना करूंगी। मेरी ये बातें किसी और को न बताइयेगा। मैं नहीं चाहती कि सब जान जायें और कास्पर से नफरत करें। वह इसलिए कि मैं . . मैं उस से प्यार करती हूं। जैसा भी वह है, मैं उस की बीवी बनूंगी, उस के बच्चों की मां बनूंगी ." और बारबरा सिसकियां भरने लगी।

श्रीमती दोमरेल ने करीब आ कर उस के माथे पर हाथ फेरा। वे मन-

ही मन समझ रही थी कि बारबरा चाहे जो कहे, एक-दो दिन में ही उस की मौत जरूर आ जायेगी क्योंकि . . . क्योंकि कास्पर झूठा नहीं हो सकता। बारबरा कहती है कि कास्पर मौत सूंघने का ढोंग करता है। आखिर क्यों? क्या जरूरत है ऐसे ढोंग की? बारबरा तो कह देगी कि कास्पर ने कसबे में अपने रोब के लिए ही यह सब किया . . . लेकिन नहीं, कास्पर ऐसा नहीं हो सकता। कास्पर सच्चा है।

श्रीमती दोमरेल को बारबरा पर बहुत दया आयी। उन्होंने खींच कर उसे बांहों में भर लिया और फिर वे रो पड़ीं।

अब तक कास्पर ने जब भी और जिस की भी मौत की चेतावनी दी थी, चार दिनों के अंदर ही अंदर वह जरूर मर गया था। और आज पांचवां दिन था कि मौत की चेतावनी दी जा चुकने के बावजूद बारबरा जिंदा थी। वह दोपहर के बाद श्रीमती दोमरेल के यहां आयी और हंस कर बोली, "देखिये, जिंदा हूं। कास्पर ने मजाक किया था न?"

श्रीमती दोमरेल को भी वाकई बड़ा अचरज था और उन्हें खुशी भी बेहद हुई। उन की आंखें भर आयीं और उन्होंने बारबरा को दसियों बार चूमा।

बारबरा ने कहा, "मुझे पक्का विश्वास है कि कास्पर मौत नहीं सूंघ सकता। न उसे मेरी मौत की गंध आयी थी, न किसी और की मौत की। उस ने केवल चाल खेली थी। श्रीमती दोमरेल, कोई भी समझ सकता है कि मौत की गंध नहीं होती।"

"तुम तो, बारबरा, जिद करती हो।"

"यानी?"

"कास्पर को मौत का पता जरूर चलता है। यह अलग बात है कि उस ने तुम्हारे साथ मजाक किया।"

इस पर बारबरा गहरी सांस ले कर चुप हो गयी।

शाम को कास्पर मजदूरों को तनख्वाह बांटने वाला था। तय किया गया कि बारबरा भी तनख्वाह लेने के लिए कतार में खड़ी होगी। उतने सारे लोगों के सामने जब वह जिंदा मौजूद होगी तो सब समझ जायेंगे कि कास्पर ने मजाक किया था और ऐसा उसे इसलिए करना पड़ा क्योंकि उसे बारबरा से मुहब्बत थी। इस के अलावा बारबरा ने जो थोड़ी बहुत बेवफाई दिखायी थी, उस से उसे दुख हुआ था।

तनख्वाह लेने का समय होने पर बारबरा खेत की ओर चल पड़ी। श्रीमती दोमरेल साथ थीं। दूर से उन्होंने देखा कि मजदूरों की कतार लगी हुई है। इन दोनों ने ऐसा रास्ता चुना कि कास्पर की निगाह उन पर न पड़े। वे उसे चौंकाना चाहती थीं। वे कास्पर के पीछे से उस के करीब जाने लगीं। बारबरा कास्पर से अभी पचास फुट दूर थी कि वह हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ।

बारबरा कांपने लगी। वह समझ ही न पायी कि इतनी सावधानी के बाव-

जूद कास्पर को उस के आने का पता कैसे चल गया। क्या सचमुच उसे मौत की गंध आती है ?

कास्पर उठा, परन्तु उस ने सिर घुमा कर पीछे न देखा। मानो बिना देखे वह जान गया था कि पीछे कौन आ खड़ा हुआ है। मजदूरों की निगाहें बारबरा पर टिक गयीं और वे सहमने लगे। कास्पर ने आवेश के साथ तीन-चार गहरी सांसें लेते हुए हवा में सूंघा। फिर वह निहायत खामोशी से लंबे डग भरता हुआ दूर चला गया और दरख्तों की ओट में हो गया।

इस के बाद दो ऐसी घटनाएं हुईं जिन का रहस्य आखिर तक रहस्य ही बना रहा।

लोगों को पता चला कि बारबरा मर गयी है और कास्पर 'इटालियन हाउस' छोड़ कर गायब हो गया है।

बारबरा को तालाब से निकाल कर दफना दिया गया। जितने मुंह, उतनी बातें। किसी ने कहा कि बारबरा मरी नहीं, उसे मारा गया है। तालाब में नहाने के बहाने कास्पर ने उसे फुसलाया होगा और वहां डुबा दिया होगा। ऐसा उस ने इसलिए किया होगा कि उसे बारबरा की बेवफाई से बहुत दुःख था और वह बदले की आग में जल रहा था। बारबरा को मार कर वह कसबे से इसलिए भाग गया कि यहां बेचारे को हर वक्त बारबरा की याद आती।

कुछ लोगों ने यह कारण बताया कि कास्पर की पोल खुल गयी थी, इसलिए वह भाग गया और बारबरा चूंकि वह सचमुच कास्पर से प्यार करने लगी थी, इस सदमे को न सह सकी और डूब मरी। कुछ का कहना था कि वह कास्पर की चेतावनी की वजह से मौत के डर से मर गयी।

अधिकांश ने यह कहा कि कास्पर की पोल नहीं खुली, क्योंकि उस की कोई पोल नहीं थी। वह सचमुच मौत की गंध सूंघ सकता था। वह जानता था कि बारबरा मर जायेगी। वह बारबरा को चाहता था इसीलिए बारबरा को मरते नहीं देख सकता था। यही कारण था कि जिस रात बारबरा मरी, उसी रात कास्पर गायब हो गया। जरूर ही वह बारबरा की आखिरी सांस छूटने से पहले ही रवाना हो चुका होगा।

बारबरा मरी, यह सच था। उस की हत्या हुई या उस ने आत्महत्या की, तैरते तैरते उस के हृदय की धड़कनें रुक गयीं या उस का पांव फिसला या इसी तरह की कोई और बात हुई—जो कुछ भी हुआ, आखिरी फैसला यही था कि वह मर गयी।

और कास्पर कभी न लौटा, और न उस के बारे में कुछ सुनायी ही दिया।

●

विवाहेच्छु : श्रीमान, क्या आप अपनी सुपुत्री का हाथ मेरे हाथ में देने की कृपा करेंगे ?

पिता : जरूर, जरूर। मेरी जेब में से तो उस का हाथ हटेगा।
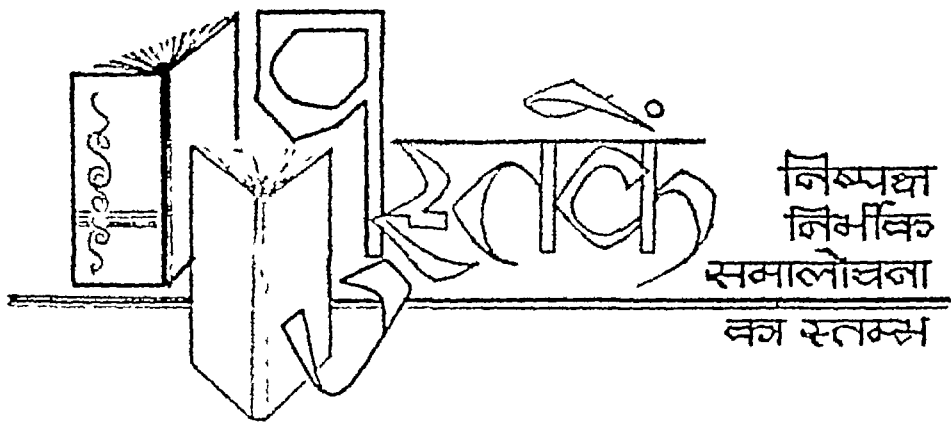
जलती झाड़ी

लेखक—निर्मल वर्मा; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य—४.००; पृष्ठ—१५६

निर्मल वर्मा 'साथ' की बजाय हमेशा 'संग' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। इस से उन की भाषा की कोमलता का प्रमाण मिलता है। 'जब कभी दरवाजा खुलता है, धूप का एक सांवला-सा धब्बा खरगोश की तरह भागता हुआ घुस आता है और जब तक दरवाजा दुबारा बंद नहीं होता, वह पियानो के नीचे दुबका-सा बैठा रहता है।' ऐसा संवेद-वाक्य निर्मल की ही लेखनी से संभव था।

संग्रह की कहानियां पढ़ कर फिर से इस धारणा की पुष्टि हुई कि निर्मल के पास सिर्फ संवेद हैं। संवेद-तीव्रता (इंटेंसिटी) के अलावा और कोई आशा निर्मल से नहीं रखी जा सकती। हर लेखक की अपनी सीमाएं होती हैं, जिन के प्रति समझदार पाठक को सहानुभूति रखनी ही चाहिये।

सूक्ष्मता की ओर अग्रसर आधुनिक कहानी में से 'कहानी' लुप्त हो रही है, लेकिन फिर भी कोई सूत्र ऐसा होता ही है जो 'कहानी' के नाम पर किये गये लेखन को एक इकाई के रूप में सूत्रबद्ध करता है। निर्मल की बहुत कम कहानियों में ऐसी सूत्र-बद्धता नजर आयी। 'जलती झाड़ी' 'पराए शहर में', 'पहाड़', 'कुत्ते की मौत', 'एक शुरूआत' कहानियां जब मेरी समझ में ही न आ सकीं, तो मैं ने अपने कई साहित्यकार मित्रों से इन के बारे में चर्चा की। ये कहानियां सभी की समझ से परे रहीं। मैं ने महसूस किया है कि यह 'समझ में न आने वाली शिकायत लेखकीय अभिव्यक्ति के धुंधलेपन के कारण नहीं, बल्कि कहानी के संप्रेषण से पूर्ण असम्बद्धता के कारण है। इन कहानियों से यही लगता है कि हम न कहानी पढ़ रहे हैं, न संस्मरण या स्केच—बल्कि हम सिर्फ भाषा पढ़ रहे हैं।

यह भाषा भी जब अंगरेजी के बना-

वर्टीपन से लद जाती है तो उस की सवेंदन-तीवृता फीकी पड़ने लगती है। दोनों ही शुरू में अनिश्चित थे . . . पृष्ठ : ६५। तीसरा व्यक्ति, नीग्रो युवक, अब भी काफी उदार था . . . पृष्ठ : १०७। तुम चियान्ती को फेंक नहीं सकते . . . पृष्ठ ७७। तुम मुझे एक छोटी व्हिस्की दे सकते हो ? . . . पृष्ठ : १३०। ऐसे वाक्य हर पन्ने पर मिल जायेंगे। चियान्ती शब्द शियान्ती होना चाहिये।

'लन्दन की एक रात' में अनावश्यक रूप से इतने सूक्ष्म वर्णन न किये गये होते तो वह अपनी बोझिलता से उबर कर एक अच्छी रचना के रूप में निखर सकती थी। 'लवर्स', 'माया दर्पण', 'अन्तर' और 'दलहीज' कहानियों में सवेंद-तीवृता की कमी नहीं, लेकिन ये चारों ही प्रकट या प्रच्छन्न रूप में प्रेम-कथाए हैं · जिस से लेखक की दृष्टि प्रणय के त्रिकोण-युक्त या त्रिकोण-विहीन जाल में ही फंसी दिखायी पड़ती है।

—मनहर चौहान

मास्टर महिम

लेखक—मनोज बसु; अनुवादिका—माया गुप्त; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, मूल्य—४.००; पृष्ठ—२२१

सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार मनोज बसु के सुन्दर उपन्यास 'मानुषेर गोड़्या कारिगर' का यह हिन्दी रूपान्तर है। कथावस्तु शिक्षा की समस्या, समाज में व्याप्त स्वार्थ भावना और समाज में उपेक्षित शिक्षक वर्ग के जीवन और समाज में उठने वाली विभिन्न भावनाओं पर आधारित है। यों तो शिक्षक का स्थान ऊंचा ही होना चाहिये, क्योंकि वही भावी पीढी का प्रणेता है, भाग्य विधाता है। लेकिन इस युग में वह उपेक्षा की दृष्टि से क्यों देखा जाता है ? प्रश्न का उत्तर इस उपन्यास में है।

महिम इस उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। जीवन की विभिन्न मजबूरियों के कारण वह शिक्षक के पेशे को अपना कर मानस-संकुलता से जूझता है और आदर्श के प्रति संघर्ष करता है। शिक्षक होना ही उस के लिए बड़ा अभिशाप है। लेखक ने उस के साथ घटी घटनाओं का मार्मिक चित्र खींच कर समाज को अपने कर्तव्य और जीवन के महान उद्देश्य के प्रति सोचने के लिए बाध्य कर दिया है।

अनुवाद सरस, स्वाभाविक और परिष्कृत भाषा में है। पढते समय ऐसा नहीं लगता कि यह कोई अनुवाद है।

—गोविन्द सीताराम गुण्ठे

कविताएं—१९६३

सम्पादक—अजित कुमार तथा विश्वनाथ त्रिपाठी; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; मूल्य—४.००, पृष्ठ—१८०

जैसा कि सम्पादकों का दावा है, यह पुस्तक १९६३ में रचित तथा प्रकाशित कविताओं का सग्रह है। सकलन में ११९ रचनाएं हैं। आद्योपान्त पढ जाने के बाद ऐसा लगता है जैसे समग्र हिन्दी काव्य का प्रति-

निर्धारित कर सकने योग्य कोई क्षमता इस संकलन में नहीं है। पर दोष किसे दिया जाये ? सम्पादकों ने तो स्वयं ही अपने वक्तव्य में स्वीकार कर लिया है कि 'जरूरी नहीं कि सभी प्रतिनिधि कविताएं अच्छी कविताएं या कविताएं भी हों,' और हुआ भी यही है। संग्रह की अधिकांश रचनाएं अच्छी कविताएं नहीं हैं। कुछ तो निश्चित रूप से कविताएं नहीं हैं, और चाहे जो भी हों।

संकलन के कवियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वे, जो हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि हैं तथा उन की कविताएं भी साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। दूसरे वे, जो प्रतिष्ठित कवि तो हैं पर उन की रचनाओं के चयन में सम्पादकों द्वारा सावधानी नहीं बरती गयी है। तीसरे वे, जो किसी 'वाद' विशेष के दुराग्रहवश अथवा कविता लिखने के फैशन के कारण कविता लिखते हैं। इस श्रेणी में हिन्दी का वह प्राध्यापकवर्ग भी आता है जिस ने भाषा पर अधिकार होने का लाभ उठाया है और दिमागी कसरत के द्वारा लिखना प्रारम्भ कर दिया है। इन लोगों की रचनाओं में शब्दाडम्बर एवं कृत्रिमता ही अधिक होती है।

प्रथम श्रेणी के कवियों में 'अंचल', 'अज्ञेय', 'दिनकर', रामकुमार वर्मा, 'भारती', 'नीरज', रामानन्द 'दोषी', बालस्वरूप 'राही', भवानीप्रसाद मिश्र, सियारामशरण गुप्त, वीरेन्द्र मिश्र, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी आदि के नाम आते हैं। द्वितीय श्रेणी में नरेन्द्र शर्मा, 'बच्चन', देवराज 'दिनेश', बालकृष्ण राव, माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्राकुमारी सिन्हा आदि उल्लेखनीय हैं।

तृतीय श्रेणी में आने वाले कवियों की सूची काफी लम्बी है, पर उस में अजित कुमार (सम्पादक), इन्दु जैन, कीर्ति चौधरी, कुंवर नारायण, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, केदारनाथ सिंह, कैलाश वाजपेयी, नरेश मेहता, नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय, ममता अग्रवाल, विद्यानिवास मिश्र, रमेश कुंतल 'मेघ', रमेश गौड, अशोक वाजपेयी, विश्वनाथ त्रिपाठी (सम्पादक), स्नेहमयी चौधरी आदि उल्लेखनीय हैं। इस श्रेणी के कवियों की रचनाओं की कुछ पंक्तियां देखिये—

काली छाया
काली छाया
टोनों की ज्योति की टांकी ने
छूकर संवार दिया।
सुबह हुई मैं ने कहा, 'शुक्रिया'

—जगदीश गुप्त

तुम्हारी आंखों का आकाश
खो गया मेरा खग अनजान
गाने की तबीयत करती हो
जहां ६×४ के फर्श पर

—भारतभूषण अग्रवाल

बड़े राजा की
बड़ी हवेली
नई न नवेली
लू की सुखाई
पानी की खाई

—रत्न [illegible]

भूख भूख भूख
भूख भूख भूख
मेरे ही दरवाजे
आंखों के सामने
सौंदर्यों का लगा हुआ
सूखा एक रूख

—रमेश गौड़

आलींगनी ! आलींगनी !!
आलींगनी !!! ओ अ . . . अ . . .
. . ., कहां हो तुम,
—कहां हो . . . ?
और कब तक . . .
सर्वाल्पता !!! ओरी अनन्या, ओ अ
. . . अ . . .

—राजेन्द्रप्रसाद सिंह

नागार्जुन अपने क्षयग्रस्त पुत्र को
हावर्ड फास्ट की संशोधित
कृतियां बेचने कलकत्ता ले गये हैं;
और चौरंगी पर ललिता पढने वाली
नई पौध
बलात्कार के लिये स्थान खोज रही है,
और युवतियां अपनी देह से निकलने
वाली
मैथुन गन्ध को चौराहे की पीली रोशनी
में जला रही हैं
मेरे देश में तलाक देना जुर्म है और
बलात्कार पुरुषत्व

—विष्णुचन्द्र शर्मा

एड़ियां घिसते बादल . . .
लंगड़े फूल
गंजे सिर वाले पेड़

—शिवकुटीलाल वर्मा

एक अदृश्य टाइपराइटर पर साफ-
सुथरे कागज सा
चढता हुआ दिन
और पूंछ हिला गली से बाहर आता
कोई कुत्ता
बस के अड्डे पर एक चाय की दुकान
दिन भर बुदबुदाती है
टूटी हुई बेंच पर बैठा है
उल्लू का पट्ठा पहलवान

—श्रीकान्त वर्मा

मुन्ना ने दूध लिया
पत्नी ने जलाया चूल्हा
और मैं ने सिग्रेट
. . .
नौकरानियां कुछ आयी
कुछ भारी पांव गई
महाराजिन को दुख हुआ
महाराज से विलग होते

—श्रीराम वर्मा

मैं ने देखा मेरे ऊपर से
पंख फड़फडा गौरैया एक
क्षितिज की ओर उडी
जाने कहां खो गई

—स्नेहमयी चौधरी

जी हां ! इसी को कहते हैं साहित्यिक सरकस ! लय, छन्द, भाव-अर्थ आदि मुक्त कुछ वाक्य और उस पर भी सब से बडा मजाक यह कि गनीमत है भारतभूषण अग्रवाल ने अभी '६×४' का प्रयोग ही किया है। हो सकता है कि भविष्य में रचना के मध्य पूरे मकान का नक्शा भी बनाया जाने लगे। रत्न सिंह, रमेश गौड, शिवकुटीलाल वर्मा, स्नेहमयी चौधरी आदि की रचनाएं शब्दों के निरर्थक खिलवाड़ मात्र हैं। लगता है राजेन्द्रप्रसाद सिंह विक्षिप्तावस्था में अर्थहीन प्रलाप कर रहे हैं। विष्णुचन्द्र शर्मा तथा श्रीकान्त वर्मा की रचनाओं के बारे में कुछ न कहना ही अच्छा है,

जिन्हे पढ कर हिन्दी के सामान्य पाठक के मन में हिन्दी कविता के प्रति घृणा ही उत्पन्न हो सकती है।

वक्तव्य मे सम्पादकों के दावे कि 'ये कविताए खडी बोली के समग्र काव्य का प्रतिनिधित्व करती है' तथा 'इन्हे समझ कर तमाम हिन्दी कविता का समझना आसान हो जाएगा,' भ्रान्तिपूर्ण है। हा, उन का यह कहना सही है कि 'आज से बीस-पचीस वर्ष बाद लोग आश्चर्य करेंगे कि 'अरे ! सन १९६३ में ऐसी भी कविताए लिखी जाती थी।'

—दिनेश सक्सेना 'दिनेशायन'

एक शिकारी हजार शेर

लेखक—कर्नल केसरी सिह; प्रकाशक—भारती भण्डार, इलाहाबाद; मूल्य—५.००; पृष्ठ—२३०

भारत के शिकार-कथा लेखकों में कर्नल केसरी सिह का नाम अग्रगण्य है। उन के वर्णनों में जासूसी कथाओं की सनसनी और पद्य की सरसता रहती है। पुस्तक में बीस अध्याय हैं, जिन में कर्नल के शिकारी जीवन के विविध रोचक प्रसंग है। भूमिका में 'बाघ' के विषय में ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत की गयी है। सामान्य धारणा है कि बाघ पेड़ पर नहीं चढ सकता। यह भी कहा जाता है कि यदि कोई मनुष्य बाघ की आखों की ओर टकटकी लगाये देखता रहे, तो बाघ जडवत हो जाता है। लेखक ने दोनों किम्वदन्तियों का खण्डन किया है। उन के अनुसार बाघ केवल आदत से मजबूर हो कर पेड़ पर नहीं चढता है, अन्यथा पेड़ पर चढना उस के लिए कठिन नही है। उन्होंने इस प्रकार के एक-दो उदाहरण भी दिये है। पुस्तक पढ कर वन्य पशुओं के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

पुस्तक आद्योपान्त रोचक है। कुछ स्थानों पर प्रूफ की जो अशुद्धियां रह गयी है, आशा है अगले संस्करण मे दूर हो जायंगी। कुछ सुन्दर चित्र भी है।

—विजयसुन्दर पाठक

प्राप्ति स्वीकार

भिक्षु-विचार दर्शन; लेखक—मुनि श्री नथमल; प्रकाशक—जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, मूल्य—३.५०; पृष्ठ—१७५

आवर्त; लेखक—मुनिश्री बुद्धमलजी, प्रकाशक—आत्माराम एंड संस, दिल्ली; मूल्य—३.००; पृष्ठ—११९

गंधदीप '६३; संपादक—महेन्द्र कार्त्तिकेय; प्रकाशक—चितरंजन प्रकाशक, बम्बई; मूल्य—५.००; पृष्ठ—३४९

दो कदम आगे; लेखक—सम्पतलाल पुरोहित, प्रकाशक—युगछाया प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य—३.००; पृष्ठ—१५८

खेल-खेल में विज्ञान; लेखक—श्रीकृष्ण; योगेन्द्र कुमार लल्ला; प्रकाशक—आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य—४.००; पृष्ठ—६२

आक्सीजन और जीवन, लेखक—रामेश्वर भटनागर, प्रकाशक—आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य—२.००; पृष्ठ—९८

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

Remy
SNOW

२
रुपया

कल्पं दाविनूतनाम्बुदमयी कादम्बिनी वर्षतु

निबन्ध एवं लेख

कविताएं

कथा-साहित्य

सागर की समृद्धि

सैन्फोराइज्ड पाप्लीन
कोल्ड ड्रिंक, ब्लू बर्ड, एवर ब्राइट, गुड शाइन.
शर्टिंग
स्ट्राइप, डाबी, चेक, पाजामा.
धोतियां सेनगुप्ता.
सूटिंग, गैबर्डिन
प्रिंट
छपे लोन, वाइल, पाप्लीन,
स्क्रीन छपाई की साड़िया.
बुने रंगीन बूटा, २×२ फैन्सी फुल
वाइल लेनो और बूटा में

अरविंद मिल्स लिमिटेड
अहमदाबाद-२

S 56-77 HI

LIFEBUOY
for health
अब
एक नई
शान के साथ।

स्वर-विज्ञान के
नए क्षितिज पर
Sharp JHANKAR
शार्प झंकार
ट्रान्ज़िस्टर • रेडियो • रेडियोग्राम
हायाकावा इलेक्ट्रिक कंपनी लिमिटेड,
जापान की तकनीकी देखरेख में निर्मित
रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क १९७००८
ट्रान्ज़िस्टर रेडियो के
सर्वप्रथम निर्माता
माडल वीसी—०५२
५ ट्यूब, ३ बॅन्ड
एसी व एसी/डीसी
लकड़ी का विनीयरयुक्त कॅबिनेट।
* मूल्य एसी/डीसी २५० रुपये
एसी २७५ रुपये
मॉडल
वी एक्स एस—२२८
८ ट्रान्जिस्टर, २ बॅन्ड,
विश्वसनीय कार्य क्षमता के
लिए संलग्न एरियल,
स्पष्ट स्वर के लिए टोन
कन्ट्रोल। मूल्य २२५ रुपये *
मॉडल एच एफ़—४६४
हाई फ़ाइडेलिटि मॉडल
६ ट्यूब, ४ बॅन्ड,
आर एफ़ स्टेज़, ३ स्पीकर
* मूल्य ४७५ रुपये
मॉडल यू एल—१६४
ऑल वेव एसी व एसी/डीसी
६ ट्यूब, ४ बॅन्ड, आर एफ़ स्टेज
और सुमधुर ध्वनि के लिए
दो विशेष टोन कन्ट्रोल।
* मूल्य ३७५ रुपये
*
एक्साइज़ ड्यूटी व
टैक्स अतिरिक्त।
ASP/JR-67 Hindi
रेडियो डिविज़न
इन्डियन प्लास्टिक्स लिमिटेड
बम्बई
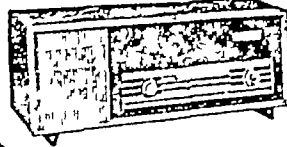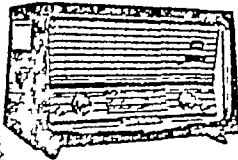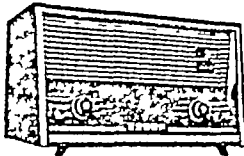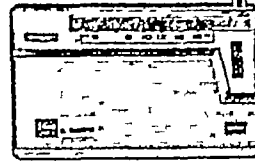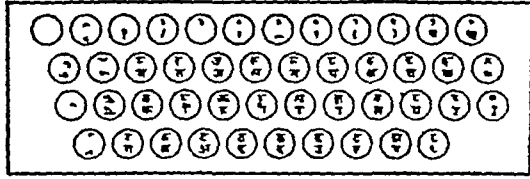
सुख और स्वास्थ्य के लिए

परिवार नियोजन कीजिए

अपने परिवार को सीमित रखने के सम्बन्ध में मुफ्त सलाह और जानकारी के लिए अपने पास के

परिवार कल्याण-नियोजन केन्द्र में जाइए

याद रखिए ! छोटा परिवार, सुखी परिवार होता है।

BE-207 B

ऐसी सजा क्यों ?

पुराने बाटों और नापों में खरीदना व बेचना गैर-कानूनी है। यही नहीं, चीजों के दाम पुरानी इकाइयों में बताना भी जुर्म है।

इसके अलावा, जब-जब आप सेर या मन में खरीद-फरोख्त करते हैं, तब-तब आप अनजाने में ही अपने को सजा देते हैं—यानी आप पैसे ज्यादा खर्च करते हैं और आपको चीज कम मिलती है।

यही काफी नहीं कि व्यापारी मैट्रिक बाटों का प्रयोग करें, आपको भी चाहिए कि आप खरीदारी मैट्रिक बाटों में ही करें।

सिर्फ

किलो में ही खरीदिए

डीए ६४/५१०

WITH BEST COMPLIMENTS FROM

BENTEX SALES CORPORATION

99C. Tardeo Road, Bombay-34

(मासिक प्रकाशन)

प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट, १८६७ (१९५६ में संशोधित) की धारा १९-डी. के अनुसार स्वामित्व आदि के सम्बन्ध में विवरण:—

१ प्रकाशन-स्थान	नई दिल्ली।
२. प्रकाशन की वारी	मासिक
३ मुद्रक—नाम, राष्ट्रीयता और पता	श्री रामनन्दन सिन्हा, भारतीय, दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि, नई दिल्ली।
४ प्रकाशक—नाम, राष्ट्रीयता और पता	
५. सम्पादक—नाम, राष्ट्रीयता और पता	श्री रामानन्द 'दोषी', भारतीय, दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि०, नई दिल्ली।
६. उन व्यक्तियों के नाम-पते, जो इस अखबार के मालिक या साझीदार हैं, या जो इसकी सारी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं।	दि हिन्दुस्तान टाइम्स लि., नई दिल्ली।

मैं, रामनन्दन सिन्हा, यह घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

रामनन्दन सिन्हा
प्रकाशक

'रिपीट ट्रेजडी' में कहानीकार का मतव्य स्पष्ट नहीं होता। कल्पना की जा सकती है कि सरिता की तरह पम्मी भी जीत के पास सतायी हुई पहुंची होगी, जीत ने तरस खा कर उस से शादी कर ली होगी और वही घटना 'मैं' (नायक) और सरिता के साथ घटित होने वाली है। यदि पाठक से कल्पना ही करवानी थी तो लेखक को पूरी कहानी लिखने की क्या आवश्यकता थी ? वे केवल शीर्षक लिख देते और पाठक कल्पना कर लेते।

'पहलवान जालिमसिंह' चुटीला हास्य-व्यग्य रहा।

—सियाराम यादव, फर्रुखाबाद

'गढकुण्डार की नायिका' लेख पसन्द आया। 'पुस्तकें' में 'दिनेशायन' द्वारा की गयी समालोचना सोद्देश्य थी। कविता के नाम पर आजकल ऐसी रचनाए लिखी जा रही है जिन से साहित्य का अपमान होता है। अगर श्रेष्ठ कवि, जिन्हें वास्तव में साहित्य की उन्नति अभीष्ट है, ध्यान नही देंगे तो भविष्य में क्या होगा ?

—अशोक सक्सेना 'शबनम,' कासिमपुर

सामयिक महत्व के दृष्टिकोण से 'नि.शस्त्रीकरण के पक्ष में' लेख उपयोगी रहा। शेरजग गर्ग के गीत तथा 'इलियट : मानववादी कवि' लेख ने बहुत प्रभावित किया।

—दलीप स्नेही, हिसार

'रिपीट ट्रेजडी' हिन्दी नवलेखन की एक ट्रेजडी उपस्थित करती है। पात्रों से अगरेजी शब्दों—संडे, शापिग, फ्रेड, बैचलर, ऐप्लीकेशन, वेडकवर, सेकेण्ड-हैंड, आदि—कहलवाना इतना अस्वाभाविक नही लगता जितना कहानीकार द्वारा प्रयुक्त वक्तव्यों में। कुछ शब्दों का प्रयोग अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए किया जाता है, किन्तु इस कहानी में प्रयुक्त अगरेजी शब्दों के स्थान पर इन के हिन्दी समानार्थी क्या कमजोर पड़ते ? अंगरेजी में शीर्षक तो अक्षम्य ही है।

क्या हमारे लेखक अंगरेजी के प्रति अकारण मोह त्यागने में समर्थ होंगे ?

—प्रबोधकुमार मजूमदार, लखनऊ

मैं नवम्बर से 'कादम्बिनी' पढ़ रहा हू। इस में प्रकाशित गेय गीत मुझे बहुत पसन्द है। नयी कविता के नाम पर आजकल कविता को बदनाम किया जा रहा है। इस तरह की कविता में शब्दाडंबर ही होता है।

राजभाषा-पद पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद हिन्दी सारे देशवासियों के हृदय में स्थान नहीं बना सकी है। इस का एक कारण यह भी हो सकता

है कि अगरेजी में 'कॅरियर्स एण्ड कोर्सेज,' 'कॅरियर्स डाइजेस्ट' आदि पत्रिकाए प्रकाशित होती हैं, जिन से प्रतियोगिता-परीक्षाओं मे वैठने वाले छात्र-छात्राओं को वड़ी सहायता मिलती है। हिन्दी मे यदि ऐसी पत्रिकाए प्रकाशित होने लगें तो निश्चय ही अगरेजी का पक्ष दुर्वल हो जायेगा। यदि आप पत्रिका में 'हसने का मौसम' तथा 'जीवन एक अनबूझ पहेली' स्तभ हटा कर सामान्य ज्ञान सवधी स्तम्भ शुरू कर दें तो विद्यार्थियों को वडा लाभ हो। वैसे 'बिन्दु-विन्दु, विचार', 'गोष्ठी' एव 'शब्द सामर्थ्य वढाइये' मुझे विशेष रुचिकर लगते हैं।

—हरिप्रकाश, वरेली

दिसम्वर, १९६४ के अक मे 'शब्द-सामर्थ्य वढाइये' स्तभ के अतर्गत 'यायावर' शब्द के ये अर्थ दिये हैं—घुमक्कड, परिव्राजक, खानावदोश।

इन अर्थों के अतिरिक्त 'यायावर' का एक महत्वपूर्ण अर्थ और भी है। अधिकाश स्मृतियो एव सहिताओं में चार प्रकार के ब्राह्मण गृहस्थ बताये हैं—वार्ताक वृत्ति के, शालीन वृत्ति के, यायावर एव घोर सान्यासिक। वार्ताक वृत्ति के वे हैं जो गोरक्षा और वाणिज्य करते हुए सैकडों वर्ष में समाप्त होने वाले यज्ञों द्वारा अत करण शुद्ध करके आत्मज्ञान की इच्छा करते हैं। शालीन वृत्ति के वे हैं जो यज्ञ करते हैं, कराते नहीं, अध्ययन करते हैं, पर कराते नहीं, दान देते हैं किन्तु लेते नहीं और पूर्वोक्त यज्ञों द्वारा आत्मज्ञान की इच्छा करते हैं। यायावर वृत्ति के वे हैं जो यजन-याजन आदि कर्मों द्वारा आत्मज्ञान के अभिलाषी हैं। घोर सान्यासिक वृत्ति के वे हैं जो शील से जीविका-अर्जन करते और यज्ञों द्वारा आत्म-ज्ञान प्राप्त करते हैं। साराश यह है कि 'यायावर' शब्द प्राचीन काल में आदर के लिए प्रयुक्त होता था। 'यायावर' का अर्थ घुमक्कड़ या परि-व्राजक पर्याप्त नही है।

—रासबिहारी राय शर्मा, हरद्वार

हाल में गुजराती डाइजेस्ट 'श्रीरग' मे 'कादम्विनी' से लिये गये दो रोचक लेख मेरे पढने मे आये। मन में उत्सुकता जगी कि देखू आखिर यह 'कादम्विनी' है कैसी! अखवारवाले के यहा जव नही मिली तो मैं ने उसे व्हीलर के यहा तलाश किया, पर वहा भी निराशा ही मिली। अंत में मैं ने अपनी सहेली से, जो ४० मील दूर से दफ्तर आती हैं, 'कादम्बिनी' प्राप्त करने के लिए कहा। बडी कोशिश के वाद वे जनवरी अक प्राप्त कर सकी। अक आद्योपान्त पढ डालने के उपरात मैं ने निष्कर्ष निकाला है कि 'कादम्विनी' की तुलना में अन्य पत्रिकाए कुछ नही हैं। कितना काव्यात्मक और कर्णप्रिय नाम है 'कादम्विनी'! इसे पढ़ने से पूर्व मुझे यह नही पता था कि हिन्दी में भी इतनी सुन्दर पत्रिका हो सकती है। इसे हर माह खरीदने का लोभ मैं सवरण नही कर सकती। पत्रिका अधिकाधिक उन्नति करे, यही मेरी कामना है।

—सुलक्षणा मोदी, अहमदावाद

सीताचरण दीक्षित

शब्द-सामर्थ्य की कमी प्रायः उन्नति में बाधक होती है। वह सरलता से दूर की जा सकती है। निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये। उत्तरों में दिये चिह्नों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तत्=तत्सम, सं०=संज्ञा, वि०—विशेषण, पुं०=पुंलिग, स्त्री०=स्त्रीलिंग, हि०=हिन्दी। यदि आप के ७ उत्तर सही हैं तो परिणाम साधारण, ११ सही हैं तो संतोषजनक और सब सही हैं तो उत्तम है—

१. वृत्तपत्र : क गोलाकार चादर, ख समाचारपत्र, ग चिट्ठी, घ. परिपत्र।

२. नियतकालिक : क अरदली, ख घड़ी, ग पत्र-पत्रिका, घ नियमित

३ वार्ताहर क चुगलखोर, ख जासूस, ग सदेशवाहक, घ वकील।

४. प्रेय : क. प्रेम, ख पराया, ग. अच्छा, घ प्रिय।

५. श्रेय : क सुहावना, ख सुना हुआ, ग कल्याणकारी, घ. स्फूर्तिदायक।

६. प्रायः : क बहुधा, ख लगभग, ग किंचित्, घ. सदा।

७. चारु . क चार, ख सुन्दर, ग. चरी, घ कुरूप।

८. वातूल : क. फूला हुआ, ख. गुब्बारा, ग बातूनी, घ पागल।

९. तिरस्कारिणी क तिरस्कार करनेवाली, ख परदा, ग जादू, घ. मोहिनी।

१०. आकाश-कुसुम : क अप्राप्य वस्तु, ख. पुच्छल तारा, ग नीला फूल, घ ज्योति।

११. दंतकथा : क दांतों की बात, ख, परपरागत सुनी-सुनायी बात, ग गल्प, घ प्रेमकथा।

१२. अनंतर क एक-सा, ख. पहले, ग ऊपर, घ. पश्चात्।

१३. ग्रामेय : क ग्राम्य, ख ग्रामीण, ग ग्राम में उत्पन्न हुआ, घ असंस्कृत।

१४. निर्वेद क अपनी अवज्ञा, ख. वेदों के बाहर ग अज्ञान, घ. वेदरहित।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. वृत्तपत्र : ख. समाचारपत्र (तत्०, सं०, पुं०, मराठी में प्रचलित, वृत्त=समाचार, वृत्त-चिकित्सक=समाचार-समीक्षक)

२. नियतकालिक : ग. पत्र-पत्रिका, नियत समय पर निकलनेवाला पत्र (तत्०, सं०, पुं०)

३. वार्ताहर : ग. संदेशवाहक, (मराठी में) संवाददाता, रिपोर्टर (तत्०, स०, पुं०, विकल्प=वार्तावह)

४. प्रेय : घ. प्रिय, भौतिक सुख का—सत्ता प्रेय हो सकती है, किन्तु उस में मनुष्य को गिराने का दोष भी है (तत्०, वि०-सं०, उभय लिंग, स्त्री०—प्रेयसी=पत्नी, प्रिया)

५. श्रेय : ग कल्याणकारी, सच्चे हित का, पुण्यप्रद—कर्त्तव्य श्रेय है, स्वार्थ प्रेय तत्०, वि०-स०, उभय-लिंग, श्रेयार्थी, श्रेयस्कर)

६. प्रायः : क बहुधा, (शब्द के अंत में प्राय या प्रायी) लगभग—प्राय. बाधक होती है, पतनप्रायी वृक्ष, मृत-प्राय व्यक्ति (तत्०, क्रि०वि०)

७. चारु : ख सुन्दर, अच्छा, भला—चारुलोचन, चारुशीला, चारु-दर्शन (तत्०, वि०, उभय लिंग, सुचारु रूप से=भली भांति)

८. वातुल : पागल, सनकी, वात या वायु के प्रकोप से ग्रस्त—वातुल के वचन का क्या भरोसा (तत्०, वि०, अपभ्रंश—वातुल)

९ तिरस्कारिणी : ख. परदा, घूंघट, बुर्का, तिरोहित या अदृश्य हो जाने की विद्या—मेघों ने सूर्य पर ऐसी तिरस्कारिणी (तिरस्कारिणी) डाल दी, मानो सूर्य तिरस्कारिणी विद्या से अंत-र्धान हो गया हो (तत्०, सं०, स्त्री०)

१०. आकाश-कुसुम : क अप्राप्य वस्तु, जिस वस्तु का अस्तित्व है ही नहीं—सुख उस के लिए आकाश-कुसुम हो गया है (तत्०, सं०, पुं०)

११. दंतकथा : ख. परंपरागत सुनी सुनायी बात, किंवदंती=परशुराम के परशु फेंकने पर समुद्र भूमि से हट गया, यह दंतकथा इतिहास में भी सम्मिलित कर ली गयी है (तत्०, स०, स्त्री०)

१२. अनंतर . घ पश्चात्, उप-रांत, तुरत बाद—तीन के अनंतर पांच नहीं चार, जन्म के अनंतर मृत्यु नहीं जीवन होता है (तत्०, क्रि०वि०)

१३. ग्रामेय : ग. ग्राम में उत्पन्न हुआ, अपरिष्कृत—ग्रामेय जनों ने धूर्तों के चक्कर में आ कर अयोग्य व्यक्ति को मत दे दिये (तत्०, वि०, पुं०, ग्रामिक, ग्रामीण, ग्राम्य, स्त्री० ग्रामेयी=वेश्या)

१४. निर्वेद : क. अपनी अवज्ञा, स्वावमानना, आत्मत्याग, विरक्ति, शांति की प्राप्ति के लिए सांसारिक वस्तुओं से पूर्ण विराग—आप का यह निर्वेद पराभवजन्य है, राम का निर्वेद लोक-कल्याणमूलक था (तत्०, सं०, पु०)
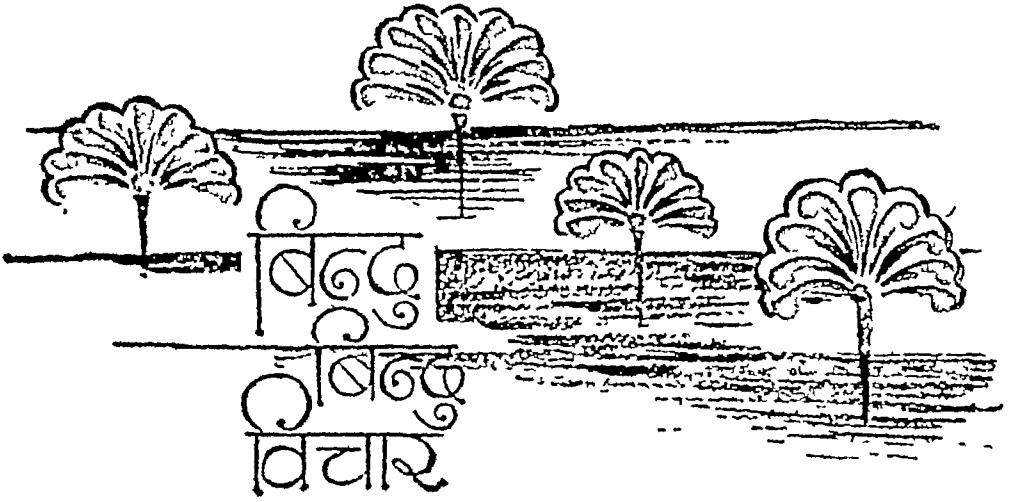
★ मतभेद बहुत बड़ा है।

★ तुम गमलों से सुरभियुक्त सुन्दर फूलों का बहिष्कार करके, उन में कैक्टस रोपते हो।

★ हम फूलों-फलों की रक्षा के लिए उद्यानों में नागफनी की बाड़ लगाते हैं।

★ तुम्हारा कैक्टस बैठकखाने की शोभा है, दूर देश से उसे मंगाया गया है, अच्छे-से-अच्छे दाम उस के चुकाये गये हैं, बड़े जतन और सावधानी से उस की देख-भाल होती है।

★ नागफनी के साथ यह सब नखरा नहीं है। दुर्दान्त सूर्य उसे तपाता है, झंझा-झक्कड़ उसे प्रताड़ित करते हैं, जाड़ा-पाला उस से निर्बाध जूझता है और वह हर प्रतिकूल परिस्थिति से उबर कर बंजर-रेगिस्तान तक में सिर ऊंचा किये खड़ी रहती है।

★ कैक्टस तुम्हारे समाज के फैशन की देन है, वह तुम्हारे अभि-जात्य का प्रमाण और प्रतीक है।

★ और नागफनी? वह शुद्ध जनता की चीज है, वैसी ही उपे-

क्षित, वैसी ही कर्तव्यपरायण ।

* मतभेद बहुत बड़ा है ।

* कैक्टस और नागफनी का भेद मात्र दो भाषाओं के शब्दों का भेद नहीं है—यह रक्षित और रक्षक का भेद है, दो संस्कृतियों और दो विचारधाराओं का अंतर है ।

* जिस कैक्टस के पक्ष में तुम आज विवेकशून्य आचरण पर उतर आये हो, उसे कितने बैठकखानों में पाला-पोसा जा सकेगा ? और कब तक ?

* और यह तो तुम भूल ही गये कि हर कैक्टस अपने देश में नागफनी ही है, उस का उपयोग वहां के फूलों-फलों की रक्षा करना है ।

* लेकिन हमारे माली तो अपने फलों-फूलों को उखाड़ कर पराये कैक्टसों की रक्षा में ही जन्म की सिद्धि-सफलता मान बैठे हैं !

* ऐसा उदाहरण संसार में अन्यत्र नहीं मिलेगा—यह अगर संतोष की बात हो, तो तुम्हें संतोष का आधार और अधिकार है ।

* किन्तु यह निर्विवाद है कि इस समय कसौटी पर विवेक और आत्म-सम्मान दोनों हैं ।

रामानन्द दोषी

क्षुधा

बुद्ध अव्वाली ग्राम आये तो उन का उपदेश सुनने के लिए सहस्रों ग्रामीण उपस्थित हुए। ग्राम का एक दरिद्र किन्तु कर्मठ कृषक भी उस स्थान से गुजरा। बुद्ध का उपदेशामृत पान करने की उस की बड़ी इच्छा थी, किन्तु संयोगवश उस का एक बैल खो गया था। वह धर्मसंकट में पड़ा कि भगवान का उपदेश सुने या बैल को ढूंढ़े। अंततः पहले बैल को ढूंढ़ने का ही निश्चय करके वह चला गया। संध्या समय बैल मिल जाने पर वह थका तथा भूखा-प्यासा फिर उसी स्थान से निकला। किन्तु इस बार उपदेश श्रवण करना ही उसे उपयुक्त लगा।

बुद्ध ने कुछ क्षण उस के थके-मांदे चेहरे को निहारा, फिर भिक्षुओं से बोले, "सर्वप्रथम इसे भोजन कराओ।"

उदर की ज्वाला शांत होने पर कृषक ने एकाग्र मन से बुद्ध का उपदेश सुना।

अव्वाली से लौटते समय मार्ग में भिक्षुगण बुद्ध के इस व्यवहार की आलोचना करने लगे। बुद्ध शांत स्वर में बोले, "भिक्षुगण, मैं तीस योजन का गहन वन पार कर केवल उसी कृषक को उपदेश करने अव्वाली आया था। वह अपने लोकधर्म के पालन हेतु सारे दिन भटका और क्षुधित होते हुए भी मेरा उपदेश सुनने चला आया। यदि मैं उस क्षुधा-पीड़ित को उपदेश करने लगता तो वह उसे ग्रहण न कर पाता। क्षुधा के समान कोई सांसारिक व्याधि नहीं। अन्य रोग तो एक बार चिकित्सा से शांत हो जाते हैं, किन्तु इस रोग की चिकित्सा प्रति दिन करनी पड़ती है।"

—धम्मपदट्ठकथा

होली का आविर्भाव और उस की परंपरा हमारे सांस्कृतिक विकास के साथ जुड़ी हुई है। होली वस्तुत: कृषि युग की देन है। वैदिक ऋचाओं और संहिताओं से ज्ञात होता है कि हमारे यहां जितने भी उत्सव और पर्व मनाये जाते हैं, उन का संबंध किसी न किसी रूप में ऋतु-परिवर्तन और फसल कटने से अवश्य रहा है। 'कौषितकि ब्राह्मण' के अनुसार शीत काल मे बोयी गयी फसल चैत मास मे पक जाती थी और इसी अवसर पर फाल्गुनी पूर्णिमा का वैश्वदेव पर्व मनाया जाता था।

प्राचीन भारत का यह अनुष्ठान वसंतकालीन ही था। वैदिक काल के इन अनुष्ठानों में यज्ञ का ध्यान विशिष्ट रहा है।

अग्नि का बहुत महत्व था। वह जीवन-ज्योति का प्रतीक है, जिसे वैदिक ऋषि यज्ञाग्नि के रूप में सदैव प्रज्ज्वलित रखते थे। हविष्य के रूप में अग्नि को थोडा अन्न भी भेंट दिया जाता था।

वैश्वदेव पर्व पर जो उस पवित्राग्नि में अन्न भूना जाता था, वह होलक कहलाया। इस का अपभ्रंश शब्द होला बना। उस से संबंधित उत्सव 'होलिकोत्सव' कहलाया, जो बाद में 'होली' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तीसरी शती में रचे गये वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' में इस उत्सव का नाम 'होलाका' दिया हुआ है। इस प्रकार होली का परवर्ती रूप पूर्ववर्ती रूप से भिन्न है। वह वैश्वदेव पर्व और नवीन अन्न के हविष्य के रूप में प्रारंभ हुआ।

लेकिन यह उत्सव अभी तक पूर्ण रूप से लौकिक नहीं बन पाया था। उस का यह प्राचीन रूप वैदिक कर्म-कांडों तक सीमित रहा। कालांतर में जनता के अन्य उत्सवों की अंतर्भुक्ति से इस उत्सव का महत्व बढ गया। सामान्य जनता इस उत्सव को ऋतु-परिवर्तन से संबंधित मान कर अपने ढंग से मनाती रही।

ऋतु-परिवर्तन से संबंधित उत्सव वसंतोत्सव कहलाया। वसंत को ऋतु-

○ गोविन्द रजनीश

वैदिक ऋचाओं से आज तक

राज भी कहा गया है, जो अपनी माद-कता और सुषमा के लिए अद्वितीय एव अनुपम रहा है। वसतागमन पर वसत का स्वागत युवतियों द्वारा कानों में आम्रमजरी लगा कर किया जाता है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में इसी महोत्सव को 'सुवसतक' कहा गया है। सीतावेग कदरा के शिलालेख में इस उत्सव का नाम 'द,ले वसतिया' दिया गया है। यह शिलालेख ईसा पूर्व तीसरी शती का माना गया है। कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'रघुवश' और 'मालविकाग्निमित्रम्' में इसे 'ऋतूत्सव' कहा है। मोदक-वितरण इस उत्सव की विशेषता बतायी गयी है। 'कामसूत्र' के अनु-सार इस उत्सव पर सीग की पिच-कारियों से किंशुक पुष्पों का जल छिड़का जाता था। इस प्रकार हर्ष के साथ इस उत्सव को जनता द्वारा मनाया जाता रहा है। होलीदाह और वसतोत्सव सामान्य जनता के ही उत्सव बने रहे।

इसी काल में सामत वर्ग और राज-परिवारों में मदनमहोत्सव बनाने का प्रचलन था। राज-परिवार की नारिया इसे धूम-धाम से मनाती थी। यह वसत की प्रथम पूर्णिमा के तेरहवें दिन मनाये जाने के कारण 'मदनत्रयोदशी' भी कहलाता था। इस प्रकार यह उत्सव वसतोत्सव से भिन्न था। यह उत्सव यक्षों की देन है। यक्षों में कामदेव की पूजा प्रचलित थी। जब तक यक्ष सस्कृति का प्रचार रहा, तब तक मदन-पूजा होती रही, लेकिन जैसे ही शैव मत ने जोर पकडा तो शिव, असुर देवता, ने मदन को पराजित कर दिया।

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में मदन-दहन का प्रसग आता है, जिस को ले कर महाकवि कालिदास ने 'कुमार-सभव'-जैसा श्रेष्ठ महाकाव्य लिख दिया। इसी कथा को प्रतीक बना कर मदन-दहन का सबध होली से जोड़ने का प्रयास किया गया है। ईसा की पहली शती से दसवी शती तक मदनोत्सव का व्यापक प्रसार रहा है। 'गरुण पुराण' में सुझाव दिया गया है

कि अगहन त्रयोदशी से कार्तिक की मदनत्रयोदशी तक व्रत चालू रखना चाहिये। प्रति मास शिव के पूजन का निर्देश दिया गया है। 'भविष्य पुराण' में कहा गया है कि चदन द्वारा काम और रति की मूर्तिया मडित करके लोग समारोह के साथ उन का पूजन करें और इस अवसर पर नृत्य-गीत आदि को महत्व दिया जाये।

'वर्षक्रिया कौमुदी' में भी शैवागम की विचारधारा का वर्णन करते हुए लिखा है कि चैत्र की शुक्ला चतुर्दशी को मदन-महोत्सव मे प्रात काल से एक पहर तक सगीत और वादय के साथ शृगारिक अपशब्दो को बोलते हुए कीचड़ को उछाला जा सकता है।

किशुक पुष्पों के साथ कीचड आदि का प्रयोग भी वाछित रहा है। यह प्रचलन दसवी सदी तक और अवशिष्ट परपरा के साथ ग्रामो में आज भी मिलता है। महाकवि हर्ष कृत छठी शताब्दी की 'रत्नावलि' नाटिका में सागरिका-रत्नावलि के कथन से स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत में कामदेव की पूजा चित्र से होती थी। उत्तरी भारत में उस की प्रतिमा बना कर पूजा की जाती थी। भास कृत 'चारुदत्त' नाटक में वर्णन है कि इस अवसर पर कामदेव के चित्र को बडी धूम-धाम से नागरिकों की भारी भीड़ के साथ निकाला जाता था। 'दशकुमारचरित' के अनुसार अवती सुन्दरी ने सखियों के साथ ग्रामवाटिका में जा कर आम के वृक्ष के नीचे बालू से कामदेव की प्रतिमा का निर्माण कर पूजा की। राजवाहन के प्रति प्रणय का उदय उसी अवसर पर हुआ था।

इस प्रकार वसंतोत्सव और मदनोत्सव के रूप में दो भिन्न उत्सव एकसाथ चलते रहे। एक सामती उत्सव था, और दूसरा सामान्य जनता का। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में तपनीयाशोक की दोहदपूर्ति के उपरात रानियां झूला झूलती हैं। 'रघुवश' में भी झूला झूलने की प्रथा का वर्णन हुआ है। 'दशकुमारचरित' में कलिंगराज कर्दम अपनी पुत्री, रानियों और गण्यमान्य नागरिकों के साथ १३ दिन तक समुद्र-तट पर स्थित अगूर के बाग में वसतोत्सव मनाता रहा था। इन दिनों सामूहिक सगीत, वादन, कामोद्दीपक हास्य इत्यादि अनवरत चलते रहे। विमलसूरि, नयनदी, रइधू, पुष्पदत, धवल आदि कवियो ने उदयान-क्रीडा का ही अधिक वर्णन किया है। परवर्ती सस्कृत साहित्य सामंती साहित्य था। यही कारण है कि माघ, भारवि, भट्टि, बाणभट्ट, कालिदास-जैसे महाकवियों ने भी होली का वर्णन नहीं किया है। ये दोनों उत्सव काफी समय तक साथ-साथ चलते रहे। 'रत्नावलि' मे इस का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, परतु दोनों उत्सवो का नामकरण मदनमहोत्सव के रूप में ही किया है। विदूषक ने नगरवासियों के मदनमहोत्सव का वर्णन करते हुए कहा है, 'मतवाली कामिनियां अपने हाथों में पिचकारी ले कर नागर पुरुषों पर रग डाल रही हैं और वे पुरुषगण कौतूहल से नाच रहे हैं। चारों ओर

बजते हुए डफ और ताली के शब्दों से गलियां मुखरित हो रही हैं। उड़ाये गये गुलाल से दशों दिशाओं का मुख पीत-वर्ण हो रहा है। कुमकुम की बुकनी से युक्त लाल गुलाल उड़ रहा है, जिस से प्रात काल सा हो रहा है। धारायंत्रों से निकलते हुए जल के कारण प्रांगण में कीचड़-सी बन रही है। उस पर स्त्रियों के कपोलों से सिन्दूर इतनी मात्रा में गिर रहा है कि वह कीचड़ भी आरक्त हो जाती है।' इसी समय राजा प्रमद वन में कामदेव की पूजा करने जाता है। वह विदूषक से कहता है, 'देखो एक उत्सव में दूसरा उत्सव निकल आया है।'

इस से ज्ञात होता है कि उस समय तक दोनों उत्सव पृथक-पृथक ही थे। कालांतर में वसंतोत्सव, मदनोत्सव और वैश्वदेव अनुष्ठान की अंतर्भुक्ति हो गयी और तीनों होली के रूप में सामूहिक रूप से मनाये जाने लगे। इस में इन उत्सवों की कतिपय विशिष्टताएं बनी रहीं।

धीरे-धीरे होली में भी नृत्य, गीत, अभिनय आदि का समावेश हो गया। पतंजलि के 'महाभाष्य' में वर्णित कंसवध नाटक ऋतु-परिवर्तन पर अभिनीत किये जाने वाले नाटकों की ओर इंगित करता है। इस में कंस के अनुयायी नीले वस्त्र पहने दिखाये गये हैं तथा कृष्ण के अनुयायी लाल वस्त्र। इस का तात्पर्य शिशिरांत और वसंतागमन है। इसी प्रकार यूनान में डायोनिसस का पर्व वर्ष के शुरू में वसंतागमन पर मनाया जाता था।

महाकवि कालिदास का 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक वसंतोत्सव पर ही खेला गया था। इस नाटक में नांदीपाठ के बाद ही कालिदास ने सूत्रधार द्वारा इस का संकेत करा दिया है। महाकवि हर्ष की 'रत्नावलि' भी वसंतोत्सव पर खेली गयी थी। वसंतोत्सव पर खेले जाने वाले नाटकों की परंपरा कुछ समय तक चलती रही। मुगलकाल में आ कर इस में गत्यवरोध-सा आ गया। फिर भी होली के अवसर पर आज भी स्वांग, नृत्य आदि किये जाते हैं।

यही बात संगीत और काव्य के बारे में है। खयाल, धमार तथा ध्रुपद के रूप में होली की गायन-पद्धति अभी

"भगवन, अब छाछ-दही की मटकी फोड़ने को नहीं मिलेगी . . . विरोधियों पर पत्थर फेंक कर ही काम चलाना पड़ेगा।"

तक बृज प्रदेश में प्रचलित है। गीतों के रूप में फाग, चैता, चैतावर का गायन विभिन्न प्रदेशों में होता है।

आयुर्वेद की दृष्टि से भी होली का महत्त्व है। यह उत्सव शिशिर के अंत और वसंत के प्रारंभ में मनाया जाता है। शिशिर ऋतु का अंत शीत-काल की समाप्ति का समय है और वसंत का प्रारंभ ग्रीष्मकाल का उप-क्रम है। वसंत के प्रारंभ में शीत-काल का संचित कफ कुपित हो कर रोगों को उत्पन्न करता है। 'चरक संहिता' में कहा गया है 'शीतकाल में जमा हुआ कफ सूर्य की तेजस्विता से प्रेरित हो कर शरीर की अग्नि को बाधित करता है, अतः अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण वसंत में वमन आदि संशोधक कर्म करने चाहियें।' आयुर्वेद के इस सिद्धांत के अनुसार वसंत के प्रारंभ में कफ को भड़का कर निकाल देना आवश्यक है। ज्यों-ज्यों चंद्रमा की कला कम होती जायेगी, त्यों-त्यों कफ का जोर भी कम होता चला जायेगा। वसंत ऋतु के फूलों को सुखा कर तैयार किया गया रंगीन जल त्वचा को साफ करता है।

आज होली के उत्सव पर कई नयी परंपराओं का उद्भव हो गया है, जो परवर्ती देन है। बरसाने की होली में लाठी का प्रयोग, चर्चरी नृत्य तथा गायन ने इस उत्सव को और भी आक-र्षक बना दिया है। भ्रातृत्व के प्रसार तथा ऊंच-नीच की भावना को समाप्त करने वाला इस से बढ़ कर और कोई उत्सव नहीं है।

पति-पत्नी के बीच किसी बात पर गरमागरमी हो गयी। भुन-भुनाती हुई पत्नी अपने कमरे में गयी और कुछ देर बाद दो सूटकेस लिये बाहर आयी। पति देख कर मुसकराने लगा।

बड़ी कटुता से पत्नी ने कहा, "मैं घर नहीं छोड़ रही हूं। ये खाली सूटकेस तो मैं घर इसलिए ले जा रही हूं कि भैया इस में अपना सामान रख ले और हमारे पास आ कर रहे।"

★

रमेश ने हेयर कटिंग सैलून की कुरसी पर बैठते ही बाल काटने वाले को अपनी आदत के अनुसार लम्बी-चौड़ी हिदायतें दे डालीं। बीच-बीच में भी वह उसे समझाता रहा। हजामत हो चुकने के बाद उस ने देखा कि उस के बाल ठीक वैसे ही कटे हैं जैसे वह चाहता था। खुश हो कर वह सैलून के मालिक से बोला, "आप का यह आदमी बेहद होशियार है। इस ने मेरी हिदायतों के अनुसार ही बाल काटे हैं।"

"क्या!" मालिक ने हैरान हो कर कहा, "वह सुन कैसे सकता है! वह तो जन्म से ही बहरा है।"

हिन्दी भाषा शीघ्र आवश्यक

○ सुरेश अग्निहोत्री

छब्बीस जनवरी, १९६५ को हिन्दी के पन्द्रह साल की अवधि पूर्ण हो गयी और उसे राजभाषा के सिंहासन पर औपचारिक रूप से आसीन कर दिया गया है, किन्तु उस के साथ ही अंगरेजी को समानता का अधिकार अब भी रहेगा। यह समानता कई दृष्टियों से 'समानता' की अपेक्षा विशेषाधिकार अधिक है। इस घोषणा की दक्षिण भारत में जो प्रतिक्रिया हुई है, वह गणतन्त्रात्मक देश के लिए शुभ नहीं कही जा सकती। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस घोषणा से न तो अहिन्दी-भाषी सन्तुष्ट हैं और न हिन्दी-भाषी।

इस समस्या के राजनीतिक पक्ष को यदि भुला दिया जाये तो भी इस से सम्बन्धित अनेक प्रश्न हैं, जिन पर विचार करना अत्यावश्यक है। लगभग सभी राज्यों में हिन्दी का शिक्षण प्रारम्भ हो गया है। अनेक छात्र-छात्राएं हिन्दी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ रहे हैं। उन की प्रगति कुछ सीमा तक संतोषजनक नहीं है। दक्षिण के अधिकांश अध्यापक अहिन्दी-भाषी हैं, जिन्हें हिन्दी अध्यापन का विशेष ज्ञान नहीं है। अध्यापकों की भी अपनी शिकायतें हैं। मातृभाषा के रूप में हिन्दी सीखने वाले को व्याकरण की विशेष आवश्यकता नहीं होती, किन्तु अहिन्दी-भाषी को हिन्दी के किसी प्रामाणिक व्याकरण की आवश्यकता होती है। हिन्दी भाषा के जितने भी व्याकरण हैं, उन्हें अहिन्दी-भाषियों के लिए नहीं लिखा गया था। कामताप्रसाद गुरु का 'हिन्दी-व्याकरण' विवरणात्मक व्याकरण नहीं है, नियामक है। रामचन्द्र वर्मा की 'अच्छी हिन्दी' में भाषा के व्यावहारिक स्वरूप का विवेचन तो हुआ है, किन्तु वह भाषा के विस्तृत स्वरूप का स्पर्श नहीं कर पाता। अन्य व्याकरण ग्रन्थों से भी अहिन्दी-भाषी विशेष लाभ नहीं उठा

पाते। भापा सिखाने की व्यावहारिक कठिनाइयों से मुक्ति पाने के लिए एक अहिन्दी-भाषी हिन्दी अध्यापक को कोई भी रास्ता नहीं मिलता।

अहिन्दी-भाषियों को हिन्दी सिखाने के लिए आप्टे और शास्त्री का 'हिन्दी-व्याकरण' उपयोगी सिद्ध हुआ है, किन्तु उस का उपयोग परिपक्व मस्तिष्क का व्यक्ति ही कर सकता है। दूसरी बात यह है कि इस व्याकरण में भी भाषा के विकासशील स्वरूप की अपेक्षा आदर्श स्वरूप पर ही अधिक बल दिया गया है। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिलेंगे जिन्हें व्याकरण की दृष्टि से असगत कहा जाता है, किन्तु अनेक हिन्दी लेखकों ने उन्हें प्रयुक्त किया है। भाषा का विद्यार्थी ऐसी स्थिति में यह निर्णय नहीं कर पाता कि अपनी भाषा में कौन-सा प्रयोग करे और कौन-सा नहीं।

कोई भी जीवित भाषा सूत्रों के बंधन में नहीं बध सकती। हर भाषा के कई रूप होते हैं, उस की विभाषाएं और बोलियां होती हैं और इस के साथ उस का मानक स्वरूप भी होता है। बीसवीं शताब्दी के मध्य से भाषा-वैज्ञानिकों का ध्यान भाषा के मौखिक रूप की ओर आकृष्ट हुआ है और अनेक भाषाओं के मौखिक स्वरूप का अध्ययन भी हो चुका है। भाषा-वैज्ञानिकों ने भाषा के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन तथा उन में अन्तर्निहित नियमों की व्याख्या की है। अभी तक हिन्दी के स्वरूप का अध्ययन नहीं हो सका है। केन्द्रीय अंगरेजी संस्थान, हैदराबाद के तत्वावधान में हिन्दी और अंगरेजी ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन डा. माणिकलाल चतुर्वेदी ने किया है, किंतु अभी तक वह अप्रकाशित है।

भाषा के स्वरूप का अध्ययन इन चार क्षेत्रों में होना आवश्यक है—**१. ध्वनि-विज्ञान २. वाक्य-विज्ञान ३. शब्द-समूह या पद-विज्ञान तथा ४. अर्थ-विज्ञान।**

इस दिशा में पिछले दशक में कुछ शोध-कार्य हुआ है, किन्तु उस की व्यावहारिक उपयोगिता कम है।

ध्वनि-विज्ञान—इस के अन्तर्गत हिन्दी की समस्त बोलियों की ध्वनियों का अध्ययन होना चाहिये। यह कहने से काम नहीं चल सकता कि देवनागरी लिपि में जो लिखा जाता है, वही पढा जाता है। 'यह' शब्द भी तीन प्रमुख ढंगों से उच्चरित होता है। उर्दू से प्रभावित लोग इस का उच्चारण 'येह' की तरह करते हैं, कुछ लोग 'ह' की पूर्ण ध्वनि का उच्चारण नहीं करते। बीच में प्रयुक्त होने वाले व्यञ्जनों में स्वर के अंश का उच्चारण नहीं होता है। अहिन्दी-भाषी जब 'आप का' का उच्चारण 'आ+प्+अ+क्+आ' के रूप में करता है, तो उस का उच्चारण अस्वाभाविक-सा लगता है। 'ऐसे उदाहरणों को देख कर कौन मौन रह सकता है!' इस वाक्य को ब्रज, अवधी, भोजपुरी और अहिन्दी-भाषी चार विभिन्न ढंगों से कहेंगे। ध्वनियों का सम्यक अध्ययन हिन्दी प्रचार के लिए अत्यधिक आवश्यक है।

इस के अतिरिक्त वाक्यों के उच्चारण में आरोह-अवरोह का महत्व होता

हैं। इन के अभाव में हिन्दी की स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है। साथ ही आरोहात्मक वाक्य को अवरोहात्मक ढंग से बोलने से वाक्य का अर्थ भी बदल जाता है। इन का पूर्ण अध्ययन होना आवश्यक है।

हिन्दी तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओं की ध्वनियों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यधिक आवश्यक है। सामान्य दृष्टि से देखने पर तो यह लगता है कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की ध्वनिया समान हैं, किन्तु स्थिति इस से सर्वथा भिन्न है। हिन्दी और मराठी में स्वरो का प्रयोग भी एक समान नहीं होता है। व्यजनों का ध्वनि-बोध भी भिन्न है। हिन्दी और मराठी में 'चवर्ग' का उच्चारण भिन्न है।

वाक्य-विन्यास—इस के अन्तर्गत वाक्य में पदों की स्थिरता पर विचार किया जाता है। हिन्दी में वाक्यों की रचना के एक से अधिक प्रयोग मिलते हैं। वाक्यों के विषय में किसी प्रकार के नियम निर्धारित करने के पूर्व यह आवश्यक है कि सभी प्रचलित प्रयोगों का अध्ययन किया जाये।

कारक चिहनों का अध्ययन भी बहुत आवश्यक है। हिन्दी भाषी तो समझ लेता है कि 'मैं ने गया' अशुद्ध प्रयोग है और 'मैं ने खाया' शुद्ध। कर्ता का चिहन 'ने' अकर्मक क्रियाओं के साथ नही प्रयुक्त होता। सकर्मक क्रियाओं के साथ इस का प्रयोग भूतकाल में होता है। इसी प्रकार 'मुझ को जाना है,' 'मुझे बुखार है' आदि प्रयोग भी कारक चिहनों के अध्ययन के अतर्गत ही रखे जा सकते हैं।

पद-विज्ञान या शब्द-समूह—संस्कृत के नियम प्रायः हिन्दी शब्दों पर लागू नही होते। बहुत से विदेशी शब्दों को हिन्दी में ग्रहण कर लिया गया है और सस्कृत के तत्सम शब्दों को भी नवीन रूप दे दिया गया है।

इस विषय में सब से जरूरी कार्य है 'हिन्दी की न्यूनतम आवश्यक शब्दावली' का निर्णय करना। इस कार्य को वैज्ञानिक ढग से करना होगा। प्रेमचद की भाषा के आधार पर शब्दो की आवृत्ति का निर्णय नही किया जा सकता। हिन्दी के मौखिक और लिखित रूपो मे सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाले शब्दो की उपयोगिता निश्चित रूप से अधिक होगी।

अर्थ-विज्ञान—एक स्रोत से आने वाले शब्द भी विभिन्न भाषाओं में भिन्न अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। प्रत्येक भाषा की एक सामाजिक पृष्ठभूमि होती है, जिस के कारण उस की अपनी निजी प्रकृति हो जाती है। 'प्रमाद' शब्द सस्कृत, हिन्दी, तेलगु, मराठी भाषाओं मे भिन्न-भिन्न अर्थ-बोध कराता है।

आगरा स्थित केन्द्रीय हिन्दी सस्थान अहिन्दी भाषा-भाषियों को हिन्दी पढ़ाने के अध्यापक प्रशिक्षित करता है। अध्यापन-पद्धति पर शोध-कार्य कराना इस सस्थान का कर्तव्य है। अन्य शोध-सस्थानों को भी इस दिशा में कार्य करना चाहिये।

यदि हिन्दी अध्यापन की व्यावहारिक कठिनाइयो का हल न ढूंढ़ा जायेगा तो हिन्दी अध्यापन का कार्य सुचारु ढग से न चल सकेगा।

दिग्विजय-गीत

बादल को बांहों में भर लो
एक और अनहोनी कर लो

अंगों में बिजलियां लपेटो
चरणों में दूरियां समेटो
नभ को पदचापों से बांधो
ओ दिग्विजयी मनु के बेटो
इंद्रधनुष कंधों पर धर लो
एक और अनहोनी कर लो

अंतरिक्ष घर है तो डर क्या
नीचे-ऊपर, इधर-उधर क्या.
सांसों में भर गयीं दिशाएं
अब क्या भीतर है, बाहर क्या
तारों की सीढ़ियां उतर लो
एक और अनहोनी कर लो

शीत-ताप-हीन करो तन को
बरने दो प्रतीक्षा मरण को.
शीशे के टुकड़ों में भर लो
भटक रहे आवारा मन को
ईथर में डूब लो, उभार लो
एक और अनहोनी कर लो

देखो मत पथ पर क्षण छूटे
सीमान्तों वाले पुल टूटे
टूटी मेहराबों के नीचे
धारा में बहे स्वप्न झूठे
मंगल किरण से संवर लो
एक और अनहोनी कर लो

—डा० शम्भुनाथ सिंह—

अपराधी + लोबोटोमी = सुशील व्यक्ति

● हरिमोहन शर्मा

लोबोटोमी की सहायता से शल्य-चिकित्सक नित नये करिश्मे दिखा रहे हैं। चाकू की एक तराश मात्र से गंभीर से गंभीर स्नायविक रोगों के लक्षण भी गायब हो जाते हैं। चिन्ता, भय, असमंजस, भ्रम आदि से एक क्षण में ही मुक्ति मिल जाती है। चीत्कार करते हुए रेडियो का 'वाल्यूम' कम करने पर जैसे उस का स्वर साधारण स्तर पर आ जाता है, उसी प्रकार 'लोबोटोमी' के प्रयोग के बाद महिलाओं को तंग करने वालों, लुटेरों, पक्के शराबियों, पागलों, सिर-दर्द और अपराध-वृत्तियों से पीड़ितों को विनम्र तथा सहिष्णु पाया गया है।

'लोबोटोमी' आधुनिक चिकित्सा जगत के लिए कोई नयी वस्तु नहीं है। प्राचीन पेरू के 'इन्का' लोग विक्षिप्त व्यक्तियों के इलाज के लिए ठीक उसी प्रकार उन के सिरों में छेद करते थे, जिस प्रकार आधुनिक शल्य-चिकित्सक रोगी के सिर में छेद करता है। पर स्नायु शल्यचिकित्सा का विकास पिछले तीस वर्षों में ही संभव हुआ है। अब तो इस प्रकार की शल्यक्रिया का एक विशेष रूप—'फ्रंटल लोबोटोमी' स्नायविक रोगों से पीड़ित रोगियों में अत्यंत लोकप्रिय होती जा रही है। 'फ्रंटल लोबोटोमी' में शल्यचिकित्सक रोगी के सिर में दो छेद करके उन में बारी बारी से एक विशेष चाकू मस्तिष्क में एक इंच नीचे उतार कर बायें से दायें घुमाता है। बेहोशी में रोगी कुछ नहीं जान पाता कि उस के साथ क्या किया जा रहा है। बाद में उसे भी अनुभव होने लगता है तथा मानसिक रोग के विशेषज्ञ भी इस बात की पुष्टि कर देते हैं कि उस की अपराध-वृत्ति या पागलपन समाप्त हो गया।

क्या सदा के लिए। शल्यक्रिया के फलस्वरूप हुए फेरफार को बदल कर मस्तिष्क को पूर्वावस्था में नहीं लाया जा सकता। शरीर के अन्य कोष एक बार नष्ट या विकृत हो कर दोबारा 'जीवित' हो सकते हैं, पर मस्तिष्क कोष कभी नहीं। 'लोबो-टोमी' दो महत्वपूर्ण स्नायुकेन्द्रों—मस्तिष्क की बाहरी त्वचा तथा अंतः-कक्ष को गभीर रूप से तथा स्थायी रूप से प्रभावित करती है। अन्तः-कक्ष मस्तिष्क का अत्यन्त कार्यशील तथा उत्तरदायी अंग है। करोड़ों मानवीय मनोवेगों को संचारित तथा प्रकाशित करने वाले स्नायु इसी से सम्बन्धित हैं तथा हमारे सभी मनो-वेगों का नियत्रण एव मूल्यांकन करते हैं।

मस्तिष्क की बाहरी त्वचा छोटे-मोटे शारीरिक कष्टों की मात्रा तथा प्रभावात्मकता का निर्धारण करती है। सुई की चुभन या शरीर के किसी अग के कट जाने के परिणामस्वरूप हुई पीडा आदि का निर्धारण इस त्वचा द्वारा ही किया जाता है। मस्तिष्क का अन्त कक्ष शरीर के सब भागों को सदेश भेजने वाला केन्द्र तो है ही, इन सदेशों तथा आवेगों को भावनाओं के रूप में परिवर्तित करके 'भावनाओं के केन्द्र' में भी भेज देता है। 'भाव-नाओं का केन्द्र' माथे के ठीक ऊपर मस्तिष्क के आगे स्थित है।

शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के आवेग अधिक तीव्र नहीं होते। इसी कारण इन आवेगों से न वह हताश ही होता है, और न कोई प्रेरणा ही प्राप्त कर पाता है। मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति, जैसे विक्षिप्त व्यक्ति अथवा अपराधी-वृत्ति के व्यक्ति में ऐसे आवेग तीव्र तो होते ही हैं, निरन्तर आते भी रहते हैं। इसी कारण विक्षिप्त या अपराधी कभी चुप नहीं बैठ सकता। ये मनोवेग उसे सदा चंचल रखते हैं।

'लोबोटोमी' इस सक्रिय और आवेगपूर्ण तंतुजाल को छिन्न-भिन्न करके रोगी की इस चंचलता तथा अस्थिरता को कम करती है। मस्तिष्क की बाहरी त्वचा से ले कर अन्त कक्ष तक फैले इस तन्तुजाल से ही वे सारे मनोवेग गुजरते रहते हैं, जिन के कारण व्यक्ति व्यग्र, अधीर तथा अप-राध की ओर उन्मुख रहता है। इस तन्तुजाल के छिन्नभिन्न होते ही स्नाय-विक रोगों के सारे लक्षण समूल नष्ट हो जाते हैं।

यह शल्यक्रिया ठीक न हो पाये, या कभी-कभी बिना इस कारण के भी कुछ अप्रिय लक्षण, जैसे रक्तचाप तथा श्वास की गति कम होना, भी रोगी मे प्रकट हो सकते हैं। बहुधा रोगी के मन में जडता तथा अस्पृहा की भावनाए घर कर लेती हैं तथा वह क्रमशः अपनी सब महत्वाकाक्षाओं और सहज प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है। ऐसी स्थिति किसी भी व्यक्ति के लिए शुभ नहीं है। बहुत से रोगी इस शल्यक्रिया के बाद भविष्य की ओर से बिलकुल उदासीन हो जाते हैं।

कभी-कभी विपरीत परिणाम भी देखने में आते हैं। ये अधिकाश शल्यचिकित्सक की लापरवाही के

कारण ही होते हैं। उस के चाकू के एक मिलीमीटर भी अधिक गहरे जाने पर एक व्यक्ति, जो पहले धार्मिक पुस्तकों का पाठ करता था तथा शास्त्रीय संगीत का शौकीन था, सस्ते उपन्यासों तथा उत्तेजक संगीत का शौकीन बन गया। एक रोगी की दशा गलत शल्यक्रिया के बाद इतनी खराब हो गयी कि उस ने पागलखाने में कई पागलों पर आक्रमण कर दिया और एक को मार डाला। क्रोध तथा बद-मिजाजी के लिए कुख्यात एक रोगिणी ने इस आपरेशन के बाद एक वृद्ध पुरुष की हत्या कर दी थी। एक अन्य सुशिक्षित महिला अपने सिर-दर्द तथा अन्य दिमागी परेशानियों के कारण इस आपरेशन के लिए तैयार हो गयी। लोबोटोमी से पूर्व वह महिला शांत स्वभाव की थी। पर दोषपूर्ण शल्यचिकित्सा के फलस्वरूप उस का स्वभाव बदल गया। उस ने अपनी पुत्री को मार डाला तथा आत्म-हत्या करने का प्रयत्न भी किया।

ऐसी दुखान्त घटनाओं की पुनरा-वृत्ति को रोकने के लिए 'लोबोटोमी' की विधियों में निरन्तर सुधार किये जा रहे हैं। अति सवेदित स्नायु-तंतुओं को समूल नष्ट करने के लिए चाकू के स्थान पर एक विशेष सुई का प्रयोग भी किया जाने लगा है। कुछ शल्यचिकित्सक सिर में छेद नहीं करते तथा सारी शल्यक्रिया ध्वनितरंगों की मदद से करते हैं। वे किसी पूर्व-निश्चित स्थान पर उदात्त स्वर-केंद्रित करते हैं। उन की तरंग शक्ति से मस्तिष्क के दोषपूर्ण भाग जल जाते हैं।

कुछ देशों ने 'लोबोटोमी' की अस-फलता के दुष्परिणामों को देख कर उसे गैरकानूनी घोषित कर दिया है। कुछ धर्माचार्यों ने भी इस शल्य-क्रिया की भर्त्सना की है। ⊙

महेंद्र के कलकत्ता आते ही उस के मित्र ने बता दिया था कि यहां के दुकानदार नये लोगों से दुगुनी कीमत वसूल करते हैं अतः वह सावधान था। न्यू मार्केट में उस ने एक दुकानदार से पूछा, "इस गिलास की क्या कीमत है?"

"बारह आने।"

"नहीं, छह आने दूंगा।"

"अजी साहब, हमारे यहां मोल भाव नहीं होता। खैर, आप दस आने दे दीजिये।"

"अब तो मैं पांच आने से ज्यादा नहीं दूंगा।"

"आप नये आदमी मालूम पड़ते हैं। चलिये, आप को नौ आने में दे दूंगा।"

"बस, मैं साढ़े चार आने में लूंगा।"

"अच्छा-अच्छा, आप मुफ्त में ही ले जाइये," दुकानदार झुंझला कर बोला।

"मुफ्त में! तब तो मैं दो गिलास लूंगा।"

देना ।"

"जी ?"

महामहिम ने रुष्ट बन कर कहा, "इतना भी समझती नहीं हो क्या ? अपनी मां को जा कर मेरी तरफ से प्रणाम कह देना और मुझे सब हाल बताना। सुना ? समझी ? बस अब जाओ !"

उषा जा कैसे सकती थी ? नाश्ते की तिहाई भी तैयारी नहीं हो पायी थी। काफी आयी थी और बस टोस्ट। इस अधूरेपन में वह कैसे जा सकती थी ? पर महामहिम खड़े थे और वे कह चुके थे—जाओ। मानो रोष में उन्होंने कहा था। सच का वह रोष होता तो वह टिकती ही कैसे ? पर वह तो कृपा से भी बड़ी करुणा का था इस-लिए और भी आवश्यक था कि वह अपने कर्तव्य में अधूरी न रहे। उस ने इसलिए महामहिम की बात को सुना-अनसुना किया और नाश्ते के अन्य पदार्थ एक-एक कर वह लाती चली गयी।

महामहिम कुरसी की पीठ थामे उसी तरह खड़े रहे। देखते रहे कि उषा एक-एक करके पदार्थ लाती जाती है और मेज पर करीने से उन्हें रखती जाती है। उन्होंने उषा के काम में कोई व्याघात नहीं उपस्थित किया। जाने क्या सोचते रहे। निश्चय ही उषा उन की आज्ञा का उल्लंघन कर रही थी, पर यह उल्लघन उन्हें खटक नहीं रहा था। उन का मन चिंताओं और विचारों से मानो इस समय हलका हो रहा था। वे महामहिम हैं, इन्हीं का ध्यान उन से खो गया था। कोई है जो एक-एक कर तरह-तरह की चीजें ला कर मेज पर रखता जा रहा है। वह स्वयं उन में से किसी चीज को छूएगा नहीं। उस का काम सिर्फ लाना और रख जाना है। वह तो कोई दूसरा ही है जो उन सब पदार्थों का भोग पायेगा। उन्हें अनोखा लग रहा था कि वह दूसरा कोई और नहीं, स्वयं वही हैं। अब तक कभी उन्हें यह नहीं सूझा था। प्रगट था कि वे महामहिम हैं और दूसरे सेवक हैं। एकदम वैधानिक था कि दूसरे सेवा करें और वे सेवा पायें। लेकिन इन क्षणों में वह वैधानिकता बीच से न जाने कहां उड गयी थी। एक व्यक्ति के मानिंद हो कर वे कुरसी की पीठ थामे खड़े रह गये थे और देख रहे थे कि दूसरा व्यक्ति है जो सहमा-डरता हुआ-सा उन के लिए एक पर एक व्यजन और पदार्थ लाता और यथाविधि रखता जा रहा है, मानो उस की कृतार्थता बस इतने में ही है। उस अस्तित्व की, कौशल की, व्यक्ति-त्व की धन्यता इस में है कि वे सराहें और भोग पायें। इस समय बड़ा ही अनोखा लग रहा था उन्हें वस्तुओं का यह विधान और अपनी महामहिमता की बात बिलकुल समझ में न आ रही थी।

चीजें लायी जाती रहीं और रखी जाती रहीं। महामहिम अंत तक बैठे नहीं। सहसा उन्होंने पाया कि जो रह-रह कर जा रहा था और ला रहा था, वह इस बार जा कर वापस

कारण ही होते हैं। उस के चाकू के एक मिलीमीटर ही अधिक गहरे जाने पर एक व्यक्ति, जो पहले धार्मिक पुस्तकों का पाठ करता था तथा शास्त्रीय संगीत का शौकीन था, सस्ते उपन्यासों तथा उत्तेजक संगीत का शौकीन बन गया। एक रोगी की दशा गलत शल्यक्रिया के बाद इतनी खराब हो गयी कि उस ने पागलखाने में कई पागलों पर आक्रमण कर दिया और एक को मार डाला। क्रोध तथा बद-मिजाजी के लिए कुख्यात एक रोगिणी ने इस आपरेशन के बाद एक वृद्ध पुरुष की हत्या कर दी थी। एक अन्य सुशिक्षिता महिला अपने सिर-दर्द तथा अन्य दिमागी परेशानियों के कारण इस आपरेशन के लिए तैयार हो गयी। लोबोटोमी से पूर्व वह महिला शांत स्वभाव की थी। पर दोषपूर्ण शल्यचिकित्सा के फलस्वरूप उस का स्वभाव बदल गया। उस ने अपनी पुत्री को मार डाला तथा आत्म-हत्या करने का प्रयत्न भी किया।

ऐसी दुखान्त घटनाओं की पुनरा-वृत्ति को रोकने के लिए 'लोबोटोमी' की विधियों में निरन्तर सुधार किये जा रहे हैं। अति संवेदित स्नायु-तन्तुओं को समूल नष्ट करने के लिए चाकू के स्थान पर एक विशेष सुई का प्रयोग भी किया जाने लगा है। कुछ शल्यचिकित्सक सिर में छेद नहीं करते तथा सारी शल्यक्रिया ध्वनितरंगों की मदद से करते हैं। वे किसी पूर्व-निश्चित स्थान पर उदात्त स्वर-केंद्रित करते हैं। उन की तरंग शक्ति से मस्तिष्क के दोषपूर्ण भाग जल जाते हैं।

कुछ देशों ने 'लोबोटोमी' की अस-फलता के दुष्परिणामों को देख कर उसे गैरकानूनी घोषित कर दिया है। कुछ धर्माचार्यों ने भी इस शल्य-क्रिया की भर्त्सना की है। ©

महेंद्र के कलकत्ता आते ही उस के मित्र ने बता दिया था कि यहां के दुकानदार नये लोगों से दुगुनी कीमत वसूल करते हैं अतः वह सावधान था। न्यू मार्केट में उस ने एक दुकानदार से पूछा, "इस गिलास की क्या कीमत है?"

"बारह आने।"

"नहीं, छह आने दूंगा।"

"अजी साहब, हमारे यहां मोल भाव नहीं होता। खैर, आप दस आने दे दीजिये।"

"अब तो मैं पांच आने से ज्यादा नहीं दूंगा।"

"आप नये आदमी मालूम पड़ते हैं। चलिये, आप को नौ आने में दे दूंगा।"

"बस, मैं साढ़े चार आने में लूंगा।"

"अच्छा-अच्छा, आप मुफ्त में ही ले जाइये," दुकानदार झुंझला कर बोला।

"मुफ्त में! तब तो मैं दो गिलास लूंगा।"

आज की कहानी : बोध और दिशाएं
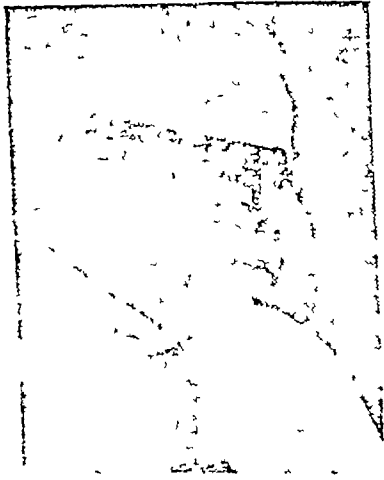
इस स्तम्भ के अन्तर्गत आज के प्रमुख कहानीकारों की नवीनतम कहानियां दी जा रही हैं। साथ ही कहानीकार के ही शब्दों में उन परिस्थितियों को भी बताया जाता है जिन में उस की कहानी उद्भूत हुई। पिछले अंकों में कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव की कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं। अब पढ़िये जैनेन्द्रकुमार की कहानी तथा उन का तत्संबंधी वक्तव्य।

आप चाहते हैं कि कैसे यह कहानी सूझी और लिखी गयी, यह मैं बताऊं। काम मुश्किल है। लेकिन मैं कहानी-लेखक सही तरह का हूं नहीं, इस से कल्पना और विचार के सहारे अकसर काम बना लिया करता हूं।

हम सब लोग एक व्यवस्था में जीते हैं। अधिकांश जीते हैं, कुछ जीने के ऊपर व्यवस्था का भी दायित्व अपने ऊपर लिये रहते हैं। उन का सच सिर्फ जीना चाहने वालों से कुछ भिन्न हो सकता है। उन के लिए धारणावाचक संज्ञाएं वस्तुवाचक या व्यक्तिबोधक संज्ञाओं से प्रधान बन सकती हैं। व्यवस्थापक नेता के लिए देश-विदेश बेहद जाने-माने तत्व होते हैं—इतने कि आस-पास के आदमी उस के लिए उसी कारण छोटे और अनपहचाने रह सकते हैं।

कहानी में ऐसे ही एक विधाता व्यक्तित्व की कल्पना है। किन्तु, आदमी होने से वह किसी भूले-से क्षण में धारणात्मक संज्ञा के आसन से उतर कर अनायास हार्दिक तल पर आ जाते और अपने अधीनस्थ एक सामान्य कर्मचारिणी कन्या को पहचानने को खुल रहते हैं।

कथा में उन दो तलों की चेतना के विभ्रम और विग्रह की किंचित झांकी ली और दी गयी है।

जैनेन्द्र कुमार

महामहिम

उषा परिचारिका नहीं हैं। कुछ सेक्रेटरी ही समझिये। वही महामहिम के सवेरे के नाश्ते-पानी की व्यवस्था करती हैं।

कमरे में आयी और देख कर वह दंग रह गयी कि महामहिम बैठे हैं। दोनों बांह कोहनी से मेज पर टिकी हैं और चेहरा हाथ में थमा है। वह आयी थी कि मेज साफ करेगी। चीजें सही जगह चुन कर रखेगी और तैयारी हो चुकने पर महामहिम से कहेगी। पर अब वह ठिठकी रह गयी। दरवाजे पर ही सोचती रह गयी कि वह आगे बढ़े या वापस जाये।

ऐसा तो कभी नहीं हुआ है।

महामहिम हमेशा प्रसन्न होते हैं। यह तो कल्पना से बाहर है कि वे चुपचाप आ कर इस कमरे में बैठें और वह भी इस तरह कि बेध्यान हों और सोच में हों।

उसे सहसा-सहसा अनुचित मालूम होने लगा और वह दबे कदम वापस जाने को थी कि महामहिम ने कहा, "अरे उषा!"

उषा स्तब्ध रह गयी। उसे पहचाना जायेगा, नाम ले कर संबोधन से पुकारा जायेगा, यह उस के लिए बहुत अधिक था, मानो वह जम कर पत्थर बन गयी।

"मेज साफ करोगी ?"

बड़ी कठिनाई से उस के मुंह से निकला, "जी!"

"तो करो साफ," कह कर महामहिम कुरसी छोड़ कर खड़े हुए और पीछे सरक कर दीवार से सट गये। उषा बुत बनी अपनी जगह खड़ी रह गयी।

"आओ, साफ करो मेज!"

उषा डरी-सी डग-डग भरती आयी और मेज को साफ करने लगी। महामहिम खड़े देखते रहे। उषा को मालूम हुआ कि उस की पीठ पर महामहिम की निगाह है। वह जैसे अन्दर सिमटती गयी। यह एकदम अप्रत्याशित था, असंभव था।

"तुम्हारी मां की तबीयत अब कैसी है ?"

"जी ?"

उस ने मेज से अपना मुंह नहीं उठाया था, कैसे उठा सकती थी ? उस की मां थीं और वह बीमार थीं—यह पता महामहिम को हो सका, क्या इतना ही उसे विस्मय-विमूढ़ करने के लिए काफी न था ?

"दवा कर रही हो ? क्या दवा कर रही हो ?"

"जी ?"

और इस बार उस ने हिम्मत करके महामहिम की ओर मुंह फेर कर उन्हें देखा। महामहिम की आंखों में परिचय देख कर उसे बहुत विस्मय हुआ। उन की आंखों में परिचय से आगे भी कुछ था—चिंता थी, करुणा थी।

"क्या दवा करती हो ?"

"जी, कुछ नहीं।"

"गलत बात है। मुझ से क्यों नहीं कहा ?"

"जी, मां दवा नहीं लेतीं।"

"दवा नहीं लेतीं!" महामहिम मुसकराये, बोले, "डाक्टरी दवा नहीं लेती होंगी तो देशी लें। मां की बीमारी पर तुम ने छुट्टी क्यों नहीं ले ली ?"

"जी!"

"अब पहले से आराम है न ?"

"जी!"

"अच्छा, तो मेज साफ करके और नाश्ता निपटा कर जा कर मां को संभालना। और आ कर मुझे बताना।"

उषा चित्रलिखी सी महामहिम को देखती रही। उसे विश्वास न आ रहा था।

महामहिम ने फिर कहा, "बस, हो गयी मेज साफ। जो हो ऐसे ही ले आओ। फिर जाओ और मां की खबर ला कर दो।" उषा मुड़ी, एकाध

हाथ मेज पर दिया और बराबर पेंट्री में चली गयी।

महामहिम को वक्त नहीं रहता। समय ही ऐसा है। देश-विदेश की समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। स्थिति विस्फोटक सी बनी है। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति बेहद उलझ रही है। राष्ट्र के नेताओं के आपसी राग-द्वेष सम्भाले नहीं संभलते। यह सब है, लेकिन इस वक्त उषा की मां की तबीयत का सवाल जो उन में उठ आया, सो उन्हें बड़ा अच्छा मालूम हो रहा है। जैसे वह सब मिथ्या हो और यह सच।

महामहिम सच ही इस समय अपने ऊपर विस्मित हैं। उन्हें बहुत-बहुत काम हैं। सब बेहद जरूरी हैं। उन से बच कर वे आये थे और यहां कुरसी में ठोडी को हाथ में ले कर बैठ गये थे। फिर यहां उषा आ गयी और उस की मां की बीमारी का ध्यान हो आया। जाने कैसे उड़ती-सी बात की तरह मालूम हुआ था कि उषा की मां की तबीयत ठीक नहीं है। ध्यान देने-जैसी वह बात तो न थी, फिर भी एकाएक उस का स्मरण उठ आया और उषा से उस का जिक्र हो आया तो अब उन्हें इस पर बडी सार्थकता का अनुभव होने लगा था, मानो बाकी और झमेला हो और अनायास यह एक सचमुच की असलियत बीच में आ गयी हो।

महामहिम गहरे सोच में पड गये। दिन-रात वे देश और विदेश में रहते हैं। पत्नी नहीं है, कोई नहीं है। बेटी है, वह भी बस है और जैसे अलग है, मानो उस का होना आनुषंगिक हो, असली होना देशों और विदेशों का ही हो। अब इस छोटे से कमरे में आ कर दीवार के पास अकेले खडे वे सोचने लगे कि देश और विदेश जो इस समय मिट गये हैं, सो कुछ बुरा नहीं हुआ। शायद दिन-रात उन का ही होना और रहना अच्छी बात नहीं है। कभी-कभी हम-तुम को भी होना चाहिये।

अभी वे खडे ही थे कि उषा एक-एक कर चीजें लाती गयी और उन के सामने मेज पर सजाती चली गयी। वे बैठे नहीं, देखते ही रह गये। उषा सामान्य-सी लडकी है। असुन्दर नहीं है पर सुंदर भी नहीं है। बहुत ज्यादा जवान भी नहीं है। उल्लेखनीय कुछ भी उस के आसपास नहीं है। पर महामहिम उसे देखते रह गये और उन्हें अपने मन में यह अनुभव बिलकुल गलत नहीं मालूम हुआ कि उषा है और देश-विदेश नहीं है। उन्हें बड़ा अचभा हुआ कि देश-विदेश की उलझनें किस आसानी से उतर कर दूर हो जाती हैं। मनुष्य को सामने और सच बनाने की देर है कि बाकी फिर आप ही गौण और वृथा हो आता है।

वे सहसा बोले, "बस, उषा, बहुत हो गया। अब तुम मां के पास जा सकती हो।"

उषा चकित-सी बोली, "जी।"

"बस और नहीं चाहिये। इतने से चल जायेगा। तुम जाओ।"

"मां अब ठीक है।"

"ठीक है, जा कर मेरा उन्हें प्रणाम

देना ।''

''जी ?''

महामहिम ने रुष्ट बन कर कहा, ''इतना भी समझती नहीं हो क्या ? अपनी मां को जा कर मेरी तरफ से प्रणाम कह देना और मुझे सब हाल बताना। सुना ? समझी ? बस अब जाओ ।''

उषा जा कैसे सकती थी ? नाश्ते की तिहाई भी तैयारी नहीं हो पायी थी। काफी आयी थी और बस टोस्ट । इस अधूरेपन में वह कैसे जा सकती थी ? पर महामहिम खड़े थे और वे कह चुके थे—जाओ ! मानो रोष में उन्होंने कहा था। सच का वह रोष होता तो वह टिकती ही कैसे ? पर वह तो कृपा से भी बड़ी करुणा का था इस-लिए और भी आवश्यक था कि वह अपने कर्तव्य में अधूरी न रहे। उस ने इसलिए महामहिम की बात को सुना-अनसुना किया और नाश्ते के अन्य पदार्थ एक एक कर वह लाती चली गयी ।

महामहिम कुरसी की पीठ थामे उसी तरह खड़े रहे। देखते रहे कि उषा एक एक करके पदार्थ लाती जाती है और मेज पर करीने से उन्हें रखती जाती है । उन्होंने उषा के काम में कोई व्याघात नहीं उपस्थित किया। जाने क्या सोचते रहे। निश्चय ही उषा उन की आज्ञा का उल्लंघन कर रही थी, पर यह उल्लघन उन्हें खटक नहीं रहा था। उन का मन चिंताओं और विचारों से मानो इस समय हलका हो रहा था। वे महामहिम हैं, इसी का ध्यान उन से खो गया था। कोई है जो एक-एक कर तरह-तरह की चीजें ला कर मेज पर रखता जा रहा है। वह स्वयं उन में से किसी चीज को छुएगा नहीं । उस का काम सिर्फ लाना और रख जाना है। वह तो कोई दूसरा ही है जो उन सब पदार्थों का भोग पायेगा । उन्हें अनोखा लग रहा था कि वह दूसरा कोई और नहीं, स्वय वही हैं। अब तक कभी उन्हें यह नहीं सूझा था। प्रगट था कि वे महामहिम हैं और दूसरे सेवक हैं। एकदम वैधानिक था कि दूसरे सेवा करें और वे सेवा पायें। लेकिन इन क्षणों में वह वैधानिकता बीच से न जाने कहा उड़ गयी थी। एक व्यक्ति के मानिंद हो कर वे कुरसी की पीठ थामे खड़े रह गये थे और देख रहे थे कि दूसरा व्यक्ति है जो सहमा-डरता हुआ-सा उन के लिए एक पर एक व्यजन और पदार्थ लाता और यथाविधि रखता जा रहा है, मानो उस की कृतार्थता बस इतने में ही है। उस अस्तित्व की, कौशल की, व्यक्ति-त्व की धन्यता इस में है कि वे सराहें और भोग पायें। इस समय बडा ही अनोखा लग रहा था उन्हें वस्तुओं का यह विधान और अपनी महामहिमता की बात बिलकुल समझ में न आ रही थी।

चीजें लायी जाती रहीं और रखी जाती रहीं। महामहिम अंत तक बैठे नहीं। सहसा उन्होंने पाया कि जो रह-रह कर जा रहा था और ला रहा था, वह इस बार जा कर वापस

○ वनपुत्र

एक दफ्तर है, जिसे आप चाहे पुरातत्व का दफ्तर समझें या चाहें तो भूगर्भ-सर्वेक्षण का। ऐसे दफ्तरों की घटनाएं प्रायः समान होती हैं। उसी दफ्तर के एक सज्जन मिले। मैं ने पूछा, "आजकल एमर-जेंसी में आप के दफ्तर में भी कोई ढील हुई या नहीं?" बोले, "एमर-जेंसी तो बदस्तूर जारी है, परन्तु मेरे विशेष विभाग के तीस कर्मचारी पिछले बीस दिनों से हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं।"

पूछने पर उन्होंने जो बात बतायी, उस का सार यह था कि उन के विभाग में जो कार्य होता है उस में एक विशेष रासायनिक पदार्थ आवश्यक होता है। पिछले बीस दिनों से इस रासायनिक पदार्थ की एक बूंद भी शेष नहीं है। सो इस विभाग के तीस कर्मचारी रोज रजिस्टरों में हस्ताक्षर करके दिन भर खाली बैठे रहते हैं।

यही नहीं, इस रासायनिक पदार्थ के लिए अभी तक टेंडर नहीं मांगे

गये हैं, क्योंकि टेंडर मंगवाना एक अलग विभाग का कार्य है। उस विभाग में क्रमवार वस्तुओं के टेंडर मांगे जाते हैं। सो 'प्रायोरिटी लिस्ट' के अनुसार यह कार्य अगले दस दिनों तक होगा। टेंडर में एक मास और लगेगा। फिर सामान मंगवाने में चार सप्ताह और। यह दशा तो उस रसायनिक पदार्थ की है जो भारत में मिल जाता है!

इस विभाग के कर्मचारियों का वेतन साढ़े तीन सौ से ले कर ढाई हजार रुपये मासिक तक है। अगर औसत पांच सौ का वेतन प्रति मास भी लगाया जाये तो तीस कर्मचारियों के ढाई महीने का वेतन सैंतीस हजार पांच सौ रुपये हो गया।

इस बात को सुन कर मेरे मन में प्रश्न उठा था कि इस विभाग का कोई अधिकारी अपनी जिम्मेदारी पर वह रसायनिक पदार्थ बाजार से क्यों नहीं खरीद लेता? इस प्रकार खरीदने पर वह पदार्थ कुछ महंगा भले ही मिले, परन्तु अन्य लाभ तो होंगे। एक तो वह वेतन व्यर्थ नहीं जायेगा, दूसरे सारे कर्मचारी कार्य करते रहेंगे। और सब से महत्वपूर्ण बात यह कि इस विभाग में कार्य न होने के कारण यहां से जो कार्य दूसरे विभागों में नहीं जायेगा, तो वहां क्या होगा?

इस का उत्तर मिला मुझे एक अन्य दफ्तर की एक साधारण घटना से। उस दफ्तर के एक विभाग में सारा काम एक विशेष प्रकार की फिल्म के कारण रुक गया। अतः एक अधिकारी ने कहा कि फिल्म पन्द्रह-बीस दिनों में आ जायेगी, तब तक के लिए जिस दाम में मिले, ले ली जाये। स्थानीय फर्मों को पत्र चला गया और उन के दाम भी आ गये। कुल इक्कीस रुपये की फिल्म चाहिये थी। बाहर से मंगवाने पर यही फिल्म साढ़े अठारह रुपये की आती थी, यानी दाम अढ़ाई रुपये अधिक थे और उस के ऊपर खर्च कुछ नहीं पड़ता था। ऊपर पड़ते खर्च का हिसाब सरकारी दफ्तरों में प्रायः नहीं देखा जाता।

अब उस फाइल ने भिन्न-भिन्न अफसरों के चक्कर काटने आरम्भ किये। हर अफसर उस अढ़ाई रुपये के अंतर को देखता और उस फाइल को अपने से उच्च अधिकारी के पास भेज देता। फाइल सब से उच्च अधिकारी के पास पहुंची और जब तक उस ने अपनी स्वीकृति दी, तब तक फिल्में बाहर से आ चुकी थीं और काम शुरू हो चुका था। इस एक छोटे से मामले पर निर्णय लेने में बाईस दिन लग गये।

मैं ने जब उसी दफ्तर के एक अफसर से उस फिल्म को इक्कीस रुपये में खरीदने के लिए आदेश न देने का कारण पूछा, तो उस ने बताया, "सरकारी ऑडिटर ऐसी खरीदों पर नजर रखते हैं और जिस अफसर ने अधिक दाम पर खरीद लेने का आदेश दिया हो उस से जवाब तलब किया जाता है। यह समझा जाता है कि जिस अफसर ने यह आदेश दिया था, उस ने अवश्य उस स्थानीय दुकानदार से कुछ

कमीशन खाया होगा। तो हम में से कोई भी व्यर्थ में जवाबदेही क्यों करता रहे? जब नये-नये अफसर बन कर आते हैं, तब ऐसी त्रुटियां कर बैठते हैं, पर अनुभवी प्राय. ऐसी गलती नहीं करता।"

इसी सिलसिले में एक फोटोग्राफर मित्र की याद आती है, जो किसी सरकारी दफ्तर में नये-नये नियुक्त हुए थे। वे एक कुशल व्यक्ति थे। उन्हें दस इंच, बारह इंच के छ-सात फोटो बनाने का काम दिया गया। उन्हें बना कर शाम को उन्होंने अपने अफसर के सामने रख दिया।

दूसरे दिन ही उन्होंने देखा कि दफ्तर के सारे फोटोग्राफर उन से बात ही नहीं कर रहे हैं। अंत में वे एक फोटोग्राफर के घर गये और बोले, "आप लोगों के सहारे ही तो इस विभाग में आया हूं, पर आप लोग तो मुझ से बात तक नहीं करते। अगर विभाग में आने पर मुझ से त्रुटि हो गयी हो तो मैं अपना इस्तीफा दे दूं!" तब उन्हें बताया गया कि इस दफ्तर में कोई भी फोटोग्राफर एक दिन में तीन फोटो से अधिक बना कर नहीं दिखाता। यह भी बताया गया कि सारे फोटोग्राफर इतने कुशल हैं कि दो सौ से तीन सौ तक फोटो एक दिन में बना सकते हैं, परन्तु एक दिन में अफसर को तीन ही फोटो दिखाये जाते हैं। मेरे मित्र भी अब यही करते हैं। मैं ने पूछा, "अब तो मजे करते होंगे?"

वे बोले, "मजे तो तब रहें जब मैं और कोई कार्य कर सकूं। नियमों के अनुसार दफ्तर के समय में न तो मैं कोई पत्र पत्रिका पढ सकता हूं और न कोई लेखादि ही लिख सकता हूं, यहां तक कि किसी मित्र को पत्र भी नहीं लिख सकता।"

एक और मित्र हैं जो अनुवाद कार्य करते हैं। एक बार उन के दफ्तर में मैं उन से मिलने गया और देखा कि कमरे में आठ-दस व्यक्ति और थे जो अपनी अपनी मेजों पर बैठे काम कर रहे थे। मुझे अपने मित्र नहीं दिखायी दिये तो मैं ने एक व्यक्ति
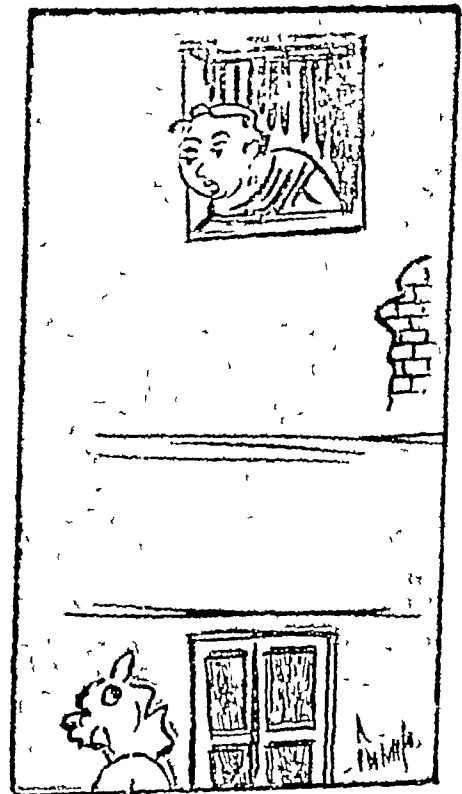
"सुबह-शाम उन से मिलना हो तो राशन की दुकान पर देख लिया करो।"

से उन के बारे में पूछा। उन्होंने अपनी अंगुली एक ओर कर दी। मैं ने देखा कि मित्र अपनी मेज पर बांहों में सिर दिये आराम से सो रहे थे। मैं ने झकझोर कर पूछा, "दफ्तर में यही करते रहते हो क्या?"

उस समय तो वे हंस दिये, पर बाद में बताया कि प्रति दिन प्रत्येक व्यक्ति को अनुवाद के लिए सिर्फ दो पृष्ठ दिये जाते हैं। मित्र कई पुस्तकों का अनुवाद कर चुके हैं। इसी योग्यता के बल पर उन की नियुक्ति इस विभाग में हुई थी। दो पृष्ठों का अनुवाद वे पंद्रह मिनट में कर लेते हैं। उन्होंने बताया कि दफ्तर के अन्य कर्मचारी भी काफी अच्छे अनुवादक हैं, परन्तु वे सब एक-एक पैराग्राफ करके गप्पें शुरू कर देते हैं और इस प्रकार पूरे दिन में दो-दो पृष्ठ अनुवाद करके घर चले जाते हैं।

मैं ने पूछा, "तुम्हारे दफ्तर में इस प्रकार सो जाने पर क्या अफसर नाराज नहीं होते?" मित्र ने बताया, "अफसर मुझे सोता हुआ कई बार देख गया है। मैं अपने दो पृष्ठ अनुवाद करके पन्द्रह मिनट बाद ही उन्हें दे जाता हूं। मेरे अनुवाद में प्रयत्न करके भी वे कभी कोई त्रुटि नहीं निकाल पाये। मैं ने उन से कहा भी था कि मेरे पास बाहर का अनुवाद-कार्य काफी रहता है, अगर अनुमति दें तो दफ्तर का कार्य निबटाने के पश्चात वह काम कर लिया करूं। पर उन्होंने मना कर दिया। यहां तक कि पत्र-पत्रिका पढ़ने की अनुमति भी नहीं दी।"

जब मित्र ने अफसर से और काम मांगा तब जवाब दिया गया, "यह कैसे हो सकता है कि अन्य अनुवादक दिन में दो पृष्ठ करें और आप से बीस-तीस पृष्ठ करवाये जायें? इस प्रकार तो ऊपर से जांच आरम्भ हो जायेगी कि अन्य अनुवादक क्यों इतना कम काम करते हैं?"

दफ्तरों की ही बात हो रही है, तो नयी दिल्ली के प्रदर्शनी मैदान में बसे दफ्तरों की बात याद आ जाती है। उस दिन वर्षा हो रही थी और मैं एक काफी-हाउस में बैठा था। एक मित्र दिखायी दिये। मैं ने पूछा, "आज क्या दफ्तर से छुट्टी ले रखी है?"

उन का उत्तर था, "आज वर्षा हो रही है न, इसलिए दफ्तर की छुट्टी हो गयी।" मेरे चेहरे पर आश्चर्य के चिह्न देख कर उन्होंने बताया कि प्रदर्शनी-मैदान में जितने सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी दफ्तर हैं, उन के यहां बिजली के तार पुराने हैं। वर्षा होने पर तारों के शार्ट होने और आग लगने का खतरा रहता है, सो बिजली नहीं जलायी जाती। दफ्तरों के अंदर इतना अंधेरा रहता है कि बिना प्रकाश के कोई काम नहीं हो पाता। सो जिस दिन वर्षा होती है, उस दिन वहां के सब दफ्तरों की छुट्टी हो जाती है।"

वहां अनेक दफ्तर हैं और बहुत-सारे कर्मचारी। सब कर्मचारियों के वेतन का जोड़ लगाने पर और

उन दफ्तरों के बिजली के तार बदलने में खर्च का हिसाब-किताब लगाने पर तो मेरा सिर ही भन्ना उठा।

और जिस दफ्तर में कार्य होता भी है, तो वहां कैसे रूप में होता है, इस की भी एक घटना बड़ी दिलचस्प है। एक विशेषज्ञ थे। उन जैसे विशेषज्ञ देश में इने-गिने ही हैं। एक राज्य से उन की सेवाओं की मांग आयी। उन्हें वहां भेज दिया गया।

मुख्यमंत्री तपाक से मिले और उन की योग्यता की प्रशंसा की। मुख्यमंत्री ने आश्वासन दिया कि उन की सेवाओं का उचित पुरस्कार दिया जायेगा। आदेश दिया गया कि विशेषज्ञ महोदय को कोई कष्ट न हो। उन्हें नगर के श्रेष्ठ होटल में ठहराया गया। बहुत से अफसर और चपरासी सेवा में रहे। तीन दिन बीते। पाचवें दिन विशेषज्ञ महोदय सुबह उठे और निश्चय किया कि आज भी कुछ काम न दिया गया तो वे मुख्यमत्री से स्वयं मिलेंगे। परन्तु समाचार-पत्र हाथ में लेते ही उन के जबड़े आश्चर्य में खुले रह गये। मोटी-मोटी सुर्खियों में छपा था कि इस राज्य में केन्द्र के एक विशेषज्ञ की देखरेख में काम आरंभ हो गया। एक-डेढ लाख रुपये की सामग्री पिछले तीन दिनों में ही उस योजना पर लगा दी गयी है।

इस प्रकार का समाचार रोज आता रहा और पन्द्रहवें दिन उन्हें पता चला कि किसी मत्री ने अच्छा-सा सर्टीफिकेट दे दिया। तब तक दस लाख रुपये की सामग्री उस योजना पर लग चुकी थी। ऐसे कार्य विशेषज्ञ महोदय को पसन्द नहीं और मुख्य-मत्री ने टक्कर लेने की भी सामर्थ्य नहीं, सो उन्होंने दिल्ली आते ही अपना त्यागपत्र दे दिया। अब वे एक प्राइवेट फर्म में कार्य करते हैं।

इस प्रकार की घटनाएं सरकारी दफ्तरों में आयेदिन होती रहती हैं। असलियत तो यह है कि अगर किसी दफ्तर में ऐसी घटनाए प्रति दिन न हों, तो अचभें की बात होनी चाहिये।

एक विदेशी विशेषज्ञ सरकार द्वारा भारी वेतन पर बुलवाया गया। उस ने कहा कि छह लाख रुपये की कीमत की मशीन एक दफ्तर में पडी रही, पर पेटिया नही खोली गयी; क्योंकि कोई भी अधिकारी अपने उत्तरदायित्व पर उसे खुलवाने को तैयार नही था। जब तक इस विशेषज्ञ ने आ कर मशीन खुलवायी, उस के अधिकांश पुरजों में जग लग चुकी थी।

विशेषज्ञ पहले अगरेजी फौज में भारतवर्ष में रह चुका था और उर्दू अच्छी जानता था। मेरे पूछने पर कि हम जाहिल हैं या काहिल, उस विशेषज्ञ ने कहा, "बोथ, यानी हम जाहिल भी हैं और काहिल भी—और दोनों ही जानबूझ कर।"

एक उत्साही सम्वाददाता से उस के सम्पादक ने कहा कि जहां एक शब्द से काम चल सकता हो वहां दो शब्द नहीं लिखने चाहियें। दूसरे दिन सम्वाददाता यह रिपोर्ट लिख कर लाया—

टंकी में पेट्रोल देखने के लिए मुस्तफा ने दियासलाई जलायी। पेट्रोल था। अवस्था पैंसठ।
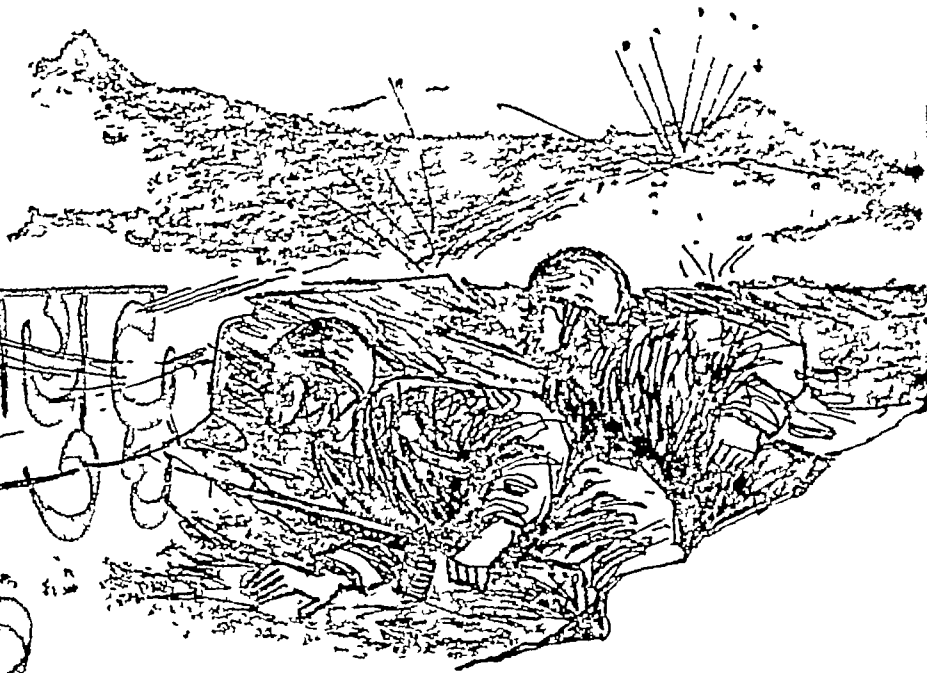
स्वदेश दीपक

ललित की मा बच्चों को कहानी सुना रही थी। ललित मेरे सामने सोफे पर अधलेटा-सा बैठा था। उस ने सिगरेट मुंह में लगायी, मैं उसे जलाने के लिए उठा पर उस ने हाथ के इशारे से मुझे रोक दिया। माचिस को मेज पर टिका कर उस ने तीली घिसी और सिगरेट सुलगा ली। फिर उस के चेहरे पर एक हलकी मुसकान आ गयी। "हाथ कट गया तो क्या है बेटे, एक हाथ से ही सारे काम कर सकता हूं।"

कंधे के पास से उस की कटी हुई बाहु को मैं काफी देर से देख रहा हूं लेकिन उस बारे में कुछ बात नहीं करना चाहता। उस में अब भी वही पुरानी, कालेज के दिनों वाली लापरवाही थी।

"अस्पताल में काफी तकलीफ रही होगी," मैं ने पूछा।

"तकलीफ कैसी?" कह कर उस ने पुराना जोरदार कहकहा लगाया। मा और बच्चे भी उस की ओर देखने लगे। फिर उन के चेहरों पर भी

मुस्कान आ गयी।

मैं ने भी सिगरेट सुलगा ली। पुराने दिनों की कैसी-कैसी बातें यादों के झरोखे से अचानक झांकने लगीं। ललित युद्ध से लौट आया है, लेकिन एक हाथ खो कर, चेहरे पर दो घाव ले कर और . . . और . . .

मेरी तंद्रा टूट जाती है। मां बच्चों को अभिमन्यु की कथा सुना रही है। कैसे अभिमन्यु को मां के गर्भ में ही चक्रव्यूह तोड़ने का ज्ञान हो जाता है।

मैं ललित के पास जा कर बैठ गया और उस के कंधे पर हाथ रख कर पूछा, "कुछ कहोगे नहीं ललित ?"

"आई हेट टु टाक आफ वार !"

फिर वह एकदम चुप हो गया। दूसरा सिगरेट सुलगाने के बाद फिर बोला, "मेजर शर्मा कहते थे कि वे रिटायर होने पर किसी हिल-स्टेशन पर फलों का बाग लगायेंगे। बट नाऊ ही इज डेड।" उस ने डेड शब्द कुछ इस तरह चबा कर बोला कि मैं कुछ दूर हट कर बैठ गया।

"तुम सोचते होगे कि मैं इसलिए

इस तरह की बातें कर रहा हूं कि मेरी बांह कट गयी है। नहीं, मैं दुखी इसलिए हूं कि फिर समय आने पर मोर्चे पर न जा सकूंगा। और तुम तो जानते ही हो कि युद्ध मेरे खून में है।''

मां की कहानी भी आगे बढ़ चुकी है। महाभारत का भयानक युद्ध शुरू हो चुका है। अर्जुन किसी दूसरी ओर लड़ने गया है और कौरवों ने चक्रव्यूह की रचना कर डाली। इसे तोड़ने का तरीका सिवा अभिमन्यु के और कोई नहीं जानता।

''वह शाम कैसी थी, तुम्हें क्या बताऊं,'' ललित अचानक मेरी ओर मुड़ कर बोला, ''नेफा के उस इलाके में शत्रु उस वक्त तक तीन हमले कर चुका था। अगले हमलों को रोकने के लिए हम केवल बीस आदमी बचे थे। मेजर शर्मा की टांग में गोली लग चुकी थी और बाकी लोगों की भी दशा ठीक न थी। मेजर शर्मा बता रहे थे, 'दुश्मन अब पूरी तैयारी से हमला करेगा, यह निश्चित है। उन्हें हमारी असली हालत का अंदाजा हो चुका है। पीछे से जब तक मदद नहीं आती, हमें दुश्मन को रोके रखना जरूरी है क्योंकि यही चौकी उन्हें मुख्य सड़क तक पहुंचने से रोके हुए है।' मेजर शर्मा अचानक चुप हो गये। उन्होंने एक हाथ से जख्मी टांग को दबाया।

'' 'एक और कपड़ा बांध दूं सर? दर्द तो कम होगा।'

'' 'नो, ठीक है।'

''मेजर ने मुस्करा कर पूछा, 'क्यों ललित, रिटायर होने के बाद तुम क्या करोगे!' मैं चौंक गया। मौत के मुंह में, और यह जानते हुए भी कि बचना असंभव है, यह आदमी आगे की जिंदगी के बारे में इतने आराम से बातें कर रहा है जैसे युद्ध का मैदान न हो कर कोई क्लब हो।

'' 'तुम हैरान हो ललित! पहली बार जंग देख रहे हो न इसीलिए। दूसरे महायुद्ध के मोरचे में जब मेरा मेजर ऐसी बातें करता था तो मैं भी हैरान होता था।' तभी मशीनगन चलने की आवाजें आने लगीं। सब ने अपनी-अपनी पोजीशन ले ली। हम ने भी जवाबी फायर किये। लेकिन इस का कोई फायदा नहीं था। दुश्मन के आदमी एक चट्टान के पीछे पोजीशन ले कर बैठे हुए थे। वे हम से ऊंचाई पर थे और यही उन को सब से बड़ा फायदा था। हम लोगों के जरा-सा सिर उठा कर निशाना लेने का मतलब था मृत्यु। यों भी बेकार गोलियां चलाने का मतलब था मौत क्योंकि हमारे कारतूस खत्म होने को थे।''

ललित ने सिगरेट जला कर एक लंबा कश लगाया। उस के शरीर का अंग-अंग तन गया था और आंखें मानो सामने की दीवार को भेद डाल रही थीं। उस की आंखों में आयी चमक को देख कर जैसे उन बीस जवानों की आंखें मेरे आगे सजीव हो उठीं।

''फिर क्या हुआ दादी मां,'' मेरा ध्यान बच्चे का सवाल सुन कर उस

की तरफ चला गया। ललित की मां कह रही थीं, "अभिमन्यु ने चक्र-व्यूह तोड़ डाला। कौरवों की सेना में हाहाकार मच गया। एक एक कर उस ने कई महारथियों को पछाड़ दिया . . . "

ललित ने आगे बोलना शुरू किया, "मेजर शर्मा ने हमें गोलिया चलाने से रोक दिया। उन्होंने गंभीर आवाज में कहा, 'कोई फायदा नहीं। तीन बार आमने-सामने की लड़ाई में मात खा कर अब दुश्मन खुले में नहीं आयेगा। जब तक इस चट्टान के पीछे उस की मशीनगन है, उन्हें सामने लाना असंभव है। एक ही रास्ता है, तुम लोग थोड़ी-थोड़ी देर बाद गोलिया चला कर उन का ध्यान इस ओर बनाये रखो। मैं घिसट कर उस चट्टान तक पहुंचता हूं।'

"मैं ने मेजर शर्मा की ओर गरदन घुमा कर देखा। उन की अगुलिया रायफल पर इस तरह कसी हुई थीं जैसे उस का ही हिस्सा हों। 'सर, आप की टाग जख्मी है। वहा तक घिसट कर पहुचना कठिन होगा। मैं जाऊगा,' और मैं आगे बढ़ने के लिए हिला।

" 'ठहरो, कैप्टिन ललित,' मेजर का चेहरा तन गया था।

"मैं फिर बोला, 'सर . . .'

" 'दिस इज माई आर्डर कैप्टन।'

"मेजर ने आगे बढना शुरू कर दिया। सब की आखें धीरे-धीरे छोटे होते जा रहे मेजर पर थीं। मेजर चट्टान के नजदीक पहुंच रहे थे। मैं जानता था कि वे एकदम चट्टान के बाजू में हो कर फायर करेंगे और सब ठीक हो जायेगा। रास्ते में एक पत्थर था और उसे पार करने के लिए मेजर को आधा खडा होना पड़ा। टाग जख्मी होने से उन के शरीर का सतुलन ठीक नहीं रहा और खड-खड की आवाज करता वह पत्थर नीचे लुढक गया। आवाज के साथ ही दुश्मन की कई गोलियां उन के शरीर को पार कर गयीं।

"मेरे दात भिच गये। अब सामने से जाना बेकार था। दुश्मन साव-धान हो चुका था और उसे अब धोखा देने का सवाल ही नहीं उठता था। मैं ने सब जवानों की ओर देखा। वे मेरे आर्डर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"नायक जसपालसिंह पर मेरी निगाहें टिक गयीं। बीस साल के इस छह फुट दो इच के जवान को देख कर तो एक बार मौत भी कतरा जाती। 'जस्सी, तुम पीछे से आधा मील का चक्कर काट कर उस चट्टान तक पहुंच सकते हो ?'

" 'हा, साहब,' वह खुशी से भर कर बोला।

" 'तुम पीछे से उस चट्टान तक पहुचो। कोशिश करो कि दुश्मन को गोलियों से भून सको। उस मशीनगन के पास चार-पांच आदमी होंगे। समझ गये न।'

" 'जी,' वह जाने के लिए उतावला हो रहा था।

" 'लेकिन उन से निपटने के बाद तुम सीधे इस तरफ भागोगे। दुश्मन के सिपाही सामने आयेंगे तो हम संभाल

लेंगे। तुम्हारा उन से कोई मतलब नही। तुम्हें कुछ नही होना चाहिये और न ही मरना चाहिये!'

"सैल्यूट कर वह चुपचाप पीछे की ओर सरक गया। दुश्मन की मशीनगन लगातार गोलियें उगलती जा रही थी। एक जवान ने जरा ऊपर उठ कर निशाना साधने की कोशिश की लेकिन इस कोशिश में उस के सिर के टुकडे-टुकडे हो कर उड गये। बाकी जवानों को मैं ने वही लेटे-लेटे थोडी-थोडी देर बाद फायर करने का आर्डर दिया। तभी दूर से राइफल चलने की आवाज आयी। जस्सी ने फायर करना शुरू कर दिया था। वह दुश्मन के सिर पर पहुंच चुका था। उस का लंबा-चौडा शरीर मुझे इतनी दूर से भी साफ दीख रहा था। दुश्मन पहले तो हैरान रह गया, फिर संभल कर उस ने मशीनगन का रुख पलट दिया। आसपास की चट्टानों के टुकड़े गोलिया लगने से उड रहे थे। बारूद के धमाकों के बीच जस्सी आगे बढ रहा था। मौत भी उस के दायें-बायें हो कर गुजर रही थी। जस्सी को जल्दी करनी चाहिये—मैं बड-बडाया। उस की राइफल फिर गरजी, और जस्सी ने ऊपर से छलांग लगा दी।

"बोले सो निहाल—उस के ये शब्द कानों में पड़े। उस अंधेरे में जस्सी की राइफल की संगीन तीन-चार बार कौंधी और बस। उस के कंधे पर गोली लग चुकी थी, फिर भी वह अपनी चौकी की तरफ तेजी से लौट पडा। तभी उस के आसपास दुश्मन की गोलियों की बरसात-सी आ गयी। 'जल्दी,' मैं चीखा। और जस्सी के कदम तेज हो गये। 'लेट कर आगे बढो!'

"दुश्मन की गोलिया उस के चारों ओर बरस रही थी। जस्सी ने दो बार राइफल सभाल कर उठने की कोशिश की। मैं पल भर में समझ गया कि वह पलट कर हमला करना चाहता है। 'नो, नो, यू फूल! रन, जल्दी!'

"जस्सी फिर पेट के बल आगे बढने लगा। हमारे और उस के बीच सिर्फ बीस गज का फासला रह गया था। 'जस्सी, जल्दी! तुम बिल-कुल ठीक हो?'

" 'जी साहब,' मैं ने उस की धीमी आवाज सुनी।

"लेकिन अब वह आगे नही बढ़ रहा था। उस की जांघ मे भी गोली लग चुकी थी। अचानक जस्सी उठ कर खडा हो गया। खून की धारियां देख कर दुश्मन भी जैसे अपनी जगह पर जम गया। जस्सी ने ऊंची आवाज में एक पंजाबी गाली दी और पलट कर दुश्मन पर झपट पडा। दुश्मन के कई आदमियों को मार कर उस का शरीर भी कटे वृक्ष की तरह नीचे गिर पडा।

"दुश्मन सामने आ चुका था। मैं ने आर्डर दिया, 'बिखर कर गोलियां चलाओ' चारों ओर से हमारे जवानों ने गोलिया चलानी शुरू कर दी। हम भी अपनी जगह से बाहर आ चुके थे। दुश्मन के लगभग

कत्ली आदमी रहे होंगे और हम थे केवल सत्रह।

"राइफलों की आवाज बंद होते ही मैं ने आर्डर दिया, 'चार्ज !'

"सिर नीचे झुकाये हुए मस्त बैलों की तरह झपट कर हम दुश्मन के बीच पहुंच गये। और पांच मिनट के बाद सब-कुछ शांत हो गया। गोलियां चलनी बंद हो चुकी थीं। तीन गोलियां मेरी जांघ में घुस चुकी थीं। एक बांह कहीं कट गयी थी। चेहरे की खाल भी दोनों तरफ से कट चुकी थी। मैं ने चारों ओर नजर दौड़ायी। एक जवान रेंग कर मेरे पास पहुंच रहा था। 'तुम ठीक हो मन्दिर ?'

" 'जी हां ! कमबख्तों ने जरा पसली छेद डाली है।'

" 'बाकी लोग ?'

" 'सब वीरगति पा गये।' "

ललित चुप हो गया। सिगरेट सुलगा कर फिर बोला, "इस के बाद की घटना मामूली है। हमें पीछे से मदद पहुंच गयी।"

मैं ने देखा कि उस के चेहरे पर वही कालेज के दिनों वाली नाजुक मुस-कान थी और आंखों में शरारत भरी हंसी। मैं उसे देखता ही रह गया।

मां की कहानी अभी तक चल रही थी। सब बच्चों ने चौंक कर पूछा, 'क्या ? अभिमन्यु मर गया ?'

"हां बेटा ! क्योंकि उसे चक्रव्यूह से निकलना नहीं आता था। उस के सारे शस्त्र टूट गये, फिर भी रथ का टूटा पहिया ले कर वह शत्रु पर टूट पड़ा। सात-सात महारथियों ने मिल कर अधर्म से उस की हत्या कर दी।"

"क्यों दादीजी, अभिमन्यु क्यों मरा ? वह तो बड़ा वीर था। हमारे अंकल तो इतने आदमियों को मार कर वापस आ गये," नन्हे पप्पू ने पूछा।

मां ने एक लंबी सांस ली और अंचल के छोर से आंखें पोंछते हुए बोली, "हां बेटा, मैं ने बताया था न कि जब अर्जुन चक्रव्यूह से बाहर निकलने का तरीका बता रहा था, उस समय अभिमन्यु की मां सुभद्रा को नींद आ गयी थी। इसलिए अभि-मन्यु मारा गया। पर मेरा ललित कैसे मरता ? सुभद्रा मां सो गयी थी लेकिन भारत मां तो कभी नहीं सोयी।"

१६वीं शताब्दी में मोरक्को में लोगों को अनिवार्य रूप से फौज में भरती होना पड़ता था। लोग इस जबरन भरती से बचने के लिए अपनी एक आंख फोड़ने लगे और नवजात शिशुओं की तो एक आंख फोड़ देने की परंपरा ही बन गयी। क्रुद्ध हो कर वहां के राजा ने हुक्म निकाला कि एक आंख वालों की भी एक सेना बनायी जाये। एक आंख वालों की सेना मोरक्को में लगभग ५० वर्षों तक कायम रही।

स्थिरचेता

ओ अनर्पित गीत की अनिमिष विहंगिनि
यह न सोचो आज निर्जन
और दिन से अधिक है सुनसान
मैं विभासित हूं, मुझे विश्वास में भर लो

तिमिर ने मदिरा उड़ेली है घनेरी
नग्न सोयी है निशा
वेणी खुली है
और नागिनियां हवा पर झूलती हैं
तुम दृगों में बंद कोई वंदना हो
बंद छंदों में चिरंतन सर्जना हो
सप्त स्वर की अर्चना का थाल सांसोंपर सजा है
नृत्यशीले
यह न सोचो आज बादल
और दिन से अधिक हैं भयमान
मैं प्रकाशित हूं, मुझे आकाश में भर लो

तुम समय की उंगलियों से गिन रही हो
एक तरु की छांह में कितने गगन हैं
एक नीली झील में कितने गगन हैं
और रुकती हो जहां तुम
वह अनागत के कमल-वन की शिखा है
पंख पर जिस के
तुम्हारे स्वप्न का रूपक लिखा है
तुम अदेखे अक्षरों से निकल कर
कहानी हुई आराधना हो
आग, आंसू, वज्र की
संचित शाश्वत साधना हो
एक रेखा है, तुम्हारा रथ वही है
शून्य रेखा है, तुम्हारा पथ वही है
यह न सोचो आज सागर
और दिन से अधिक है अनजान
मैं चकासित हूं, मुझे इतिहास में भर लो

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

एक और प्राइवेट बात
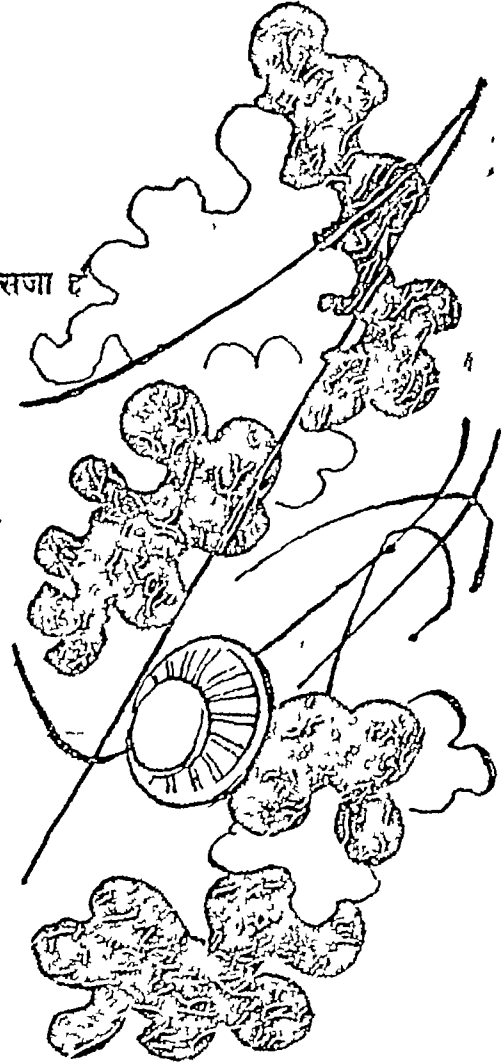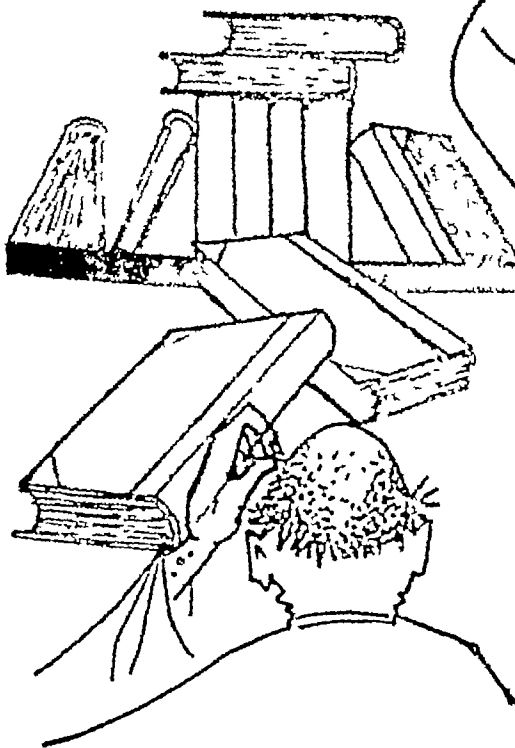
● केशवचन्द्र वर्मा

लेखक की मनोकामना पूरी होना हंसी-ठट्ठा नहीं है। घंटों बैठ कर मगज मार कर वह सिर्फ दस मोटी-मोटी किताबें लिख डाले, यही उस की चरम अभिलाषा नहीं रहती। उस की किताबों को हजार-दस हजार आदमी पढ लें, यह भी उस की मनोकामना नहीं रहती। उस की पुस्तकों के संस्करण निकलते ही बिक जायें, यह भी उसे पूरा संतोष नहीं देता। वह तो यह चाहता है कि वह चाहे केवल एक ही किताब लिखे, चाहे केवल एक ही कहानी लिखे, चाहे एक ही नाटक या एक ही कविता लिखे लेकिन उस कहानी, नाटक या कविता पर एक नहीं दस-पांच ग्रंथ दूसरों द्वारा लिखे जायें। उन में उस रचना के पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष ऐसे भूरि-भूरि दिखाये जायें, और हर विषय पर उस के जाने-माने विद्वानों (?) द्वारा लेख लिखवा कर ऐसे ढंग से प्रस्तुत किये जायें कि वही एकमात्र रचना संसार के साहित्य-कोश में चुपचाप घुस जाये। स्थिति ऐसी आ जानी चाहिये कि आगे चल कर चाहे मूल रचना लुप्त हो जाये तो भी उस के बारे में इतना कुछ लिखा रहे जिस से जनता को यह ज्ञात हो सके कि अपने देश का साहित्य दूसरे देशों की साहित्य- परंपरा में अडिग खड़ा है। मूल रचना तो अतंत: बेकार सिद्ध हो जाती है। उस की चर्चा बनाये रखने के लिए उस की यशगाथा ही पर्याप्त

हो जाती है। उस के अंतरतम की यही मनोकामना जब उस के जीवन-काल में ही फलने-फूलने लगती है तो उस का रोम-रोम सुखी हो जाता है। इसीलिए जो सही माने में लेखक हैं और जिन की उरा में पैठ है, वे अपनी मूल रचना को सदा गौण स्थान दे कर उस के विषय में लिखी हुई पुस्तकों और लेखों का ही स्वागत करते हैं।

प्राय. यह देखा गया है कि कई प्रतिभाशाली मूल रचनाकारों को इस तथ्य को न पहचान पाने के कारण अथवा इस के बारे में कोई निश्चित योजना न बना सकने के कारण, अर्थात एक समय के पश्चात अपने ऊपर या नीचे पुस्तकें अथवा लेख न पा कर —बड़ी ग्लानि होती है। फिर वे या तो किसी रोमांटिक पुल से कूद कर आत्महत्या की बात सोचने लगते हैं या प्रकाशक बन जाते हैं। ऐसे लेखक कुछ दिनों बाद अपनी बनी बनायी ग्रंथि को न तो खुद कह पाते हैं और न उस को किसी दूसरे से दुरुस्त करा पाते हैं। ऐसे लेखकों के मानसिक उद्धार के लिए प्रयाग में एक योजना बनायी गयी है जिस के अंतर्गत मूल लेखक कुछ दिनों के लिए अपने स्वस्थ विकारों को ध्यान में रखते हुए, अपनी रचना का कार्य रोक कर अपनी रचनाओं के ऊपर ग्रंथों का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार वह मूल रचना के छिपे हुए उन पहलुओं पर प्रकाश डाल सकता है जिन की जानकारी केवल उसे रहती है। लेखक चाहे तो मूल रचना के ऊपर लिखे ग्रंथों की एक पूरी सूची तैयार कर सकता है और चाहे तो केवल उस के एकाध टुकड़े तैयार करके अपनी गाथा प्रस्तुत कर सकता है। उन सभी ग्रंथों अथवा साहित्यिक टुकड़ों पर यदि मूल लेखक अपना नाम न देना चाहे तो उस की योजना के अंतर्गत एक स्वीकृत सूची से दूसरे नाम छांट कर दिये जा सकते हैं। इन नामों के लिए 'नाममात्र' का खर्च आयेगा। स्वीकृत सूची में से नाम छांटते समय खर्च का ध्यान रख कर ही मूल रचनाकार को 'नर-रत्न' पहचानना होगा। वर्तमान आलोचक और आलोचना-पद्धति के पतन को जिस प्रकार सामने रख कर यह योजना बनायी गयी है, उस से कोई भी मूल रचनाकार मामूली लागत और सहज परिश्रम से अपना उद्धार जिस प्रकार कर सकेगा, उस से एक दिन वह स्वयं चकित होगा। जो लोग इस योजना में भाग लेना चाहें उन्हें इस पत्रिका के संपादक के माध्यम से लिखना चाहिए।

सच बात तो यह है कि साइंस और साहित्य की कभी नहीं बन सकती। साइंस ने सारी दुनिया के लिए कुछ भी किया हो पर उस ने कुछ साहित्यकारों को मोटर, टेलीफोन, रेफ्रीजरेटर वगैरा दिलाने के सिवा और कुछ नहीं किया। साइंस चाहती तो यह कर सकती थी कि इधर साहित्यकार सोचे, उधर वह छपी हुई पुस्तक के रूप में घर-घर बंट जाये। न केवल बंट जाये बल्कि किसी तरकीब से जनता की चलती-फिरती आंखों के सामने जबरन घूम

ही में एक अद्भुत घटना घटा दी। कुछ दिन हुए जब एक खेमेदार चैन से अपने खेमे के नीचे ताने सो रहे थे, तभी उन के ऊपर से खेमा उठा और किसी दूसरे मेले में जा कर लग गया। उन के सिर पर जब बरसने लगी और जब उन्होंने भुलभुला कर आंख खोली, तो न कहीं खेमा था और न कहीं उस की छाया। खेमे की अस्थिरता का आभास वे केवल अपने ही संदर्भ में समझते थे। साइंस ने उन को देखते-देखते निर्वासित कर दिया। खेमा छूट जाने का तो शायद उतना दुख नहीं होता, लेकिन बगैर खेमे के वे 'साहित्यकार' भी रह पायेंगे या नहीं, यह जरूर एक तिलमिलाहट की स्थिति उत्पन्न करता है।

सभी लिखने-पढ़नेवालों के बीच साइंस की इस उपेक्षा के प्रति एक सक्रिय विद्रोह की बात इधर काफी दिनों से चल रही है। या तो साइंस साहित्यकारों के लिए कुछ करे या फिर साहित्यकार उस के खिलाफ जेहाद का नारा लगायें। एक तरफ साहित्यवालों ने तो साइंस की बुरी से बुरी चीज के ऊपर काव्य-रूपक तक लिखे और उधर साइंसवाले उस का खेमा तक पक्का नहीं करवा सकते। किसी ने सच ही कहा है कि साहित्यकार सब का होता है लेकिन उस का कोई नहीं होता।

एक सरकस के आकर्षण के विज्ञापनों में 'वाटरप्रूफ टेंट' का भी आकर्षण था। क्या साहित्यकार बंधु अच्छे और टिकाऊ खेमे के लिए सरकसवालों से बातचीत नहीं चला सकते? ●

न जाने जुम्मन का घोड़ा घास के साथ क्या खा गया था कि दिन दूना रात चौगुना फूलने लगा। वह इस कदर मोटा हो गया कि तांगे में उसे जोतना ही असंभव हो गया। जुम्मन घोड़े को एक हकीम के पास ले गया। हकीम ने घोड़े को दुबला करने के लिए एक पाउडर दिया और कहा कि एक बांस की नली में पाउडर रख कर घोड़े के मुंह में डाल कर फूंक मार देना, घोड़े का मोटापा कम हो जायेगा।

दो-तीन दिन बाद तीन-चार आदमी एक हड्डी-हड्डी निकले क्षीणकाय व्यक्ति को लाद कर हकीमजी के पास लाये। हकीम ने पूछा कि उसे क्या बीमारी है। क्षीणकाय व्यक्ति ने आंखें खोलीं और कराह कर बोला, "हकीमजी, मुझे नहीं पहचाना! मैं जुम्मन हूं।"

"जुम्मन! क्या हुआ तुझे?"

"हकीमजी, क्या बताऊं! मैं ने बांस की नली घोड़े के मुंह में रखी ही थी कि मुझ से पहले उस कमबख्त ने फूंक मार दी।"
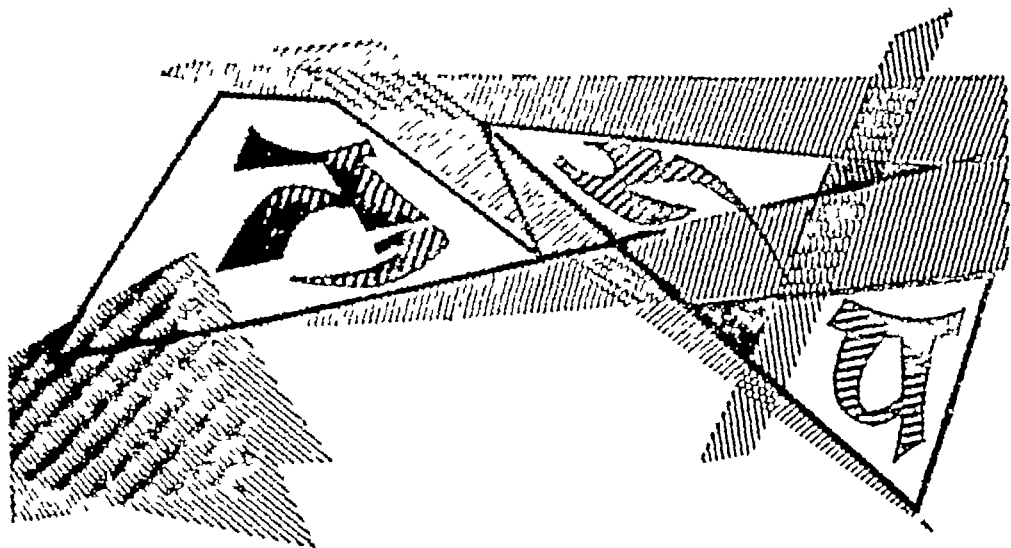
परकटी चिरैया

१९३३ में इलाहाबाद में द्विवेदी मेला लगाया गया। उस में एक कवि-सम्मेलन हुआ, जिस में सर्वश्री सुमित्रानंदन पंत, बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि कवियों ने भाग लिया। पंतजी इस से पहले बीमार पड़े थे और उन्होंने अपने लंबे-लंबे घुंघराले बाल कटवा दिये थे। इस से वे पहचाने नहीं जा रहे थे। सम्मेलन में बच्चन-जी ने उन पर बृज भाषा में एक कविता पढ़ी, जिस की अंतिम पंक्तियां थीं:

> बार कटवाएन सें पहले तो
> चीन्ह्यो नहीं
> चीन्ह्यो तो लाग जैसे परकटी
> चिरैया है

चर जायेंगी

इलाहाबाद की बात है। जाड़े के दिन थे। महाप्राण 'निराला' सुबह घूमते-घूमते उर्दू के प्रसिद्ध शायर श्री रघुपतिसहाय 'फिराक' के घर की ओर निकल गये। वहां उन्होंने देखा कि 'फिराक' अपने घर के बाहर लान में हरी रजाई ओढ़े हुए बैठे हैं। 'निराला'जी ने सड़क से ही आवाज लगायी, "जनाब, यह रजाई न ओढ़िये, गाय-भैंस आप को चर जायेंगी।"

तगड़े भक्त

स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी चिरगांव गये हुए थे। एक दिन राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने उन से पूछा, "क्या आप साइकिल पर चढ़ना जानते हैं?"

विद्यार्थीजी ने उत्तर दिया, "साइकिल पर चढ़ना तो नहीं जानता, फिर भी मुझे साइकिल पर बीस-बीस मील जाने का मौका मिला है।"

"सो कैसे?" गुप्तजी ने पूछा।

"बात यह है कि अब हम नेता

हो गये हैं," विद्यार्थीजी ने उत्तर दिया, "देहातों में सभाएं होती हैं और हमें वहां भाषण देने जाना पड़ता है। वहां जाने के लिए हम साइकिल के डंडे पर जम जाते हैं और तगड़े भक्त हमें तथा साइकिल दोनों को घसीट ले जाते हैं।"

डिग्री का नाच

१९५९ में सागर विश्वविद्यालय ने श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी को डी लिट की सम्मानित उपाधि प्रदान की। इस से अनेक लोग उन के नाम के पहले डाक्टर शब्द लगाने लगे। इसी का जिक्र करते हुए एक परिचित सज्जन ने चतुर्वेदीजी से कहा, "दादा, यह डिग्री भी खूब है जो नाम से पहले अपना स्थान चाहती है। एक साधारण से आदमी में भी इतना ज्ञान तो है कि बड़े आदमी से ऊपर नहीं बैठना चाहिये। लेकिन यह डिग्री है कि जिस नाम के कारण उस का परिचय बना, उसी के सिर पर बैठना चाहती है!"

चतुर्वेदीजी ने मुसकरा कर उत्तर दिया, "भैया, जिसे हम बीबी बना कर लाते हैं, वह भी अपना नाम पति के नाम से पहले लिखती है, फिर यह तो डिग्री ठहरी। जैसा नाच नचायेगी, वैसा नाचना होगा।"

मीठे भी, नमकीन भी

पंडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' एक बार अपने किसी शिष्य के लडके की बरात में गये। लडके के श्वसुर हलवाई थे और नाम मिट्ठनलाल था। विदाई के समय जब मिट्ठनलालजी 'सनेही'जी को प्रणाम करने आये, तब 'सनेही'जी ने उन की प्रशंसा में कहा :

संबंधी सुन्दर मिले
खुशदिल और हसीन भी
लाला मिट्ठनलाल हैं
मीठे भी, नमकीन भी

लथपथ

श्री सुमित्रानंदन पंत की एक पुस्तक 'गद्य पथ' प्रकाशित हुई। उस में प्रूफ की अनेक भूलें रह गयीं। पुस्तक के प्रकाशक महोदय जब पंतजी से मिलने आये, तो पंतजी ने प्रूफ की गलतियां बताते हुए मुसकरा कर उन से कहा, "भाई, मुझे पहले पता नहीं था, नहीं तो इस का नाम बदल कर 'लथपथ' रख देता।"

संकलनकर्ता—वीरेंद्रमोहन रतूड़ी

विंस्टन चर्चिल से किसी ने पूछा कि राजनीतिज्ञ का सब से बड़ा गुण क्या है? उन्होंने उत्तर दिया, "राजनीतिज्ञ में इतनी योग्यता होनी चाहिये कि वह बता सके कि कल, महीने भर बाद तथा साल भर बाद क्या होगा—और बाद में इस का भी स्पष्टीकरण दे सके कि वैसा क्यों नहीं हुआ।"

रविशंकर महाराज

नारायणचन्द्र भारती

महाराज रविशंकर व्यास का जन्म गुजरात के खेड़ा [illegible], ग्राम में अपने नाना के यहां २५, फरवरी, १८८४ को हुआ था। उन का पैतृक व्यवसाय पुरोहिताई था। महाराज के पिता श्री शिवराम व्यास महेमदाबाद तालुके के सरसवणी ग्राम के निवासी थे और प्राथमिक विद्यालय में अध्यापक थे। पिता उन्हें साथ ही रखते थे। अपने पिताजी के बारे में महाराज कहते हैं, "मुझ में आज जो कुछ भी है, वह पिताजी की ही देन है। कष्ट मालूम ही न पड़े, इस प्रकार काम करने की कला उन के पास थी।"

वर्षा के चार महीनों में जब पिता घर जाते, तभी माता का प्रेम बालक रविशंकर को मिलता था। अशिक्षित होते हुए भी महाराज की माता धार्मिक वृत्ति की थी। संवत १९६० में पिता और संवत १९६२ में माता का प्लेग से देहांत हो गया।

महाराज की स्कूली शिक्षा केवल सातवीं कक्षा तक हुई किन्तु अनुभव के विश्वविद्यालय में वे किसी स्नातक या आचार्य से कम नहीं हैं। बचपन से ही साहस की और अन्याय का प्रतिकार करने की वृत्तियां उन में थीं। बाढ़वाली या मगरमच्छों से भरी नदी को पार करके डूबतों को बचाना जैसे काम करने की भावना उन में किशोरावस्था से ही थी। महामारी के समय उन्होंने साथियों के साथ मृतकों की अंतिम क्रिया करने का काम किया।

संवत १९६० में वे तत्कालीन प्रसिद्ध देशी नाटक कम्पनी के नाटककार छोटालाल कवि के सम्पर्क में आये। छोटालाल ने उन के अन्दर राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत की।

वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण भी उन्होंने ही सिखाया। छोटालाल के सपर्क से उन पर आर्यसमाज का प्रभाव भी पड़ा।

एक वार कोई शंकराचार्य महाराज सरसवणी पधारे। वहा धर्मशाला में व्याख्यान देते हुए उन्होंने पूछा, "यहा कोई आर्यसमाजी भी है?" युवक रविशंकर खडे हो गये और कहा, "जी, मैं हूं।" यह सुनते ही स्वामीजी क्रुद्ध हो गये और सनातन-धर्म के विनाशकों में होने के कारण उन्हें धर्मशाला से निकालने का हुक्म दिया। इस पर वे वोले, "देखता हू इस धर्मशाला में से मुझे निकालने वाला कौन है? धर्मशाला में मेरा भी भाग है।" इस प्रकार अन्याय के विरुद्ध लडने की भावना उन में उत्तरोत्तर विकसित होती गयी।

१९१७ ई० में स्वर्गीय मोहनलाल पड्या उन्हें गांधीजी के दर्शन कराने को चरच आश्रम अहमदावाद ले गये। गांधीजी के आचार-व्यवहार से रविशंकर महाराज वहुत प्रभावित हुए और उन के अनुयायी वन गये।

१९१८ ई० में उन के गाव में नित्यानंदजी नामक एक आर्यसमाजी संन्यासी आये। उन्होंने उन्हें गृहस्थ जीवन में उच्च मार्ग अपनाने और समाज रूपी विशाल घर वनाने की प्रेरणा दी।

आर्यसमाज के सम्पर्क में आने पर उन में यजमानवृत्ति (पुरोहिताई) से घृणा हो गयी। फलस्वरूप वे खेती से जीवन निर्वाह करने लगे। साथ ही समाज सेवा का कार्य भी चालू रखा।

१९१९ ई० में सरकार द्वारा अवैध घोषित गांधीजी की पुस्तक 'हिन्द-स्वराज्य' को खेडा जिले में प्रचारित करने का दायित्व उन्होंने ग्रहण किया और उसे सफलतापूर्वक पूरा भी किया। उन की वेश-भूषा थी—सिर पर गोल पगडी, धोती, कुरता और कोट। कन्धे पर खेस और हाथ में लाठी लिये वे गाव-गाव घूमते थे। गावों में वे 'स्वराजवाला' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ज्यों-ज्यों गांधीजी से उन का परिचय वढा, त्यों-त्यों उन के व्यवहार और वेश में भी परिवर्तन आता गया। पहले वे मिल के कपड़े पहनते थे। वाद में वे खादी पहनने लगे और अन्त में अपने हाथ से कते सूत की खादी पहनने लगे। कोट और पगडी का स्थान कुरते और सफेद टोपी ने ले लिया। जूता चोरी हो जाने के वाद उन्होंने जूता पहनना ही छोड़ दिया। स्वदेशी के आग्रह के कारण चीनी का भी सदा के लिए उन्होंने त्याग कर दिया, क्योंकि उस के निर्माण में विदेशी रसायनों का प्रयोग होता था।

गांधीजी ने तिलक स्मारक में एक करोड़ रुपये एकत्र करने, वीस लाख चरखे चालू करने और सरकारी स्कूल पदवियों का वहिष्कार करने का कार्यक्रम वनाया। महेमदावाद तालुक से महाराज रविशंकर ने वीस-हजार रुपये एकत्र किये। उस समय अनेक लोगों ने अपनी सम्पत्ति कांग्रेस को दे दी थी, अत उन्होंने भी अपनी सम्पत्ति देश को अर्पित करने का प्रस्ताव पत्नी सूरजवा के

सामने रखा। उन के अनमनेपन को देख कर महाराज ने कह दिया "आज से जमीन और सम्पत्ति गृहस्थी को मैं देता था।" इस प्रकार उन्होंने सदा के लिए गृहस्थी से संबंध तोड़ दिया।

१९२२ ई० में जब असहयोग आन्दोलन हुआ, तब महाराज ने सुणाव में एक राष्ट्रीय पाठशाला खोली। एक दिन रात को जब वे अपने गांव की ओर जा रहे थे तो मार्ग में डाकू मिले। डाकुओं ने पूछा, "कौन है?" उन्होंने कहा, "मैं भी एक डाकू हूं।" उन्होंने डाकुओं से अंग्रेज सरकार के विरुद्ध गांधीजी द्वारा डाले हुए डाके की बातें कीं। प्रभावित हो कर डाकुओं ने गांधीजी से मिलने की इच्छा प्रकट की। महाराज ने भेंट कराने का आश्वासन दे कर विदाई ली। इन्हीं डाकुओं में से ५५ वर्ष की सजा पाने वाला मोती डाकू छूटने के बाद आज महाराज की प्रेरणा से खेती करता है, भजन गाता है और लोगों से शराब का दुर्व्यसन छुड़वाता है।

चौरीचौरा काड के बाद जब गाधी जी को छह वर्ष की सजा हुई तो जेल जाने से पहले महाराज ने उन से मिल कर डाकुओं और जरायम-पेशा लोगों की चर्चा की। गाधीजी ने उन्हें उन लोगों की सेवा करने का आदेश दिया। तब से उन्होंने बारैया और पाटनवाडिया जाति की सेवा करने का सकल्प किया।

एक दिन वड़ोदा राज्य के वटादरा गांव के मुखिया के आग्रह से वे रात में उस के यहां रुके। वहां रोज रात को पाटनवाडिया जाति के स्त्री-पुरुषों को हाजिरी देनी पडती थी। स्त्रियों की आवाज में फर्क पा कर मुखिया ने एक-एक करके मुंह दिखा कर जाने के लिए कहा। पाटनवाडिया युवतियां 'खी-खी' करके हंसते हुए गुजरने लगीं। महाराज को यह असह्य हो गया। उसी रात वे उन के मुहल्ले में चले गये और उन से पूछा कि इस तरह की हाजिरी देते तुम्हें शर्म नहीं आती? उन के उपदेश से प्रभावित हो कर उन लोगों ने यह प्रथा छुड़वाने की विनती की। महाराज ने कहा, "मैं तुम्हारी हाजिरी छुड़वाने का प्रयत्न करूंगा। लेकिन तुम्हें भी अपराध न करने की प्रतिज्ञा करनी होगी।" लोगों ने उन के पैर पकड़ कर प्रतिज्ञा की। अधिकतर वे जयरामपेशा लोगों की झोंपड़ियों में ही ठहरते। मीलों की यात्रा के बाद थकान से चूर हो कर टूटी-फूटी खाट या जमीन में फटा-पुराना कपडा बिछाकर सोने में और नमक डली सादी खिचड़ी बना कर खाने में उन्हें बहुत आनद आता। उन लोगों को भी महाराज अपने कुटुम्बी लगते। महाराज का कथन है, "१९२३ ई० से १९२९ ई० तक के समय को मैं जीवन का उन्नति-काल मानता हूं।"

सामाजिक कार्यों के साथ वे राजनीतिक आन्दोलनों में भी सक्रिय भाग लेते थे। १९२३ ई० के नागपुर झंडा-सत्याग्रह में, बोरसद और खेड़ा के लगानबदी आन्दोलन में, १९३०-३२ ई० के नमक-सत्याग्रह में, १९४२

ई० के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आदि में उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिक के रूप में भाग लिया और जेल-यात्राएं की। जेल में भी वे अपने आचार-विचार और पवित्र-जीवन से अनेक को प्रेरणा देते थे। जेल-जीवन में ही उन्होंने स्वाध्याय किया। संस्कृत का ज्ञान उन्होंने जेल में ही बढ़ाया।

स्वतत्रता के बाद और गाधीजी के निर्वाण के बाद देश के विकास की उपाय की खोज में महाराज चीन भी गये। इस यात्रा का वर्णन धारावाहिक रूप से डायरी-शैली में दैनिक 'हिन्दुस्तान' में छप चुका है।

१९५३ ई० में महाराज विनोबाजी से मिलने चांडील गये। तब से भूदान-यज्ञ में हजारों एकड भूमि प्राप्त करके वे भूमिहीनों को बाट चुके हैं। १९५५ ई० में जगन्नाथपुरी के अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन के वे सभापति चुने गये।

पिछले बारह-तेरह वर्ष से गुजरात में प्रति वर्ष तीन या चार दंत-नेत्र-यज्ञों का आयोजन करने वाली 'गुजरात दंत-नेत्र यज्ञ समिति' के महाराज अध्यक्ष हैं।

आज उन की अवस्था ८१ वर्ष की है। अब भी वे नौजवानों की तरह काम करते हैं। कहीं भी बैठे हों उन का चरखा चलता रहता है। जहा तक हो सकता है वे अपना थैला तक दूसरों से उठवाने और अपने कपडे धुलवाने का काम भी नही कराते। आज भी तीन बजे उठ कर सात बजे तक गीता, उपनिषद आदि का पारायण करते हैं। साल में पांच या छह थान के बराबर सूत कातते हैं, किन्तु अपने व्यवहार के लिए वे एक ही थान रखते हैं। जब तक कपडा पूर्ण रूप से फट न जाये, तब तक उस का उपयोग करते हैं। देश-हित की दृष्टि से चीन का आक्रमण होने के पश्चात महाराज नेफा-प्रदेश का भी भ्रमण कर आये हैं।

महाराज की जनसेवा के फलस्वरूप १ मई, १९६० को गुजरात राज्य का उद्घाटन उन के कर-कमलों से कराया गया। इस अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "आज प्रजा पैसे के पीछे क्यों दौड रही है? जितना अधिक मिले उतना ही कम क्यों पड़ रहा है? उस का झुकाव संग्रह और अधिकाधिक सुखोपभोग की ओर क्यों है? इस वृत्ति को रोकने के लिए चीन की तरह इतने कपड़े पहनो, इस प्रकार व्यवहार करो आदि आदेश भले ही न दें, किन्तु अपने जीवन में सादगी और मितव्ययिता का तत्व अपना कर प्रजा का मार्ग-दर्शन तो कर ही सकते हैं।"

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उन के प्रबल प्रेम का उदाहरण इस संस्मरण से प्रत्यक्ष है। कवीन्द्र रवीन्द्र से भेंट करने जब वे शान्तिनिकेतन गये, तो कविवर ने उन से अंगरेजी में बातचीत शुरू की। महाराज ने तुरंत कहा, "मैं अंगरेजी नहीं जानता। हिन्दी या बंगला में बोलिये।"

पीले चावल द्वार पर

छोड़ गया है समय [illegible] मेरा नाम पुकार कर
पीले चावल दवार पर

सुमुखे ! उठो संवारो कुंतल
आंगन नीचे नयी है धूप
मांड गया रांगोली रश्मिपात
आज कल्पना के अनुरूप
उत्सव की सज वेदी कन्या यौवन के त्योहार पर
वय के वंदनवार पर
पीले चावल दवार पर

सुमुखे ! राजहंस अवसर सा
केवल पग पटाता एक
शोणित से लिख शपथ-पत्र तुम
करो मोतियों से अभिषेक
लौट अनाहत मत जाने दो क्षण के पंख पसार कर
अपना नेह बिसार कर
पीले चावल दवार पर

सुमुखे ! अब हस्ताक्षर कर दो
छोड़ो भी अंतर का दवंदव
विद्रोही घोषणा बने यह
संबंधों वाला अनुबंध
हल्दी-भरी हथेली थापो परम्परा अनुदार पर
नियमों की दीवार पर
पीले चावल दवार पर

सुमुखे ! मैं हथकड़ियां तोड़ूं
बल दो मुझे कलाई थाम
न्यायाधीश विवेक हमारा
उसे कृतज्ञतापूर्ण प्रणाम
उत्तरीय पहनो विवाह का चीवर जीर्ण उतार कर
तन मन के संस्कार पर
पीले चावल दवार पर

-- चन्द्रसेन 'विराट' --

यूगोस्लाव कहानी

पड़ोस में कोई काफी बना रहा है। उस की गंध धूप में चमकते, गर्द और टेढ़े-मेढ़े आंगनों में फैलती जा रही है, जहां धीरे-धीरे सुबह की चहल-

पहल शुरू हो गयी है। देर से आने वाली एक दो दूध-गाडियां हमारी खिड़की के नीचे सड़क पर खड़खड़ाती चली जा रही हैं, जिन से उड़ता गर्द-गुबार मकानों की निचली बेडौल छतों पर बैठ रहा है।
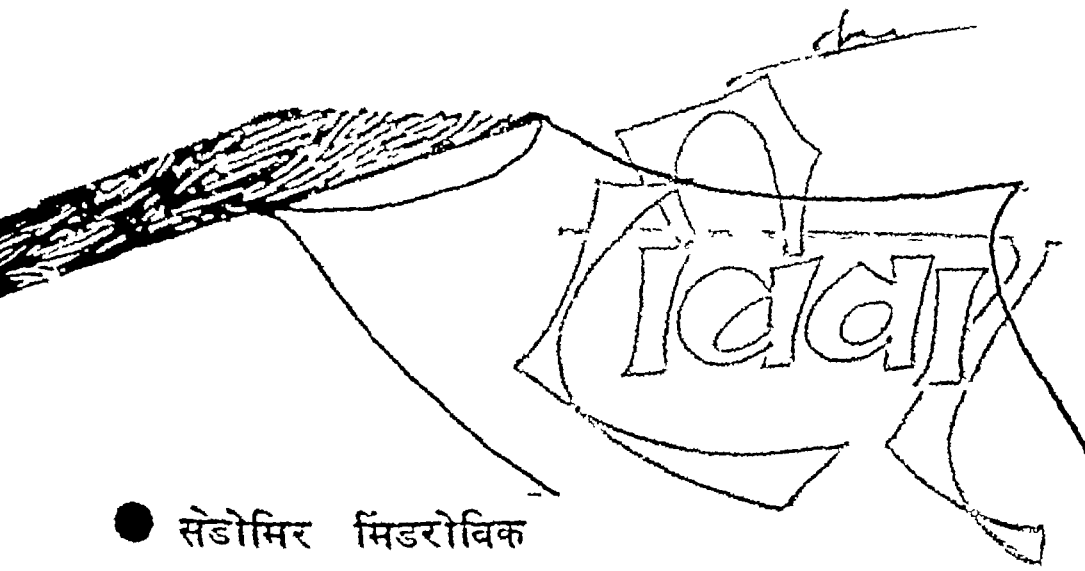
● सेडोमिर मिडरोविक

अब तो सभी फ्लैटों की खिड़कियां और दरवाजे खोल दिये गये हैं। सड़कों की धूल कमरों में घुस रही है और उघड़े हुए, भद्दे फर्नीचर, दीवार और चित्रों पर जमती जा रही है। मेरे पिता का पुराना, मटमैला तथा मक्खियों से गंदा किया हुआ फोटो भी, जिसे हमें बरसों से अपने साथ एक फ्लैट से दूसरे फ्लैट में ले जाना पड़ता है, धूल से अट गया है।

पड़ोस के दालान में, जहां पाजा रहता है, ग्रामोफोन पर एक लोकप्रिय रिकार्ड बजना शुरू होता है, किन्तु वह इतनी तेजी से और झटकों के साथ बजता है मानो कोई बाजे का गला घोंट रहा हो। पुराना, जंग खाया साउंड-बाक्स लरजता हुआ किसी तरह आवाज पैदा करने की कोशिश करता है, लेकिन जहां रिकार्ड चटका हुआ है, सुई अटक जाती है और फिर वही कड़ी बार-बार बजती रहती है—ओ मेरे प्रियतम . ओ मेरे प्रियतम . ओ मेरे प्रियतम।

आज रविवार है।

मैं लेटा हुआ, खुली-खुली आंखों से नीची, काली छत को निहार रहा हूं। पाजा कल रसभरियों के बारे में क्या कह रहा था? कितनी बार मैं ने डैन्यूब नदी का किनारा दूर तक छान मारा है, पर रसभरियों का नामोनिशान तक नहीं मिला। लेकिन वह कहता है कि उसे एक जगह मालूम है . . शायद वह मजाक कर रहा हो। रसभरिया . . लेकिन नैट पिकरटन उपन्यास की सब से ताजी प्रति खरीदने के लिए एक दीनार कैसे हाथ आये? संभव है मकान-मालिक आज किसी काम पर मुझे दौड़ा दे और एक दीनार मुझे मिल जाये। और पाजा पर भी तो मेरा आधा दीनार बाकी है . आज हम रसभरियां तोड़ने जा रहे हैं। अगर उस ने रसभरियों वाली जगह मुझे दिखा दी तो मैं उस से कह दूंगा कि उसे मेरा कर्जा चुकाने की जरूरत नहीं।

मेरी मां एक हाथ में लकड़ी का गट्ठर लिये कमरे में दाखिल होती

है। उस के दूसरे हाथ में बरतन है। वह चूल्हे पर झुक कर आग जलाती है और फूंकने में जुट जाती है। उस के सिर पर साफ लाल रूमाल बधा है। न जाने वह कब की उठी हुई है। उस का चेहरा शांत और अच्छी तरह धुला हुआ है। अपनी बडी-बडी साफ, नीली आखों से वह मेरी ओर देखती है।

शायद उस के पास एक दीनार हो और वह मुझे दे दे ? कल दिन भर वह लेडी डाक्टर के घर कपडे धोती रही है। इस के लिए कुछ न कुछ तो उसे मिला ही होगा। अगर उस जगह काफी रसभरियां मिल गयी तो मैं मा के लिए लेता आऊंगा।

"आज तो रविवार है मां ! आज काम पर तो नहीं जा रही हो तुम ?"

"हा, आज मैं काम पर नही जाऊगी। लेकिन तू कितने दिन चढे तक सोया है। चल उठ, दूध अब उबलने ही वाला है।"

"मां, कल तुम ने लेडी डाक्टर के यहा काम किया था ?"

"हां।"

"और आज काम पर नहीं जाओगी ?"

"हा।"

"पाजा कहता है कि उस ने एक ऐसी जगह मालूम की है, जहा रस-भरियां लदी हैं। तुम्हें रसभरिया पसद है ?"

"हा, अगर पकी हुई हों तो।"

"तब तुम्हारे लिए कुछ लेता आऊगा। मैं पाजा के साथ उन्हें तोडने जा रहा हूं। मेरे लौटने तक घर पर ही रहोगी न ?"

"हा, घर पर ही रहूंगी। क्यो ?"

"इसलिए कि तुम घर पर तो कभी रहती ही नही। कल रात भी कितनी देर तक तुम्हारे इन्तजार में जागता रहा — फिर नींद आ गयी। तुम हमेशा कस्बे में चली जाती हो। कभी तो घर में देर तक रहा करो। मकान-मालकिन को देखो, कभी घर से निकलती तक नही।"

अब मा ने मेरे पलग पर बैठ कर मेरा सिर प्यार से अपने हाथों मे ले लिया है। "चल, अब नाश्ता कर ले। देख पाजा कब का उठ बैठा है और अब तो वह बाजार से भी लौट रहा है।" मैं कमीज पहनता हूं।

"उतार यह कमीज। घर की सभी मैली चीजों को मुझे धोना है। कपडों का ढेर इकट्ठा हो गया है।"

मैं एक धुली हुई पुरानी कमीज पहन लेता हू, जिस में एक दर्जन पैबद लगे हैं।

"मा, मुझे एक दीनार चाहिये . मैं जल्दी लौट आऊगा और घर के सामने झाडू भी लगा दूंगा।"

मा के हाथ में दीनार खडक रहे हैं। वह एक मेरी तरफ बढा देती है। दमकते चेहरे से उसे ले कर मैं अपनी जेब में रख लेता हूं।

इस समय तक सभी मकानों में कामकाज शुरू हो गया है। डाकिये की लडकी मिजा ऊंचे स्वर में गीत गा रही है। मकान-मालकिन की नयी नौकरानी कालीन झाड रही है। मेहनत से उस का चेहरा लाल हो गया है, क्योंकि कालीन बडे और भारी

है। कालीन झाड़ने की आवाज मिला के दर्दभरे गीत में मिल जाती है।

मां कपड़े धोने का टब घर के सामने धूप में उठा ले गयी है। मैं फाटक पर खड़ा हूं। सामने गली है, जिस पर घनी घास उगी हुई है। सच में घास्ते हम डैन्यूब के किनारे जायेंगे।

"पाजा, तू तैयार हो गया? आओ चलें।"

"हां, चलो चलें," पाजा बाड़े के उस पार से मुझ से कहता है।

"पाजा, मां काम पर नहीं जा रही। उन्होंने एक दीनार भी मुझे दिया है। क्या वहां खूब सारी रसभरियां हैं?"

"हां, बेहद हैं। किसी को भी उस जगह का पता नहीं है। सिर्फ मैं जानता हूं। और तुम भी किसी को न बताना।"

हम नदी की ओर जाने वाली आखिरी गली से बाहर निकलते हैं। हमारे सामने बहती डैन्यूब नदी से आने वाली हवा हमें अपनी ओर खींचती और मस्त बनाती है।

"मां, मैं रसभरियां ले आया। कितनी ढेर-सारी! खा कर देखो। कुछ खट्टी भले ही निकलें, लेकिन बाकी तो मीठी हैं।"

दोपहर हो गयी है। आंगन के बीचोंबीच आग जल रही है। उस पर एक बड़ी देग रखी है, जिस में कपड़े धोने के लिए पानी गरम हो रहा है। वह उबलने भी लगा। कल मैं ने टाल के पास से जो लकड़ियां बीनी थीं, वे सब खत्म हो चुकी हैं।

"मां, चखो न रसभरियां।"

"तू कहां था इतनी देर से? थोड़ा पानी और लाने के लिए मैं तेरी राह देख रही थी। बाल्टियां ढोते-ढोते मेरी तो बांहें टूट गयीं। और मुझे चूल्हे पर चढ़े खाने को भी देखना है।" थकान से मां का चेहरा लाल और विकृत हो गया है। उस की आंखें पहले से नीली और अजनबी-सी लग रही हैं। मैं देर तक और उलझन में उस की आंखों की ओर देखता रहता हूं, तब मुझे पता चलता है कि वे नीली नहीं, मेहनत और थकान से लाल हो गयी हैं।

"अच्छा, ये रसभरियां चखती हूं . . . तू अब दौड़ कर जल्दी से डबलरोटी ले आ, नहीं तो खत्म हो जायेगी। अरे, तेरे तो सारे शरीर में झाड़ियों की खरोंच लगी है। पैरों पर लगे खून के दाग धो डाल। इस तरह उन्हें खुजला मत। जा, जल्दी, रोटी ला पहले।"

हमारे डबलरोटीवाले ने सारी रोटियां बेच डालीं। मैं दूसरे के पास दौड़ता हूं, लेकिन उस की दूकान बंद हो चुकी है। तीसरी दूकान पर आधी रोटी मुझे मिलती है, जो बासी है।

मां टब से निकाली लादी एक तख्ते पर रख कर देग की ओर ले जा रही है। गरम पानी में रहने के कारण उस के हाथ लाल हो रहे हैं। वह नंगे-पांव है। उस के भीगे हुए पैरों पर उभरी नीली नसें साफ दिखायी पड़ती हैं, जिन में सख्त गांठें भी हैं।

"आ, खाना खा ले। बडी भूख लगी होगी," आग में और ईंधन डालते हुए वह कहती है। मा जल्दी-जल्दी खाना खाती है, जैसे मैं खाता हूं। वह खुले दरवाजे में से टंग में उबलते कपडों की ओर देखती है। हम दोनों को साथ बैठ कर खाना खाये कितने दिन हो गये। मेरी प्लेट में खाना रखती ही जाती है, जिस से वह भरी रहती है।

"मा, जब तुम काम पर नही जाती तो कितना अच्छा लगता है। जब मैं बडा हो जाऊगा तो जगल की रखवाली करनेवाला बनूगा। हम लोग एक बड़े जंगल में रहेंगे और तुम्हें कस्बे में जाने की कभी जरूरत न पडेगी।" वह मेरी प्लेट में कुछ और खाना रखती और खामोश रहती है। गरम प्लेट से उठती हुई भाप के कारण उस की आंखें धुधला-सी गयी हैं।

"मां, वहा पर और भी ढेर-सी रसभरिया हैं। परसों फिर हम वहां जा रहे हैं। तब तक वे पक भी जायेंगी। लेकिन तुम्हें पसद नही हैं रसभरियां, बस ऐसे ही कह दिया कि अच्छी लगती हैं।"

"नहीं, मुझे सचमुच अच्छी लगती हैं। जरा ठहर कर और खाऊंगी।"

"मा जानती हो, नैट पिकरटन (उपन्यास का नायक) आखिर में हमेशा जीतता है। जब-जब तुम्हें यह लगता है कि अब वह फस गया है और मौत के अलावा कोई रास्ता नहीं है, वह बच जाता है। तुम देखना, चाइनाटाउन में भी वह जीता निकल आयेगा। उस की नयी किताब आ गयी है—नाम है 'चाइना टाउन में अपराध'। जहा कहीं भी पिंकरटन जाता है वह अपने पीछे खडिया के निशान छोड जाता है। जब उस के शत्रु उसे मारना चाहते हैं तो उस के सहायक उन निशानों को देखते हुए पहुंच जाते हैं और अतिम क्षण में उसे बचा लेते हैं। एक बार वह इतनी जल्दी में था कि अपने साथ काफी खडिया लेना भूल गया . . ."

वह उठ कर बोली, "अच्छा, अब भले लड़के की तरह एक गिलास पानी ले आ। नल थोड़ा चलने देना, ताकि पानी और ठडा निकले। फिर ठडे पानी से टब भर देना क्योंकि अब मैं कपडो को धोने वाली हू।"

अब चारों ओर खामोशी छा गयी है। लकडहारे कबल ले कर अपनी झोपडियों के बाहर निकल आये हैं और खुले में सो रहे हैं। इटालियन मिठाईवाला काम पर जा रहा है। मिजा अपनी बिल्ली को गोद में बिठाये मोजा बुन रही है। मां आगन में डोरी बांध कर उस पर कपडे फैला रही है। गली में एक बैलगाडी चू-चू कर रही है, जैसे अपनी जगह से बिलकुल हिल न रही हो।

मैं कुछ देर धूप में अनिश्चित-सा खडा रहता हूं। फिर धीरे से गली में निकल जाता हूं। मैं पीछे मुड कर देखता हूं। आंगन में डोरी पर सफेद और रग-बिरगे कपड़े फैले हैं। मैं मां को आगन में मेज निकालते देखता हूं। उस के हाथ में रगडने के लिए एक ब्रुश है।

मैं ने लालटेन धीमी कर दी है। दीवार के चित्र पर अंधेरा छा गया है। पिताजी का फोटोग्राफ भी साफ दिखायी नहीं पड़ता। पर्दा रगड़ कर साफ कर दिया गया है।

एक छोटी, खुली खिड़की ने अपने में मन प्रवेश करती है—ठंडी, अंधेरी और बयार। १०१६ में ऐसी ही एक रात मा ने मेरी आंखों में झांकते हुए कहा था, "आज तू चिनार्जिन हो गया बेटा!" बहुत दिन बाद मुझे ये शब्द आज फिर याद आये।

मां लालटेन के पास बैठी कुछ सी रही है—बिलकुल मौन। उस की पीठ पर कूबड़ निकला हुआ है। सिर्फ उस के हाथ चल रहे हैं। तेज और सधे हाथों से वह सुई चला रही है। उस की निगाह अपने काम पर ही जमी हुई है। उस की आखें मुर्दा-सी लगती हैं। मेरी आखें भी धीरे-धीरे झपकती जा रही हैं। लालटेन की मद लौ थरथरा रही है। उस के साथ-साथ दीवार पर पड़ती छायाएं भी काप रही हैं—वे कभी बड़ी होतीं और कभी छोटी। गली से अकॉर्डियन का दबा-दबा स्वर आ रहा है। पहले वह काफी ऊंचा होता है, फिर धीमा और कोमल होता जाता है।

"मां, आज तो तुम काम पर नहीं गयीं, लेकिन कल तो जाओगी ही!"

"हां।"

मैं खिड़की के बाहर देर तक अंधेरे में देखता रहता हूं। मेरी आखों में अंधेरा भर गया है। शरीर की थकान धीरे-धीरे दूर हो रही है। मुझे नींद आने लगी है और पलक भारी होते जा रहे हैं।

मा के हाथ की सुई अब बहुत बड़े आकार की हो गयी है। उस के कपड़े की सीवन भी बढ़ती चली गयी है—यहां तक कि वह खिड़की से बाहर निकल गयी है और अंधेरी रात में फैलते-फैलते दुनिया के चारों ओर लिपट गयी है।

दीवार पर का झील का चित्र बहुत दूर एक बिंदु-सा नजर आता है।

घास और घनी हो गयी है।

मा!

मैं लंबी हरी घास में धस गया हूं। मेरे सामने, तेज धूप में चमकती एक नंगी पहाड़ी पर मा चढ़ती जा रही है। उस की पीठ पर एक बड़ा काला टब है जो गाढ़े, पीले पसीने से भरा छलक रहा है। वह पहाड़ी पर गिरती-पड़ती और कभी-कभी पीठ सीधी करती चढ़ती चली जा रही है और उस के सुनहरे बालों के बीच में रसभरी का एक सफेद फूल है।

—अनु० राधेश्याम यादव

महिला ने पेटेंट दवा बनाने वाली एक कम्पनी को लिखा—कुछ दिन पहले मैं इतनी कमजोर थी कि अपने बच्चे को डांट-डपट भी नहीं सकती थी। आप की दवा पीने के बाद से मुझ में इतनी शक्ति आ गयी है कि घर का सारा काम निपटाने के अलावा, अब मैं बच्चा तो क्या उस के पिता तक की अच्छी तरह खबर ले सकती हूं। ईश्वर करे आप की दवा खूब बिके।

रुडोल्फ नूरयेव

कई बार जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब हमें बिजली की तेजी से कोई फैसला करना पड़ता है। यह बात मैं ने नाचते हुए कई बार उस समय अनुभव की है जब स्टेज पर अचानक कोई गड़बड़ हो जाती है और तुरत ही किसी कदम को उठाने की आवश्यकता होती है। इसी तरह का एक फैसला मुझे जून १९६१ की एक सुबह पेरिस के हवाई-अड्डे पर करना पड़ा था।

मैं विशाल 'तुपोलेव' हवाईजहाज की छाया में खड़ा था जो मुझे वापस मास्को ले जाने वाला था। उस का विशाल पंख मुझ पर 'हंसों की झील' बैले (नृत्य) के जादूगर के हाथ की तरह छाया हुआ था। क्या मैं खुद को उस के सिपुर्द कर दूं अथवा उस बैले की नायिका की तरह स्वतन्त्र होने के लिए कोई खतरनाक रास्ता अपनाऊं?

पेरिस में ही मुझे इस बात का खतरा महसूस होने लगा था। मुझे महसूस हो रहा था कि मैं जाल में फंसे पक्षी की तरह हूं और जाल का घेरा भी तंग होता जा रहा है। आखिर वही हो गया जिस का मुझे डर था। मेरी समझ में नहीं आता कि यदि मैं संसार का सब से बड़ा बैले नर्तक बनना चाहता हूं तो सरकार इस में क्यों टांग अड़ाती है। मैं जानता हूं कि मुझे मास्को इसलिए भेजा जा रहा है ताकि मेरी 'गैर-जिम्मेदाराना' हरकत पर 'विचार' किया जा सके।

कुछ ही दिन पहले कान्स्तांतिन सर्जियेव ने जो 'किरोव' कंपनी का पिछले तीस वर्षों से प्रबंधक था, मुझ से कहा था कि मैं अपने फ्रांसीसी दोस्तों से इतना घुलमिल कर न रहूं और न ही अपनी मरजी से घूमूं-फिरूं। उस ने मुझे यह भी बताया था कि
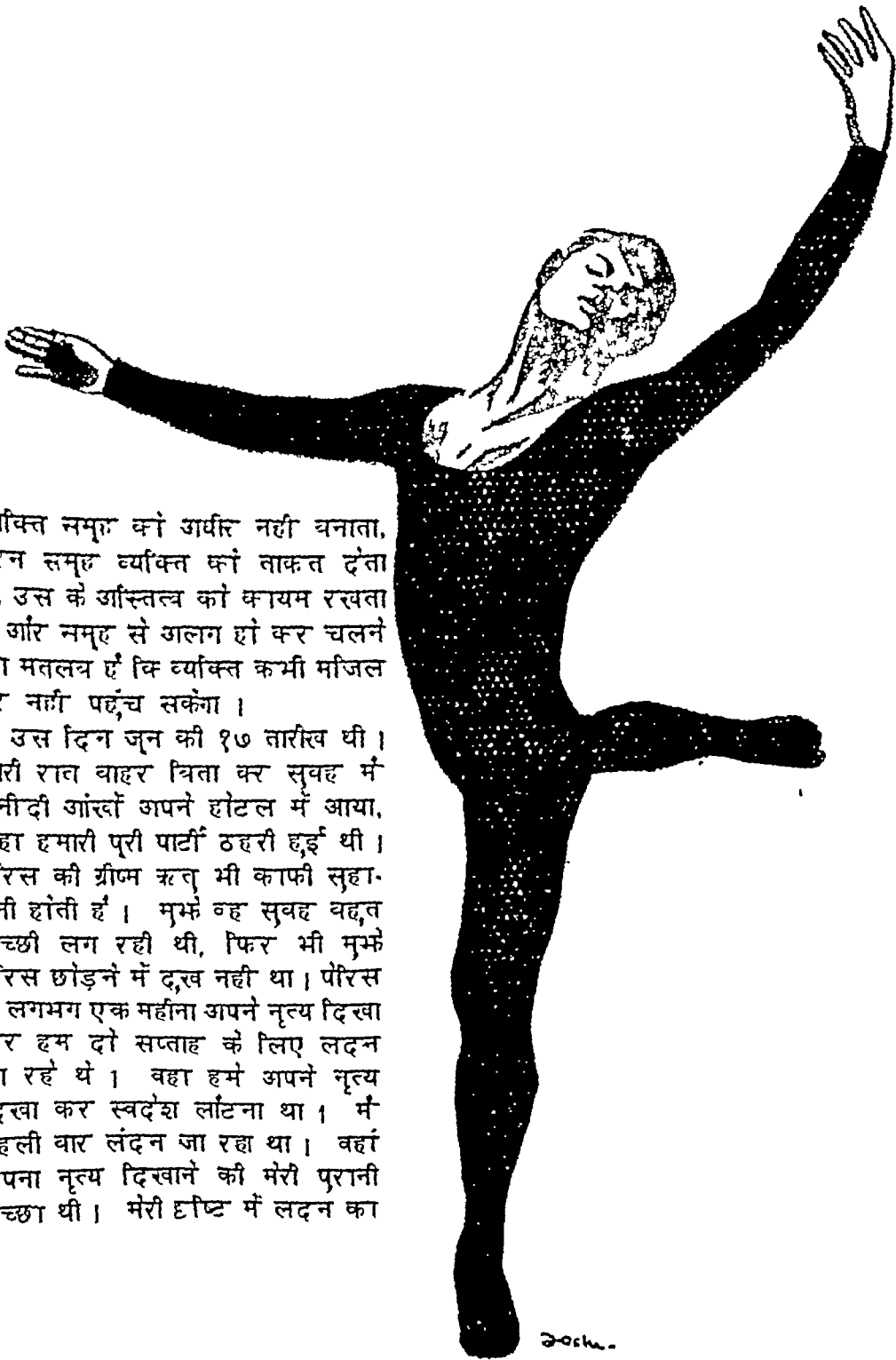
व्यक्ति समूह को आघात नहीं बनाता, वरन समूह व्यक्ति को ताकत देता है, उस के अस्तित्व को कायम रखता है और समूह से अलग हो कर चलने का मतलब है कि व्यक्ति कभी मंजिल पर नहीं पहुंच सकेगा ।

उस दिन जून की १७ तारीख थी । सारी रात बाहर बिता कर सुबह मैं उनींदी आंखों अपने होटल में आया, जहां हमारी पूरी पार्टी ठहरी हुई थी । पेरिस की ग्रीष्म ऋतु भी काफी सुहावनी होती है । मुझे वह सुबह बहुत अच्छी लग रही थी, फिर भी मुझे पेरिस छोड़ने में दुख नहीं था । पेरिस में लगभग एक महीना अपने नृत्य दिखा कर हम दो सप्ताह के लिए लंदन जा रहे थे । वहां हमें अपने नृत्य दिखा कर स्वदेश लौटना था । मैं पहली बार लंदन जा रहा था । वहां अपना नृत्य दिखाने की मेरी पुरानी इच्छा थी । मेरी दृष्टि में लंदन का

पेरिस से अधिक महत्व था। लेनिन-ग्राद में मेरे सभी मित्रों ने, जो लंदन में नाच चुके थे, बताया था कि वह वास्तव में ही बैले-प्रेमियों का शहर है। कलाकार को इस से बड़ी खुशी और क्या हो सकती है कि उसे ऐसे दर्शकों के सामने अपनी कला प्रदर्शित करने का अवसर मिले ?

'होटल मार्डन' के सामने ही हमारी नीली बस खड़ी थी। उस बस में हमारी कंपनी के सभी लोग साथ-साथ पेरिस में घूमे थे। केवल मैं ऐसा व्यक्ति था जिस ने खूब घूम-फिर कर पेरिस देखा था। मेरे पास नाश्ता करने का समय नहीं था। मैं ने जल्दी जल्दी अपना सामान बांधा और सफर के लिए तैयार हो गया। एक घंटे बाद किरोव कंपनी के सभी लोग उस बस में बैठ कर हवाईअड्डे की तरफ चल दिये।

ऐसे मौकों पर वे सभी चीजें दिमाग में घूमने लगती हैं, जिन्हें देखा और प्यार किया हो। उस समय मैं उन लोगों के बारे में सोच रहा था जिन से मैं पेरिस में मिला था और जिन के साथ रह कर मुझे बेहद खुशी हुई थी। मैं इन्हीं यादों में खोया हुआ था कि बस में एक अजीब घटना हुई।

मैं यहां बता दूं कि हम कभी कोई काम व्यक्तिगत रूप से नहीं करते। हम समूह में रह कर सोचते हैं, समूह में रह कर खाते हैं और समूह में रह कर ही सफर करते हैं। सफर में हम सब का इकट्ठा टिकट बनवाया जाता है, अलग-अलग नहीं। जब हमारे मैनेजर बोगदानोव ने सब को लंदन के अलग-अलग टिकट देना शुरू किये, तो मैं बेहद हैरान हुआ। उस ने सब से पहले मुझे ही अपना टिकट दिया—इस रहस्य को मैं उस समय नहीं समझ सका था। वास्तव में इस ओर ध्यान भी नहीं दिया था।

हम हवाईअड्डे पर पहुंचे। चुंगी वालों से छुट्टी पा कर जब हम हवाईजहाज की ओर बढ़े तो अचानक बोगदानोव हम से टिकट वापस लेने लगा। पहले तो मुझे यह अजीब-सा लगा और मूर्खतापूर्ण भी; तभी अचानक मुझे न जाने क्यों लगा कि मेरे साथ कोई भयानक घटना घटने जा रही है। अब मुझे ध्यान आया कि बस में टिकट इसलिए दिये गये थे ताकि मुझे विश्वास हो सके कि मैं लंदन ही जा रहा हूं। अगर मैं सचमुच ही लंदन जा रहा था तो मुझे इस का सबूत देने की क्या जरूरत थी ? अब सारी बात साफ थी। मैं कंपनी के साथ लंदन नहीं जा रहा था।

मैं 'बार' की ओर बढ़ा ताकि उन साथियों के साथ आखिरी जाम पी सकूं, जो मुझे विदा देने हवाईअड्डे आये थे। जिन साथियों के साथ मैं ने पेरिस में बहुत अच्छा समय बिताया था, उन में चिली की रहनेवाली क्लारा भी थी। उन लोगों के अलावा वहां कुछ संवाददाता भी थे। उन में एक आलोचक भी था जिस ने किरोव कंपनी और मेरे बारे में प्रशंसात्मक लेख लिखे थे। वह खास तौर से मुझ से मिलने आया था। मुझे बाद में पता

लगा कि वह अपनी मोटर-साइकिल को बाहर फाटक के पास खड़ा करके आया था और उस के इंजन को बंद नहीं किया था ताकि जरूरत पड़ने पर एक क्षण की भी देर किये बिना वह मुझे वहां से ले कर भाग सके।

मैं अभी खड़ा ही था कि सर्जियेव मेरे पास आया और मुसकरा कर कहने लगा "तुम हमारे साथ नहीं जा रहे हो। तुम कुछ दिनों के बाद लंदन आओगे।" यह सुन कर मेरा दिल डूबने लगा।

सर्जियेव ने कहना जारी रखा, "अभी-अभी मास्को से तार आया है कि कल तुम्हें क्रेमलिन में नाचना होगा। अतएव हम तुम्हें यहीं छोड़ जा रहे हैं। तुम 'तुपोलेव' में मास्को जाओगे जो दो घंटे के बाद वहां जा रहा है।"

मेरे चेहरे का खून जैसे सूख गया। मुझे पता था कि मास्को में जा कर मेरा क्या परिणाम होगा। वहां जाने पर मैं कभी विदेश न जा सकूंगा और न ही बैले के प्रोग्रामों में मुझे मुख्य नर्तक बनने का मौका मिलेगा जो कुछ सालों के बाद मिलने वाला था। इस से तो अच्छा है कि मैं मर जाऊं।

दो रूसी सिपाही जो हमारी कंपनी के साथ आये थे, अब मुझे मास्को ले जाने वाले थे। मैं ने देखा कि वे चुंगी वाले फाटक के पास सर्जियेव से बातें कर रहे थे। उन में से एक ने पेरिस में मेरी जासूसी भी की थी। जहां भी मैं जाता था, वह मेरे पीछे लग जाता था। अब वह फिर मेरे रास्ते में खड़ा था।

मैं मौका पा कर एक खंभे के
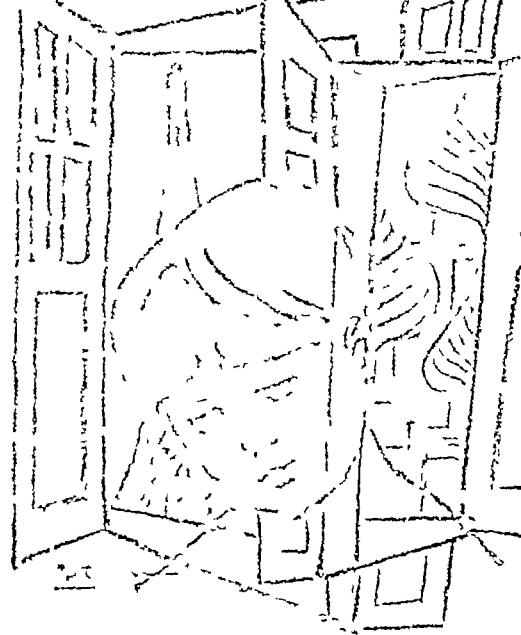
पीछे सरक गया। इस समय मेरी बड़ी दयनीय हालत थी। तभी मैं ने क्लारा को देखा। उस के पास आते ही मैं ने उसे अपना सारा हाल सुनाया और यह भी कहा कि मैं यहीं रहना चाहता हूं। उसी क्षण वह दो पुलिस इंस्पेक्टरों के पास गयी और उन से कहा कि एक रूसी नर्तक वहां खड़ा है और फ्रांस में रहना चाहता है।

हमारी कंपनी लंदन के लिए रवाना हो गयी थी पर वह रूसी सिपाही वहीं जमा खड़ा था। वह मुझे अपलक घूरे जा रहा था। जब उस ने क्लारा को दो फ्रांसीसी पुलिस इंस्पेक्टरों के साथ देखा तो वह मेरी ओर लपका और मुझे जबरदस्ती वहां से उस कमरे में ले जाना चाहा जहां रूसी चालक बैठे हुए थे। मैं ने अपने आप को उस से छुड़ाया और भीड़ में एक तरफ को निकल
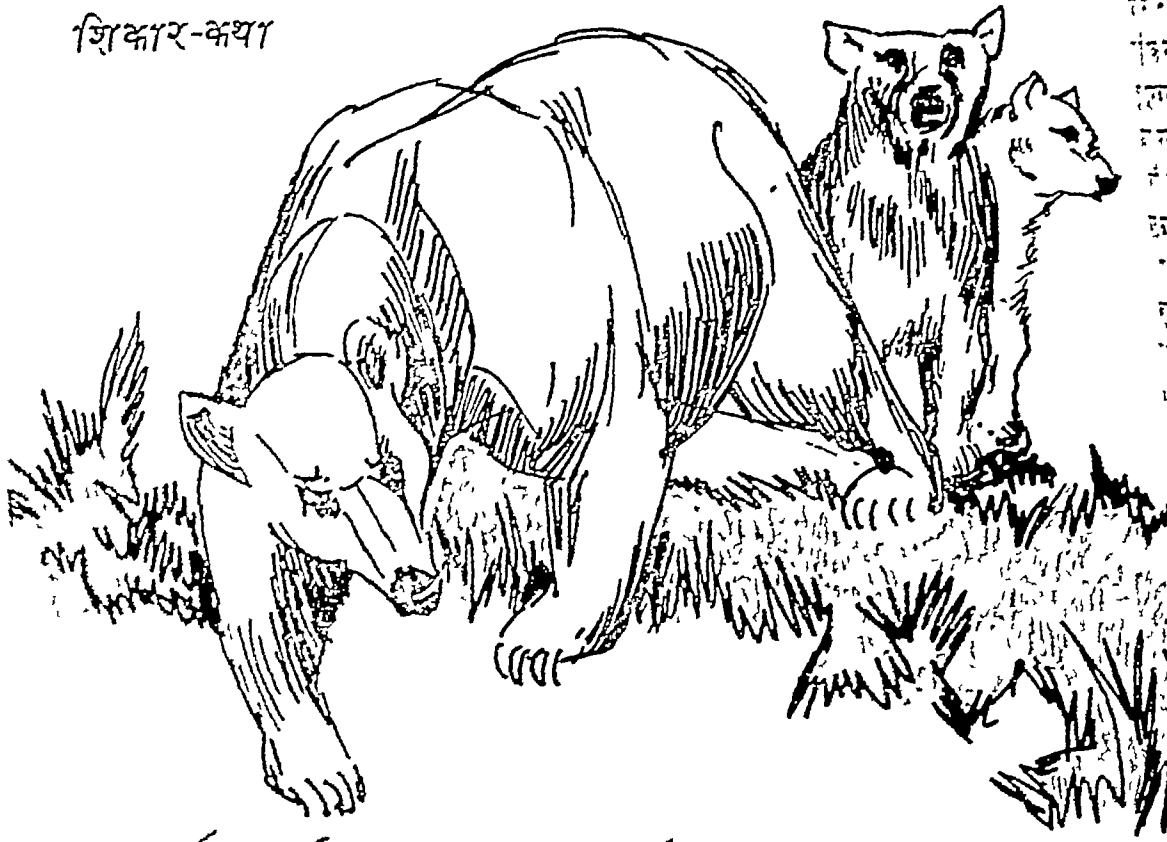
जैरी जानसन

उस दिन सुबह मेरी आंख काफी जल्दी खुल गयी थी। उस समय हवा में काफी ठंड थी। मौसम को देखने के लिए मैं ने खिड़की से बाहर झांका तो मेरी नजर काले रंग के एक ताकतवर भालू पर पड़ी जो हमारे छोटे-से केबिन-जैसे मकान से कुछ ही दूरी पर कुछ सूंघता फिर रहा था। मैं ने लपक कर अपनी राइफल उठाई और क्रमशः तीन फायर किये लेकिन दुर्भाग्यवश तीनों वार निशाना चूक गया। भालू गुर्राता हुआ जंगल की ओर भागा और शीघ्र ही नजरों से ओझल हो गया। मैं बुदबुदाया : उस शिकारी को डूब मरना चाहिये जो इतने पास से भी सही निशाना न

ले सके। फिर मैं ने यह भी सोचा कि हो सकता है कि राइफल की नली पर लगी हुई दूरबीन में खराबी हो गयी हो अथवा उस में कोई भीतरी खराबी आ गयी हो।

अरसे बाद अपने जन्म-स्थान नेनलचक आया था। नेनलचक अलास्का प्रांत का बहुत ही खूबसूरत कस्बा है जो अपने जंगलों, बर्फ से ढके पर्वतों, दर्शनीय स्थलों, अच्छी जलवायु और असंख्य जीव-जंतुओं के कारण प्रसिद्ध है। विशेष रूप से यहां भूरे और काले रंग के भालू तथा बड़े-बड़े बारहसिंगे काफी मात्रा में पाये जाते हैं।

दूसरे दिन मैं ने एक दोस्त से कहा, "राइफल खराब होने के कारण एक शानदार भालू हाथ से निकल गया और मुसीबत यह है कि मेरे पास दूसरी राइफल नहीं है। उधर शरद ऋतु सिर पर आ गयी है। मुझे इस मौसम में बारहसिंगे मारने हैं। समझ में नहीं आता कि क्या करूं!"

उस ने मुझे .३५ की एक बहुत ही बढ़िया और बिलकुल नयी व्हीलन राइफल दी जिस की गोली एक सेकंड में ढाई हजार फुट तक मार कर सकती थी। मेरे लिए यह राइफल यद्यपि नयी थी और मैं ने पहले कभी उस का उपयोग नहीं किया था फिर भी मैं ने उसे खरीद लिया। घर में उस का अच्छी तरह निरीक्षण करके इत्मीनान भी कर लिया कि वह राइफल बहुत ही अच्छी है।

रात से ही बादल घिर आये थे और हलकी-हलकी बूंदा-बांदी हो रही थी। ऐसे सुहावने मौसम में एक शिकारी के लिए घर में बैठे रहना बहुत ही कठिन होता है। मैं ने नयी राइफल के जौहर देखने का यह ठीक अवसर समझा। मैं ने राइफल में तेल दिया और उस की सफाई की।

आवश्यक सामान साथ ले कर मैं टहलता हुआ जंगल की ओर चल पडा। रास्ते में मेरा एक मित्र हेरल्ड मिल गया, उसे हाल ही में शिकार का शौक लग गया था। वह भी राइफल लटकाये किसी शिकार पर जाने की तैयारियां कर रहा था। हम ने इकट्ठे ही जाने का निश्चय किया। हम नैनलचक नदी की ओर बढ़े। वह नदी मेरे घर से लगभग ढाई मील की दूरी पर थी। नदी तक हमें कोई बारहसिंगा नहीं मिला और न ही उस के पैरों के निशान ही दिखायी दिये। हेरल्ड ने मुझ से कहा, "तुम जंगल की ओर बढ़ो और मैं नदी के किनारे-किनारे एक लंबा चक्कर काट कर जंगल में तुम से आ मिलूंगा। इस से लाभ यह होगा कि शिकार बीच में कहीं मौजूद हुआ तो वह आसानी से नहीं भाग सकेगा।"

मैं इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और हेरल्ड को वहीं छोड कर जंगल में बायें हाथ की तरफ घुस गया। इसी बीच वर्षा तेज हो गयी थी लेकिन शिकार की धुन में ऐसी बातों की परवा कौन करता है!

वर्षा से एक बडा लाभ शिकारी को यह पहुंचता है कि जंगल में बिखरे हुए पत्ते भीग जाने के बाद पैरों के नीचे आने से आवाज नहीं करते। सूखे पत्तों की तो जरा भी आवाज हिरन और बारहसिंगे जैसे सतर्क जानवरों को सचेत कर देने के लिए काफी होती है। मैं वर्षा और शीत का आनंद लेता हुआ इस आशा पर चला जा रहा था कि शायद कोई बारहसिंगा या जंगली खरगोश किसी झाडी की आड में नजर आ जाये और मैं नयी राइफल की परीक्षा ले सकूं। लेकिन काफी देर तक चलने के बाद भी निराशा और असफलता के सिवा कुछ हाथ न आया। मैं अब जंगल में चार मील दूर निकल आया था लेकिन हेरल्ड का कहीं पता न था। मैं ने सोचा, शायद वह किसी दूसरी तरफ निकल गया है और अब न मिल पायेगा।

दोपहर हो चुकी थी और मुझे भूख सता रही थी। मैं ने एक घने पेड के नीचे आश्रय लिया। कमर से बंधा हुआ थैला खोला और उस में से दो-तीन सैंडविच और काफी से भरी हुई थर्मस की बोतल निकाली। अभी मैं ने एक घूंट ही लिया होगा कि अचानक भालू की भयानक गुर्राहट से जंगल गूंज उठा। थर्मस का ढक्कन मेरे हाथ से छूट गया और मैं राइफल संभाल कर इधर-उधर देखने लगा और फिर मेरे बदन में भय की एक लहर दौड़ गयी।

लगभग चालीस फुट की दूरी पर भूरे रंग का एक बहुत शक्तिशाली और दीर्घकाय भालू अपने पिछले पैरों के बल खडा था। पहली नजर में वह मुझे बिलकुल वनमानुष की तरह

दिखायी दिया। इतना बड़ा और मोटा-ताजा भालू मैं ने अपने जीवन में दोबारा नहीं देखा। उस के पीछे उस के दो बच्चे भी थे जो विस्मय से मुझे देख रहे थे। भालू ने मुझे देख लिया था इसलिए वह गुर्राता हुआ मेरी ओर बढ़ा। मैं ने फुर्ती से राइफल का बोल्ट खींचा ताकि चेम्बर में कारतूस डाल कर मैं फायर कर सकूं। बोल्ट जरा-सा हिला और वहीं अटक गया। मैं ने पूरी शक्ति से उसे आगे खींचने के लिए जोर लगाया लेकिन व्यर्थ। मैं पसीने से भीग गया और हाथ कांपने लगे। भालू अब डरावने अंदाज में चीखता हुआ मेरे निकट आ चुका था। मैं ने अब घबरा कर बोल्ट को पीछे की ओर खींचा। परिणाम यह हुआ कि कारतूस निकल कर जमीन पर गिर पड़ा। मैं ने कारतूस उठा कर राइफल को पुन: लोड करना चाहा लेकिन बोल्ट ने फिर काम करने से इनकार कर दिया।

भालू अब मुझ से केवल पांच फुट के फासले पर खड़ा था और हमला करने के लिए पूरी तरह तैयार भी। उस ने अपने अगले दोनों पैर सिर से ऊपर उठा रखे थे। उस के बड़े-बड़े नुकीले नाखून पूरी तरह बाहर निकले हुए थे। मुझे मालूम था कि यदि मैं इन नाखूनों की पकड़ में आ गया तो मेरे शरीर की बोटी-बोटी अलग हो जायेगी। उस के दोनों होंठ पीछे मुड़े हुए थे और बड़े-बड़े सफेद भयानक दांत बाहर झांक रहे थे। भालू की गुर्राहटों और क्रोध से भरी हुई चीखों ने जंगल के निस्तब्ध वातावरण को बड़ा भयानक बना दिया था। मुझे और कुछ न सूझा तो मैं ने राइफल का कुंदा पूरी शक्ति से उस के मुंह पर दे मारा। कुंदे पर रबर का खोल चढ़ा हुआ था इसलिए भालू को कोई खास चोट न पहुंची किंतु राइफल मेरे हाथ से छूट कर दूर जा पड़ी।

भालू क्षण भर के लिए मुझे खूनी नजरों से घूरता रहा फिर उस ने पलट कर अपने दोनों बच्चों को देखा जो जरा फासले पर खड़े गुस्से से उछल रहे थे। मुझे अच्छी तरह मालूम था कि भालू के सामने यदि डर का जरा भी प्रदर्शन किया जाये तो वह शेर हो जाता है और अपने प्रतिद्वंद्वी को कभी जीवित नहीं छोड़ता। उस से बचाने के लिए आवश्यक था कि होश स्थिर रखे जायें और साहस से काम लेते हुए हमला करने में पहल की जाये। राइफल हाथ से निकलते ही मैं ने छलांग लगायी और भालू के बालों से भरे सीने पर जोर से टक्कर लगायी। वह लड़खड़ाया और उस के अगले दोनों पैर जमीन पर आ गये। अगर एक सेकंड का भी विलंब हो जाता तो मैं उस के भारी शरीर के नीचे दब चुका होता। भालू ने क्रोध में आ कर अपना दायां पंजा मेरी पीठ पर मारा और मेरे गरम कोट का एक हिस्सा उधड़ कर उस के पंजे में आ गया। मैं अब उस से कुछ फासले पर खड़ा हांफ रहा था। भालू गुर्रा कर फिर अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो कर मेरी ओर झपटा मैं ने फिर वही तरीका अपनाया। दौड़ कर

उस के सीने में एक और टक्कर मारी और बगल से हो कर निकल गया। भालू झल्ला कर फिर मुझ पर झपटा।

मेरा और वहशी भालू का द्वन्द्व युद्ध कितनी देर और किस प्रकार हुआ, वह मुझे अब स्वप्न की भांति याद है। यह दुर्घटना इतनी तेजी से घटित हुई कि मैं इस युद्ध का विवरण विस्तारपूर्वक बताने में असमर्थ हूं। बस, इतना याद है कि छह बार उस ने मुझ पर हमला करने का प्रयत्न किया और मैं उस के प्रहार बचाता गया। अंत में उस ने मेरी पतलून की पेटी अपने दांतों में दबा ही ली और अगले दोनों पंजे मेरी पीठ पर रख दिये। मैं ने उस के पेट में लातें मारी और अपने आप को उस की पकड से मुक्त कर लिया।

मेरा सारा शरीर अब इस युद्ध में खून से तर हो चुका था और मैं इस चिंता में था कि दौड कर किसी पेड पर आश्रय लूं, लेकिन भालू मुझ से भी अधिक चालाक और फुरतीला सिद्ध हुआ। उस ने मेरा इरादा भाप कर जोर से चीख मारी और उछल कर मेरी ओर आया। वह वास्तव में मेरे शरीर का कोई भाग अपने मुंह में दबाना चाहता था। दिलचस्प बात यह थी कि मेरा शिकारी-चाकू कमर से ही बंधा हुआ था लेकिन मुझे उस का खयाल ही न रहा। मैं ने अब भालू के मुंह पर उछल-उछल कर घूंसे और टक्करें मारना शुरू कीं। वह बदहवास हो कर कुछ पीछे हटा। अब मेरे और उस के बीच का फासला केवल तीन फुट का था और उस की सांस की दुर्गंध मुझे आ रही थी। भालू के लंबे-लंबे नुचे हुए बालों से मेरा शरीर भर गया था। मैं पीछे हट कर भागना ही चाहता था कि भालू तेजी से आगे बढा और मेरी टांग को अपने मुंह से पकडने की चेष्टा करने लगा। मैं बचने के लिए एक ओर को उछला और इसी क्षण मेरा पांव फिसला और मैं चारों खाने चित्त जमीन पर आ गिरा। मेरी आखों के सामने तारे उड़ने लगे और यों महसूस हुआ जैसे मेरे सिर पर किसी ने पूरी ताकत से हथौडा दे मारा हो। भालू अब मेरे पास खडा हुआ नाक से मेरा शरीर सूंघ रहा था। मैं बेहोश हो गया था। बाद में मेरी तंद्रा उस की सांस की दुर्गंध से टूटी। मैं ने करवट बदल कर जोर से एक लात उस के मुंह पर मारी। दुर्भाग्य की बात कि मेरी टांग उस के मुंह में आ गयी। वह फौरन अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। अब मेरे प्राण कोई चमत्कार ही बचा सकता था। मेरी दायीं टांग उस खूंख्वार दरिंदे के मुंह में थी और मैं विवशता से उलटा लटक रहा था। मेरा वजन १८० पौंड है और कद छह फुट के लगभग, किन्तु भालू ने मुझे एक तिनके की भांति मुंह में दबा कर लटका रखा था। उस के लंबे-लंबे दांत मेरे शिकारी जूते में घुस चुके थे। यदि मेरा जूता मजबूत और मोटे चमडे का न होता तो उस दिन मेरे एक पैर की धज्जियां उड जातीं।

भालू एक-दो कदम आगे बढा और उस ने अपने सिर को जोर से झटका। मेरा शरीर उस के बालों

से भरे पेट से टकराया और फिर मेरी टांग उस के मुंह से मुक्त हो गयी। मैं औंधे मुंह जमीन पर गिरा। अब मुझ में हिलने-डुलने की शक्ति न थी किंतु मृत्यु को इतना निकट पा कर मैं ने अंतिम प्रयत्न किया। एकाएक मेरा हाथ पेटी से बंधे हुए शिकारी चाकू पर पड़ा और उस का स्पर्श पाते ही मुझ में एक नया साहस जागा। भालू मेरी ओर फिर झपटा और अपना पंजा मेरे कूल्हे पर मार कर मुझे अपने पास घसीट लिया। मैं ने फिर संघर्ष किया। भालू के सीने और मुंह पर लातें मारीं। वह गुर्रा कर पीछे हटा। तभी मैं ने अपना चाकू निकाल लिया। भालू फिर आगे बढ़ा तो मैं ने उस की गरदन पर चाकू मारा।

चाकू उस की गरदन में घुस गया और खून का एक फव्वारा उस की गरदन से छूट कर मेरे मुंह पर आया। उस के मुंह से एक भयानक चीख निकली और वह पीछे की ओर उछला। चाकू उस की गरदन में ही घुसा हुआ था। मैं ने अब झुक कर उस की एक टांग पकड़ ली और जोर से झटका दिया किंतु वह अपनी जगह से न हिला। अब मैं ने दूसरी टांग भी पकड़ ली और पूरा बल लगा दिया। भालू औंधे मुंह जमीन पर आ गिरा, लेकिन वह फौरन ही उठा और मुझ से लिपट गया। अपने पंजों और दांतों से उस ने मेरे कपड़े तार-तार कर दिये और मेरा पूरा शरीर नोच डाला। मेरी बायीं बांह उस के मुंह में गयी जिसे उस ने लगभग चबा ही डाला। पीड़ा की तीव्रता से मेरी चीखें निकल गयीं लेकिन मैं ने दूसरे हाथ से चाकू की मूठ फिर पकड़ी और उसे भालू की गरदन से निकाल कर उस के पेट में लगातार तीन-चार बार घोंप दिया। उस की अंतड़ियां बाहर लटकने लगीं। इस के बाद मुझे कुछ याद नहीं कि क्या हुआ।

जब आंख खुली तो मैं ने अपने को अस्पताल में पाया। मेरी एक बांह और एक टांग का आपरेशन हुआ। शरीर के दूसरे हिस्सों में भी बहुत से खतरनाक घाव थे। साल भर तक मैं जीवन और मृत्यु के जबरदस्त संघर्ष में झूलता रहा। जीवन के कुछ दिन शेष थे इसलिए बचा गया, वरना उस जालिम ने तो मुझे अपने साथ खत्म कर ही दिया था। बाद में पता चला कि हेरल्ड जब मुझे ढूंढता हुआ वहां आया तो उस ने भालू को मृत और मुझे अर्धमृत अवस्था में बेहोश पड़ा पाया। वह मुझे वहीं छोड़ कर पांच मील तक दौड़ता हुआ नेनलचक पहुंचा और मेरे पिता तथा अन्य लोगों को अपने साथ लाया जिन्होंने मुझे अस्पताल पहुंचाया।

—अनु० सुरजीत

फिनलैंड के एक होटल में आग लग गयी। मालिक को आग बुझानेवालों ने बड़ी मुश्किल से बचाया। आग बुझने के बाद उसे याद आया कि पत्नी की दी हुई भेंट तो अंदर ही रह गयी। भेंट थी—आग बुझाने का यन्त्र।
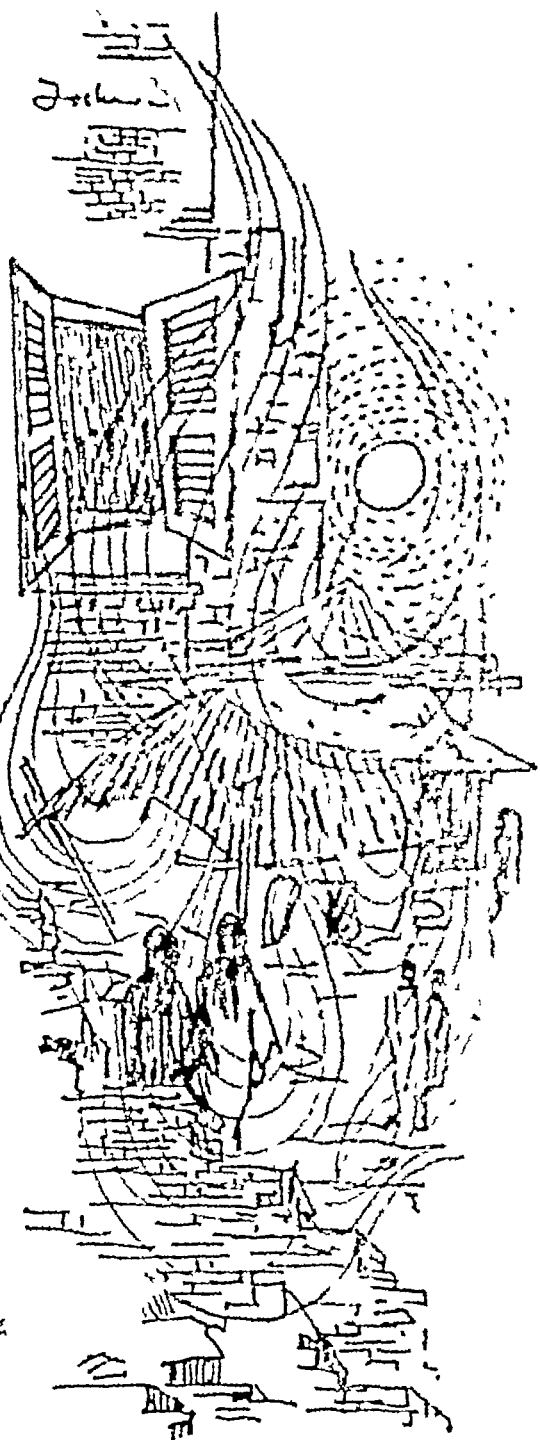
लस्सी ही पी लें। दुकान की तरफ बढा तो क्या देखता हूं कि बिजली का पंखा चल तो रहा है लेकिन उस का मुंह दूसरी तरफ है। मैं ने हलवाई से कहा, "यह उलटे रुख में पंखा चलाने का क्या मतलब है?"

उस ने घूर कर मुझे देखा और कहा, "देखते नहीं हो?"

मैं ने देखा, पंखे का रुख कायदे-आजम मोहम्मद अली जिन्ना की रंगीन तसवीर की तरफ था जो दीवार पर लगी हुई थी। मैं ने जोर का नारा लगाया—पाकिस्तान जिंदाबाद और लस्सी पिये बगैर आगे चल दिया।

एक बंद दुकान के बरामदे में एक आदमी बैठा पूरियां तल रहा था। मैं सोचने लगा कि परसों मैं ने इस दुकान से चप्पलें खरीदी थीं, आज यह पूरीवाला कहां से आ गया। फिर खयाल आया कि शायद वह कोई दूसरी दुकान हो लेकिन नहीं, सामने वही दंगों में झुलसा हुआ मकान है, जिस की बरसाती में बिजली का पंखा लटक रहा है। इसी को देख कर मैं ने सोचा था कि आग जलाने में इस ने भी काफी मदद दी होगी।

पूरीवाले ने मुझ से कहा, "क्या सोच रहे हैं बाबूजी! गरम पूरियां हैं।"

मैं ने कहा, "भई, मैं यह सोच रहा हूं कि जहां तुम बैठे हो, यहां परसों तक जूतों की एक दुकान हुआ करती थी।"

पूरीवाला अपने माथे का पसीना पोंछ कर मुसकराया, "जूतों की दुकान अब भी है लेकिन वह नौ बजे
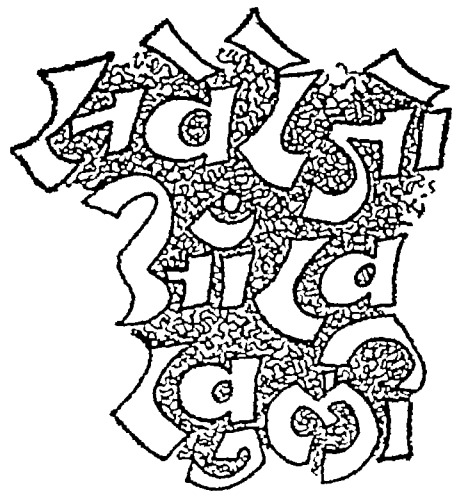
सआदत हसन मंटो

शुरू होती है और मेरी सुबह छह बजे से शुरू हो जाती है। इस के बाद मेरी दुकान साढे चार बजे से फिर शुरू होती है।"

मैं आगे बढ गया।

आगे क्या देखता हूं कि एक आदमी सड़क पर कांच के टुकड़े बिखेर रहा है। पहले मैं ने सोचा कि वह लोगों को इन से बचाने के लिए सडक पर से उठा रहा है लेकिन फिर देखा कि उठाने के बजाय वह उन्हें इधर-उधर गिरा रहा है। मैं असमंजस में पड़ कुछ दूर खडा हो गया। झोली खाली करने के बाद वह सडक के किनारे बिछे हुए टाट पर बैठ गया। पास ही एक पेड़ था जिस पर एक बोर्ड लगा था यहां साइकिलों के पंक्चर जोडे जाते हैं।

आगे चल कर एक दुकान थी जिस का नाम 'पापोशियाना' अर्थात जूतों का

आशियाना था। मैं ने खुश हो कर पाकिस्तान जिंदाबाद कहा और आगे बढ़ गया।

आगे चल कर साईकिल के चार पहियों वाली एक अजीब ढंग की गाड़ी देखी। पूछा कि यह क्या है ? जवाब मिला—होटल, चलता-फिरता होटल। उस में चपातियां पकाने के लिए अंगीठी और तवा, सालन, शामी कबाब, तलने के लिए फ्राईपैन, पानी के दो घड़े, बर्फ, लेमन-सोडा की बोतलें, दही का कूंडा, गिलास, प्लेटें यानी हर चीज मौजूद थी।

कुछ दूर आगे बढ़ा तो देखा एक आदमी छोटे से लड़के को धड़ाधड़ पीट रहा है। मैं ने वजह पूछी तो मालूम हुआ कि लड़का नौकर है और उस ने एक रुपये का नोट गुम कर दिया है। मैं ने उस जालिम को झिड़का और कहा, "क्या हुआ, बच्चा है। कागज का छोटा-सा पुरजा ही तो होता है एक रुपये का नोट। कहीं गिर पड़ा होगा। खबरदार जो तुम ने इस पर हाथ उठाया।"

यह सुन कर वह आदमी मुझ से उलझ गया और कहने लगा, "तुम्हारे लिए एक रुपये का नोट कागज का एक छोटा-सा पुरजा होगा। जानते हो, कितनी मेहनत के बाद यह कागज का छोटा-सा पुरजा मिलता है आजकल ?" यह कह कर वह फिर उस बच्चे को पीटने लगा। मुझे बहुत तरस आया। जेब से एक रुपया निकाला और उस आदमी को दे कर बच्चे की जान बचायी।

कुछ कदम ही चला था कि एक आदमी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा और मुसकरा कर कहा, "रुपया दे दिया आप ने उस पाजी को।"

मैं ने जवाब दिया, "जी हां ! बहुत बुरी तरह पीट रहा था बेचारे को।"

"वह बेचारा उस का अपना लड़का है।"

"क्या कहा ?"

"बाप बेटे दोनों का यही कारोबार है। दो-चार रुपये रोज इसी ढोंग से पैदा कर लेते हैं।"

अचानक एक शोर-सा मच गया। क्या देखता हूं कि लड़के हाथों में कागज के बंडल लिये चिल्ला रहे हैं और तेजी से भाग रहे हैं। तरह-तरह की बोलियां सुनने में आयीं। अखबार तेजी से बिक रहे थे—ताजा-ताजा और गरमागरम खबरें—दिल्ली में जूता चल गया, लखनऊ में एक लीडर की कोठी पर कुत्तों ने हमला कर दिया, पाकिस्तान के एक ज्योतिषी की भविष्यवाणी कश्मीर दो हफ्तों में आजाद हो जायेगा

अखबार बेचने वाले लड़कों की बाढ़ गुजर गयी तो एक औरत नजर आयी। उम्र कोई पचास के लगभग होगी, गंभीर सूरत, एक हाथ में थैला था और दूसरे में अखबारों का बंडल। मैं ने पूछा, "क्या आप भी अखबार बेचती हैं ?"

"जी हां," जवाब मिला।

मैं ने दो अखबार खरीदे और दिल में उस अखबार बेचने वाली औरत का सम्मान लिये आगे बढ़ गया। थोड़ी ही देर में कुत्तों का एक जमघट सामने आया। कुत्ते भौंक रहे थे और एक-

दूसरे को भंभोड रहे थे, प्यार कर रहे थे और काट भी रहे थे। मैं डर कर एक तरफ हट गया क्योंकि पद्रह दिन पहले एक कुत्ते ने मुझे काट खाया था और पूरे चौदह दिन सी-सी के टीके मुझे अपने पेट में लगवाने पड़े थे।

मैं ने सोचा कि क्या ये सब कुत्ते शरणार्थी हैं अथवा इन्हें यहा से जाने वाले अपने पीछे छोड गये हैं? कोई भी हों, इन का खयाल तो रखना ही चाहिये। जो शरणार्थी हैं, उन को फिर से आबाद किया जाये और जो ना मालिक के रह गये हैं, उन को न के मुताबिक उन लोगों के नाम ाट कर दिया जाये जिन के कुत्ते पार रह गये हैं। फिर भी जो ो लावारिस रह जायें, उन के लिए कडी की टांगें बनवा दी जायें ताकि उन्हीं को काट कर अपना शौक ा करते रहें।

कुत्तों का झुंड चला गया तो मेरी ान में जान आयी। मैं ने एक अखबार ोला और उसे देखना शुरू किया। ुखपृष्ठ पर एक फिल्म अभिनेत्री की ास्वीर थी, तीन रंगों में। उस का शरीर अधनंगा था और नीचे लिखा था फिल्मों में बेहयाई की नुमाइश कैसे की जाती है, कुछ अदाजा ऊपर की तस्वीर से लगाया जा सकता है।

मैं ने मन में पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा लगाया और अखबार को फुट-पाथ पर फेंक दिया। फिर दूसरा अखबार खोला। एक छोटे-से विज्ञापन पर नजर पडी मैं ने कल अपनी साइकिल लायड्ज बैंक के बाहर रखी। काम से फारिग हो कर जब लौटा तो क्या देखता हू कि साइकिल पर पुरानी गद्दी कसी हुई है लेकिन नयी गायब है। मैं गरीब आदमी हूं जिन हजरत ने ली हो, मेहरबानी करके मुझे वापस कर दें।

मैं खूब हंसा और अखबार तह करके फिर जेब मे रख लिया।

तभी सामने से दो-तीन साइकिलें निकली जिन्हें मर्द चला रहे थे और एक एक बुर्कापोश औरत पीछे कैरियर पर बैठी थी। पाच-छह मिनट के बाद एक और इसी तरह की साइकिल नजर आयी लेकिन इस पर बुर्कापोश औरत आगे हैंडिल पर बैठी थी। अचानक खरबूजे के छिलके से साइकिल फिसली और सवार ने ब्रेक दबाये। फिसलने और ब्रेक लगने की दोहरी क्रिया से साइकिल उलट कर गिरी। मैं मदद के लिए दौडा। मर्द औरत के बुर्के मे लिपटा हुआ था और औरत बेचारी साइकिल के नीचे दबी थी। मैं ने साइकिल हटायी और उस को सहारा दे कर उठाया। मर्द ने बुर्के में से मुह निकाल कर मेरी तरफ देखा और बोला, "आप तशरीफ ले जाइये। हमें आप की मदद की जरूरत नहीं है।"

यह कह कर वह उठा और औरत के सिर पर औंधा-सीधा बुर्का अटकाया और उस को फिर हैंडिल पर बैठा कर चल दिया। मैं ने सोचा कि कहीं आगे सडक पर फिर और छिलका न हो। तभी दीवार पर एक इश्तहार दिखायी दिया जिस का शीर्षक बहुत ही अर्थपूर्ण था—मुसलमान औरत और परदा।

मैं बहुत आगे निकल आया। जगह

जानी-पहचानी है लेकिन वह वृत कहा है जो मैं देखा करता था ! मैं ने एक आदमी से, जो घास पर आराम फरमा रहा था, पूछा, "क्यों साहब, यहा पहले एक वृत्त था वह कहा गया ?"

आराम फरमाने वाले ने आखे खोली और कहा, "चला गया ।"

"चला गया ? आप का मतलब है, अपने आप चला गया !"

वह मुसकराया, "नहीं, उसे ले गये ।"

मैं ने पूछा, "कौन ?"

जवाब मिला, "जिन का था ।"

मैं ने दिल में कहा कि एक दिन वह भी आयेगा जब लोग अपने मुर्दे भी कब्रों से उखाड़ कर ले जायेंगे ।

फुटपाथ पर दिल्ली से आये एक शरणार्थी अपने साहबजादे के साथ सैर फरमा रहे थे । साहबजादे ने उन से कहा, "अब्बाजान, हम आज छोले खायेंगे ।"

अब्बाजान के कान सुर्ख हो गये, "क्या कहा ?"

साहबजादे ने जवाब दिया, "हम आज छोले खायेंगे ।"

अब्बाजान के कान और सुर्ख हो गये, "छोले क्या हुआ ? चने कहो ।"

साहबजादे ने बड़े भोलेपन से कहा, "नही अब्बाजान, चने दिल्ली में होते है । यहां सब छोले ही खाते हैं ।"

अब्बाजान के कान यह सुन कर फिर ५ । असली हालत पर आ गये ।

मैं टहलता-टहलता लारेंस बाग में पहुंच गया । बाग वही पुराना था लेकिन वह चहल-पहल नही थी । औरतें तो करीब-करीब बिल्कुल गायब थी जब कि फूल खिले हुए थे, कलिया चटक रही थी और हलकी हलकी महक हवा मे तैर रही थी । मैं ने सोचा कि औरतों को क्या हुआ जो घरों में कैद हैं । ऐसा खूबसूरत बाग, इतना सुहावना मौसम—वे इस का लुत्फ क्यों नही उठाती ! लेकिन मुझे फौरन ही इस सवाल का जवाब मिल गया जब मेरे कानों में एक बेहद बाजारू गाने की आवाज आयी ।

मैं ने लारेंस बाग की पगडंडियों पर फटी-फटी निगाहों वाले गोश्त के सुर्ख लोथड़ों को धीमी चाल से चलते देखा तो मुझे दुख हुआ । यह दुख और बढ गया जब मैं ने सोचा कि फूल बेकार खिल रहे है, कलिया बेमतलब चटक रही हैं ।

मेरी तबीयत खराब हो गयी और मैं बाग से बाहर निकलने लगा, तभी एक साहब ने पूछा, "क्यों साहब, यही जिन्ना बाग है ?"

मैं ने जवाब दिया, "जी नही, यह लारेंस बाग है ।"

वे मुसकराये, "आप चिड़ियाघर मे तशरीफ ला रहे हैं क्या ?"

"जी हा ।"

वह साहब हस पड़े, "जनाब, जब से पाकिस्तान कायम हुआ है, इस का नाम जिन्ना बाग हो गया है ।"

मैं ने उन से कहा, "पाकिस्तान जिंदाबाद ।"

वे और ज्यादा हसते हुए लारेंस बाग में चले गये और मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो मैं दोजख से बाहर निकला हू ।
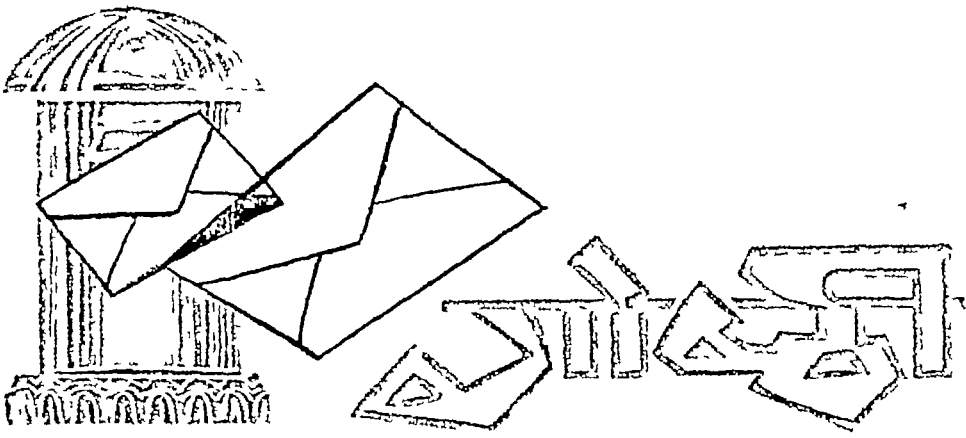
हरपालसिंह, रामपुर; इरा राजन, जयपुर; कन्हैयालाल गुप्त, कोटा : प्लास्टिक सर्जरी क्या है ? उस का आविष्कार कब हुआ और किस ने किया ?

त्वचा, हड्डी, कोमल हड्डी (कार्टिलेज) आदि को स्वयं व्यक्ति के शरीर से या कहीं अन्यत्र से प्राप्त करके जहां आवश्यक हो, वहां 'रोप' देने की कला प्लास्टिक सर्जरी है। यह सिर्फ चेहरे पर ही नहीं होती, जैसा कि आम तौर पर समझा जाता है। न ही इस में उस प्लास्टिक का इस्तेमाल होता है, जिस से खिलौने बनते हैं। 'रोपने' यानी 'ट्रान्सप्लान्ट' करने की इस कला के विकास के कारण ही बदसूरत से बदसूरत व्यक्ति का भी सुन्दर हो कर सामाजिक सम्मान प्राप्त करना संभव हो सका है। कैंसर ठीक हो जाने के बाद शरीर पर रह गये दाग, जलने या माता के दाग, किसी दुर्घटना या बीमारी से उत्पन्न शारीरिक खोट, शरीर की किसी भी हड्डी में गड़बड़ी या किसी भी अंग के असामान्य रूप से विकसित हो जाने इत्यादि को प्लास्टिक सर्जरी से ठीक किया जा सकता है।

प्लास्टिक सर्जरी की परम्पराओं की जड़ें अत्यन्त प्राचीन हैं। १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वेनिस के एक चिकित्सक गास्पेरो तौग्लयाकॉज्जी ने कटी हुई नाक की जगह 'नाक' बनाने का सफल प्रयोग किया था। चर्च ने गास्पेरो की यह कह कर घोर निन्दा की कि उस ने ईश्वर द्वारा दी गयी सजा को झुठलाने की जुर्रत की है। जाब वॅन मीक्रेन नामक वैज्ञानिक की मृत्यु १६६६ में हुई। मृत्यु से कुछ समय पूर्व उस ने एक घायल सैनिक की खोपड़ी में कुत्ते की हड्डी लगा देने का सफल प्रयोग किया था, लेकिन चर्च ने नाराज हो कर हड्डी निकाल देने का हुक्म जारी किया। १८१६ में लन्दन के एक वैज्ञानिक जोसेफ कान्सटेंनटीन कॅरप्यू ने प्ला-

स्टिक सर्जरी के तत्कालीन भारतीय तरीकों के आधार पर कई प्रयोग किये, जिस में मस्तक से त्वचा प्राप्त करके शरीर में अन्यत्र लगा दी जाती थी।

आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी के संस्थापक के रूप में जरमन वैज्ञानिक कार्ल फरडिनेण्ड का नाम लिया जाता है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इस वैज्ञानिक ने शल्य-चिकित्सा के प्रत्येक क्षेत्र से प्राप्त ज्ञान के आधार पर प्लास्टिक सर्जरी को नया ही आयाम दिया। अमरीकी वैज्ञानिक विल्रे पैपिन ब्लेर और इंगलैण्ड के हैराल्ड डेल्फ गिलीज ने भी इस क्षेत्र में अनेक क्रांतियां की हैं।

राजकुमार ए. छाबरिया, बंबई : यीस्ट कैसे बनते हैं? वे क्या हैं?

आधुनिकतम तरीकों के अनुसार खनिज नमक और शक्कर के घोल में यीस्ट अर्थात खमीर की 'खेती' होती है। 'फसल' परिपक्व हो जाने पर यीस्ट को घोल में से अलग छान लिया जाता है। तत्पश्चात उसे स्टार्च या इसी तरह के किसी आधार के साथ मिला कर दबाव दिया जाता है, जिस से यीस्ट का केक तैयार हो जाता है। इसी में से छोटी-बड़ी टिकियां काटी जाती हैं। पुराने तरीके के अनुसार अनाज के दानों को पानी में भिगो कर उन के दलिये को लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया से प्रभावित किया जाता है। एसिड से सड़ाव रुकती है और यीस्ट को भोजन भी मिलता है। तापमान समुचित बनाये रखा जाये, यह अत्यावश्यक है।

यीस्ट अति सूक्ष्म (माइक्रोस्कोपिक) वनस्पति है, जो शक्कर को अल्कोहल और कारबन-डाई-आक्साइड में बदलने की क्षमता रखती है। यीस्ट की सैकड़ों जातियां हैं। कुछ जातियां ब्रेड बनाने में, तो कुछ शराब, अलकोहल आदि तैयार करने में इस्तेमाल होती हैं। बोलचाल की भाषा में यीस्ट का अर्थ विशेष प्रकार की वनस्पति न हो कर यीस्ट के उस केक से ही है, जो टिकियों के रूप में घरेलू उपयोग के लिए आसानी के साथ उपलब्ध हो जाता है।

रमाशंकर निगम, सतना; महेन्द्र एन. पुरोहित, बांसवाड़ा : ट्रांजिस्टर क्या है? बजना शुरू करने से पहले उसे रेडियो की तरह गरम होने की आवश्यकता क्यों नहीं पड़ती? उस का आविष्कार किस ने किया? ट्रांजिस्टर नाम कैसे पड़ा?

ट्रांजिस्टर एक ठोस, वैद्युतिक उपकरण है, जो 'सेमी-कण्डक्टर' नामक क्रिस्टल के कुछ विशेष गुणों का सहारा ले कर अपेक्षाकृत बीस गुनी कम शक्ति-व्यय के साथ 'वैक्यूम-ट्यूब' के अधिकांश कार्य कर लेता है। क्रिस्टल में विशेष तरह की अशुद्धियों का न्यून मात्रा में होना आवश्यक है। कैथोड, प्लेट और ग्रिड के बिना ही ट्रांजिस्टर काम कर सकता है, जिस से उस के 'गरम' होने का समय आवश्यक नहीं होता। वजन और आकार में बहुत छोटा होने के बावजूद इस की कार्य-क्षमता अत्यधिक होती है, जिस से वहनीय (पोर्टेबल) रेडियो, टेपरिकार्डर, टेलीविजन,

बंगला कहानी

● बनफूल

सुनन्दा

दस बजने से पाच मिनट पहले ही सुनन्दा लिफ्ट के सामने आ कर खड़ी हो गयी। लिफ्टमैन ने सलाम किया और बड़े अदब से लिफ्ट का दरवाजा खोल दिया। दो मिनट बाद ही वह दुमंजिले पर अपनी केबिन के सामने आ गयी। वहा भी चपरासी ने एक जोरदार सलाम ठोंकते हुए दरवाजा खोला। अपनी सीट पर बैठने के बाद सुनन्दा ने एक बार आफिस की घड़ी की ओर देखा। चपरासी ने भीतर आ कर पंखा चला दिया। हवा से मेज पर रखे कुछ कागज उड़ कर नीचे बिखर गये। हड़बड़ाते हुए चप-

रासी ने कागजों को इधर-उधर से उठाया और उन्हें मेज पर एक पेपर-वेट से दबा कर रख दिया। पेपर-वेट देख कर सुनन्दा को आश्चर्य हुआ। सफेद पत्थर के ऊपर चमत्कारिक खुदाई का काम था। यह पहले तो नहीं था। यहां तो लोहे का एक मामूली-सा पेपरवेट रखा था। यह नया पेपरवेट कैसे आ गया?

"यह पेपरवेट कहां से आया?" सुनन्दा ने चपरासी से पूछा।

"चन्दर बाबू बदल कर रख गये हैं," उस ने उत्तर दिया।

घड़ी में टन-टन करके दस बजे।

"चन्दर बाबू को खबर दो," सुनन्दा ने कहा।

चपरासी चला गया। थोड़ी देर बाद वापस आ कर उस ने कहा, "चन्दर बाबू अभी नहीं आये।"

सुनन्दा ने घड़ी की ओर देखा, फिर कहा, "अच्छा, आते ही उन को भेजना।"

चपरासी सलाम करके बाहर चला गया। दांतों से निचले होंठ को काटते हुए सुनन्दा कुछ देर तक वैसे ही बैठी रही।

सुनन्दा का रंग काला है, आंखें छोटी छोटी, भौंहें नहीं ही हैं, चेहरा बिलकुल तरबूज की तरह गोल और बड़ा है। लेकिन वह खूब पढ़ी लिखी है—एम ए, पी एच डी। लन्दन और अमरीका जा कर उस ने रिसर्च की है। इसीलिए भारत लौटने के बाद उसे नौकरी के लिए दौड़-धूप करने की जरूरत नहीं पड़ी। अपनी योग्यताओं के बल पर ही उसे एक ऊंचा पद मिल गया। गरीब घर की लड़की है। पिता एक मामूली क्लर्क हैं। दस भाई-बहिन हैं। सुनन्दा को अगर लगातार छात्रवृत्ति न मिलती, तो उस की पढ़ाई नहीं हो सकती थी। सरकारी खर्चे पर ही वह विलायत गयी थी। पिता के सारे बोझों को अब उस ने अपने कन्धे पर ले लिया है।

उस के पास कुछ फाइलें पड़ी थीं। वह उन्हें निबटाने लगी। यह कर लेने के बाद उस ने फिर एक बार घड़ी की ओर देखा। साढ़े दस बजने को आये, अब तक चन्दर बाबू का पता नहीं।

साढ़े दस बजे के बाद चन्द्रकान्त बाबू बगलें झांकते, खिसियाना-सा मुंह लिये कमरे में आये।

"जरा घड़ी की ओर देखिये, कितना बजा है ..."

घबड़ाये स्वर में चन्द्रकान्त बाबू ने कहा, "हां, आज भी देर हो गयी। बीवी की तबीयत जरा ठीक नहीं थी, डाक्टर के पास जाना पड़ा।"

सुनन्दा ने कठोर स्वर में कहा, "आप झूठ बोल रहे हैं। मैं जानती हूं, अभी तक आप की शादी नहीं हुई। आप के पिता आप के लिए लड़की देखने इधर-उधर भटकते फिरते हैं। अपने क्लर्क लड़के के लिए आधा राज्य और रूपसी राजकन्या चाहते हैं। मैं सब कुछ जानती हूं।"

चन्द्रकान्त को लगा जैसे धरती में वे धंसे जा रहे हैं। आंखें झुक गयीं, चेहरा गीली डबलरोटी-सा लगने लगा।

"यह पेपरवेट कहां से आया?"

"यह मेरा पेपरवेट है, आप के लिए ही यहां ले आया था। पहले जो पेपरवेट यहां पड़ा था, वह बिलकुल बेकार था।"

"ले जाइये अपना पेपरवेट। आफिस ने जो पेपरवेट दिया है उसी से मेरा काम चलता है। आप के हाथ में वह क्या है?"

चन्द्रकान्त कुछ क्षणों के लिए चुप रहे। फिर डरते-डरते फुसफुसाते हुए उन्होंने किसी तरह से आवाज निकाली, "काजू . . "

"काजू? आप दफ्तर में बैठे-बैठे काजू चबायेंगे?"

"आप के लिए लाया था। सुना था कि आप को काजू बहुत पसन्द है।"

सुनन्दा कुछ देर चुप रही। उस के बाद उस की नाक फड़फड़ाने लगी, आंखों से अंगारे बरसने लगे।

"इस सब का क्या मतलब है? आप अभी, इसी वक्त बाहर निकल जाइये। मैं ने आप को सस्पेण्ड किया। जाइये, खड़े क्यों हैं अभी तक?"

चन्द्रकान्त घोष गला फाड़-फाड़ कर रोने लगे। इस के बाद वे एक नाटकीय लहजे में आगे बढ़े और सुनन्दा के पांवों में गिर कर गिड़गिड़ाने लगे, "मैं बेसहारा हूं। मुझे माफ करिये।"

सुनन्दा ने उन्हें माफ किया या नहीं, यह नहीं मालूम, क्योंकि तभी खटमल के काटने की वजह से उस की नींद टूट गयी। घिनौना जीवन हठात उस की आंखों के सामने आ गया। वही बदबू से भरा बिस्तर, मैली-कुचैली दीवारें और उसी बिस्तर पर इधर-उधर पड़े हैं नग्न, अर्धनग्न उस के भाई-बहिन। पास की नाली से असह्य दुर्गन्ध आ रही है।

मा की आवाज सुनायी पड़ी, "सुनि, उठ! जल्दी से सिगड़ी सुलगा ले। आज सोमवार है, तेरे बाबा को टिफिन देना होगा।"

तभी उसे याद आया कि कुछ दिन पहले चन्द्रकान्त घोष अपने साथ एक बहुत बड़ी भीड़ ले कर उसे देखने आया था। यह भी याद आया कि बाबा ने उन लोगों की कितनी खुशामद की थी . . और उस दिन बाबा ने करीब दस रुपये का चाय-नाश्ते का सामान उन लोगों के लिए मंगवाया था। लेकिन फिर भी चन्द्रकान्त ने उसे पसन्द नहीं किया था।

इस के बाद बाबा की आवाज सुनायी पड़ी, "अरे सुनती हो! आज शाम को सुनि को सजा कर रखना। हमारे आफिस से रामतारण मिश्र आयेंगे, उसे देखने।"

सुनन्दा लिखने-पढ़ने में अच्छी थी। हाईस्कूल प्रथम श्रेणी में ही पास किया था। लेकिन पिता ने उसे आगे नहीं पढ़ाया।

सुनन्दा उठी। इस के बाद खिड़की या दरवाजे से बाहर चली गयी। वापस लौट कर नहीं आयी। हो सकता है आप ने उस की तसवीर अखबार के लापता कालम में छपी देखी हो, या शायद न देख पाये हों।

अनु०—शेफाली चौधरी

यह बहका-बहका पवन, बावरा-सा मधुवन
यह सहमी-सहमी दृष्टि उचटता जाता मन
यह पथ-निहारती पलकों का झुक-झुक जाना
यह ठगी-ठगी-सी सांसों का रुक-रुक आना
शायद वासंती झोंकों में है गंध तुम्हारी सांसों की
फूली सरसों-सा महक-महक जाता मेरे उर का आंगन
यह चौंक-चौंक नजरों का यों बिखर जाना
यह सिहर-सिहर अधरों का यों सकुच जाना
यह छलक-छलक-सी जाती सुधियों की गागर
यह उमड़ा-उमड़ा सपनों का उन्मान सागर
शायद वासंती झोंकों में आहट है परिचित पांवों की
भोले फागुन-सा पुलक-पुलक जाता मेरे उर का आंगन
अधझुकी पलक में कैद क्षणों का वीतापन
अधखुले होंठ में सुधियों का बंदी सावन
बिखरी अलकें सहमे गीतों की हमजोली
भादों की कुहुक-कुहुक करती कोयल भोली
शायद वासंती झोंकों में तुम ने अपने स्वर भेजे हैं
'तुम लौट रहे', यह सोच-सोच बौराया है मन का आंगन
— सीता भटनागर —

● सपनकुमार

हैम्पशायर के पास माउंट वाशिंगटन की चोटी पर एक छोटी-सी वेधशाला है। उस की स्थापना इंटरनेशनल पोलर ईयर कमीशन के सहयोग से हुई थी। यह कमीशन १९३२-३३ में अनेक अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक समस्याओं की छानबीन करने के लिए स्थापित हुआ था। जब कमीशन ने अपना कार्य पूरा कर लिया तो उसे विघटित कर दिया गया।

माउंट वाशिंगटन वेधशाला भी समाप्त करने के प्रस्ताव सामने आये, लेकिन नवयुवक वैज्ञानिक सैल्वेडोर पैग्लियूका को यह बात जची नहीं। उस ने अपने साथियों एलेक्जेंडर मेकेंजी और वेंडेल स्टीफेंसन से कहा कि हमें किसी-न-किसी तरह माउंट वाशिंगटन वेधशाला को बनाये रखना चाहिये, क्योंकि यह ६,२८८ फुट ऊंचे पर्वत पर स्थित है तथा इतनी ऊंचाई से वातावरण का अध्ययन करने के लिए बहुत ही कम वेधशालाएं बनायी गयी हैं। वेधशाला का खर्च कैसे चलाया जाये, यह एक समस्या थी। दो वर्षों से एक सार्वजनिक संस्था उस का खर्च दे रही थी, लेकिन अब उस की दिलचस्पी वेधशाला में कम होती जा रही थी।

११ अप्रैल, १९३४ की मध्यरात्रि। वातावरण में उस दिन जो चमत्कार प्रदर्शित होने वाला था, उस का पता पैग्लियूका और उस के साथियों को नहीं था। रोज की तरह वे उस दिन भी हवा की गति, तापमान इत्यादि का लेखा-जोखा तैयार कर रहे थे। हवा की औसत गति १०० मील प्रति घंटा थी। बीच-बीच में यह गति १३६ मील तक पहुंच जाती। यह गति 'हरीकेन' नामक खौफनाक तूफान से भी दुगुनी थी, लेकिन पैग्लियूका तथा उस के साथियों को चौंकने की आवश्यकता न पड़ी, क्योंकि माउंट वाशिंगटन की चोटी पर ७५ मील की गति से तो प्राय रोज ही हवाएं चलती थीं। इन नवयुवक वैज्ञानिकों को मालूम नहीं था कि आज हवा की तेजी इतनी बढ़ने वाली है कि उस का लेखा-

जोखा तैयार करने वाली वेधशाला के रूप में माउट वाशिंगटन वेधशाला का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। विश्व में आज तक उतनी तेज हवा का रिकार्ड नहीं टूटा है।

दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर बहने वाली उस हवा में अब विराट-काय बादल आने लगे। बादलों का यह सागर वातावरण की पारदर्शता को निगल रहा था। यन्त्रों ने प्रदर्शित किया कि सभी बादल शून्य अश से भी अधिक ठडे हैं। अब बादलों में असख्य सफेद हिम-पखुरियां उड़ रही थी। ये पखुरिया उस प्रत्येक चीज से लिपट जाने की कोशिश कर रही थी जिसे छूने का उन्हें अवसर मिल जाता था। एक पखुरी पर दूसरी और दूसरी पर तीसरी पखुरी जमती जाती। सभी खुली हुई चीजों पर हिम की मोटी पर्त जमने लगी थी।

माउंट वाशिगटन की वेधशाला के अतर्गत लकड़ी के बने चार मामूली मकान थे। उन में से एक मे ये तीनों वैज्ञानिक वातावरण का अध्ययन करते हुए जाग रहे थे। रात भर वे वारी-वारी से सोते और जागते रहे, लेकिन जब १२ अप्रैल की सुबह हुई तो वातावरण ऐसा हो गया था कि उसे सामान्य तो कहा ही नही जा सकता था। पैग्लियूका ने आश्चर्य व्यक्त किया, "मुझे लगता है, यह कोई सुपर-हरीकेन है जो अपनी गति बढाता जा रहा है।"

एनीमोमीटर का बहुत बारीकी से अध्ययन किया जा रहा था। यह यत्र हवा की तेजी नापने के लिए एक मीनार पर लगाया गया था। अन्य यत्रों पर भी वैज्ञानिकों की उत्सुक आखें लगातार टिकी हुई थी ताकि तैयार हो रहे लेखे-जोखे का क्रम टूटने न पाये।

सात बज कर पैतालीस मिनट पर हवा १४९ मील प्रति घटे की औसत गति से चल रही थी और कभी-कभी १६८ मील की अविश्वसनीय गति तक पहुचा जाती थी। इस वेधशाला में हवा की जो अधिकतम गति अब तक नोट हुई थी, उस से भी यह गति चार मील ज्यादा थी। सुपर-हरीकेन का बहाव बजाय घटने के और भी बढता हुआ प्रतीत हो रहा था।

वेधशाला की मीनार पर एक नये प्रकार का एनीमोमीटर लगाया गया था, क्योंकि इस पर्वत-शिखर को प्राय इतनी तेज हवाओं का सामना करना पड़ता था कि उन की गति नोट करना सामान्य एनीमोमीटर के बस की बात नही थी। आप ने वेधशालाओं के ऊपर चार बाहों का, जिन में से प्रत्येक के छोर पर कटोरा-सा बना होता है, यत्र अवश्य देखा होगा। यह हवा के बहाव में गोल-गोल घूमता है। नये एनीमोमीटर में ऐसी व्यवस्था थी कि यदि उस पर बर्फ जमने लगे तो बिजली का करेंट दे कर उसे पिघलाया जा सके, ताकि एनीमोमीटर को गोल घूमने में कोई दिक्कत न हो। घूमने की गति विद्युत के स्वचालित यत्रों द्वारा नोट की जा रही थी। घडी के समान टिक-टिक करने वाले एक विशेष यंत्र द्वारा वेधशाला के भीतर रह-रह कर आवाज हो रही थी। प्रत्येक टिक-टिक एनीमोमीटर द्वारा लगे चक्करों

की एक विशेष संख्या बताती थी।

सुबह एक क्षण के लिए भी हवा की तेजी कम नहीं हुई। वह बढ़ती ही रही। पौंग्लयूका सोचने लगा कि ऐसे वातावरण में वेधशाला से बाहर निकलना कितना मुश्किल है। वेधशाला के कुछ यंत्र थोड़ी-थोड़ी दूरियों पर जमीन में लगे हुए थे। खुद जा कर उन की देखभाल करना आवश्यक था, लेकिन ऐसे वातावरण में बाहर कैसे निकला जाये?

एलेक्जेंडर मेकेंजी ने अपने साहस का परिचय दिया। वह बाहर निकला। हवा के जोरदार थपेड़े ने उसे मजबूर किया कि वह जमीन पर लेट जाये। लेट कर छिपकली की तरह सरकता हुआ वह उन यंत्रों की देखभाल के लिए जाने लगा। यदि उस ने पूरे चेहरे को विशेष प्रकार के पहनावे से ढाक न रखा होता तो आगे बढ़ना मुमकिन ही नहीं था। उस की पतलून हवा भर जाने से गुब्बारे की तरह फूल रही थी। पहाडी जमीन पर नुक्कड़ों को ढूढ़ता और उन की आड़ लेता हुआ वह आगे बढ रहा था। कई बार एक नुक्कड़ की ओट से दूसरे नुक्कड तक पहुंचते समय हवा का जोर उसे निर्दयता से जमीन पर पटक देता। उस का जो बुरा हाल हो रहा था, उस पर वेधशाला की खिड़की में से पौंग्लयूका की उत्सुक आंखें लगी हुई थीं। एलेक्जेंडर ऐसा लग रहा था मानो बर्फ का बना हुआ, चलता फिरता पुतला हो।

सब से खतरनाक था मीनार पर चढ़ कर एनीमोमीटर की जांच-पड़ताल करना। यह काम जितना खतरनाक था उतना ही आवश्यक भी, क्योंकि बिजली द्वारा गरमी देने की व्यवस्था होने के बावजूद एनीमोमीटर की बांहों पर बर्फ जमती जा रही थी। इस से बांहों के वजन में फर्क आने लगा था, जो घूमने की गति में गड़बड़ी पैदा कर सकता था। बर्फ की मात्रा यदि इसी तरह बढ़ती रही तो एनीमोमीटर का घूमना रुक सकता था।

तीनों वैज्ञानिक अपनी जान हथेली पर रख कर एक-एक बार मीनार पर चढ़े। उन में से प्रत्येक ने यही महसूस किया कि वेधशाला के कमरे में वापस पहुंचा कर उस ने नया जन्म पाया है। मीनार के ऊपर पहुचने के बाद वहां पर जमी बर्फ को हटाने में स्वय उन्ही हवाओं से मदद मिल जाती थी जिन के कारण एनीमोमीटर पर बर्फ जमी थी। हवाओं की तेजी में हिम-पखुरिया एक-दूसरी पर ढेर के रूप में जम तो जाती थीं, लेकिन यदि उन्हें हाथ से जरा भी छेड़ा जाता तो उन का ढेर उसी क्षण टूट जाता और तेज हवाएं पखुरियों को बहा कर आगे ले जाती।

दोपहर तक बादल और हिम-पखुरियां इतनी बढ़ गयी कि मीनार तक पहुंचना और ऊपर चढ़ना असंभव-सा हो गया। लगातार पाच मिनट का समय ऐसा आया जब हवा की तेजी १८८ मील प्रति घंटा हो गयी। मीनार की खिडकिया मजबूती से बंद कर दी गयी थीं लेकिन वे ढीली हो कर भीतर की तरफ फूल आयी थीं। बैरोमीटर का पारा कभी ऊपर चला

जाता, कभी नीचे। मीनार तथा उस के नीचे स्थित इस कमरे में वातावरण का दबाव बहुत कम हो गया था। तीनों वैज्ञानिकों को सांस लेने में दिक्कत हो रही थी। उन्हें महसूस हो रहा था मानो वे किसी ऐसे हवाई-जहाज में बैठे हों जो बडी तेजी से ऊंचाई की ओर बढ रहा हो।

एक बजे के बाद मीनार का एनीमोमीटर बर्फ से ढक गया। पींग्लयूका ने घोषणा की कि वह मीनार पर चढने जा रहा है। उसे मना तो नही किया गया, लेकिन उस के मित्रों के हृदय आशंका से कांप उठे। १५० मील की गति से चलने वाली हवा में बडे-बडे वृक्ष जड से उखड़ जाते हैं। इस वक्त तो हवा प्राय २०० मील की तेजी से बह रही थी। उस में पींग्लयूका किसी तिनके की तरह उड जाये तो क्या आश्चर्य? लेकिन ज्यों-ज्यों हवा की तेजी बढ रही थी और एनीमोमीटर पर जमती हिम-पखुरियों का भार अधिक हो रहा था, पींग्लयूका महसूस कर रहा था कि मीनार पर चढना और बर्फ हटाना उतना ही जरूरी हो गया है।

दरवाजा खोल कर वह बाहर आया। उसी क्षण हवा के तेज थपेडे ने उस के शरीर को मकान की दीवार के साथ पत्थर की तरह पटक दिया मानो कील की तरह जड दिया गया हो। इस प्रकार पींग्लयूका को लगा कि वह जमीन पर लेट भी न सकेगा। किसी तरह उस ने अपने शरीर को दीवार के साथ रगडते हुए जमीन तक पहुंचाया और फैला दिया। फिर धीरे-धीरे छिपकली की तरह सरकता हुआ वह मीनार तक पहुचा और उस की सीढी पर पैर जमाने लगा। जब जमीन पर हवा के जोर का यह हाल था तो आकाश की ओर उठी, छरहरी मीनार पर चढने पर न मालूम क्या होगा! सीढी बर्फ से ढकी हुई थी। उस का कोई हिस्सा ऐसा नही था जहा ठीक से पैर जमाया जा सके। चिकनी बर्फ पर पैर रखते हुए पींग्लयूका ऊपर जाने लगा। एक-एक कदम के लिए जबरदस्त कोशिश करनी पड़ती थी।

एकाएक हवा ने उस की मजबूत पोशाक चीर दी। कमर के पास से इतनी हवा पोशाक के भीतर आ घुसी कि पींग्लयूका को लगा अभी वह गुब्बारे की तरह हवा में उड जायेगा—तब मौत से उसे किसी हालत में नही बचाया जा सकता था। उस ने अपनी पूरी ताकत से सीढी का लोहा जकड लिया। एनीमोमीटर तक पहुचाने के लिए अभी तीन सीढ़िया शेष थी। एक, दो . . और अब तीन! पींग्लयूका ने गहरी सांस भर कर हाथ बढाया और बर्फ को कुरेदा। तेज हवाओं ने तुरन्त ही कुरेदी हुई पखुरियों को उड़ा दिया। साथ-साथ और भी पखुरियां उडी। एनीमोमीटर बहुत जल्दी बर्फ से मुक्त हो गया। उस की गरम बांहें बिना किसी दिक्कत के हवा की तेजी नापने लगी।

पींग्लयूका नीचे जाने लगा। जितना खतरनाक ऊपर चढना था, उस से भी ज्यादा खतरनाक था उतरना, क्योंकि वातावरण की अपारदर्शता के कारण पींग्लयूका को यही लगा कि वह हवा

में टंगा हुआ है और नीचे जाने के लिए सीढी है ही नहीं। अंदाजे से पैर जमाता हुआ और फूली हुई पोशाक को किसी तरह समेटता और अपना संतुलन कायम रखता हुआ पौंग्लयूका एक-एक सीढी नीचे उतर रहा था। उस ने सोचा कि यदि वह हवा में उड जाये और मर जाये तो भी खास फर्क नहीं पडता था क्योंकि एनीमोमीटर पर से बर्फ हटाने का महत्त्वपूर्ण कार्य तो वह कर ही चुका था। इसी भावना ने पौंग्लयूका में नया साहस भर दिया।

पौंग्लयूका ने जब वेधशाला के उस कक्ष में प्रवेश किया तो उस के दोनों साथियों की सांस ऊपर चढी हुई थी। पौंग्लयूका को देखते ही वे प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने कहा, "भगवान की कृपा है कि तुम आ गये, वरना हम ने तो सोचा था कि . . ." उन्होंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया क्योंकि क्या सोचा था, यह कहने की जरूरत नहीं थी। पौंग्लयूका ने स्वयं ही देखा कि वेधशाला के यंत्र हवाओं की जो गति प्रदर्शित कर रहे थे, वह थी २०० मील प्रति घंटा। इतनी हवा में किसी व्यक्ति का ऊंची मीनार पर चढना और सुरक्षित वापस आ जाना एक आश्चर्य ही कहा जा सकता था।

एकाएक यंत्रों ने और ज्यादा तेजी प्रदर्शित करना शुरू किया—२२९ मील !

पौंग्लयूका की भौंहें सिकुड गयी। कहीं ऐसा तो नहीं कि वेधशाला के यत्रों में गडबडी आ गयी हो और वे गलत आंकडे नोट कर रहे हों ? बाहर हो रही सूं-सूं की भयानकता बढती जा रही थी। कमरे की लकडी की दीवारें बार-बार हिल उठती थीं। इतनी तेज हवा में विद्युत के तारों का अव्यवस्थित हो जाना किसी तरह असम्भव नहीं था।

एनीमोमीटर के चक्करों को नापते, टिक-टिक करते इस यत्र की आवाजों को तूफान के शोर में बडी मुश्किल से सुना जा सकता था। पौंग्लयूका उस के करीब जा कर खडा हो गया ताकि प्रत्येक "टिक" को बिना किसी गलती के सुना जा सके। एक भी टिक की भूल होना बहुत बडा अर्थ रखता था। पौंग्लयूका उत्तेजना के कारण जल्दी-जल्दी सांसें ले रहा था। यत्र २३१ मील प्रति घंटे की चाल प्रदर्शित कर रहा था।

'उफ ! दुनिया के लोग मानेंगे ही नहीं कि इतनी तेज हवाएं बह सकती हैं !' पौंग्लयूका ने सोचा। वेन्डेल स्टिीफेन्सन और एलेक्जेंडर मेकेंजी की ओर देखते हुए उस ने कहा, "हमें यत्रों की जाच करनी चाहिये। मुझे शक है कि उन में कोई गडबडी है। यह तूफान सुपर-हरीकेन हो, तो भी वह इतना तेज हो सकता है, मुझे इस में शक है। टाइमिंग चेक करो। 'केलिब्रेशन कर्व' की बारीकी से जांच करो। सभी घडियों को चेक कर लो।"

अत्यत संवेदनशील क्रोनोमीटर द्वारा घड़िया चेक की गयी। उन में किसी तरह की गडबड़ी नहीं थी।

गड़बडी यत्रों में न सही, लेकिन मनुष्यों में हो सकती थी। ये तीनों वैज्ञानिक अपनी उत्तेजना के कारण दो की जगह पाच न गिन रहे हों।

हवा की गति अब थोडी कम हुई थी, लेकिन फिर भी वह २०० मील की चाल से कम नही थी। एलेक्जेण्डर मेकेजी वेधशाला के रेडियो ट्रांसमिटर की तरफ बढा। इतनी तेज हवाओं में भी ट्रांसमिटर खराब नही हुआ था क्योंकि उस में "विण्डप्रूफ एन्टेना" लगा हुआ था। एलेक्जेण्डर मेकेजी ने डाक्टर चार्ल्स ब्रूक्स से संपर्क स्थापित करने के लिए ब्ल्यू हिल्स वेधशाला (बोस्टन के पास) से संपर्क स्थापित किया। डाक्टर ब्रूक्स हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध वेधशास्त्री थे।

एलेक्जेंडर मेकेजी ने उन से कहा, "हमें शक है कि हम से गणित की भूलें हो रही हैं। यंत्र सही हैं लेकिन उन का लेखा-जोखा हमारी उत्तेजना के कारण गलत हो रहा है। कृपया हमारी मदद करिये।"

एलेक्जेंडर मेकेजी ने एनीमोमीटर का चक्कर नाप रहे, टिक-टिक करते उस यंत्र का संपर्क रेडियो सर्किट से जोड दिया। यंत्र की प्रत्येक टिक-टिक अब वातावरण में प्रसारित हो कर डाक्टर ब्रूक्स के पास पहुंच रही थी। कुछ देर में डाक्टर ब्रूक्स ने कहा कि माउंट वाशिंगटन के वैज्ञानिकों ने जो गणनाएं की थीं, उन में किसी तरह की भूल नहीं थी।

अगले दिन पूरे विश्व की जनता ने आश्चर्यजनक तेजी की उन हवाओं का रोमांचक विवरण पढा। सभी अखबारों ने लिखा था कि आज तक अधिकृत रूप से हवाओं की जो तेजी नोट की गयी है, उस में इतनी तेजी कभी सामने नही आयी। कई वैज्ञानिकों ने कहा कि वेधशाला के यंत्रों की सूक्ष्मतापूर्वक जांच की जानी चाहिये। उन्हें यंत्रों में गड़बड़ी का पूरा शक था। वेधशाला के विशेष एनीमोमीटर को मीनार से निकाल कर वाशिंगटन ले जाया गया। वहां एक विण्ड-टनल में उस की जांच करने पर पता चला कि एनीमोमीटर में कोई गड़बडी नहीं थी। माउंट वाशिंगटन वेधशाला के अन्य यंत्रों को भी अच्छी तरह जांचा-परखा गया। वे सब ठीक थे।

विश्व की अधिक-से-अधिक तेज हवाओं का लेखा-जोखा तैयार करने के कारण माउंट वाशिंगटन वेधशाला इतनी प्रसिद्ध हो गयी कि उसे आर्थिक सहायता देने वालों की कमी न रही।

लता ने नया कुत्ता खरीदा था। पड़ोसिन से उस की तारीफ करती वह अघाती न थी। एक दिन वह बोली, "मैं जानती हूं कि तुम उसे अच्छी नस्ल का नहीं समझतीं, लेकिन क्या मजाल है कि घर में कोई चोर या उचक्का घुस आये और कुत्ता हमें होशियार न करे!"

पड़ोसिन बोली, "क्या भौंकने लगता है जोर-जोर से?"

"वह उस समय सोफे के नीचे घुस जाता है," लता ने जवाब दिया।

परेश

श्री नेहरू की शव-यात्रा में लाखों लोग गये। दाह-संस्कार तो एक आदमी भी कर सकता था, इतने लोग क्यों गये? पहली बार मुझे एक प्रश्न सलीब-सा लगा है। वैसे 'प्रश्न सलीब नहीं होते' नामक एक कहानी मैं लिख चुका हूं—परन्तु वह कहानी थी और यह सच है। एक सच था सर्वेश्वर की कविता का, कि हमें अपनी समाधियों का प्रबंध पहले ही कर लेना चाहिये। वह सच भी कविता का था। मुक्तिबोध ने ऐसा कोई प्रबंध नहीं किया और सलीब पर टंगा रहा। अच्छा हुआ यह ईसा बिना किसी ऐसे बोध के मुक्ति पा गया।

मरने की खबर अखबार ने दी। कैसा लगेगा—किसी आत्मीय के मरने की खबर अखबार दे! खैर यह तो मृत्यु की खबर थी, 'नदी के द्वीप' में गौरा को भुवन के अंतिम दिनों के समाचार केवल अखबारों में पढ़ने को मिलते हैं—यह स्थिति भी सुन्न कर जाती है।

दो-तीन घंटे सुबह के रविवासरीय पृष्ठों पर जमाने के लिए बड़े इतमीनान से कामन-रूम में घुसा, अचानक अखबार पर नजर पड़ी—मुक्तिबोध डेड . . डेड! मुझे लगा अचानक मेरी धड़कनों के बीच यह 'डेड' नाम का कोई पत्थर फंस गया है। सहारे के लिए इधर-उधर देखा, कुछ लोग बैठे थे, पर कोई परिचित नहीं—कैसे रोऊं, तो भी हताश-सा लगभग चिल्लाया, "दोस्तो, मेरा एक मित्र मर गया है . . "

"कहां? कब?"

"यह अखबार कह रहा है।"

'धर्मयुग' की खबरों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था कि प्रेस में सामग्री जाने के वक्त तक की खबरों के अनुसार मुक्तिबोध संज्ञाशून्य हैं इत्यादि... इतमीनान से अजितकुमार की कविता और शमशेर का लेख पढ़ गया। भला इतना बड़ा अस्पताल मुक्तिबोध को कैसे मरने देगा?

यह बात तो समझ में आती है कि मृत्यु का खेल किसी की समझ में नहीं आता, परन्तु इतना असामयिक—रांगेय राघव, मुक्तिबोध—

"कौन थे साहब, मुक्तिबोध?"

मैं ने जवाब नही दिया। सुवह का नाश्ता नही किया था और अखबार पढ़ने से पहले दो अडों के आमलेट पर टूट पडने की तैयारी थी। कामन-रूम से वाहर निकला। पसीने के मारे शर्ट शरीर से चिपकी हुई, दाढ़ी वढी हुई, कमर झुकी हुई, फिर भी चाल में न जाने किस नशे का इस्पात ! डिपार्टमेंट गया—कोई पिकनिक थी, आठ वजे सब को इकट्ठा होना था। घडी जाने कहा छूट गयी थी ! दूर से देखा, सब एकदम ववइया स्टाइल में वेशभूषा वनाये, गोया 'पजोर' नही 'एलिफेंटा' जा रहे हों। मैं ने स्वयं को थामने के लिए एक अध्यापक का हाथ पकड लिया, वैसे यह अशिष्टता थी। वे अध्यापक ऊपर से 'नयी कविता' के विरोधी माने जाते हैं, परतु मृत्यु से किसी का क्या विरोध
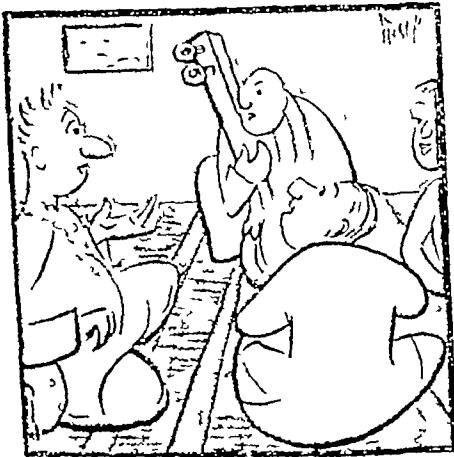
"मेरा खयाल है कि 'काफी' से अच्छी चाय ही रहेगी। उस के वाद कोई फिल्मी धुन सुनाइये।"

हो सकता है।

"डाक्टर साहव ! मुक्तिवोध मर गये . . ."

"हा, मैं ने अभी अखबार देखा है। इसी खयाल में आया था कि पिकनिक पोस्टपोन हो जायेगी।"

"यह तो कल ही रेडियो पर आ गया था," किसी कार्टून ने कहा और ट्रांजिस्टर का वाल्यूम वढा दिया।

एक निकटतम मित्र मेरी हालत देख कर हसने लगे। मुझे गुस्सा आ गया। वोला, "मुक्तिबोध मर गया और तुम हस रहे हो ?"

'चवल की घाटी में' शीर्षक उन की अतिम लवी कविता 'कल्पना' में छपने से पहले 'अभिव्यक्ति' के लिए आयी थी

सचमुच
प्रस्तरीभूत मैं गतियों का हिम हूं
वीच ही में टूट गया कोई पराक्रम हूं
चट्टानों-टीलों की जमी हुई तह से
दुनिया की पाषाणीभूत सतह से
सामंजस्यों के कठघरे में खुद
संगीत-वद्ध ही रहने की है जिद
परंतु, संतुलात्मक स्थितियां
जैसी कि वे हैं
छि: हैं, थू: हैं, हे: हैं . . .

"लेखन ही नहीं, उन्होंने मजदूरों के वीच भी प्रत्यक्ष काम किया है," एक अन्य मित्र ने मुक्तिवोध के सस्मरण सुनाये।

"पिकनिक में चलियेगा—मैं भी लेट ही जाऊंगा," उन्होंने संभवत: मुझे उवारने के लिए कहा, पर मुझे झटका लगा और मैं उठ खडा हुआ।

यहां भी आंख खुल गयी। बाहर निकल कर खुली हुई आंखों से मैं इस खुले हुए शहर को अच्छी तरह देखने लगा। अचानक आचार्य-जी की नेम-प्लेट आंखों के सामने आ गयी। नये मकान की रसोई में से निकल कर ऊपर छितरता हुआ आस-मानी धुआं मुझे बड़ा अच्छा लगा—कितना स्वाभाविक! वैसी ही जिंदगी है, मैं इसे क्यों चौंकाऊं? तो भी अंदर घुस गया। रविवार—गिर्धीजी गाड़ी को नहला रहे थे। मैं नकचा कर एक तरफ खड़ा हो गया, "कोई नौकरी मिलेगी?" मैं ने दीनता से कहा।

गिर्धीजी डर गये। "नहीं, यहां सब अपना काम खुद करते हैं, कोई नौकरी नहीं है," वे बोले। एक मजाक से अधिक मेरी ताकत थी भी नहीं। पूछा "आचार्यजी चाय ले चुके?"

"हां।"

"दूसरी चाय पर उन से कहियेगा कि मुक्तिबोध मर गये।"

"कोई राइटर थे?"

"आप ने नहीं पढ़ा?"

"कहानियों में शायद नाम देखा है।"

"हां, वे ही।"

"आप को काफी दुख है?"

मैं हंस पड़ा। "नहीं भाई, वे दिल्ली में मरे हैं तब मुझे यहां चंडी-गढ़ में दुख कैसे हो सकता है? अच्छा भाई . . ."

फिर पड़ोसी हिंदी के डाक्टर के कमरे को खोला और कहा, "मुक्ति-बोध मर गये।"

"कौन मुक्तिबोध?"

मैं ने किवाड़ फिर भेड़ दिये और हिंदी संसार को यह समाचार देने की उत्तेजना में मुड़ा कि हिंदी का डाक्टर मुक्तिबोध को नहीं जानता, परंतु किवाड़ बंद करते-करते उन की आवाज बाहर आयी, "गजानन . . . "गजानन भूतगणादिसेवितम् . . ."

दिल्ली के कितने ही भूत-गणों ने पहरा दिया, परंतु यह विषपायी अपने ही जहर से मर गया। मेरे कमरे के सामने सड़क है जिस के एक सिरे पर अस्पताल है और दूसरे पर श्मशान। कई बार मैं एक आदमी को स्ट्रेचर पर कुछ लिटाये हुए ले जाते देखता हूं। दो-तीन घंटे बाद वह स्ट्रेचर जब लौटता है—उस पर केवल एक फावड़ा होता है। यह कितना प्रतीकात्मक है! एक शव-यात्रा के लिए एक स्ट्रेचर, एक फावड़ा और अस्पताल का एक कर्म-चारी काफी हैं। अजीब बात है कि इतने सारे आदमी नेहरूजी की शव-यात्रा में गये और यही बेवकूफी मुक्ति-बोध के कई मित्रों ने भी की। छुट्टी का दिन था, हमारी तरह वे भी किसी पिकनिक पर जा सकते थे। ●

"जब मैं बिजली के चमत्कारों के बारे में पढ़ता हूं तो सोचता रह जाता हूं।"

"बिजली का यही चमत्कार क्या कम है कि आप कुछ सोचते तो हैं!"

औरंगजेब चौंक कर खड़ा हो गया। सचमुच उस के लिए यह विचित्र दृश्य था। उस ने एक बार अपनी आंखें मलीं—कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है? नहीं, वह अपूर्व लावण्य-मयी युवती अब भी प्रयत्न में संलग्न थी। उस के हाथ में अब भी आमों से लदी एक डाली थी किन्तु वह एक ऐसे आम को तोड़ना चाहती थी जो उस की पहुंच से बाहर था। कुछ सोच कर औरंगजेब दबे पांव उस पेड़ की ओर बढ़ा और हाथ बढ़ा कर उस आम को तोड़ लिया।

युवती ने घूम कर विस्मयपूर्वक अपनी बड़ी बड़ी आंखों से उसे देखा तथा कुछ सकुचित हो उठी। औरंग-जेब ने हाथ का आम उस की ओर बढ़ा कर अत्यन्त मीठे स्वर में कहा, "यह लीजिये। आप . . ."

आगे कुछ कहने से पहले ही युवती ने बेझिझक आम ले लिया लेकिन उस की भौंहों पर बल पड़ गये। अस्फुट स्वर में बोली, "कोई शहजादे लगते हो!"

ऐतिहासिक कहानी

अनन्त चौरसिया

"शुक्रिया !" औरंगजेब मुसकराया ।

किंतु दूसरे ही क्षण युवती ने औरंगजेब के ऊपर आम फेंक दिया और गुस्से से कांपती हुई बोली, "आप इस बाग में किस की इजाजत से घुसे ?"

क्रोध से औरंगजेब का भी चेहरा लाल हो उठा लेकिन इस अपमान को वह पी गया । वास्तव में युवती के क्रोध भरे स्वर भी उसे आत्म-विस्मृत कर रहे थे । उस ने युवती के दुपट्टे का सिरा लपक कर पकड़ लिया और बोला, "इतना गुस्सा किस पर ? मुझ पर या आम पर ?"

"आप चले जाइये यहां से !" युवती क्रोध से कांपती हुई बोली ।

"मैं चला जाऊं ! मैं ने क्या खता की है ?"

"चुपचाप चले जाओ वरना खाल खिंचवा ली जायेगी ।"

"जानती हो, तुम किस से बातें कर रही हो ?" अब औरंगजेब की भौंहें तन गयीं ।

"इतनी गुस्ताखी ?"

"शहंशाहे-आलम शाहजहां का बेटा, शाहजादा औरंगजेब, किसी को माफ करना नहीं जानता," औरंगजेब की आंखें लाल हो उठीं ।

"आप चाहे जो हों, यहां से निकल जाइये," उस ने अपना दुपट्टा झटके से छुड़ा लिया, "मैं भी सूबेदार मीर खलील की दुख्तर हूं ।" और वह तेजी से एक ओर चली गयी ।

औरंगजेब को लगा जैसे किसी ने उस के मुंह पर थप्पड़ मार दिया हो । कुछ देर तक वह बुत की तरह खड़ा रहा फिर अचानक बडबड़ाया—सूबेदार मीर खलील की दुख्तर ! तो क्या वह खाला-अम्मी की लडकी है ! लेकिन गुस्ताख कितनी है !

साम्राज्य-विस्तार की योजना को कार्यान्वित करने के लिए दक्षिण की ओर जाते हुए औरंगजेब ने बुरहानपुर में डेरा डाला था । यहां का सूबेदार मीर खलील उस का मौसा था । मौसी से मिलने की इच्छा के कारण ही उस ने पड़ाव डाला था । मीर खलील अभिमानी व्यक्ति था

दिन जब औरंगजेब का क्रोध अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया तो उस ने कुछ निश्चय कर ही लिया। तेजी से म्यान पर हाथ रखे वह हरम में पहुंचा। उस का सारा बदन उत्तेजना से कांप रहा था। भीतर पहुंच कर वह चीखा, "हीरा !" उस की आंखें जल रही थीं। इतने दिनों की संतप्तता ने उसे और भी कठोर तथा शुष्क बना दिया था।

हीरा शृंगार किये हुए मसनद पर बैठी थी। आवाज सुनी तो उठ खड़ी हुई। मुसकरा कर बोली, "फरमाइये शहजादे-आलम !"

इस मुसकराहट और सौंदर्य के सामने औरंगजेब की सारी कठोरता बर्फ-सी गल गयी। उस के निश्चय का महल धड़धड़ा कर गिर पड़ा। वह हक्का-बक्का-सा हीराबाई को देखता ही रह गया।

मधुर स्वर में हीरा फिर बोली, "आप इस तरह मुझे क्यों देख रहे हैं ?"

औरंगजेब की गरदन शर्म से झुक गयी।

"फरमाइये वलीअहद ! आप की क्या खिदमत करूं ?" हीराबाई की आंखें चमक उठीं, "मुझे कत्ल करने आये हैं ? सुभान अल्लाह, यह हौसला भी पूरा कर लीजिये।"

"मैं तुम्हें प्यार करता हूं हीरा !"

"यह मैं जानती हूं।"

"तो तुम यह क्यों नहीं जान पातीं कि मैं तुम्हारे बगैर जिंदा नहीं रह सकता।"

हीराबाई उस के सामने आ कर गंभीरतापूर्वक खड़ी हो गयी। "क्या सचमुच तुम मुझे प्यार करते हो ?"

औरंगजेब ने प्यासी आंखों से उसे देखा—अपूर्व सुंदरता सज-धज कर उसे प्रेमाग्नि में जलने का निमंत्रण दे रही थी। वह और भी व्याकुल हो उठा।

"क्या तुम्हें यकीन नहीं होता ?"

हीराबाई की आंखों में एक लपट-सी उठी, "इस का प्रमाण ?"

औरंगजेब उठ खड़ा हुआ, "क्या मेरी हालत इस का प्रमाण नहीं ?"

हीराबाई बस मुसकरा दी। फिर उस ने पूछा, "इम्तहान दे सकोगे ?"

औरंगजेब की आंखें आश्चर्य से फैल गयीं, "क्या इतना सच तुम्हारे लिए काफी नहीं है ?"

हीराबाई खिलखिला कर हंस पड़ी, "मुझे मेरे सवाल का जवाब चाहिये।" और वह तेजी से एक ओर चली गयी। औरंगजेब चकित-सा देखता ही रह गया।

थोड़ी देर बाद पायलों की झनकार ने उस की तंद्रा तोड़ी। औरंगजेब ने देखा—हीराबाई अपने हाथ में नीलम का चमकता हुआ प्याला लिए मस्ती से चली आ रही थी। वह चौंक पड़ा। हीराबाई पास आ कर खड़ी हो गयी और बोली, "वलीअहद, आप मुझे प्यार करते हैं ?"

स्वीकृति में औरंगजेब ने सिर हिलाया किन्तु निगाहें नीलम के कटोरे पर ही जमी रहीं।

"और मेरी खातिर जान भी दे सकते हैं ?" हीराबाई ने पूछा, "ताजो-तख्त, ऐशो-इशरत भी छोड़ सकते हैं ?"

"हां।"

"तो लो, इसे पिओ !" और उस ने प्याला औरंगजेब के सामने रख दिया,

कृष्णमुरारि त्रिपाठी

मेरे ताऊ, जिन्हें मैं अन्य लोगों के स्वर में स्वर दे कर 'बाबा' कहा करता था, राजर्षि टण्डन के पुराने मित्रों में थे—नाम था पंडित गणेशदीन त्रिपाठी। २७ नवम्बर, १९६१ को बाबा की मृत्यु हो जाने पर टण्डनजी ने हमारे परिवार के नाम संवेदना पत्र लिखवाया और अत्यधिक अस्वस्थ होते हुए भी उस पर अपने हस्ताक्षर किये। पत्र में बाबा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा था—"वे हिंदी और हिंदुत्व के कट्टर समर्थक थे। मैं उन का बड़ा सम्मान करता था। वे मुझ से एक वर्ष बड़े थे।"

बाबा और राजर्षि टण्डन का उस समय का साथ था जब कांग्रेस देश-सेवा की भावना ले कर पनप रही थी और विदेशी शासकों की जड़ हिलाने के लिए देशवासी अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं में संगठित हो रहे थे। बाबा उन दिनों प्रयाग की एक सक्रिय संस्था 'किसान-सभा' में कार्य कर रहे थे। टण्डनजी और उन की परस्पर आस्था सत्यनिष्ठा के आधार पर ही हुई और विचारों में किंचित मतभेद होते हुए भी दोनों एक दूसरे के प्रशंसक हो गये। टण्डनजी ने एक बार बाबा से कहा था, "आप 'किसान-सभा'-जैसी छोटी संस्था को छोड़ कर कांग्रेस में क्यों नहीं आ जाते?"

बाबा बोले, "उद्देश्य तो दोनों का एक ही है—देश की मुक्ति। फिर एक संस्था को छोड़ कर दूसरी में आने से लाभ क्या होगा?"

टण्डनजी हंस कर बोले, "अच्छा, ठीक है। आप न आइये। हम लोग रेलवे-लाइन की भांति समानान्तर चलेंगे।" और फिर दोनों ही खिल-खिला कर हंस पड़े।

टण्डनजी थे राधास्वामी और बाबा

इसलिए उस ने औरंगजेब का स्वागत तक नहीं किया बल्कि डेरा डालने के दिन ही वह अपने इलाके का दौरा करने चला गया था। इतना होने पर भी औरंगजेब मौसी से खुद ही मिलने तीन मील की दूरी तय कर के जैनाबाद पहुंचा था।

अब भी वह जैसे नशे में डगमगा रहा था। उस के सम्पर्क में न जाने कितनी सुंदरियां आयीं जो उस के एक ही इशारे पर अपना सब कुछ न्योछावर करने को तैयार थीं। उस ने उन को कभी महत्त्व नहीं दिया था और न ही उन की ओर आंख उठा कर देखा था। भोग-विलास से दूर रहने वाला शहजादा औरंगजेब अपने संयम, सदाचार और क्रोध के लिए प्रसिद्ध था। किंतु उस ने तो यहां और ही कुछ पाया। जिस गुस्ताखी को वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता था, वही गुस्ताखी उस ने बर्दाश्त की।

औरंगजेब ने एक लंबी सांस ली। तभी उस ने देखा, खाला-अम्मी उस को बलाएं लेती हुई चली आ रही थीं। उन के साथ खूबसूरत बांदियों का दल भी था। उस ने इतनी आवभगत कृत्रिम मुसकराहट से स्वीकार की। उन तमाम बांदियों के बीच उस की आंखें जिसे खोज रही थीं, वह नहीं दिखायी पड़ रही थी। दीवानखाने में जब वह अपनी मौसी के पास अकेला रह गया तो उस ने धड़कते दिल से पूछ ही लिया, "खाला-अम्मी, एक बात पूछूं ?"

खाला खुद अनुभव कर रही थीं कि शहजादा कुछ उदास है और कुछ खोया-खोया-सा भी। बोलीं, "पूछो बेटा !"

सारी हिचक एक तरफ रख कर औरंगजेब ने पूछ ही लिया, "वह लड़की कौन थी जो थोड़ी देर पहले आम तोड़ रही थी ?"

खाला का चेहरा सफेद पड़ गया और उन की अनुभवी निगाहों ने पलक झपकते ही सब-कुछ समझ लिया। बोलीं, "शहजादे ! तुम्हारा इकबाल बुलंद हो। वह तुम्हारे खालू-अब्बा-हुजूर की कनीज की लड़की हीराबाई है," और सब कुछ जान कर भी पूछा, "क्यों ?"

"मैं . . . " कहते-कहते औरंगजेब रुक गया लेकिन फिर बोला, "मुझे वह लड़की चाहिये। मैं उसे . . ."

"मैं समझ गयी शहजादे !" खाला बोलीं, "मगर यह बहुत मुश्किल है। तुम जानते ही हो शहजादे कि वे कभी भी ऐसा नहीं होने देंगे। वे तुम्हारी कोई इज्जत नहीं करते।"

"और खाला-अम्मी !" औरंगजेब उठ खड़ा हुआ, "औरंगजेब जिस चीज को पाना चाहता है, उसे वह ले कर ही रहता है।"

"खुदा रहम करे !" खाला के सामने एक भयानक दृश्य नाच उठा। वे घबड़ा उठीं।

अपने कैंप में पहुंच कर उस ने वजीरे-आजम शायस्ता खां को बुलाया और स्थिति बतलाते हुए कहा, "वजीरे-आजम, इस मसले को हल करना आप का काम है।"

शायस्ता खां कुछ देर सोचता रहा फिर प्रसन्नता से बोला, "वलीअहद का इकबाल बुलंद हो! सब ठीक हो जायेगा। सांप भी मर जायेगा और लाठी भी न टूटेगी।"

"कैसे ?"

और शायस्ता खां ने धीरे-धीरे औरंगजेब से कुछ कहा, जिसे सुन कर औरंगजेब प्रसन्नता से उछल पड़ा। काम के बहाने मीर खलील को दूर भेज दिया गया। हीराबाई को कैद कर के हरम में डाल दिया गया। मीर खलील को असलियत जब मालूम हुई, तब तक औरंगजेब अपने लाव-लश्कर के साथ आगे बढ़ चुका था।

अब जिस नयी स्थिति ने जन्म लिया था, वह औरंगजेब के लिए अत्यंत शोचनीय थी और समस्या सुलझने के बजाय उलझती ही चली जा रही थी। औरंगजेब हीराबाई का प्यार पाने के लिए तड़पता, किन्तु वह इधर दृष्टि भी नहीं उठाती थी।

औरंगजेब कहता, "हीरा, अगर मैं चाहूं तो क्या नहीं पा सकता लेकिन मैं प्यार का आदान-प्रदान चाहता हूं।"

हीराबाई जवाब देती, "मैं जानती हूं, आप सब-कुछ कर सकते हैं। आप अपनी ताकत से मेरे जिस्म की बोटी-बोटी अपने इस्तेमाल में ला सकते हैं। लेकिन प्यार क्या इसी तरह पाया जाता है ?"

"मुझ पर रहम करो हीरा!" जाती हुई हीराबाई का दुपट्टा वह आजिजी से पकड़ लेता, "आखिर तुम चाहती क्या हो ?"

"क्या इसी को प्यार कहते हैं ? इसी तरह दिल जीता जाता है ?" वह अपना दुपट्टा छुड़ा लेती।

"तुम इतनी संगदिल क्यों हो ? मैं तुम्हें अपनी बेगम बनाऊंगा। मुझ पर यकीन करो, मैं तुम से प्यार करता हूं।"

"और किस से इस तरह के वादे आप ने किये हैं ?"

"पाक परवरदिगार की कसम, हीरा, किसी से भी नहीं, किसी से भी नहीं।"

"कसम खा कर अपना झूठ न छिपाओ। अल्लाह से डरो वली-अहद!"

औरंगजेब बेकाबू हो उठता। उस का हाथ तलवार की मूठ पर चला जाता और वह दहाड़ उठता, "हीरा!"

किंतु हीरा हंस पड़ती। निर्भीकता से कहती, "हां-हां, चला दो मेरी गर-दन पर तलवार। इस से ज्यादा आप से हो ही क्या सकता है ? दुनिया देखेगी और कहेगी कि शहजादा औरंगजेब ने प्यार को तलवार से जीत लिया।"

औरंगजेब का हाथ जहां का तहां रह जाता, जैसे कोई हाथ को बांध देता हो। उस का गुस्सा समाप्त हो जाता और वह दयनीय हो उठता। वह कहता, "हीरा, पत्थरों के ढेर से भी झरने फूटते हैं लेकिन तेरे जिस्म के ढेर में पानी की एक बूंद भी नहीं। क्यों इतनी संग-दिल हुई तू ? क्यों अल्लाह ने तुझे हुस्न बख्शा ? क्यों तू मेरी नजरों के सामने पड़ी ?"

दिन इसी तरह कशमकश में बीत रहे थे। बात अब औरंगजेब की सहन-शीलता के बाहर पहुंच चुकी थी। एक

दिन जब औरंगजेब का क्रोध अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया तो उस ने कुछ निश्चय कर ही लिया। तेजी से म्यान पर हाथ रखे वह हरम में पहुंचा। उस का सारा वदन उत्तेजना से कांप रहा था। भीतर पहुंच कर वह चीखा, "हीरा!" उस की आंखें जल रही थीं। इतने दिनों की संतप्तता ने उसे और भी कठोर तथा शुष्क बना दिया था।

हीरा शृंगार किये हुए मसनद पर वैठी थी। आवाज सुनी तो उठ खड़ी हुई। मुसकरा कर बोली, "फरमाइये शहजादे-आलम!"

इस मुसकराहट और सौंदर्य के सामने औरंगजेब की सारी कठोरता वर्फ-सी गल गयी। उस के निश्चय का महल धडधडा कर गिर पडा। वह हक्का-वक्का सा हीराबाई को देखता ही रह गया।

मधुर स्वर में हीरा फिर बोली, "आप इस तरह मुझे क्यों देख रहे हैं?"

औरंगजेब की गरदन शर्म से झुक गयी।

"फरमाइये वलीअहद! आप की क्या खिदमत करूं?" हीराबाई की आंखें चमक उठीं, "मुझे कत्ल करने आये हैं? सुभान अल्लाह, यह हौसला भी पूरा कर लीजिये।"

"मैं तुम्हें प्यार करता हूं हीरा।"

"यह मैं जानती हूं।"

"तो तुम यह क्यों नहीं जान पातीं कि मैं तुम्हारे वगैर जिंदा नहीं रह सकता।"

हीराबाई उस के सामने आ कर गंभीरतापूर्वक खड़ी हो गयी। "क्या सचमुच तुम मुझे प्यार करते हो?"

औरंगजेब ने प्यासी आंखों से उसे देखा—अपूर्व सुंदरता सज-धज कर उसे प्रेमाग्नि में जलने का निमंत्रण दे रही थी। वह और भी व्याकुल हो उठा। "क्या तुम्हें यकीन नहीं होता?"

हीराबाई की आंखों में एक लपट-सी उठी, "इस का प्रमाण?"

औरंगजेब उठ खड़ा हुआ, "क्या मेरी हालत इस का प्रमाण नहीं?"

हीराबाई बस मुसकरा दी। फिर उस ने पूछा, "इम्तहान दे सकोगे?"

औरंगजेब की आंखें आश्चर्य से फैल गयीं, "क्या इतना सब तुम्हारे लिए काफी नहीं है?"

हीराबाई खिलखिला कर हंस पड़ी, "मुझे मेरे सवाल का जवाब चाहिये।" और वह तेजी से एक ओर चली गयी। औरंगजेब चकित-सा देखता ही रह गया।

थोडी देर बाद पायलों की झनकार ने उस की तंद्रा तोडी। औरंगजेब ने देखा—हीराबाई अपने हाथ में नीलम का चमकता हुआ प्याला लिए मस्ती से चली आ रही थी। वह चौंक पडा। हीराबाई पास आ कर खड़ी हो गयी और बोली, "वलीअहद, आप मुझे प्यार करते हैं?"

स्वीकृति में औरंगजेब ने सिर हिलाया किन्तु निगाहें नीलम के कटोरे पर ही जमी रहीं।

"और मेरी खातिर जान भी दे सकते हैं?" हीराबाई ने पूछा, "ताजो-तख्त, ऐशो-इशरत भी छोड सकते हैं?"

"हां।"

"तो लो, इसे पिओ।" और उस ने प्याला औरंगजेब के सामने रख दिया,

कृष्णमुरारि त्रिपाठी

मेरे ताऊ, जिन्हें मैं अन्य लोगों के स्वर में स्वर दे कर 'बाबा' कहा करता था, राजर्षि टण्डन के पुराने मित्रों में थे—नाम था पंडित गणेशदीन त्रिपाठी। २७ नवम्बर, १९६१ को बाबा की मृत्यु हो जाने पर टण्डनजी ने हमारे परिवार के नाम संवेदना पत्र लिखवाया और अत्यधिक अस्वस्थ होते हुए भी उस पर अपने हस्ताक्षर किये। पत्र में बाबा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा था—"वे हिंदी और हिंदुत्व के कट्टर समर्थक थे। मैं उन का बड़ा सम्मान करता था। वे मुझ से एक वर्ष बड़े थे।"

बाबा और राजर्षि टण्डन का उस समय का साथ था जब कांग्रेस देश-सेवा की भावना ले कर पनप रही थी और विदेशी शासकों की जड़ हिलाने के लिए देशवासी अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं में संगठित हो रहे थे। बाबा उन दिनों प्रयाग की एक सक्रिय संस्था 'किसान-सभा' में कार्य कर रहे थे। टण्डनजी और उन की परस्पर आस्था सत्यनिष्ठा के आधार पर ही हुई और विचारों में किंचित मतभेद होते हुए भी दोनों एक-दूसरे के प्रशंसक हो गये। टण्डनजी ने एक बार बाबा से कहा था, "आप 'किसान-सभा'-जैसी छोटी संस्था को छोड़ कर कांग्रेस में क्यों नहीं आ जाते?"

बाबा बोले, "उद्देश्य तो दोनों का एक ही है—देश की मुक्ति। फिर एक संस्था को छोड़ कर दूसरी में आने से लाभ क्या होगा?"

टण्डनजी हंस कर बोले, "अच्छा, ठीक है। आप न आइये। हम लोग रेलवे-लाइन की भांति समानान्तर चलेंगे।" और फिर दोनों ही खिल-खिला कर हंस पड़े।

टण्डनजी थे राधास्वामी और बाबा

वैष्णव सम्प्रदाय के अनुयायी। बाबा छुआछूत में विश्वास रखते थे। प्रथम बार जब टण्डनजी ने उन्हें अपने यहां भोजन के लिए आमंत्रित किया तो बाबा हिचकिचाये। टण्डनजी मुसकरा कर बोले, "पंडितजी, निमंत्रण के अर्थ हैं आहूत का सम्मान। जब मैं आप को आमंत्रित कर रहा हूं तो आप के नियम, स्वभाव और रुचि के अनुसार आप को सम्मानित करना मेरा कर्तव्य है। आप निसंकोच पधारें।" कहना न होगा कि जब बाबा टण्डनजी के यहां गये तो उन्हें वैष्णव सम्प्रदाय की मर्यादाओं के अनुकूल ही पवित्र फलाहार की सुन्दर व्यवस्था मिली।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के उपरान्त जब हिन्दी-शिक्षा और हिन्दी-प्रचार की बात आयी तो सम्मेलन के प्रथम तीन हिन्दी-अध्यापकों के तौर पर टण्डनजी ने श्री वियोगी हरि और श्री जाह्नवीशंकर शुक्ल के साथ बाबा को चुना। इन लोगों ने न केवल विभिन्न प्रान्तीय हिन्दी-प्रेमियों को सम्मेलन की परीक्षाओं की तैयारियां करायीं, अपितु दक्षिण भारतीय अहिन्दी-भाषियों के बीच हिन्दी का ठोस प्रचार भी किया। आज भी बाबा की डायरियों में अनेक दक्षिण भारतीयों के चित्र व पते सुरक्षित हैं। हिन्दी के लिए उन के निस्वार्थ कार्य को देख कर टण्डनजी ने कहा था, "सम्मेलन के प्रारंभिक काल में हमें ऐसे ही निस्वार्थ और कर्मठ हिन्दी-सेवियों की आवश्यकता थी, सो आप मिल गये।"

१९५२ की बात है। बाबा मुझे टण्डनजी के पास ले गये। बोले,

"कृष्णमुरारि ने इस वर्ष संस्कृत में एम. ए. कर लिया है। आगे इसे क्या करना चाहिये ?"

टण्डनजी बोले, "बी ए में तो तुम्हारी हिन्दी थी न ?"

मैं ने कहा, "जी नहीं, अंगरेजी साहित्य, संस्कृत और अर्थशास्त्र था।"

वे बोले, "तो फिर तुम अधूरे रह गये। हिन्दी में भी एम ए कर लो।"

बाबा ने कहा, "मगर हिन्दी तो हम लोगों की घर की भाषा है और इस की योग्यता हिन्दी एम. ए. से कहीं अच्छी है। फिर संस्कृत "

टण्डनजी बोले "फिर भी क्या हुआ। संस्कृत संस्कृत है और हिन्दी हिन्दी। हिन्दी की एक अलग डिग्री इन के पास होनी ही चाहिये।"

टण्डनजी की हिन्दी-आस्था पर मेरा मस्तक झुक गया और अगले ही दिन मुझे 'साहित्यरत्न' के लिए फार्म भर देना पड़ा।

बाबा उन पुराने राजनीतिक एवं हिन्दी-कार्यकर्ताओं में थे जिन का प्रकाश नये युग के अभ्युदय के साथ मन्द हो चुका था। वे विरक्त हो कर अपने गांव कर्नोली में रहने लगे थे।

टण्डनजी को भी जब अन्त में राजनीतिक व्याघात लगा और उन के स्वास्थ्य ने साथ नहीं दिया तो रोग-शय्या पर पड़े हुए उन्हें अपने पुराने कर्मठ मित्र स्मरण आने लगे। बाबा के पास टण्डनजी ने कई सन्देश भेजे और उन्हें प्रयाग बुलवाया।

बाबा उन के पास पहुंचे। उन्हें देखते ही, डाक्टरों की सख्त मनाही के बावजूद, टण्डनजी चारपाई पर उठ कर बैठ गये। बोले, "कुशल से तो हैं न ?"

बाबा ने कहा, "हां, मैं भली प्रकार हूं। आप लेट जाइये।"

टण्डनजी बोले, "मैं ने आप को इसलिए बुलवाया ताकि मैं जान सकूं कि मेरे पुराने साथियों की क्या स्थिति है। उन्हें दो रोटियां सुबह-शाम मिल तो जाती हैं।"

बाबा ने कहा, "आप निश्चिन्त रहें। मुझे खाने-पीने का कष्ट नहीं है। मेरे छोटे भाई और भतीजे सरकारी नौकरी में हैं। घर पर थोड़ी-बहुत खेती होती है। गाडी चल रही है।"

यह सुनते ही टण्डनजी ने सन्तोष की सांस ली और वे तकिये के सहारे धीरे-से लेट गये।

"मेरी लड़की का संगीत-अभ्यास मेरे लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ है।"

"वह कैसे ?"

"उस के कारण मेरा पड़ोसी अपना मकान आधे दामों में बेच गया और मैं ने उसे खरीद लिया।"

(खिमिया एक विधवा साध्वी स्त्री है और धनपाल उस का एकमात्र पुत्र। खिमिया का वृद्ध ससुर रोगी है, जो पड़ा-पड़ा घर को देखता भालता रहता है। गांव के एक पंडितजी रोगी थे, उन्हें देखने के लिए शहर से वैद्य बुलाया गया। पड़ोस की खिमिया बहिन ने शहर से आये हुए वैद्यजी तथा उन के अन्य साथियों को भोजन का निमंत्रण दिया। यह कथोपकथन उन्हीं से संबंधित है। भाषा दिल्ली के आस-पास के देहात की है। कथानक हास्यप्रद है)

खिमिया : वैदजी! आज रूखी-सूखी हमारे यहां खा लेयो।

वैद्यजी . मैं अकेला नहीं हूं, दो और मेरे साथ हैं।

खीमिया (मरे मन से) : उन को भी लिवा लैयो।

खीमिया घर पहुंच कर अपने बेटे धनपाल से बोली . भैया ! मैं आज वैद और उन के साथी दो बामनों को नौंत आयी हूं।

धनपाल · मा ठीक करो।

खीमिया : सब्जी तो आलू हैं घर में या बरुत्ता।
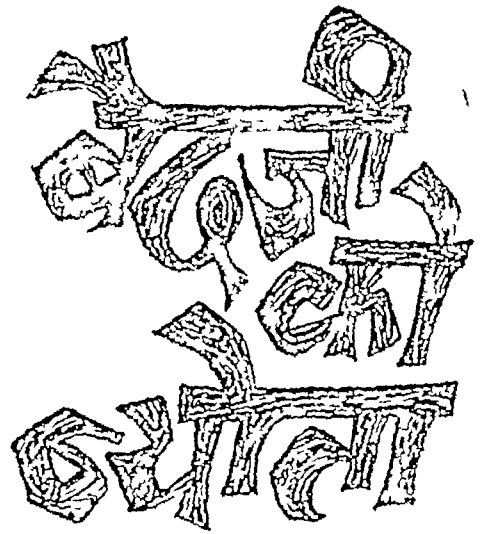
सोमदत्त गालवीय

धनपाल . सब चोखो है।

(बुड्ढा ससुर खाट पर पड़ा-पड़ा यह सब सुन रहा था। उस से बिना बोले न रहा गया)

बुड्ढा . अरी खिमिया ! का बात है ?

खीमिया · कछु, ना, तुम पड़े भी रहो।

बुड्ढा · अरी ! मोसू कायकू छिपावे है।

खिमिया गाम के पंडित कू ज्यादा तकलीफ है। उन के यहां आये वैद को नौंत आयी हू। आज वे लोग यहीं खा लेंगे।

बुड्ढा (रूखे मन से) : अच्छा खैर। ठीक कियो। गाम के बामन को मामलो है। थोडी पूरी उतारलै, और आलू रसे-दार। सिदौसी करलै। खिमिया, खीमिया ! थोरो चून माडियो और सब्जी पतरी। मिरचा नोंन ज्यादा, जिससू सब का भर्त हो जावे।

धनपाल बाबा चुप भी रहो, रजाई ओढ कर सो जाओ ना। हम सब कर लेंगे।

बुड्ढा अरी खीमिया ! पतरी-पतरी पूरी मत करियो, मोटी-मोटी उतारलै— चार-चार मे भर्त हो जायेगो। तनसी आच दे दै मोकू, हुक्का ठंडो पडो है।

खिमिया चलो नही, आ जायेगी पाच खाट ही पै।

बुड्ढा · अरी मैं ही लै जाऊगा। तू कहां दुखी होती डोलेगी ?

(बुड्ढा आंच इसलिए चाहता है कि इस बहाने वह चौके में जा कर कढाई में कितना घी छोड़ा है देख लेगा)

(वैद्यजी का प्रवेश धनपाल के साथ)

बुड्ढा आओ वैदजी ! आओ बैठो-बैठो। अरी खिमिया ! खानों बनगो का ? थारी लगाओ बीबी। बामन भूखे

है । साकर दे आओ कभी तीसरो कोई वरी आवे ।
(दरवाजे की सांकल खिमिया लगा देती है किन्तु तुरंत ही तीसरे ब्राह्मण द्वारा दरवाजे का कुंडा खटखटाया जाता है)
घर के अंदर से ही बुड्ढा बोल पड़ता है · अरे कौन है ? मैं तो अकेला पड़ो हू । खिमिया आज यहा नहीं है ।
धनपाल · खोलो-खोलो बाबा । तीसरा बामन होगा ।
(उस ने दरवाजा खोला और ब्राह्मण को घर के अंदर बुला लिया)
बुड्ढा अरी खिमिया ! साकर दे आवो । ताला डार दे, कदी चौथो आ जाय ।
धनपाल थारी लग गयी है बाबा ।
बुड्ढा आसन डारो, पानी लाओ लोटा में । पडतजी को जिमाओ । पडतजी ! सक्कर बहुत बढिया है । चीटी-सी खसके है बामें, स्वेदार है, बूरा सू अच्छी है ।
धनपाल (अपनी मां खिमिया से) : थोरा घी डार दे । सक्कर में बामन की ।
बुड्ढा . अरे धनपाल ! मोय तो ऐसो दीखे है कि या चौबीस बीघे जमीन को गों ही चटाओगे । दो लौंडिया और है, भात है, छोछक है । खिमिया की तो हरा में ही फूटी है ।
धनपाल बाबा चुप सो जाओ । कित्ती बेर कह दई तुमसू ।
बुड्ढा अरी खिमिया ! थोरो-थोरो परोसियो । ये तो बामन है बामन, इन का पेट तो मसाक-सा फूले है । सब्जी नेक-नेक दीजो पतरी । हां, एक काम और कर । तीन मसूरी-पैसा निकार ले और बामनन को दछिना में दे कर मूह काला कर ।
धनपाल बाबा ! यदि बोलनों ना आवे, तो चुप सो जाओ ।
बुड्ढा अरे बामन को दछिना देनी चैये, वरना खिलाये को भी फल ना मिलेगो । पडतजी मेरे घर में गैया, भैंसिया ना है । थारी में कछू मत छोरियो । खैइयो पेट भरकै । थारी साफ कर दीजो । वरना कौआ-कुत्ता हिल जायेंगे या घर में । का कर रह्यो है, धनपाल ?
धनपाल : सक्कर परोसे रह्यो हू ।
बुड्ढा अरे थोरी-थोरी परोस, कम-बख्त ! याह बढिया बारी है । बामन तो सब खा जायेंगे ।
(ब्राह्मणों ने बड़े प्रेम से पूरी तथा शक्कर का भोजन पाया । खिमिया और धनपाल ने श्रद्धा से ब्राह्मणों का आदर-सत्कार किया)
धनपाल · पडतजी कहा चाले ? बैठो ।
बुड्ढा . अरे धनपाल ! चलन दे बामनन कू, गाम का पडत बीमार है । ये उन के पामने है । जाओ, पडतजी जाओ । देखो का हाल है पडित को । अरी खिमिया ! साकर दे दे बामनन को निकार कै । कुत्ता दुखी करेंगे । अब तू पडत के घर मत जइयो, कदी साझ को भी तू इन दुष्टन ने बुला लावे ।
धनपाल बाबा तुम सो जाओ ना । तुम तो कान खा गये और दिमाग चाट गये ।
बुड्ढा अरे कमबख्त ! कैसे सो जाऊ ? बीमार तो पडत है और दड मो पै पडगो बामनन का । ●

पिछले वर्ष मार्च में मेरे पास एक छोटा सा मुकदमा पैरवी के लिए आया। इस की पहली तारीख १३-३-६४ को पडी। इस दिन वादी का ही देहांत हो गया। दूसरी तारीख २४-४-६४ की निश्चित हुई। इस तारीख को मेरे पडोसी की मृत्यु हो गयी, अत. मैं अदालत न जा सका। तीसरी तारीख २६-५-६४ को प्रतिवादी का ही देहात हो गया। चौथी तारीख ३०-६-६४ को बलरामपुर के महाराज माहेश्वरीप्रसाद सिंह का, जिन का मैं स्थायी वकील था, स्वर्गवास हो गया। फलस्वरूप इस मुकदमे की पेशी और बढ गयी। पाचवी तारीख २३-९-६४ को मेरा छोटा भाई बहुत बीमार हो गया, अतः मैं अदालत न जा सका। छठवी तारीख २८-९-६४ को मेरी पत्नी, जो पहली वार प्रसव कर रही थी, अपने नवजात शिशु के साथ, एक गलत इंजेक्शन लगा दिये जाने के कारण, स्वर्ग सिधार गयी। मैं ने उसी दिन उस मुकदमे की फाइल मुवक्किल के पुत्र को वापस कर दी और उस मुकदमे की पैरवी करने से इनकार कर दिया।

—के. एम. एस. श्रीवास्तव, गोंडा

मैं कुल्लू सैर को गयी हुई थी। वहा से आठ मील ऊपर रायसन गाव में मैं ने एक छोटा काटेज किराये पर ले लिया। एक कमरे की दीवारें कच्ची थीं और छत तख्तों की बनी हुई थी। तख्तों पर टीन की चादरें जड़ी हुई थीं। एक दिन तेज बारिश शुरू हो गयी। दोपहर तक बारिश ने तूफान का रूप ले लिया। पाच बजे काटेज इतनी जोर से थर्राया मानो किसी ने उसे झकझोर डाला हो। मैं दीवार से पीठ लगाये हुए पुस्तक पढ़ रही थी। एकाएक मेरे ऊपर धूल गिरी। मैं ने छत की ओर देखा तो कुछ तख्ते उखड कर मेरे सिर के ऊपर तेजी से चले आ रहे थे। उन का दूसरा सिरा भी दीवार में जडा था। करीब छह इंच नीचे
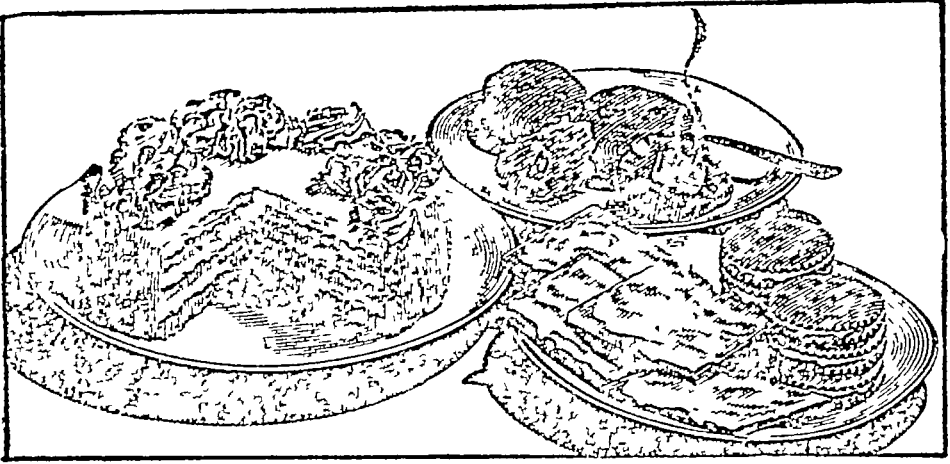
अमूल मक्खन से घरेलू व्यंजन ज्यादा स्वादिष्ट बनते हैं.
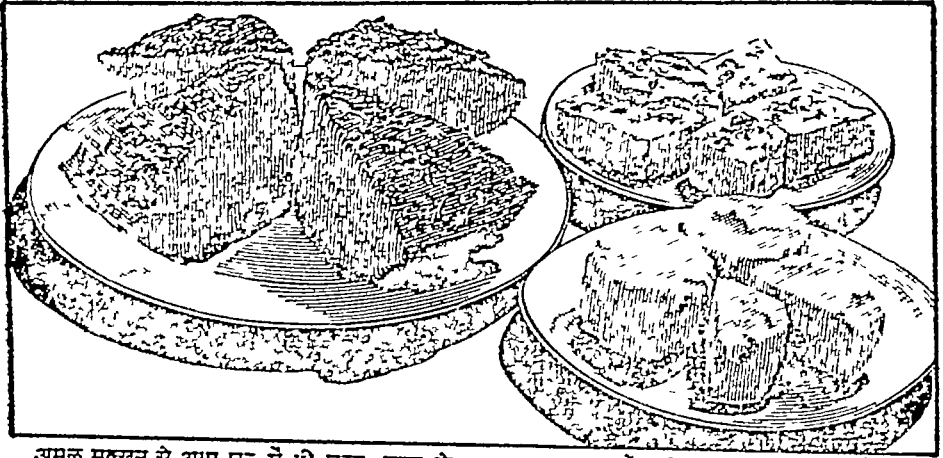
अमूल मक्खन से आप घर में ही तरह-तरह के व्यंजन बना सकते हैं, यह जान कर आप बेहद खुश होंगे। अमूल मक्खन की चीज का स्वाद व लुत्फ निराला ही होता है। आप अमूल मक्खन में स्वादिष्ट केक, बिस्किट, हांडवो, घारी घोकड़ा मजे से बना सकते हैं। और यह भी याद रखें कि अमूल मक्खन में बनी हर चीज अधिक पौष्टिक होती है। शुद्ध व ताजी क्रीम से बना अमूल मक्खन शक्तिवर्धक विटामिन 'ए' और 'डी' से भरपूर है—हर रोज सिर्फ पाच घटे में दूध से पैकटबंद मक्खन अमूल ही बनाते हैं और अमूल मक्खन बढ़ते हुए बच्चों के लिए वरदान है।

अमूल
मक्खन

एक खेडा सहकारी उत्पादन—लाजवाब

खेडा जिला सहकारी दूध-उत्पादक सघ लि, आणद

CAS/KMP.72 HIN

आ कर तख्ते रुक गये और ऊपर-नीचे झूलने लगे। मैं बाहर जाने के लिए दरवाजे की ओर बढी पर किसी चीज से अटकने के कारण वह नही खुला। सेंध से मैं ने देखा कि दरवाजे पर नीचे से ऊपर तक टहनियों का ढेर लगा है। किसी न किसी तरह दरवाजे को थोडा खोल कर मैं बाहर निकली। तब तक तूफान शांत हो गया था। तूफान के झोंकों से काटेज से दो गज सामने की ओर का विशालकाय ओक का पेड दो टुकडे हो गया था। आगे का हिस्सा काटेज की छत पर गिर पडा था जिस के कारण टीन की चादरें चिथडा हो गयी थीं। लेकिन तने का निचला भाग मजबूती से जमीन में गडा था और टूटा हुआ भाग नब्बे डिगरी के कोण के रूप में उस पर बाल भर टिका था। यदि ऐसा न होता तो टूटा हुआ तना काटेज की दीवार और छत को तोडता हुआ ठीक मेरे सिर पर गिरता। इतनी बडी दुर्घटना के बावजूद दीवार के आले में रखी शिव और पार्वती की प्रतिमाओं को कोई हानि नही पहुंची।

—विद्यालाल, नयी दिल्ली

सन १९२९-३० के दिन थे। भारत में स्वतंत्रता-सग्राम तेजी से चल रहा था। भारत के इस अहिंसात्मक आदोलन को विदेशों में आश्चर्य की दृष्टि से देखा जा रहा था। अहिंसा, खादी, सत्याग्रह, गाधी टोपी आदि सत्याग्रह से संबधित शब्द विदेशों में भारत के पर्यायवाची बन गये थे। इन्ही दिनों मेरे पिता पंडित सोहनलाल तथा स्वर्गीय विजयसिंह 'पथिक' अजमेर जेल से छूटने के बाद कांग्रेस की एक महत्वपूर्ण बैठक में भाग लेने दिल्ली आये। यहा उन की मुलाकात अमरीका के दो कानून-विशेषज्ञों से हुई। उन अमरीकियों ने पिताजी की गाधी टोपी की तरफ इशारा करके पूछा, "क्या यही गाधी कैप है? हमारे देश में इस कैप को जादुई करिश्मा कहा जा रहा है। क्या आप हमें एक ऐसी कैप दिलवा सकते हैं? इसे साथ ले जाने से हमारे देश में हमारा गौरव बढ़ेगा।"

उन का विस्मय तथा गाधी टोपी के प्रति सम्मान देख कर पिताजी उन्हें चादनी चौक के खादी-आश्रम मे ले गये। वहा उन्होंने दोनों अमरीकियों को चार गाधी टोपिया भेंटस्वरूप दीं। वे उन की कीमत देने की जिद करने लगे। पिताजी ने मजाक में प्रत्येक टोपी की कीमत १,००० रुपये बता दी। अमरीकियों ने उन के हाथ में ४,००० रुपये रख दिये। तब पिताजी ने उन्हें बताया कि प्रत्येक की कीमत कुल दो आना है। इस पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

क्या उन दिनों की आज के इन दिनों से तुलना की जा सकती है!

—धर्मप्रकाश, नयी दिल्ली

हमारी गाडी भिलाई स्टेशन पर रुकी। उस गाड़ी से एक मजदूर युवती भी उतरी। उस ने भीड़भाड में किसी तरह अपना सामान उतारा भी नहीं था कि गाडी चल पड़ी और डिब्बे में उस का दो वर्ष का बच्चा

भी छूट गया। वह चीखती-चिल्लाती गाडी के साथ-साथ दौडने लगी। गाडी तेज हो गयी और विवश हो कर वह जमीन पर गिर कर अपना सिर पटकने लगी। उस डिब्बे के मुसाफिरों ने वस्तुस्थिति समझ कर जजीर खींच दी, जिस से गाडी लगभग दो फरलाग जा कर रुक गयी। गाडी को रुकी देख कर वह विलाप करती दौड़ती हुई वहा पहुची और अपने बच्चे को सीने से चिपका लिया। बच्चा भी घबरा कर रो रहा था। उस ने दो-तीन मिनट तक बच्चे को चुप कराने की कोशिश की लेकिन जब वह चुप न हुआ तो क्रोधित हो कर उस पर थप्पडों की बौछार करने लगी।

—चंद्रभूषण झा, रायपुर

लगभग तीन वर्ष पहले हमारे पड़ोस में एक मास्टरजी आ कर रहने लगे थे। परिवार में पत्नी और एक तीन वर्षीय बच्चा था। घरेलू बातों को ले कर दोनों बेहद झगड़ते थे। मास्टरनीजी की अच्छी-खासी पिटाई भी होती। मेरे पिताजी इन के झगडों से बहुत ही परेशान थे।

एक दिन मास्टरजी की छडी पत्नी की पीठ पर तडातड बरस रही थी। पास में ही खडा उन का बच्चा चीख-चीख कर रो रहा था। तभी पिताजी भी उधर से आ निकले। उन्होंने चीखते बच्चे के दनादन दो तमाचे जड दिये और तेजी से चल कर घर आ गये। उन के पीछे ही मास्टरजी भी हमारे घर आ धमके और लगे पिताजी से उलटी-सीधी बातें करने।

"क्यों जी, आप ने इस मासूम बच्चे को क्यों मारा? इस के मां-बाप नही हैं क्या? क्या अधिकार था आप को इसे मारने का?"

"मैं ने सोचा इस के मा-बाप यहा नही हैं! और फिर बच्चा है। क्या कर लेगा मेरा?" पिताजी ने कहा।

"वाह साहब, मासूम बच्चे पर हाथ उठाते शर्म नहीं आयी?"

"और जिस के मा-बाप, भाई-बहिन कोई भी यहा नही हैं, उस पर आप को रोज हाथ उठाते शर्म नहीं आती?" यह कह कर पिताजी दरवाजा बंद कर अंदर आ गये। मास्टरजी बडबडाते हुए वापस चले गये। रात को पिताजी ने मास्टरजी के घर जा कर बहुत देर तक बातें की।

आज ३-४ वर्ष हो गये, मास्टरजी यही रहते हैं। किंतु मास्टरनीजी की पिटायी उस दिन के बाद से आज तक नही हुई है।

—प्रेमचंद, कोटा

इस अंक के पुरस्कार-विजेता क्रमशः इस प्रकार हैं—के एम. एस. श्रीवास्तव, विद्यालाल, चंद्रभूषण झा। प्रथम पुरस्कार २५ रुपये, द्वितीय १५ रुपये तथा तृतीय १० रुपये। शेष प्रकाशित संस्मरणों पर ५-५ रुपये।

● एरिक मारिया रिमार्क

हमारी टुकड़ी मोर्चे से कल ही वापस आयी है। इस समय हम आराम से बैठे तंबाकू पी रहे हैं। काफी समय के बाद हमें पेट भर कर खाने का अवसर मिला है। यही कारण है कि हम ने इतना ज्यादा खा लिया है कि अब हम बार-बार पेट पर हाथ फेरते हैं। डकारें लेने में तो मानो होड लगी हुई है। पेट भरा हो तो नींद भी खूब आती है। हम में से कुछ तो रसोईघर के फर्श पर ही सो गये हैं। मेरे आसपास दोस्तों का जमघट है। म्यूलर यथापूर्व अपनी पुस्तकें उठाये फिरता है और अब तक परीक्षा देने के स्वप्न देख रहा है। क्रोप, लेयर और कीट हैं। इन के अलावा तेदन भी है जो हमारी टुकड़ी में सब से बड़ा पेटू है। हमारी टुकडी का पीटरिंग तो हर समय अपने खेतों के बारे में ही सोचता रहता है। हमारे दल का सरदार कीट है जो चालीस वर्षीय होशियार सिपाही है। उस का सब से बडा गुण यह है कि वह कहीं न कहीं से खाना ढूंढ लाता है। वह जरूरत से ज्यादा सत्यप्रिय है।

"जानते हो, सुबह हमें खाना अधिक क्यों मिला था?" वह पूछता है।

"नहीं," मैं ने कहा ।

"इसलिए कि हमारी टुकड़ी १५० आदमियों की थी और कल की बमबारी के बाद केवल ८० आदमी जीवित बचे हैं ।" यह सुन कर हमारे चेहरों पर मौत की छाया फैल जाती है ।

"भाड में जायें सब, चलो यारो ऐश करें," तेदन ने कहा । और हम सब उठ कर चल दिये ।

ऊपर नीला आकाश है और चमकीले बादल हैं । लगभग पांच मील दूर के मोर्चे से तोपों की गरज सुनायी दे रही है । शुरू में तो हमें यह आवाज बड़ी भयानक प्रतीत होती थी किंतु अब तो यह संगीत का काम देती है । मोर्चे पर हमारे कदम मशीनगनों की तानों पर ही हरकत करते हैं और यहां यह आवाज हमारे जीवन को प्रेरणा दे रही है । यदि कभी मोर्चे पर नीरवता फैल जाये तो हमारे दिल डूबने लगते हैं । हम एक-दूसरे की ओर प्रश्नभरी निगाहों से देखते हैं । ऐसे में हमें प्रतीत होता है, जैसे हम मर गये हैं और सुनसान कब्रिस्तान में दफना दिये गये हैं ।

हम लोग मैदान में लकड़ी की पेटियां रख कर बैठे हैं । घर से आये हुए पत्र पढ़े जा रहे हैं । घी के कनस्तर का ढक्कन घुटनों पर रख कर ताश खेला जा रहा है । कभी बैठे-बैठे सो जाते हैं तो पेटी के साथ धरती पर गिर पड़ते हैं । जी चाहता है कि हम जीवन भर यहीं बैठे रहें । क्रोप जेब से एक पत्र निकालता है और ऊंची आवाज में सब को सुनाता है । यह कांतोरक का पत्र है । वह हमारा शिक्षक था और दूसरों की तरह देश की भलाई सोचता था । उस ने हमें इतने लेक्चर पिलाये कि हम सब देश के लिए सेना में भर्ती हो गये । उस ने और उस जैसे सैकड़ों देशभक्तों ने देश भर के नवयुवकों को यहां भेज दिया और स्वयं अपने घरों में आराम से बैठ गये । वे देशभक्त

एरिक मारिया रिमार्क मूल रूप से फ्रांसीसी था, लेकिन फ्रांस की राज्य-क्रांति से पूर्व ही उस का परिवार जरमनी में जा कर बस गया था । १९१४ में, जब उस की उम्र १८ वर्ष की थी, पहला महायुद्ध शुरू हो गया । उस के प्रायः सभी मित्र युद्ध में मारे गये और स्वयं उस ने भी बहुत कष्ट सहे । युद्ध की विभीषिकाएं उस के मस्तिष्क में अंकित हो गयीं । परिणामस्वरूप उसे युद्ध से घृणा हो गयी । युद्ध खत्म होने के बाद उस ने 'आल क्वाइट आन दि वेस्टर्न फ्रंट' नामक पुस्तक लिखी, जो एक तरह से उस की आत्मकथा है । युद्धकाल में सैनिकों की मनःस्थितियों को, इस उपन्यास में, बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है । मानव-मन को मथ डालने वाले इस उपन्यास का हिन्दी में रूपान्तर किया है हरपाल अरोड़ा ने ।

अब भी हमें यही लिख रहे थे कि देश की सेवा ही मनुष्य का सब से बड़ा कर्तव्य है। वैसे अब हम इस सत्य को पा चुके थे कि देश की सेवा की भावना मृत्यु के हृदयविदारक कष्ट के सामने बेबस हो जाती है।

म्यूलर ने हमें उठने का इशारा करते हुए एक ठंडी आह भरी और कहा "काश, वह कातोरक का बच्चा यहां होता। हम उसे बताते कि वह क्या बक रहा था।"

तीसरे पहर हम अपने जख्मी दोस्त केमर का हाल पूछने अस्पताल गये। यहां बड़ी चहल-पहल रहती है — चीखपुकार हमेशा रहती है। खून, पसीने और मवाद की दुर्गंध चारों ओर फैली हुई है। केमर एक बिस्तर पर लेटा है। हमें देख कर वह उठने का प्रयत्न करता है किंतु एक आह भर कर रह जाता है। "बेहोशी के समय कोई मेरी घड़ी उठा कर ले गया। कितनी प्यारी थी वह घड़ी।" वह दुखी स्वर में कहता है।

हम मौन रहते हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि केमर को अब उस घड़ी की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी क्योंकि वह तो कुछ दिनों का ही मेहमान है। इस दुर्गंध से भरे हुए कमरे में वह एड़िया रगड़-रगड़ कर मर जायेगा। यदि उस की घड़ी मिल भी गयी तो फटे-पुराने चिथड़ों के साथ
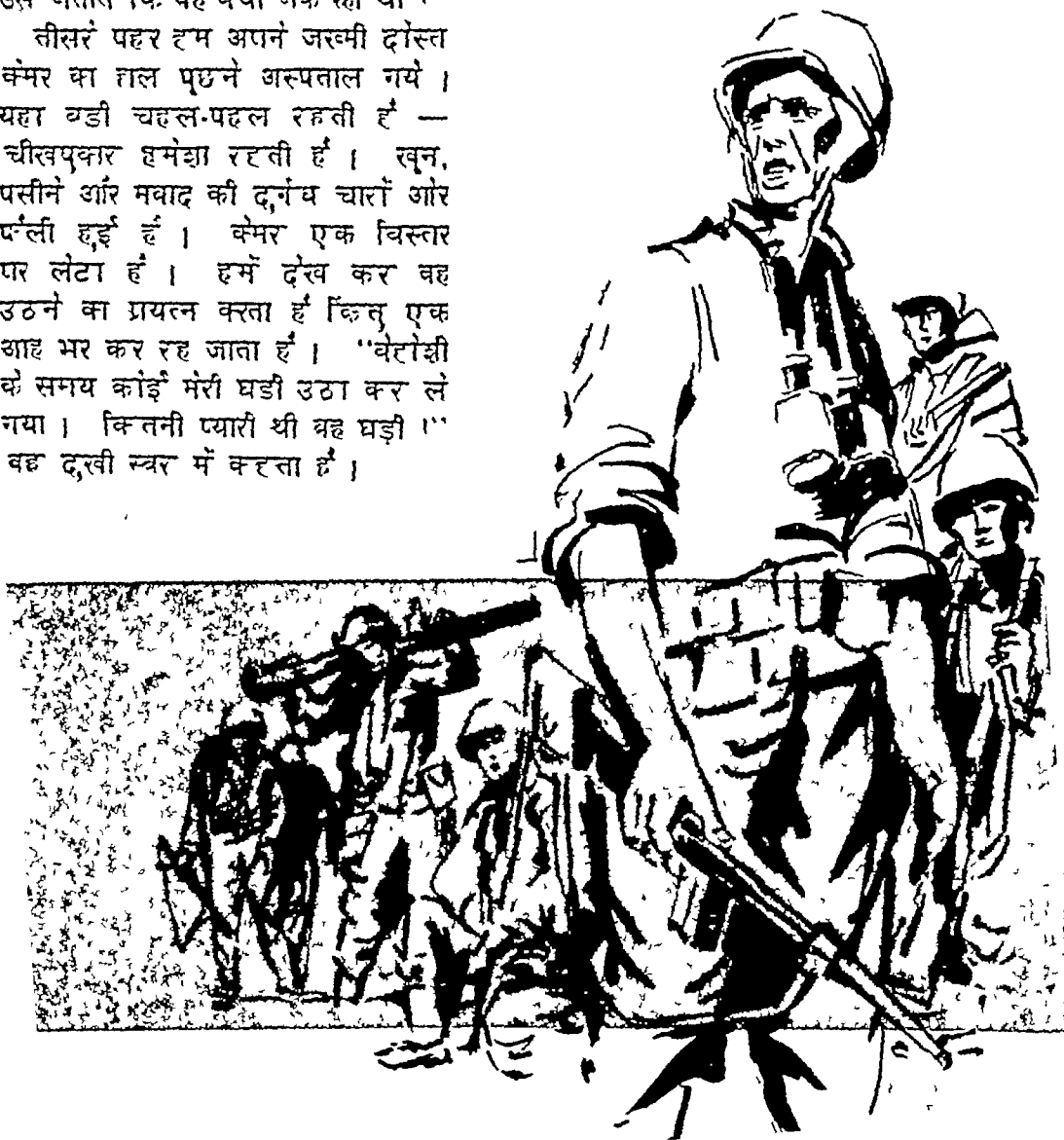
उस की मा को भेज दी जायेगी, जो इस समय हाथ उठा-उठा कर बेटे के ठीक होने के लिए प्रार्थना कर रही होगी। उस समय उस के बूढ़े दिल पर क्या गुजरेगी जब उस के नवयुवक बेटे के स्थान पर कुछ चिथडे और एक सर्टीफिकेट लिये सैनिक हरकारा उस का दरवाजा खटखटायेगा ?

मेरी नजरों में वह समय घूम गया जब हम घर से विदा हुए थे। केमर की मा उसे छोडने के लिए स्टेशन आयी थी। उसे गाडी पर सवार कराते समय वह लगातार रो रही थी। उस की आंखें सूज गयी थीं। अकस्मात उस की नजर मुझ पर गयी। वह मेरे कदमों पर गिर पडी और सिसकते हुए कहने लगी कि मैं उस के इकलौते बच्चे का ध्यान रखूं। बेचारी क्या जानती थी कि युद्ध में कोई किसी का ध्यान नहीं रख सकता। तभी नौकर ने झुक कर मेरे कान में कहा कि केमर की टाग काट दी गयी है। मैं उस के चेहरे की ओर देखता हूं। वह निर्बल, जर्द और भयानक है। मृत्यु उस की आंखों से झांक रही है। उस के हाथ बेजान हैं। उस के नाखूनों में अब तक खंदकों की मिट्टी भरी है। उस की आंखों में मैल है। म्यूलर ने उस से झुक कर कहा, "केमर, हम तुम्हारा सामान ले आये हैं।"

"पलग के नीचे रख दो।"

"केमर भैया, ये जूते मुझे दे दो, अब तो मैं खुरदरे बूटों से एक कदम भी नहीं चल सकता," म्यूलर विनय से कहता है किन्तु केमर नहीं मानता।

हम जानते हैं कि उस की टांग कट चुकी है और वह जूते जीवन भर नहीं पहन सकता लेकिन केवल इसलिए मौन रहते हैं कि कहीं उस का दिल न टूट जाये। कुछ समय के बाद हम वापस जाने के लिए उठ खड़े हुए। म्यूलर अभी तक बैठा है। वह इशारे से मुझे बुला कर बोला, "मैं यहीं रहूंगा। केमर ज्यादा देर तक जीवित नहीं रह सकता। उस के मरते ही सब सामान अस्पताल के नौकर ले जायेंगे। लेकिन देखो न, मेरा अधिकार अधिक है, कम से कम इन जूतों पर।"

म्यूलर गिद्ध की तरह ऊंघ रहा है। वह अपने शिकार की प्रतीक्षा में है। ज्यों ही केमर की सास बंद होगी, वह जूते उठा कर चल देगा। यदि केमर का मास किसी काम आ सकता तो शायद हम उसे भी न छोडते। आप शायद इस बात को खराब समझें किंतु हम हर वस्तु को व्यावहारिक दृष्टि से देखने लगे थे। केमर, जो बहुत समय से हमारा मित्र है, चुपचाप बिस्तर पर पडा है। हम बैरकों की ओर चल दिये। मुझे इस खयाल से घबराहट हो रही थी कि मुझे ही केमर की मा को उस की मृत्यु की सूचना देनी होगी। मेरा मस्तिष्क साथ छोडता जा रहा था। कैंटीन में पहुंच कर काफी मात्रा में रम पी कर मन कुछ स्वस्थ हुआ। मैं ने जंभाई लेते हुए क्रोप से पूछा, "क्यों, कांतोरक ने क्या लिखा है ?"

"उस ने लिखा है कि हम फौलादी

जया । है ।"

मैं अपनी बाह टटोलता हूं लेकिन कहीं फौलाद का अनुभव नहीं होता। जवानी तो बहुत दूर जा चुकी है। हम कब के बूढ़े हो चुके हैं, बीस वर्ष के बूढे! हम बीस वर्षीय सिपाहियों के लिए जीवन असहनीय बोझ है। बडी उम्र के लोग तो अपने पिछले जीवन में बंधे हुए हैं। उन का भूत उज्जवल था इसलिए भविष्य भी उज्ज्वल है, लेकिन हम! हमारा अतीत क्या है—न स्त्री, न बच्चे। हमारे मस्तिष्क में कभी-कभी यह प्रश्न उभरता है कि जब युद्ध समाप्त होगा, तो क्या होगा?

जब हम पहले दिन स्कूल से भर्ती के दफ्तर में पहुंचे थे, तो हमारे विचार भी उसी तरह नर्म और सभ्य थे जैसे आप के, लेकिन हमें बहुत जल्दी पता चल गया कि मस्तिष्क की अपेक्षा शरीर आवश्यक वस्तु है। बुद्धि की तुलना में जूते साफ करने का ब्रुश अधिक महत्व रखता है। बुद्धिमत्ता व्यर्थ की वस्तु है, बस काम करने का ढग आना चाहिये। हम इस परिणाम पर पहुंच गये थे कि स्वतंत्रता व्यर्थ है, ड्रिल वास्तविक वस्तु है। प्रशिक्षण कैंप में हमें खच्चरों की तरह सिखाया गया। हमारा अफसर पहले एक डाकिया था। उस का नाम सटोस था। उसे लोगों को तग करने में बहुत आनद आता था। एक बार मैं ने १४ बार उस का बिस्तर बिछाया लेकिन वह हर बार कोई गलती निकाल कर उसे धरती पर फैंक देता था। मैं ने २० घंटे तक उस के बूटों पर पालिश की है। एक लेफ्टिनेंट ने मुझे उस आपत्ति से छुटकारा दिलवाया, नही तो उस का विचार था कि एक हफ्ते तक मैं सुबह से शाम तक उस के बूटों को चमकाता रहूं।

मैं ने कई रातें केवल एक ही कमीज और पैंट पहने, रायफल उठा कर परेड करते हुए बितायी हैं। मेरा दोष केवल यह था कि सोते समय मैं ने कपडों को खूंटी पर नही लटकाया था। एक रविवार को मैं और क्रोप नहा-धो कर बाहर निकले तो सटोस ने हमें नाली साफ करने का आदेश दिया। जब हम कीचड़ से भरी हुई बाल्टियां उठाये हुए उस के पास से निकले तो वह खिलखिला कर हंस पडा, "क्यों बच्चू, काम पसद आया?"

बहुत कोशिश करने के बावजूद हम से रहा न गया और हम लोगों ने दोनों बाल्टियां उस के सिर पर खाली कर दीं। इस अपमान का बदला लेने के लिए उस ने हमारी जो दुर्गति बनायी, उस का जिक्र न ही करना अच्छा है।

अगले दिन मैं फिर केमर के पास गया। अब वह मर रहा है। हमारे चारों ओर जख्मियों के ढेर लगे हैं। जिन्हें चारपाइयों पर स्थान नही मिल सका, वे फर्श पर पडे कराह रहे हैं। उन की चीखें आकाश तक पहुंच रही हैं। डाक्टर समीप से गुजरता है किंतु केमर की ओर देखता भी नहीं। वह निराश हो कर सिर एक ओर डाल

देता है । मैं उसे तसल्ली देता हूं । वह इशारे से मुझे पास बुलाता है ।

"सुनो, मैं मर रहा हूं, तुम मेरे जूते म्यूलर के लिए ले जाना ।"

"ऐसा न कहो केमर, तुम तो अच्छे-भले हो । बस, जरा टांग काट दी गयी है । बहुत शीघ्र ही तुम्हें घर भेज दिया जायेगा, जहां तुम . . ."

उस की सिसकियां मेरी बात काट देती हैं । उस के होंठ लटक गये हैं, मुंह फैल गया है, मास ढीला पड़ गया है और आंखें अंदर को धस गयी हैं । मेरा जी चाहता है कि चीख कर दुनिया भर के लोगों से कहूं : "देखो, यह केमर है ! इस की उम्र केवल १६ वर्ष है । यह मरना नहीं चाहता । एक-दूसरे की धरती छीनने के स्थान पर, इसे मृत्यु के मुंह से छीनने का प्रयत्न करो ! इस तरह तुम्हें उस मां का आशीर्वाद प्राप्त होगा जिस की आंखें इसे देखने के लिए तरस रही हैं, जिस के गालों पर लगातार बहते हुए आंसुओं ने लकीरें बना दी हैं । लेकिन नहीं, तुम्हें तो धरती के टुकड़ों से प्यार है, चाहे उन्हें प्राप्त करने में हर कदम पर अनेक युवकों का खून बहाना पड़े ।"

उस का चेहरा अंधेरे में है । मैं उस पर झुक जाता हूं और अपनी बांहें उस की गरदन में डाल देता हूं । धीरे-धीरे उस का शरीर भीगता चला जा रहा है । आंसू उस के गालों पर बह रहे हैं । काश, मैं उन्हें पोंछ सकता ! सहसा उस का दम उखड़ जाता है । मैं डाक्टर की ओर दौड़ कर जाता हूं ।

"कौन-सा रोगी ?" डाक्टर ने चिढ़ कर पूछा ।

"जी, बिस्तर नंबर २६ वाला, कटी टांग वाला," मैं जल्दी-जल्दी डाक्टर को बताता हूं ।

"मैं ने सुबह से १५ टांगें काटी हैं, न जाने तुम किस के बारे में कह रहे हो !" डाक्टर ने झुंझलाये स्वर में कहा ।

मैं भाग कर केमर के पास पहुंचा लेकिन वह अपनी अनंत यात्रा पर जा चुका है । उस की आंखें खुली हैं लेकिन पुतलियां स्थिर हो गयी हैं । उस का चेहरा मुरझा चुका है । मैं चुपके से उस के जूते उठा कर बाहर चल देता हूं । दरवाजे पर ही म्यूलर मिल जाता है । मेरे हाथ से वह जूते तुरंत छीन लेता है और पहन कर चल देता है । पुराने जूते उस ने रद्दी की टोकरी में फेंक दिये हैं । अब वह बहुत प्रसन्न है और मैं बहुत उदास ।

हम खुले मैदान में बैठे शेव कर रहे हैं । चारों ओर नये रंगरूट भी बैठे हैं, जो पिछले कैंप से भेजे गये हैं । खाना बंट रहा है । लाल पगड़ी वाला रसोइया एक नवयुवक के प्याले में सालन डालते हुए कह रहा है, "अगली बार आओ तो सिगरेट लाना मत भूलना, नहीं तो घी नहीं मिलेगा ।"

सटोस हमारे समीप आता है । लेकिन हम मौन रहते हैं । कोई भी उसे सैल्यूट नहीं करता । मुझे वह दिन याद आता है जब हम ने उसे

पीता था। उस दिन अच्छी धूप निकली थी। हम सब धूप सेंक रहे थे।

"भाइयो, तुम्हें मालूम है कि आज सटोस कहां गायब है?" तेदन ने अखबार पढते हुए पूछा।

हम सब ने सिर उठा कर उस की ओर प्रश्नभरी नजरों से देखा।

"आज हमारा साहब रंगरेलियां मनाने गया है। यह स्वर्ण अवसर है, कहो तो उस की मरम्मत कर दें?" तेदन ने फिर कहा।

"हां, हां, क्यों नहीं?" हम सब ने पूरी तरह इस का समर्थन किया। सूर्य छिपते ही हम खंडहरों में छिप गये। मेरे पास एक चादर थी। हम ने उसे दूर से आते देखा तो रेंगते हुए सडक पर पहुंच गये। वह गुनगुनाता हुआ चला आ रहा था। हम ने चादर को दोनों सिरों से पकडा और उसे लपेट दिया। फिर हम ने उसे धरती पर गिरा लिया और बूट मार-मार कर अधमरा कर दिया। तेदन ने उस की पतलून के बटन खोल दिये और एक झटके से उसे उतार फेंका। अब सटोस एक वृक्ष के तने की तरह धरती पर औंधे मुंह पड़ा था और तेदन लकड़हारा बना हाथ में चाबुक लिये पूरी ताकत से अपना काम कर रहा था। कुछ देर बाद हम ने उसे छोड दिया और बैरकों की ओर चल दिये।

कुछ दिनों बाद हम फिर मोर्चे पर रवाना कर दिये गये। हम सैनिक गाड़ियों में सवार हो कर युद्धस्थल की ओर चले। ऊबडखाबड रास्ते के कारण हम एक-दूसरे पर गिर पड़ते हैं। गोलाबारी के धुएं से हवा गंदी हो चुकी है। बारूद की बास से मुंह का स्वाद कडवा हो चुका है। तोपों की धमकों से हमारी गाड़ी कांप-कांप उठती है। सहसा बमबारी आरंभ हो जाती है। आकाश पर बहुत-से बमवर्षक विमान हमें नष्ट करने की चिंता में मंडरा रहे हैं। हमारे हाथों में एंठन-सी है। हमारी आंखों में विचित्र प्रकार की व्याकुलता और चौकन्नापन है लेकिन सभी इंद्रियां पूरी तरह से अपना काम कर रही हैं। ऐसे समय में केवल धरती ही हम पर ममता बरसाती है। हम जब गोलाबारी से बचने के लिए अपना चेहरा उस की गोद में छिपाते हैं तो वह एक उदार प्रेमिका तथा ममतामयी मां की तरह हमें थपकियां देती है। वह कुछ क्षणों के लिए हमें जीवन प्रदान करती है ताकि हम एक बार फिर अपने पैरों पर खड़े हो कर शत्रु का मुकाबला कर सकें और फिर वह हमें दोबारा अपनी गोद में ले लेती है, सदा के लिए।

एक जले हुए जंगल में गाडियां हमें उतार कर वापस चली जाती हैं। सहसा तोपों की जोरदार गरज के साथ गोलाबारी आरंभ हो जाती है। अभी खंदकें काफी दूर हैं। हम जल्दी से धरती पर लेट जाते हैं। लोहे के टुकडे सनसनाते हुए हमारे सिरों के ऊपर से गुजरते हैं तो पूरे शरीर में कंपन उत्पन्न हो जाता है। अब मशीनगनों की तड-तड़ भी आरंभ हो जाती है। यों प्रतीत होता है जैसे इनसान नहीं, मटर के दाने भूने जा रहे हों। मेरे समीप ही एक युवा

सिपाही पड़ा है। भय से उस ने अपना चेहरा दोनों हाथों में छिपा रखा है। एक गोला हमारे बिलकुल समीप ही फटता है। उस के कंठ से एक चीख निकलती है, बिलकुल उसी तरह जैसे बकरे को हलाल किया जा रहा हो। वह बच्चे की तरह मेरी बगल में घुस आता है। उस का सिर मेरे सीने से लगा है और आंखों से आंसू बह रहे हैं। अभी उस की मसें भी नहीं भीगीं, लडका-सा लगता है। मैं ने उसे सीने से लगा कर भींच लिया और तसल्ली देने का प्रयत्न किया। आखिर शांति छा गयी, मैं ने उसे हिला कर कहा, "उठो, आकाश साफ हो गया।" वह खड़ा हो कर भयभीत नजरों से चारों ओर देखने लगा।

वातावरण में बड़ी दर्दनाक चीखें उभर रही हैं। कीट बताता है कि ये जख्मी घोड़ों की आवाजें हैं। उफ, किस कदर भीषण आवाजें हैं! यों प्रतीत होता है जैसे सारा विश्व कराह रहा है। पीटरिंग चिल्ला कर कहता है, "हे भगवान, कोई उन्हें गोली मार दे! मुझ से ये चीखें नहीं सुनी जातीं।" पीटरिंग गांव का है और उसे घोड़ों से बेहद प्यार है। कितनी विचित्र बात है कि वह मानवीय चीखों से बिलकुल भयभीत नहीं होता। म्यूलर के पास दूरबीन है। हम उस की सहायता से युद्धस्थल की ओर देखते हैं। पचास के करीब कद्दावर घोड़े एक मैदान में हिंसक जंतुओं की तरह चक्कर काट रहे हैं। वे बार-बार गिर रहे हैं किंतु फिर उठ खड़े होते हैं। एक का पेट कट गया है और अंतड़ियां बाहर घिसटती जा रही हैं। वह उन्हीं में फंस जाता है और आखिर ठोकर खा कर गिर पड़ता है। कितनी विचित्र बात है कि उस की अपनी अंतड़ियां ही उस के रास्ते की दीवार बन गयी हैं। पीटरिंग पागलों की तरह घूम रहा है। बार-बार उस के मुंह से ये शब्द निकल रहे हैं, "मुझे बताओ तो सही कि इन घोड़ों ने किसी का क्या बिगाड़ा था?"

"और हमारे प्रति क्या विचार है?" कीट ने पूछा।

वापसी पर हम सब के मुंह लटके हुए हैं। हमारे पांच आदमी मर गये और पचीस के करीब जख्मी हुए। रास्ते में एक कब्रिस्तान पडता है। हम यहां रुक गये क्योंकि गाडियां अभी तक नहीं आयी हैं। सहसा हवाईजहाजों की गूंज सुनायी दी। अगले ही क्षण हम पर बमबारी आरंभ हो गयी। खेत साफ-समतल हैं और जंगल बहुत दूर है। हम सब कब्रिस्तान में घुस गये और एक-एक कब्र से यों चिपट गये जैसे गोंद से चिपका दिये गये हों। मेरे सामने एक गोला गिरता है और धरती फट जाती है। लोहे के कुछ टुकड़े मेरी बांह को जख्मी कर देते हैं। मैं धीरे-धीरे अपनी बांह उठाता हूं, इस समय पीडा बिलकुल नहीं हो रही लेकिन मैं जानता हूं कि जख्मों में पीडा बहुत बाद में आरंभ होती है। एक और गोला मेरी बायीं ओर फटा। मैं किसी वस्तु से चिपट गया किंतु वह मुझे सहारा नहीं देती। वातावरण में
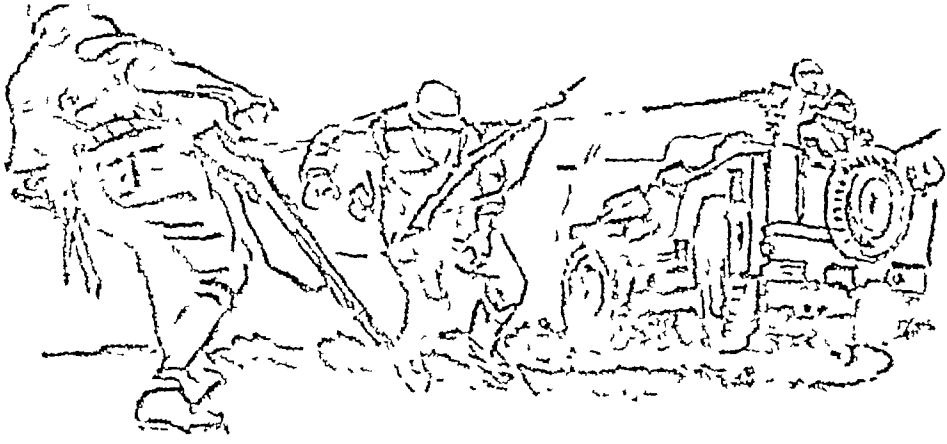
कुछ शोले उभरते हैं और फिर दूर-दूर तक सफेद धुआं फैल जाता है। मैं आंखें खोल कर उस वस्तु की ओर देखता हूं। यह किसी मनुष्य का हाथ है किन्तु बेजान और मुरदा। वायुयानों की गूंज एक बार फिर सुनायी देती है। मैं एक झटके से ताबूत का मुरदा बाहर फेंक कर स्वयं अंदर घुस गया। थोड़ी देर बाद बमबारी समाप्त हो गयी। मैं बाहर निकल आया।

हम जख्मियों को उठा कर धीरे-धीरे सड़क की ओर चल दिये। सहसा हवाईजहाज फिर दिखायी दिये। इस बार वे गैस फेंक रहे हैं। गैस से बचने के लिए हम ने विशेष प्रकार के मोटे नकाब ओढ़ लिये। रंगरूट इस बात को नहीं समझते और गैस की तीव्रता से अचेत हो कर नीचे गिर पड़ते हैं। हम उन की ओर भागे और जल्दी-जल्दी उन्हें नकाब पहनाने लगे। सहसा कोई वस्तु हमारे समीप आ कर गिरी। यह एक लकड़ी का खाली ताबूत है जो किसी कब्र से उड़ कर निकल आया है। नकाब पहनाने के बावजूद मेरे सिर में धमाके हो रहे हैं। मेरे फेफड़े अकड़ गये हैं और दम घुट रहा है। कब्रिस्तान की धज्जियां उड़ गयी हैं। हर ओर ताबूत और लाशें बिखरी पड़ी हैं। मुरदों को दोबारा मारा गया है। पेड़ जल कर ठूंठ हो गये हैं। रेल की पटरी तक उखड़ गयी है।

हमारे सामने कोई पड़ा कराह रहा है। मैं ने झुक कर देखा, वह एक सुंदर-सा युवक है। वह दोनों हाथों से पेट को दबाये औंधा पड़ा है। हम उसे उठाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उस की रीढ़ की हड्डी बिलकुल चकनाचूर हो गयी है। उस की पीठ कीमा बन चुकी है। हम स्ट्रेचर लाने के लिए उठे तो वह हमारे पैरों से चिपट गया, "भगवान के लिए मुझे अकेला मत छोड़ो।" उस की आंखों में बेबसी और विवशता है।

"अच्छा यही होगा कि हम इसे गोली मार दें," क्रोप ने मेरे कान में कहा।

बात तो ठीक है। अब यह लड़का न खड़ा हो सकेगा, न बैठ सकेगा।

जीवन भर चारपाई पर लेटे रहने से तो मृत्यु हजार वार अच्छी है। और फिर इसे पीडा भी तो बहुत है। म्यूलर ने अपना पिस्तौल निकाल लिया। नवयुवक के कंठ से गर्र-गर्र की आवाजें निकल रही हैं। मैं ने म्यूलर से पिस्तौल छीन लिया और कहा, "यह किसी की आंखों की रोशनी है म्यूलर। कोई इसे देखने के लिए व्याकुल है। हो सकता है यह बच जाये और छुट्टी दे कर घर भेज दिया जाये।"

हम ने उसे किसी तरह उठा कर गाडी में डाल दिया। अब गाडियों में काफी जगह है, क्योंकि वमवारी से भीड कम हो गयी है।

अच्छा हुआ वर्षा आरंभ हो गयी। अब यह मैदानों में पड़े मुरदों को अंतिम स्नान करा देगी। लेकिन यह उन अचेत जख्मियों पर भी पडेगी जो मीलों लंबे इलाके में जगह-जगह पर पडे हैं। वे होश में आते ही तड़पेंगे, चीखेंगे और हाथ-पैर पटकेंगे। उन्हें यों प्रतीत होगा जैसे वे नरक की आग में जल रहे हों! काश, यह वर्षा न होती और वे अचेत अवस्था में ही मर जाते।

हम सब ने कमीजें उतार कर घुटनों पर रख ली हैं। ठंडी हवा का स्पर्श बडा सुखद लग रहा है।

"यदि युद्ध समाप्त हो जाये, तो जानते हो मैं क्या करूंगा ?" म्यूलर कहता है।

"क्या करोगे ?"

"अच्छी तरह स्नान करूंगा, फिर साफ-सुथरे कपडे पहन कर मुलायम बिस्तर पर सो जाऊंगा और पूरे छह महीने वाद उठूंगा। एक वात और, एक साल तक पतलून नहीं पहनूंगा। भगवान की कसम, सारा शरीर फोडे की तरह दुख रहा है।"

हम सब मौन रहे। कितनी सुंदर कल्पना है! हमारी आंखों के सामने वसंत की चमकीली शामें घूम उठीं। रविवार के वे सुंदर दिन! स्त्रियां रंग-विरंगे कपडे पहने इधर-उधर घूम रही हैं। कहवाखाने, पार्क, सिनेमा, थियेटर—जीवन का आनंद तो इन्हीं में है। आदमी दिन भर बिस्तर पर आराम करे और शाम को साफ-सुथरे कपड़े पहन कर किसी पार्क में निकल जाये—इस से बढ कर आनंद की क्या बात हो सकती है!

"और जानते हो, मैं क्या चाहता हूं ?" तेदन ने पूछा।

"मैं बतलाऊं ? तुम चाहते हो कि सटोस को एक पिंजरे में बंद करके रख छोडो और हर सुबह डंडा ले कर उस पर पिल पडो। क्यों ठीक है न ?" क्रीट ने कहा।

"बिलकुल ठीक, यही मैं चाहता हूं।"

पीटरिंग मौन है। उसे हर समय पत्नी, बच्चों और खेत की चिंता रहती है।

"प्यारे, स्कूल की शिक्षा निरी बकवास थी," क्रोप नया विषय ढूंढता है।

"क्यों ?"

"देखो न, वहां हमें किसी ने यह नहीं बताया कि वर्षा में सिगरेट कैसे सुलगाते हैं, या गीली लकडियों से

आग कैसे जलायी जा सकती है। न हमें किसी ने यह बताया कि संगीन को पेट में घोंपना हर प्रकार से लाभदायक है। पिछले सप्ताह एक रंगरूट ने किसी फ्रांसीसी की पसलियों में संगीन घोंप दी। वह वहां फंस गयी। उस ने निकालने का प्रयत्न किया किन्तु व्यर्थ। इसी बीच एक अंगरेज ने बेलचे से उस का काम तमाम कर दिया।"

युद्ध ने हमें कहीं का न रखा। हम नवयुवक हैं लेकिन जीवन से भागते हैं। हम १८ वर्ष के थे, जब यहां आये थे। उस समय हम ने जीवन से प्यार करना आरंभ ही किया था लेकिन स्वयं हमें उसे अपने हाथों से टुकड़े-टुकड़े कर देना पड़ा। सब से पहला बम हमारे दिलों में फटा था। और अब हम जीवन से नहीं, केवल युद्ध से प्यार करते हैं।

बतखों की चोरी का प्रोग्राम बन रहा है। कीट वह स्थान देख आया है, जहां बतखें हैं। हम दो सिगरेटें दे कर शस्त्रों की गाडी रात भर के लिए मांग लेते हैं। निर्जन रास्तों पर चलते हुए हम झोंपड़े के सामने पहुंचे। कीट ने मुझे कंधों पर चढ़ा कर दीवार के उस पार कर दिया। दूसरी ओर कूद कर मैं बतखों का दरबा तलाश करने लगा। सारा झोंपडा मलबे में बदल चुका है फिर भी दरबा सुरक्षित है। अंदर हाथ डाल कर मैं ने एक बतख पकड़ ली। बाहर निकाल कर उसे पूरी शक्ति से दीवार पर पटक दिया। चटाख की आवाज के साथ उस का सिर एक ओर को लुढ़क गया। सहसा एक कुत्ता मुझ पर झपट पडा। भगाने का मैं ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु वह किसी भी कीमत पर टलने के लिए तैयार नहीं। पगला कहीं का। वह समझता है कि उस घर के स्वामी कहीं बाहर गये हैं। वह पगला क्या जाने कि अब तक गिद्ध उन का मांस नोंच चुके होंगे। बाहर निकल कर हम एक दूसरे झोंपड़े में घुस गये। वहां आग जला कर बतख भूनी और फिर वहीं आनंद से भोज उड़ाया। हमारे ऊपर का छप्पर हिल रहा है। बाहर बमबारी शुरू हो गयी है। वायुयानों की गूंज, तोपों की गरज और मशीनगनों की तड़तड़—ये आवाजें मिल कर एक विचित्र वातावरण उत्पन्न कर रही हैं। कभी-कभी जख्मियों की चीख-पुकार भी सुनायी दे जाती है। हम ने बचा-खुचा मांस दोस्तों के लिए रख लिया।

हम फिर मोर्चे की ओर बढ़ रहे हैं। रास्ते में एक दुर्दशा-ग्रस्त स्कूल मिला। उस के सामने २०० के लगभग नये ताबूत रखे हैं। "मोर्चे के लिए तैयारी अच्छी है।"

"क्या मतलब ?"

मतलब यही, कि ये ताबूत हमारे लिए हैं।" मजाक अप्रिय अवश्य है, लेकिन है सच।

खंदकों में बैठे हुए हमें दो घंटे गुजर चुके हैं। सामने गोलाबारी हो रही है। कुछ महीने हुए, मैं एक खंदक में बैठा ताश खेल रहा था कि बगल वाली खंदक से किसी ने मुझे आवाज दी। मैं बाहर निकला और

आवाज की ओर चला। जब मैं अपने मित्रों से मिल कर उस खंदक से बाहर निकला, तो देखा कि मेरी खदक नष्ट हो चुकी थी। वहां के सब सिपाही मारे जा चुके थे। मैं तेजी से पलटा, किंतु मेरे वहां पहुंचने से पहले ही उस खदक पर भी गोला गिरा और वह मेरे बीस मित्रों की कब्र बन गयी। ऐसी घटनाएं प्रति दिन होती हैं और हम निडर-से हो गये हैं। यह भी आश्चर्य की बात है कि मैं अब तक जीवित हूं। हो सकता है, मैं किसी सुरक्षित स्थान में पहुंच कर मर जाऊं और यह भी संभव है कि खुले मैदान में बमबारी के दौरान भी बचा निकलूं। हम सिपाही बहुत बड़े भाग्यवादी हैं।

यहां चूहे बहुत ज्यादा हैं। वे आकृति से बेहद घिनौने लगते हैं। उन के चेहरों पर धूर्तता और भयानकता है। उन की लंबी दुम देख कर मन खराब हो जाता है। ये कमबख्त कई जन्मों के भूखे मालूम होते हैं। चूहे प्राय हर व्यक्ति की रोटी काट लेते हैं। क्रोप ने तिरपाल में अपनी रोटी मोटे कपड़े में लपेट कर तकिये के नीचे रख दी थी। लेकिन अब वह सो नहीं सकता क्योंकि चूहे रोटी लेने के लिए उस के शरीर पर दौड़ लगा रहे हैं। पीटरिंग ने एक और तरकीब निकाली। उस ने छत से बारीक तार बांधा और उस के सिरे पर रोटी बांध कर हवा में लटका दी। रात को हमारी आंख खुली तो एक विचित्र दृश्य देखने को मिला। तार इधर-उधर झूल रहा था और एक मोटा-सा चूहा रोटी से चिपटा उसे कुतर-कुतर कर खा रहा था। चूहे की कुतरी रोटी को हम फेंक तो नहीं सकते, उसे वहां से थोड़ी-सी काट देते हैं जहां चूहे के दांत लगे हों।

दुश्मन हम पर जब-तब गोलाबारी करता है, नियमित रूप में आक्रमण नहीं। आधी रात के समय हम फिर नींद से जाग जाते हैं। हम पर भारी तोपों से गोलाबारी की जा रही है। हमारी तोपें भी जवाब दे रही हैं किंतु उन की नालें घिस चुकी हैं, इसीलिए निशाना ठीक नहीं पड़ रहा। उन के गोले शत्रु तक पहुंचाने के बजाय हमारी खंदकों पर ही पड रहे हैं। धीरे-धीरे हम सुन्न होते जा रहे हैं। हमारी खदकें टूटने के करीब हो चुकी हैं। भूख से हमारी आंतें टूट पडने को हो रही हैं। आखिर हम बचा-खुचा खाना निकाल कर खाने लगे। हम हर ग्रास को नियम से भी तीन गुना ज्यादा चबा रहे हैं। तेदन खेद प्रकट कर रहा है कि हम ने चूहों के कुतरे हुए टुकड़ों को क्यों फेंका। तभी चूहों की एक बडी फौज हम पर हमला कर देती है। वे शायद खाने की गंध सूंघ कर आये हैं। वे हम पर पिल पडे। हर व्यक्ति चीख रहा है। चूहे हमें बुरी तरह नोच रहे हैं। हम ने बत्ती जला दी। उफ, सैकड़ों भयानक चूहे हम से चिपटे हुए थे। कोई आधा घंटा की मेहनत के बाद हम उन्हें भगाने में सफल हुए। जख्मों से हमारे चेहरे विकृत हो गये।

एक सिपाही को अचानक दौरा पड गया। वह दांत किटकिटा रहा है। वह मुट्ठियां बंद करता और खोलता है। उस की आंखें जंगली जानवरों की तरह बाहर को निकली-उबली पड रही हैं। वह बहुत देर से चुप था किंतु अंदर से वह खोखले वृक्ष की तरह हो चुका था। वह भयंकर स्वर में चीख रहा है।

"छोड़ दो मुझे, बाहर जाने दो! मैं इस कब्र में ज्यादा देर तक नहीं रुक सकता।" उस के मुंह से झाग निकल आया। वह रुक-रुक कर कुछ बक रहा है। मजबूर हो कर हमें उस की मरम्मत करनी पडी। हमें न चाहते हुए भी यह अप्रिय काम करना पडा। चोटों की तीव्रता से वह अचेत हो कर गिर पडा। दो-एक मिनट वह शांति से पडा रहा, फिर तेजी से उठा और बाहर निकल गया। *तभी एक चीख सुनायी दी। सिर उठा कर देखा तो सामने की दीवार पर सुलगते हुए लोहे के टुकडे, मांस के लोथडे, बिखरी हुई हड्डियां और उस की वर्दी के सुलगते चिथडे दिखायी दिये।

वेस्ट हॉस की कमर पर बहुत बडा और गहरा घाव लगा है। सांस लेने में उसे बेहद तकलीफ होती है। वह दर्द की तीव्रता से अपनी बांह काटते हुए कहता है, "बस, अब तो अपना किस्सा ही खत्म है पाल!"

मैं केवल उस का हाथ दबाता हूं, और करूं भी क्या? हम ऐसे-ऐसे आदमियों को जीवित देखते हैं जिन की खोपडियां खुल गयी हैं। हम ऐसे सिपाही को भागते हुए देखते हैं जिस के दोनों पैर कट चुके हैं। वह किसी तरह कूदता हुआ किसी गड्ढे में गिर पडता है। एक नवयुवक कुहनियों के बल अपने टूटे हुए घुटने को डेढ मील तक घसीटता ले जाता है। कोई दोनों हाथों से अपनी अंतडियां समेटे मरहम-पट्टी कराने खुद भागा जाता है। किसी का मुंह गायब है, किसी का जबडा नहीं है, किसी का चेहरा नहीं है। हम कुछ सौ गज पीछे हट आये हैं। सामने हर कदम पर एक न एक लाश पडी है।

हम विश्राम करने के लिए पीछे जा रहे हैं। कुछ देर बाद गाडियां रुक जाती हैं और हम नीचे उतर आते हैं। कोई व्यक्ति हमारी टुकडी के लोगों के नाम पुकार रहा है। उसे बहुत देर तक पुकारना पड़ेगा, क्योंकि बहुत-से वापस ही नहीं आये हैं। "टुकडी नंबर २, इधर आ जाओ!" भर्रायी हुई आवाज में वह कहता है, "बस, इतने ही?" गिनती आरंभ होती है। एक, दो, तीन, चार तीस पर आ कर गिनती रुक गयी। डेढ सौ में से तीस ही जीवित बचे हैं।

सौभाग्य से हमें बहुत अच्छा काम मिल गया है। हम आठ आदमियों को एक ऐसे गांव की रक्षा का आदेश मिला है जो बमबारी से नष्ट हो चुका है। कीट, अलबर्ट, म्यूलर, तेदन, पीटरिंग और मैं—पूरी चौकडी मौजूद है। हमारे दिल तथा मस्तिष्क पर अब तक युद्धस्थल के भयंकर दृश्यों का असर है। हम इस अवसर का पूरा लाभ उठाने का प्रयत्न कर

रहे हैं। हम ने फर्श साफ करके चटाइयां बिछायीं। फिर मैं और अलबर्ट एक सुनहरा पलंग उठा लाये जिस पर बत्तख के परों वाला गद्दा बिछा हुआ था। हम बारी-बारी से उस पर लेटे और लंबे समय के बाद नर्म बिस्तर का आनंद उठाया। कीट और मैं पूरे गांव में चक्कर लगा कर लगभग दर्जन भर अंडे, एक मुर्गा और सेर भर मक्खन ले आये। प्रत्येक व्यक्ति ने अभी से एक एक अंडा उठा लिया है। बड़ी कठिनता से मैं ने उन्हें समझाया कि उन्हें पका कर खाना चाहिये। पीटरिंग कहीं से बकरी के दो बच्चे पकड़ लाया है। वाह, अब तो भव्य भोज होगा। आग जलायी गयी और कीट मांस भूनने बैठ गया। हमारे दो साथी सुबह से खेतों में घूम रहे थे। वे आलू, गाजर, मटर और लोबिया एकत्रित करके लाये हैं। इतनी खाद्य-सामग्री इकट्ठी करके हम फूले नहीं समा रहे। तेदग अनाज के मुहरबंद डिब्बों को खोल कर एक ओर फेंकते हुए कहता है, "भाई, हमें तो ताजी सब्जियां पसंद हैं।"

हमें आलू छीलने के लिए चाकू नहीं मिल रहा। आखिर कीट ने एक देगची के ढक्कन में कील ठोंक ठोंक कर काफी छेद कर लिये। लीजिये, कद्दूकस तैयार है। दो युवक हाथों में दस्ताने पहन कर आलू छीलने बैठ गये। हम उन के चारों ओर यों खड़े हैं मानों वधस्थल के सामने आराधना करने वाले हों। अचानक हम पर एक नयी आपत्ति आ गयी। शायद शत्रु के विमानों ने चिमनी से धुआं निकलते देख लिया है। हम पर धड़ाधड़ गोले बरसने लगे हैं लेकिन हम उन की परवा नहीं कर रहे और एकाग्र हो कर खाना पकाने में व्यस्त हैं।

आखिर वह घड़ी आ पहुंची जिस की हमें प्रतीक्षा थी। खाना मेज पर लगा दिया गया। दो बजे हम ने खाना आरंभ किया। कोई व्यक्ति बात नहीं कर रहा। ऐसा पागल कौन है जो बातों में समय नष्ट करे! शाम के छह बजे हम ने खाना खत्म किया। आधा घंटा इधर-उधर घूमने के बाद हम ने फिर साढ़े छह बजे खाना आरंभ कर दिया। यह रात्रि-भोज आधी रात तक चलता रहा।

स्पष्ट है कि हम आवश्यकता से अधिक खा गये हैं, इसलिए बार-बार करवटें बदल रहे हैं। बकरी का मांस अंतड़ियों को नर्म कर देता है।

मैं छुट्टी पर घर जा रहा हूं। गाड़ी चल रही है और मैं दरवाजे पर खड़ा दूर तक फैले हरे-भरे खेतों को देख रहा हूं। गाड़ी मेरे स्टेशन पर रुकी और मैं रायफल कंधे से लटकाये लड़खड़ाता हुआ नीचे उतर आया। स्टेशन पर असंख्य लोग इधर-उधर भाग रहे हैं। मैं चुपचाप बाहर निकल आया और नदी के किनारे-किनारे घर की ओर चल दिया। रास्ते में कई परिचित मिले लेकिन मैं उन से आंखें चुरा कर निकल गया। सामने वाला पीले रंग का ऊंचा दरवाजा मेरी मंजिल है। मुझे अपना हाथ भारी-सा प्रतीत हो रहा है। साहस

करके दरवाजा खोलता हू। आलू की टिकियों की गंध मेरा स्वागत करती है। सहसा बहिन की आवाज कानों में आती है, "पाल, तुम ! मा, पाल आ गया, मा ''

वह मेरा स्वागत करने के बदले रसोईघर की ओर भाग जाती है। न जाने क्यों ? मैं वहीं ठिठक कर रुक जाता हू, एक कदम भी आगे नहीं बढता। मैं मौन खडा हू, जैसे पक्षाघात का रोगी होऊं। आसू मेरी इच्छा के विपरीत गालों पर लुढ़क आये हैं। फिर रायफल कोने में खड़ी करके मैं अन्दर की ओर भागता हूं। मा बिस्तर पर लेटी हैं। उन का चेहरा पीला है। मुझे देखते ही वे फूट-फूट कर रोने लगती हैं। मैं कुछ कहे बिना उन के पैरों से लिपट जाता हूं। कुछ समय तक हम मा-बेटे शांति से आसू बहाते हैं, फिर वे तकिये का सहारा ले कर उठती हैं। "एलना, भैया के लिए खाना ले आओ। देखा पाल, आज हम ने आलू की टिकिया बनायी है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे हमें तुम्हारे आने की सूचना पहले ही मिल गयी हो।''

खाना आता है, तो वे अपने हाथों से मुझे खिलाती हैं। मेरी बहिन पास खडी हंस रही है। मैं जानता हूं कि इस महंगाई के जमाने में आलू की टिकिया क्या कीमत रखती हैं। मुझे यह भी मालूम है कि जो बिस्कुट उन्होंने मुझे दिये हैं, वे कितने पुराने हैं। मालूम होता है कि कहीं से सस्ते दामों मे मिल गये होंगे और उन्होंने संभाल कर मेरे लिए रख लिये। यहा मेरी मा और बहिन हैं, अभी थोडी देर में पिताजी भी आ जायेंगे। फिर भी मैं यहा नहीं हू, मेरा दिल यहा नहीं है। मेरे और उन के बीच एक परदा-सा है जो कोशिशों के बावजूद नहीं हट रहा। मेरा दिल वहीं है, जहा से मैं आया हूं। अनजानेपन का यह अनुभव किसी तरह दूर नहीं हो रहा।

शाम को पिताजी मिले, वे बहुत प्रसन्न हैं और मुझे अपने मित्रों से मिलाना चाहते हैं, जैसे मैं युद्धस्थल से आया हुआ सिपाही नहीं, कोई
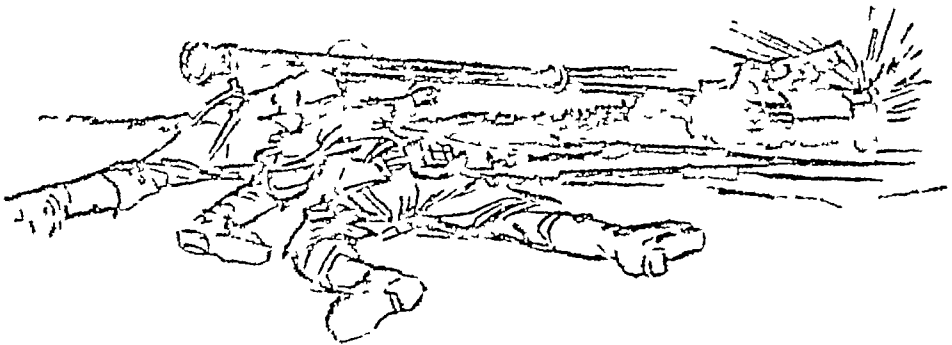
तार्की घोड़ा हूं। मैं किसी से नहीं मिलता। मुझे यहां अकेले बैठना ज्यादा अच्छा लगता है। जो प्रश्न वे मुझ से पूछते हैं, मैं उन का उत्तर देना पसंद नहीं करता। मैं अपनी वस्तुएं देखता हूं, वे सब सुरक्षित पड़ी हैं किंतु मुझे उन से अब कोई रुचि नहीं रही। पुस्तकें, चित्र, खेलों का सामान—सब वैसा ही पड़ा है परंतु मैं अब उन के लिए अजनबी हूं। मैं दिन भर धूप में कुरसी डाले पड़ा रहता हूं। मैं किसी से बात नहीं करता, अधिकतर बीमार मां के बिस्तर पर बैठा रहता हूं। हम चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखते रहते हैं। यदि इस से भी उकता जाऊं तो उन का हाथ पकड़ लेता हूं। दिन गुजरते चले जा रहे हैं। हर सुबह मां मेरी ओर एक विशेष नजर से देखती हैं। मैं जानता हूं, वे मेरी छुट्टी के दिन गिन रही हैं।

मैं केमर की मां से मिलने उस के घर गया। समझ में नहीं आ रहा कि इस चीखती औरत को कैसे शांत करूं। वह चीख-चीख कर मुझ से कह रही है, "तुम जीवित क्यों हो, जब वह मर चुका है?" आखिर वह एक कुरसी पर गिर जाती है। मैं खड़ा हो जाता हूं। वह भाग कर भीतर से एक चित्र ले आती है, यह केमर का चित्र है। न जाने वह मुझे चित्र क्यों दे रही है!

आज घर में मेरी आखिरी शाम है। सब मौन हैं। मैं शीघ्र ही बिस्तर पर चला जाता हूं। कौन जाने, फिर सोना भाग्य में हो या नहीं! काफी रात गये मां मेरे कमरे में आ गयीं। वे दर्द के मारे दोहरी हो रही हैं। मैं ने जानबूझ कर आंखें बंद कर लीं। वे मुझे सोता देख कर चारपाई पर बैठ गयीं। मुझे उन की हिचकियां सुनायी दे रही हैं। आधा घंटा इसी तरह बीत गया। मैं चाहता हूं कि वे उठ कर चली जायें लेकिन वे बैठी हिचकियां ले रही हैं। आखिर मैं सहन नहीं कर पाता और यों दिखाता हूं जैसे अभी-अभी सो कर उठा हूं। "माजी, आप चल कर सो जाइये। आप को सर्दी लग जायेगी," मैं कहता हूं।

"बेटा मैं फिर भी सो सकती हूं लेकिन तुम न जाने कब आओ, मेरी बूढ़ी आंखों में प्रतीक्षा की शक्ति अब नहीं है।"

"मैं यहां से कैंप में जा रहा हूं। दस दिन बाद मोर्चे पर जाऊंगा। शायद अगले रविवार को मैं फिर आऊं!"

"अवश्य आना मेरे बच्चे, मैं स्टेशन पर तुम्हें लेने आऊंगी।"

"नहीं मां, आप ऐसा न करना, सर्दी बहुत है और फिर आप का स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है।"

"देखो बेटा, मोर्चे पर अपना ध्यान रखना।"

"बहुत अच्छा माजी!"

"पाल, मैं प्रति दिन तुम्हारे लिए प्रार्थना करूंगी। एक बात कहूं, तुम कोई ऐसी नौकरी कर लो जिस में खतरा न हो।"

"अच्छा माजी, अब से मैं रसोईघर में काम किया करूंगा।"

वे गहरी सांस लेती हैं। अंधेरे में उन का चेहरा बेहद सफेद दिखायी

दे रहा है। मैं उन्हें सहारा दे कर बिस्तर पर ले जाता हूं।

"अच्छा माजी, मैं जाता हूं आप मेरे आने तक जरूर अच्छी हो जाइयेगा।"

"हां-हां, मेरे बेटे, ऐसा ही होगा।"

"माजी, मुझे खाने के लिए कुछ न भेजा करें, वहां हमें बहुत-कुछ मिल जाता है।"

"बहुत अच्छा। पाल, तुम्हारे लिए मैं ने एक जांघिया बनवाया है। उसे थैले में रखना मत भूलना।"

मैं जानता हूं कि इस एक कपड़े के लिए वे कितना तंग हुई होंगी। राशन दफ्तर के सामने प्रतीक्षा की होगी, विनय की होगी और न जाने क्या-क्या दुःख उठाये होंगे।

"अच्छा मांजी, मैं चलता हूं।"

"अच्छा बेटे, भगवान तुम्हें ठीक रखें।"

मैं सोचता हूं कि मुझे छुट्टी नहीं लेनी चाहिये थी।

मोर्चे पर पहुंचने से पहले मैं एक प्रशिक्षण कैंप में दस दिन बिताता हूं। हमारे सामने रूसी कैदियों का कैंप है। उन की लंबी-लंबी दाढ़ियां हैं। दिन भर वे हमारे कैंप के छोरों पर कुछ ढूंढते फिरते हैं। हमारे यहां अन्न की बड़ी कमी है इसलिए हर वस्तु खा ली जाती है। कभी-कभी शलजम के छिलके या बासी रोटी के टुकड़े फेंक दिये जाते हैं। बेचारे रूसी उन्हें झपट कर उठा लेते हैं और बदबू से भरे मैले चिथड़ों में छिपा कर ले जाते हैं। उन्हें देख कर मनुष्य यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या वे वास्तव में हमारे शत्रु हैं?

भोलेभाले किसानों-जैसे चेहरे, बड़े-बड़े हाथ, लंबे-लंबे बाल—उन्हें तो फसल काटनी चाहिये थी। उन में और हमारे किसानों में कोई अंतर नहीं। उन्हें भिक्षा मांगते देख कर बहुत दुःख होता है। वे सब के सब भूखे हैं। उन्हें केवल इतना खाना मिलता है कि किसी तरह जीवित रह सकें। उन में से अधिकांश बीमार हैं। उन की कमीजें खून से लथपथ हैं। लोग उन्हें ठोकरें लगाते हैं और वे इतने निर्बल हैं कि तत्काल गिर पड़ते हैं और आधा-आधा घंटे तक वहीं पड़े रहते हैं।

वे हर वस्तु दे कर रोटी प्राप्त करना चाहते हैं। आरंभ में तो उन्होंने बूट और कपड़े बेचे, अंत एक जोड़ा बूटों की कीमत एक रोटी या सूखे मांस का टुकड़ा तक रही।

उन के पास अब कुछ शेष नहीं बचा। अब वे छोटी-छोटी वस्तुएं बेचना चाहते हैं जो उन्होंने बर्मों के टुकड़ों और तांबे के छल्लों से तैयार की हैं। ऐसी वस्तुओं के बदले उन्हें क्या मिल सकता है, यद्यपि उन्हें तैयार करने में वे कई-कई दिन लगा देते हैं! हमारे यहां के किसान सौदा करने में बेहद माहिर हैं। वे रोटी का टुकड़ा उन की नाक से लगा देते हैं। जब वे उसे पकड़ना चाहते हैं, तो किसान तत्काल रोटी पीछे हटा लेते हैं। इस प्रकार बेचारों की आंखें भूख और तृष्णा से बाहर निकल आती हैं तथा मुंह से लार बहने लगती है। अब लेन-देन बहुत ही आसानी से तय हो सकता है। बूटों का जोड़ा, कपड़े

और छल्लों की जंजीरें, सब एक ग्रास के बदले बिक जाती हैं।

रोज दिन उन कैदियों में से कोई न कोई मर जाता है। मृतक को यों चुपचाप दफन कर दिया जाता है मानो कोई विशेष बात ही न हो। मैं सोचता हूं कि इन का दोष क्या है? किसी मेज पर कुछ लोग किसी युद्ध के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर देते हैं और फिर वर्षों के लिए वह अपराध जिसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, हमारा प्रमुख उद्देश्य बन जाता है। हम हिंसक पशुओं की तरह एक-दूसरे की जान लेने में जुट जाते हैं।

रूसी कैदियों के लिए युद्ध समाप्त हो चुका है, अब केवल प्रतीक्षा है भूख, बीमारी और यातनाओं से मरने की। ये चलते-फिरते यों दिखायी देते हैं जैसे बीमार बगुले हों। मेरे घर से कुछ आलू की टिकियां आयी हैं। मैं उन्हें रूसियों के कैंप में ले जा कर बांट देता हूं।

मैं दोबारा मोर्चे पर पहुंच गया हूं। वहां तेजी से सफाई हो रही है। नये कपड़े मिल रहे हैं। पता चला कि कैसर विलयम निरीक्षण के लिए पधार रहे हैं। "यार तेदन, एक बात पूछूं? हम कहते हैं कि हम अपनी मातृभूमि के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं और फ्रांसीसी कहते हैं कि वे अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिए लड़ रहे हैं। आखिर सच्चा कौन है?"

"दोनों।"

"आखिर दुनिया में यह लड़ाई
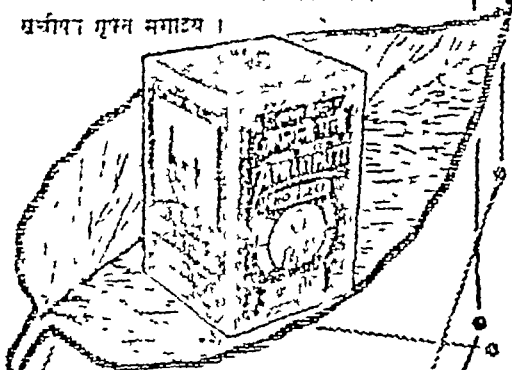
क्यों हुआ करती है ?"

"हर सम्राट को एक बार अवश्य युद्ध करना पडता है, नही तो वह प्रसिद्ध कैसे हो। विश्वास नहीं आता तो इतिहास की पुस्तकें देख लो।"

युद्ध तेजी पर है। अब मैं एक गड्ढे में पडा हू जिस में कमर तक पानी और कीचड भरा है। कोई वस्तु मुझ से टकराती है। यह एक मनुष्य का शरीर है। मैं पागलों की तरह उस पर वार करने लगता हू। वह शरीर तिलमिलाता है, तड़पता है और आखिर निर्जीव हो कर ढेर हो जाता है। उस के गले से गर्र-गर्र की आवाजें निकल रही है। मैं भयभीत हो जाता हू और उस के मुह में कीचड़ भर देता हूं ताकि आवाज निकलने न पाये। मेरी आखें उस पर गडी है किंतु वह धीरे-धीरे ठंडा हो रहा है। मेरे हाथ खून से सने है। मैं उन पर कीचड मल लेता हू। अब खून नजर नही आ रहा। सहसा उस का हाथ हिलता है। उस की आखें ऊपर उठती है और मुझे अपना शरीर पिघलता हुआ प्रतीत होता है। मैं उस के समीप पहुंचा लेकिन वह तो मर चुका है। उस की आखें खुली है, सिर के बाल काले है, उस का चेहरा भरा-भरा है। मैं उस की जेब से बटुआ निकाल लेता हूं। उस में दो-तीन पत्र है और एक चित्र। एक सुदर स्त्री फूलों के झुरमुट मे तीन बच्चों के बीच बैठी है। मैं उस का नाम लिख लेता हू ताकि उस की पत्नी को पत्र लिख सकू। यह नाम कील की तरह मेरे सीने में गड गया है।

इस घटना को कई दिन बीत चुके है। मैं उस मृतक मनुष्य को भूल चुका हूं। मैं ने उस का पता गदे नाले मे फेंक दिया है। युद्ध में ऐसा ही होता है। मुझे उस के पास एक दिन ठहरना पडा था, शायद यह उस का असर हो। युद्ध आखिर युद्ध है। मैं ने झुक कर रायफल उठा ली और मोर्चे पर फिर लौट जाने के लिए तैयार हो गया। कीट के सिर मे बम का टुकडा लग गया था और वह कल शाम अस्पताल में मर गया। तेदन और म्यूलर आज की बमवारी में चल बसे। केवल मैं और पीटरिंग रह गये है। हम भी एक दिन मर जायेंगे। हर व्यक्ति शांति और मैत्री की बातें कर रहा है। हम शाति की प्रतीक्षा कर रहे है, यदि युद्ध बद न हुआ तो हमारे दिल टूट जायेंगे।

मैं मोर्चे से कुछ दूर धरती पर मौन पडा हू। मेरे जख्मों से खून रिस रहा है। मोर्चे पर पूर्ण शाति है, मालूम होता है जैसे मैत्री हो गयी हो। शायद इसीलिए मेरे चारो ओर खडे वृक्ष सुनहरे हो रहे है और लाल जगली बेर हरे पत्तों के बीच से झाक रहे है।

मैं उठने का प्रयत्न करता हूं लेकिन व्यर्थ। अब शरीर साथ छोड रहा है। अब शायद मैं मर जाऊगा।

"चिट्ठियां खोलने वाला चाकू खरीदेंगे साहब ?"
"मुझे तो पहले ही खुली मिलती है, भैया ! मैं शादीशुदा हूं।"
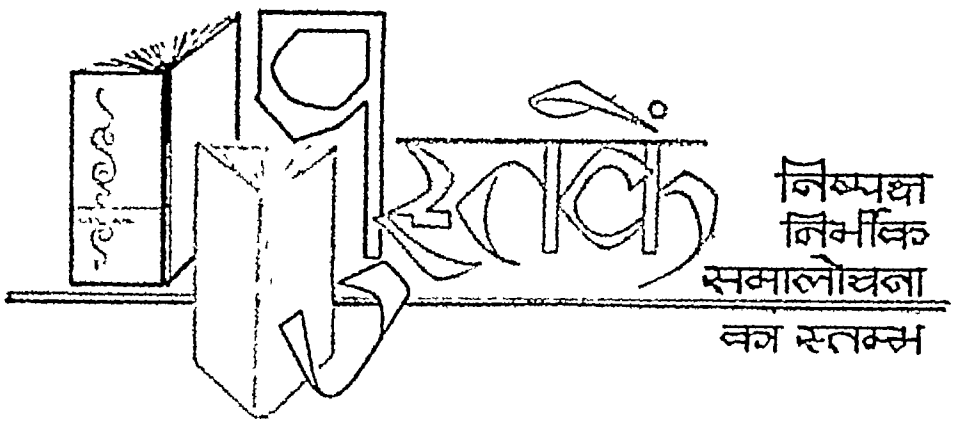
कहियें समग्र विचारि

लेखक—लक्ष्मीनिवास बिड़ला; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली; पृष्ठ—९२; मूल्य—१.००

हिन्दी में निबन्ध साहित्य की इतनी प्रचुरता नहीं है जितनी कि गल्प, कविता आदि की। कुछ विशिष्ट ढंग के निबंध मिलते हैं, जैसे साहित्यिक या आलोचनात्मक तथा गूढ़ आध्यात्मिक। ये गंभीर अध्ययनकर्ताओं के लिए ही उपयोगी हो सकते हैं। सामान्य पाठकों के लिए रोचक निबंधों का प्राय अभाव ही रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इस कमी को दूर करने की दिशा में अच्छा प्रयास है। इस में संकलित निबंध जन-सामान्य, विद्यार्थी-वर्ग तथा नव-साक्षरों तक के लिए उपयोगी हैं। निबन्धों में विषय की विविधता तो है ही, साथ-साथ वर्णन-शैली की सुबोधता तथा रोचकता विशेषतया उल्लेखनीय है। पुस्तक के दूसरे संस्करण का प्रकाशन इस की लोकप्रियता का ही प्रमाण है। इस में परिवर्द्धन भी किया गया है।

इन निबन्धों में वाणी, कला, सत्य, संतोष, सुख-दुःख, ईश्वर, अवतारवाद तथा प्रकृति-जैसे चिरंतन विषयों के अतिरिक्त रुपये के विकास तथा पूंजी और पूंजीपति-जैसे विषयों पर भी बड़े सुलझे हुए विचार हैं। नैतिक सिद्धान्तों में आस्था, प्रकृति की महानता का भान, आस्तिकता तथा सामाजिक सहयोग की भावना उत्पन्न करना इन का मूल उद्देश्य है। साथ ही इन से आधुनिक वैज्ञानिक बातों की भी पाठक को अच्छी जानकारी हो जाती है। पुस्तक रोचक और प्रेरणाप्रद है।

—कृष्णचन्द्र शर्मा

आधुनिक हिन्दी काव्य

लेखक—कुमार विमल; प्रकाशक—अर्चना प्रकाशन, आरा; पृष्ठ—१६६; मूल्य—५.००

आधुनिक हिन्दी काव्य पर रचे गये सात निबंधों का संकलन कुमार विमल ने अपनी इस पुस्तक में किया

हैं। हिन्दी कविता के लिए यह आश्चर्य का विषय है कि अभी तक हिन्दी के समर्थ और उत्तरदायी आलोचकों की दृष्टि में भी हिन्दी कविता पतजी से आगे नहीं बढी है। यों 'लोकायतन' पर लिखा गया निबंध संभवत. पहला विस्तृत तथा सुगठित निबंध है, इसलिए महत्वपूर्ण है। 'उर्वशी' पर रचित निबंध भी अपनी सामग्री तथा विवेचन के कारण सजीव है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमारे आलोचकों की दृष्टि वर्षों से लिखे जा रहे नये काव्य पर अभी तक पडी ही नहीं जो अधिकाश आलोचना-पुस्तकें पंत, प्रसाद, निराला, दिनकर आदि तक पहुंच कर छात्रोपयोगी बन कर रह जाती हैं? अच्छा होता यदि इस पुस्तक के आरभ में 'आधुनिक' शब्द न होता, क्योंकि आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में ये कवि प्राय पुराने पड जाते हैं और तब इन के बाद की पीढियों के कवियों का उल्लेख अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

'लोकायतन' तथा 'उर्वशी' के अतिरिक्त जो अन्य पाच निबंध इस पुस्तक में दिये गये हैं वे हैं—रोमांटिक कविता और छायावाद, छायावादी कविता दर्शन और कला, निराला की काव्य-कला, महादेवी का बिम्बविधान तथा वाणाम्बरी। इस में सन्देह नहीं कि लेखक के पास पैनी दृष्टि है और उन ने जागरूकता से ये निबंध लिखे हैं। सभी निबंधों में लेखक की सूक्ष्म विवेचन-शक्ति और अध्ययन का परिचय मिलता है। यदि पुस्तक में पाठ्यक्रम की रचनाओं के अलावा नयी काव्य-कृतियों पर भी कुछ लिखा जाता तो आधुनिक हिन्दी कविता के पक्ष मे एक बडा कार्य होता।

—शेरजंग गर्ग

सच्ची आज़ादी

लेखक—महात्मा भगवानदीन; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृष्ठ—१२०; मूल्य—२ ००

पुस्तक में २२ निबंध हैं। इन की रचना का मुख्य उद्देश्य मानव को ऐसे बंधनों से मुक्त करना है, जो उस के लिए घातक हैं। लेखक ने बताया है कि आजादी का सच्चा अर्थ क्या है। बंधन-मुक्त होना ही आजादी नही है। जो मनुष्य समाज में रह कर सचाई और ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता है और दूसरों को जीने का अधिकार देता है, वही आजाद है।

आज हम स्वतत्र हैं, लेकिन क्या हम सच्चा सुख लूट रहे हैं? नही। कारण, किसी के पास धन है तो वह उस की सुरक्षा के लिए चिंतित है और अगर किसी के पास नही है, तो वह उस के उपार्जन में व्यस्त है। चिंता, लोभ, भ्रष्टाचार आदि मानव को पराधीन बनाये रखते हैं। सुख उस से कोसों दूर रहता है। लेखक के ये प्रेरणादायक निबंध अवश्य ही पाठक के मन में सचाई एव त्याग की ज्योति प्रज्ज्वलित कर स्वस्थ एव सुन्दर समाज की स्थापना में सहायक बनेंगे।

विचारों की स्वच्छता, सरलता और सजीवता की दृष्टि से इन निबंधों का

विशिष्ट स्थान है। उपदेशों के साथ-साथ मनोरंजन तो है ही, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी है। भाषा सरल और मधुर है।

—गोविन्द सीताराम गुण्ठे

डा० हेडगेवार

लेखक—नारायण हरि पालकर; प्रकाशक—डा. सुरेन्द्रनाथ मीतल, प्रयाग; मूल्य—१०.००; पृष्ठ—४८०

प्रस्तुत पुस्तक राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के सस्थापक डा केशव वलिराम हेडगेवार की जीवनी है। डा हेड की मृत्यु के वीस वर्ष पश्चात लेखक ने इसे मराठी में लिखा था। अपनी विनमूता के कारण डा हेड ने अपने सम्बन्ध में कुछ भी नही लिखा। समाचार-पत्रों में भी उन के सम्वन्ध में वहुत कम उल्लेख होता था। लेखक ने उन के सहयोगिओं की सहायता से और यत्र-तत्र विखरी सामग्री को एकत्र कर यह सुसम्बद्ध जीवन चरित्र लिखा है। यह कहना कठिन है कि डा. हेड का सम्पूर्ण चरित्र इस में निखरा है कि नहीं, क्योंकि लेखक ने उन की कमजोरियों को नही छुआ है।

इस जीवनी के अनुसार डा हेड में वचपन से ही विदेशी सत्ता के प्रति घृणा थी। वन्देमातरम उद्घोष करने के कारण उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया था। प्रारम्भ में उन्होंने काग्रेस की गतिविधियों में भी खूब भाग लिया। नागपुर काग्रेस में डा पराजपे के साथ वे स्वयसेवकों के नेता थे। उग्र भाषण देने के अपराध में उन्हें एक वर्ष की सजा हुई। वाद में उन्होंने जगल-सत्याग्रह में भाग लिया, किन्तु उस समय के हिन्दू-मुस्लिम दगों और काग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण नीति के कारण उन्होंने हिन्दू राष्ट्र को सघठित करने के उद्देश्य से सन १९२५ में दशहरे के दिन नागपुर में राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की स्थापना की।

किस प्रकार उन्होंने सघ का सचालन किया एवं किस तरह विना किसी आर्थिक सहायता के उन्होंने इसे एक सुदृढ सस्था का स्वरूप दिया, यह पुस्तक पढने से स्पष्ट हो जाता है। स्वय गाधीजी ने उन के शिविर सचालन की सराहना की थी।

पुस्तक में अनेक चित्र हैं। साज-सज्जा सुन्दर तथा भाषा रोचक है।

—पी. एस. भकुनी

जैसे उन के दिन फिरे

लेखक—हरिशंकर परसाई; प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी; मूल्य—२.५०; पृष्ठ—१२६

प्रस्तुत सग्रह में १९ कहानिया हैं। इस का नामकरण पहली कहानी के नाम पर किया गया है। इस के द्वारा कहानीकार यह नही कहना चाहता कि जैसे इस विशेष कहानी में चारों राजपुत्रों के दिन फिरे, ऐसे ही सव के फिरें, वल्कि वह यह कहना चाहता है कि जैसे उन के दिन फिरे वैसे ही दिन फिरते हैं। ये चारों राजपुत्र भ्रष्टाचारी हैं, पर राजगद्दी उसे मिलती है जो सव से अधिक भ्रष्टाचारी है। इस कहानी में तथा 'भेड़'

और भेड़िये,' 'लंका विजय के बाद' और 'आमरण अनशन' में राजनीतिक वेईमानी और विकृतियां हैं। 'इतिश्री रिसर्चाय' में साहित्यिक वेईमानी की बात है। 'सुदामा के चावल' में रिश्वत खोरी की अभिव्यक्ति है, 'मौलाना का लड़का पादरी की लड़की' में धर्मान्धता पर तीखा व्यंग्य है और 'त्रिशंकु बेचारा' में मकान-समस्या की विकटता है।

इस संग्रह की सभी कहानियां हास्य-व्यंग्यप्रधान हैं। इन के प्रति कोई भोंडेपन, अशिष्टता या अश्लीलता की शिकायत नहीं कर सकता। इन में सस्तापन नहीं है। कहानियों की अभिव्यक्ति में जितनी सादगी है, प्रभाव में उतनी ही सक्षमता है। इन में जीवन के गहन और व्यापक अनुभव व्यक्त हुए हैं। विषय की दृष्टि से हम इन्हें समस्या-प्रधान सामाजिक कहानियां कह सकते हैं, जिन में राजनीतिक समस्याओं का यथार्थ रूप भी मिलता है।

सभी कहानियां वर्तमान सामाजिक जीवन की विशृंखलताओं तथा असंगतियों पर करारी चोट करती हैं। ये समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को खोल कर रख देती हैं। लेखक ने भ्रष्टाचारियों की बुरी दृष्टि से बचने के लिए या शिल्प को संवारने के लिए अतीत और भविष्य लोक-प्रचलित कहानियों के माध्यम से लोक-व्याप्त अन्तर्विरोधों और विकृतियों का सशक्त उद्घाटन किया है, जिस के कारण प्रतीकात्मकता स्वत आ गयी है। कहानी-संग्रह निश्चित ही हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में योग देता है और हम इस पर गौरव कर सकते हैं।

—रत्नलाल शर्मा

प्राप्ति स्वीकार

ब्रह्मवाणी (मासिक पत्र), संपादक—कृष्णमुनि प्रभाकर; प्रकाशक—युगांतर प्रेस, दिल्ली; मूल्य—०.५०; पृष्ठ—७२

हमारे गीत; सम्पादक—ठाकुर घनश्याम नारायण सिंह, प्रकाशक—पर्वतीय सांस्कृतिक सम्मेलन, देहरादून; मूल्य—३.००, पृष्ठ—९४

कला विलासिनी वासवदत्ता, लेखक—देवदत्त शास्त्री, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, मूल्य—२.५०; पृष्ठ—९९

कृत्रिम ग्रह और उपग्रह; लेखक—डा. ईसा अहमद; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; मूल्य—१.५०; पृष्ठ—७४

मक्खी और मच्छर की कहानी; लेखक—योगेन्द्र कुमार लल्ला; प्रकाशक—आत्माराम एंड संस, दिल्ली, मूल्य—२.००; पृष्ठ—१००

राजस्थान—साहित्य · परम्परा और प्रगति; लेखक—डा० सरनाम सिंह शर्मा: प्रकाशक—हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली, मूल्य—२ ००, पृष्ठ—६८

आरती, लेखिका—विद्यावती कोकिल; प्रकाशक—ज्योति प्रकाशन, पांडिचेरी, मूल्य—२ ५०; पृष्ठ—१०९

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

Remy
वह दिन भर
तरोताजा मस्त और महकती
रहती है ! क्यों कि उसने अपनाये हैं
रेमी
आप की चमड़ी के कोष्टों को स्फूर्ति देनेवाली खास चीजों
और उन्हें पुष्ट रखनेवाले तेलों के योग से बने रेमी सौंदर्य प्रसाधन
इस्तेमाल करने से आप का छिपा रूप खिल उठता है, और रेशमी,
मुलायम व कुदरती रौनक की बहार आ जाती है।
सौंदर्य प्रसाधन
रेमी स्नो
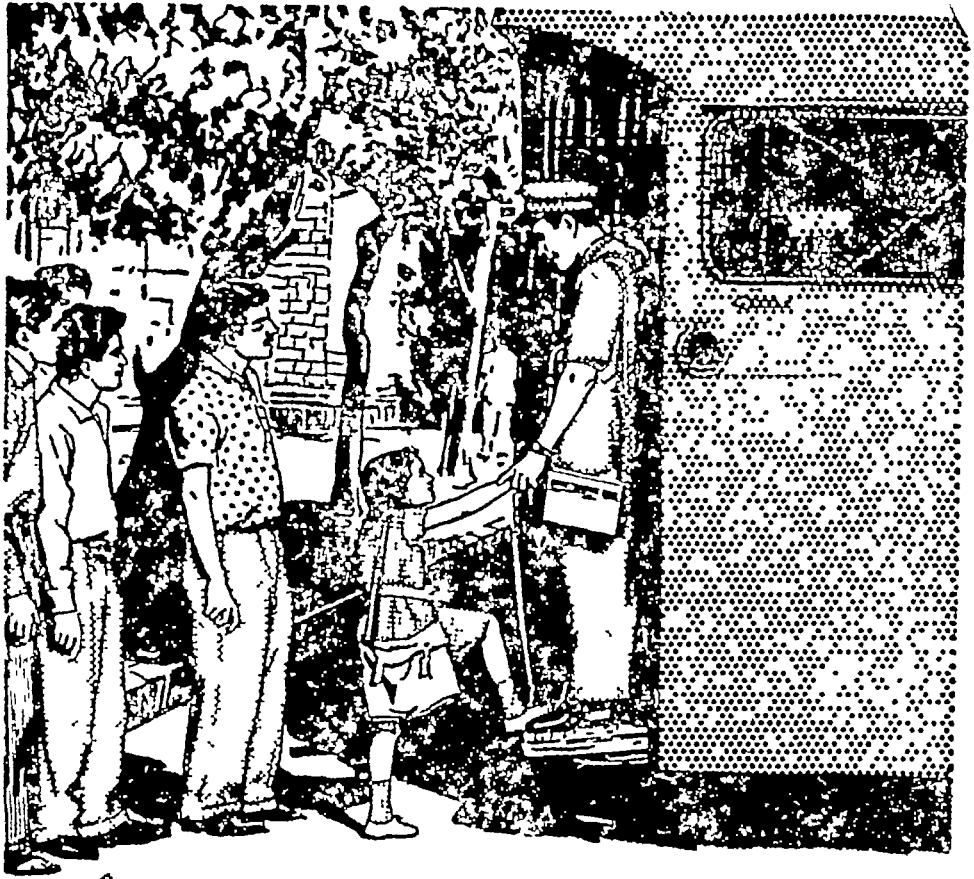
ललिता के लिए बस की सवारी कितनी आनन्ददायक है

स्कूली छात्रा ल[...] बस की सवारी का आनंद उठाती है, किन्तु वह [...]सी तरह के अन्य बच्चे शायद ही कभी यह मा[...] होंगे कि इण्डियनऑयल उनके लिए का[...] क्या मालूम कि यह राष्ट्रीय सगठन उनके [...] पार्ट अदा करेगा जब वे बड़े होकर भारत के [...]।

सार्वजनिक [...] शोधक कारखानों के अलावा, जो अभी उसके अन्त[...] इण्डियनऑयल उद्योग के लिए आवश्यक विभिन्न उत्पादनों का विक्रय करता है। केवल यातायात के प्र[...] इण्डियनऑयल भारत के प्राय सभी प्रमुख यातायात संगठनों की तेल की जरूरत की पूर्ति करता है।

इण्डियनऑयल

"राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि का प्रतीक"

इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन लिमिटेड

maa IOC 4711

प्रसाधन

आप की दृष्टि

जैनेंद्रजी की कहानी 'महामहिम' प्रभावित करती है। ऊंची से ऊंची स्थिति का व्यक्ति कभी न कभी सामान्य धरातल पर आता है। उस समय वह भूल जाता है कि वह कुछ और भी है। मानव-मन का प्रस्तुत रचना में सुन्दर चित्रण हुआ है। इस में शक नहीं कि जैनेंद्रजी उच्च कोटि के लेखक रहे हैं, पर आधुनिकता के संदर्भ में उन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

मार्च अंक की श्रेष्ठतम रचना रही 'सुनन्दा'। 'सवेरे जो आंख खुली' तथा 'एक और प्राइवेट बात' तिलमिला देने वाले व्यंग्य थे। 'मुक्तिबोध : यादों के साये में' आज के साहित्यिक महारथियों पर करारा व्यंग्य है। गीत अधिक अच्छे नहीं लगे।

—सुरेशकुमार 'देवेश', गोंडा

सार-संक्षेप ने हृदय की गहराइयों को स्पर्श किया। युद्ध-काल में मनुष्य के विचारों में जो परिवर्तन आ जाते हैं, उन का सफल चित्रण एरिक मारिया रिमार्क ने किया है। शस्त्रीकरण के इस युग में घर के आंगन कहीं युद्ध के मोर्चे न बन जायें, इस के लिए पूरे विश्व को प्रयत्न करना है। इस श्रेष्ठ कृति को प्रकाशित करने के लिए हार्दिक बधाई।

—राजेश्वरप्रसाद, सागर

'हिन्दी भाषा : शोध आवश्यक' सामयिक तथा मननीय लेख है। जैनेन्द्रजी की 'महामहिम' तथा अनन्त चौरसिया की 'इम्तहान' कहानियां अच्छी लगीं। मंटो तथा केशवचंद्र वर्मा के हास्य-व्यंग्य पसंद आये। शिकार-कथाओं के साथ यदि रहस्य-रोमांच की कहानियां भी दें तो अच्छा हो। इस बार का मुखपृष्ठ बेहद आकर्षक रहा।

—महेंद्र पुरोहित, बांसवाड़ा

रासबिहारी राय शर्मा ने अपने पत्र में ('कादम्बिनी'-मार्च) 'यायावर' ('शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये'-दिसम्बर) का जो एक और अर्थ दिया है, उस के लिए उन का स्वागत। हमारी भाषाओं और विशेषतः संस्कृत में शब्दों के इतने अधिक अर्थ हैं कि छोटी-सी मर्यादा में उन सब की पूरी व्याख्या कर देना संभव नहीं है। इस स्तंभ में उपयोगी शब्दों के प्रमुख अर्थ ही दिये जाते हैं और आशा की जाती है कि संपूर्ण अर्थ जानने के लिए पाठक स्वयं प्रयत्न करेंगे।

—सीताचरण दीक्षित, नयी दिल्ली

'पंखवाले प्रवासी' रोचक तथा ज्ञानवर्धक लेख है। 'बिन्दु-बिन्दु विचार'

में कॅक्टस तथा नागफनी के माध्यम से आज की भाषा-समस्या को अत्यधिक सुंदर तथा प्रभावशाली ढंग से उठाया गया है। चुटकुले सदा की तरह चुटीले रहे।

—ओमप्रकाश शर्मा, पटना

युगोस्लाव कहानी 'रविवार' बहुत मार्मिक है। इस में एक बच्चे की भावनाओं को अत्यंत कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कहानी लंबे समय तक न भूली जा सकेगी। 'नये महायुद्ध के अभिमन्यु' भी एक श्रेष्ठ रचना है।

—राधिकाप्रसाद, सीतापुर

प्रायः निम्न श्रेणी की पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ बड़े आकर्षक होते हैं, इसलिए 'कादम्बिनी' का जनवरी, ६५ अंक देख कर मैं ने सोचा कि कहीं यह भी ऐसी न हो। लेकिन पत्रिका पढ़ने के बाद मेरी गलतफहमी दूर हो गयी। यों मैं ने कभी पत्रिका खरीद कर नहीं पढ़ी, पर अब मैं हर महीने 'कादम्बिनी' खरीदने को विवश हूं। यदि 'जीवन एक अनबूझ पहेली' की जगह सामान्य ज्ञान संबंधी स्तंभ शुरू कर दें, तो अच्छा रहे।

—रामेश्वर विश्वकर्मा, धनबाद

● सीताचरण दीक्षित

शब्द-सामर्थ्य की कमी प्रायः उन्नति में बाधक होती है। वह सरलता से दूर की जा सकती है। निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये। उत्तरों में दिये चिह्नों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तत्० = तत्सम, तद् = तद्भव, सं० = संज्ञा, वि० = विशेषण, क्रि० वि० = क्रिया-विशेषण, पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग। यदि आप के ७ उत्तर सही हैं तो परिणाम साधारण, ११ सही हैं तो संतोषजनक और सब सही हैं तो उत्तम है =

१. सर्वहारा : क सब से हारा हुआ, ख. सब हारा हुआ, ग निर्धन, घ निरीह।

२. अत्याहित : क संकट, ख भारी हित, ग. वर्जित, घ अति विलम्बित।

३. निरस्त करना : क. अस्त्रहीन करना, ख. बाद कर देना, ग उदित रखना, घ परेशान करना।

४. दूभर : क कठिन, ख. संकट-ग्रस्त, ग दुष्कर, घ असह्य।

५. सन्नद्ध : क. तैयार, ख. आबद्ध, ग कटु, घ तिक्त।

६. अन्तर्मुख : क जिस का मुख ढका हो, ख दुखी, ग आत्म-चिन्तन में लीन, घ घुन्ना व्यक्ति।

७. चेष्टा : क इच्छा, ख भावभंगी, ग. प्रयत्न, घ स्फोट।

८ मूर्धन्य : क धन्य, ख. धान्य-विशेष, ग. निम्नस्थानीय, घ. उच्चतम।

९. तादात्म्य : क किसी के साथ एकात्मता, ख आत्मशक्ति, ग. सदृशता, घ. अहंकार।

१०. सर्वसह : क. सर्वसहायक, ख सब-कुछ सहने वाला, ग पृथ्वी, घ. बैल।

११. प्रख्यापन : क प्रशंसा करना, ख. रोना, ग विज्ञापन करना, घ. स्थापन।

१२. विदग्ध क. धनी, ख पराजित, ग. धार्मिक, घ. जला हुआ।

१३. वैतालिक : क स्तुतिगायक, ख. वैताल का, ग गायक, घ. वादक।

१४ वेद्य : क. वेदों का, ख. जानने योग्य, ग. वैद्य, घ सुनने योग्य।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. सर्वहारा : ग. निर्धन, गरीब, प्रालिटेरियन — रूस और भारत के सर्वहारा वर्गों में बहुत अंतर है। (तत्०, वि०, पु०)

२. अत्याहित : क. संकट, भयानक दुर्घटना, ऐक्सिडेंट, बहुत बड़ी क्षति, घोर विपत्ति —आत्महत्या कर ली ? कैसा अत्याहित ! भयानक अत्याहित नाव उलटने से १०० बच्चे काल के गाल में ! (तत्०, सं०, पु०)

३. निरस्त करना : ख. बाद कर देना, हटा देना, निराकृत कर देना, बाहर या रद्द कर देना — एक ही तर्क ने उन्हें निरस्त कर दिया, तर्क निरस्त हो गया, निरस्त-भेद और निरस्त-राग होकर सोचो। (तत्०, क्रि०)

४ दूभर : घ असह्य, दुर्भर, भारी, असाध्य — वहां जीना दूभर हो गया था। (तद्०, वि०)

५. सन्नद्ध : क तैयार, उद्यत, कटिबद्ध, लैस — किसी काम या युद्ध के लिए सेना सन्नद्ध है, वह जलते घर से बच्चे को निकाल लाने के लिए सन्नद्ध था। (तत्०, वि०, सं०— सन्नद्धता)

६. अन्तर्मुख . ग आत्मचिन्तन में लीन — नाटक देखते-देखते वे अंतर्मुख हो गये। (तत्०, वि०, पु०। स्त्री० —अंतर्मुखी, विपरीतार्थी—बहिर्मुखी)

७. चेष्टा : ख भावभंगी, मुखमुद्रा तथा अंग-परिचालन द्वारा भाव व्यक्त करना — उस की चेष्टा से लगता है कि सच कह रहा है। ग. प्रयत्न— लेख लिखने की चेष्टा करूंगा। (तत्०, सं० स्त्री०)

८. मूर्धन्य : घ. उच्चतम, चोटी का, शीर्ष-स्थानीय — हमारा नेता आदर्शवादी राजनीतिज्ञों में मूर्धन्य था। (तत्०, वि०, पुं०)

९. तादात्म्य : क. किसी के साथ एकात्मता, भावों और विचारों से बिलकुल एक हो जाना, घुलमिल जाना— भक्त का भगवान के साथ, शिष्य का गुरु के साथ तादात्म्य। (तत्०,सं०,पुं०)

१०. सर्वसह : ख. सब-कुछ सहने-वाला, सर्व-सहिष्णु — क्या आप गांधीजी को सर्वसह कह सकते हैं ? (तत्०, वि०, पु० । विकल्प — सर्वंसह । स्त्री०—सर्वंसहा=पृथ्वी)

११. प्रख्यापन : ग. विज्ञापन करना, घोषणा करना — नाव अपनी शक्ति का प्रख्यापन करती हुई तूफानी समुद्र में तेजी से बढ़ती जा रही थी। (तत्०, सं०, पु० । स्त्री०—प्रख्यापना)

१२. विदग्ध : घ. जला हुआ, भस्मीभूत — विदग्ध गृह, हृदय, धातु आदि । चतुर, विद्वान, पंडित— ज्ञान-विदग्ध, कूटनीति-विदग्ध । (तत्०, वि०, पु० । स्त्री०—विदग्धा । सं०—वैदग्ध्य, वैदग्ध)

१३. वैतालिक : क. स्तुति-गायक, भाट, बन्दी, (पर्याय से) कवि—नव-प्रभात के वैतालिकों के स्वर में इन गीतों की प्रतिष्ठा रहे। (तत्०, सं०, पु०)

१४. वेद्य : ख जानने योग्य, ज्ञातव्य, वेदितव्य — गीतोपदेश सब धर्मावलंबियों के लिए वेद्य, परम वेद्य (या वेदितव्य या ज्ञातव्य) है। (तत्०, वि०, पु०)
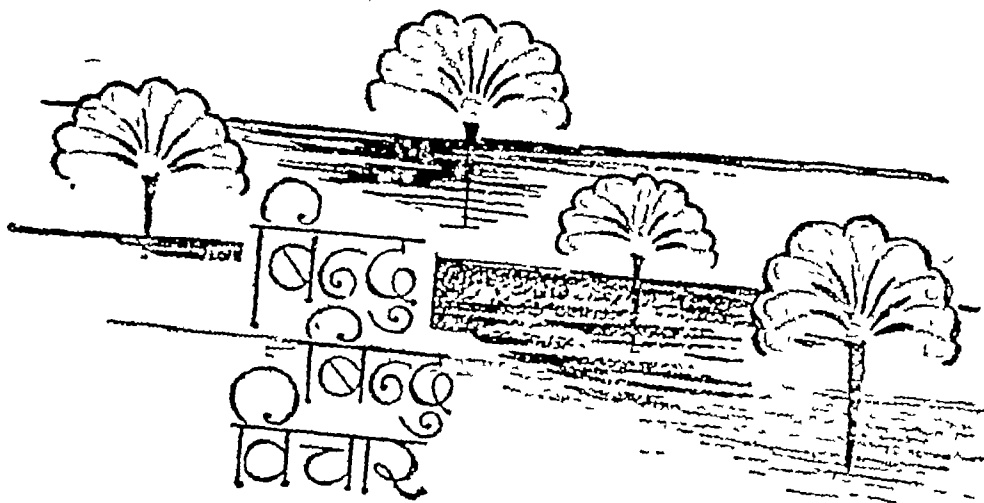
★ शब्द ! शब्द !! शब्द !!!

★ ऊपर-नीचे, दायें-बायें, आगे-पीछे—समस्त क्षितिजों तक और उन के पार भी शब्दों का एक अकूल विस्तार ।

★ और इस शब्दोदधि में पड़नेवाली असंख्य-असंख्य शब्दों की अनगिनत अविरल धाराएं—

★ दिशा, देश और काल की परिधियों में मैं केवल शब्द से घिरा हूं ।

★ इन शब्दों में—

ये प्रीति के हैं, ये भीति के
ये पुरस्कार के हैं, ये तिरस्कार के
ये पुचकार के हैं, ये ललकार के
ये आश्वासन के हैं, ये निष्कासन के
ये रोष के हैं, ये संतोष के
ये तृषा के हैं, ये तृप्ति के
ये इस के हैं, ये उस के
और ये हैं और ये भी हैं और ये तो हैं ही

★ इन शब्दों की ध्वनियां भिन्न हैं, मनस्थितियां भिन्न हैं, प्रणेता भिन्न हैं और भिन्न हैं पात्र ।

★ फिर भी इन में एक आश्चर्यजनक समानता है—

★ ये सब शब्द खोखले हैं ।

★ ये केवल अर्थहीन ध्वनियां हैं, जो मैं ने, मेरों ने और अन्यों

ने वायुमंडल में विखेर दी हैं।

★ ये ध्वनियां 'अर्थहीन' हैं, इसलिए कि इन के प्रणेता हम खोखले हैं और 'विखेर दी हैं', इसलिए कि उस खोखलेपन को ढांपने के लिए हम चेष्टारत हैं।

★ संख्यातीत खोखले शब्द प्रति निमिष आकाश में तैराये जा रहे हैं, तैराये जाते रहे हैं, तैराये जाते रहेंगे इसलिए—कि आत्म-सम्मान से हम शून्य हैं और परसम्मान के लिए अपेक्षित वड़ा-पन आत्मसम्मानहीनों में होता नहीं है।

★ हम हैं केवल होने के लिए, हो जाने के लिए नहीं,

★ और हमारे शब्द हैं केवल आडम्बर के लिए, अर्थवहन के लिए नहीं।

★ अक्षर की ही भांति शब्द की एक संज्ञा ब्रह्म भी है।

★ किन्तु अक्षर स्वयं ब्रह्म होता है, जब कि शब्द को ब्रह्म वनाना पड़ता है।

★ शब्द ब्रह्म वनता है उसे अर्थ देने से।

★ भगवान महावीर ने और बुद्ध ने और ईसा ने और गांधी ने सारा जीवन साधना में जी कर सत्य और अहिंसा और प्रेम और दया—इन चार शब्दों को अर्थ दिया था।

★ आस्तिक वही है जो शब्द को ब्रह्म वनाता है।

★ आओ, इस क्षण को हम आत्म-विश्लेषण का क्षण मानें और जानें कि हम अपने जीवन में किन अंशों तक आस्तिक वन पाये हैं।

रामानन्द दोषी

आत्म-विद्या

बारह वर्ष वेदाध्ययन करके श्वेतकेतु गुरुकुल से लौटा तो उसे अपने ज्ञान के प्रति अहंभाव उत्पन्न हो गया। पिता ने पूछा, "आयुष्मान, क्या तुम ने वह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया जिस के द्वारा अश्रावित का श्रवण, अकल्पित की कल्पना और अज्ञात का ज्ञान हो सके ?"

श्वेतकेतु चकित रह गया, "वह ज्ञान क्या है तात ?"

"एक स्वर्ण-खंड के ज्ञान से स्वर्ण का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि स्वर्ण-खंड में नाम-भेद संभव होते हुए भी उन का यथार्थ केवल स्वर्ण है। वैसे ही इस ज्ञान द्वारा भिन्न-भिन्न प्राणियों में निहित एक शाश्वत सत्य का दर्शन संभव है।"

श्वेतकेतु और भी विस्मित हो उठा, "निश्चय ही मेरे मान्य आचार्य इस ज्ञान से अपरिचित थे। आप कृपा कर मुझे उपदेश कीजिये।"

पिता ने एक पात्र में जल मंगा कर उस में लवण घोल दिया और कहा, "जो लवण इस में डाला था, उसे निकाल लो।" किन्तु लवण कहां मिलता !

पिता ने कहा, "इस ओर से पात्र के जल का पान करो। इस का स्वाद कैसा है ?" श्वेतकेतु ने जल पिया और कहा, "लवणयुक्त।"

"और इस ओर से ?" पिता ने दूसरी तरफ संकेत किया।

"लवणयुक्त।"

"अब पुनः लवण की खोज करो।"

श्वेतकेतु बोला, "मैं लवण नहीं देखता, केवल जल देखता हूं।"

पिता ने कहा, "पुत्र, इसी प्रकार समस्त प्राणियों में परिव्याप्त अविनाशी आत्मा का दर्शन संभव नहीं, किन्तु वस्तुतः उस का अस्तित्व है। इस आत्म-विद्या के अभाव में समस्त ज्ञान अपूर्ण है।"

—छांदोग्य उपनिषद

ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा लादी गयी एक विदेशी भाषा को बनाये रखने के लिए आपस में सिर-फुटौवल भारतीयों के लिए चाहे कितनी ही हेय बात क्यों न हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि देश में धनी और शिक्षित वर्ग—चे हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के हों अथवा अहिन्दी-भाषी—अपने बच्चों को विदेशी भाषा में ही शिक्षा दिलाना चाहते हैं। इस भाषा के अच्छे ज्ञान के लिए वे अपने बच्चों को 'पब्लिक', 'मिशनरी' तथा अन्य ऐसे ही स्कूलों में भेजते हैं जिन में शिक्षा का माध्यम अंगरेजी है। ऐसा अकेले वे ही नहीं करते जो सोचते हैं

केन्द्रीय सरकार का सम्पूर्ण कार्य अंगरेजी में किया जाता है। विज्ञान, औद्योगिकी, इंजीनियरी, कानून तथा चिकित्सा संबंधी सभी कार्य एवं शिक्षा अंगरेजी के माध्यम से ही होती है। अतः यह सोचना हास्यास्पद है कि हिन्दी या अन्य कोई प्रादेशिक भाषा अंगरेजी पर थोपी जा सकती है। यह तो उसी प्रकार की बात होगी जैसे खेत में पहले से उगी किसी फसल के ऊपर किसी नयी तथा भिन्न फसल की कलम लगाना। इस तरह के कार्य से दोनों ही भाषाओं को क्षति पहुंचेगी। अंगरेजी के बड़े बरगद की छाया में प्रादेशिक भाषाएं फल-फूल

कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क-भाषा हो जाने से उन की प्रादेशिक भाषा को क्षति पहुंचेगी, वरन वे भी करते हैं जो हिन्दी को उपर्युक्त पद दिलाने के लिए जमीन आसमान एक कर रहे हैं।

इस बात को छिपाने का हम चाहे जितना प्रयत्न करें, किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के सत्रह वर्ष बाद आज भी यह एक वास्तविकता है कि सभी राज्यों में अधिकांश महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय कार्य प्रादेशिक भाषाओं में न हो कर अंगरेजी में होता है। स्वतन्त्रता से पूर्व जिन भारतीय रियासतों में प्रादेशिक भाषाओं में कार्य होता भी था वहां भी अब अंगरेजी का ही बोलबाला है।

नहीं सकतीं और अंगरेजी भी उपयुक्त ढंग की नहीं होगी।

अंगरेजी के स्थान पर हिन्दी लाने का विरोध प्रायः इस आधार पर किया जाता है कि हिन्दी कुछ अन्य प्रादेशिक भाषाओं—जैसे तमिल, बंगला, मराठी आदि से कम विकसित है। यह एक तथ्य है। किन्तु ये भाषाएं भी अपने क्षेत्रों में अंगरेजी को नहीं हटा पायी हैं। इन भाषाओं के प्रेमी स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं। होना यह चाहिये था कि ये सब से पहले अपने राज्यों में अंगरेजी के बजाय अपनी प्रादेशिक भाषाओं को लागू कराने का प्रयास करते। इन राज्यों में लोकतन्त्रीय व्यवस्था है।

यदि उपर्युक्त बात के लिए सामान्य इच्छा और माग होती तो जनता ने अपनी सरकारों को अंगरेजी के स्थान पर प्रादेशिक भाषाएं लागू करने के लिए बाध्य कर दिया होता। वास्तव में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के विकास में जो अन्तर है वह केवल पुराने और नये साहित्य, गद्य, पद्य, नाटक, उपन्यास और लघुकथा के क्षेत्र में है। अर्थात, सभी भारतीय भाषाएं उन उद्देश्यों के लिए एक सी अनुपयुक्त समझी जाती हैं जिन के लिए अंगरेजी आवश्यक समझी तथा प्रयुक्त की
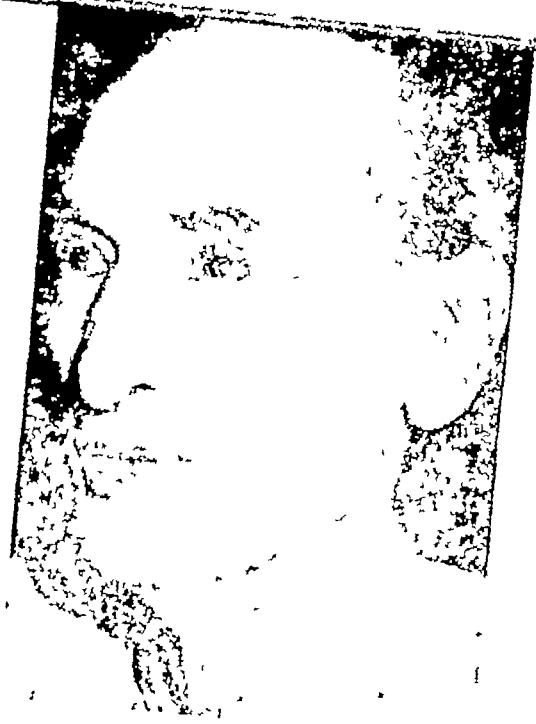
आचार्य कृपालानी

जाती है। तब ? क्या भारत में अंगरेजी की वही स्थिति बनी रहनी चाहिये जो स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी शासन में थी और जो स्वराज्य के अंतर्गत अब भी बनी है ? इस का अर्थ यह होगा कि हमारी स्वतंत्रता केवल इस बात में निहित है कि हमारे ऊपर जो चीज लादी गयी थी हम ने उसी के पक्ष में निर्णय किया है, तर्क केवल यही है कि आखिर पसन्द हमारी रही।

देखना यह है कि इस ढंग से हमें अपनी जनता को शिक्षित करने में सहायता मिलेगी या नहीं ? संविधान के अनुसार हरेक बालक या बालिका को सात वर्ष की बुनियादी शिक्षा मिलनी चाहिये और यह योजना पद्रह वर्ष में कार्यान्वित हो जानी चाहिये। हम अभी तक इसे नहीं कर पाये हैं। किन्तु क्या विदेशी भाषा के माध्यम द्वारा यह कार्य हो सकता है ? अंगरेजी माध्यम से बुनियादी शिक्षा की यह योजना सम्भव नहीं है। प्राचीन काल से यह स्वीकारा जाता रहा है कि ज्ञान प्रदान या अर्जित करने का सर्वोत्तम साधन मातृभाषा ही हो सकती है। यह शिक्षा-शास्त्र का एक जाना-माना सिद्धान्त है और आज संसार भर में इसे मान्यता प्राप्त है। स्वतंत्रता से पूर्व न केवल गांधीजी ने वरन सभी शिक्षा-विशेषज्ञों और सुधारकों ने इस बात को स्वीकार किया था। गुरुकुल शिक्षा-पद्धति में तथा वर्ग-विभाजन

विरोधी आंदोलन के समय विकसित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में भी इस सिद्धान्त को सम्मिलित किया गया था। कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित शान्तिनिकेतन संस्था की शिक्षाप्रणाली में इस सिद्धान्त को लागू किया गया। वहां के छात्र अंगरेजी के ज्ञान में अन्य संस्थाओं के छात्रों की अपेक्षा कम कुशल थे। किन्तु मातृभाषा के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने में जो अन्य लाभ थे उन्हें देखते हुए अंगरेजी के कम ज्ञान को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। गांधीजी मातृभाषा तथा व्यवहार द्वारा शिक्षा दिये जाने के सब से प्रबल समर्थक थे। उन की 'नयी तालीम' शिक्षा-प्रणाली में ये दोनों सिद्धान्त मुख्य थे।

वर्षों के कठोर और श्रमसाध्य अध्ययन से सीखी गयी विदेशी भाषा के माध्यम से मिलने वाली शिक्षा छात्र की स्वाभाविक क्षमता और बुद्धि को अवश्य ही क्षति पहुंचाती है। यह बात उस अवस्था में और भी सही उतरती है जब कि विदेशी भाषा ऐसे शिक्षकों से प्राप्त हुई हो जिन की वह मातृभाषा नहीं है और जिन्होंने उस भाषा को उस के स्वाभाविक वातावरण में नहीं वरन किताबों के द्वारा सीखा हो। इस प्रकार सीखी हुई भाषा, बहुत कम अपवाद के साथ, शब्दों की जानकारी तक सीमित रहती है, उन के उपयुक्त संदर्भ से परिचित नहीं कराती। अधिकतर लोगों ने अंगरेजी इंगलैंड में या अंगरेज शिक्षकों से नहीं सीखी है, अतः हम उस के शब्दों की बारीकियों अथवा अर्थ या भाव के सूक्ष्म अंतर को नहीं समझ पाते।

हमारे सम्मुख प्रश्न राष्ट्रभाषा या संपर्क-भाषा के रूप में हिन्दी लागू करने का नहीं है। महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि एक विदेशी भाषा के प्रति शोचनीय भावुकतापूर्ण लगाव किस तरह दूर किया जाये और विभिन्न प्रादेशिक भाषाएं अपना उचित स्थान कैसे प्राप्त करें?

हम पहले ही कह चुके हैं कि शिक्षा-शास्त्र का यह माना हुआ सिद्धांत है कि मातृभाषा में ही अधिक अच्छी तरह शिक्षा दी और ग्रहण की जा सकती है। अतः अपने राष्ट्रीय जीवन में अंगरेजी या हिन्दी का कोई भी स्थान नियत करें, इस बात से हम छुटकारा नहीं पा सकते कि अबेर या सबेर हमारे बालक-बालिकाओं को मातृभाषा, अर्थात चौदह प्रादेशिक भाषाओं में से उन की अपनी भाषा, के द्वारा ही शिक्षा दी जायेगी। ऐसा नहीं हो सकता कि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में तो शिक्षा हिन्दी के माध्यम से दी जाये, किन्तु भाषा-शास्त्र के उपर्युक्त सर्वमान्य सिद्धान्त के लाभ से अन्य भाषाभाषी वंचित रहें। यदि छात्र को मातृभाषा द्वारा शिक्षित करने की व्यवस्था को सफल बनाना है तो संपूर्ण प्रशासकीय कार्य क्रमशः प्रादेशिक भाषाओं में ही कराना होगा। व्यापक शिक्षा के लिए भी, जो कि हमारा उद्देश्य है और होना चाहिये, यही एकमात्र उपाय है। अंगरेजी के प्रबलतम समर्थक भी यह नहीं कह सकते कि भारत में अंगरेजी या किसी अन्य

(राजस्थान)

विदेशी भाषा द्वारा व्यापक शिक्षा का कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा सकता है। जो लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा या सम्पर्क-भाषा बनाने के पक्ष में हैं वे भी यह नहीं कह सकते कि बालक की मातृभाषा के बजाय हिन्दी के द्वारा शिक्षा व्यापक बनायी जा सकती है।

जब सभी राज्यों में प्रादेशिक भाषाओं के द्वारा प्रशासकीय कार्य होने लगेगा तो कानूनी कार्य भी इन्हीं के द्वारा आसानी से हो सकेगा। भारत में अंगरेजों के आगमन से पूर्व प्रशासकीय तथा कानूनी दोनों ही कार्य प्रादेशिक भाषाओं में ही होते थे। विदेशी शासन की समाप्ति के बाद स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक, लगभग सभी बड़ी भारतीय रियासतों में प्रादेशिक भाषाओं में ही कार्य होता था। शताब्दियों तक वाणिज्य या लेन-देन का कार्य प्रादेशिक भाषाओं में ही होता था। जब तक हमारे आयकर संबंधी कानून अत्यधिक जटिल नहीं हुए थे तब तक व्यापारी आम तौर पर अपना हिसाब-किताब आदि प्रादेशिक भाषाओं में ही करते थे। बाद में ही व्यापारियों एवं उद्योगपतियों ने अपना हिसाब-किताब अंगरेजी में रखना शुरू किया, जो उन के लिए खर्चीला ही साबित हुआ। फलस्वरूप उन्हें अपना अन्य कार्य भी अंगरेजी में करना पड़ा। अंगरेजी का प्रयोग —उस के गुण जो कुछ भी हों —स्वराज्य के बाद बढ़ा है, घटा नहीं।

प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग में सब से बड़ी कठिनाई वैज्ञानिक शिक्षा एवं अनुसंधान के सम्बन्ध में बतायी जाती है। यह बिलकुल गलत है। छोटे-छोटे यूरोपीय देशों में भी, जिन की भाषाएं हमारी प्रादेशिक भाषाओं की तरह ही हैं, वैज्ञानिक कार्य मातृभाषा के द्वारा ही होता है। वैज्ञानिक शब्दावली प्रायः लैटिन या ग्रीक से या उन देशों की भाषाओं से ली गयी है। लेकिन विज्ञान का शिक्षक भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र या जीवविज्ञान को लैटिन, ग्रीक या यूरोप की किसी अधिक विकसित भाषा के माध्यम से नहीं पढ़ाता। [illegible] भारत भी यूरोप के [illegible] शब्दों को अपना सकता है, किन्तु विज्ञान की पूरी शिक्षा प्रादेशिक भाषा में दी जा सकती है, और दी जानी चाहिए। यह बात कि वैज्ञानिक शिक्षा इंजीनियरिंग, व चिकित्सा शास्त्र [illegible] में नहीं दी जा सकती गलतफहमी [illegible] है। [illegible] शिक्षा अंगरेजी या किसी अन्य यूरोपीय भाषा में नहीं दी जाती। जापान ने [illegible] भारत में यह किया है [illegible] विज्ञान में उतनी ही प्रगति की है जितनी पश्चिम का कोई देश। चीन की जनता किसी पश्चिमी भाषा को नहीं जानती, फिर भी चीन ने अणु-बम का विस्फोट किया।

अध्ययन की किसी विशेष शाखा में, कार्य में उस भाषा के विशेषज्ञों के विचार अधिक मार्गदर्शक हो सकते हैं। राष्ट्रीय प्राध्यापक तथा प्रख्यात बोस ने

सत्येन्द्र

नोटियन

स्कूल आफ टेक्नालाजी के दीक्षान्त-भाषण में इस विचार का समर्थन किया था कि मध्य-युगीन अंधविश्वासों और अनुत्पादक अर्थव्यवस्था के इस देश में आधुनिक युग के अनुरूप मनोवृत्ति का विकास करने के महत कार्य की पूर्ति के लिए मातृभाषा का प्रयोग किया जाये। उन्होंने बताया कि बड़े पैमाने पर औद्योगिक प्रगति के लिए किसी विदेशी भाषा का प्रयोग अनिवार्य नहीं है, जैसा कि जापान ने दिखा दिया है। प्रोफेसर बोस ने कहा, "मैं ने प्राय यह सोचा है कि यदि हम ने अपनी मातृभाषा के द्वारा जनता को यथाशीघ्र साक्षर तथा शिक्षित बना कर अपनी जनशक्ति का उपयोग किया होता तो कहीं अधिक प्रगति हुई होती।"

अतएव, कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि आज जो कुछ भी अंगरेजी के माध्यम से होता है वह प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं द्वारा न हो सके, बशर्ते कि हम वैसा करने की इच्छा-शक्ति रखते हों। इजरायल में आज सब कार्य हेब्रू भाषा में होता है, यद्यपि थोड़े समय पहले तक वह एक मृत भाषा थी। अच्छा होता यदि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों के लोगों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा या समस्त देश की सम्पर्क-भाषा बनाने के हठ पर अपना ध्यान न लगाया होता और एक उग्र वर्ग ने अगरेजी मिटाने के लिए सार्वजनिक सड़कों के तथा अन्य नामपटों को पोतने का बचकाना काम करने में अपनी शक्ति का अपव्यय न किया होता। इस के बजाय यदि उन्होंने अपना ध्यान अपने क्षेत्र में हिन्दी को इस योग्य बनाने मे लगाया होता कि अगरेजी मे होने वाला सभी कार्य उस में किया जा सके, तो उन्होंने देश भर में हिन्दी के उद्देश्य को बहुत आगे बढ़ाया होता। यदि उन्होंने महसूस किया होता कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए केवल हिन्दी-भाषी क्षेत्रों का नहीं वरन समस्त राष्ट्र का समर्थन चाहिये, तो उन्होंने हिन्दी की अधिक सेवा की होती। किन्तु अब तक उन्होंने नकारात्मक रुख ही अपनाया है। इसी तरह, यदि अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों ने अंगरेजी का स्थान लेने के लिए अपनी प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग तथा विकास किया होता तो आज वे राष्ट्रभाषा या सम्पर्क-भाषा के रूप में अंगरेजी का समर्थन न करते। इस कार्य मे उन्होंने हिन्दी-समर्थकों के नहीं वरन एक-दूसरे के ही गले काटे हैं। तामिलनाड की जनता तथा सरकार दोनों ही हिन्दी लागू किये जाने के विरुद्ध थी। दोनों ही केन्द्र तथा राज्य मे अगरेजी बनाये रखने के पक्ष में थी। तब दोनों किस से लड़ रहे थे? उन्होंने समस्त राष्ट्र को ससार की दृष्टि में हास्यास्पद बनाने का ही कार्य किया।

यदि प्रादेशिक भाषाओं और हिन्दी के मामले में केन्द्र का रुख पिछले १७ वर्षों से इतना दुतरफा और द्विविधाकारी न रहा होता तो दक्षिण में हाल में जो दुखद घटनाएं हुईं, वे न हुई होतीं। ऐसा रुख अपना कर केन्द्र कांग्रेस के प्रस्तावों को ठुकरा रहा था। सविधान की एक धारा के प्रभाव-

कारी ढंग पर लागू करने के लिए भी यह देश को तैयार नहीं कर रहा था।

अब क्या किया जाये ? मेरे खयाल में आज सब से अच्छी बात यही हो सकती है कि राज्य अपनी प्रादेशिक भाषाओं का क्रमशः उन सभी कार्यों के लिए प्रयोग करें जिन के लिए अंगरेजी का प्रयोग हो रहा है। इन में उच्च, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, कानूनी तथा चिकित्सा-संबंधी शिक्षा शामिल है।

जब तक सभी कार्यों के लिए प्रादेशिक भाषाओं का प्रयोग न होने लगे तब तक अंगरेजी को सहभाषा के रूप में रहने दिया जाये। अर्थात, जब तक अहिन्दी क्षेत्रों के शिक्षित लोगों को यह विश्वास न हो जाये कि अंगरेजी के स्थान पर हिन्दी लाने में उन के हितों को, विशेषतया अखिल भारतीय सेवाओं में, कोई क्षति नहीं पहुंचेगी, तब तक यथास्थिति बनाये रखनी चाहिये।

निकट भविष्य में अखिल भारतीय सेवाओं के प्रश्न को कैसे हल किया जाये ? इस का केवल यही उपाय हो सकता है कि परीक्षाएं हिन्दी तथा अंगरेजी दोनों में हों। इन परीक्षाओं को संविधान के सातवें परिशिष्ट में वर्णित सभी चौदह भाषाओं में करने का प्रस्ताव वर्तमान संकीर्ण वातावरण में संकटपूर्ण है। परीक्षाओं का एक स्तर बनाने का कार्य बडा कठिन हो जायेगा। यदि कोई मानदण्ड निर्धारित न हो सका तो वर्तमान परिस्थिति में प्रत्येक प्रदेश के परीक्षक अपने ही राज्य के छात्रों के प्रति पक्षपात करेंगे। इस के अतिरिक्त लोक-सेवा आयोग को भी आज की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तीर्ण करना पड़ेगा। अततः इस का परिणाम यह हो सकता है कि उच्च सेवाओं में प्रत्येक राज्य से लिये जाने वाले व्यक्तियों की संख्या (कोटा) निर्धारित कर दी जाये। इस से इन सेवाओं की कार्य-क्षमता, जो इस समय भी अधिक ऊंची नहीं है, और भी गिरेगी। साथ ही इस बात का देश पर विघटनकारी प्रभाव पड़ेगा। यदि उच्च सेवाओं की परीक्षाओं में हिन्दी तथा अंगरेजी का प्रयोग करनेवालों के लिए समान अवसर देने का कोई उपाय निकल आये तो उसे अमल में लाया जा सकता है। आखिरकार, साहित्यिक विषयों को छोड कर अन्य सभी विषयों के बारे में कोई निष्पक्ष परीक्षक भाषा-सौष्ठव के बजाय विषय-ज्ञान को ही अधिक महत्त्व देगा।

यदि ये सब बातें की जायें तो कालान्तर में न केवल स्थिति सुधरेगी वरन लोगों में सद्भावना पैदा होगी और वे सामान्यतया अनुभव करेंगे कि राज्यों के बीच पत्र-व्यवहार के लिए अंगरेजी अनिश्चित काल तक नहीं बनी रह सकती। ऐसी कोई भारतीय भाषा लागू करनी ही होगी जिस के द्वारा सभी भारतीय परस्पर पत्र-व्यवहार कर सकें या एक-दूसरे को समझ सकें। तब यह पता लगेगा कि हिन्दी (अधिक श्रेयस्कर होगी हिन्दी-हिन्दुस्तानी) ही वह सामान्य भाषा हो सकती है।
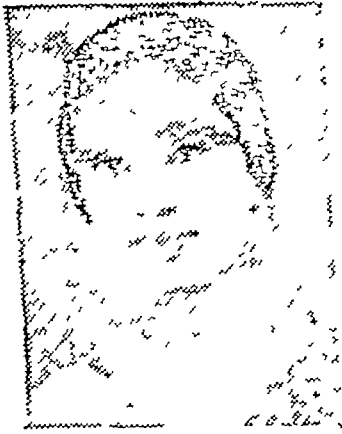
इस स्तम्भ के अंतर्गत आज के प्रमुख कहानीकारों की नवीनतम कहानियां दी जा रही हैं। साथ ही लेखक के ही शब्दों में उस परिस्थिति एवं मनःस्थिति का भी वर्णन है जिस में कहानी ने जन्म लिया। पिछले अंकों में आप कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव तथा जैनेन्द्रकुमार की कहानियां पढ़ चुके हैं। अब प्रस्तुत है ममता अग्रवाल की कहानी तथा उन का वक्तव्य

कहानी को लिख जाना मस्तिष्क की प्रक्रिया होती है—दिमाग की आदत, संवेदनाओं का सिलसिला, जो मॉडल नहीं ढूंढता। जिया हुआ सत्य साहित्य के लिए हमेशा उपयुक्त ही हो, जरूरी नहीं। जीवन तो सब जीते हैं, यही पर्याप्त होता तो सब कहानीकार होते। कहानीकार के पास 'सर्वांग सचेतनता' का 'अपरेटस' होता है जो जिये-अनजिये से सीमित हुए बिना भी उन्हीं का या उन से ग्रहण एवं त्याग करता जाता है।

वास्तविकता ने मुझे इस कहानी की प्रेरणा नहीं दी। वास्तविकता मुझे कभी प्रेरित नहीं करती। कहानी की 'थीम' मैं ने बनानी चाही थी 'विरोधाभास', बनी या नहीं, कहना मेरे लिए संगत न होगा। हम सब आत्मीय अजनबीपन बराबर देते हैं, लेते हैं। अपने अधूरेपन को दूसरे के अधूरेपन से 'शेयर' कर सकने का मोह हमें निकट लाता है। जिन्दगी जब हम से सहमत नहीं होती, हम उस से अपनी सब अपेक्षाएं वापस कर लेते हैं। ऐसे में किसी एक का अधूरापन भरते ही असमर्थताओं का यह सन्तुलन गड़बड़ा जाता है। इसे बताने के लिए महिला-कालिज की पृष्ठभूमि को लेना महज मेरी सुविधा का 'शॉर्टकट' मानना होगा। यदि पढ़ने के बाद आप के दिमाग में पूर्ण-अपूर्ण के विरोधाभास की जगह, कालिज का वातावरण ही प्रमुख हो गया है—तो कहानी 'आउट ऑफ फोकस' है कहानी नहीं है, आज की तो नहीं ही है।

लाल पेंसिल गोल चाक में डाल निर्मला ने घुमा दी। मेज पर दो ढेर रखे थे, छोटा जंची हुई और वडा विना जची कापियों का।

राज आयी—"कितनी और हो गयी? आज का कोटा पूरा?"

"अरे अभी कहा! हरेक ने पोथे लिख मारे हैं। दिमाग इतना थक रहा है कि किसी ने कोरी कापी रख दी हो तो पूरे नंबर दे दू . . .
तुम्हारा विषय तो छोटा है, पूरी हो गयी होंगी तुम्हारी," निर्मला ने कहा।

"हां जी, पूरी हो गयी होंगी! मैडम मेरी कापियों में तो 'डबल मर्डर' है —मेरे विषय का और तुम्हारे विषय का भी। तुम तो अगरेजी की टाग तोड़कर छूट जाती हो, यहा तो फिलासफी का फसाद देखना पड़ता है। गरी 'काट' की स्पेलिंग 'सी' से शुरू करती है . . . और 'नीत्शे' सही लिखने की तो कसम खायी है जैसे!"

"अगरेजी की मत पूछो। 'आन कैचिंग ए ट्रेन' पर निबंध में एक ने लिखा है, "और भागते-भागते मैं ने पंजाब-मेल पकडी" — 'मेल' की स्पेलिंग एम, ए, एल, ई।"

"अच्छा मरी, जल्दी कर। लंच के लिए देर हो जायेगी।"

दिसंबर परीक्षा की कापिया जाचना किसी को प्रिय नही। इन्हें जाचने के साथ उपलब्धि का भाव नही आता। वार्षिक परीक्षाओं की हर कापी के साथ

एक रुपया जुड़ जाता है बजट में ।

वोल्गा में लंच के खयाल से निमीला फुरती से जुट गयी । ग्यारह बजे तक पच्चीस कापियां देखने के बाद जब नहा कर तैयार हुई, राज भी अपने कमरे से निकल आयी । वह मानो आसमान देख कर तैयार हुई थी । सिर से पैर तक स्वच्छ नीला परिधान । सर्दियों में मौसम जितना सर्द आकाश उतना ही गरम होता है, जैसे ठिठुरती हुई कायाओं को आश्वासन दे रहा हो ।

निमीला धूप में अपनी छाया देख साडी ठीक कर रही थी । सुन्दर स्त्री को हमेशा अपनी छाया से विचित्र-सा प्यार होता है—ऐसा जो शायद उस का अवचेतन दूसरों से चाहता है ।

राज ने स्कूटर रुकवाया । वोल्गा तक दोनों स्कूटर में हड्डियों का चटखना सुनती रहीं ।

मालती वहां उन का इंतजार कर रही थी —छूटते ही बोली, "बस, फिर भूल गये न ?"

"क्या ? —अरे !"

छत की ओर निगाह पड़ते ही याद आया । हर बार वोल्गा आने पर वे निश्चय करती हैं इन 'लैंपशेड्स' के रंग की साड़ी पहनने का — लाल, सफेद और पीला . . . और हर बार भूल जाती हैं । एक बड़ा, गोल शेड, एक उस से जरा छोटा, एक सब से छोटा — तीनों मिल कर 'अबडेंस' का आभास देते हैं, 'भरे पूरे' होने का ।

मालती ने हमेशा की तरह सफेद साडी पहनी थी । उस के कहे अनुसार पिछले सात सालों में उस ने कभी रंगीन साडी नहीं पहनी, पर सफेद परिधान, उसे 'बाईजी' की छाप नहीं देता था । निमीला सहेलियों और अपने को देखती है तो महसूस होता है मानो हर कार्य-क्षेत्र वेशभूषा को अपनी सुविधानुसार ढाल लेता है । नर्स साडी पहनती है तो लगता है, बस अब है मुस्तैद, स्पंज करना हो या आपरेशन, अपनी ओर ध्यान नहीं देना है अब । पर, निमीला को अपना साड़ी बांधने का ढंग ऐसा लगता है—जैसे ताश का घर सजाया है, छुओगे तो आकर्षण चला जायेगा । उस ढंग में उतनी ही सज्जा होती है जो बारह फुट दूर बैठी छात्राओं को प्रभावित कर सके ।

तीनों ने 'चाइनीज राइस' और 'प्रॉन' खाते हुए कालेज की हर परत को ध्यान से देख लिया । मालती उत्साह से बताती रही कि कैसे मिस बोस का मित्र 'लाउंज' में इंतजार करता हुआ टाई ठीक करता रहता है, वर्किंग गर्ल्स होस्टल की सुबह का रंग कितना अजीब होता है, ऊनी ड्रेसिंग गाउन में अलसाते, धुले, बिन-धुले 'मेकअप' वाले चेहरे कैसे लगते हैं । मालती अपनी सफेदी में घिरी सब से अलग रहती है । असंबद्धता का मोह बढ़ जाता है तो जिद बन जाता है, मालती उस 'पिच' पर पहुंचने ही वाली है ।

राज की निगाह आस-पास बैठे लोगों पर जमी थी । दूसरे की कमियां ढूंढ निकालना उस की विशेषता थी । बायीं ओर ताकती हुई बोली—"हमें देखने के अलावा उन लड़कों को काम नहीं

है और। हम 'फीस्ट' ले रहे हैं, आप 'आप्टीकल फीस्ट'।"

फिर दायीं ओर देख सीधी हो गयी —"मद्रासी लड़कियों को कभी कपड़े पहनना नहीं आयेगा। वह देखो, उस ने 'फ्लड-लेवल' साड़ी पहनी है।" वास्तव में कोई सीधी-सी सांवली लड़की किसी के साथ बैठी थी और उस की साड़ी पिंडलियों के ऊपर आ रही थी।

काफी पीते निमीला को 'सेंट्रली हीटेड' हाल में गरमी महसूस हुई। मोटी ऊन का स्वेटर उतार दिया। 'चश्मेबद्दूर' राज ने कहा तो उस ने झट काले ब्लाउज पर लपेट नारंगी आंचल का दुर्ग बना लिया।

बोल्गा से निकल कर देर तक तीनों 'विन्डोशापिंग' करती रहीं। दो चार बेजरूरत की चीजें खरीद लीं। फिर एक स्टाल से 'मैन ओनली' ले कर अपने-अपने मुकाम पर चल दीं।

शाम काफी पीते, रेडियो सुनते, बालकनी से झांकते कट गयी। आठ बजे निमीला और राज अंदर आयीं— अपनी-अपनी मेज पर। कापियां जांचती रहीं, अपने-अपने कमरों से लड़कियों के 'ब्लंडर' सुनाती रहीं।

पढ़ाते-पढ़ाते जीने का एक अलग ढंग हो जाता है। कार्य-क्षेत्र का विस्तार एक लाल पेंसिल और आठ पाठ्य-पुस्तक भर रह जाता है। शुरू-शुरू में लड़कियों पर रोब जमाने का थोड़ा-बहुत नशा होता है, वह भी धीरे-धीरे कम हो जाता है। कालेज में चेहरे को तने रहने की एक आदत हो जाती है, जो सिर्फ सोते समय ढीली होती है। पर इस से अजीब रूखापन मुद्रा में आ जाता है, एक 'फारबिडिंग' तत्व, जो कालेज के अतिरिक्त किसी पृष्ठभूमि में नहीं सज पाता। मालती पर यह छाप आये अरसा गुजर गया। राज की काना-फूसी की आदत के कारण उस पर रूखापन कम था। निमीला की मुद्रा का खिंचापन देख कर दुख होता था। लगता जैसे जबरदस्ती, अनिच्छा से यह चेहरा ओटा गया है, वरना वास्तव में इस का भाव निमीलित ही होगा। आंखों की तंद्रिल सहजता को भंवों की प्रश्नवाचक रेखाएं दाब लेती थीं। खूब ऊंचे और कसे (फैशन के विपरीत) जूड़े की वजह से उस का व्यक्तित्व खामखाह 'सीवियर' लगने लगा था।

मित्रता तीनों की गहरी थी। स्टाफ में विवाहित वर्ग को वे आपस में 'आंटी वर्ग' कहती थीं। हरेक के पति तथा परिवार की दिल खोल कर आलोचना करना उन का प्रिय विषय था। ऐसे वार्तालाप का अंत अक्सर एक ही तरह होता। एक-दूसरी से कहती, "तुझे अगर हाडा-जैसा कोई मिल जाये तो ?"

"गाड फारबिड," दूसरी झट 'क्रास' का निशान बना लेती। पर यह सिर्फ मजाक था। इस में संभावनाएं नहीं बची थीं। मालती और राज उम्र की उस सीढ़ी पर आ गयी थीं जब दूसरों की बातें ही रस दे सकती थीं। निमीला सशंकित हंस लेती, फिर अपने कमरे में जा कर बहुत-बहुत बिखर जाती। उम्र के अर्थ में तीन-चार साल और पक कर

उसे भी वैसा ही हो जाना था ।

इस बार की छुट्टियां हुई तो राज ने मनाली जाने का प्रोग्राम बनाया । मालती सोत्साह तैयार हो गयी, पर निर्मला ने मना कर दिया । अगर अब मां के पास नहीं गयी तो अगले दिसंबर तक उन्हें देख नहीं पायेगी । मई शुरू होते ही राज और मालती दार्जिलिंग चल दीं और निर्मला इलाहाबाद । दार्जिलिंग से उन के लंबे-लंबे खत आते रहे — हम ने बड़े खूबसूरत शाल खरीदे हैं, यहां पत्थर के आभूषण तो कमाल के हैं, चाय-बागान में फोटो खींचना स्वर्ग है, एक्जामिनरशिप का चेक हमें यहां मिल गया है, आदि ।

जुलाई में जब सब मिले तो राज ने झिड़क कर कहा, "महा 'बोर' खत लिखती रही निमी, बैठ आयी अम्मा की गोदी में ।"

मालती उत्साह से मनाली-सौन्दर्य बताती रही । बातें अंगरेजी-विभाग के कमरे में हो रही थीं । राज जल्दी से रजिस्टर ले, काफी समेट, उठी— "जाऊं, क्लास लेना है ।"

निर्मला ने टोका, "इस पीरियड में ?"

राज ने पलकें झपकायीं, "समझती नहीं हैं, मिसेज चावला अपने 'वार्षिक-समारोह' पर गयी हैं ।"

मालती हंसी, "फिर ।"

राज बोली, "कहो फिर, फिर । मई में इन विवाहित लेक्चरारों को अच्छा आराम मिल जाता है । हमारी दस दिन की 'कैजुअल' भी धरी रह जाती है ।"

मालती ने नाक सिकोड़ी, "देखते-देखते कितनी बेडौल हो गयी है मिसेज चावला । एक जंगली पकड़ लायी है कहीं से ।"

राज जाते-जाते रुकी, "अरे पिछले साल मैं उस के 'क्वार्टर' पर गयी । गेट पर लिखा था 'कुत्तों से खबरदार' और जैसे ही अंदर पैर रखा उन के पतिदेव खड़े मिले ।"

वह और मालती जोरों से हंस पड़ीं । निर्मला बस मुसकराती रही ।

शनिवार को राज ठुमकती-सी आयी—"क्या प्रोग्राम है सप्ताहान्त का—पिक्चर . . . लंच ?"

मालती बोली, "मुझे शॉपिंग करनी है । साढ़े सात तक बाजार बन्द हो जाता है, सुबह से जाऊंगी ।" राज मान गयी, "ठीक है, तुम खरीदना, हम ताकेंगे । हमारा तो यह 'डिप्रेशन वीक' है ।"

निर्मला उलझन से बोली, "सॉरी ! मैं ने तो कई काम जोड़ रखे हैं । सब साड़ियां मैली हो गयी हैं, नया लेक्चर तैयार करना है और . . ."

राज ने मुंह बनाया, "यों कह कि आना नहीं है, 'किलज्वॉय' कहीं की !"

उसी बीच चपरासी आफिस से एक डाक ले कर आया । निर्मला ने अपनी डाक ले किताबें समेटीं और 'बाय-बाय' करती चल दी ।

जब तीन-चार हफ्ते निर्मला की नियमित डाक आती रही तो मालती और राज के कान खड़े हुए । एक दिन निर्मला पत्र को आधा मोड़ कर पढ़ रही थी तो राज ने टटोला,

"माजरा क्या है ? आजकल डाक-तार विभाग में बड़ी रुचि हो गयी है।"

इन्द्रधनुष का एक रंग निर्मीला के कपोलों पर खिल गया—"कुछ नहीं।"

मालती ने उकसाया "फिर भी, आखिर चला क्या है ?"

निर्मीला को चुभ गया, "ऐसे क्यों कहती हो, हमारा एन्गेजमेंट जो . ."

लगा जैसे दो खूंखार चीलों के बीच किसी शिशु ने अपनी थाली उघाड़ दी। दो जोड़ी आंखें भभकीं, 'अ' की आवाजें गूंजीं और गरदन यों हिलती रही कि 'तभी तो !' ओठों की वक्रता और भवों के खिंचाव से लगा कि 'कब', 'कैसे', 'कहां', 'किस से'— ये सारे प्रश्न फटना ही चाहते हों।

काफी दोपहर बाद राज के कमरे का दरवाजा खड़का। निर्मीला ने आवाज लगायी, "चाय तुम मत बनाना, मैं ने बना ली है।" दस मिनट बाद "अन्दर आ सकती हूं ?" सुनायी दिया।

"अरे, आओ भी !"

"न भई, तुम्हारा एकान्त अब तुम्हारा नहीं है, सोच-समझ कर 'डिस्टर्ब' करना पड़ेगा," कहते-कहते राज आराम कुरसी पर टिक गयी।

निर्मीला ने व्यग्रता छिपाने का प्रयत्न किया, "मैं कोई बच्ची हूं।"

राज की तीखी निगाह चाय का और निर्मीला का रंग तौलती रही, "अरेंज्ड होगी ?" निर्मीला चुपचाप पीती रही।

"बड़ी अजीब जिन्दगी होती है वह भी। तुम भी अब वार्षिक समारोह पर जाया करोगी . . . कहां का है वह ?"

निर्मीला ने 'इलाहाबाद' इतने धीमे से कहा कि एकाग्रता का एक भी तार कमजोर होता तो राज सुन न पाती।

प्याला जोर से टेकती हुई बोली, "बस हो गयी अब तुम भी गांव-गावड़े की। सुबह-शाम दूध पीना भैंस का और सात बजते सो जाना . . . इलाहाबाद की आबादी कितनी है ?"

बात करते-करते निर्मीला बार-बार अपने में ही गुम हुई जा रही थी। वैसे भी राज को जवाब की अपेक्षा नहीं थी।

दूसरे टर्म की पहली स्टाफ-मीटिंग में प्रिंसिपल ने स्टाफ के लिए ट्रिप का प्रस्ताव रखा। किसी एक को सब कुछ संभालना था। मालती ने आंख दाब कर निर्मीला का नाम सुझाया। सब मानने लगे तो राज चौंकी, "नहीं, नहीं, यह कैसे होगा ? उस समय तो निर्मीला 'हनीमून' पर होगी।" एकाएक कई जिज्ञासु आंखें निर्मीला को पानी-पानी कर गयीं। एक समवेत 'मुबारक हो' स्टाफ रूम को गुंजा गया। बाद में अपने कमरे में आ निर्मीला ने कहा, "तुम्हें ऐसे नहीं कहना था राज, बड़ा 'ऑड' हो गया।"

"क्यों ?"

"अभी कुछ हुआ-हवाया है भी नहीं फिर . . ."

विस्मित उत्साह से मालती ने टोका, "क्यों, गड़बड़ हो गयी क्या कुछ ?"

निर्मीला कांपते ओठों से मुसकरा दी, "हिश, वह तो है, पर . . "

राज ने गरदन को झटका दिया, "तो क्या तू गंधर्व-विवाह करेगी ? या इलाहाबाद वाले 'हनीमून' पर ही नहीं जाते ?" निर्मीला ने मुंह बनाया, "वाह

जी, उन्होंने तो खजुराहो में . . ."

"ओ !" मालती और राज उठ बैठीं।

साल यों ही बीत चला। मार्च-अप्रैल में ढेर-सी एक्स्ट्रा-क्लासें लेनी पड़ीं। ज्यादा समय नहीं मिल सका। इस बीच मालती और राज घी-शक्कर हो लीं। मालती अधिकतर फिलॉसफी डिपार्टमेंट में ही मिलती। कभी निमीला जा बैठती तो वे 'सेमिनार', 'मीटिंग', 'कलेक्शन्स', 'प्रिंसिपल' आदि की बातों में इतनी व्यस्त हो जातीं कि और कुछ होश न रहता। निर्मला ने कहा, "इस बार गरमियों में तुम कहां जाओगी, पता दे दो।"

मालती बोली, "अभी तो हम ने निश्चय नहीं किया है। हमारी बधाई तो तुम अभी ले लो। हम सब का तुम करोगी भी क्या ?"

राज नसीहतें देती रही, "शादी की 'शॉपिंग' कहां से करोगी ? वहीं से ? खैर, गहरे रंग मत खरीद लेना। तुम लोगों में तो लाल-पीले रंगों से लडकी को भाभी बना डालते हैं। तुम पर हल्के से हल्के रंग ही खिलते हैं। वह भी काला है क्या ? अरे, तब तो 'ग्रे' के अलावा क्या सूट पहनेगा। . . यहां से तो तुम इस्तीफा दे रही हो, अच्छा—'हाउसवाइफ' बनोगी, आई सी !"

तीस अप्रैल सरगरमी का दिन था। निमीला ने सारा पैकिंग खत्म कर लिया था। वह आज शाम ही चली जाना चाहती थी। मालती और राज ने कहा, "आना साथ चाय पी लेंगे।"

मालती ने मुंह बनाया, "कर्जन रोड से आना मजाक नहीं है। न बाबा !"

राज ने हाथ के इशारे से उसे चुप कर दिया, "आ भी जाना, फिर अपन मैटिनी में चलेंगे—वहां से लाइब्रेरी, लाइब्रेरी से यॉक्स। बस शाम का प्रोग्राम बन गया।"

राज को अनायास उदारता की लहर आ जाती है। उस ने मालती को राजी कर लिया कि निमीला को छोडने चला जाये। प्लेटफार्म पर वे लोग हजारों तरह की बहस करते रहे—साड़ी, सिनेमा, परदे, क्रॉकरी और निमीला से बातचीत। ट्रेन चलने को हुई तो मालती निमीला की ओर मुड़ी, "बहुत-बहुत बधाई, भई ! भगवान करे तुम एक सफल 'डूज' बनो।"

राज ने गरदन हिलायी, "मुबारक हो, एनदर डैड गर्ल ! शादी के बाद वाइफ तो दो-एक महीने रहते हैं, बाकी तो 'हाउसवाइफ' ही बनना पड़ता है।"

निमीला दोनों का दर्शन आत्मसात करने की पूरी चेष्टा करती हुई डब्बे में चढ गयी।

प्लेटफार्म जब एक बार फिर सूना हो गया, तो दोनों सहेलियों ने एक-दूसरे के हाथ कस कर पकड लिये, दूर होती गाडी की सीटी सुनने को उन के पैर कभी-कभी ठिठकते रहे।

●

"आपरेशन करते समय सर्जन अपना चेहरा क्यों ढके रहते हैं ?" शिक्षक ने कक्षा में पूछा।

"ताकि, आपरेशन में यदि कोई गड़बड़ हो जाये तो मरीज यह न जान सके कि किस डाक्टर ने की है," एक बच्चे ने उत्तर दिया।

गीतों का रंग

अहह प्राण में भावों का रंग गहरा है
अनुभव अनुभूतियां बना है, ठहरा है
भावों के आवरण संस्करण दौड़ रहे
हरी-हरी, फूली-फूली धुन छोड़ रहे
वह उठ आया चांद छुपे मनसूबे-सा
दूबों पर लगता है नटखट ठहरा-सा
रस में यह उठ-उठ आया उन्माद है
बादल, तेरे जी का कैसा स्वाद है
उगा-उगा मौनों का उठ कर बोलना
चांदनियों ने सीख लिया मुंह खोलना
रीतों में दिखता कैसी अनरीत-सा
चमक-चमक उठता है जी में गीत-सा
जग उठा है कैसा अपने आप-सा
खूब तान कर ढोलक पर दी थाप-सा
शब्दों के जादूगर ने क्या-क्या किया
मंत्रमुग्ध-सा किस को किस को सुला दिया
उग आया साहित्य कि सिर पर सेहरा है
अहह प्राण में भावों का रंग लहरा है

माखनलाल चतुर्वेदी

(४ अप्रैल को पद्मभूषण डा० माखनलाल चतुर्वेदी की ७६ वीं वर्षगांठ पर उन्हीं की एक नवीन रचना यहां प्रस्तुत है)

तेलुगु-हिन्दी की समान लोकोक्तियाँ

● हनुमच्छास्त्री अयाचित

यहां तेलुगु तथा हिन्दी की कुछ ऐसी लोकोक्तियों का संग्रह है जो समानार्थक हैं। लोकोक्तियां भाषा की जान होती हैं। उपर्युक्त दोनों भाषाओं में भिन्नता होते हुए भी उन की लोकोक्तियों में सादृश्य इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि इन भाषाभाषियों के हृदय मूलतः समान भावनाओं से ही स्पंदित होते हैं। आज के भाषा-विवाद के प्रसंग में इन लोकोक्तियों की झांकी निस्संदेह हमारी भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में सहायक होगी—

तेलुगु	हिन्दी
अंतर्वेद तीर्थमु लो ना बोडि मेनत्त अंतर्वेद नामक यात्रा-स्थान में मेरी विधवा फूफी की गिनती।	नक्कारखाने में तूती की आवाज।
अंतलो आट, अंतलो पोट, इतने में ज्वार और इतने में भाटा।	घड़ी में तोला घड़ी में माशा।
अडगनिदे अम्म अयिना पेट्टदु, बिना मांगे माता भी अन्न नहीं देती।	बिना रोये मां भी दूध नहीं पिलाती।
अडवि उसिरिक समुद्रमु उप्पु : जंगल का आंवला और समुन्दर का नमक।	नदी नाव संयोग।
अडुगु लोने हंसपाद, पहले कदम में ही भूल करना।	प्रथम ग्रासे मक्षिका पात.।

तेलुगु	हिन्दी
इनुमुतो उन्न अग्नि देवुनक, सम्मेट पाट्लु लोहे के साथ में रहने से अग्निदेव को भी हथौड़े के प्रहार मिलते हैं।	गेहूं के साथ घुन भी पिसता हैं।
इंटि गुट्टु, लकक, चेट, . घर का भेद खुलने से लंका को हानि पहुंची।	घर का भेदी लंका ढावे।
इंटिलो तिनि इंटि वासालु लेक्क-पेट्टुट : घर में खा कर छत पर के वास गिनना।	जिस बरतन में खाना उसी में छेद करना।
इंटिलो इंगल मोत चेट पल्लकी मोत : घर में मक्खियों की भिनभिनाहट और बाहर पालकी पर सवार होना।	खाये निवारी दाख बताये।
उन्नमाटंटे उलुकेक्कुव : सच बात कहने से आदमी चिढ जाता हैं।	काने को काना कहने से वह बुरा मानता हैं।
उरिमे मेघालु कुरियनट्लु : जो गर-जते हैं वे बरसते नहीं।	वही।
ऊरि वारि पसुपु ऊरि वारि कुकुम ऊरेगु देवरा . दीव। गाववालों की दी हुई रोली और हल्दी हैं, तुम जलूस में अवश्य निकलो।	कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा।
एलुक तोक नि येडादि उदिकिना नलुपु नलुपे गानि तेलुपु काद, : चूहे की पूंछ को साल भर धोने से भी उस का कालापन रह ही जाता हैं, कभी सफेद नहीं होता।	कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन धोय।
एवरि कपु वारि किपु ओकरि कपु ओकरिपु · अपनी बदबू आप पसद करता हैं, परन्तु दूसरों की बदबू को बरदाश्त नहीं करता।	कुम्हार अपना ही घडा सराहता हैं।
एड्स्तू एरुवाक सागित्ते काडिमेक, दोंग लेत्तुक पोयारु . रोते हुए हल जोतने लगा तो बैलों की रस्सी को चोर चुरा ले गये।	करमहीन खेती करे, बैल मरे या सूखा पडे।

तेलुगु	हिन्दी
अतनि कंटे घनुडाचंट मल्लन उस से वढ कर हैं आचंट मल्लन।	तू डाल-डाल, मैं पात-पात।
अत्त मीद कोपमु दुत्त मीद : सास पर आया गुस्सा दूध के मटके पर उतारना।	आप हारे बहू को मारे।
अनतय्य मात्र वैकुण्ठ यात्र : अनतय्य नामक वैद्य की दी हुई गोली से वैकुण्ठ की यात्रा निश्चित है।	नीम हकीम खतरा-ए जान।
अनि अनिपिंचोकोवे अत्तगारा हे सास, तू वहू को एक कह और वहू से दस सुन।	एक कहो और दस सुनो।
अन्नमता पट्टि चूडवलेना : सारे अन्न को ले कर जांचने की जरूरत नहीं है।	सारी देग में एक ही चावल टटोला जाता है।
अय्यवारिनि चेयवोते कोति अयिंदि · आचार्यजी की मूर्ति वनाने की कोशिश की गयी तो वदर की मूर्ति वनी।	वाह पीर औलिया, पकायी थी खीर, हो गया दलिया।
अव्वा कावालि वुव्वा कावालि : अन्न भी कमाना चाहता और दादी को भी नही छोड़ना चाहता।	किया चाहे चाकरी, सोया चाहे घर।
असले कोति आ पैन निप्पु तोक्किदि दरअसल वदर और उस पर जलते अंगारों पर पैर रखना।	इक नागिन अरु पंख लगायी।
आडलेक मद्देलोड : नाचना नही जानती पर मृदग की शिकायत करती है।	नाच न जाने आंगन टेढा।
आदिवारमु नाड, अंदलमु सोमवारमु नाडु जोलि : इतवार को पालकी पर चढना और सोमवार को भीख मांगना।	कभी घी घना, कभी मुट्ठी भर चना, कभी वह भी मना।
आयमु कोलदि व्ययमु · आय के अनुसार व्यय।	इतने पैर पसारिये जितनी लवी सौर।
आहारमु पट्टल व्यवहारमु पट्टल सिग्गु पनिकि राद, · आहार और व्यवहार के सवध में सकोच नही करना चाहिये।	आहारे व्योहारे लज्जा न कारे।

● सुमन वात्स्यायन

श्रीमती श्रीमावो भण्डारनायक दिल्ली आयी हुई थीं। तब मैं आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र पर सीमांत क्षेत्रों के लिए प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों का निर्देशक था। श्रीमती भंडारनायक विश्व की प्रथम महिला प्रधान मंत्री बनी थीं, इसलिए दिल्ली की अनेक संस्थाओं द्वारा उन का विशेष रूप से स्वागत किया जा रहा था। दिल्ली का भारतीय बौद्ध संघ तथा अन्य बौद्ध संगठन भी उन्हें अपने यहां निमंत्रित करना चाहते थे, किंतु उन के पास समय का अभाव था। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने दिल्ली स्थित लंका के उच्चायुक्त के कार्यालय में मानपत्र स्वीकार करने के लिए आधा घंटा दिया। निश्चय किया गया कि राजभोजजी के नेतृत्व में बौद्ध संघ का एक प्रतिनिधि-मंडल वहां जा कर मानपत्र दे।

मानपत्र समर्पित करनेवाले प्रतिनिधि-मंडल में मेरा नाम भी रखा गया। जब मुझे ज्ञात हुआ कि मानपत्र अंगरेजी में दिया जायेगा, तब मैं ने इस का विरोध किया। मेरा तर्क था कि अंगरेजी न तो श्रीमती भंडारनायक की मातृभाषा है और न हमारी। मानपत्र या तो सिंहली में दिया जाये या हिन्दी में। बहुत तर्क-वितर्क के बाद निश्चय हुआ कि मानपत्र हिन्दी में ही छपवाया जाये और उस के अंगरेजी अनुवाद की दो-चार प्रतियां टाइप करा के वितरित कर दी जायें।

हम शाम को उच्चायुक्त के कार्यालय में सब पहुंचे। भारत की राष्ट्रभाषा में मानपत्र देख कर श्रीमती भंडारनायक बहुत प्रसन्न हुईं। मैं ने अपनी टूटी-फूटी सिंहली में मानपत्र का अनुवाद करके उन्हें समझाया। उत्तर में उन्होंने कहा, "आज के समा-

रोह की दो विशेषताएं रहीं—एक तो यह कि अभी तक जितने मानपत्र मुझे मिले, वे सब एक विदेशी भाषा में थे। आज भारत की राष्ट्रभाषा में आप ने मेरा सम्मान किया है। दूसरी बात, मानपत्र को आप ने मेरी मातृभाषा में समझाने का प्रयत्न किया है। दोनों ही बातें अनुपम रहीं और हमारे दोनों देशों के लिए अनुकरणीय भी।"

समारोह के बाद ही लंका के उच्चायुक्त की ओर से श्रीमती भंडारनायक के स्वागत में चाय-पान का आयोजन किया गया। हम लोग भी निमंत्रित थे। अतिथियों में हमारे तत्कालीन प्रधान मंत्री नेहरूजी भी थे। पंडितजी ने आगे बढ़ कर श्रीमती भंडारनायक का स्वागत किया। हमारे मानपत्र को पंडितजी के हाथों में देते हुए श्रीमती भंडारनायक ने कहा, "अभी-अभी हमारे बौद्ध भाइयों ने भारत की राष्ट्रभाषा में यह मानपत्र दिया है।"

पंडितजी ने मानपत्र को गौर से देखा और फिर राजभोजजी से पूछा, "क्या यह आप की ओर से दिया गया है?" राजभोजजी की मुखाकृति कुछ गंभीर हो गयी—शायद वे पंडितजी के हृदय में कुछ टटोलने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने कहा, "जी हां! मानपत्र हमारी संस्था बौद्ध संघ की ओर से दिया गया है।"

पंडितजी ने पूछा, "इसे लिखा किस ने? इस की भाषा तो बड़ी अच्छी है।" राजभोजजी ने मुझे आगे करते हुए कहा, "आप हैं श्री सुमन वात्स्यायन। पहले बहुत वर्षों तक बौद्ध भिक्षु रहे। लंका में भी कई साल रह चुके हैं। अनेक भाषाएं जानते हैं। मानपत्र इन्होंने ही लिखा है।"

श्रीमती भण्डारनायक तथा अपने समीप बैठे विदेशी कूटनीतिज्ञों को पंडितजी मानपत्र के एक-एक वाक्य का अंगरेजी में अनुवाद करके सुनाने लगे। मानपत्र की भाषा साधारणतया कठिन होती है और वाक्य भी प्रायः लम्बे-लम्बे होते हैं। दो-तीन वाक्यों के अनुवाद के बाद ही उस की भाषा पंडितजी के लिए कुछ भारी पड़ने लगी। इसी समय मैं ने मानपत्र के अंगरेजी अनुवाद की एक प्रति पंडितजी के आगे रख दी। वे बहुत प्रसन्न हुए और सारा अनुवाद पढ़ कर सुना दिया।

मैं कुछ अतिथियों से बात करते हुए चहलकदमी कर रहा था कि पीछे से किसी ने कंधे पर हाथ रखा। पलट कर देखा तो पंडितजी थे। कहने लगे, "हिन्दी में मानपत्र दे कर आप ने बहुत अच्छा किया। ऐसा ही होना चाहिये। लेकिन लेकिन भाषा कुछ कठिन थी।" मैं ने बताया, "दिल्ली और पंजाब की हिन्दी की अपेक्षा सिंहली में संस्कृत के शब्द अधिक प्रयुक्त होते हैं—विशेष रूप से साहित्यिक भाषा में और मानपत्र की भाषा साहित्यिक ही होती है। इसी कारण संस्कृत के शब्द अधिक हैं।"

पंडितजी को यह जान कर थोड़ा आश्चर्य हुआ कि लंका की भाषा में दिल्ली की हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत-शब्दों का प्रयोग अधिक होता है।

———

● दिग्विजयसिंह

मिस्टर वर्मा का व्यक्तित्व शानदार है। लम्बा कद, चौड़े कंधे, बड़ी-बड़ी काली, गहरी आंखें और सफाई से तराशी गयी ऐक्टर-कट नुकीली मूछें। वह नफीस सिगरेट पीता है और नफीस कपड़े पहनता है। बड़े ठेकेदारों, ऊंचे अफसरों, मंत्रियों आदि से दोस्ती का दम भरता है। बोलता है एंग्लो-इंडियन—यानी न हिन्दी, न अंगरेजी। दोनों भाषाओं को एकसाथ कच्ची सड़क पर लचर बैलगाड़ी की तरह जोतता है।
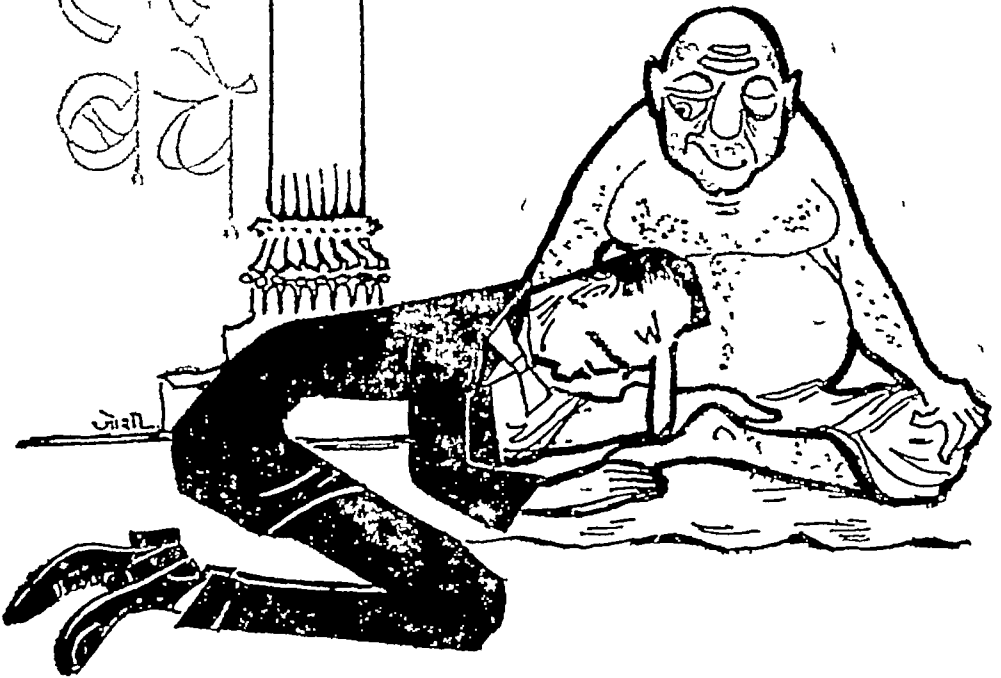
उस दिन हम दोनों साथ दौरे पर जा रहे थे। ड्राइवर पीछे बैठा था और वर्मा खुद ड्राइव कर रहा था। अपनी तकदीर को ठोंकता हुआ वह बोला, "कहां आगरा और कहां यह थर्ड क्लास डिस्ट्रिक्ट। वाह गॉड, गवर्नमेंट मुझे यहां रॉट कर रही है। आगरा में अपन का नक्शा था। जब ख्रुश्चेव, बुलगानिन आगरा आये थे, मेरी ड्यूटी उन के साथ थी। वे दोनों पूरे इंडिया में अकेले मुझ से इम्प्रेस हो कर लौटे। जाते-जाते मुझे बिस्कुट, चाकलेट के डब्बे और तसवीर की एक किताब भी प्रेजेन्ट करते गये। जुदाई के वक्त हजूर बुलगानिन की आंखें जज्बात की रौ में नम हो गयी थीं। जहाज की सीढ़ियों पर चढने से पूर्व भरांये गले से वे कहने लगे—बेटा वीरेन। तुम-जैसे इन्टेलीजेन्ट आदमी को छोड़ कर वतन लौटने को जी नहीं चाहता। मगर मुल्क और कौम के फर्ज से मजबूर हूं। कभी रूस आना तो हम से जरूर मिलना। मिलना क्या . . . हमारे यहां ही ठहरना।"

अब मैं क्या कहता। किसी को सीधे-सीधे झूठा कह देना सज्जनता नहीं है। वर्मा की हां में हां मिलाता हुआ बोला, "बेशक, बेशक। बुलगानिन एक शरीफ बुजुर्ग है।"

"अजी यह तो कुछ भी नहीं। अगर कहीं आप एक बार नासिर से मिल लें तो तमाम उम्र के लिए उस के मुरीद हो जायें। बस संक्षेप में यों समझ लीजिये कि बिलकुल मेरी-जैसी 'पर्सनाल्टी' का आदमी है।"

मैं ने चुटकी काटी, "दिमाग यकीनन मुख्तलिफ होगा।"

वर्मा ने मेरी बात जैसे सुनी ही नहीं। बोला, "विदाई के समय जब मैं ने उस से हवाईअड्डे पर हाथ मिलाया तो जालिम मेरा हाथ ही न छोड़ता था। मेरा भाई कहने लगा—पहले हर हफ्ते खत लिखने का वायदा करो। साहब, वायदा किया और तब कहीं मेरे हाथ की रिहाई हुई।"

वर्मा की बातों में सिन्दबाद जहाजी की कहानी का मजा आ रहा था। मैं ने पूछा, "फिर वह ठाट छोड़ कर इस मनहूस शहर में क्यों चले आये?"

"चला कहां आया। जबरदस्ती यहां ठेला गया हूं।"

अब तक हम छह मील का सफर तय कर चुके थे। सातवें मील के पत्थर पर वर्मा ने गाड़ी धीमी करते हुए ड्राइवर से पूछा, "नन्दादेवी के मंदिर को सड़क यहीं से घूमती है?"

ड्राइवर ने सिर हिला कर बताया—हां। वर्मा ने मंदिरवाली सड़क पर गाडी मोड़ दी। मैं ने टोका, "हम लोग सरकारी काम पर निकले हैं। कंचनपुर में लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

"करने दो उन्हें प्रतीक्षा," वर्मा ने लापरवाही से एक्सीलरेटर दबाते हुए कहा, "सूरज डूबते-डूबते सब लोग अपने आप झक मार कर वापस लौट जायेंगे। और फिर नन्दादेवी के मंदिर में भी तो हम सरकारी काम से ही चल रहे हैं।"

इस के बाद वर्मा कुछ देर तक चुप रहा। जो कुछ वह कहना चाहता

था, उस के लिए अपने को तैयार करने में उसे चन्द मिनट लगे। फिर बोला, "नन्दादेवी का बडा महातम है। देवी आजकल इस मंदिर के पुजारी की काया में वास कर रही है। इसी से उस पुजारी को सब लोग माताजी कहते हैं। मैं माताजी से यह पूछने चल रहा हूं कि डिप्टी कलेक्टरी की विशेष भरती की परीक्षा में सफल होऊंगा या नहीं।"

वर्मा की इस मूर्खताभरी योजना पर मन झुंझला गया, किन्तु यह सोच कर चुप हो गया कि सिड़ियों की सचमुच अपनी एक अलग दुनिया होती है और फिर सरकारी काम तो गया ही, अब मुफ्त में तमाशा देखने का अवसर क्यों हाथ से जाने दूं!

मंदिर के दरवाजे पर ही वर्मा को माताजी अर्थात पुजारी के दर्शन हो गये। वर्मा ने अपना परिचय दिया। पीछे-पीछे ड्राइवर दो बड़े भावों में मिठाई तथा फल लादे हाफता आ रहा था।

माताजी ने मंदिर के दरवाजे खोले। वर्मा ने हाथ-मुंह धोने के उपरान्त देवी की मूर्ति के निकट बीस रुपये तथा फल और मिठाई के भावे खिसका दिये और देवी के चरण पकड कर लगभग आधे घण्टे तक लगातार आंसू बहाता रहा।

बाहर खडा पुजारी वर्मा की इस हरकत पर कुढ़ रहा था। इतनी देर में कम से कम दस भक्त निबट जाते तथा पचास रुपये से ऊपर चढ़ावा भी आ जाता। पुजारी ने देवी के चरणों की मुक्ति का परवाना-सा जारी करते हुए कहा, "उठो वत्स! तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। देवी तुम से प्रसन्न हैं।"

यह दिव्य वाणी सुन कर वर्मा का रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठा। उस के उठते ही पुजारी बाहर रखी एक चटाई पर आ कर बैठ गया। हम पुजारी के सामने जमीन पर बैठे। पुजारी ने अब बाकायदा इंटरव्यू प्रारभ किया, "अपने आने का प्रयोजन प्रकट करो, वत्स!"

वर्मा ने अपने आने का प्रयोजन बताया, जिसे सुन कर पुजारी ने अपनी दोनों आंखें मूद लीं। कुछ देर तक उस के ओंठ न जाने क्या बुद-बुदाते रहे। फिर उस का पूरा बदन तूफान में पीपल के पत्ते-सा थरथराने लगा। उस ने पास रखे एक बरतन से उठा कर कई मुट्ठी राख अपने बदन व सिर पर रगड़ी। फिर अपनी आंखें खोलीं, जिन में लाल-लाल डोरे पड़ चुके थे। वर्मा ने पुजारी के चरणों पर माथा टेक दिया।

"ऊपर आकाश है—नीचे पाताल!" पुजारी ने एक बीभत्स मुद्रा बनाते हुए कहा।

"हां, माता!"

"बीच में तू है . . . मैं हूं। चर है . . . अचर है। ज्ञान है . . अज्ञान है।"

"हा माता, बीच में यही सब है।"

"तो फिर हृदय के पट खोल और तृष्णा को दूर भगा।"

वर्मा ने कमीज के बटन खोल कर अपने हृदय से तृष्णा को दूर भगा दिया।

"डिप्टी कलेक्टर बनने आया है रे, अधम मानव ?"

वर्मा के मुंह में पानी भर आया। गिड़गिड़ाते हुए बोला, "हां माता ! इसी तुच्छ इच्छा के वशीभूत हो कर आप के चरणों में आया हूं।"

"रे अधम . . . यह इच्छा तुच्छ नहीं है। इस के वैभव से मैं परिचित हूं," माता ने वर्मा को डांट पिलाते हुए कहा, "किन्तु तुझे मेरे रीते चरणों पर मस्तक रख कर नौकरी मांगते हुए लज्जा न आयी ! माता के चरणों के शृंगार की बात बिलकुल भूल गया ? बड़ा निर्लज्ज है तू !"

वर्मा ने ग्लानि के अथाह सागर में गोता लगाते हुए क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "काम हो जाने पर माता के चरणों में सोने की झांझ डालूंगा।"

"डाल देना . . . डाल देना। मगर सावधान, मैं खोटा सोना न अंगीकार करूंगी।"

"नहीं माता ! चौदह कैरट न चढ़ाऊंगा। ब्लैक से असली सोना खरीदूंगा।"

"आज रात यहीं विश्राम कर और मेरे भक्तों को भंडारा करा — सुबह [illegible] सोने की [illegible] बताऊंगी।"

रात [illegible] ने मंदिर से लगी एक कोठरी में गुजारी। सुबह पुन पुजारी के सामने पेश हुआ।

"[illegible] [illegible] तो नहीं सदा हूं," पुजारी ने वर्मा पर एहसान जताते हुए कहा, "[illegible] [illegible] ले कर सभी [illegible] से मुलाकात करने की [illegible] [illegible] की कोशिश उन में से ओ[illegible]-काश अपने घरों पर न मिले। कहीं दौरे पर गये थे। जो मिले भी वे तुम्हारी मदद करने को तैयार नहीं हैं। कैलासजी ने तुम्हारा मन्तव्य सुनते ही अपने ओंठ काटे और बिना कोई उत्तर दिये चले गये। पार्वती वैसे तो सिफारिश खूब सुनती हैं किन्तु तुम्हारा नाम सुनते ही झुंझला कर बोली—त्रिशूलधारी बमभोले बाबा से कहो। मैं अब इन झगड़ों में नहीं पड़ती। बमभोले बाबा घर पर थे नहीं। बड़ी मुश्किल से गिरिराजजी को पकड़ पाया। इन्होंने भी पहले हीले-हवाले किये, किन्तु मैं ने उन्हें समझाया—वरिष्ठ देवताओं-जैसी नक्शेबाजी आप को शोभा नहीं देती। फिलहाल आप को अपने भक्तों के सभी गलत-सही काम करके लोकप्रियता प्राप्त करनी चाहिये। इस धमकी के बाद वे तुम्हारा काम करने को राजी हुए। किन्तु बड़ी कड़ी शर्तें लगा दी हैं। उन्हें पूरा कर सकोगे—इस में मुझे सन्देह है।"

वर्मा को तूफानी दरिया में जैसे तिनके का सहारा मिला। जी कड़ा कर बोला, "शर्तें बतायी जायें। भरसक उन्हें पूरा करने की चेष्टा करूंगा।"

"तो फिर सुनो," पुजारी ने वर्मा की किस्मत का फैसला करते हुए कहा, "भादों की रात में कृष्ण-जन्माष्टमी के अवसर पर उस मंदिर के, जहां कालीदह नाग के दर्प-दमन का दृश्य दिखलाया गया है, चारों तरफ रात को बारह से सुबह चार बजे तक एकयावन परिक्रमाएं करनी होंगी।"

शर्त सुन कर वर्मा का कलेजा बैठ गया। रुआंसी आवाज में बोला, "तब तक तो अच्छी-खासी बरसात हो जायेगी। मंदिर के चारों तरफ पानी भर जायेगा। इक्यावन परिक्रमाओं में कम से कम आठ मील का फासला तय करना होगा।"

आखिर वर्मा राजी हो गया। हमारे उठते-उठते पुजारी ने उन कड़ी शर्तों में एक गिरह और लगा दी, "किन्तु सावधान, परिक्रमा के समय किसी भी नर-नारी, किन्नर-गंधर्व, सुर-असुर, दानव-देवता का मुख देखना वर्जित है। यदि किसी को तुम ने अपने चक्षुओं से देखा या किसी ने तुम को देखा तो सब बंटाढार हो जायेगा।"

यह तप वर्मा के बस का रोग न था। बीस चक्कर में ही चीं बोल गया। उधर लोगों ने समझा कि कोई चोर ताक-झाक में है। मजबूरन एक-दो नहीं वरन पचासों नरों के चेहरे देखने पड़े। उन्हें अपना परिचय दे कर किसी तरह वर्मा ने अपना पिंड छुड़ाया और परिक्रमा को अधूरी छोड़ उलटे पैरों घर वापस भागा।

इस के बीस दिन बाद परीक्षा-फल निकला। सफल परीक्षार्थियों की सूची से वर्मा का नाम गायब था। वह माताजी को उलाहना देने एक बार फिर मंदिर पहुंचा। वर्मा को देखते ही पुजारी मुसकराया, "साधना असफल रही, वत्स?"

"हां।"

"इस मृत्यु-लोक तक में एक दिन के परिचय से पैदा हुई सिफारिश धेला भर काम नहीं करती," पुजारी ने वर्मा की आंखों से अज्ञान का परदा हटाते हुए कहा, "यहां के अफसर, नेता तथा पदाधिकारी बरसों अपने दरवाजे पर नाक रगड़वाने के बाद तब कहीं पिघलते हैं। पार्वतीजी, भोले बाबा, गिरिराजजी, कैलासजी वगैरा से मेल-मुलाकात बढ़ाते रहो। जब यह रब्त-जब्त प्रगाढ मैत्री में बदल जायेगी तो वे लोग अपने आप तुम्हारा काम करेंगे।"

दो क्षण सांस लेने के उपरांत उपसंहार करते हुए पुजारी ने कहा, "नंदाजी को सदैव भेंट-पूजा से प्रसन्न रखना। इन्हीं के माध्यम से ऊपर-वाले देवताओं तक तुम्हारी पहुंच हो सकेगी। इस बार तुम यों समझो कि डिप्टी होने से बाल-बाल बचे। लेकिन आगे नहीं बचने पाओगे।"

वर्मा ने ब्लैक से असली सोना खरीद कर माताजी के चरणों के लिए सोने की झांझ बनवा दी है। उन की पूजा-अर्चना में भी पूरी तरह लीन रहता है।

शाम के धुंधलके में एक सुनसान सड़क पर शर्माजी कुछ गुन-गुनाते हुए मस्ती में चले जा रहे थे। अचानक एक अपरिचित उन के पास झपट कर आया और बोला, "श्रीमानजी, क्या आप मेरी सहायता कर सकेंगे? मैं बहुत भूखा हूं और जेब में पिस्तौल और छह कारतूसों के सिवा कुछ नहीं है।"

क्या अंगरेजी-समर्थक यह जानते हैं कि लगभग एक शताब्दी पूर्व भारत में नियुक्त एक आई. सी. एस. डा० ग्रियर्सन ने यह समझ लिया था कि भारत की सच्ची आत्मा का ज्ञान हिन्दी द्वारा ही हो सकता है ? उन्होंने हिन्दी के अनेक ग्रंथों के पुनर्मुद्रण की व्यवस्था की तथा महत्वपूर्ण पुस्तकों की टीकाएं लिख कर उन्हें सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाया
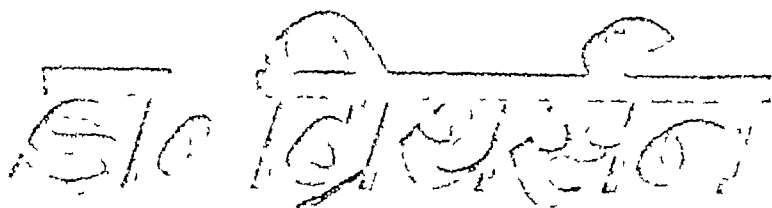
डा० ग्रियर्सन

○ **प्रेमचन्द गोस्वामी**

आयरलैण्ड के एक मेधावी विद्यार्थी को उन के सहपाठी सदैव हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन करते पाते थे, यद्यपि उन का मुख्य विषय था गणित। आगे चल कर उन के जीवन का अधिकांश समय हिन्दी की सेवा में ही बीता। यह विद्यार्थी थे सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, जो गणित के स्नातक होने के बाद प्रोफेसर राबर्ट एटकिंसन तथा मीर औलादअली के संरक्षण में हिन्दी भाषा का ज्ञान अर्जित करते रहे तथा कालान्तर में जिन्होंने हिन्दी के अनन्य विदेशी उपासक के रूप में विश्व में ख्याति अर्जित की।

भाषा एवं साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ ग्रियर्सन को भारतीय सामाजिक जीवन से भी विशेष लगाव हो गया था, जो एक दिन उन्हें इस पुण्य-भूमि में खींच लाया। अंगरेजी राज्य में यह कहां संभव था कि ग्रियर्सन सीधे हिन्दी की सेवा का नाम ले कर भारत में प्रवेश कर पाते। अतः उन्होंने १८७१ में 'इण्डियन सिविल सर्विस' की परीक्षा उत्तीर्ण की और हिन्दी तथा भारतीय जन-जीवन का और अधिक गहराई के साथ अध्ययन करने के लिए यहां आ गये। उन्होंने हिन्दी की प्रायः सभी तत्कालीन श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन कर डाला। अंगरेज अफसर होते हुए भी बोलचाल में वे निडरता से हिन्दी का प्रयोग करने लगे। हिन्दी भाषा के सहज और कर्णप्रिय शब्दों के आदान-प्रदान में उन्हें विशेष तोष मिलता।

उन दिनों बंगाल में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था। इस के संबंध में जानकारी

प्राप्त करने के लिए सरकार ने उन्हें तिरहुत भेजा। वहा उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में देखा तथा अनुभव किया कि उन के समकालीन अंगरेज अफसर भारतीयों के सामाजिक जीवन से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और उन की मन.स्थिति से अपरिचित रह कर उन पर तानाशाही शासन कर रहे हैं। ग्रियर्सन को यह जान कर बडा दुख हुआ। वे सदैव यही प्रयत्न करते रहे कि किसी तरह भारतीयों का जीवन सुखी बने।

विधिपूर्वक अध्ययन करने के बाद ग्रियर्सन हिन्दी भाषा के उस सक्रमण काल में उस के साहित्य-भण्डार को भरने में लग गये और जैसे उसे सजीवनी दे कर उस में नव-प्राण फूंका। हिन्दी के अनेक ग्रंथों के पुनर्मुद्रण की उन्होंने व्यवस्था की तथा महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की टीकाएं लिख कर उन्हें सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाया।

ग्रियर्सन ने जो पुस्तकें लिखीं उन में 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' सर्वप्रमुख है। इस के बाद 'ग्रामीण जीवन, हिन्दी व्याकरण, हिन्दी शब्दकोश, बिहारी भाषा व्याकरण तथा गया का उद्भव व विकास' प्रमुख है। टीकाओं में महाकवि विद्यापति के गीतों, 'बिहारी सतसई' एवं 'लाल चन्द्रिका' की टीकाए उल्लेखनीय है।

'पदमावत' के सुन्दर संस्करण तथा 'मनबोध हरिवंश' को सात भागों में प्रकाशित करवा कर हिन्दी-प्रेमियों के लिए सुलभ बनाने का श्रेय भी उन्हें ही है। तत्कालीन प्रान्तीय लोकगीतों का संग्रह करके भारतीय भाषाओं को समुन्नत बनाने के उन्होंने विभिन्न प्रयास किये। बालमुकुन्द कश्मीरी के सहयोग से उन्होंने कश्मीरी भाषा का व्याकरण भी तैयार किया।

पठन-पाठन एवं लेखन के अतिरिक्त समय-समय पर हिन्दी के विद्वानों से भाषा संबंधी तर्क करने में भी ग्रियर्सन पर्याप्त दिलचस्पी लेते रहे। तर्क समाप्त होने के बाद आमंत्रित विद्वानों को वे कुछ रुचिकर भेंट भी दिया करते थे। यह क्रम एक अर्से तक चलता रहा।

इसी बीच वे अपने वतन लौट गये और उन के अभिभावकों ने उन्हें सुश्री ल्यसी के साथ विवाह-सूत्र में बांध दिया पर विवाह के बाद भी उन के हिन्दी-प्रेम में कोई अन्तर नहीं आया और वे सपरिवार पुन: भारत चले आये।

सन १८८६ में जब आस्ट्रिया में हुई पूर्वी विद्वानों की सभा में उन्हें साहित्यिक विचार-विनिमय के लिए आमंत्रित किया गया तो उन्होंने वहां 'भारत का सामयिक भाषा-साहित्य' विषय पर एक सारगर्भित लेख पढ़ा, जिसे बाद में प्रकाशित करवा कर सब के लिए उपलब्ध किया।

अपने सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं को ठोकर मार कर तीस वर्ष तक हिन्दी की सतत साधना करनेवाले विद्वान डा० ग्रियर्सन की हिन्दी सेवाए हमारे सामने आज भी एक आदर्श रूप में है और सदैव हिन्दी-प्रेमियों का मार्ग दर्शन करती रहेंगी।

डा. ग्रियर्सन का जन्म सन १८५१ में एवं स्वर्गवास सन १९४१ में हुआ था। ●

कैसे छूटे नाते

○ मालती जोशी

गाड़ी जैसे ही स्टेशन में प्रवेश करने को हुई, मेरी कल्पना में भैया का पत्र फिर घूम गया

दीदी,

पिछले आठ साल से तुम मेरा निमंत्रण टालती आ रही हो। शायद मां और बाबूजी के साथ मैं अपनी बहिन को भी खो बैठा हूं। खैर अब तो मैं यहां आ गया हूं। मेरी गृहस्थी का न सही पर अपनी जन्मभूमि का आकर्षण तुम्हें यहां खींच लायेगा, ऐसी आशा है। इस पत्र को अल्टीमेटम समझना !

तुम्हारा भैया

घर की दिनोंदिन बढ़ती जिम्मेदारियों ने मुझे ऐसा जकड़ लिया था कि किसी तरह जाना ही नहीं हो सका था। इस बार उस के पत्र ने मजबूर कर दिया और सभी झंझटों को पीछे ठेल कर मैं चल पड़ी।

गाड़ी जब रुकी तो मेरे मन में वही उमंग थी जो शादी के बाद पहलेपहल पीहर जाने पर होती है। मैं ने चलती ट्रेन से ही भैया को देख लिया था। रुकते ही कंपार्टमेंट में आ कर उस ने मेरे पैर छुए और

हम लोग हाथ पकड़े-पकड़े ही उतर गये। पर मन में कुछ खटका अवश्य। पहले तो वह मुझ से लिपट जाता था। उसी समय दो चपरासियों ने मेरा सामान उठा लिया और मुझे स्मरण हो आया कि अब वह पुराना भैया तो नहीं है जो दोस्तों की टोली ले कर मुझे लेने आया करता था। आज तो वह एक जिम्मेदार अफसर है।

स्टेशन भीतर-बाहर से बहुत-कुछ बदला हुआ था, पर ऐसा भी नहीं था कि पहचाना ही न जा सके। पुरानी स्मृतियों में डूबती-उतराती मैं कार में बैठ गयी। भैया ने कुछ बोलना चाहा पर मेरे असंगत उत्तरों से उस ने शायद मेरी मन:स्थिति भाप ली और फिर वह चुप ही रहा। कार कोलतार की सड़कों पर फिसलने लगी और उस के साथ ही मेरा मन भी फिसलता हुआ समय के उस पार पहुंच कर स्मृतियों की दुनिया में खो गया।

तंग गली के मोड़ पर तांगा खड़ा है। बाबूजी तांगेवाले को पैसे दे रहे हैं। भैया सामान लिये चल रहे हैं और उन के पीछे मैं। मेरे आने की खबर तेजी से फैल जाती है और कई जोड़ी आंखें घरों के दरवाजों, खिड़कियों और छज्जों से मुझे घूरने लगती हैं। भगतजी मिलते हैं और आशीर्वादों की झड़ी लगा देते हैं। माथुर चाची खिड़की से ही कुशल-क्षेम पूछ लेती हैं। चौबेजी की मुन्नी पप्पू को मेरी गोद से छीन कर भाग जाती है। पड़ोस के रामू दादा चिल्ला कर पूछते हैं— क्यों री लाडो यह

कितने नवर का पार्सल हैं ? उन के इस प्रश्न पर सभी लोग खिलखिला कर हंस पड़ते हैं। मा दरवाजे पर खडी हैं। मुझ से लिपट जाती हैं। हम दोनों के आंसुओं में विछोह की व्यथा अधिक हैं या मिलन का आनद—कहना कठिन हैं। वावूजी 'जीती रहो, जीती रहो' कहते हुए एक ओर चले जाते हैं।

"आओ दीदी"—मैं चौंकी और वर्तमान में आ गयी। गाड़ी एक शान-दार कोठी के सामने खडी थी और भैया मुझ से उतरने के लिए कह रहा था। तग गली का वह पुराना मकान यदि कठोर यथार्थ था तो भैया का यह नया घर स्वप्न की तरह सुन्दर। दरवाजे पर ही रीता भाभी खडी थीं। शादी के दस साल उन के सौंदर्य और सुकुमारता में कोई अंतर नहीं ला पाये थे। सुन्दर उद्यान से घिरे उस भव्य भवन के द्वार पर वे किसी कलात्मक प्रतिमा-सी लग रही थीं। वड़ी ही प्यारी मुसकान के साथ उन्होंने मुझ से नमस्ते की।

"रीता, तुम दीदी के नहाने-खाने का प्रबंध करो, मैं आफिस जाता हूं। अच्छा दीदी, शाम को मिलेंगे," कहता हुआ भैया सीढ़ियां उतर कर गाड़ी में वैठ गया। चपरासी आगे-पीछे दौड़ रहे थे। काश मां और वावूजी यह सव देखने के लिए जीवित रहते! मत्रमुग्ध-सी मैं तव तक देखती रही जव तक गाडी आखों से ओझल नहीं हो गयी। फिर एकाएक अपने आप को वहुत अकेला अनुभव करने लगी जैसे कोई नन्ही वच्ची भीड़ में खो गयी हो।

ऐसा होना तो नहीं चाहिये। मैं तो अपने पीहर आयी थी, अपने इक-लौते भाई के घर। वह वेचारा मेरी एक-एक इच्छा पूरी करने के लिए भाग रहा था। दोनों भतीजे अपनी किलकारियों से मेरा मन पुलकित कर रहे थे। रीता वेचारी तो विछी जा रही थी।

सारे घर के लिए मैं एक सम्मा-नित अतिथि थी, और यही वात मेरे हृदय को आघात पहुंचा रही थी। मैं वह रज्जो नहीं थी जिस के लिए तवा उतारने से पहले मीठा चीला वनाना मां न भूलती थीं। वह विटिया नहीं थी जिस के लिए सेवधानी की पुड़िया लाने की वात वावूजी को सौ कामों के वीच भी याद रहती थी। वह रजनी भी नहीं थी जिस के लिए माथुर चाची आंवले का अचार और पंडिता-इन मौसी उड़द के पापड अवश्य भेजती। अव मैं वह दीदी क्यों नही थी जिस के लिए खट्टी इमली से भैया घर भर देता था ?

भैया तो सचमुच अव वहुत ही वदल गया था। यह वात नहीं कि वह मेरी उपेक्षा करता हो। वह तो वेचारा आफिस से जितनी जल्दी हो सके, उतनी जल्दी लौट आता और अधिक से अधिक समय मुझे देने का प्रयत्न करता। हम दोनों के वीच एक अदृश्य-सा तनाव वन गया था। कभी मैं सोचती, क्या वही वदला है, समय के चक्र ने मुझे क्या अछूता ही छोड दिया है ?

एक रात खा पी कर वैठे थे कि

भैया ने मेज पर एक बड़ा-सा नक्शा फैलाते हुए कहा, "दीदी, एक मकान बनवाने की सोच रहा हूं, इसी शहर में। मां की भी यही इच्छा थी।"

मकान . . . इसी शहर में . . . मां की इच्छा थी—सुन कर मन को न जाने कैसा लगा। अपना पुराना, अंधेरा, सीलनभरा मकान याद आया जिस में मां ने अपने जीवन के २८ वर्ष काट दिये थे, शायद ऐसे ही किसी सुन्दर घर का सपना देखते हुए।

"हां तो दीदी, बगीचे के ठीक बाद यह हाल होगा, और इस के पास ही यह लेडीज ड्राइंगरूम। ठीक है न ?"

"हां, हां, बहुत अच्छा रहेगा," पर इस समय में तो अपने दो कमरों के मकान के बारे में सोच रही थी। बाहर वाले कमरे में फरनीचर के नाम पर होती थी एक मेज, एक टीन की कुरसी और स्टूल। जब बैठनेवालों की सख्या ज्यादा हो जाती तो संदूक और खिड़की से भी काम चलाया जाता।

और लेडीज ड्राइंगरूम। इस की तो कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई। दोपहर को सब अपने-अपने दरवाजे में आ जातीं, कोई बुनाई ले कर तो कोई सिलाई ले कर। कोई चावल बीनती, तो कोई सब्जी साफ करती, इस तरह बातें भी होतीं और काम भी। निमंत्रण कभी भी आनंददायक नही होते थे क्योंकि उन घरों के अभाव उभर कर सामने आ जाते।

"और दीदी, यहां बच्चों का स्टडी-रूम रख दिया है। बगीचे का व्यू भी रहेगा और किसी तरह का डिस्ट-बेंस भी नही होगा।"

"हां, पढते समय डिस्टर्बेंस तो नहीं होना चाहिये।" और मेरी कल्पना में हमारा रसोईघर घूम गया। एक ओर पलग पर दमे की मरीज दादी सोयी रहती और दूसरी ओर मा खाना पका रही होतीं। कमरे के बीचोंबीच संदूक पर किताबें रख कर हम दोनों भाई-बहिन पढ़ते रहते। दादी की खांसी, बरतनों की खड़खड़ाहट और गली का शोरगुल—इन सब के बीच भी जब भैया हर बार फर्स्ट आता था तो हम सब के कलेजे गज-गज भर के हो जाते थे।

वह समझा रहा था और मैं सिर हिला रही थी। पर कितना समझ रही थी, इसे तो ईश्वर ही जानता है।

उसी रात मेरे कानों में भनक पडी, "हर किसी को क्यों प्लान दिखाया करते हैं आप ? कोई जरूरी है कि सभी को उस में दिलचस्पी हो ?"

"हर किसी को कौन दिखाता है ? दीदी को तो दिखाना ही चाहिये। उसे तो इस बात का सब से ज्यादा अर-मान है।"

"खाक है। आप तो इतनी बारीकी से समझा रहे थे पर उस में उन का जरा भी ध्यान नही था।"

धीरे-धीरे मेरे जाने का दिन निकट आता गया और जब एक ही रात बाकी रह गयी तो मेरा मन अनायास भारी हो उठा। भैया आफिस से काफी जल्दी लौट आया था और हम लान में बैठे गपशप कर रहे थे। रीता अदर रात के विशेष भोज की तैया-रियों में व्यस्त थी। एकाएक भैया

बोला, "दीदी, घूमने चलती हो ?"

मेरे 'हां' कहते ही वह उठ खड़ा हुआ। उस ने न मुझे कपड़े बदलने दिये, न खुद ही बदले और न रीता को साथ लेने दिया। शोफर ने गाड़ी के लिए पूछा तो मना कर दिया।

बंगलों से घिरी हुई उस सड़क पर हम लोगों को घरेलू पोशाक बड़ी अटपटी लग रही थी। भैया ने शीघ्र ही एक तांगा कर लिया और मैं एक मानसिक बोझ से मुक्ति पा गयी।

तांगे में बैठते ही फिर परेशानी सामने आयी। बातचीत का कोई सूत्र हाथ ही नहीं आ रहा था यद्यपि मन में असंख्य बातें उमड़ रही थीं। अचानक भैया ने कहा, "दीदी, कुल्फी खाओगी ?"

"यहां सडक पर !" मैं ने कहा। मुझे याद आया कि बचपन में कुल्फी खाना हमारे लिए बड़ी खुशी की बात हुआ करती थी। अब तो रीता रोज ही बच्चों के लिए फ्रिज में दूध के कटोरे भर कर रख देती है।

"कुछ चीजें तो सड़क पर ही खाने की होती हैं," कुल्फीवाले को पैसे देते हुए भैया बोला, "बरसात में सड़क के किनारे सिकते भुट्टों की सुगंध से मुंह में पानी भर आता है।"

फिर तो भुट्टों की सुगंध और कुल्फी के स्वाद ने मिल कर एक अनोखा जादू किया। भैया की वाणी ऐसे फूट निकली जैसे बांध टूट पड़ा हो। मार्ग में पड़ने वाली हर इमारत, हर पेड, हर दुकान से उस की कोई न कोई स्मृति जुड़ी थी। उसे सुनना बड़ा अच्छा लग रहा था।

"बोर हो गयी दीदी ?" वह जैसे होश में आ कर बोला, "बात यह है कि जब से मां नहीं रहीं, कई बातें अनकही रह गयी हैं। रीता से तो यह सब कहने में मजा ही नहीं आता। वह बेचारी तो मेरे अतीत की कल्पना भी नहीं कर सकती।"

तांगा रुक गया था और भैया ने मुझे उतरने का संकेत किया। "यहां क्यों ?" मैं ने प्रश्नवाचक दृष्टि से उस की ओर देखा।

"तुम यहां आये बिना ही लौट जाती तो न तुम्हें सुख होता और न मुझे। ठीक है न !" और हम दोनों हंस दिये।

हम ने गली में प्रवेश किया। समय ने उस के ढांचे को जरा भी नहीं बदला था। बदले थे तो सिर्फ वहां के निवासी। जो तब जवान थे, अब बूढ़े हो गये थे और अपनी धुंधली आंखों से हमें पहचानने की कोशिश कर रहे थे।

माथुर चाची की खिड़की आते ही हठात ध्यान उस ओर चला गया। वे बदस्तूर वहां पर खडी थीं। बहुत देर में मुझे पहचान पायीं। फिर 'रज्जो' कह कर इस जोर से चीखीं कि रास्ता चलने वाले हमें घूर कर देखने लगे। उन की बातों का सिलसिला खत्म ही नहीं हो रहा था। लगता था, बुढ़ापे ने उन की जबान को तेज कर दिया है।

उन से पीछा छुड़ा कर आगे चले तो तरकारी का थैला लिये रामू दादा मिल गये। हम लोगों ने नमस्ते की

तो कुछ देर हमें देखते रहे, फिर मेरे सिर पर चपत मार कर साबित कर दिया कि वे हमें भूले नहीं हैं। खींच कर घर ले गये और चाय पिलायी। उन के घर से हमारा पुराना मकान दिखायी पड़ता था जहां नये किरायेदारों के बच्चे खेल रहे थे। उन की किलकारियों में हमारा बचपन जाग रहा था। मकान-मालकिन हमेशा की तरह उन बच्चों को कोस रही थी। मैं ने भैया के कान में कहा, "तुम जब अपने घर का मुहूर्त करो तब उस बुढ़िया को अवश्य बुलाना।"

अंत में पहुंचे पंडिताइन मौसी के घर। मौसी के बाल सन की तरह सफेद हो गये थे पर उन पर वह शीशफूल अभी भी चमक रहा था। यह उन का एकमात्र गहना था जो किसी जजमान की स्त्री ने पुत्र-जन्म की खुशी में दिया था। बचपन में भैया अक्सर उसी से झूल जाता था। तब वे कहती, "अरे, छोड़ दे रे दुष्ट! मरूंगी तो यह तेरी बहू को ही दे जाऊंगी।" मैं ने अपनी कल्पना में रीता को वह शीशफूल लगाये देखा और मुझे हंसी आ गयी। मौसी की दशा विचित्र-सी हो गयी। हर्ष और शोक — दोनों से विह्वल हो कर उन्होंने हमें चिपटा लिया। हम तीनों इस तरह रोये मानो मां का कल ही देहांत हुआ हो। बड़ी देर के बाद वे संभल पायीं। बोलीं, "बेटा, किसी दिन बहू को भी तो ले कर आना। देख कर आंखें ठंडी कर लूं।"

मैं ने भैया की रक्षा करते हुए कहा, "मौसी, किसी दिन अपने लड़के का महल भी तो देख आओ!" और फिर मैं ने भैया की वैभवगाथा बड़े विस्तार से उन्हें सुनायी। वे भी रस ले-ले कर सुनती रहीं और बलाएं लेती रहीं।

हम लोग जब गली से बाहर आये तो मन बड़ा हलका हो रहा था। इसलिए नहीं कि पुराने लोग मिल गये थे बल्कि इसलिए कि उन के माध्यम से हम दोनों भाई-बहिन वर्षों की दीवार चीर कर फिर से एक मन एक प्राण हो सके थे।

चौराहे पर मन्नालाल हलवाई की दुकान पर जब भैया रुका तो मैं ने कहा, "हद है भैया, अब भी क्या पेट में जगह रह गयी है?"

"अरे दीदी, मिठाई तो मैं अपने प्यारे जीजाजी के लिए ले रहा हूं जिन की तोंद ससुराल की मिठाई के अभाव में दुबला रही होगी।"

"शैतान!" मैं ने कहा पर उस ने हंसते हुए एक गुलाबजामुन मेरे मुंह में ठूंस दिया और मेरी साड़ी के पल्लू से ही हाथ पोंछ दिये। ●

"यार, तुझे शर्म आनी चाहिये कि घर में पत्नी के होते हुए बटन टांक रहा है?"

"भैया, धीरे बोल कहीं वह सुन न ले! ये बटन उसी के ब्लाउज में टांक रहा हूं।"

वकील : इस मुकदमे में हम जरूर जीतेंगे।
मुवक्किल : शुक्रिया, तो मैं चला।
वकील : अरे रे, कहां चले ?
मुवक्किल : जनाब, मैं तो अपना मामला अदालत के बाहर निबटाऊंगा।
वकील : पर मैं तो तुम से कह रहा हूं कि हम जरूर जीतेंगे।
मुवक्किल : आप के लिए खुशी की बात हो सकती है पर मेरे लिए नहीं। मैं ने आप के सामने अपने विरोधी का पक्ष रखा है।

★

सब से अधिक पेटू निश्चित करने के लिए प्रतियोगिता हो रही थी। कल्लू ने तो कमाल ही कर दिया। उन्होंने बीस कचौरियां, दो किलो दूध और डेढ़ किलो रबड़ी के बाद पांच लोटे पानी भी पिया। अधिकांश प्रतियोगी तो कचौरियां खाते समय ही बोल गये, लेकिन इतना सब डकारने पर भी कल्लू की स्थिति असामान्य नहीं हुई। लोगों ने एकमत से उन्हें 'पेटू श्रेष्ठ' की पदवी से विभूषित किया और मिठाइयों से उन का सत्कार किया। घर चलते समय कल्लू ने लोगों से कहा, "कृपा करके इस प्रतियोगिता के बारे में मेरी पत्नी से मत कहियेगा, नहीं तो वह मुझे आज खाना नहीं देगी।"

★

पड़ोसवालों ने चाय पर निमंत्रित किया था। टिंगू भी अपनी मां के साथ गये थे। एक प्लेट में बहुत सारे काजू रखे थे। टिंगू की नजर उस पर जम कर रह गयी। मेजबान ने यह देखा तो उस ने टिंगू से पूछा, "क्यों, तुम्हें अच्छे नहीं लगते क्या ?" "जी लगते तो हैं," टिंगू ने मुंह बिचकाते हुए कहा।

मेजबान ने फिर काजू लेने का आग्रह किया, पर टिंगू तब भी हिचकिचाते रहे। इस पर उस ने मुट्ठी भर कर काजू टिंगू की जेब में डाल दिये। घर लौटते समय मां ने पूछा, "जब तुम से काजू लेने को कहा गया तो तुम ने खुद क्यों नहीं ले लिये ?"

बायीं आंख भींच कर टिंगू ने जवाब दिया, "क्योंकि उन की मुट्ठी मेरी मुट्ठी से बड़ी थी।"

कुलभूषण भाटिया
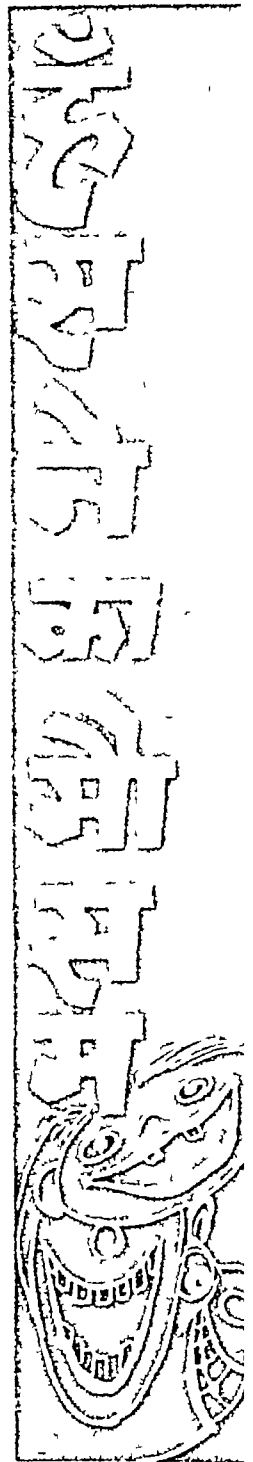
अमरीकी सुरक्षा विभाग का मुख्य कार्यालय

'पेंटागन' अर्थात पांच भुजाएं, ज्यामिति पढ़नेवालों के लिए एक सुपरिचित शब्द है, पर ज्यामिति के अतिरिक्त इस का एक महत्वपूर्ण अर्थ और है। 'पेंटागन' उस भव्य भवन का नाम है जिस में अमरीकी सुरक्षा विभाग का मुख्य कार्यालय स्थित है।

अमरीका जाने वाले भ्रमणार्थी प्राय: 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' की भव्यता से इतने अभिभूत हो जाते हैं कि इस से अधिक किसी शानदार भवन की वे कल्पना ही नहीं कर पाते। लेकिन विश्व का सब से बड़ा कार्यालय-भवन 'पेंटागन' अपनी भव्यता का अलग ही उदाहरण है। 'एम्पायर स्टेट' की १०२ मंजिलों के सम्मुख 'पेंटागन' अपनी ५ मंजिलों के कारण बौना अवश्य लगता है, पर इस के फर्श का क्षेत्रफल 'एम्पायर स्टेट' से लगभग तीन गुना है। अन्य बातों में भी 'पेंटागन' बढ़-चढ़ कर ही है।

हवाईजहाज से देखने पर मालूम होता है कि 'पेंटागन' के पांच भाग हैं और प्रत्येक भाग के पांच-पांच कोण हैं, अर्थात 'पेंटागन' में पांच 'पेंटागन' सम्मिलित हैं जो बरामदों द्वारा एक-दूसरे से मिला दिये गये हैं। इस की प्रत्येक मंजिल पर कमरों की पांच-पांच पंक्तियां हैं।

वाशिंगटन से थोड़ी दूर, पोटोमक नदी के पार वर्जीनिया राज्य में स्थित ३४ एकड़ में फैले 'पेंटागन' के बरामदों की लंबाई साढ़े सत्रह मील तथा बाहर का घेरा लगभग एक मील है।

इस के निर्माण में १३,००० व्यक्तियों ने दिन-रात काम किया था। ८,३०,००,००० डालर की लागत से बना यह विशाल भवन १५ जनवरी,
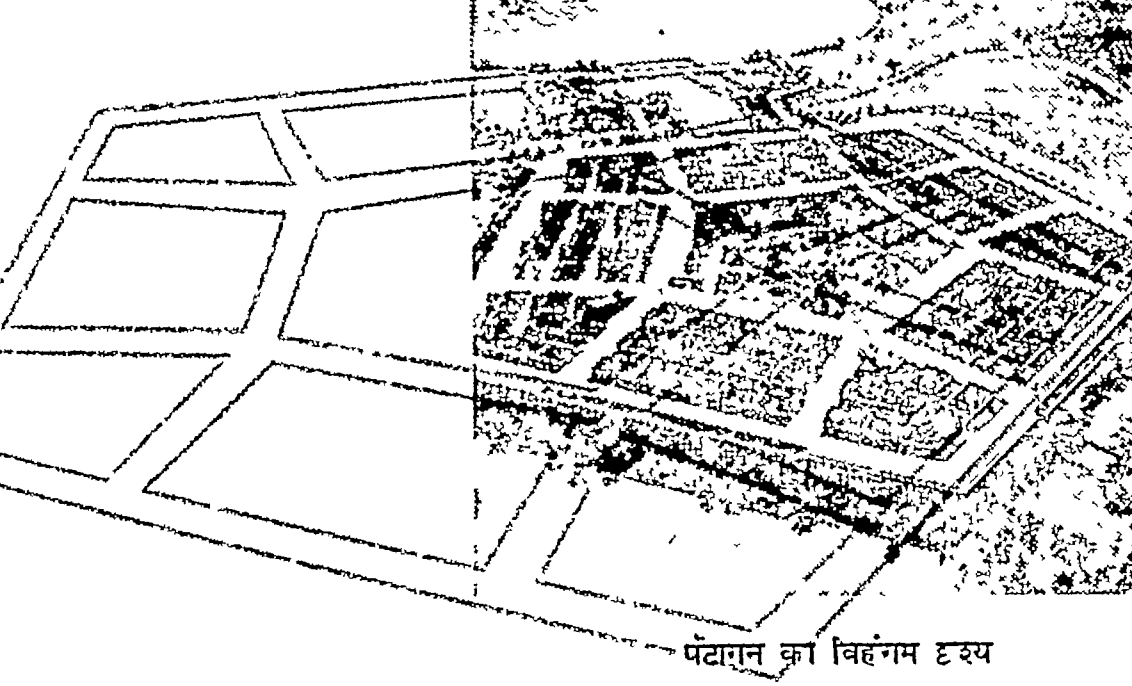
पेंटागन का विहंगम दृश्य

१९४३ को पूर्ण हुआ था। इस से पूर्व सैनिक अधिकारियों के लिए १७ छोटे-बड़े भवन काम में लाये जाते थे। 'पेंटागन' के पूरा होते ही सारे अधिकारी एक भवन में केन्द्रित हो गये।

'पेंटागन' में लगभग ३०,००० व्यक्ति काम करते हैं। इस में विश्व का सब से बड़ा निजी टेलीफोन एक्सचेंज है। यहां प्रति दिन टेलीफोन की लगभग २,५०,००० 'काल' होती हैं। इस काम के लिए ४०,००० टेलीफोन प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें १,६०,००० मील लंबे तारों द्वारा मिलाया गया है। टेलीफोन एक्सचेंज में ही लगभग १८५ व्यक्ति काम करते हैं।

इतने कर्मचारियों के भोजनादि की व्यवस्था करना भी एक समस्या है। इस के लिए ७०० व्यक्ति केवल भोजन बनाने और परोसने का काम करते हैं। 'पेंटागन' में तीन रसोई-घर, छह कैफेटेरिया, दो रेस्तरां तथा स्नैक बार हैं। इस में प्रति दिन काफी के ३०,००० प्याले पिये जाते हैं तथा दूध की औसत खपत १,००० गैलन होती है। 'पेंटागन' में ३०० घड़ियां हैं। इस के अतिरिक्त ५५० फुहारे, २४० विश्राम-गृह तथा ६०० के लगभग यंत्र हैं। 'पेंटागन' में ७,७०० खिड़कियां हैं और खिड़कियों में लगे शीशों का कुल क्षेत्रफल है लगभग ७ एकड़।

'पेंटागन' में १,२०० गाड़ियों को खड़ा करने के लिए स्थान है। यहां के बस-स्टाप पर प्रति दिन १०० बार बसें आती-जाती हैं। यहां से एक साथ २८ बसों में माल लादा जा सकता है तथा एक घंटे में २५,००० यात्रियों

को निवटाया जा सकता है।

'पेंटागन' के सबंध में कुछ और तथ्य तो बहुत मजेदार हैं। इस भवन में प्रकाश के लिए प्रति दिन ६५,००० वल्ब जलाये जाते हैं और हर रोज लगभग ६०० नये वल्ब लगाने पड जाते हैं। 'पेंटागन' में कागज का इतना प्रयोग होता है कि हर रोज दस-वारह टन रद्दी इकट्ठी हो जाती है। इसे वेचने से एक वर्ष में ८०,००० डालर की आय होती है, जिस से अमरीकी सेना के चार सर्वोच्च अधिकारियों का वेतन दिया जा सकता है।

इस भवन की अन्य चीजों की तरह एयर-कंडीशन की मशीनें देख कर भी आश्चर्य होता है। गरमियों में 'पेंटागन' का तापमान ७८ अंश और नमी ५० प्रतिशत होती है तथा सर्दियों में ७५ अंश और ३० प्रतिशत। इस से कार्य-कुशलता में वृद्धि के साथ-साथ कागज-पत्रों को पोटोमक नदी-घाटी की सीलन से बचाने में भी सहायता मिलती है। यदि सूर्य की किरणें भवन के किसी ओर सीधी पड़ती हैं तो स्वचालित यंत्रों द्वारा उस ओर ठडक बढ़ाने का सकेत मिलता है। यदि आकाश में वादल छा जायें तो इन इलेक्ट्रानिक यत्रों के संकेत पर वाल्व अपने-आप खुलने और वंद होने लगते हैं।

'पेंटागन' में एक भाग से दूसरे भाग में जाने के लिए कई वार तीन पहियेवाली साइकिलों का उपयोग किया जाता है। अनुभवी लोग रोलर स्केट्स पर भी घूमते-फिरते हैं, परन्तु इसे अधिक प्रोत्साहित नहीं किया जाता। इस भूलभुलैया में कोई खो जाये तो क्या आश्चर्य! इसलिए प्रत्येक मंजिल का रग अलग-अलग है और स्थान-स्थान पर मार्गदर्शक मानचित्र लगाये गये हैं।

'पेंटागन' के घुमावदार कमरों में अमरीका के सैनिक-गौरव का इतिहास छिपा है। द्वितीय महायुद्ध की अनेकानेक रोमांचकारी घटनाएं इस के महत्व की साक्षी हैं। विश्व राजनीति में अमरीका का जो महत्वपूर्ण स्थान है, उस का सव से वड़ा कारण उस की सैन्य-शक्ति है और इस सैन्य शक्ति का नियंत्रण-केन्द्र है 'पेंटागन'। क्यूवा हो या वियतनाम, अमरीकी राष्ट्रपति 'पेंटागन' से परामर्श किये विना सेना-संबंधी कोई भी निर्णय नहीं लेते।

पड़ोसी के यहां कोई उत्सव था। रामप्रसादजी देर से घर आते थे अतः पड़ोसी ने उन का खाना घर ही भिजवा दिया था। उसे खाते हुए वे वोले, "खाना है या घास? कितना घटिया वनाया है!"

"अच्छा, इसे मत खाओ," पत्नी ने प्यार से कहा, "थोड़ा-सा मैं ने भी वनाया है, वह लाये देती हूं।"

"रहने दो, इस से किसी तरह पेट तो भर लूंगा," पति ने उत्तर दिया।

शाम

सोने की किरणों पर
छा गया कुहासा
आग के रेशों से
उठता है धुआं-सा

धुंधली-सी शाम
धुंध में डूब गये भौतिक शरीर
जैसे फोकस से हिली हुई
कैमरे की तसवीर

लगता है
धरती पर फैल गयी
भ्रम की पर्त
लेकिन
सवेरा फिर होगा
शाम की बहुत बड़ी शर्त

अनगाये गीत

ओ रे अनगाये गीत अधर पर आओ भी

मटमैले बादल अम्बर पर छाये
क्या जानें, कुछ रंगीन छटा आये
ओ रे अनदेखे स्वप्न नयन में छाओ भी

यह उमड़न-घुमड़न, यह मंथन कैसा
बिजली की रेखा में कंपन कैसा
ओ रे अनबरसे मेघ बूंद बरसाओ भी

भीतर तल में बड़वा की चिनगारी
जल की यह अक्षय राशि हुई खारी
ओ रे अनथाहे सिंधु ज्वार बन जाओ भी
ओ रे अनगाये गीत गूंज बन छाओ भी

—डा० रमा सिंह—

शेरपा सरदार अग क्षुतर की वस एक ही साध हैं कि इस वार उस के घर में एक वेटा हो जाये । वह जव-तव हिमालय की चोटियों को एक विशेष प्रकार से अभिवादन करता । 'ओं नमो मणिपद्मने' वार-वार वुदवुदाता । हर ऊची धार (चोटी का मोड) पर रूमाल का एक टुकड़ा डाल जाता ।

अग क्षुतर ने आपने जीवन के तीस वसंत इन गगनचुम्वी चोटियों पर चढने में ही विता दिये हैं । हर अभियान के इतिहास में उस का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया । हर पृष्ठ पर उस के साहस, धैर्य और जिंदा-दिली की कहानियां लिखी गयी । जव वह पंद्रह साल का था तव एक दल के साथ पहली ही वार पूरा वोझा ले कर २३,००० फुट की ऊंचाई तक चढ़ गया था । तव से इन तीस वरसों में उस ने हिमालय की न जाने कितनी चोटियों के द्वार खोले हैं, न जाने कितने अभि-यानों में प्राण फूंके हैं और न जाने कितने देशी-विदेशी पर्वतारोहियों की जानें वचायी हैं ।

"वह वर्फ की नस-नस पहचानता है । कहा कैसा हिमगर्त (क्रीवास) है, कहा घसकता-खिसकता वामक (वर्फ की पुरानी दीवार) है—वह एक नजर डालते ही पहचान लेता है । हिम-प्रपात (आइस फाल) के ऊपर कहां से चढ़ना है, हिमस्खलन (एवलाच) किधर से आयेगा —वह सव वात की वात में वता देता है । उस की वुद्धि विलक्षण है ।" ऐसी अनेक कथाएं उस के वारे में प्रचलित हैं । इसलिए सहायता के लिए हर दल उस का मुंह ताकता है । वैसे, अव उसे रुपये-पैसों की तंगी नहीं है । शेरपाओं के प्रमुख केंद्र 'नामचो वाजार' मे उस का अपना पुराना मकान है । वह खुद दार्जिलिंग में पर्वतारोहण संस्थान मे काम करता है । उस की पांच लड़कियां अच्छे स्कूलों में पढ़ती हैं । लेकिन कसक तो एक ही है — पहाडों पर चढने के लिए अभी तक

उस का कोई बेटा नहीं । इस के लिए उस ने अनेक देवी-देवताओं की मनौतियां और क्षेत्रपालों की पूजाएं कीं । गरमियों में जब भी उसे मौका मिलता, 'नामचे बाजार' पहुंच जाता । घंटों ध्यानमग्न हो भगवान बुद्ध से दुआएं मांगता । 'सोलो' और 'खुम्बो' के मठों में 'ओं नमो मणिपद्मने' जपता रहता ।

अंग क्षेतर की सब से बड़ी कमजोरी यह है कि वह पहाड़ पर चढ़ने के आमंत्रण को कभी नहीं ठुकरा सकता । इस बार उस की पत्नी नीमा ने बड़े प्यार से बार-बार उसे समझाया, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है । तुम मत जाओ, इस बार मेरा कहना मान लो ।" पर अंग क्षेतर नहीं माना । वह हमारे साथ बिना किसी शर्त के चल पड़ा । उस के चलने से हमारी सारी परेशानियां दूर हो गयीं । अभियान का सारा इंतजाम उसी को सौंप कर हम लोग बिलकुल निश्चित-से हो गये । सारे सामान को ठीक समय पर व्यवस्थित करना, फिर कुलियों को सौंपना, पड़ाव के लिए उपयुक्त स्थान चुनना, तंबू लगाना आदि सारी व्यवस्था उसी के हाथ में थी । दल के नेता बेहद खुश थे कि उन का सारा सिर-दर्द अंग क्षेतर ने ले लिया ।

वह तेजी से हिन्दी बोलता पर सब स्त्रीलिंग में । पड़ावों पर अपने पर्वतारोहण के अनुभव और मजेदार किस्से-कहानियां सुनाता । एक बार चांदनी रात में दो-तीन साथियों के साथ दूर से 'नंदादेवी' की चोटी पर उस ने एक बहुत बड़ी चलती-फिरती मशाल देखी

● डा० हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

. . . वर्फ पर मीलों तक यती के पैरों के बडे-बडे निशान देखे . . . 'एवरेस्ट अभियान' में चौथे पड़ाव पर अजीब-अजीब आवाजें सुनी . . . 'नीलकंठ' पर सुबह-सुबह कोई भव्य आकृति-सी देखी . . . बीस हजार फुट की ऊंचाई पर बर्फ में एक साधु को समाधि लगाये बैठे हुए देखा १२,००० फुट ऊंचे बुग्याल (चरागाह) में उसे ऐसी बूटी मिली कि दस दिन तक प्यास ही न लगी . . . आदि ।

उस की अनोखी सूझ बूझ से कई बार हमारे भी प्राण बचे । उस दिन आधार शिविर (बेस कैंप) के लिए उपयुक्त स्थान चुनना था । १३,००० फुट की ऊंचाई पर हमें दो छोटे-छोटे मैदान मिले । पहला बिलकुल एक छोटी नदी के पास और दूसरा उस से कुछ ऊपर । ऊपर वाले मैदान में पानी की दिक्कत थी । बर्फ पिघला कर ही पानी मिल सकता था जब कि नीचे वाले मैदान के पास ही बहता पानी था । दल के नेता ने कहा, "यही जगह ठीक है । यहां से चोटी भी साफ दिखायी दे रही है और आगे बढने के लिए भी यह ठीक है । यहा कम से कम पंद्रह दिन रुकना पडेगा । चोटी पर चढ़ने के सारे आयोजन यहीं से बनेंगे ।"

लेकिन अंग क्षुतर ने साफ इनकार कर दिया, "नीचे वाला मैदान ठीक नहीं । वहा खतरा ही खतरा है । ऊपर ही ठीक है ।"

हमें तो दोनों मैदान एक-जैसे ही लगे, बल्कि नीचे पानी का आराम था । परंतु अंग क्षुतर की बात कैसे टालते ! अतः 'आधार शिविर' ऊपर वाले मैदान में ही स्थापित हुआ । थोड़ी ही देर में ओलों के साथ मूसलाधार वर्षा शुरू हो गयी । रात भर यही सिलसिला रहा ।

सुबह तंबुओं से बाहर निकले । मौसम साफ हो चुका था । स्वच्छ नीला आकाश और चारों ओर हिम का अखंड साम्राज्य । अनुपम छटा थी । तभी किसी ने नीचे नजर डाली । सब का ध्यान उसी तरफ चला गया और सब देखते ही रह गये । नीचे का मैदान बिलकुल लापता था । भूस्खलन (लैंडस्लाइड) से मैदान रात में ही साफ हो गया था । सब के रोम-रोम से अंग क्षुतर के लिए कृतज्ञता टपकने लगी ।

इन दिनों मौसम के बुरे हाल थे—एक दिन साफ, दूसरे दिन जोरों की बारिश । दस दिनों में हमारे कुल चार ही कैंप स्थापित हो सके थे । चोटी अभी भी २,००० फुट आगे थी । आठ-दस दिन के बाद बरसात शुरू होने वाली थी । फिर चोटी पर चढ़ना असंभव था । चौथे कैंप में ऐसी बातें हो रही थीं तभी तीसरे कैंप के चार आदमी आ गये । वे खाना तथा चिट्ठियां लाये थे । कुछ लोग अपने पत्रों में डूब गये और कुछ खाने पर पिल पड़े । 'बेस कैंप' से पहले कैंप में, पहले से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में—इसी प्रकार हर तीसरे-चौथे दिन आगे वालों को खाना और पत्र मिलते थे । 'बेस कैंप' से हर दूसरे दिन कुछ कुली नीचे जाते और चार-पांच दिन के बाद वहा से चिट्ठियां, खाने-पीने का सामान आदि ले कर लौटते । अंग क्षुतर के भी दो पत्र आये पर कोई

खास खबर नहीं थी।

दल के नेता ने चोटी पर चढने के लिए तीन-तीन के दो दल बनाये और निश्चय किया कि दो-तीन दिन के अंदर ही चोटी पर चढ़ने का जोरदार प्रयत्न किया जाये। पहले दल में अंग क्षुतर, सोनम और दल के नेता थे। दूसरे में एक शेरपा और दो सदस्य थे। पूरे उत्साह से अभियान शुरू हो गया। दोनों दल बड़े जोश से आगे बढने लगे। हिम-कुठारों (आइस-एक्स) से तेजी के साथ बर्फ काटी जाने लगी। चढ़ाई सीधी थी। आसमान में सूरज निकल आया और थोड़ी ही देर में गरमी के मारे सब हांफने लगे। प्यास के मारे कंठ अलग सूख रहे थे। एक-एक कदम बढ़ाना पहाड़-सा हो गया। चढते-चढते चार घंटे हो गये। अब मंजिल पास आती नजर आयी। अगला दल चोटी से कुछ ही गज नीचे था। सब के चेहरों पर मुसकराहट खिल आयी।

पिछले दल के एक सदस्य ने अपनी कुल्हाडी बर्फ में टिकायी और पीठ पर लटकते हुए कैमरे को हाथ में ले लिया। कमर पर बंधी रस्सी थोडी देर के लिए खोली और अगले दल के फोटो लेने लगा। अचानक फोटो खींचने वाले का पैर फिसल गया। हाथ में कुल्हाडी न होने से वह अपने को संभाल भी न सका और नीचे की ओर लुढ़कने लगा। सब के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं। अब क्या किया जाये। कोई कुछ सोच ही नहीं पाया था कि अंग क्षुतर ने अपनी कमर की रस्सी खोली और बिना सोचे-समझे वह भी लुढ़क पड़ा।

एक की जगह दो की मृत्यु। दल के नेता बेहद परेशान हो उठे। अंग क्षुतर क्या कर बैठा? जान-बूझ कर मौत के मुंह में कूद गया। तीसरे और चौथे कैंप के लोग भी यह सब देख रहे थे। वे भी जल्दी-जल्दी उसी तरफ चल दिये जहां दोनों लुढ़के थे।

दोनों बेहोश थे। दोनों को उठा कर किसी प्रकार चौथे कैंप में लाया गया। उन के पैर, सिर, हाथ आदि खूब मले गये। रात के लगभग बारह बजे जैसे-तैसे 'बेस कैंप' में पहुंचे। डाक्टर ने उन्हें इंजेक्शन लगाये। भयंकर चोटों के साथ उन्हें निमोनिया भी था। हर पल एक युग-सा लग रहा था। जैसे-तैसे सुबह हुई। इसी बीच नीचे से कुछ कुली भी आ गये। कुछ चिट्ठियां और सामान ले कर आये थे। अंग क्षुतर का भी पत्र था। एक शेरपा ने उस की चिट्ठी पढी और खुशखबरी सुनायी कि उस की पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया है। डाक्टर ने जोर से कहा, 'अंग क्षुतर, अंग क्षुतर, देखो, तुम्हारी चिट्ठी आयी है, तुम्हारे बेटा हुआ है।'

अंग क्षुतर की आंखें एकाएक खुलीं और उस ने अपना हाथ आगे बढाया। डाक्टर ने चिट्ठी उस के हाथ में रख दी।

लुढ़कते हुए साथी को हिमस्खलन से बचाने के लिए अंग क्षुतर ने अपनी जान की बाजी लगा दी थी। उस को वह सुरक्षित जगह तक ढकेल कर ले गया था। यह पता चलते ही सब की आंखों से श्रद्धा फूट पड़ी।
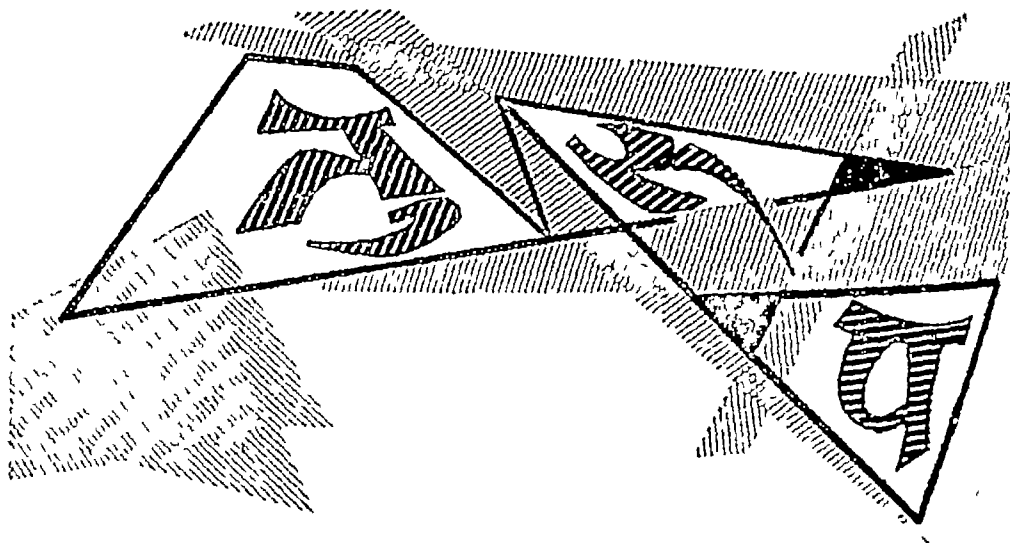
पहली अप्रैल

भारतेन्द, हरिश्चन्द्र ने एक वार अपने पत्र में एक समाचार छापा कि एक अमरीकी महिला काशी आयी हुई है। उन के पास जादुई खड़ाऊं है। वे मंगलवार, पहली अप्रैल को शाम के चार बजे खड़ाऊं पहन कर बिना भीगे या डूबे गंगा पार करेंगी।

इस समाचार से नगर भर में तहलका मच गया। निश्चित दिन गंगा-किनारे हजारों की भीड़ लग गयी। सभी उस महिला का चमत्कार देखने को उत्सुक थे। ठीक चार बजे लोगों ने देखा कि भारतेन्दुजी सभी से कहते जा रहे हैं, "भाइयो, आज तो पहली अप्रैल है, कृपया आप लोग अपने-अपने घर तशरीफ ले जायें।"

इसी प्रकार एक वार भारतेन्दुजी ने सूचना प्रकाशित की कि हरिश्चन्द्र स्कूल में एक प्रसिद्ध गवैये का गाना होगा। हजारों संगीत-प्रेमी स्कूल में इकट्ठे हो गये। शानदार मंच के आगे परदा पड़ा था। परदा उठने पर एक मसखरा मूर्खों की टोपी पहने, उलटा तानपूरा लिये गर्दभ स्वर में गाता मंच पर आया।

तब लोगों को ध्यान आया कि आज तो पहली अप्रैल है।

दूसरा नहीं

श्री महावीर त्यागी एक वार ट्रेन से हैदराबाद जा रहे थे। रास्ते में उन्हें जान-पहचान के एक सज्जन मिल गये, जो वर्धा जा रहे थे। बातों ही बातों में त्यागीजी ने कहा, "मैं जिस दिन इस धरती पर आया, उस दिन नेता के रूप में कोई दूसरा पैदा नहीं हुआ, ऐसा मेरा अंदाज है।"

"आखिर, वह कौन-सी शुभ घड़ी थी, जिस दिन केवल आप ही पैदा हुए?" उन सज्जन ने पूछा।

"मैं उस शुभ घड़ी में पैदा हुआ,"

त्यागीजी ने मुसकराते हुए उत्तर दिया, "जिस समय एक नहीं, चार-चार चीजें बदल रही थीं। अर्थात उस दिन शताब्दी बदल रही थी, साल बदल रहा था, महीना बदल रहा था और दिन भी बदल रहा था।"

"मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया," उन सज्जन ने सिर खुजलाते हुए कहा।

त्यागीजी ने समझाया, "देखिये, ईसवी १८९९ के दिसम्बर महीने की ३१ तारीख को रात के ठीक १२ बजे पण्डित महावीर त्यागी का उदय हुआ। अब तुम्हीं बताओ, इस दिन कोई और नेता पैदा हुआ ?"

इतनी भीड़

श्री सुमित्रानन्दन पन्त अपनी कोमल, कान्त पदावली के साथ अपनी कोमल, कान्त देह के लिए भी प्रसिद्ध हैं। एक बार वे बम्बई में श्री नरेन्द्र शर्मा के यहां टिके थे। एक दिन वे अकेले ही कहीं घूमने निकल गये। लौट कर आये तो हांफते हुए बोले, "अरे नरेन्द्र, वहां तो इतनी भीड़ थी, इतनी भीड़ थी कि देखो मेरे कोट का बटन टूट गया।"

पटरी बदल दी

'प्रसाद'जी जब नागरी प्रचारिणी सभा से अपनी दुकान की ओर जाते, तब रास्ते में खादी-भण्डार के मुख्य विक्रेता श्री अय्यर उन्हें रोक कर भण्डार में ले जाते और वहां नयी से नयी चीज उन्हें दिखाते। 'प्रसाद'जी का सौन्दर्य-प्रेमी मन विचलित हो

गीत

मन रुको और सोचो घड़ी भर
सांस घुटने लगी है सृजन की
मैं गलत गांव में आ गया हूं

प्यास को धीर देते सभी हैं
नीर कोई पिलाता नहीं है
मंजिलों से शिकायत सभी को
पांव कोई चलाता नहीं है
बात पूछो न वातावरण की
प्यार की आंख खुलती नहीं है
स्वार्थ की छांव में आ गया हूं
मैं गलत गांव में आ गया हूं

कंठ पर बोझ पर्वत-सरीखा
बात करना कठिन हो रहा है
और कहता है मुझ से अंधेरा
पुकारूं कि दिन हो रहा है
फूंकते-फूंकते थक गया हूं
बांसुरी बोलती ही नहीं है
दर्द के पांव में आ गया हूं
मैं गलत गांव में आ गया हूं

लोग जो भी किनारे खड़े हैं
ज्वार को देखने आ गये हैं
लग रहा सत्य को मार करके
सिंधु में फेंकने आ गये हैं
डांड़ जड़ हैं, करें तो करें क्या
केवटों की बंधी मुट्ठियां हैं
डूबती नाव में आ गया हूं
मैं गलत गांव में आ गया हूं

—मोहन अंबर—

उठता और वे कोई न कोई चीज अवश्य खरीद लेते ।

एक दिन 'प्रसाद'जी ने श्री अय्यर से कह ही दिया, "अब मैं दूसरी पटरी से जाया करूंगा, जिस से तुम्हारे जाल में न फंस जाऊं ।"

दूसरे दिन 'प्रसाद'जी अपने साथियों सहित सचमुच दूसरी पटरी से निकले । जब वे दूकान के ठीक सामने पहुंचे, तब उन्होंने वहीं से आवाज लगायी, "देखो अय्यर, हम लोग इधर से निकले जा रहे हैं । क्या तुम हम लोगों को इसी तरह निकल जाने दोगे ?"

शाकाहारी

स्वर्गीय राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद शाकाहारी थे । एक बार जब वे विश्व शाकाहारी सम्मेलन में अतिथि के रूप में उपस्थित थे, एक पत्रकार ने पूछा, "अब भी राष्ट्रपति भवन में मांस क्यों परोसा जाता है ?"

राजेन्द्र बाबू ने उत्तर दिया, "मैं तो शाकाहारी हूं, लेकिन मेरी सरकार नहीं ।"

डेरा डाला

अंगरेजी राज में एक बार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' को भी जेल की हवा खानी पड़ी थी । वहां की रौनक का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया—

बैरक है, बर्थ है, बेल है
बेड़ियां हैं, बावले हैं
ब्यूटीफ़ुल बाल्टी की दाल
बे-मसाला है
चट्टा है, चटाई है, चारु चीलर
हैं चारों ओर
तौक तसली है, तसला है
और ताला है
जाहिर जहान जमा-मार
जमादार भी है
कच्ची-कच्ची रोटी
सड़े साग का नेवाला है
शाला कैदियों की, काला
कम्बल दुशाला जहां
'उग्र' ने वहीं पे फिलहाल
डेरा डाला है

—संकलनकर्ता : वीरेंद्रमोहन रतूड़ी

जीप पुल पर से गुजर रही थी कि अचानक नदी में बड़े जोर का छपाका हुआ । श्रीवास्तव साहब ने घबरा कर कार रोकी और घबराये हुए नीचे घाट की तरफ भागे । हांफते-हांफते वे नीचे पहुंचे और देखा कि काफी लोग किसी चीज को घेर कर खड़े हैं । "घबराइये नहीं साहब, आप की पत्नी सिर्फ बेहोश हुई हैं, थोड़ी ही देर में . . ."

"अच्छा, अच्छा, वह पत्नी गिरी थी," श्रीवास्तव साहब संतोष का भाव ला कर बोले, "मैं तो समझा था कि सूटकेस गिर पड़ा है । अजी साहब, मैं तो घबरा ही गया था ।"
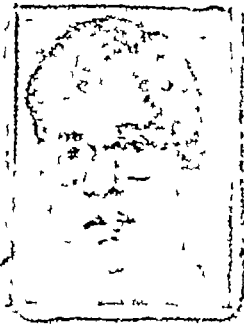
कमजोरियां

लड़खड़ाते कदम चलाते हैं, मुझ में कमजोरियां बहुत-सी हैं
लौट जाऊंगा फिर जहां था मैं, मुझ को मजबूरियां बुलाती हैं

जो भी देती है, छीन लेती है
यह मुहब्बत उधार देती है
मैं कभी सोचता हूं तो दुनिया
मुझ को पागल करार देती है

ज़िन्दगी ले के जी नहीं पाया, मुझ में कमजोरियां बहुत-सी हैं
पर नहीं शर्म से हुआ चुप हूं, मुझ को तनहाइयां बुलाती हैं

ले के हिम्मत चले थे जो इन्सां
दो कदम दूर रह गयी मंजिल
फूलती सांस साथ छोड़ गयी
टूट कर चुप हुआ धड़कता दिल

मैं ने खुद को है लाख समझाया, मुझ में कमजोरियां बहुत-सी हैं
जो हुईं बीच राह में तनहा, वे ही कहानियां बुलाती हैं

छोड़ कर जा रहा हूं मैं सब कुछ
यह सुबह और शाम ले लो तुम
आखिरी वक्त है खुदा के लिए
आखिरी है सलाम ले लो तुम

छोड़ दीं हलचलों की राहें सब, मुझ में कमजोरियां बहुत-सी हैं
सूनी, उजड़ी, उदास राहों से, मुझ को वीरानियां बुलाती हैं

देवेन गुप्त (१९४०-६४)

सिन्धी कहानी

(लेखक द्वारा ही अनूदित)

○ ईश्वरचन्दर

"भगवती ! चलें न अब ? काफी देर हो गयी है !" दीनदयाल अपने मित्र से कहते हैं ।

लेकिन भगवतीलाल की अभी घर जाने की इच्छा नहीं है । दीनदयाल का हाथ दबा कर वे कहते हैं, "बैठो, दयाल ! अभी जल्दी क्या है ? नौ ही तो बजे होंगे !"

दीनदयाल कोई उत्तर नहीं देते । आज काफी बरसात हुई थी, इसलिए बगीचे के छोटे-छोटे, पानी से भरे गड्ढों में से मेंढकों की टर्र-टर्र की आवाज आ रही है । और रह-रह कर झींगुर की झंकार भी सुनायी देती है । भगवतीलाल को यह सब अच्छा लगता है । एक मेंढक फुदकता हुआ उन के पास आता है । चुपके-से उठ कर वे उसे पकड़ने की कोशिश करते हैं । लेकिन गीले साबुन की तरह मेंढक खिसक जाता है । फीकी मुसकान के साथ वे कहते हैं, "दयाल ! अब अपना वह निशाना नहीं रहा ! याद है तुम्हें जब अयगार साहब अपने यहां डिप्टी बन कर आये थे ? उन दिनों पूरे डिवीजन में मैं हाकी की चैम्पियनशिप मार लाया था ।" इस के साथ ही वे अपनी छड़ी हाकी खेलने के अंदाज में एक पत्थर पर मारते हैं । पत्थर पास ही कहीं गड्ढे में जा गिरता है और एकाएक मेंढकों की टर्र-टर्र और तेज हो जाती है ।"

दीनदयाल मुसकरा देते हैं, "हां, हां, याद है !"

भगवतीलाल को ऐसे संक्षिप्त उत्तर अच्छे नहीं लगते । वे अपने बारे में कुछ और सुनने के इच्छुक हैं । इस-

लिए फिर कहते हैं, "और दयाल ! याद है अयंगार साहब मुझ से कितना स्नेह करते थे। जब भी लाइन पर कोई आवश्यक या 'कान्फिडेंशल' काम पड़ता, वे हमेशा मुझे ही भेजते थे। इस पर वह कुलकर्णी कितना जलता था !"

दीनदयाल गरदन हिला कर कहते हैं, "हां, हां, सो तो . . ."

लेकिन भगवतीलाल बात को बीच में ही काट कर कहते हैं, "सिर्फ अयंगार साहब ही नहीं, उन के बाद जो जोशी साहब आये थे, वे क्या करते थे . . ."

इस बीच भगवतीलाल पुनः एक मेंढक को पकड़ने के लिए चुपके-से उठते हैं, लेकिन मेंढक फिर खिसक जाता है।

कोट की जेब से घड़ी निकाल कर दीनदयाल समय देखते हैं और फिर भगवतीलाल से कहते हैं, "भगवती, भई अब तो चलें। खाना बेकार ही ठंडा होगा।"

इच्छा न होते हुए भी भगवतीलाल बेंच से उठते हैं। दोनों चुपचाप सड़क पर आ जाते हैं। भगवतीलाल को चुप रहना शाप-सा प्रतीत होता है। वे पूछते हैं, "बीड़ी पिओगे, दयाल ?"

दीनदयाल हाथ बढ़ा कर बीड़ी ले लेते हैं। दो-चार बार दियासलाई की तीली घिसने के बाद भी जब वह नहीं जलती तो वे झुंझला कर दूसरी निकालते हैं। बीड़ी जला कर एक लंबा कश लेने के बाद दीनदयाल से पूछते हैं, "हां, सो दयाल, मैं क्या
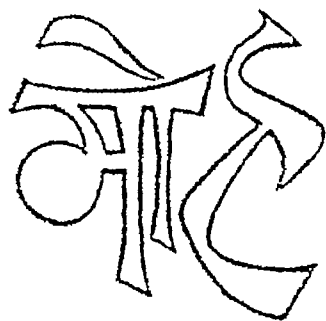
कह रहा था ?"

दीनदयाल अनजाने-से कहते हैं, "भगवती, चाल को थोड़ा तेज करो। काफी देर हो गयी है।"

भगवतीलाल कुछ भांपते हुए कहते हैं, "क्यों दयाल ! आज कोई ऐसी-वैसी बात हुई है क्या ? तुम मूड में नहीं दिखायी देते।"

दीनदयाल कोई जवाब न दे कर चाल तेज कर देते हैं। भगवतीलाल को फिर याद आ जाता है, "हां, तो मैं जोशी साहब की बात कर रहा था। एक बार अपने लड़के के जन्मदिन की पार्टी में उन्होंने मुझे भी बुलाया था। श्रीमती जोशी ने खुद मुझ से हाथ मिलाया। ओह, उस दिन के बाद तो दफ्तर भर के लोग मुझ से 'राम-राम' करते थे। दयाल ! वह जमाना ही और था। क्यों न ?"

दीनदयाल फिर वही संक्षिप्त-सा उत्तर देते हैं, "हां, हां, वह जमाना ही और था।"

दीनदयाल को अपनी बात से सहमत देख कर भगवतीलाल एक लंबा कश लेते हैं। फिर कहते हैं, "जिस दिन मेरे अवकाश ग्रहण की पार्टी हुई

थी, तुम उस दिन वहां थे ?"

"हां, था !"

"याद है, जोशी साहब ने क्या कहा था मेरे बारे में ?"

प्रश्न-भरी निगाहों से दीनदयाल अपने मित्र की ओर देखते हैं। भगवतीलाल फिर कहना शुरू करते हैं, "कहा था—भगवतीलाल की सर्विस-शीट देखने से पता लगा है कि नौकरी के इतने लंबे अरसे में इन्हें कोई भी चार्ज-शीट या चेतावनी नहीं मिली। यह इस बात का द्योतक है कि भगवतीलाल अपने काम के प्रति कितने ईमानदार रहे।

"दयाल, उन का एक-एक शब्द मुझे अच्छी तरह याद है और रहेगा। भला तुम ही बताओ, आज तक किसी और के अवकाश-ग्रहण पर किसी भी डिप्टी ने ऐसे शब्द कहे हैं ?"

"हूं !" बाबू दीनदयालजी उन से सहमत हो कर गरदन हिलाते हैं।

"दयाल ! केवल 'हूं' मत कहो, सच बताओ !"

दीनदयाल कहते हैं, "नहीं, नहीं, भगवती ! यह तो हकीकत है। उस दिन मांगीलाल मिले थे, कह रहे थे कि जिस जगह पर भगवतीलाल काम करते थे, उस पर अब एक नया क्लर्क आया है। काम आता ही नहीं उसे। सारा काम 'एरियर्स' में पड़ा है। हेड-क्लर्क खुद परेशानी में पड़ गया है।"

भगवतीलाल का अंग-अंग फड़क उठता है, "है न ? मैं तो पहले ही कहता था कि काम बहुत 'हेवी' है, लेकिन कोई सुनता ही नहीं था। दयाल ! तुम ने मेरे खिलाफ कभी कोई शिकायत सुनी थी ? काम हमेशा 'अप-टु-डेट'। क्या मजाल कि एक भी कागज 'एरियर्स' में रह जाये ! नहीं ! और देखो, जो भी खराब स्टेशन थे, उन पर कितनी जल्दी 'एक्शन' लिया था मैं ने। आजकल के ये छोकरे क्या काम कर पायेंगे ! मुझे तो डर है कि किसी दिन रेलवे का काम ही बंद न हो जाये ! क्यों ?"

"हूं !" दीनदयाल फिर वही संक्षिप्त उत्तर देते हैं।

भगवतीलाल का ध्यान इस 'हूं' की तरफ नहीं जाता। उन्हें पुरानी बातें याद आने लगती हैं। कुलकर्णी और वेल्स आपस में फुस-फुस करते थे। कुलकर्णी कहता था, "वेल्स ! जिस दिन भगवतीलाल की मृत्यु होगी, उस दिन मैं इस हाल में से अपनी बदली करवा दूंगा।"

वेल्स आश्चर्य से पूछता, "क्यों ?"

खी-खी कर कुलकर्णी हंस देता और कहता, "मरने के बाद भगवतीलाल की आत्मा निश्चय ही इस हाल में भटकती रहेगी। तब कभी तो आवाज आयेगी—चपरासी ! मेरी वह फाइल टाइप में दे आये ? कभी आवाज आयेगी, मांगीलाल, तुम ने अपना मार्च का एकाउंट क्लोज कर दिया ? और कभी आवाज आयेगी . . ." इस पर और क्लर्क हंस पड़ते। भगवतीलाल चुपचाप सब सुन लेते। उन की चुप्पी का लाभ उठा कर एक छोकरा-सा नया क्लर्क भी कह उठता —"भई, अपने को तो अभी पैंतीस साल नौकरी करनी है, इसलिए हम

तो धीरे-धीरे काम करेंगे। इस बूढ़े की नौकरी दो-चार साल बाकी होगी, इसीलिए जल्दी-जल्दी काम करता रहता है।"

इस पर कुलकर्णी कह उठता, "अरे, पागल है क्या? यह बात नहीं है! भगवतीलालजी को 'क्रेडिट-एन्ट्री' लेनी होगी। तभी . . ."

कभी-कभी अरो भगवतीलाल से कह देते, "भगवतीलालजी! अगर आप काम नहीं करेंगे, तो रेलवे का काम रुक जायेगा न?" और कुलकर्णी कह उठता, "हां भैया! रेलवे इन्हीं के नाम पर ही तो चल रही है।"

बेचारे भगवतीलाल चुपचाप सब सह लेते। खैर! अब तो वे दिन ही बीत गये और अब तो वे पेंशन पर हैं।

लेकिन आज दीनदयाल ने यह अजीब बात बतायी है। नये क्लर्क ने उन के काम की यह हालत बना दी है! नये क्लर्क से काम होगा भी नहीं। अमुक स्टेशन एक नंबर का चोर स्टेशन है। नये क्लर्क को क्या पता कि स्टेशन-मास्टर किस मद में पैसे गोल कर जायेगा! हाय, अब क्या होगा?

काफी देर तक भगवतीलाल को खामोश देख कर दीनदयाल पूछते हैं, "भगवती! क्या सोच रहे हो?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं," भगवतीलाल फीकी मुसकान के साथ कहते हैं।

"नहीं भगवती! यह झूठ है। तुम ऐसे चुप-चाप चल ही नहीं सकते।"

"दयाल, मेरी जगह के काम की बात तुम्हें मागीलाल ने ही बतायी थी न?"

"हां!"

"मागीलाल का घर कहां है?"

"पता नहीं!"

भगवतीलाल फिर असमंजस में पड़ जाते हैं। मागीलाल के घर का पता अगर मालूम होता, तो वे उन से जा कर पूछ तो लेते। अब क्या होगा?

हॉस्टल रोड आ गयी है। दीनदयाल कहते हैं, "अच्छा! अब चलें। कल फिर मिलेंगे।" वे घड़ी पर नजर डाल कर आगे कहते हैं, "भगवती! जल्दी घर जाना! आज बहुत देर हो गयी है। दस तो यहीं बज गये।" पर भगवतीलाल का ध्यान कहीं और है। वे चुपचाप अपने घर की तरफ जाने लगते हैं।

भगवतीलाल देखते हैं कि उन की पत्नी दहलीज के पास प्रतीक्षा में बैठी है। वे चुपचाप अंदर चले जाते हैं। पत्नी पूछती है, "आज इतनी देर क्यों कर दी?"

"हो गयी," भगवतीलाल रूखा-सा उत्तर देते हैं।

"खाना बर्फ हो गया है और तुम्हें घूमने से फुरसत नहीं। जब से रिटायर हुए हो, तब से और भी मगज फिर गया है।"

भगवतीलाल को ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं। इसीलिए बगीचे से जल्दी नहीं लौटना चाहते।

पत्नी फिर कहती है, "इस से तो नौकरी पर अच्छे थे। कम से कम

शाम को घर तो बैठते थे। अब तो बस दिन भर सोना, शाम को बगीचे जाना और रात तक वहीं बैठे रहना।''

इस रटे हुए प्रति दिन के वाक्य पर भगवतीलाल ध्यान नहीं देते, इतना ही कहते हैं, ''खाना परस ला !''

जैसे-तैसे दो-चार कौर खा कर भगवतीलाल उठ जाते हैं। पत्नी पूछती है, ''ऐसे गुमसुम क्यों बैठे हो ? खाया भी कुछ नहीं। बात क्या हो गयी ?''

''कुछ नहीं।''

''कुछ तो जरूर है। दीनदयाल से लड़ाई हुई है क्या ?''

''नहीं, नहीं, कुछ नहीं,'' भगवती-लाल तंग आ कर कहते हैं।

पत्नी नर्मी से पूछती है, ''तुम्हें मेरी कसम है। सच बताओ !''

एक ठंडी आह भर कर भगवती-लाल कहते हैं, ''क्या बताऊं ! मैं जहां काम करता था न, वहां एक नया क्लर्क आ गया है। काम का सत्यानाश कर दिया है उस ने ''

पत्नी बात काटती है, ''हो जाये सत्यानाश, अपनी बला से ! तुम्हारा अब क्या जाता है ?''

ये बातें भगवतीलाल को अच्छी नहीं लगतीं। वे मुंह फेर लेते हैं। फिर बिस्तर पर सीधे लेट जाते हैं। टांगें सीधी करके कुछ सोचने लगते हैं। फिर आंखें बंद कर सोने की कोशिश करते हैं, लेकिन नींद नहीं आती। पासवाले घर से रेडियो की आवाज आती है। भगवतीलाल गुस्से से बुदबुदाते हैं, ''कमबख्त दिन-रात रेडियो बजाते रहते हैं।''

पत्नी कहती है, ''हमेशा ही बजाते हैं। आज कोई नयी बात है जो गुस्सा हो रहे हो।'' भगवतीलाल कोई जवाब नहीं देते। थोड़ी देर बाद फिर पूछते हैं, ''धोबिन मेरी गुलाबी पगड़ी दे गयी थी ?''

''हां, क्यों ?''

''सुबह चाहिये।''

''क्यों ?''

''दफ्तर जाऊंगा।''

''क्यों ?''

''बस कह तो दिया कि जाऊंगा,'' भगवतीलाल झल्ला कर कहते हैं। उन्हें गुस्से में देख कर पत्नी दूसरे कमरे में चली जाती है।

सुबह होती है। भगवतीलाल महसूस करते हैं कि रात उन्होंने आंखों में ही काट दी है।

दोपहर को खाना खा कर, गुलाबी पगड़ी बांध कर वे दफ्तर की ओर जाते हैं—सीधे उसी हाल की तरफ जहां दो-तीन महीने पहले वे काम करते थे। दूसरे क्लर्क भगवतीलाल की आवभगत करते हैं। सब से वे मुसकरा कर नमस्ते करते हैं। फिर हेड-क्लर्क के पास जाते हैं। हेड-क्लर्क कुरसी खींच कर उन्हें पास बैठने को कहता है। शिष्टाचार के नाते पूछता है, ''कहिये भगवतीलाल-जी ! मजे में तो हैं न ?''

''हां, हां, बस दया है,'' भगवती-लाल फीकी मुसकराहट से कहते हैं।

''अरे बाबा, हम बच्चों की क्या दया होगी ! दया तो आप लोगों की होनी चाहिये।''

भगवतीलाल बात का रुख बदल देते हैं, "मांगीलालजी नहीं दीख रहे हैं! क्या वे आज दफ्तर नहीं आये?"

"नहीं! उन की लड़की की शादी है। इसलिए १५ दिन की छुट्टी पर हैं।"

वे मन ही मन सोचते हैं—'कैसा अजीब आदमी है! असली बात पर क्यों नहीं आता? मुझ से यह क्यों नहीं कहता कि आप की जगह जो नया छोकरा आया है वह काम ही नहीं करता, 'एरियर्स' चढ़ गये हैं; आप थोड़ी मदद कर सकें तो . . .'

लेकिन हेड-क्लर्क ऐसा कुछ नहीं कहता, इसलिए भगवतीलाल खुद ही बात छेड़ते हैं, "उस दिन कोई कह रहा था कि मेरी जगह कोई नया क्लर्क आया है, जिस ने सब काम गड़-बड़ कर दिया है। क्या यह सच . . ."

बात बीच में ही काट कर हेड-क्लर्क कहता है, "हां, लेकिन सब ठीक हो जायेगा। नया-नया आदमी है। शुरू में तो हरेक को कठिनाई होती ही है।"

भगवतीलाल को यह उत्तर अच्छा नहीं लगता। उन्होंने सोचा था कि हेड-क्लर्क कहेगा—अजी साहब, क्या बतायें! आप के बिना तो अंधेरा है।

लेकिन इस का जवाब तो अजीब है। मेरे काम की इसे परवाह ही नहीं है।

आखिर भगवतीलाल खुद ही हेड-क्लर्क से कहते हैं, "हां, हां, नये आदमी को तो कठिनाई होती ही है। लेकिन मेरे कहने का मतलब था कि अगर कोई ऐसी बात हो तो मैं मदद करने को तैयार हूं। वैसे दिन भर घर में फालतू बैठा रहता हूं। यहां आने से दिल भी बहल जायेगा और आप का काम भी हो जायेगा। क्यों?"

व्यंग्य-भरी मुसकराहट के साथ हेड-क्लर्क कहता है, "भगवतीलालजी! आप की उम्र आराम करने की है। क्यों जबरदस्ती झंझट मोल लेते हैं? रेलवे का काम तो चलता ही रहेगा।"

भगवतीलाल को हेड-क्लर्क का यह जवाब भी अच्छा नहीं लगता। लेकिन उसे खुश करने के लिए कहते हैं, "हां जी, काम तो चलता ही रहेगा . . अच्छा अब चलूं, एक दो दोस्तों से भी मिल लूं।"

हेड-क्लर्क कुरसी से उठ कर हाथ मिलाता है। भगवतीलाल के कदम खुद-ब-खुद अपनी मेज की ओर बढ़ जाते हैं। देखते हैं, नया क्लर्क सीट पर नहीं है। मेज पर कागज बिखरे हुए हैं। जी करता है कि कुरसी पर बैठ कर बिखरे हुए कागज समेट कर अलग अलग फाइलों में ठीक से रख दें। लेकिन अचानक दृष्टि सामने बैठे कुलकर्णी पर पड़ती है। सोचते हैं—यह ताने मारेगा।

एक क्षण को भगवतीलाल कागजों को घूर कर देखते हैं, और दूसरे ही क्षण उन के कदम जल्दी-जल्दी बाहर की ओर चलने लगते हैं।

बाहर एक कोने में खड़े हो कर वे दफ्तर की तरफ देखने लगते हैं। उन की आंखों में आंसू छलक आते हैं। दृष्टि में दफ्तर धुंधला जाता है।

शिकार-कथा

बिसनलाल शर्मा

लगभग ३१ साल पहले की घटना है। दिसंबर का महीना था, शाम हो चुकी थी। प्रसिद्ध शिकारी दयाशंकरजी अपने साथी सहित वन-ग्राम सावली पहुंचे। वहां के आदिवासी उन की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। आदिवासियों ने उन्हें घेर कर जानवरों के रहने का स्थान बताना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने घने जंगल का एक उपयुक्त स्थल, बेलोरारोज, निश्चित कर सुबह वहां जाने का निर्णय किया।

सवेरे मुर्गे की पहली बांग पर ही आदिवासियों ने आ कर उन्हें जगा दिया। दयाशंकरजी उन के साथ जंगल की ओर चल पड़े। उन के पास ३५ विंचेस्टर राइफल थी और उन का साथी लक्ष्मण १२ बोर की दुनाली लिये हुए था। घने जंगल के बीच में से गुजरते हुए वे काफी सतर्क और सावधान थे। न जाने कब नालों के कगार या घनी झाड़ियों की ओट से निकल कर कोई जानवर उन पर

हमला कर बैठें। उनका यह भय अस्वाभाविक नहीं था क्योंकि यह जंगल शेर, तेंदुए, भालू, जंगली सुअर आदि के लिए प्रसिद्ध था और लापरवाही से गुजरने वाले कई व्यक्तियों को वे मार चुके थे।

एक पहाड़ी को पार करते समय दयाशंकरजी ने देखा कि नीचे की ओर पके लाल-पीले बेरों की घनी झाड़ियां थीं। पास ही बहते एक नाले के पास एक पानी-भरा गड्ढा था जिस के आसपास काफी कीचड़ थी। आदिवासियों के जोर देने पर वे वहां रुक कर जानवरों की प्रतीक्षा करने लगे।

दयाशंकरजी हवा के रुख को ध्यान में रखते हुए बेरों की झाड़ियों और उस गड्ढे से करीब १२० गज दूर पहाड़ी की ढाल पर अपने साथियों सहित एक बड़ी चट्टान के पीछे छिप कर बैठ गये। इस स्थान से एक दूसरा भी पानी से भरा गड्ढा दिखायी देता था जो पहले गड्ढे से लगभग २०० गज की दूरी पर था। आठ बजे का समय था। चारों ओर दिन का प्रकाश फैल चुका था और ठंड भी कम होने लगी थी। तभी उन्होंने देखा कि बेरों की झाड़ियों में हलचल होने लगी और एक भूरे-से सुअर की झलक उन्हें दिखायी दी। उसी समय बेर चबाने की आवाज भी सुनायी देने लगी। थोड़ी ही देर में वह इक्कड़ सुअर उन्हें साफ दिखायी देने लगा। झाड़ियों के नीचे बिखरे बेर वह मजे से चबा रहा था।

उसी समय एक रीछ इन्हीं झाड़ियों के बेर खाने के लिए आता हुआ दिखायी दिया। उसे आते देख उस सूअर के क्रोध का ठिकाना न रहा। शायद सारे बेरों पर वह अपना ही अधिकार समझता था। पीठ के बालों और कानों को खड़ा कर सूअर जोर से गुर्राया। सूअर की गुर्राहट सुनते ही रीछ ठिठक कर पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। वापस लौट जाना रीछ को पसंद न था अतः वह भी तैश में आ कर सीधा सूअर की ओर बढ़ा। रीछ को आगे बढ़ते देख सूअर ने दौड़ कर उस पर हमला किया। रीछ बड़ी कुशलता से उस का आक्रमण बचा गया और उस पर अपने अगले पंजे से एक प्रहार किया। रीछ के सुन्दर लंबे नखों ने सूअर के चमड़े को फाड़ कर गहरा जख्म कर दिया। इस से सूअर का क्रोध और भी भड़क उठा। घाव लगते ही सूअर तुरंत वापस लौट कर गुर्राता हुआ रीछ पर टूट पड़ा। रीछ सूअर का यह जोरदार वार न बचा पाया। रीछ की कमर के पास से पुट्ठे तक का पिछला हिस्सा सूअर के पैने दांत की एक ही चोट से चिर गया। रीछ के लंबे-लंबे बाल भी सूअर के सधे हुए वार से उस के शरीर की रक्षा न कर पाये। इस घातक चोट से रीछ का साहस जाता रहा और वह चीत्कार करके तीन ही पैरों से लंगड़ाता हुआ भाग निकला।

सूअर के पुट्ठे पर लगे जख्म से खून बह रहा था। अपने घाव की पीड़ा कम करने के लिए तेजी से आ कर वह गड्ढे में कूद पड़ा। किन्तु न जाने क्यों उसी समय वह बिदक कर गड्ढे से उछला और सरपट भाग निकला। बेर की झाड़ियों के दूसरी ओर कार्मोनिया की कंटीली झाड़ियां थीं। सूअर उसी ओर बढ़ रहा था। आगे के दृश्य को देख कर तो दया-शंकरजी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें कल्पना भी न थी कि सूअर कार्मोनिया की जिस झाड़ी की ओर भागा जा रहा है, वहां एक बड़ा नर तेंदुआ बैठा होगा। गुर्राते हुए सूअर को तेजी से अपनी ओर आते देख कर तेंदुए को लगा कि वह आक्रमण करने आ रहा है। तत्काल तेंदुए ने दहाड़ कर उस पर लगभग सात गज की दूरी से ही छलांग लगा दी।

जिस ने इक्कड़ सूअर को अपने प्रतिद्वंद्वी से वीरतापूर्वक भिड़ते देखा है, वह उसे सर्वाधिक फुरतीले पशु की संज्ञा देने में जरा भी नहीं हिचक सकता। तेंदुए की सधी हुई छलांग से बच पाना जानवरों के लिए असंभव-सा होता है। लेकिन दयाशंकर-जी ने विस्मय से देखा कि तेंदुए का आघात होने के पूर्व ही सूअर ने वार तो बचा ही लिया, उस के पेट की आंतें भी अपने एक ही वार से बाहर निकाल दीं। पेट की आंतें लटकने पर भी तेंदुआ सूअर पर फिर लपका और कुछ ही क्षणों में सूअर मरणा-सन्न हो गया। तेंदुए ने अपने नुकीले नखों को पंजों से बाहर निकाल कर उन के प्रहार से सूअर की धज्जियां उड़ा डालीं। इतना करने के बाद तेंदुए ने अपने जबड़ों में

उस की गरदन दबा कर उसे जोर-दार झटका दिया। इस से सूअर लगभग दो गज दूर जा गिरा।

नीचे पड़ा तड़पता हुआ क्रोधी सूअर आखिरी सांसें गिन रहा था लेकिन तेंदुआ तो अंत तक उस की बोटियां नोचने पर तुला हुआ था। अब दया-शंकरजी तेंदुए का निशाना लेने के लिए झाड़ियों की ओट से बाहर निकले और धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। अपने साथियों को उन्होंने वहीं बैठे रहने का संकेत किया ताकि तनिक भी आहट न होने पाये। वे पहाड़ी के नीचे कुछ ही दूर उतर पाये थे कि अत्यंत सावधानी के बावजूद एक पत्थर लुढ़क गया। तेंदुए ने तुरंत आवाज की ओर देखा। दयाशंकरजी को देखते ही तेंदुआ उन पर झपटा। तेंदुए के झाड़ियों की ओट से बाहर मैदान में निकलते ही दयाशंकरजी ने उस के सीने का निशाना ले कर गोली चला दी। एक ही गोली से वह तेंदुआ निर्जीव हो गिर पड़ा।

नाले के उस बड़े गड्ढे में हमेशा झरने का पानी भरा रहता था। वहां से सूअर के अचानक बिदक कर भागने का कारण जानने के लिए त्रिवेदीजी उस गड्ढे के पास पहुंचे। गड्ढे में एक डेढ फुट लंबी मछली तैर रही थी। सूअर के अचानक कीचड़ में आने से वह संभवत: उछली होगी और छपाक की आवाज सुन कर पहले से ही घबराया हुआ सूअर बौखला गया होगा। फिर कोई नयी आपत्ति आयी समझ कर वह भाग निकला होगा।

अब जख्मी रीछ को मारने के लिए उस के टपके खून के सहारे दयाशंकर-जी लक्ष्मण सहित सावधानीपूर्वक आगे बढ़ने लगे। दोनों व्यक्ति अपनी-अपनी बंदूकें भरे प्रत्येक घनी झाड़ी और बड़े पत्थरों का निरीक्षण करते हुए बढ़ रहे थे। एक पहाड़ी की तलहटी के पास बहते नाले की नरम मिट्टी और रेत पर उस रीछ के ताजे पदचिह्न मिले। नाले के किनारे बिखरी पानी की बूंदें स्पष्ट बता रही थीं कि रीछ कुछ देर पहले ही पानी पी कर गया है। फिर उस रीछ के पदचिह्न पहाड़ी की ओर चले गये थे। वह पहाड़ी विशाल पत्थरों और सघन छायादार झाड़ियों से भरी थी। अब समस्या यह थी कि कैसे अपने को सुरक्षित रखते हुए रीछ को खोजा जाये और उस पर ठीक निशाना लगाया जाये, जो कि बड़े-बड़े पत्थरों तथा घनी झाड़ियों के कारण मुश्किल था। आहट पाते ही घायल रीछ के हमला करने में शक न था।

योजना बनायी गयी कि लक्ष्मण पीछे से चक्कर काट कर पहाड़ी के ऊपर पहुंचे और फिर जोरों से बोलता हुआ दयाशंकरजी की तरफ नीचे आये। साथ ही वह बड़े-बड़े पत्थरों पर चढ कर रीछ की खोज भी करता जाये। इसी बीच दया-शंकरजी पहाड़ी के ऊपर लक्ष्मण की तरफ चलें। यदि रीछ लक्ष्मण पर झपटे तो वह अथवा दयाशंकरजी उस पर गोली चला दें।

योजनानुसार लक्ष्मण पहाड़ी के ऊपर जा कर जोरों से बोलता हुआ नीचे उतरने लगा। लक्ष्मण लगभग

आधी पहाडी तक पत्थरों पर चढते-उतरते चला गया। दयाशंकरजी से वह अभी करीब ६० गज की दूरी पर था। जब लक्ष्मण एक पत्थर से उतर कर फिर लगभग २० कदम सामने के पत्थर पर चढ़ा तो उसे पास ही मनुष्य की कराह से मिलती-जुलती धीमी धीमी कराहने की आवाज सुनायी पड़ी। वह चौकन्ना हो कर अपनी भरी हुई बंदूक के घोडे चढा कर दो-तीन कदम आगे बढ़ कर देखने लगा कि यह आवाज किस स्थान से आ रही है। तभी सहसा सारी पहाड़ी रीछ की भयंकर गर्जना से गूंज उठी। लक्ष्मण ने देखा कि एक काली छाया उस की ओर झपटना चाहती है। लक्ष्मण फुरती से दौड कर उस बडे पत्थर पर चढ गया लेकिन घबराहट में उस की बंदूक नीचे पत्थर से टिकी रह गयी।

लक्ष्मण पत्थर पर चढ़ ही चुका था। एक ऊंची चट्टान पर चढ़े दयाशंकरजी ने जब देखा कि वह घायल रीछ अपने टूटे पैर वाले पिछले धड को अगले पैरों से घसीटता हुआ तेजी से लक्ष्मण के पत्थर की ओर बढ़ रहा है तो वे शीघ्रता से उस ओर बढने लगे। दयाशंकरजी रीछ से लगभग ४० गज की दूरी पर पडे एक बड़े पत्थर पर चढ कर आगे का दृश्य देखने लगे। वह लंगडा रीछ अपने पिछले पैरों पर किसी तरह कठिनाई से अपना संतुलन बनाये सामने के पंजों के सहारे पत्थर को पकडे क्रोध से गुर्रा रहा था। उस की नाक और मुंह से फेन निकलने लगा था।

अब रीछ लक्ष्मण को न पाने के क्रोध में उस विशाल पत्थर के चारों ओर चक्कर काटने लगा था। अचानक रीछ की दृष्टि लक्ष्मण की बंदूक पर पडी। उस ने बंदूक को गुस्से में चबाना शुरू कर दिया। एकाएक रीछ से बंदूक का घोडा दब गया और तेज आवाज के साथ एल. जी. के छर्रे पत्थर से फिसलते हुए बिखर गये। लक्ष्मण डर कर पत्थर पर चिपक गया। रीछ बंदूक के धक्के से पहाड़ी के ढाल पर लुढ़कने लगा और बंदूक भी एक ओर दूर जा गिरी। रीछ थोडा ही लुढ़का था कि नीचे की झाड़ियों में फंस गया। अब वह भयग्रस्त हो बिना सोचे-समझे भाग निकला। रीछ जैसे ही सामने आया, दयाशंकरजी ने उस के कंधे को लक्ष्य कर गोली चला दी। गोली लगते ही रीछ आखिरी बार गुर्रा कर एक पत्थर के पास लुढक गया।

डाक्टर : तो तुम्हारी स्मरण-शक्ति सुधर रही है ?
बांकेलाल : जी हां।
डाक्टर : अब तुम्हें चीजें याद रहती हैं ?
बांकेलाल : कभी-कभी मुझे याद आता है कि मैं कुछ भूल गया हूं, पर यह याद नहीं आता कि क्या भूल गया हूं।

भारतीय संगीत के पंडितों में बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर का नाम प्रथम श्रेणी में आता है। उन का जन्म भाद्रपद वदी ७ शाके १७७१ को महाराष्ट्र में हुआ था। ग्वालियर घराने की गायकी का महाराष्ट्र में प्रसार सर्वप्रथम उन्होंने ही किया। तप और साधना द्वारा अर्जित गान-विद्या को उन्होंने स्वयं तक ही सीमित न रखा, वरन शिष्यों द्वारा उस का अधिकाधिक प्रसार कराया।

बुवा का प्रारम्भिक जीवन बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण रहा। बाल्यावस्था में ही उन के सिर से मां की छाया उठ गयी और अपने पिता रामकृष्ण भट के साथ भी वे कम ही दिन रह पाये। पिता को थोड़ी संगीत की जानकारी थी, जो उन्होंने बुवा को प्रारम्भिक ज्ञान के रूप में दी। अर्थाभाव के कारण उन के पिता को नौकरी करनी पड़ी और बाध्य हो कर बुवा को अपने काका के आश्रय में रहना पड़ा।

बुवा के काका की भिक्षावृत्ति होने के कारण उन्हें मंगल-अमंगल सभी अवसरों पर दूसरों के यहां जाना पड़ता था। सम्पन्न परिवारों में छोटे बच्चों को साथ ले जाने से अधिक दक्षिणा मिलने की आशा रहती थी। इसी कारण भिक्षावृत्ति के लिए कुछ श्लोकों को रटाने के अलावा उन्हें अन्य किसी प्रकार की शिक्षा से वंचित रखा गया। बुवा जन्म से ही कुशाग्रबुद्धि और जिज्ञासु थे। जब भी बड़ों के सामने वे अपनी महत्वाकांक्षा प्रकट करते, उन्हें अपशब्द ही सुनने पड़ते—"तू मूर्ख है, चुपचाप भिक्षा

भाग और बकवास मत कर !"

उन की आत्मा भिक्षावृत्ति स्वीकार नहीं करती थी। उन्हें यही अनुभव होता कि कोई बड़ा काम करने के लिए उन्होंने जन्म लिया है। स्वाभिमानी और संवेदनशील होने के कारण उन्हें जरा-सा अपमान भी असह्य होता। अन्ततः एक दिन दक्षिणा लाने के लिए जब काका ने कहा तो उन्होंने विरोध किया, "भिक्षा के लिए हाथ फैलाने को मैं पैदा नहीं हुआ हूं।"

बुवा उत्तर सुन कर काका क्रोध में पागल हो उठे और उन्हें डंडे से पीट कर अधमरा कर दिया। फिर गरज कर बोले, "अरे मूर्ख, तुझे इतना अभिमान ! ऐसी अकड़ तो विद्वानों को ही शोभा देती है।"

काका के इन तीखे प्रहारों से बुवा का स्वाभिमान जाग उठा। विद्यार्जन कर विद्वान बनने की उन की उत्कंठा तीव्र हो उठी और एक दिन वे घर छोड़ कर निकल पड़े।

अब कहां जायें, क्या करें आदि प्रश्न बुवा के सामने थे। उन दिनों थोड़ा-बहुत गा लेने वाले लड़कों को नाटक-कम्पनियों में काम मिल जाता था।

बुवा हरिदास म्हैसालकर के पास गये और अपनी कहानी सुनायी। बुवा के पिता और हरिदासजी का परस्पर बड़ा स्नेह था। हरिदासजी ने बालक की प्रतिभा को पहचाना। ऐसा प्रतिभासम्पन्न बालक नाटक कम्पनियों में झांझ बजा कर उम्र गुजार दे, यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। उन्होंने बुवा के पिता को पत्र लिख कर संगीत सिखाने का सुझाव दिया।

बुवा के पिता ने कई बड़े लोगों की सिफारिश करा कर उन्हें प्रख्यात गायक भाउ बुवा कागवाडकर के पास रख दिया, किन्तु उन के दुर्भाग्य का अन्त अभी नहीं हुआ था। एक दिन गुरु सेवा में त्रुटि हो जाने पर गुरु का शाप मिला, "तू संगीत नहीं सीख सकेगा, और मैं तुझे सिखाऊंगा भी नहीं।" उस समय बुवा सिर्फ पंद्रह साल के थे। फिर उन के सामने एक समस्या पैदा हो गयी। भटकते हुए उन्हें फिर उसी काका की शरण में इचलकरंजी आना पड़ा। विद्वान बनने की प्रतिज्ञा ले कर घर छोड़ा था उन्होंने, पर दैव ने यों ही वापस लौटा दिया। "आ गये दिग्विजयी !" "इस विद्वान को देखो !" आदि ताने सुनने को मिले। बुवा के लिए यह सब असह्य हो उठा।

सच्ची लगन हो तो ईश्वर भी सहायता करता है। एक दिन गांव में परमहंस अण्णा बुवा घूमते हुए आ निकले। गांव के लड़कों ने उन्हें घेर लिया। वे कभी बोलते न थे, पर उस दिन वे बालकृष्ण बुवा से चिढ़ कर बोले, "यहां क्यों रोता है ? लश्कर जा, ईश्वर वहां बैठा तेरा तम्बूरा बजा रहा है, चला जा यहां से।"

परमहंस के शब्द इस के पूर्व भी कई बार सत्य सिद्ध हो चुके थे। बुवा लश्कर (ग्वालियर) चल पड़े। उन दिनों ग्वालियर पहुंचने के मार्ग आज-जैसे न थे। भूख-प्यास की यातना सहते हुए पैदल चल कर वे ग्वालियर पहुंचे।

पहले कुछ दिन वे बाबा दीक्षित के पास रहे। बाबा दीक्षित श्रीगोंधा के रहने वाले थे। उन्हें हद्दू-हस्सू खां से शिक्षा मिली थी और वे उच्चकोटि के गायक थे। जब बाबा काशी जाने लगे तो उन्होंने बालकृष्ण बुवा को देवजी बुवा के पास भेज दिया। वे राज-दरबारी गायक थे। अतः बालकृष्ण बुवा राजाश्रय में रह कर संगीत सीखने लगे। धीरे-धीरे तीसरा वर्ष भी समाप्त होने को आया। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे अब उन की महत्वाकांक्षा अवश्य पूरी होगी। किन्तु, तभी देवजी बुवा स्वर्ग सिधार गये।

बाबा दीक्षित और देवजी बुवा के पास रह कर बालकृष्ण बुवा ने पांच साल तक संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। समारोहों में काम कर पैसे कमाने की क्षमता उन में आ गयी थी। पर बालकृष्ण बुवा इतने से संतुष्ट न हुए, क्योंकि उन्होंने 'विद्वान' होने के लिए गृह-त्याग किया था। उन्होंने सुना कि काशी में वासुदेव बुवा जोशी नामक एक सिद्ध गायक हैं। उन का शिष्यत्व प्राप्त करने को वे काशी पहुंचे, किन्तु बुवा जोशी ने उन की याचना ठुकरा दी। फिर भी बालकृष्ण बुवा ने हिम्मत न हारी। उन के निश्चय में और दृढ़ता आ गयी। भटकते-भटकते वे एक शिवालय में जा पहुंचे और शिव-लिंग के सामने निराहार रह कर भगवान शंकर की उपासना प्रारम्भ कर दी। भूख से बिलखने पर बिल्व-पत्र का रस निकाल कर पीने लगे। इस तरह दो सप्ताह गुजर गये। जब रस निकालने की भी शक्ति शरीर में न रही, तो सीधे पत्ते चबा कर ही रहने लगे। एक दिन उन्हें लगा कि गंगा-तट पर खड़े हो कर जोशी बुवा पुकार रहे हैं, "क्यों रे बालकृष्ण, सो गया क्या? चल, गाने चल, समय न गंवा।" बुवा जैसे सोते से चौंक कर उठ बैठे। तट पर जा कर देखा—जोशी बुवा खड़े थे। उन्होंने दोनों हाथ फैला कर बालकृष्ण बुवा को हृदय से लगा लिया और बोले, "बालकृष्ण, तू आ गया। मेरी आंखें तुझे ढूंढ रही थीं। तेरे चले जाने के बाद से मैं बेचैन रहा। किन्तु, मुझे विश्वास था कि तू अवश्य वापस आयेगा।"

श्रेष्ठ गुरु और निष्ठावान शिष्य एक-दूसरे से मिले। बुवा की तपस्या पूरी होने को आयी। निरंतर नौ

"माई, यह राशन का आटा तो नहीं है?"

साल तक गुरु-सेवा कर के बुवा ने अभ्यास पूरा कर लिया। गुरु का आशीर्वाद प्राप्त कर बुवा ने उत्तर की ओर प्रस्थान किया। प्रसिद्ध नगरों में जा कर उन्होंने बड़े-बड़े जलसों में भाग लिया और बड़े-बड़े गायकों के साथ गा कर गौरव प्राप्त किया। जयपुर में प्रसिद्ध गायक रहमत खां की बराबरी पर गा कर वे दरबारी गवैयों द्वारा सम्मानित हुए।

बम्बई में उन की लोकप्रियता चोटी पर पहुंच गयी। यहीं एक बार सातारकर महाराज से उन की भेंट हुई। महाराज उन्हें दरबारी गायक बना कर अपने साथ ले गये। महाराज के हृदय में बुवा के प्रति अगाध प्रेम था। उन के अनुरोध पर बुवा ने गृहस्थाश्रम स्वीकार कर लिया।

एक बार महाराज के साथ ही बुवा बम्बई लौटे। वहीं हस्सू खां के सुपुत्र महमद खां से मिल कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे उन्हीं के साथ बम्बई में रहने लगे। महमद खां से उन्हें प्रसिद्ध जबड़े की तान सीखनी थी।

एक दिन महमद खां कहने लगे, "मुझ पर बड़ा कर्ज हो गया है। आओ, हम लोग दौरे करें। तुम-जैसा सहयोगी पा कर कर्ज बहुत जल्दी उतर जायेगा।" बुवा को यह सुन कर बड़ी वेदना हुई कि एक अद्वितीय कलाकार भी कर्ज में डूबा है। उसी क्षण महाराज सातारकर के पास उन्होंने त्यागपत्र भेज दिया और महमद खां के साथ दौरे पर निकल पड़े। उन्होंने बहुत धन अर्जित किया, किन्तु उस धन-राशि में खुद हाथ न लगाया। महमद खां से अपनी इच्छा के अनुसार जबड़े की तान एवं और कई अच्छी चीजें सीख कर उन्हें काफी संतोष हुआ। लौटते समय वे मिरज में ठहर गये। अपने जीवन की एक साधना उन्होंने पूरी कर ली थी। किन्तु गुरु-आज्ञा के अनुसार भारतीय संगीत का प्रचार करना अभी बाकी था। उन्होंने मिरज में ही यह काम शुरू कर दिया।

अपने घर लौटने की इच्छा भी तीव्र हो चली थी और अब तो वे 'विद्वान' भी बन चुके थे। गायनाचार्य के नाम से उन की कीर्ति भारत-भर में फैल चुकी थी। जब वे इचलकरंजी लौटे तो वहां उन का भव्य स्वागत हुआ। संस्थानाधिपति श्रीमंत नारायण राव ने उन्हें अपने घर पर ठहराया।

बुवा के शिष्य भी उन की तरह महान संगीतज्ञ हुए—जैसे गांधर्व महाविद्यालय के संस्थापक पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, अंतु बुवा जोशी, नीलकंठ बुवा जंगम, वामनराव चाफेकर, यशवंत बुवा मिराशी आदि।

जीवन के अंतिम दिनों में बुवा को पुत्र-शोक-जैसा दारुण दुःख सहना पड़ा। परंतु अपने शिष्यों को पुत्रवत मानने वाले इस महापुरुष ने उस दुःख को भी सह लिया।

२५ फरवरी, १९२७ को इस महान संगीतज्ञ का स्वर्गवास हो गया। बुवा का जीवन एक प्रकाश-स्तंभ है, जो पीढ़ियों तक संगीत-साधकों का मार्गदर्शन करता रहेगा। ●

चल-विद्यालय : एक प्रयोग

○ सरोज मित्तल

हाल में अमरीका के भ्रमणकारी 'सात समुद्रों का विश्वविद्यालय' ने, जिस की स्थापना १९५९ में विलियम ह्यू ने अपने कुछ साथियों के सहयोग से की थी, २२,००० मील की समुद्री-यात्रा पूरी की है। ११० दिनों की इस यात्रा में २७० विद्यार्थियों और ४५ शिक्षकों को लिये हुए जहाज ने संसार के प्रमुख बन्दरगाहों का चक्कर लगाया। यद्यपि जहाज से चलते समय डेक पर पढ़ने-पढ़ाने में काफी असुविधा होती थी, तथापि यह यात्रा काफी शिक्षाप्रद रही। अब तक इस विश्वविद्यालय ने तीन अर्ध-वार्षिक पाठ्य-क्रमों का आयोजन किया है और अगले अक्तूबर तक इस की योजना चौथे पाठ्य क्रम को शुरू करने की है। इन पाठ्य-क्रमों में कला और विज्ञान के साथ ही नृत्य, कुश्ती, तैराकी आदि की भी शिक्षा दी जाती है। विश्वविद्यालय के डीन डाक्टर वुडरो सी ब्लिटन के अनुसार तैरते हुए विश्वविद्यालय का विचार उन्हें चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस से मिला था, जो ज्ञान-वृद्धि के लिए देश-विदेश भ्रमण को आवश्यक मानता था।

चल-विद्यालयों की परम्परा में अमरीका के उपर्युक्त विश्वविद्यालय ने एक नया अध्याय जोड़ दिया है। चल-विद्यालयों का उद्देश्य नवयुवकों में देश-सेवा तथा जीवन-संघर्ष में निराश न होने की भावना का विकास करना है।

जब इंगलैंड के लिए नाजी जहाजों

का खतरा बढ गया था, तो संकट की सूचना मिलते ही ब्रिटिश नौ-सैनिक बुरी तरह घबरा जाते थे। शत्रु के हाथों में न पडने के लिए वे आत्महत्या कर लेते थे। लारेन्स हाल्ट नामक एक व्यापारी ने इस स्थिति से छुटकारा पाने की ओर कदम बढाया। इसी समय संयोग से हाल्ट की मुलाकात कुर्त हान नामक एक प्रसिद्ध शिक्षक से हुई। कुर्त हान जरमनी के प्रसिद्ध सलेम विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। हिटलर का विरोध करने के कारण उन्हें इंगलैंड आ जाना पड़ा था। हाल्ट और हान दोनों के संयुक्त प्रयास का नतीजा था एवरडोवि का पानी पर तैरता विद्यालय। हाल्ट ने इस विद्यालय का उद्देश्य बताते हुए कहा था, "हम विद्यार्थियों को समुद्री-यात्रा का उतना अभ्यस्त नहीं बनाना चाहते, जितना कि समुद्र के द्वारा उन्हें जीवन की वास्तविक शिक्षा देना चाहते हैं।"

अपने ढंग का यह पहला विद्यालय था और इस के नतीजे आशा से अधिक उत्साहित करने वाले थे। इस से जो नवयुवक प्रशिक्षित हो कर निकले, वे अपने जीवन में बहुत सफल रहे। इस तरह जल्दी ही चल-विद्यालयों का विचार सारी दुनिया में फैल गया। इंगलैंड में ऐसे चार नये विद्यालय खोले गये। इन की सफलता ने प्रभावित हो कर हान ने जरमनी में भी ऐसे विद्यालय खोलने का निश्चय किया। उन्होंने ल्युबेक के पास विथेनहान में और बवेरियन आल्प्स में ये विद्यालय खोले। सन १९६१ में हालैंड में भी एक ऐसा विद्यालय खोला गया। अफ्रीका में भी ये विद्यालय लोकप्रिय हुए। अफ्रीका का पहला चल-विद्यालय केमरून्स में खोला गया। अब यह नाइजीरिया के एक प्रान्त में ले जाया गया है। इस के बाद तो दक्षिणी रोडेशिया, मलाया, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड ने भी चल-विद्यालय खोले।

कुर्त हान का कथन है, "हम विद्यार्थियों को निराशा से लड़ने की शिक्षा देते हैं।" अर्थात इस तरह की प्रत्यक्ष-शिक्षा से वे संघर्ष करना सीख जाते हैं, साथ ही साथ स्वयं पर अनुशासन करना भी। इन विद्यार्थियों के लिए शारीरिक रूप से बहुत स्वस्थ होना जरूरी नहीं है। अलग-अलग शारीरिक स्थिति के लड़के इन में शिक्षा पाते हैं और कठिन परिस्थितियों का सामना करना सीख जाते हैं। लंदन, हैम्बर्ग, एमस्टरडम और सिडनी के बहुत से लड़कों ने ऐसी यात्रा के दौरान अपने अनुमान से दस गुनी ज्यादा दूरी तक दौड लगायी है और तीन गुना ज्यादा बोझ उठाया है।

कई ऐसी घटनाएं घटी हैं, जिन से इन विद्यार्थियों के अद्भुत साहस का परिचय मिलता है। सन १९६३ का जनवरी महीना था। इंगलैंड में हेलवेलीन नामक ऊंचे पहाड से फिसल कर एक व्यक्ति सौ फुट नीचे गिर गया था। दोपहर के बाद दो व्यक्ति उधर से हो कर अल्सवाटर के चल-विद्यालय को देखने जा रहे

थे। उन लोगों ने उस आदमी को बेहोश पड़े देखा, पर किसी ने भी उसे अस्पताल पहुंचाने की हिम्मत न की। विद्यालय पहुंच कर उन लोगों ने उस बेहोश आदमी का जिक्र किया। तुरंत विद्यार्थियों तथा शिक्षकों का एक दल जरूरी सामानों से लैस हो कर हेलवेलीन की ओर रवाना हो गया। पहाड़ पर खून को भी जमा देने वाली सर्दी पड़ रही थी। तेज और सर्द हवा के झोंकों के साथ बर्फ उड़-उड़ कर कानों, आंखों तथा नाक में घुसी जा रही थी। किन्तु अद्भुत साहस का प्रदर्शन करते हुए वे लोग उस व्यक्ति के पास पहुंचे और उसे ठीक समय पर अस्पताल पहुंचा दिया। अगर थोड़ी और देर होती तो शायद उस आदमी को बचाना मुश्किल हो जाता। उन विद्यार्थियों में से कई ने तो उस से पहले कभी ऐसे बर्फीले पहाड़ देखे ही नहीं थे।

दुनिया के सभी चल-विद्यालयों का उद्देश्य तो एक ही है, किन्तु इन के पाठ्यक्रम अलग-अलग हैं। मलाया में विद्यार्थियों को घने जंगलों में ले जाया जाता है। केन्या में ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना सिखलाया जाता है। आस्ट्रेलिया के विद्यार्थी भ्रमण के दौरान जंगली झाड़ियों को काट कर रास्ता बनाते हैं। जो तैरना नहीं जानते, वे तैरना सीखते हैं। न्यूजीलैंड के विद्यार्थी अपने देश की ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ना सीखते हैं और भोजन प्राप्त करने के लिए मछलियां पकड़ते तथा जंगली सूअरों का शिकार करते हैं। स्काटलैंड के विद्यार्थी लगातार १२ दिन तक समुद्र में ३६० मील का चक्कर लगाते हैं। डच विद्यार्थियों के भ्रमण के कार्यक्रम में भोजन पकाना, नावें खेना, नक्शा पढ़ना आदि शामिल हैं। विकसित देशों के विद्यार्थी पुल बनाते हैं और गांवों में जा कर वहां के लोगों को सुन्दर मकान बनाना बतलाते हैं तथा स्वास्थ्य-केन्द्रों में मदद करते हैं। इस तरह ये चल-विद्यालय किसी न किसी रूप में समाज का कल्याण ही करते हैं।

यहां एक दो दिलचस्प एवं शिक्षाप्रद घटनाएं उल्लेखनीय हैं। न्यूकैसल गलस्टैंस के खेतों में फसल पकी हुई खड़ी थी। एकाएक मौसम खराब हो गया और लगा कि लहलहाती फसल मिट्टी में मिल जायेगी। तभी व्येसनहान के चल-विद्यालय के छात्रों का एक दल खेतों में जा पहुंचा। और उस ने रात-दिन एक करके सारी फसल काट ली और नुकसान होने से बचा लिया। इसी तरह एक बार जब आस्ट्रेलिया की हाक्सबरी नदी में भीषण बाढ़ आ गयी थी, तो वहां के चल-विद्यालयों के छात्रों ने बहुत संघर्ष के बाद खेतों को बचा लिया था।

किसी भी विद्यार्थी को तब तक अधिक साहसिक कार्यों में नहीं लगाया जाता, जब तक उसे विशेष प्रशिक्षण द्वारा खतरे का मुकाबला करने लायक नहीं बना दिया जाता। विशेष अनुभवी तथा योग्य शिक्षक ही इन विद्यालयों की गतिविधियों को संचालित करते हैं। एडिनबरा के ड्यूक

ने, जिन्होंने इस प्रकार के एक विद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त किया था, चल-विद्यालयों के बारे में कहा है, "इन के परिणामों के बारे में कभी कोई संदेह नहीं कर सकता, ये वास्तव में चमत्कारिक होते हैं। इन के द्वारा कम समय में ही नवयुवकों में जो परिवर्तन आता है, उस पर कोई जल्दी विश्वास नहीं कर सकता। उन की कूपमडूकता खत्म हो जाती है और वे जिन्दगी के वास्तविक महत्व को समझने लगते हैं।"

इन विद्यालयों द्वारा बाल-अपराधियों पर भी बहुत-से प्रयोग किये गये हैं। पहले-पहल इंगलैंड की बोर्स्टल नामक सस्था के कुछ बाल-अपराधियों को भ्रमण के लिए बाहर भेजा गया था। इस दौरान उन्हें बहुत-से महत्वपूर्ण काम सौंपे गये। अपराधियों की शक्ति का सदुपयोग किया गया और उन में उत्तरदायित्व तथा जीवन-सघर्ष करने की ऐसी तीव्र भावना का विकास किया गया कि वे अच्छे नागरिक बन कर ही लौटे।

इन विद्यालयों से एक प्रत्यक्ष लाभ यह भी है कि इन के विद्यार्थियों को विभिन्न देशों के रहन-सहन, सस्कृति, कला और धर्म आदि का भी प्रत्यक्ष अध्ययन करने का मौका मिलता है।

यह कितने दुख की बात है कि हमारे देश में चल-विद्यालय शुरु करने के बारे में अब तक कोई ध्यान नही दिया गया। यों यहां के कुछ विद्यालय कभी-कभी विद्यार्थियों को पिकनिक पर या श्रम-दान के लिए बाहर ले जाते हैं, किन्तु आवश्यकता है इस दिशा में व्यवस्थित योजना बना कर कुछ करने की। प्राय विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता की शिकायत की जाती है। शिक्षित-वर्ग की बेकारी की चर्चा बहुत गंभीरता से होती है। न सिर्फ विद्यार्थियों में वरन आम जनता में भी राष्ट्रीयता का अभाव बताया जाता है। इन बुराइयों को खत्म करने और राष्ट्र-निर्माण में मानव-शक्ति का उचित उपयोग करने के लिए हमें वर्तमान शिक्षा-पद्धति में काफी परिवर्तन लाने होंगे। हमें इस तरह की योजनाओं को अपनाना होगा, जिन से युवकों में भी उत्तरदायित्व तथा जीवन-संघर्ष करने की भावना का विकास हो सके।

दो व्यक्ति बंबई की किसी सड़क पर मिले। इन में से एक परदेशी था। परदेशी ने पूछा, "आप को पता है कि डाकखाना किधर है?"

"जी हां," दूसरे ने उत्तर दिया और आगे बढ़ गया। दस-पांच कदम चल कर वह रुका और मुड़ कर बोला, "क्या आप वहां जाना चाहते हैं?"

परदेशी ने तपाक से कहा, "जी नहीं।"

● तपनकुमार

सिवाय लिखता जायेगा और उस की हर किताब पूरी दुनिया में लोकप्रिय होगी। जैक ने अपने जीवनकाल में पचास से ज्यादा किताबें लिखीं। लूटमार के समय भी उस के जहाज की केबिन में कोई न कोई किताब जरूर मौजूद होती। मामूली कागज पर छपे हुए उन काले अक्षरों में जैक को न मालूम कैसा आकर्षण अनुभव होता था।

किसी ने उसे बताया कि सैन फ्रांसिस्को के अखबार 'द काल' ने एक कहानी प्रतियोगिता का आयोजन किया है और इस प्रतियोगिता में कोई भी नागरिक भाग ले सकता है। जैक ने सोचा कि क्यों न उन अनेक भयंकर अनुभवों में से किसी एक को कहानी का रूप दे कर लिख डाला जाये जिन का उस ने समुद्र की छाती रौंदते हुए सामना किया है। भयंकर समुद्री तूफान में एक बार जैक का जहाज फंस गया था। जहाज को बचाने के लिए कितनी परेशानी उठानी पड़ी और कितनी सूझबूझ का परिचय देना पड़ा — इस को विषय बनाते हुए जैक ने एक कहानी लिखी। यह सच्ची कहानी थी, इसलिए अत्यंत रोमांचक बनी।

'द काल' ने उस कहानी को २५ डालर का पहला इनाम दिया।

यहां से जैक लंडन के जीवन में क्रांतिकारी मोड़ आया। उस के भीतर द्वंद्व शुरू हुआ कि उसे समुद्र की लहरों की चुनौतियां स्वीकार करते हुए आजीवन जलदस्यु बने रहना चाहिये या एक लेखक के रूप में सम्मान कमाना चाहिये। जल-दस्यु के धंधे में भी धन की कमी तो नहीं थी, लेकिन सामाजिक सम्मान कहां से प्राप्त होता? जैक ने अपने भीतर झांक कर देखने की कोशिश की कि ऐसे सामाजिक सम्मान की उसे चाह है या नहीं। क्या सम्मान पाने से कहीं अधिक उत्तेजक समुद्र की छाती रौंदना और डाके डालना नहीं है?

इस द्वंद्व ने जैक लंडन का पीछा जीवन-पर्यन्त न छोड़ा। वह समाज में वापस आता, किताबें लिखता, छपवाता

और फिर एकाएक ही उस पर कोई जनून सवार हो जाता और वह समुद्र को रौंदने निकल पड़ता । उस ने न केवल समुद्री छापे मारे, बल्कि घोड़े की पीठ पर सवार हो कर स्थल पर भी धनवानों की नाक में दम कर दिया।

एक बार जैक को पांच चीनी डकैतों का सामना करना पड़ा और उस वक्त उस के पास कोई हथियार नहीं था। वह बड़े आत्मविश्वास के साथ मुसकराता हुआ पांचों डाकुओं के सामने खड़ा रहा। उस के दोनों हाथ जैकेट की जेब में थे। हाथ बाहर न निकाल कर वह पांचों डाकुओं को इस धोखे में रखे रहा कि दोनों ही जेबों में एक एक रिवाल्वर है। अचानक उस ने एक चीनी डाकू को मुक्का मार कर गिरा दिया। इस के साथ-साथ उस डाकू का रिवाल्वर जैक के हाथ में था। दोनों ओर से फायरिंग शुरू हो गयी लेकिन अकेले जैक ने उन पांचों को परास्त कर के भगा दिया।

उस समय 'द अटलांटिक' नामक मासिक-पत्र बहुत प्रसिद्ध था। जैक ने एक लंबी कहानी लिखी—एन ओडिसी आफ द नार्थ। आंख मूंद कर यह कहानी उस ने 'द अटलांटिक' को भेज दी। कुछ दिनों में वहां से स्वीकृति-पत्र आ गया। 'द अटलांटिक' ने जैक को १२५ डालर का पारिश्रमिक देने और कहानी के प्रथम प्रकाशन के अधिकार खरीदने की बात विनम्रतापूर्वक लिखी थी। जैक की खुशी और उत्तेजना की सीमा नहीं थी।

कहानी की स्वीकृति से उत्साहित हो कर उस ने डकैती छोड़ कर लेखनी पकड़ ली और देखते-देखते उस के नाम से अनेक कहानियों, लेखों तथा उपन्यासों का प्रकाशन हो गया। यह इतना अचानक हुआ जैसे आकाश में कोई धूमकेतु उभर आया हो। जैक की एक पुस्तक की पूरी तरह समालोचनाएं भी न हो पातीं कि दूसरी पुस्तक बाजार में आ जाती। उस के पाठक उसे बेहद प्यार करते थे क्योंकि वे जानते थे कि उस ने जो कुछ भी लिखा है, वह सच है; मौत की कहानी कल्पना की खोखली उड़ान नहीं है, बल्कि लेखक मौत के साये में स्वयं अनेक बार जी चुका है।

जैक के मन में अब पश्चाताप जाग रहा था। जल-दस्यु के रूप में उस ने रोमांचक और डरावने अनुभव भले ही कमाये हों लेकिन समाज में न केवल उस की, बल्कि उस के परिवार की भी आलोचनाएं होती थीं। इस कुंठा को पराजित करने के लिए जैक पुलिस विभाग में भरती हो गया। पुलिस में भी उस ने वह विभाग अपनाया जो जल-दस्युओं का दमन करता था। उन के सभी हथकंडों का ज्ञाता जैक जब उन्हें पकड़ने के लिए अपनी चुस्त टोली के साथ बाहर निकला तो जल-दस्युओं में हाहाकार मच गया। जैक को खत्म करने के लिए न मालूम कितने लोग तरसने लगे लेकिन वह हाथ न आता। उस ने देखा कि डाके डालने में जो रोमांच था, वही —बल्कि उस से कहीं ज्यादा तथा कहीं प्रतिष्ठित रोमांच— डाकुओं को पकड़ने में था। समुद्र

की चुनौतियां पुलिस अधिकारी बन कर भी स्वीकार की जा सकती थीं। जैक ने घोड़े पर सवार हो कर भी इतने अत्याचारियों का दमन किया कि उस के लिए 'घुड़सवार-नाविक' (सेलर आन हार्स-बैक) शब्द प्रचलित हो गया।

जैक का पुराना स्वेटर बहुत प्रसिद्ध था जिसे वह शायद ही कभी उतारता था। स्वेटर गंदा हो जाता तो भी वह उसे पहने रहता। बालों में तेल पड़ा है या नहीं, कंघी हुई है या नहीं, दाढ़ी बनी है या नहीं, जूतों पर पालिश है या नहीं— इस की उस ने कभी फिक्र नहीं की।

जिन्हें रोमांचक सच्ची कहानियों का वास्तविक आनंद लेना है, उन्हें 'द काल आफ द वाइल्ड' पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। जैक की रोमांचक पुस्तकों ने किशोरों में बहुत ही लोकप्रियता पायी है, लेकिन उस का साहित्य बड़ों के द्वारा भी कम नहीं पढ़ा गया। जैक के साहित्य को मोटे रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक वह साहित्य जो उस ने अपने रोमांचक जीवन पर लिखा। इस साहित्य ने जैक को बहुत अमीर बना दिया, लेकिन उस ने पैसे को कभी दांतों से पकड़ कर रखना नहीं सीखा था। उस ने जो भी कमाया, बड़े शौक से अपने और अपने साथियों के लिए खर्च किया। इस संबंध में उस की ये दो किताबें भी बहुत प्रसिद्ध हैं— 'साउथ सी टेल्स' और 'व्हाइट फैंग'।

दूसरे प्रकार का साहित्य था सामाजिक पीड़ा का। डाकू के रूप में उस ने गरीबी को तहस-नहस करना चाहा था और यही लेखक के रूप में भी चाहा। 'द पीपुल आफ द एबिस' और 'द आयरन हील', ये दो किताबें जैक लंडन को गंभीर साहित्यकार के रूप में अमर रखेंगी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दिनों में इंगलैंड में कैसी दयनीय गरीबी फैली हुई थी, उस का दिल दहला देने वाला वर्णन 'द पीपुल आफ द एबिस' में मिलेगा। जैक अनेक बार इंगलैंड आया। एक बार वह लगातार कुछ वर्षों तक वहां रहा। जो उस ने देखा, उसी को पूरी ईमानदारी के साथ उपन्यास में लिखा। ⊙

एक शानदार होटल में कोई मेजर आ कर ठहरे। रोज उन के कमरे में वेटर शराब की दो बोतलें ले जाता था। पड़ोस के कमरे में ठहरे सज्जन कौतूहलपूर्वक यह देखा करते। एक दिन बरामदे में उन की मुठभेड़ मेजर से हो गयी और उन्होंने पूछ ही लिया, "मेजर! आप हैं तो अकेले, पर रोज शराब की दो बोतलें क्यों मंगवाते हैं?"

मेजर ने जवाब दिया, "बात यह है कि पहली बोतल पीने के बाद मैं बिलकुल दूसरा आदमी हो जाता हूं। दूसरी बोतल उसी आदमी के लिए होती है।"

हास्य-व्यंग्य

कन्हैयालाल कपूर

गुजरने को तो उम्र गुजर रही है और गुजर जायेगी, लेकिन कुछ इस तरह कि कहते ही बनता है—हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

पौने दस बजे बिस्तर से उठे, दस बजे कालिज पहुंचना है। इस पन्द्रह मिनट के थोड़े-से समय में क्या-क्या करना है—शेव बनाना, मुंह हाथ धोना, अखबारों की मोटी-मोटी खबरों पर दृष्टिपात करना, शब्द-कोश में दस-बारह कठिन शब्दों के अर्थ देखना, नाश्ता करना और कपड़े पहनना। स्पष्ट है कि ये सारे काम पन्द्रह मिनट में नहीं किये जा सकते, जब तक कि इन्हें एकसाथ न किया जाये।

अतएव एक हाथ से मुंह में ग्रास डाल रहे हैं और दूसरे से शब्द-कोश के पृष्ठ पलट रहे हैं। ग्रास मुंह में जाता है तो खाली हाथ जुराब पहनने में लग जाता है। बायां हाथ बालों में कंघी करने लगा तो दायां टाई की गांठ में व्यस्त हो गया। किसी-न-किसी तरह तैयार हो कर बाहर निकले और सड़क पर आये। लेकिन आवाजें हैं कि पीछा ही नहीं छोड़तीं, "प्रोफेसर साहब! मेरा लड़का . . ."

"जी हां, मैं उस के नम्बर बढ़ा दूंगा।"

"प्रोफेसर साहब! मेरी लड़की . ."

"जी हां, वह पास हो जायेगी।"

"प्रोफेसर साहब! मेरा बिल . ."

"जी हां, पहली को चुका दूंगा।"

हांफते-कांपते कक्षा में पहुंचे। वहां वह शोर है कि कानों के परदे फटे

जा रहे हैं। गरज कर दो-तीन बार कहते हैं, "खामोश, खामोश !" मगर कोई असर नहीं होता। आवाज मानो जंगल में गूंज कर रह गयी हो। आखिर तंग आ कर मेज पर मुक्के मारना शुरू कर देते हैं और कहते हैं, "खामोश, आखिर ऐसी बदतमीजी भी क्या! जब हम विद्यार्थी थे तो कभी ऐसी असभ्यता का प्रदर्शन नहीं करते थे। भुगलोकशोर! तुम मेरे मना करने के बावजूद शोर मचा रहे हो, निकल जाओ।"

एकाएक कमरे में सन्नाटा छा जाता है। पिछली बेंच से एक लड़का सीटी बजाता है, सारी कक्षा खिलखिला पड़ती है।

"कौन है यह बदतमीज? जरूर जयकिशन होगा। जयकिशन! फौरन कमरे से बाहर जाओ।"

कुछ क्षणों तक मौन रहता है, फिर तीसरी बेंच पर बैठा एक लड़का भेद-भरे स्वर में अपने एक साथी से कहता है, "मालूम होता है, आज पत्नी से झगड़ा करके आये हैं।"

फब्ती सुन कर खून खौलने लगता है, लेकिन दांत पीस कर रह जाते हैं। अब हाजिरी ली जा रही है। राम राम करके शोर के बीच यह खत्म होती है। रजिस्टर से दृष्टि उठायी—अरे, यह क्या! आधी से ज्यादा कक्षा गायब हो चुकी है। हम दोबारा हाजिरी लेते हैं। अब एक एक करके भागने वाले दरवाजों और खिड़कियों से प्रविष्ट हो रहे हैं।

"तुम कहां थे नन्दलाल?"

"जी, साइकिल में ताला लगाने गया था।"

"और तुम रविशंकर?"

"जी जरा ताजी हवा खाने बाहर गया था।"

"तुम लोग बकते हो। मैं तुम दोनों पर पांच-पांच रुपये जुरमाना करता हूं।

"अब आप किताबें खोलिये। आज का पाठ अत्यन्त आवश्यक है। यह एक कविता है जिसे इंगलिस्तान के सब से बड़े कवि मिल्टन ने लिखा है। मिल्टन के विषय में एक आलोचक ने कहा है कि . . ."

"म्याऊं-म्याऊं।"

सारी कक्षा हंस पड़ती है।

"कौन है यह बदतमीज? मुझे ऐसी हरकतों से नफरत है . . . हां, तो मैं कह रहा था कि मिल्टन इंगलिस्तान का सब से बड़ा सूफी था।"

एक आवाज, "सुना है उस ने तीन शादियां की थीं।"

कक्षा में फिर ठहाका लगता है।

"मिल्टन इस कविता में शिकायत करता है कि ईश्वर ने उसे काव्य-प्रतिभा से अलंकृत करने के बाद आंखों से क्यों वंचित कर दिया।"

एक आवाज आती है, "शायद ईश्वर उसे सजा देना चाहता था।"

"किस अपराध की?"

"नीरस और फीकी कविताएं लिखने की।"

"खामोश! इतने बड़े कवि का अपमान करते लज्जा अनुभव नहीं होती? भूमिका समाप्त हुई, अब कविता की तरफ आइये।"

"जी, कविता कल पढ़ाइयेगा, हम थक गये हैं।"

"बहुत नाजुकमिजाज हैं आप। अभी तो घंटी बजे दस मिनट भी नहीं हुए।"

"जी, बाकी समय में बातें करेंगे।"

"खामोश।"

"जी, कोई शेर सुनाइये।"

"जी, आप ने 'चुलबुली प्रेमिका' देखी?"

"मैं ऐसी निरर्थक फिल्में नहीं देखता।"

"अच्छा जी, तो फिर छुट्टी दे दीजिये।"

"छुट्टी! अगर प्रिंसिपल साहब को पता चल गया तो?"

"जी, प्रिंसिपल साहब तो खुद छुट्टी पर हैं।"

"अच्छा तुम जा सकते हो।"

चीखों, कहकहों और नारों के बीच सारी कक्षा बाहर चली जाती है। अभी दूसरी घंटी में बीस मिनट बाकी हैं। यह समय 'स्टाफ-रूम' में गुजारा जाता है। यहां गपशप उड़ती है। बातें बनाने के अतिरिक्त एक-दूसरे को मूर्ख बनाया जाता है।

"आइये प्रोफेसर साहब! बहुत दुबले हो रहे हैं। लगता है आजकल ट्यूशनों का जोर है।"

"कुछ सुना भई? मुझे इस साल भी तरक्की नहीं मिलेगी।"

"[illegible] यार, बदहजमी का [illegible] था। मुझे परचों ने [illegible] [illegible] है।"

"[illegible] ने 'सास्त्री' की किताब [illegible] [illegible] लिखता रहा है।"

"यार, परचों ने बहुत तंग कर रखा है। कमबख्त खत्म होने में ही नहीं आते।"

"सुना है प्रिंसिपल साहब तुम पर बड़े कृपालु हैं! कल मुसकरा कर बात कर रहे थे।"

"यार, यह पतलून तो धुलवाओ। बहुत मैली हो रही है।"

"सुना आप ने? प्रोफेसर रामगोपाल को टी. बी. हो गयी है।"

दूसरी घंटी बजती है। सब प्रोफेसर रजिस्टर उठाये और सिर झुकाये अपनी-अपनी कक्षाओं को चल देते हैं। अब मुझे 'सेकण्ड इयर' को पढ़ाना है। यह कक्षा पहली कक्षा से भी अधिक शरारती है। हाजिरी लेने के लिए रजिस्टर खोलते हैं, लेकिन छात्र हैं कि निरंतर हंसे जा रहे हैं। बात क्या है? ये बार-बार 'ब्लैक बोर्ड' की तरफ क्यों देखते हैं? एकाएक 'ब्लैक बोर्ड' पर दृष्टि जाती है। वहां अपना कार्टून देख कर झेंप जाते हैं और परेशानी छिपाने के लिए जल्दी-जल्दी हाजिरी लेने लगते हैं।

"यशपाल!"

सारी कक्षा एकसाथ पुकारती है, "यस सर!"

"ओमप्रकाश!"

एक लड़का पूरी शक्ति से चिल्ला कर कहता है, "नो सर!"

"दीनानाथ!"

एक आवाज आती है, "जयहिन्द!"

दूसरा स्वर गूंजता है, "वन्दे मातरम!"

फिर सारी कक्षा बोलती है, "सत श्री अकाल!"

वक्त काम आयें।"

छात्रों के अनुरोध पर कीट्स का एक स्वन पढ़ कर सुनाते हैं।

"हाय! क्या जला-फुंका स्वन है!" आवाजें गूंजती हैं।

घंटी बजती है। लड़के "जान कीट्स-जिन्दाबाद" के नारे लगाते हुए चले जाते हैं। इसी ढंग से बाकी तीन घंटे भी पढ़ा कर चार बजे घर लौटते हैं। दिमाग थक कर चूर हो चुका है। जी चाहता है कि थोड़ी देर सो जायें, लेकिन सहसा कोई दरवाजा खटखटाता है, "प्रोफेसर साहब, मुझे एक सर्टिफिकेट चाहिये।"

जी कड़ा करके सर्टिफिकेट लिख देते हैं। फिर दरवाजा बंद करके सोने की तैयारी करते हैं।

खट-खट।

"कौन है?"

"जी, मैं हूं, रामदयाल।"

दरवाजा खोलते हैं। रामदयाल गिड़गिड़ा कर कहता है, "ईश्वर के लिए मेरा जुरमाना माफ कर दीजिये प्रोफेसर साहब! वरना मेरा बाप मुझे घर से निकाल देगा।"

एक लम्बी बहस के बाद माफ कर देते हैं।

खट-खट!

फिर दरवाजा खोलते हैं। एक लड़का सहमा हुआ हाथ में अंगरेजी का पर्चा थामे नजर आता है। वह कहता है, "प्रोफेसर साहब! मुझे पांच नंबर और दे दीजिये, वरना मैं तबाह हो जाऊंगा।"

दो घंटे इस बात पर वाद-विवाद होता है कि परीक्षा में उस की असफलता का दायित्व हम पर नहीं, बल्कि स्वयं उस पर है।

दिमाग पहले से भी अधिक थक जाता है कि कालिज का चपरासी दरवाजे को खटखटाता है, "जनाब, आप को प्रिंसिपल साहब याद कर रहे हैं।"

प्रिंसिपल साहब से भेंट होती है। वे कोई नयी बात नहीं कहते। वही पुरानी शिकायतें हैं, "आप हर रोज देर से क्यों आते हैं? आप की कक्षा इतना शोर क्यों मचाती है? आप ने कल पांचवां घंटा क्यों नहीं लिया? आप खेलों में हिस्सा क्यों नहीं लेते? यूनिवर्सिटी में हर साल आप की कक्षा का परिणाम खराब क्यों रहता है?"

ऐसी बातें सुन कर कलेजा छलनी हो जाता है और फिर अपराधी की तरह सिर झुकाये कमरे से चले जाते हैं।

गुजरने को तो उम्र गुजर रही है और गुजर जायेगी, लेकिन इस तरह कि कहते ही बनता है—हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

पश्चिमी जर्मनी में एक व्यक्ति ने अपने खच्चर को बहुत ही मार पीटा। खच्चर के प्रति सहानुभूति से प्रेरित हो कर उस व्यक्ति की पत्नी ने थाने में शिकायत कर दी। पुलिस ने उस से खच्चर छीन लिया। अब स्थिति यह है कि उस स्त्री को अपने हाथ लकड़ियां काट कर बाजार ले जानी पड़ती हैं।
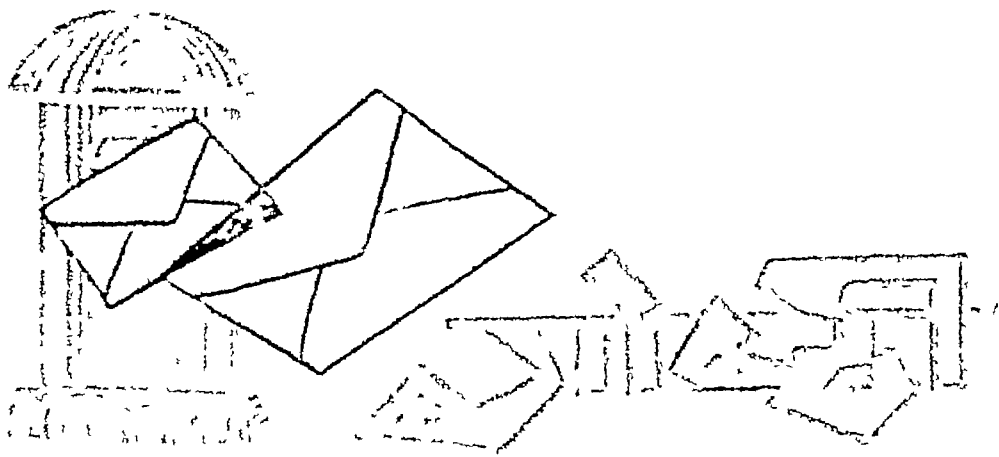
दीपक शर्मा, रायबरेली : अजायबघर में जानवरों के जो पुतले होते हैं, वे कैसे बनते हैं ?

मरे हुए पक्षी या जानवर की खाल परों के साथ उतार ली जाती है। इस के लिए प्राणी को ठुड्डी के नीचे से चीरा जाता है। यह खाल बेंजोलीन तथा अन्य जंतुनाशक रसायनों द्वारा स्वच्छ की जाती है। इस के बाद उस प्राणी के आकार का पुतला तैयार किया जाता है जिस के ऊपर तार, स्प्रिंग इत्यादि की सहायता से खाल चढ़ा कर प्राणी को विशेष मुद्रा में बिठाया जाता है। ऐसे पुतलों की आंखें नकली होती हैं।

दीपक बुखारिया, अकोला : विश्व के प्रमुख भूखंडों के नामकरण का इतिहास क्या है ?

एशिया को एशिया क्यों कहा जाने लगा, इस के निश्चित प्रमाण नहीं मिलते। ग्रीक लोग तुर्किस्तान को एशिया माइनर कहते थे। इसी आधार पर शायद पश्चिमी देशों ने संपूर्ण महाद्वीप को एशिया नाम दे दिया। ग्रीक देवी यूरोपा के नाम पर यूरोप नाम पड़ा। यूरोप में ग्रीस ही एक ऐसा देश था जो सुसंस्कृत कहा जा सके। इसीलिए ग्रीस के प्रभाव के कारण संपूर्ण भूखंड को यूरोप कह दिया गया। उत्तरी अफ्रीका में रोमन साम्राज्य के कुछ उपनिवेश थे जिन्हें पहचानने के लिए आफ्रिकानस कहा जाता था। इस आधार पर अफ्रीका का पूरा समुद्री किनारा आफ्रीका कहलाने लगा। समय बीतने पर यह नाम पूरे भूखंड पर आरोपित हो गया। एक स्पेनिश यात्री अमेरिगो ने चार बार अमरीका का सफर किया। इस आधार पर उक्त महाद्वीप अमरीका कहलाने लगा। एक भूखंड दक्षिण गोलार्ध में प्राप्त हुआ। आस्ट्रालिस का अर्थ होता है दक्षिण की भूमि। इस आधार पर आस्ट्रेलिया नाम रखा गया।

दिनमणि, मुरादाबाद : क्या उलटा लटका आदमी पानी पी सकता है ?

हमारे गले की नली रबड़ की नली

की तरह पोली नहीं है। उस के भीतर कई स्नायु हैं जिन के कारण उलटा लटक कर भी खाया-पीया जा सकता है।

रामचंद पटेल, छिंदवाड़ा : दूध जलने पर बदबू क्यों देता है?

दूध में केसीन नामक प्रोटीन है। कोई भी प्रोटीन जलने पर बदबू जरूर आती है।

प्रफुल्ल 'तमन्ना', ग्वालियर : क्या मछलियां जहरीली होती हैं?

मछलियां उन अर्थों में जहरीली नहीं होतीं, जिन अर्थों में सांप होता है। कुछ मछलियों का मांस जहरीला होता है, जब कि सांप का मांस जहरीला नहीं होता। सांप कई देशों में खाया भी जाता है। जहर केवल सांप की थैली में होता है। लेकिन हां, मछली यदि काट ले और सावधानी न बरती जाये तो घाव पक सकता है। समुद्र में सांप की तरह जहरीली तो नहीं लेकिन बिजली का झटका देनेवाली कई मछलियां पायी जाती हैं। ईल उन में से एक है।

रामनाथ, बनारस : सुपारी में क्या-क्या होता है?

करीब ३१ प्रतिशत पानी, ५ प्रतिशत प्रोटीन, साढ़े चार प्रतिशत चर्बी, १ प्रतिशत खनिज, ११ प्रतिशत रेशे, ४७ प्रतिशत शक्कर, ०.०५ प्रतिशत कैलशियम, ०.१३ प्रतिशत फासफोरस तथा शेष प्रतिशतों में लोह और कैरोटीन।

ईश्वरलाल भट्ट, महासमुन्द : कैरट शब्द कैसे प्राप्त हुआ?

भूमध्यसागर के किनारे कैरब नामक एक वृक्ष होता है। उस के बीज एक ही आकार के होते हैं। अतः सोना तथा जवाहरात तोलने में उन का उपयोग किया गया। कैरब से कैरट नाम प्राप्त हुआ। अमरीका में एक कैरट २०० मिलीग्राम के बराबर मान लिया गया। बाद में सोने की विशुद्धता दर्शाने के लिए भी कैरट शब्द इस्तेमाल होने लगा। २४ कैरट का सोना विशुद्ध होता है। १४ कैरट से कम का सोना गहने बनाने के लिए अनुपयुक्त है। ऐसे सोने में जंग लगता है। गहने विशुद्ध सोने से नहीं बनते क्योंकि सोना विशुद्ध रूप में बहुत मुलायम धातु है। कड़ापन लाने के लिए उस में अन्य धातुएं मिलायी जाती हैं।

पंकजकुमार मेहरोत्रा, सीतापुर : पहाड़ों से टकराने वाले बादल मैदान से क्यों नहीं टकराते?

पहाड़ों से बादल टकराने का अर्थ यह नहीं है कि वे उसी तरह टकराते हैं, जिस तरह क्रिकेट के बल्ले से साथ गेंद। सामने पहाड़ की आड़

मेरा लिहाफ

किस ने सुई चुभो दी
पूरब की गाड़ी की स्टेपनी में
मेरा खोल लिहाफ किसी ने
लौट दिया आकाश में
रुई पकड़ने घुटनों के बल
रेंग रहा है
बड़ी यामिनी भाभी का
नन्हा-सा मुन्ना

— ब्रजेन्द्र खरे —

आ जाने पर उसे पार करने के लिए बादल ऊपर उठते हैं और इस चेष्टा में ठंडे हो कर बरसने लगते हैं। वनस्पति से आच्छादित होने के कारण पहाड़ स्वयं शीतल होते ही हैं, ऊपर उठने पर बादलों को हवा भी शीतल ही मिलती है। सामने पहाड़ की आड़ आ जाने पर बादल मैदान की ओर उतरने इसलिए नहीं लगते क्योंकि वे वजन में हलके होते हैं।

उषावल्लभ, दिल्ली : क्या अतीत में जाना संभव है ?

आप का तात्पर्य यदि अतीत में हो चुकी घटनाओं, यानी दृश्यों से है तो यह एक अत्यंत ही उलझा हुआ और सापेक्ष विषय है। यह किसी रूप में आवश्यक नहीं है कि कोई दृश्य ठीक उसी समय घटित हो रहा हो, जब वह दिखायी भी पड़ रहा हो। घटना-स्थल से प्रकाश की किरणों को हमारी आंखों तक पहुंचने में आखिर समय तो लगता ही है। वर्तमान को हम मोटे तौर पर इसी तरह समझते हैं कि 'जो दिखायी पड़ रहा हो।' आकाश में जितने तारे दिखायी पड़ते हैं, कोई आवश्यक नहीं कि उन सभी तारों का वर्तमान में अस्तित्व हो। मान लीजिये, कोई तारा हम से इतनी दूर है कि वहां से प्रकाश की किरणों को हमारी आंखों तक पहुंचने में दो वर्ष का समय लग जाता है। यदि आज, यानी आज के वर्तमान में उस तारे में विस्फोट हो जाये, तो हमें उस का पता दो वर्ष बाद चलेगा— जब विस्फोट की किरणें हम तक पहुंचेंगी। उस समय हमें विस्फोट का दृश्य 'वर्तमान' मालूम देगा, लेकिन वास्तविकता में तो वह दो साल पुराना अतीत ही होगा। इस आधार पर समझने की कोशिश करिये कि पृथ्वी पर जो भी घटित हुआ है, उस के दृश्यों की किरणें ब्रह्मांड में कहीं-न-कहीं अवश्य मौजूद होंगी। अगर किसी तरह 'मौजूदगी की जगह' में पहुंचा जा सके, तो अतीत के वे दृश्य देखे जा सकेंगे— किन्तु यह सिद्धांत के रूप में सही होने के बावजूद संभव नहीं है।

कुंवर अजयसिंह, इलाहाबाद : 'सिनेमास्कोप' किसे कहते हैं ? उस का इतिहास क्या है ? 'सिनेमास्कोप', 'सिनेरामा' और 'सर्करामा' में अंतर स्पष्ट करिये।

'सिनेमास्कोप' में 'सिलिन्ड्रिकल लेन्स कम्पोनेंट' के प्रयोग से काफी विस्तृत दृश्य को एक सकरी पट्टी के रूप में इस तरह उतारा जाता है कि बिम्बों में विशेष तरह की 'विकृति' आ जाये। परदे पर दिखाते समय विशेष लेंस द्वारा यह 'विकृति' सही अनुपात में 'फैल' जाती है। 'सिनेमास्कोप' का परदा ६८×२४ फुट माप का और थोड़ा नतोदर (कान्केव) होता है। 'सिनेमास्कोप' में 'गहराई' का आंशिक अनुभव किया जा सकता है। उस के दृश्य का विस्तार लगभग उतना ही होता है, जितना मानवीय आंख वास्तविक जगत में 'एक बार की इकाई' के रूप में अनुभव करती है। 'सिनेमास्कोप' की फिल्म ३५ एम एम. की ही होती है, जिस से केवल थोड़े से अतिरिक्त उप-

की तरह पोली नही हैं। उस के भीतर कई स्नायु हैं जिन के कारण उलटा लटक कर भी खाया-पीया जा सकता है।

रामचंद पटेल, छिंदवाड़ा : दूध जलने पर वदबू क्यों देता है ?

दूध में केसीन नामक प्रोटीन है। कोई भी प्रोटीन जलने पर वदबू जरूर आती है।

प्रफुल्ल 'तमन्ना', ग्वालियर . क्या मछलियां जहरीली होती हैं ?

मछलियां उन अर्थों में जहरीली नही होती, जिन अर्थों में सांप होता है। कुछ मछलियों का मास जहरीला होता है, जब कि साप का मांस जहरीला नही होता। साप कई देशों में खाया भी जाता है। जहर केवल साप की थैली में होता है। लेकिन हां, मछली यदि काट ले और सावधानी न बरती जाये तो घाव पक सकता है। समुद्र में साप की तरह जहरीली तो नहीं लेकिन बिजली का झटका देनेवाली कई मछलिया पायी जाती हैं। ईल उन में से एक है।

रामनाथ, बनारस : सुपारी में क्या-क्या होता है ?

करीब ३१ प्रतिशत पानी, ५ प्रतिशत प्रोटीन, साढे चार प्रतिशत चर्बी, १ प्रतिशत खनिज, ११ प्रतिशत रेशे, ४७ प्रतिशत शक्कर, ० ०५ प्रतिशत कैलशियम, ०.१३ प्रतिशत फासफोरस तथा शेष प्रतिशतों में लोहा और कैरोटीन।

ईश्वरलाल भट्ट, महासमुन्द : कैरट शब्द कैसे प्राप्त हुआ ?

भूमध्यसागर के किनारे कैरव नामक एक वृक्ष होता है। उस के बीज एक ही आकार के होते हैं। अत सोना तथा जवाहरात तोलने मे उन का उपयोग किया गया। कैरब से कैरट नाम प्राप्त हुआ। अमरीका मे एक कैरट २०० मिलीग्राम के बराबर मान लिया गया। बाद में सोने की विशुद्धता दर्शाने के लिए भी कैरट शब्द इस्तेमाल होने लगा। २४ कैरट का सोना विशुद्ध होता है। १४ कैरट से कम का सोना गहने बनाने के लिए अनुपयुक्त है। ऐसे सोने में जग लगता है। गहने विशुद्ध सोने से नही बनते क्योंकि सोना विशुद्ध रूप में बहुत मुलायम धातु है। कडापन लाने के लिए उस में अन्य धातुएं मिलायी जाती हैं।

पंकजकुमार मेहरोत्रा, सीतापुर : पहाड़ों से टकराने वाले बादल मैदान से क्यों नहीं टकराते ?

पहाडों से बादल टकराने का अर्थ यह नही है कि वे उसी तरह टकराते हैं, जिस तरह क्रिकेट के बल्ले के साथ गेंद। सामने पहाड की आड

मेरा लिहाफ

किस ने सुई चुभो दी
पूरब की गाड़ी की स्टेपनी में
मेरा खोल लिहाफ किसी ने
लौट दिया आकाश में
रुई पकड़ने घटना के बल
रेंग रहा है
बड़ी यामिनी भाभी का
नन्हा-सा मुन्ना

— ब्रजेन्द्र खरे —

करण लगा कर सामान्य प्रोजेक्टर से ही 'सिनेमास्कोप' का प्रदर्शन सभव हो जाता हैं। जिन थियेटरों में 'सिनेमास्कोप' के योग्य परदा नही होता, उन में यह फिल्म ऐसी संकरी और लवोतरी लगती हैं, मानो किसी लेटर-वाक्स का मुंह।

सिनेमास्कोप के आविष्कारक के रूप में किसी एक व्यक्ति का नाम लेना भूल होगी, क्योंकि यह अनेक व्यक्तियों द्वारा ली गयी दिलचस्पी का परिणाम हैं, फिर भी इस दिशा में अत्यधिक महत्वपूर्ण काम करने के लिए पेरिस-निवासी आप्टिकल वैज्ञानिक हेनरी क्रेटीन का नाम लिया जाता हैं। 'सिनेमास्कोप' की पहली फिल्म 'द रोव' न्यूयार्क के राक्सी थियेटर में १६ सितम्बर, १९५३ को दिखायी गयी।

अनेक वर्षो के अथक परिश्रम के वाद 'सिनेरामा' का पहला प्रदर्शन फ्रेड वालेर नामक चित्रपट-तकनीक-विशेषज्ञ ने १९३९ में न्यूयार्क के विश्व-मेले में किया।

'सिनेरामा' का भी परदा विशेप तरह का होता हैं — दर्शक की दिशा में फूला हुआ नहीं, वल्कि दर्शक की विपरीत दिशा में 'अदर की ओर धसा हुआ'। किसी गोलाकार के अश-जैसा यह परदा विशेष तरह के पदार्थ की पट्टियों को मिला कर वनाया जाता हैं। ये पट्टिया पृथ्वी से लव रूप (परपेन्डिकूलर) होती हैं। दर्शक 'गोलाकार परदे' के वीच में देखता हैं।

हम सामने देखते हुए कहीं जा रहे हो और वगल से कोई चीज आ जाये तो उस को भी हम आंख के कोने से देख लेते हैं और चौंक कर एक तरफ हट जाते हैं। 'सिनेरामा' का मुख्य दृश्य तो 'गोलाकार परदे' के वीच में होता हैं, किन्तु परदे की किनारी के आसपास भी दर्शक अपनी-अपनी आखों के कोनों से देखता चलता हैं। इस के लिए उसे विशेष प्रयास नही करना पड़ता। दर्शक के ध्यान में किनारी का दृश्य अपने-आप आता जाता हैं। सामान्य फिल्म दरवाजे के छिद्र में से कमरे में झाकने -जैसा हैं, जव कि 'सिनेरामा' में दर्शक दरवाजा खोल कर कमरे के भीतर ही चला जाता हैं।

'सर्करामा' भी एक तरह का 'सिनेरामा' ही हैं। 'सिनेरामा' का 'गोलाकार के अश-जैसा परदा' दर्शक के सामने होता हैं। मात्र किसी अंश की जगह अगर गोलाकार को पूरा ही कर दिया जाये, तो परदा दर्शक के सामने न हो कर चारों ओर हो जायेगा। उस के वीच में वैठा दर्शक महसूस करेगा कि वह किसी गुम्वद के अंदर वंद हो चुका हैं। 'सर्करामा' फिल्म का प्रदर्शन अनेक कैमरों (प्रायः ग्यारह) से एकसाथ चारों ओर होता हैं। 'सिनेरामा' में सिर्फ तीन कैमरे साथ-साथ चलते हैं। 'सिनेरामा' का पहला व्यावसायिक प्रदर्शन न्यूयार्क में ३० सितवर, १९५२ को हुआ—फिर डिट्राएट, लास एंजेल्स आदि में। फिल्म थी—'दिस इज सिनेरामा'।

—भगीरथ

इतिहास के झरोखे से

● अरविंदकुमार

ईसवी सन आरंभ होने के इधर-उधर कुछ शताब्दियों के यूरोप और उत्तरी अफ्रीका का इतिहास रोमन साम्राज्य का इतिहास है। सिसरो-जैसे दार्शनिक, जूलियस-जैसे सम्राट, ब्रूटस-जैसे नागरिक तथा मार्क एंटनी-जैसे सेनापति ने ईसा पूर्व पहली सदी के रोम को अमर बना दिया है।

मार्क एंटनी का पूरा नाम मारकस एंटोनियस था। उस के दादा और पिता का भी यही नाम था। उस का दादा मारकस एंटोनियस रोम का एक महत्वपूर्ण राज्य-अधिकारी और प्रसिद्ध वक्ता था। पिता रोम का एक असफल सेनापति था—जहां भी वह अपनी सेनाएं ले गया, उसे हार का मुंह देखना पड़ा।

जूलियस सीजर को राजसत्ता हड़पने में मार्क एंटनी का पूरा सहयोग मिला था। उसे पूरी तरह मालूम था सम्राट बनने के लिए जूलियस सीजर को क्या कुछ करना पड़ा था। जब षड्यंत्रकारियों ने सीजर की हत्या की तो मार्क एंटनी घटना-स्थल पर मौजूद था। अब वह सीजर के समर्थकों का नेता था। रोम की जनता को षड्यंत्रकारियों के विरुद्ध करना मार्क एंटनी के ही बस का था। सीजर के शव पर उस का भाषण इतिहास-प्रसिद्ध है। उस का भाषण सुन कर जनता विचलित हो उठी और षड्यंत्रकारियों को रोम छोड़ कर भागना पड़ा।

सीजर की मृत्यु के समय आक्टेविएनस रोम में मौजूद नहीं था। सारे यूरोप का स्वामी बनने के अपने रास्ते

में मार्क एटनी को एक ही कांटा दिखायी दिया—सीजर का दत्तक पुत्र आक्टेविएनस। १९ वर्षीय, पतला-दुबला और नाजुक आक्टेविएनस मेरे सामने कहा टिक पायेगा—३९ वर्षीय एटनी ने सोचा। लेकिन सीजर का नाजुक दिखायी देने वाला दत्तक पुत्र दिमाग का तेज था। वह राजनीति के खेल का चतुर खिलाडी निकला। उस ने सीनेट के अधिकाश सदस्यों की सहानुभूति अपनी तरफ कर ली। मार्क एटनी को रोम का दुश्मन करार दे दिया गया और उस के सारे अधिकार छीन लिये गये।

मार्क एटनी ने वही किया जो सीजर ने किया था। उस ने फ्रांस जा कर एक बड़ी सेना इकट्ठी की और सीजर के एक अन्य सेनापति लेपीडस को अपने साथ मिला कर रोम की तरफ कूच कर दिया। ताकत के सामने रोम की सीनेट को झुकना पड़ा। आक्टेविएनस, मार्क एटनी और लेपीडस में संधिवार्ता शुरू हुई। रोमन साम्राज्य तीन भागों में बांट दिया गया। रोम के अधीन तीन क्षेत्र माने गये और तीनों नेताओं ने अपने अपने हिस्से का एक क्षेत्र ले लिया। एटनी को पूर्व का साम्राज्य मिला। तीनों ने एक-दूसरे को यह अधिकार दिया कि वे किसी भी व्यक्ति को मृत्यु-दंड दे सकते हैं।

इस अधिकार का लाभ उठा कर एटनी ने प्रसिद्ध वक्ता और दार्शनिक सिसरो की हत्या कर दी। उस का कसूर यह था कि वह मार्क एटनी की ज्यादतियों की बुराई करता था। वह कहता था कि मार्क एटनी शराबी और ऐयाश है।

अब उस का अधिकांश जीवन पूर्व के देशों में बीता। उस ने फारस को जीतने की कोशिश भी की लेकिन कामयाबी नहीं मिली। वह अपना राजदरबार और अपनी शानशौकत अपने साथ लिये एक शहर से दूसरे शहर घूमता रहता था। एटनी को लोकप्रिय शासक नहीं कहा जा सकता। रोमन अधिकारी साम्राज्य के दूर-दूर तक के कोनों में सख्ती से शासन करते थे और अकसर वे स्थानीय जनता में प्रिय न होते। लेकिन एटनी ने इन सब को मात कर दिया। वह जहां जाता, जनता त्राहि-त्राहि कर उठती।

क्लियोपेट्रा मिस्र की मलिका थी। वह मिस्र पर शासन करने वाले ग्रीक राजवंश टालेमी की अंतिम कड़ी थी। उस वंश में सम्राज्ञियों को क्लियोपेट्रा कहने की परिपाटी थी। रक्त शुद्ध रखने के लिए उस राजवंश में विवाह भाई-बहिनों में ही होता था। प्राचीन भारत में सिंध के राजवंश में भी यही प्रणाली प्रचलित थी। राजा दाहिर सिंध के उसी राजवंश से था।

एटनी से भेंट के समय क्लियोपेट्रा की उम्र २८ वर्ष थी। ११ साल पहले वह परिवार की सब से बड़ी संतान होने के नाते मिस्र की सम्राज्ञी बनी थी। उस का छोटा भाई डायोनिसस उस का साझीदार और भावी पति था। महत्वाकांक्षिणी क्लियोपेट्रा एकच्छत्र राज्य चाहती थी अतः कुछ ही वर्षों में अपने भाई से लड़ बैठी।

जूलियस सीजर उस समय पूर्वी देशों की विजय को निकला था। न जाने क्यों उस ने क्लियोपेट्रा की सहायता करने की ठान ली। क्लियो-पेट्रा का भाई मारा गया। अब सीजर और क्लियोपेट्रा का प्रेम संबंध आरंभ हुआ। क्लियोपेट्रा का एक और छोटा भाई अब उस से शादी करने का अधिकारी था। उन का विवाह भी हो गया लेकिन क्लियोपेट्रा कुछ और ही चाहती थी। उस ने अपने इस भाई को जहर दे कर मार डाला।

अकेले मिस्र का साम्राज्य उस के लिए काफी नहीं था, वह पूरी दुनिया की मलिका बनना चाहती थी। रोम का साम्राज्य हस्तगत किये बिना यह संभव नहीं था अतः उस ने सीजर को अपने यौवन की हाला पिलाना शुरू किया। एक वर्ष वह रोम में रही, खुले तौर पर सीजर की प्रेमिका के रूप में। सीजर की मृत्यु पर वह गुप्त रूप से अपनी राजधानी सिक-दरिया लौट गयी।

अब मार्क एंटनी ने उसे अपने सामने हाजिर होने का हुक्म दिया। इस समय एंटनी की उम्र ४२ साल की थी और क्लियोपेट्रा की २८ साल। क्लियोपेट्रा को रूपवती नहीं कहा जा सकता था। उस का नाक नक्श सौंदर्यशास्त्र की कसौटी पर पूरा नहीं उतरता था। उस का रंग सावला था लेकिन आकर्षण अतुलनीय। उस की आंखों में जादू था, उस के होंठों में थिरकन थी। उस का शरीर गजब का सुडौल था। जो उसे देखता बस देखता ही रह जाता।

क्लियोपेट्रा तारसस नगर में एंटनी के दरबार में हाजिर हुई। उस पर आरोप था—सीजर के शत्रुओं की मदद करना। शायद यह सही भी था।

क्लियोपेट्रा के जादू का दीवाना एंटनी उस के साथ सिकंदरिया चला गया और वहीं रहने लगा। वह खुश थी, उस की राजनीतिक महत्वाकांक्षा पूरी होने के आसार दिखायी देने लगे थे। स्त्रियों को खिलौना समझने वाला गर्वीला पुरुष मार्क एंटनी उस के कब्जे में था। आमोद-प्रमोद और दावतों का दौर-दौरा चलने लगा। धन नील नदी के पानी की तरह बहने लगा।

रोम एंटनी के व्यवहार से खुश नहीं था। आक्टेविएनस मौके के इंतजार में था। जब एंटनी ने सिक-दरिया में एक विशेष दरबार कर यह घोषित किया कि अब से पूर्वी रोमन साम्राज्य और मिस्र एक हुए और 'राजाओं की रानी' क्लियोपेट्रा और वह संयुक्त रूप से शासन करेंगे तथा उन दोनों की संतान भविष्य में इस साम्राज्य की मालिक होगी तो आक्टे-विएनस और भी भड़क उठा। एंटनी की पत्नी आक्टेविया आक्टेविएनस की बहिन थी। महान सीजर के दत्तक पुत्र के लिए अपनी बहिन का यह अपमान सह्य नहीं था। एंटनी को नीचा दिखाने की योजनाएं बनायी जाने लगीं।

सत्ता और प्रेम के मद में चूर एंटनी ने रोम के तत्कालीन शासकों और संस्कृति से अपना संबंध पूरी

तरह तोड़ने का निर्णय कर लिया। उस ने अपनी वसीयत तैयार की। विशेष संदेशवाहकों का एक दल उस की वसीयत ले कर रोम पहुंचा। उन्होंने यह गुप्त वसीयत एक मंदिर में जमा कर दी। एक बार उस मंदिर में जमा होने पर वसीयत अटल हो जाती थी। नियम यह था कि वसीयत करने वाले की मृत्यु से पहले उस मंदिर में रखी वसीयत खोली नहीं जा सकती थी। रोम के साम्राज्य के लिए इस वसीयत का बहुत महत्व था। पूर्व में इतने बड़े, शक्तिशाली और स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना रोम के लिए बहुत बड़ा खतरा थी। एंटनी ने अपनी वसीयत में क्या लिखा है—आक्टेविएनस के लिए यह जानना जरूरी था।

देवताओं की नाराजगी और धार्मिक परंपरा के खंडन की चिंता किये बिना वह कुछ सैनिकों को ले कर मंदिर में जबरदस्ती घुस गया, और वसीयत उठा लाया। वसीयत सीनेट में खोली और पढ़ी गयी। वसीयत में एक शर्त यह थी: अगर एंटनी की मृत्यु रोम में हो तो उस का शव एक जुलूस द्वारा फोरम में घूमता हुआ बंदरगाह लाया जाये और एक जहाज द्वारा सिकंदरिया पहुंचा कर क्लियोपेट्रा के हवाले कर दिया जाये।

सारा रोम क्रोध की ज्वाला में दहक उठा। रोम की संतान की यह मजाल कि रोम का अपमान करे! सीनेट ने एक बार फिर एंटनी को रोम का दुश्मन घोषित कर दिया। रोम के दुश्मन के साथ युद्ध होना अवश्यंभावी था।

रोम ने एंटनी को न्योता दिया कि वह अपनी सेनाएं इटली लाये और युद्ध द्वारा सभी मतभेदों का निर्णय कर ले। एंटनी को इटली के बंदरगाहों पर सेना उतारने और युद्ध के मैदान में उन्हें संगठित करने की सुविधा दी जायेगी।

एंटनी ने अपनी सेनाएं इटली लाने से इनकार कर दिया। उस ने कहा कि यूनान के मैदान में आओ, दोनों सेनाएं अपने घर से दूर पहुंचें और बराबर की चोट हो। रोम ने चुनौती स्वीकार कर ली। ईसा के जन्म से ३१ वर्ष पहले यूनान में एक्तियम के मैदान में यूरोप की सेनाएं जुड़ने लगीं। रोम का महाभारत होने को था। इस युद्ध में आने वाली कई शताब्दियों के लिए यूरोप के भाग्य का निर्णय होना था।

एक्तियम का मैदान समुद्र के किनारे था। आक्टेविएनस ने अपनी एक लाख सेना को जहाजों के जरिये मैदान में उतारना शुरू किया। उस के पास लगभग ४०० जंगी जहाज भी थे। उस प्राचीन काल में इतनी सेना पानी से उतारना हंसी-खेल नहीं था। आज भी इतने सैनिकों को सागर पार पहुंचाने से पहले सरकारों को कई बार सोचना पड़ता है।

एंटनी की सेना भी रोम की सेना से कम नहीं थी। वह पहले से एक लाख सैनिक मैदान में डाले पड़ा था और उस के तथा क्लियोपेट्रा के ५०० जंगी जहाज समुद्र में थे। रोम के जहाज हलके फुलके थे और आसानी से हर तरफ मोड़े जा सकते थे।

मिस्र के जंगी बेड़े के जहाज विशाल-काय थे। हर जहाज एक किले-जैसा था, जिन के छज्जों तथा बुर्जियों से रोम के जहाजों पर आग, पत्थर और लोहा बरसाये जा सकते थे।

इतनी तैयारियों के बाद २ सितंबर को लड़ाई का दिन आया। दोपहर को सेनाओं ने मोर्चे संभाल लिये। छिटपुट लड़ाई शुरू हुई। मुख्य सेनाएं अभी खड़ी तमाशा देख रही थीं। रोम के हलके जहाज मिस्र के भारी बेड़े के चारों तरफ मंडराने लगे। लेकिन युद्ध नहीं हो सका। पता नहीं क्या हुआ जो क्लियोपेट्रा घबरा गयी। वह जंगी बेड़े का नेतृत्व कर रही थी। उस ने अपने जहाज 'एंटोनिया' को आदेश दिया कि मिस्र की तरफ लौटो। उस के साथ ही पूरा जंगी बेड़ा भाग खड़ा हुआ।

एंटनी की पैदल सेना के १९ विशाल विभाग थे और घुड़सवारों की संख्या दस हजार थी। सारे यूरोप तथा पश्चिमी एशिया के श्रेष्ठ योद्धा अपनी जान बलिवेदी पर चढ़ाने के लिए तैयार खड़े थे। लेकिन एंटनी ने क्लियोपेट्रा के बेड़े को मिस्र की तरफ जाते देखा तो वह भी भाग खड़ा हुआ। क्लियोपेट्रा के लिए एक लाख सैनिकों और इतिहास के साथ विश्वासघात करते उसे रत्ती भर लाज न आयी।

एक हलके जहाज में एंटनी ने क्लियोपेट्रा के जहाज का पीछा किया। जहाज पर पहुंच कर वह उस के अगले भाग में बैठ गया। कहते हैं कि वह तीन दिन और तीन रात अपनी आंखों को अपने हाथों से ढके बैठा रहा। बाद में वह जीवन से विरक्त हो गया। उसे जीवन की चाह न रही। क्लियोपेट्रा छोटे-मोटे युद्ध करके धन इकट्ठा करती रही। वह एक नयी राजधानी बनवा रही थी। लेकिन एंटनी ने दुनियादारी छोड़ दी थी। वह समुद्र के किनारे एक झोंपड़ी में रहने लगा।

विजयी आक्टेवियनस बढ़ा चला आ रहा था। सब जानते थे कि उस के आते ही एंटनी के जीवन का अंत हो जायेगा। शराब और निराशा

"मेरी कविता ध्यान से सुनने वाले आप ही मिले।"
"जरा जोर से बोलिये! कुछ ऊंचा सुनता हूं।"

ने एंटनी को अचानक वृद्धा कर दिया था। वह जीवित था, सांस लेता था लेकिन मरे से बदतर था। उस की सूनी आंखें चारों ओर ताकतीं, कुछ समझ में न आता और फिर वह अपने दोनों हाथों से अपनी आंखें ढक लेता। अंतिम दिनों में क्लियोपेट्रा भी एंटनी से घृणा करने लगी थी और उस का मुंह तक न देखना चाहती थी।

आक्टेविएनस ने क्लियोपेट्रा के पास संदेश भिजवाया कि अगर वह एंटनी को मार दे तो उस की जान बख्श दी जायेगी। लेकिन क्लियोपेट्रा के लिए यह प्रस्ताव घृणित था। उस ने संदेशवाहक को लौटा दिया।

महत्वाकांक्षिणी क्लियोपेट्रा की आशाएं अब धूल मे मिल चुकी थीं। वह भी अपनी मौत का इंतजार कर रही थी। वह नहीं चाहती थी कि कोई उसे तड़पा-तड़पा कर मारे। इसलिए उस ने अपनी मौत को आसान बनाने के लिए विषों का अध्ययन शुरू किया। वह नयी से नयी किस्म का जहर मंगाती और अपने दास-दासियों पर उन का परीक्षण करती। आक्टेविएनस जानता था कि जल्दबाजी से उसे विशेष लाभ न होगा अत वह धीरे-धीरे सिकंदरिया पहुंचा।

एंटनी ने कवच पहना और हथियार उठाये। एक्तियम के मैदान से बगैर लड़े भाग आने वाला वीर अपने चंद अंगरक्षकों को लिये रोम के साम्राज्य से लड़ने पहुंचा। शीघ्र ही मिस्र के बेड़े ने हथियार डाल दिये और उस के अंगरक्षक भाग गये। वह अकेला लौट पड़ा। पागलों की तरह चीखता-चिल्लाता और क्लियोपेट्रा को गद्दार घोषित करता हुआ वह सिकंदरिया में घुसा। उस की प्रेमिका उस समय एक बहुत ऊंची इमारत में थी। यह उस का विषागार था। दरवाजे बंद थे और एंटनी को घुसने की इजाजत नहीं मिली।

एंटनी ने फैसला किया कि वह अकेला ही मरेगा, लेकिन उस में स्वयं मरने की हिम्मत न थी। उस ने अपने एकमात्र बचे अंगरक्षक को आज्ञा दी कि वह उस के शरीर में तलवार घोंप दे। अंगरक्षक ने उलटे अपनी ही आत्महत्या कर ली। अब एंटनी विवश था। जी कड़ा करके उस ने एक कटार से अपना पेट फाड डाला।

तभी क्लियोपेट्रा का बुलावा आया। दरवाजे नहीं खोले गये, ऊपर की मंजिल की एक खिडकी खुली और रस्सियां लटक गयीं। इन में एंटनी को बांध दिया गया। स्वयं क्लियोपेट्रा दासियों के साथ रस्सी खींच रही थी। इस अंतिम क्षण में क्लियोपेट्रा ने अपने हाथों से एंटनी के घाव पोंछे। मरते समय भी एंटनी को शराब याद आयी। उस ने शराब लाने को कहा।

एंटनी की अपेक्षा क्लियोपेट्रा की मृत्यु सम्मानपूर्ण हुई। आक्टेविएनस ने उस के सामने संधि की केवल एक शर्त रखी—वह रोम में उस के विजय-उत्सव में जंजीरों में बंधी उपस्थित हो। 'राजाओं की रानी' ने प्रस्ताव ठुकरा दिया और किंवदंती के अनुसार अपने को एक विषधर से कटवा कर आत्महत्या कर ली। ●

मूसलाधार वर्षा हो रही थी। १० बजे अचानक हमारे मकान का एक भाग गिर गया। उस भाग में हमारे चाचा रहते थे। उस समय वहां एक खाट पर उन के पिताजी, एक पुत्र तथा दूसरी खाट पर चार छोटे बच्चे सो रहे थे। उस भाग की दो मंजिलें एकसाथ बैठ गयी थीं अत: उन लोगों के बचने की कोई आशा नहीं थी। सेना के ५० जवान दो घंटे की कड़ी मेहनत के बाद मलबा साफ कर पाये। चाचाजी के पिताजी तथा उन के साथ सोये लडके की मृत्यु हो चुकी थी। लेकिन आश्चर्यजनक यह था कि दूसरी खाट पर सोये चारों बच्चे सुरक्षित थे। खाट के सिरहाने तथा पायताने की लकड़िया टूट गयी थीं। शेष दोनों आपस में मिल गयी थी, इस प्रकार एक झूला सा बन गया था। चारों बच्चे उसी में झूल रहे थे। दो मंजिलों के मलबे में दब कर भी जीवित बच जाना चमत्कार ही था।

—भागवतप्रसाद मिश्र, इंदौर

लगभग २५ वर्ष पहले मेरा परिचय श्री अनिलकुमार हल्दार से हुआ था। ज्यों-ज्यों मैं उन के निकट संपर्क में आता गया, मेरे प्रति उन का स्नेह बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे वे हमारे घर के एक सदस्य हो गये। हम लोग उन्हें दादा कहते थे और वे मुझे अपने छोटे भाई-जैसा ही प्यार करते थे। मेरे छोटे से घर में शायद ही कोई ऐसा कमरा होगा जिस में हल्दारजी का बनाया कोई चित्र न लगा हो।

उन दिनों न जाने क्यों उन की बहुत याद आ रही थी। बहुत दिनों से उन से मुलाकात भी नहीं हुई थी, इस से सोचा कि एक पत्र लिख कर उन की कुशल-क्षेम पूछ लूं। लेकिन उसी दिन अचानक एक काम से लखनऊ जाना जरूरी हो गया। सोचा कि इस बार उन से भी मिल लूंगा।

ने एंटनी को अचानक बूढा कर दिया था। वह जीवित था, सांस लेता था लेकिन मरे से बदतर था। उस की सूनी आंखें चारों ओर ताकतीं, कुछ समझ में न आता और फिर वह अपने दोनों हाथों से अपनी आंखें ढक लेता। अंतिम दिनों में क्लियोपेट्रा भी एंटनी से घृणा करने लगी थी और उस का मुंह तक न देखना चाहती थी।

आक्टेविएनस ने क्लियोपेट्रा के पास संदेश भिजवाया कि अगर वह एंटनी को मार दे तो उस की जान बख्श दी जायेगी। लेकिन क्लियो-पेट्रा के लिए यह प्रस्ताव घृणित था। उस ने संदेशवाहक को लौटा दिया।

महत्त्वाकांक्षिणी क्लियोपेट्रा की आशाएं अब धूल में मिल चुकी थीं। वह भी अपनी मौत का इंतजार कर रही थी। वह नहीं चाहती थी कि कोई उसे तड़पा-तड़पा कर मारे। इसलिए उस ने अपनी मौत को आसान बनाने के लिए विषों का अध्ययन शुरू किया। वह नयी से नयी किस्म का जहर मंगाती और अपने दास-दासियों पर उन का परीक्षण करती। आक्टे-विएनस जानता था कि जल्दबाजी से उसे विशेष लाभ न होगा अत. वह धीरे-धीरे सिकंदरिया पहुंचा।

एंटनी ने कवच पहना और हथि-यार उठाये। एक्तियम के मैदान से बगैर लड़े भाग आने वाला वीर अपने चंद अंगरक्षकों को लिये रोम के साम्राज्य से लड़ने पहुंचा। शीघ्र ही मिस्र के बेड़े ने हथियार डाल दिये और उस के अंगरक्षक भाग गये। वह अकेला लौट पड़ा। पागलों की तरह चीखता-चिल्लाता और क्लियो-पेट्रा को गद्दार घोषित करता हुआ वह सिकंदरिया में घुसा। उस की प्रेमिका उस समय एक बहुत ऊंची इमारत में थी। यह उस का विषा-गार था। दरवाजे बंद थे और एंटनी को घुसने की इजाजत नहीं मिली।

एंटनी ने फैसला किया कि वह अकेला ही मरेगा, लेकिन उस में स्वयं मरने की हिम्मत न थी। उस ने अपने एकमात्र बचे अंगरक्षक को आज्ञा दी कि वह उस के शरीर में तलवार घोंप दे। अंगरक्षक ने उलटे अपनी ही आत्महत्या कर ली। अब एंटनी विवश था। जी कड़ा करके उस ने एक कटार से अपना पेट फाड डाला।

तभी क्लियोपेट्रा का बुलावा आया। दरवाजे नहीं खोले गये, ऊपर की मंजिल की एक खिड़की खुली और रस्सियां लटक गयीं। इन में एंटनी को बांध दिया गया। स्वयं क्लियो-पेट्रा दासियों के साथ रस्सी खींच रही थी। इस अंतिम क्षण में क्लियो-पेट्रा ने अपने हाथों से एंटनी के घाव पोंछे। मरते समय भी एंटनी को शराब याद आयी। उस ने शराब लाने को कहा।

एंटनी की अपेक्षा क्लियोपेट्रा की मृत्यु सम्मानपूर्ण हुई। आक्टेविएनस ने उस के सामने संधि की केवल एक शर्त रखी—वह रोम में उस के विजय-उत्सव में जंजीरों में बंधी उपस्थित हो। 'राजाओं की रानी' ने प्रस्ताव ठुकरा दिया और किंवदंती के अनुसार अपने को एक विषधर से कटवा कर आत्महत्या कर ली। ●

अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया हो। एक दिन मुझे अपने एक अध्यापक मिले। मैं ने उन्हें बतलाया कि प्राध्यापिका हो गयी हूं। मेरी आशा के विपरीत वे प्रसन्न नहीं हुए। कहने लगे, "अच्छा है थोड़ा-बहुत काम करती हो लेकिन इस उम्र में इतना आलसी होना उचित नहीं है।"

मैं ने आश्चर्यचकित हो कर कहा, "मैं आलसी कहां हूं, मैं तो पूरे समय की नौकरी कर रही हूं।"

इस पर वे बोले, "एक बात याद रखो, आलसी सिर्फ उसे ही नहीं कहते जो कुछ काम न करता हो, आलसी उसे भी कहते हैं जो अपने कार्य से कहीं अधिक और कहीं अच्छा कार्य करने की क्षमता रखता हो पर करता नहीं।" उन की इस बात में एक बहुत बड़ा सत्य निहित था। मैं ने उसी दिन से अपने खाली समय का सदुपयोग करना शुरू कर दिया। यह शायद अध्यापक महोदय के उसी कथन का फल है कि मैं पी-एच. डी. के प्रबंध को करीब-करीब समाप्त कर चुकी हूं।

—के. सक्सेना, लखनऊ

यह घटना लगभग २५ वर्ष पुरानी है। तब मैं बच्चा ही था। हमारे महल्ले में उस समय एक 'कसाई भूत' का आतंक फैला हुआ था। अफवाह थी कि एक कसाई, जो रेलगाड़ी से कट कर मर गया था, भूत बन कर आधी रात को पूरे महल्ले का चक्कर लगा कर रोटी मांगता है। 'कसाई भूत' को देखने के लिए मैं रात को काफी देर तक जागने का प्रयत्न करता था। एक रात अचानक मेरी नींद खुल गयी। दूर के रेलवे पुल के पास से एक डरावनी आवाज आ रही थी। धीरे-धीरे वह आवाज पास आती जान पड़ी, फिर स्पष्ट होने लगी। 'रोटी दो' तथा 'लो गोश्त'—ये आवाजें साफ सुनायी पड़ने लगीं। मैं डर तो गया था लेकिन भूत देखने की उत्सुकता को न दबा सका। धीरे से उठ कर खिड़की के पास खड़ा हो गया। देखा कि एक काली छाया हमारे पड़ोसी के घर के सामने खड़ी थी। धीरे-धीरे उस छाया ने पड़ोसी के घर का दरवाजा तोड़ा। अचानक मुझे खयाल आया कि कहीं वह चोर न हो। उन दिनों चोरियां भी खूब हो रही थीं। यह विचार आते ही मैं जोरों से चीखा और फिर बेहोश हो गया। सवेरे पता चला कि वह चोर ही था जो मेरी चीख सुन कर भाग गया था। महल्ले के लोग भी मेरी आवाज सुन कर जाग गये थे, उन्होंने भी उस 'कसाई भूत' अथवा चोर को देखा था। इस के बाद से महल्ले में उस 'कसाई भूत' की आवाज कभी सुनायी नहीं पड़ी।

—बाबूलाल शाक्य, भोपाल

इस अंक के पुरस्कार-विजेता क्रमशः इस प्रकार हैं—सुरेशसिंह, महावीरप्रसाद मिश्र, जगन्नाथप्रसाद। प्रथम पुरस्कार २५ रुपये, द्वितीय १५ रुपये तथा तृतीय १० रुपये। शेष प्रकाशित संस्मरणों पर ५-५ रुपये।

लखनऊ पहुचा तो पता चला कि मेरे भाई साहब बीमार हो कर एक मित्र के घर पडे हैं, जो गोमती किनारे हैं। दिन भर कुछ आवश्यक कार्यों में फसे रहने के कारण उन के पास न पहुच सका। शाम को जब उन मित्र की कोठी तलाशते हुए गोमती किनारे पहुचा, तो घाट पर किसी के दाह-सस्कार के लिए काफी बडा जन-समुदाय एकत्रित देखा।

एक व्यक्ति से पूछने पर जो उत्तर मिला उसे सुनने के लिए मेरा हृदय तैयार नहीं था। दादा, जिन की पाच-सात दिनों से रह-रह कर बहुत याद आ रही थी और जिन से मिलने के लिए इस बार तैयार हो कर लखनऊ आया था, इस ससार को छोड़ कर चले गये थे।

सयोग ही था कि मेरे भाई साहब बीमार पड कर एक ऐसे मकान में ठहरे जहा वे पहले कभी नही ठहरे थे, और मैं भी ठीक उसी समय वहा पहुचा जब दादा का दाह-सस्कार हो रहा था—जैसे उन की अतिम क्रिया में शरीक होने के लिए ही कोई अज्ञात शक्ति मुझे सौ मील की दूरी से खीच लायी थी। १२ फरवरी, १९६४ को हमारे देश का यह महान कलाकार ७५ वर्ष की आयु बिता कर सदा के लिए सो चुका था।

—सुरेशसिंह, काला-कांकर

परीक्षा देने के बाद मैं पन्ना स्टेट अपने पितामह के यहां गया था। एक सुबह वहा सायबान के नीचे लेटा अखबार पढ रहा था। पास ही के कमरे में पितामह थे। मुझे प्यास लगी तो रामदीन को पुकारा। दो बार आवाज देने पर उस ने सुना क्योंकि वह नीचे रसोईघर में था। थोड़ी देर बाद आया और पानी दे कर चला गया। तब पितामह ने मुझे बुलाया। पूछा, "बडे जोर की प्यास लगी थी ?"

मैं ने उत्तर दिया, "जी हा !"

क्षण भर चुप रह कर पितामह फिर बोले, "तुम्हारे सिरहाने ही घडा, लोटा, गिलास सब कुछ रखा है। खुद उठ कर पानी पी लेते। बडे जोर की प्यास लगने पर भी तुम्हे इतना धैर्य कैसे हुआ कि नौकर पानी उड़ेल कर दे तब तुम्हारी प्यास बुझे ?"

मैं चुप रहा। वे कहते गये, "नौकर-चाकर सेवा के लिए ही रखे जाते हैं। मेरे भाग्य अच्छे थे, अतः मिनिस्टर हुआ। तीन-चार नौकर रख सका। हो सकता है, तुम्हारा भाग्य इतना अच्छा न हो, या इतना खराब हो कि एक भी नौकर न रख सको।"

पितामह की यह बात मुझे आज तक याद है। नौकर होते हुए भी कभी उन से पानी नही मागता, अपना सारा कार्य स्वय करता हू।

—जगन्नाथप्रसाद, लखनऊ

मुझे एम. ए करने के बाद ही एक स्थानीय कालेज में प्राध्यापिका का स्थान मिल गया था। दिन में केवल तीन घटे पढाना पडता था, शेष समय गपशप करने में व्यतीत होता था। मैं संतुष्ट थी, मानो मैं ने

पांव उठा कर नीचे नरक की ओर लटका दिया।

उस समय कान्तदत्त अन्य पापियों के साथ लहू के तालाब में गोते खा रहा था।

चारों ओर सघन अंधकार था। केवल ऊंची पर्वत की अस्पष्ट-सी आकृति दिखायी देती थी। चारों ओर मौत-जैसी स्तब्धता छायी हुई थी, जिसे केवल जब-तब पापियों की धीमी कराहें तोड़ जाती थीं। उन की कराहें धीमी थीं क्योंकि विभिन्न प्रकार की यातनाओं को निरंतर सहते हुए उन में ऊंची आवाज में चीखने की शक्ति नहीं रह गयी थी।

कान्तदत्त यद्यपि अच्छा तगड़ा डाकू रहा था लेकिन इस समय वह

जापानी कहानी

मकड़ी का धागा
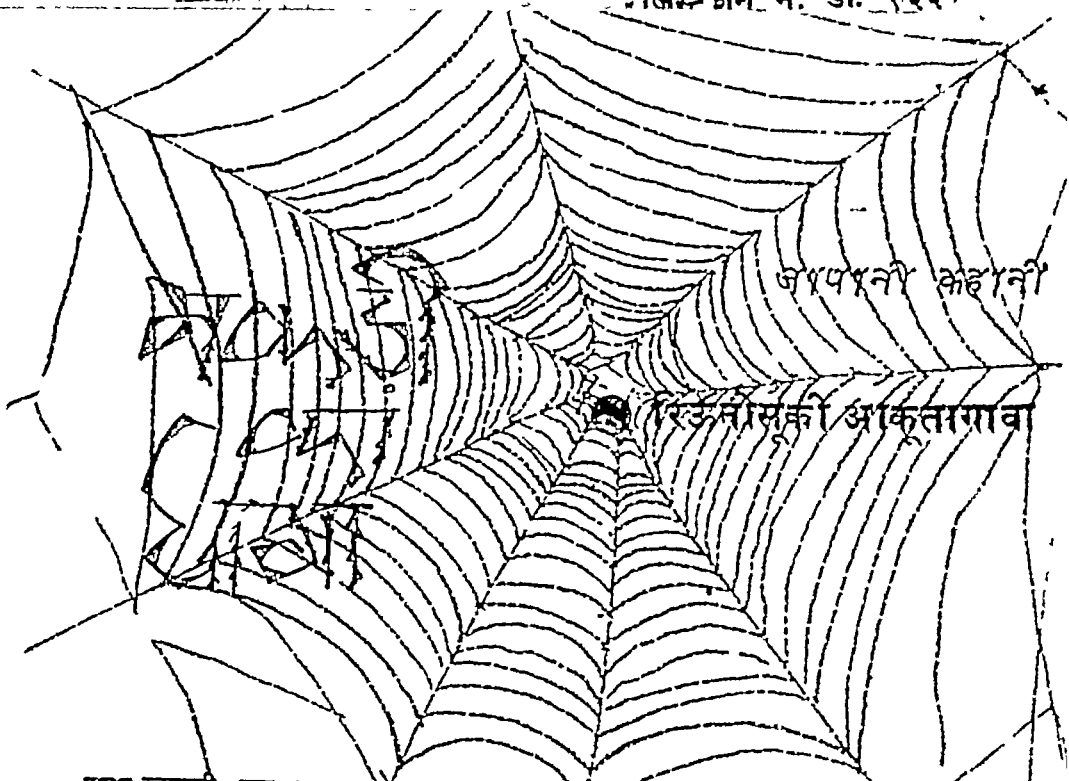
रिउनोसुके आकुतागावा

सुखावती का वह प्रातःकाल ! गौतम बुद्ध कमल-सरोवर के किनारे अकेले ही टहल रहे थे। खिले हुए मोतियों-जैसे शुभ्र कमल अपने पराग की सुगंध से वातावरण को दूर-दूर तक महका रहे थे। सरोवर के ठीक नीचे नरक था। अचानक बुद्ध ने पानी में झांका। पारदर्शक पानी में नरक का दृश्य स्पष्ट था। नरक की ओर बहने वाली अंधकार की त्रिधारा तथा सूची पर्वत के शिखर भी साफ दृष्टिगोचर हो रहे थे। बुद्ध की दृष्टि कान्हदत्त पर ठहर गयी। नरक की भयंकर पीड़ा से उस के अंग-प्रत्यंग ऐंठ रहे थे।

कान्हदत्त अपने जीवनकाल में कुख्यात डाकू रहा था। उस ने असंख्य अपराध किये। जाने कितनों की संपत्ति लूटी, कितनी हत्याएं कीं, कितने घर जलाये ! लेकिन अपने जीवन में उस ने एक अच्छा काम भी किया था। एक बार वह घने जंगल से हो कर जा रहा था कि उसे नीचे मार्ग पर एक मकड़ी दिखी। वह उसे कुचलने ही वाला था कि उसे ध्यान आया कि इस छोटे-से जीव में भी आत्मा है और इसे अकारण नहीं मारना चाहिये। यह सोच कर उस ने मकड़ी को जीवित छोड़ दिया था।

नरक का दृश्य देखते हुए बुद्ध को उक्त घटना याद आ गयी। उन्होंने सोचा कि उस अच्छे काम के बदले कान्हदत्त को नरक की घोर यातनाओं से मुक्ति दिला दी जाये। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी—एक मकड़ी कमल के एक पत्ते पर अपने सुन्दर रुपहले धागे से जाला बुन रही थी। बुद्ध ने धीरे से वह

डाली। खून का तालाब दृष्टि से ओझल हो चुका था। आंखों के नीचे घन अंधकार की चादरें फैली थीं। सूची पर्वत के शिखरों की आकृति अब अस्पष्ट-सी दिखायी दे रही थी। "अगर मैं इसी गति से ऊपर चढ़ता रहा तो नरक से निकलना ज्यादा कठिन नहीं होगा," उस ने सोचा। कान्ह-दत्त हंसा और उस के मुंह से निकला, "मैं बच जाऊंगा। मैं बच जाऊंगा!" नरक में आने के वर्षों बाद उस के चेहरे पर हंसी फूटी थी।

तभी उस ने देखा कि नरक से निकल कर धागे को पकड़े हुए अन-गिनत पापी ऊपर चढ़े आ रहे हैं। लगता था जैसे चींटियों की कतार चढ़ी चली आ रही हो। कान्हदत्त ने एक क्षण के लिए अपनी आखें झपकायीं और उस का मुख आश्चर्य और भय से खुला रह गया।

"भला यह मकड़ी का धागा, जो मेरे भार से ही टूट सकता था, किस प्रकार इतने व्यक्तियों का भार झेल सकेगा। अगर यह बीच में ही टूट गया तो इतने प्रयत्नों पर पानी फिर जायेगा और मैं फिर से नरक में गिर पड़ूंगा," उस ने सोचा।

हजारों पापी लहू के तालाब से बाहर निकल कर अपनी पूरी शक्ति से उस पतले चमकदार धागे को पकड़ कर ऊपर चढ़े आ रहे थे। यदि तत्काल ही कोई कदम नहीं उठाया तो धागा टूट सकता था। अतएव उस ने ऊंची आवाज में कहा, "पापियो! यह धागा मेरा है। तुम्हें ऊपर आने की अनुमति किस ने दी? नीचे उतरो। उतरो नीचे।"

और उसी क्षण वह धागा, जिस के टूटने का तब तक कोई लक्षण नहीं दिखायी देता था, अचानक उसी स्थान से टूट गया जहां से कान्हदत्त उसे पकड़े हुए था। इस के पहले कि उस के मुंह से चीख निकलती, वह सिर के बल अंधकार में लट्टू की तरह घूमता हुआ नीचे गिरने लगा।

उस के बाद भी सुखावती की मकड़ी का वह टूटा हुआ धागा नरक के चाद-नारों से हीन अंधकारमय आकाश में लटकता रहा।

सुखावती के कमल-सरोवर के किनारे खड़े बुद्ध यह सब देख रहे थे। जब कान्हदत्त लहू के तालाब में फिर डूब गया तो उन के चेहरे पर उदासी की रेखाएं घनी हो आयीं।

बुद्ध के चरणों के आस-पास शुभ्र कमल उसी तरह लहरा रहे थे और पराग उसी तरह वातावरण को सुगं-धित कर रहा था मानो कुछ हुआ ही न हो।

सुखावती में दोपहर हो रही थी।

"बेटा, मैं तुम से कई बार कह चुकी हूं कि बड़ों की बात नहीं काटनी चाहिये। जब वे चुप हो जायें, तब तुम बोला करो।"

"अगर इस सलाह को मानूं मां, तब तो मैं जिन्दगी भर नहीं बोल पाऊंगा।"
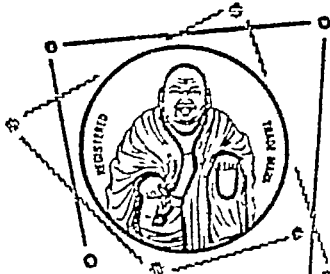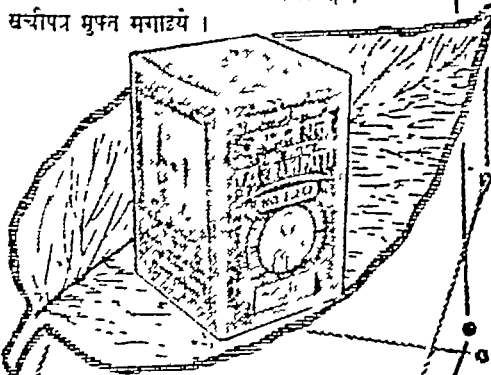
असहाय-सा किसी मरे हुए मेढक की तरह खून के तालाब में उतरा रहा था। उस की सांस बार-बार रुकने को हो जाती थी।

कान्हदत्त ने अकस्मात सिर उठा कर ऊपर देखा। ऊपर सुखावती से मकडी का धागा नीचे आ रहा था। घोर अंधकार में वह धागा रह-रह कर चमक उठता था। उस की चमक देख कर ऐसा प्रतीत होता मानो उसे नरकवासियों की आखों से डर लग रहा हो।

धागे को देखते ही कान्हदत्त खुशी से भर गया। उस ने सोचा, "अगर इसे पकड़ कर मैं ऊपर चढ़ता जाऊं तो इस नरक से बाहर निकल सकता हू। यह हो सकता है कि मैं सुखावती तक ही पहुंच जाऊं। तब मुझे इस सूची पर्वत पर नहीं चलना पडेगा और न ही लहू के तालाब में गोते खाने पडेंगे।"

उस ने तुरंत धागे को दोनों हाथों से कस कर पकड लिया और पूरी शक्ति लगा कर ऊपर, और ऊपर चढ़ने लगा। वह डाकू रह चुका था इसलिए ऊपर चढ़ने में उसे कठिनाई नहीं हुई। पर नरक सुखावती से पता नहीं कितने हजार योजन दूर था। कान्हदत्त चाहे जितना प्रयत्न करता, आसानी से बाहर निकलना सभव नही था। कुछ ऊपर चढने के पश्चात वह इतना थक गया कि अब और ऊपर चढना उस के लिए असभव था। अत वह रुक कर लटके-लटके ही विश्राम करने लगा।

अब उस ने नीचे की ओर दृष्टि

काका कालेलकर

अमरीका के इतिहास में नीग्रो समस्या बहुत महत्व रखती है। इस समस्या से भारत अप्रत्यक्ष रूप से शुरू से ही संबंधित है। इस के कुछ कारण हैं। भारत प्राचीन तथा मध्य युगों में अपने गृह-उद्योगों तथा हस्त-कलाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। यही

दर्द कहां से लाऊं

इतने दर्द कहां से लाऊं
हर घायल पीड़ा सहलाऊं
बरबस सब उदासी वाले, सब की उमर सहज चुक जाये

मुश्किल से दो-चार बार ही
मुस्कानों से बात हुई है
लगा कि शरमीली दुलहिन है या फिर कोई छुईमुई है
आंसू तो मेरी सम्पत्ति हैं, लेकिन मांग बहुत ज्यादा है
इतने अश्रु कहां से लाऊं
धरती की साधें वर पाऊं
पावस के मेघों का मस्तक लज्जा से बरबस झुक जाये

गीत रचे इतने कान्हा ने
जितनी छोरी गागर तोड़ीं
और राह इतनी बदली है, रवि ने जितनी रासें मोड़ीं
तन-मन अर्थ समर्पित कर दूं, मान तुम्हारा यदि रह जाये
इतने गीत कहां से लाऊं
जो समान वितरण कर पाऊं
समता का चढ़ता सूरज भी जिसे देखने को रुक जाये

— निखिल संन्यासी —

ऐसी 'गिरमिटिया प्रणाली' (किसी उपनिवेश में गया हुआ शर्तबंद हिंदुस्तानी मजदूर) से भारतीयों को अमरीका, अफ्रीका, मारीशस आदि स्थानों में ले जाया गया। फिर इन मजदूरों के अस्तित्व का एक दूसरा सवाल खड़ा हो गया। नीग्रो और गिरमिटिया गोरों से तो असंतुष्ट हैं ही, लेकिन उन में आपस में भी नहीं बनती। उन के सांप्रदायिक झगड़ों के पीछे गोरों का भी काफी हाथ रहता है।

१९५८ में अमरीका-यात्रा के समय मेरा एक मात्र उद्देश्य वहां की नीग्रो-समस्या का अध्ययन करना था। वहां दो स्थानों का मेरे लिए विशेष आकर्षण था—टस्कनी और मोंटगोमरी। शिक्षा के क्षेत्र में जिस नीग्रो ने अपनी जाति का असाधारण नेतृत्व किया था, उस का नाम बुकर टी. वाशिंगटन है। १९११ के लगभग मैं ने बुकर वाशिंगटन का आत्म-चरित्र पढ़ा था। मैं ने तुरंत ही उन के जीवन संबंधी पूरा साहित्य मंगाया और उस की जानकारी मराठी-भाषी लोगों को दी। जिस गोरे धर्मात्मा ने बुकर वाशिंगटन को शिक्षा एवं संस्कार दिये थे, उन की शिक्षा-प्रणाली और महात्मा गांधी की बुनियादी तालीम में बहुत-कुछ समानता है। १९१०-१२ में मैं ने बुकर वाशिंगटन की शिक्षा-पद्धति के बारे में लेख लिखे थे और पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं। बुकर वाशिंगटन की संस्था टस्कनी में है। आज वह संस्था एक विश्वविद्यालय का आकार ग्रहण कर चुकी है। नीग्रो लोगों के जीवन का अध्ययन करने के लिए मैं अमरीका जाऊं और टस्कनी-संस्थान के दर्शन न करूं, यह कैसे हो सकता था?

रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग की दृष्टि अधिक व्यापक, राजनीतिक और आध्यात्मिक है। उन से मिलना, उन के कार्यों का अध्ययन करना और उस से प्रेरणा पाना भी मेरी अमरीका-यात्रा का उद्देश्य था। रेवरेंड किंग को अपनी पत्नी कोरेटा का पूर्ण सहयोग मिलता है। इस दंपती से मिलने के लिए मैं अपने अमरीकी-स्नेहियों के साथ मोंटगोमरी गया। वहां पहुंच कर मेरी स्पष्ट धारणा बन गयी कि डा. मार्टिन लूथर किंग ही समस्त नीग्रो जाति के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक नेता हैं। अहिंसा के द्वारा दलित नीग्रो जाति के मानवीय-अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्होंने ऐतिहासिक कार्य किये हैं।

जिस दिन हम उन से मिलने पहुंचे, उसी दिन वे बाहर की यात्रा से लौटे थे अतः बेहद व्यस्त थे। फिर भी समय निकाल कर उन्होंने हम से बातें कीं। हम थे तो उन के मेहमान, लेकिन कट्टर शाकाहारी होने के कारण उन्होंने पड़ोस की एक महिला के यहां हमारे रहने-खाने का प्रबंध किया था। गांधी-साहित्य उन्होंने पढ़ा था। हमारे स्वराज्य-आंदोलन के बारे में भी वे जानते थे। मैं ने भी उन के और उन के 'बस-बहिष्कार आंदोलन' के बारे में पढ़ा था। इसलिए हमें बहुत-सी औपचारिक बातें नहीं करनी पड़ीं। उन्होंने एक ही वाक्य में हमें अपनी प्रेरणा का

कारण था कि दुनिया के सभी देश भारत के साथ व्यापारिक संबंध रखने के लिए उत्सुक थे। उस समय भारत और यूरोप के बीच का व्यापार प्रमुख रूप से मुस्लिम देशों के हाथों में था। इन देशों के व्यापारी भारत से माल ले जा कर यूरोप में बेचते और बेशुमार धन कमाते। अपने इस व्यापार में वे यूरोपीय देशों का साझा सहने को तैयार नहीं थे।

यूरोप के व्यापारी भी भारत की संपन्नता के बारे में सुनते थे और उस से व्यापारिक संबंध बनाने के इच्छुक थे। लेकिन यूरोप और भारत के बीच के जल-थल मार्ग मुस्लिम देशों के हाथों में थे अतः यूरोप के व्यापारी भारत पहुंचने के किसी नये समुद्री मार्ग को खोजने में जुट गये। वास्तव में कोलंबस निकला था भारत की खोज मे लेकिन जा पहुंचा अमरीका। इस प्रकार अमरीका की खोज भारत के कारण हुई। बाद में यूरोपीय साहसिक भारत की खोज करने में भी सफल हो गये।

भारत के साथ व्यापार बढा कर वे धनी बने, धन के बल पर उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ायी और अमरीका में अपने उपनिवेश स्थापित किये। मूल-निवासियों की जमीनों पर अधिकार किया, धन भारत से प्राप्त किया लेकिन भूमि और धन के होने पर भी श्रमिकों के बिना उत्पादन संभव न था। इस के लिए गोरों ने आदमियों की लूट मचायी—अफ्रीका जा कर। खरीद कर, उन्हें गुलाम बनाया और जहाजों में लाद कर अमरीका ले आये। आदिवासियों की जमीन, भारत का धन और अफ्रीका के गुलामों की मेहनत—यही है अमरीकी संस्कृति की बुनियाद। काले मजदूर ज्यादातर पश्चिमी अफ्रीका से, नाइगर नदी के तट से, लिये जाते थे। इसीलिए इन को नीग्रो कहा जाने लगा और इसी आधार पर काले आदमियों को यूरोप तथा अमरीका में 'निगर' कह कर गाली दी जाती है। इन असहाय-अनाथ नीग्रो लोगों ने जो अन्याय सहे हैं, वे शायद पशुओं ने भी न सहे हों। अपनी अपनी जीवट के बल पर अपने अस्तित्व के लिए वे निरंतर संघर्ष करते रहे। हारते रहे पर टूटे नहीं। कुछ समय पश्चात गोरों ने देखा कि नीग्रो लोगों की मजदूरी अब महंगी हो रही है अत. उन्हें मुक्त करने में ही हित है। इसलिए उन्होंने विल्बर फोर्स और गैरिजन-जैसे धर्मात्माओं की सीख स्वीकार कर ली और गुलामों को दासता से मुक्त कर दिया। अमरीका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के अभि-यान के बाद नीग्रो लोगों की प्रगति की रफ्तार बढ़ी है। अब अमरीका में 'लिंचिंग' कम हो रह है। (अफ्रीकी गुलामों के अपराधों के लिए उन्हें अदालत में न ले जा कर गोरे उन्हें स्वयं ही मार डालते थे अथवा इच्छित दंड देते थे। इस प्रथा को 'लिंचिंग' कहा जाता है।)

अमरीका में दास-प्रथा की समाप्ति के बाद गोरों के सामने फिर मजदूरों का प्रश्न पैदा हुआ। अब भारत से वे मजदूरों की बहुत बड़ी कमी पूरी करने लगे—अर्द्ध-दास बना कर।

सी बुराइयां दूर कीं और धार्मिक-स्वातंत्र्य की स्थापना की। आप के धार्मिक-इतिहास से ही स्पष्ट है कि धर्म-साधना और सेवा-वृत्ति की पराकाष्ठा ब्रह्मचर्य के द्वारा ही साध्य होती है। यदि चराचर-सृष्टि के साथ पक्षपात रहित एक-सा स्नेह-संबंध स्थापित करना हो, विश्वास को आत्मीयता की सीमा तक बढ़ाना हो तो मन को निर्विकार किये बिना चारा नहीं—यह है हमारी योग-साधना का निष्कर्ष। और यही है—गांधीजी का अभिप्राय। व्यवहार में भी हम देखते हैं कि आदर्श ब्रह्मचारियों का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। एकाग्र हो कर सेवा करने में उन्हें कम बाधाएं रहती हैं। वैसे मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी हर तरह की आध्यात्मिक साधना पूरी कर सकता है, इस में शंका नहीं। ईसा ने स्वयं कहा था कि पूरा ब्रह्मचर्य सब के लिए नहीं है, कुछ लोग ही प्रभु के अनुग्रह से उस का पालन कर सकते हैं।"

अंत में मैं ने उन से कहा कि गांधीजी ने भारत-जैसे विविधता से भरे देश में राष्ट्र-व्यापी सत्याग्रह कैसे चलाया, यह सब देखने के लिए आप को एक बार भारत अवश्य ही आना चाहिये। भारत के ऐसे कई नेता हैं जो गांधीजी के सत्याग्रह में हिस्सा ले चुके हैं, उन के जीते-जी भारत आयें तो आप को अधिक लाभ होगा।

मेरे भारत लौटने के थोड़े ही महीनों बाद मार्टिन लूथर किंग अपनी पत्नी सहित भारत आये। 'गांधी-स्मारक निधि' ने उन के भारत में सर्वत्र घूमने की व्यवस्था की थी। मैं ने भी उन्हें एक समय अपने घर में भोजन के लिए बुलाया।

कुछ समय बाद उन के देश में किसी ने उन पर छुरी चलायी थी और तब उन्हें काफी समय तक अस्पताल में रहना पड़ा था।

१९६४ में नीग्रो लोगों के इस महान नेता को शांति के लिए नोबेल-पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कुछ समय पहले इन्होंने २५,००० यात्रियों को साथ ले कर अब्राहम लिंकन की समाधि की यात्रा कर शांति एवं विश्व-बंधुत्व का जो उपदेश दिया, उस की जितनी सराहना की जाये कम है।

आज दुनिया रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग को अमरीका के एक धर्म-परायण, शांतिवादी, अहिंसावादी तथा महात्मा गांधी के एक सफल शिष्य के रूप में मानती है। डा. किंग ने अपनी जाति को अहिंसक तथा धर्म-परायण सत्याग्रह का रास्ता दिखलाया और उस में सफलता प्राप्त की, इसलिए भारतवासियों के मन में उन के प्रति आत्मीयता का भाव है। ●

नेपिल्स में एक विधुर ने विधवा से सगाई की। बाद में मालूम हुआ कि उस के पहले से ही तीन बच्चे हैं। लेकिन विधुर ने क्रोध में आ कर उसे बुरा-भला नहीं कहा। महाशय समय की प्रतीक्षा करते रहे। विवाह के तुरन्त बाद उन्होंने अपनी प्रथम पत्नी से उत्पन्न पांच बच्चों को घर बुला लिया।

रहस्य बता दिया "मुझे जीवन-मंत्र दिया ईसा ने और धार्मिक जीवन जीने, अधिकारों को प्राप्त करने तथा द्वेष-भावनाओं को मन में जाग्रत किये बिना अहिंसा द्वारा अन्याय का प्रतिकार करने का तंत्र सिखाया महात्मा गांधी ने। मैं उन से मिला नहीं लेकिन मुझे उन के साहित्य और इतिहास से पूरी प्रेरणा और दीक्षा मिली।"

वे फिर बोले, "समस्त जीवन ईश्वर निष्ठा से भर देना तो मैं ने गांधीजी से ही ग्रहण किया। गोरों द्वारा किये जाने वाले परंपरागत अन्याय का प्रतिकार करते हुए मेरे मन में गोरों के प्रति न द्वेष पैदा हुआ और न सत्याग्रह के अंत में विजय पाने पर अभिमान। जो गोरे सज्जन मेरे मित्र थे, उन में से किसी एक की भी मैत्री मैं ने नहीं खोयी। इतना ही नहीं, कुछ विरोधी भी मेरे मित्र बन गये हैं।"

जब हम बातें कर रहे थे, हमारे एक गोरे मित्र श्री हैरी नाइल्स रसोई-घर में श्रीमती कोरेटा किंग को भोजन बनाने में सहायता पहुंचाने के लिए चले गये।

रेवरेंड किंग ने भारत की स्थिति के बारे में और गांधीजी के विषय में मुझ से अनेक सवाल पूछे। उन्हें विस्तार से सब समझाते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई क्योंकि हम दोनों की श्रद्धा एक ही थी। वार्तालाप के अंत में उन्होंने मुझ से बड़ी ही निष्ठा से एक प्रश्न पूछा, "क्या गांधी-मार्ग में पूर्ण ब्रह्मचर्य की शर्त अनिवार्य है?"

मैं समझ गया कि यह प्रश्न सत्याग्रह के बारे में नहीं, धर्म-साधना की दृष्टि से पूछा गया था। मैं ने उन से कहा, "सत्याग्रही-जीवन के लिए पति-पत्नी के बीच संयम का आग्रह गांधीजी रखते थे क्योंकि यह तो चारित्रिक तकाजा है। गांधीजी मानते थे कि आध्यात्मिक मोक्ष के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य जरूरी है।"

फिर मैं ने कहा कि अंतिम दिनों में गांधीजी का विश्वास था कि यदि पति-पत्नी दोनों संतान की इच्छा से ही मिलें, विकार तृप्ति के लिए नहीं, तो उन के लिए वह ब्रह्मचर्य ही है।

उन्होंने कहा, "हम लोग प्रोटेस्टेंट हैं और अमरीकी समाज की आज की स्थिति आप जानते ही हैं। उसे ध्यान में रख कर कहिये कि गांधीजी के सिद्धान्त के अनुसार हमें कैसे चलना चाहिये?"

मैं ने कहा, "जरमनी के जिन धार्मिक-नेता (मार्टिन लूथर) का नाम आप के पिताजी (मार्टिन लूथर किंग) ने धारण किया था, और वही नाम आप को भी दिया, (रेवरेंड डा. मार्टिन लूथर किंग के पिताजी का नाम भी डा. मार्टिन लूथर किंग है। दोनों जीवित हैं, इसलिए रेवरेंड डा. किंग को जूनियर किंग कहा जाता है।) उन्होंने कैथोलिक संप्रदाय को छोड़ कर एक संन्यासिनी के साथ शादी की और अपने नये विचारों के अनुसार प्रोटेस्टेंट पथ चलाया। उन्होंने पोप के बहिष्कार पत्र को अस्वीकार किया था। प्रोटेस्टेंट-पथ की स्थापना कर के उन्होंने समाज में प्रचलित बहुत-

राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बना रहा। इसी स्थान से महात्मा गांधी ने मार्च, १९३० में जगत प्रसिद्ध डांडी-कूच शुरू किया था और उसी वर्ष उन्होंने यह शपथ ले कर इसे त्याग भी दिया था कि जब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो जाता, वे यहां नहीं आयेंगे। भारत स्वतंत्र हो गया, परन्तु 'साबर-मती आश्रम' महात्मा गांधी के आने की बाट ही जोहता रह गया और वे इस संसार को छोड़ कर चल दिये।

कर्णदेव सोलंकी की कर्णावती नगरी को अहमदाबाद का नया रूप मिला। लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पश्चात सन १४११ में सुलतान अहमदशाह ने आधुनिक अहमदाबाद की नींव डाली। अहमदाबाद को अहमदशाही शासकों के रूप में शिल्प-कला के ऐसे पुजारी मिले जिन्होंने वास्तुकला के अनेक उत्कृष्ट नमूने गुजरात को भेंट किये। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियां अहमदाबाद के लिए स्वर्ण-युग ले कर आयी थीं। इस युग में यहां इतना भव्य तथा प्रचुर निर्माण-कार्य हुआ कि सोलहवीं शताब्दी के अन्त में आये एक पर्यटक

हलती मीनारें (राजपुर बीबी की मसजिद)
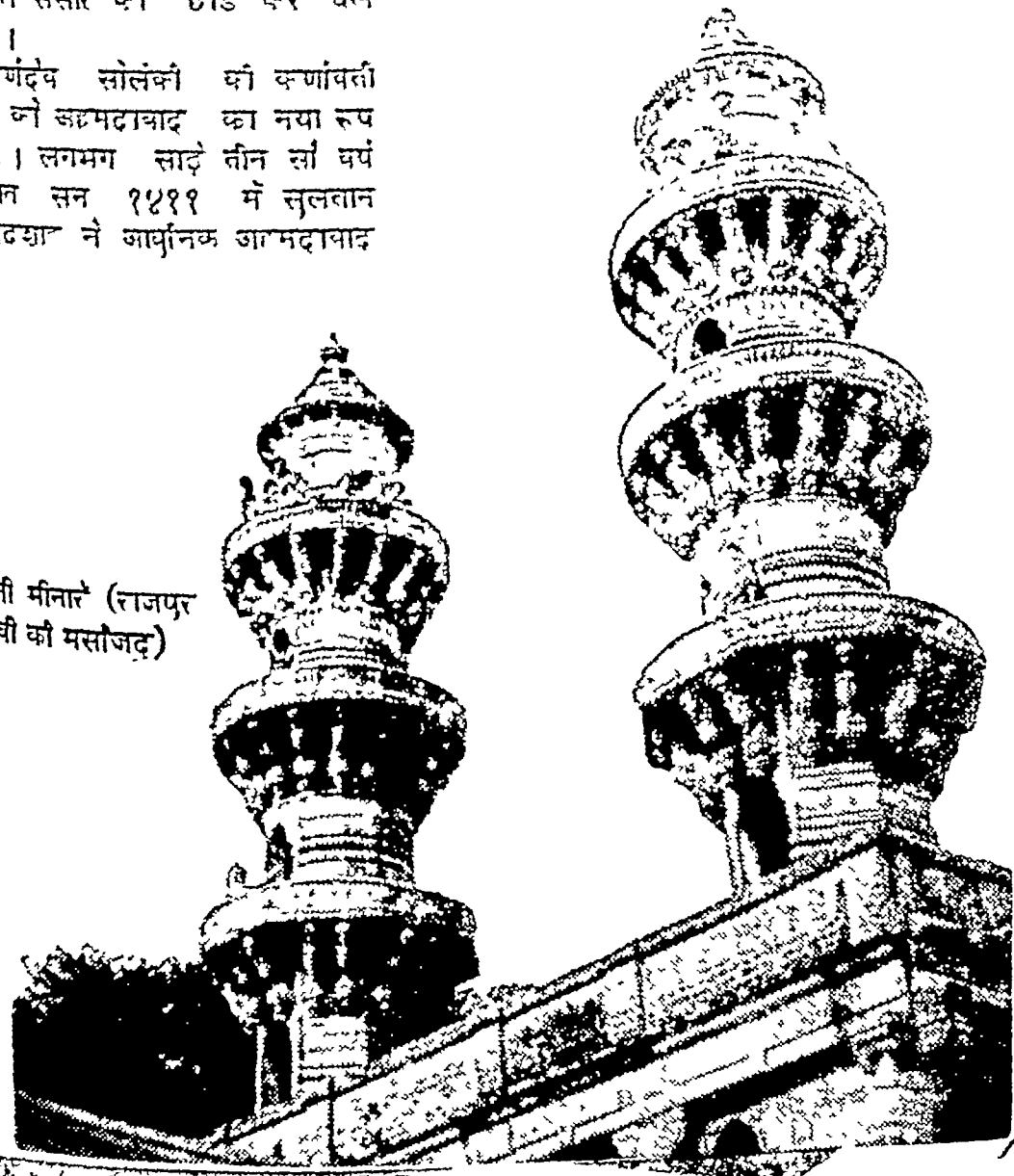
दधीचि की तपोभूमि

उग्रसेन गोस्वामी

अहमदाबाद
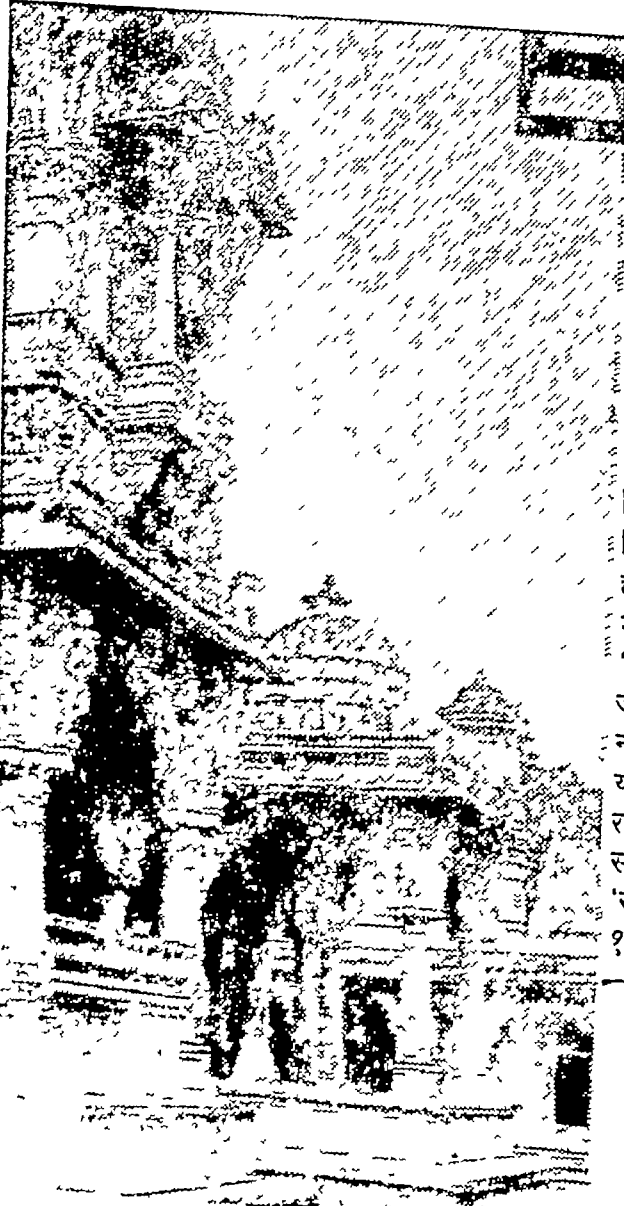
आज जहां अहमदाबाद बसा हुआ है, कहते हैं वैदिक युग में उसी क्षेत्र में साबरमती के तट पर दधीचि ऋषि का आश्रम था। इन्हीं महर्षि ने इन्द्र को अपनी हड्डियां तक दान में दे दी थीं ताकि उन से वज्र तैयार कर वृत्रासुर का नाश किया जा सके। इस राक्षस ने देवताओं को आतंकित कर रखा था।

यह बात प्राचीन समय की है, जिस की याद अब केवल पौराणिक गाथाओं में रह गयी है। परन्तु हमारे युग के दधीचि महात्मा गांधी ने भी यहीं पर १९१५ में अपना प्रथम 'कोचरब आश्रम' स्थापित किया था, जो अब 'महात्मा गांधी मेमोरियल' के नाम से विख्यात है। १९१७ तक यही आश्रम उन की कर्मस्थली बना रहा। इसी वर्ष वे इस नगर में साबरमती के दूसरे तट पर स्थित 'साबरमती आश्रम' में चले आये। १९३० तक यह आश्रम भारत की

हठीसिंह का जैन मन्दिर

ने इसे 'हिन्दुस्तान का और सम्भवत संसार भर का सुन्दरतम नगर' कहा। १६१५ में भारत में इंगलैंड के प्रथम राजदूत सर टामस रो के आगमन पर यह लन्दन-जितना बडा एवं सुन्दर नगर था।

राजनीतिक ववडरों में अहमदाबाद कितनी ही बार उजड़ा और कितनी ही बार फिर सभला। किसी समय इस की जनसंख्या २ लाख थी। पतन के बाद १८२४ में इस की जनसंख्या ८० हजार रह गयी थी। उस के बाद पुनः नगर के दिन फिरे और अधिकाधिक लोग यहा आ कर बसने लगे। १८५९ में यहां पहली कपड़ा-मिल खुली। फिर वस्त्र-उद्योग की यहां इतनी प्रगति हुई कि लगभग सौ वर्षों के बाद आज यहा ७० कपडा-मिलें देश-विदेश में खपत के लिए दिन-रात कपडा तैयार करती रहती हैं। अब यहा की आबादी १२ लाख से भी अधिक है।

जामा मसजिद और 'तीन दरवाजा' जैसे स्मारक अहमदाबाद को इस के जन्मदाता अहमदशाह की देन हैं। 'तीन दरवाजा' शाही महल के बाह्य प्रांगण का मुख्य द्वार था। आज अहमदाबाद का एक मुख्य बाजार इस में से हो कर गुजरता है। 'तीन दरवाजा' के तोरण आज भी शिल्पकला के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करते हैं।

अहमदशाह का लगाया पौधा खूब ही फला-फूला। उस के उत्तराधिकारियों ने अहमदाबाद के प्रागण को वास्तुकला के कितने ही सुन्दर फूलों से सुशोभित किया। नगर की अनगिनत मसजिदें, मकबरे तथा अन्य भवन वास्तुकला के उस वैभवपूर्ण युग की आज भी याद दिलाते हैं। निर्माण की भारतीय और मुस्लिम शैलियों का हृदयग्राही सामजस्य यहा की उत्कृष्ट देन है। मुस्लिम शासकों के लिए काम करनेवाले हिन्दू कारीगरों ने दो शैलियों में मेल पैदा कर वास्तुकला को नये आयाम प्रदान किये।

रानी सिपरी की मसजिद और मकबरे को निस्सदेह अहमदाबाद के सुन्दरतम स्मारकों में गिना जा सकता है। १५१४ में ये भवन बन कर तैयार हुए थे। मसजिद में ५० फुट ऊंची दो मीनारें हैं तथा वर्गाकार मकबरे में पत्थर की शानदार बेजोड जालिया बनी हुई हैं। मसजिद में मीनारों पर हुई बारीक नक्काशी को शब्दों मे बाधना असंभव है। इन स्मारकों का अलकरण देखते ही बनता है।

सीदी सैयद मसजिद शिल्पकला की एक और अद्भुत बानगी प्रस्तुत करती है। प्रस्तर-अलकरण को यहा चरमोत्कर्ष तक पहुंचाया गया है। इस के जालीदार गवाक्षों पर की गयी नक्काशी का ससार भर में कोई जोड नही है। पत्थरों में ही पेड़ों-जैसा रूप निखारा गया है।

पन्द्रहवी शताब्दी के हस्तकौशल की एक निराली झाकी राजपुर बीबी की मसजिद में देखी जा सकती है। यहा पर दर्शनीय हैं दो मीनारें, जो हिलाने पर हिलती हैं—यहा तक कि यदि एक मीनार को हिलाया जाये तो दूसरी अपने आप हिलने लगती है।

नंदन
(नयी पीढ़ी का नया मासिक)
लीजिए, इनकी तरह आप के बच्चे भी खुश होंगे। 'नंदन' का अप्रैल अंक हर जगह मिल रहा है, इसे खरीद कर आज ही अपने बच्चों को दीजिए।
अप्रैल अंक की कुछ श्रेष्ठ कहानियां
○ बगीचे वाला राक्षस ○ बंशी के स्वर ○ खोया रास्ता ○ नीलपरी ○ मछलियों की रानी ○ हवा महल —आदि
और कुछ श्रेष्ठ लेखक
○ डा० भगवत शरण उपाध्याय ○ डा० विनय मोहन शर्मा ○ आस्कर वाइल्ड ○ मन्मथनाथ गुप्त ○ चंद्रकिरण सौनरेक्सा ○ शशिप्रभा शास्त्री ○ सोमावीरा ○ हिमांशु जोशी
एक नया धारावाहिक उपन्यास : अग्नि संतान
और वटुकेश्वर दत्त के रोमांचकारी संस्मरण, मूर्खों के दिन की रोचक कहानी, चींटियों की चालबाजी — चित्र-कथा और भयंकर शेरों के बीच।
नंदन
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन
नयी दिल्ली

हास्य-व्यंग्य

● बरसानेलाल चतुर्वेदी
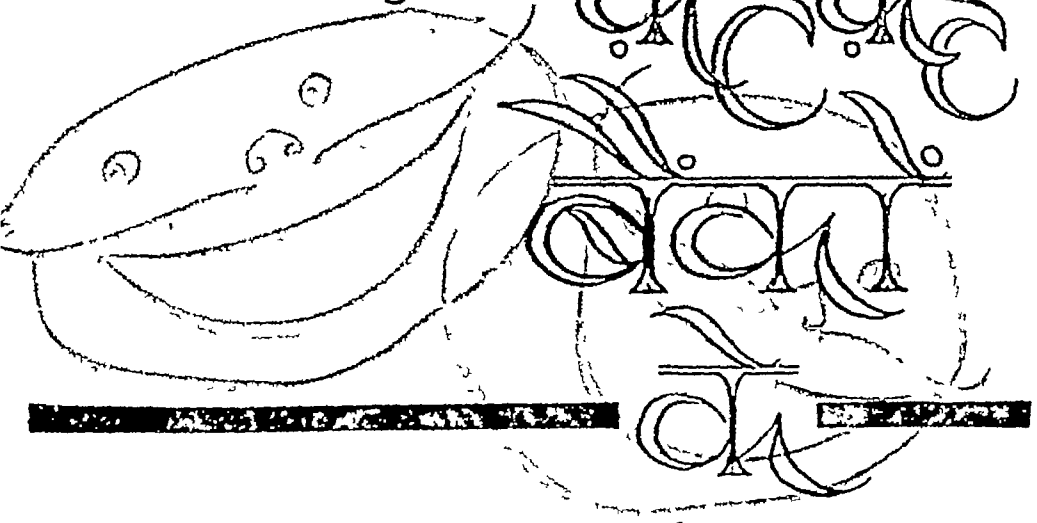
रमेश बाबू बैंक में पहुंचे और एक नयी चेक-बुक मांगी। चार दिन पहले ही तो वे एक नयी चेक-बुक ले गये थे। बैंक के क्लर्क ने पूछा, "इतनी जल्दी आप ने पूरी चेक-बुक समाप्त कर दी?"

रमेश बाबू ने उत्तर दिया, "अजी, चेक-बुक को तो कोई चुरा कर ले गया।"

क्लर्क ने घबड़ा कर कहा, "अरे, आप को तो तुरन्त हमें सूचना देनी थी कि उस में से आप ने कितने चेक प्रयोग में लिये थे, कितने बाकी थे और चेक का नंबर क्या था। चुरायी हुई चेक-बुक से यदि कोई चेक निकाल कर आप के फर्जी हस्ताक्षर करके खाते में से पैसा ले जाये तो क्या हो?"

सुन कर रमेश बाबू ने उत्तर दिया, "नहीं साहब, फर्जी हस्ताक्षर कौन कर सकता है? मैं ने तो पहले ही सही हस्ताक्षर सब पर कर दिये हैं।"

बैंक का एक चपरासी बहुत वृद्ध हो गया था और साथ में बहरा भी, किन्तु काम वह बराबर कर लिया करता था। नित्य की तरह चेकों को पास कराने के लिए उस ने मैनेजर की मेज पर चेक रखे और बाहर चला गया। थोड़ी देर में मैने-जर ने घंटी बजायी। चपरासी के अंदर आने पर मैनेजर ने कहा, "सक्सेना साहब को बुलाओ।"

निर्विकार चेहरे से चपरासी ने उत्तर दिया, "खतम हो गये, साहब!"

मुस्लिमयुगीन वास्तुकला का यह एक अद्वितीय नमूना है। सम्भवत मीनारों का इस प्रकार का निर्माण इस कारण किया गया था कि भूचाल से इन्हें कोई क्षति न पहुंचे। इन्जीनियरी के इस कमाल का रहस्य जानने का प्रयत्न तो बहुत किया गया परंतु अभी तक यह रहस्य ही बना हुआ है।

हथीसिंह का जैन मंदिर अहमदाबाद में हिन्दू-शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है। विख्यात दिलवाडा मंदिरों को आदर्श मान कर बनाये गये इस मंदिर में ५३ कलश हैं।

अहमदाबाद में एक स्थान ऐसा भी है जो पाच सौ वर्ष पुराना होते हुए भी नया है। इस मे समय-समय पर कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता रहा होगा, परन्तु उस से इस के सौंदर्य में कोई कमी नहीं हुई है। यह स्थान है हौज-ए-कुतुब, जिसे आम तौर पर काकरिया झील कहा जाता है। १४५१ में सुलतान कुतुबद्दीन ने इस का निर्माण करवाया था। एक मील के घेरे में फैले इस हौज की ३४ भुजाएं हैं तथा प्रत्येक भुजा १९० फुट लंबी है, जिस पर पक्की सीढियां बनी हुई हैं। अंगूठी में जडे नगीने की भांति इस झील के बीचोंबीच एक बाग है, जिसे नगीनावाडी कहा जाता है। नगीनावाड़ी में पहुंचने के लिए झील के एक ओर से कोई १२ फुट चौडा मार्ग भी बना हुआ है। झील के आस-पास का क्षेत्र अतीव मनोरम है। एक ओर चिडियाघर है तो दूसरी ओर बच्चों के लिए आदर्श स्थान 'बाल वाटिका'। इधर मुलायम घास का पार्क है तो उधर पिकनिक के लिए एक शानदार स्थल दृष्टिगोचर होता है। यहां पहुंच कर ऐसा तो लगता ही नहीं कि हम एक ऐसे औद्योगिक नगर के मध्य खडे हैं जहां मिलों की सैकडों चिमनियां दिन-रात धुआं उगलती रहती हैं।

उद्यानों की हरियाली तथा उद्योगों का धुआं यहां साथ-साथ रहते हैं। आधुनिकता यहां प्राचीनता की मधुर स्मृतियां हृदय में संजोये आगे बढ़ती रहती है। महात्मा गांधी तथा सरदार पटेल की कर्मस्थली यह महानगरी भारतीय उपमहाद्वीप में अपना एक निराला ही स्थान रखती है।

"क्या कहता है ? कब ?' कहते हुए मैनेजर खड़ा हो गया।

"चेक पूरे हो गये, साहब। इतने ही थे," मैनेजर को खड़ा होते देख चपरासी ने फिर समझाया। यह सुन कर मैनेजर को शान्ति हुई।

एक अमरीकी विद्यार्थी भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में वेद का अध्ययन करने पूना आया था। उस का पैसा अमरीका से पूना के बैंक में आया, किन्तु गलती से बैंक की दूसरी शाखा में चला गया। यद्यपि बैंक को यह पता था कि उन का पैसा आ गया है, किन्तु नियमानुसार गारंटी की आवश्यकता थी। इसलिए बैंक के मैनेजर ने उस से कहा, "तुम जिस कालेज में पढ़ते हो उन के प्रिंसिपल के हस्ताक्षर इस गारंटी फार्म पर करा कर ले आओ।"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "मैं कालेज में नहीं पढ़ता। मैं तो भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट में पढ़ता हूं।"

मैनेजर तुरत बोला, "तो भंडारकर के ही हस्ताक्षर करा लाओ।"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "लेकिन साहब, भंडारकर को मरे हुए तो एक जमाना हो गया।"

एक चीनी विदेश में खाता खोलने गया। क्लर्क ने उस से सारे विवरण मांगे। चीनी ने अपना नाम बताया। नाम कुछ अनोखा था, लिखने में भूल न हो जाये, इसलिए क्लर्क ने नाम के हिज्जे पूछे। फिर उस ने पूछा, "तुम्हारे पिता का नाम ?"

चीनी मौन रह कर सिर खुजलाने लगा। क्लर्क आश्चर्य में पड़ गया कि यह कैसा भुलक्कड़ है। उस ने चीनी से कहा, "आप अपने पिता का नाम ही भूल गये।" चीनी ने मुंह बनाते हुए कहा, "नहीं, नाम तो याद है लेकिन हिज्जे भूल गया हूं।"

एक स्त्री का बैंक में खाता था। उस ने बैंक के मैनेजर से कहा, 'बैंक संबंधी पत्र व्यवहार आप मेरे घर के पते से न करें। मेरी पास-बुक और चेक-बुक यहीं रखिये। मुझे जब आवश्यकता पड़ेगी तो मैं यहीं से आ कर ले लूंगी, क्योंकि जब मेरे आदमी को यह खबर होगी कि मेरा बैंक में हिसाब है तो वह सारा पैसा ले जा कर खर्च कर देगा।"

मैनेजर विदेशी था। उस ने कहा, "ऐसा आदमी घर में क्यों रखती हो ? उसे निकाल दो, दूसरा रख लो।"

उस स्त्री ने कान में अंगुली डालते हुए कहा, "अरे साहब, आप यह क्या कहते हैं ? उसे कैसे निकाल दूं ? वह मेरा पति है।"

बेचारा मैनेजर आदमी का अर्थ घर का नौकर समझा था।

मेक्सिको में दिन-दहाड़े सड़क पर एक टैक्सीवाले को लूट लिया गया। सामने की पटरी पर दो सिपाही खड़े देखते रहे। टैक्सीवाले ने जब उन से उन की लापरवाही की शिकायत की तो वे बोले, "हम क्या करते भइया ? तुम छठे क्षेत्र में थे जब कि हम चौथे में। वह हमारे अधिकार के बाहर की बात थी।"

गिरते बाल
आसानीसे रोके जा
सकते हैं।
आप केवल
यही करें कि.......
आप जिस हेअर
ऑईलका इस्तेमाल करते
हैं, उसमें अथवा आधा किलो खोपरेके
तेलमें या एरण्डीके तेलमें झरण की एक
बोतल मिलालें। इस तरहसे बना हुआ
विशेष गुणकारी तेल, हररोज इस्तेमाल
करके बाल गिरनेकी मुसिबतसे आप
छुटकारा पाईये ! इतनाही नहीं बल्की
आप फिरसे घने और लम्बे बाल प्राप्त
किजीये।
झरण
घने और लम्बे बाल के लिए

"क्या कहता है ? कब ?" कहते हुए मैनेजर खड़ा हो गया।

"चेक पूरे हो गये, साहब। इतने ही थे," मैनेजर को खड़ा होते देख चपरासी ने फिर समझाया। यह सुन कर मैनेजर को शान्ति हुई।

एक अमरीकी विद्यार्थी भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में वेद का अध्ययन करने पूना आया था। उस का पैसा अमरीका से पूना के बैंक में आया, किन्तु गलती से बैंक की दूसरी शाखा में चला गया। यद्यपि बैंक को यह पता था कि उस का पैसा आ गया है, किन्तु नियमानुसार गारंटी की आवश्यकता थी। इसलिए बैंक के मैनेजर ने उस से कहा, "तुम जिस कालेज में पढ़ते हो उस के प्रिंसिपल के हस्ताक्षर इस गारंटी-फार्म पर करा कर ले आओ।"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "मैं कालिज में नहीं पढ़ता। मैं तो भंडारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट में पढ़ता हूं।"

मैनेजर तुरत बोला, "तो भंडारकर के ही हस्ताक्षर करा लाओ।"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया, "लेकिन साहब, भंडारकर को मरे हुए तो एक जमाना हो गया।"

एक चीनी विदेश में खाता खोलने गया। क्लर्क ने उस से सारे विवरण मांगे। चीनी ने अपना नाम बताया। नाम कुछ अनोखा था, लिखने में भूल न हो जाये, इसलिए क्लर्क ने नाम के हिज्जे पूछे। फिर उस ने पूछा, "तुम्हारे पिता का नाम ?"

चीनी मौन रह कर सिर खुजलाने लगा। क्लर्क आश्चर्य में पड़ गया कि यह कैसा भुलक्कड़ है। उस ने चीनी से कहा, "आप अपने पिता का नाम ही भूल गये!" चीनी ने मुंह बनाते हुए कहा, "नहीं, नाम तो याद है लेकिन हिज्जे भूल गया हूं।"

एक स्त्री का बैंक में खाता था। उस ने बैंक के मैनेजर से कहा, "बैंक संबंधी पत्र-व्यवहार आप मेरे घर के पते से न करें। मेरी पास-बुक और चेक-बुक यहीं रखिये। मुझे जब आवश्यकता पड़ेगी तो मैं यहीं से आ कर ले लूंगी, क्योंकि जब मेरे आदमी को यह खबर होगी कि मेरा बैंक में हिसाब है तो वह सारा पैसा ले जा कर खर्च कर देगा।"

मैनेजर विदेशी था। उस ने कहा, "ऐसा आदमी घर में क्यों रखती हो ? उसे निकाल दो, दूसरा रख लो।"

उस स्त्री ने कान में अंगुली डालते हुए कहा, "अरे साहब, आप यह क्या कहते हैं ? उसे कैसे निकाल दूं ? वह मेरा पति है!"

बेचारा मैनेजर आदमी का अर्थ घर का नौकर समझा था। ●

मेक्सिको में दिन-दहाड़े सड़क पर एक टैक्सीवाले को लूट लिया गया। सामने की पटरी पर दो सिपाही खड़े देखते रहे। टैक्सीवाले ने जब उन से उन की लापरवाही की शिकायत की तो वे बोले, "हम क्या करते भइया ? तुम छठे क्षेत्र में थे जब कि हम चौथे में। वह हमारे अधिकार के बाहर की बात थी।"

⊙ प्रमोदशंकर भट्ट

"जब तक पुराने खिलाड़ी संन्यास नहीं लेंगे, नये खिलाड़ी प्रकाश में कैसे आ सकते हैं ? प्रथम कोटि की क्रिकेट खेलने का भी तो एक समय होता है, आखिर मैं कब तक खेलूंगा ! मैं अब ४६ वर्ष का हूं, अब भी खेलता रहूं तो लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे !" वीनू मन्कड ने सहज भाव से मुसकान फेंकते हुए मुझे बताया।

वीनू मन्कड का नाम क्रिकेट के इतिहास में उन जाने-माने खिलाड़ियों के साथ लिया जाता है, जिन्होंने न केवल अच्छे खेल का प्रदर्शन किया है, वरन क्रिकेट के क्षेत्र में नये मानदंडों को भी स्थापित किया है। मन्कड आस्ट्रेलिया के कीथ मिलर, रिची बिनाड, इंगलैंड के डेनिस कांपटन, डगलस राइट तथा वेस्ट इंडीज के वीक्स और वारेल की कोटि के अविस्मरणीय खिलाड़ियों में हैं।

मैं उन के क्रिकेट-जीवन से संन्यास

भेंट वीनू मनकड से

लेने का कारण तथा आज की भारतीय क्रिकेट के विभिन्न पहलुओं पर उन के विचार जानना चाहता था।

"यह ठीक है कि आप ने नये खिलाड़ियों को स्थान देने के लिए अपने आप को पीछे खींच लिया है, लेकिन क्या आप यह जानते हैं कि आप के जाने से जो कमी भारतीय क्रिकेट में आ गयी है, वह पूरी हो जायेगी?" मैं ने पूछा।

वीनू भाई एकदम चुप हो गये। काली काफी की एक लंबी चुस्की ली और बोले, "यह तो आने वाले खिलाड़ियों को देखना है। यदि उन्हें मेरी कमी पूरी करनी होगी तो वे स्वयं उस का हल खोज निकालेंगे। और फिर यह मैं मानने को तैयार नहीं कि मेरे जाने से भारतीय क्रिकेट में कोई कमी आ गयी है। भारतीय खिलाडी चाहे वे नये हों या पुराने, उन में सभी प्रकार की क्षमता है। वे यदि चाहें तो अच्छे-से-अच्छे खेल का प्रदर्शन कर सकते हैं। इधर जो नये खिलाड़ी प्रकाश में आये हैं, उन में वे सभी गुण मौजूद हैं जो एक अच्छे खिलाड़ी में होने चाहियें।"

इतना कह कर वे शांत हो गये। थोडी देर काफी के गिलास को हथेलियों में दबाये बैठे रहे फिर बोले, "शायद आप को मालूम होगा कि मैं पिछले ३० वर्षों से क्रिकेट खेल रहा हूं। इधर करीब १२ वर्षों से तो मैं हर साल इंगलैंड के क्लब में जा कर खेलता रहा हूं, लेकिन अब व्यवस्थित और स्थिर होना चाहता हूं। अशोक और अतुल भी तो अब बड़े हो गये हैं। उन की पढ़ाई-लिखाई को सुचारु रूप से चालू करने के लिए भी अब जरूरी है कि मैं व्यवस्थित होऊं।"

मुझे ध्यान आया कि अशोक और अतुल वे ही नये खिलाड़ी हैं, जो आजकल अपने पिता के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। "तो क्या आप चाहते

हैं कि अशोक और अतुल भी आप के पदचिह्नों पर चलें ?''

''सब लोग यही चाहते हैं कि उन के बेटे उन के पदचिह्नों पर चलें। लेकिन मेरा समय वह समय था जब पढाई-लिखाई की ज्यादा जरूरत नही थी। थोडी पढाई से भी काम चल जाता था। लेकिन आज जीवन मे पढ़ाई बहुत जरूरी है। मैं तो यही चाहूंगा कि पहले वे पढाई पूरी कर ले फिर चाहे जो करें। वैसे खिलाड़ी बनने के लिए एक बात बहुत जरूरी है कि खिलाडी को खेल के प्रति बड़ी लगन होनी चाहिये और जब तक वह खेल के प्रति जी-जान एक नही कर देता, सफल खिलाडी नही हो सकता। खिलाडी बनने के लिए सब से आवश्यक है कि उस में खेलने की क्षमता हो, खेल के प्रति ईमानदारी हो, गभीरता हो तथा साथ ही धैर्य हो।''

बात बदलते हुए मैं ने उन से फिर पूछा, ''आप धीमे खेल में रुचि रखते हैं या तेज में ?''

''मैं सदा तेज खेल पसद करता हू। जहा तक होता है, मैं तेज खेल ही खेलने की कोशिश करता हू,'' इतना कह कर उन्होंने दोनों हाथ सिर के पीछे रख लिये और अपने बीते दिनो को याद करते हुए बोले, ''जहा तक मुझे याद आता है, मैं १९३६-३७ में भारतीय क्रिकेट के साथ आस्ट्रेलिया का दौरा करने गया था। मैं भारतीय क्रिकेट टीम का आरभिक बल्लेबाज था। आस्ट्रेलिया तेज खेल के लिए प्रसिद्ध है। हमारे एक-दो खिलाडी आउट हो चुके थे। कप्तान ने मुझ से धीमा खेलने के लिए कहा लेकिन मैं अपनी आदत से मजबूर था। एक-दो गेंद तो मैं ने रोकी लेकिन फिर अपने आप को न रोक पाया। जो गेंद आती ठोक देता, जिस का परिणाम यह हुआ कि मैं ने उस टेस्ट मे सब से ज्यादा रन बनाये।''

''शायद सन ५२ आप का सर्वश्रेष्ठ वर्ष था ?''

''हा, सन ५२ मेरा सब से अच्छा वर्ष था। उसी साल मैं ने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ खेल खेला। इगलैंड में जब भारतीय क्रिकेट दल दौरा करने गया था, मैं उस के साथ नही था। मेरा अनुबध अपने क्लब के साथ था, इसलिए मैं दल के साथ नही जा पाया। लेकिन जब भारतीय दल पहला टेस्ट हार गया तो मुझे भी दल में शामिल कर लिया गया। फिर दूसरे टेस्ट में मैं ने जी-जान से इगलैंड के खिलाड़ियो का मुकाबला किया।''

''मुकाबला क्या किया, छक्के छुडा दिये थे आप ने तो। कहा १८४ रन और कहा ८६ ओवर! शायद आप पाचो दिन मैदान में ही रहे।''

''हा।''

''क्या आप क्रिकेट के अलावा किसी और खेल में भी रुचि रखते है ?''

''क्रिकेट के अलावा दूसरा खेल खेलने के बारे में मैं ने कभी सोचा भी नही। और क्रिकेट ही जब मेरा पेशा हो गया तो दूसरे खेल का

सवाल ही नहीं उठता। वैसे मैं ने क्रिकेट के अलावा दूसरा कोई भी खेल नहीं खेला। मैं समझता हूं कि जब एक खेल के प्रति लगन हो जाये तो दूसरे खेल में दखल भी नहीं देना चाहिये।

यहां मैं एक बात आप को और बता दूं। खेल को मैदान तक ही याद रखता हूं। घर में आ कर मैं ने कभी सोचा भी नहीं कि आज मैदान में मैं ने क्या किया और कैसे किया। और शायद यही कारण है कि मैं अपने खेल के प्रति जागरूक हूं। घर में, सच पूछिये तो मैं खेल के बारे में बात भी करना पसंद नहीं करता।"

"अच्छा एक बात और बताइये!" मेरी बात अभी पूरी भी नहीं हो पायी थी कि वे सजग हो गये और बोले, "देखिये, आप कोई टेढा सवाल न कीजिये, मैं जवाब नहीं दे पाऊंगा।"

"सवाल है तो टेढा लेकिन क्या करूं, आप से न पूछूंगा तो किस से पूछूंगा? आप तो जानते ही हैं कि भारतीय क्रिकेट टीम की क्या हालत है। यह बताइये कि उस की उन्नति के लिए क्या करना चाहिये। किस प्रकार हम विश्व-विजयी हो सकते हैं?"

वीनू मन्कड थोडे गंभीर हो गये। बोले, "भाई, वास्तव में हमारे खिलाड़ियों की जो दशा है, वह विदेशों के खिलाडियों की तरह नहीं है। जब तक हमें उन की तरह सुविधाएं नहीं मिलेंगी, हमारे खेल मे उन्नति नहीं हो सकती। सरकार को इस ओर जरूर ध्यान देना चाहिये। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि हमारे खिलाडी विश्व की किसी भी टीम का डट कर मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन बात यह है कि उन्हें खेल के साथ नौकरी और परिवार की ओर भी ध्यान देना पडता है। यदि सरकार इस ओर जरा भी ध्यान दे तो वे काफी अच्छा खेल सकते हैं। और मैं तो एक बात और भी कहूंगा कि यदि हमारे खिलाडियों को सरकार थोडा-सा प्रश्रय दे दे तो वे खूब जम कर खेलेंगे और फिर आप जो धीमे खेल की बात करते हैं, वह हमारे यहा रहेगी ही नही। हमारे खिलाडी भी तेज खेल खेल सकते हैं। वे धीमा खेल तो केवल स्थान बनाये रखने के लिए खेलते हैं। यदि सरकार उन की देखभाल करे तो वे भी हटन, वीक्स, मिलर, वारेल-जैसे धुआंधार बल्लेबाज हो सकते हैं। इन्हीं खिलाडियों में से हाल, गिलक्रिस्ट, ट्रूमन, स्टेथम आदि भी निकल आयेंगे।"

"तुम ने अपनी मोटर एक तरफ नीली और दूसरी तरफ लाल क्यों रंगवायी है?"

"यह तो एक तरकीब है। अगर मुझ से यातायात-नियमों का उल्लंघन हुआ, तो अदालत में कोई मेरी मोटर का रंग नीला बतायेगा और कोई लाल।"

थार हेयरडाल

सागर भी हारा

'कोनटिकी अभियान' को मानव जाति के उन साहसिक अभियानों में गौरवपूर्ण स्थान मिल चुका है जो मनुष्य प्रारंभ से ही प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए करता आया है . . .

प्रशांत महासागर के उस छोटे से द्वीप फातुहिवा को रात के अंधेरे ने अपनी बांहों में जकड़ लिया था। एक झोंपड़ी के सामने जल रही आग के हल्के प्रकाश में मैं अपने सामने बैठे पोलिनीशिया के उस बूढ़े को देख रहा था जो एक अजीब कहानी शुरू करके रुक गया था। शायद वह याद कर रहा था कि उस के दादा या नाना ने ऐसी ही एक रात को उसे यह अजीब

कहानी सुनायी थी। उसे यादों में खोया देख कर मैं ने उस से पूछा, "हां, तो बाबा, फिर क्या हुआ ?"

"हम लोग इन द्वीपों के निवासी नहीं हैं, बेटा। इस बड़े सागर के पार, बहुत दूर बसे एक विशाल देश के रहने वाले हैं। हमारे पुरखे अनगिनत साल पहले उसी विशाल देश से यहां आये थे।"

"पर, बाबा वह विशाल देश (दक्षिणी अमरीका) तो यहां से ४,००० मील से भी ज्यादा दूरी पर स्थित है। उस जमाने में आजकल की तरह बड़े जहाज कहां थे ? फिर कैसे आये होंगे आप के पुरखे उस देश से यहां ?"

"हमारे पुरखों का एक सरदार था टिकी। वह बड़ा बुद्धिमान और चतुर था और हमारा मुख्य पुरोहित भी था। हमारी जाति के लोग उस की देवता के समान पूजा करते थे। लड़ाई में टिकी के बहुत से साथी मारे गये लेकिन टिकी अपने शेष साथियों के साथ समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर चला गया। वहां वह बेड़ों में बैठ कर पश्चिमी दिशा की ओर चला गया। वह अपने साथियों सहित इन्हीं द्वीपों में आया था।"

"क्या यह बात बिलकुल सच है बाबा ?"

"यह बात गलत नहीं हो सकती बेटा। मैं ने यह बात अपने दादा से सुनी थी, मेरे दादा ने अपने दादा से और इसी तरह पीढ़ी दर पीढ़ी यह बात चली आ रही है।"

और 'कोनटिकी अभियान' की शुरूआत इसी बातचीत के बाद हुई।

मैं नार्वे-निवासी हूं। विज्ञान का विद्यार्थी हूं और मानव-विज्ञान (एंथ्रोपालाजी) में मेरी विशेष रुचि है, इसीलिए मैं ने उस वृद्ध की बातें भी विशेष रुचि से सुनी थीं। प्रशांत महासागर में फैले द्वीपों के निवासियों की उत्पत्ति के बारे में मेरी बेहद दिलचस्पी थी। कई मानव-शास्त्रियों का कहना था कि ये लोग मलाया से भाग कर इन द्वीपों में आये और कुछ इन्हें चीन या जापान से आया बताते थे। एक बात में सब एकमत थे। सब का कहना था कि उन्हें आये चौदह सदियां अवश्य बीत गयी हैं, ईसा के जन्म के ५०० वर्ष बाद इन लोगों ने इन द्वीपों में कदम रखा होगा।

पुस्तकों तथा अपने अनुभव से मैं एक बात और जानता था—हवाई द्वीप से न्यूजीलैंड तक फैले इन द्वीपों के निवासी करीब-करीब एक ही भाषा बोलते थे। उन के रीति-रिवाज भी एक-से ही थे तथा धार्मिक विश्वासों में भी अधिक अंतर न था।

उस वृद्ध की बात सच है या नहीं यह जानने के लिए मैं ने पेरू का प्राचीन इतिहास पढ़ा। उसे पढ़ कर ज्ञात हुआ कि कोनटिकी नाम का एक धर्माचार्य बहुत पहले पेरू में हुआ अवश्य था। यह भी सच था कि एक युद्ध में पराजित हो कर 'कोनटिकी' ने अपने साथियों के साथ पेरू छोड़ कर कहीं और जा कर बसने की कोशिश भी की थी। इति-

हास में इस का वर्णन इन शब्दों के साथ समाप्त हो गया था : ''. . . और वह अपने साथियों के साथ सागर में पश्चिमी दिशा की ओर जा कर न जाने कहां विलीन हो गया।''

बूढ़े ने उस पुरोहित का नाम टिकी बताया था। पेरू के इतिहास में उस का नाम 'कोनटिकी' बताया गया है। मुझे लगा, बूढ़े की बात में कुछ तथ्य अवश्य है। पेरू का प्राचीन इतिहास उस ने पढ़ा होगा, इस बात की कोई संभावना नहीं थी, तब वह 'टिकी' नाम कैसे जान पाया? जितना ही मैं इस बारे में सोचता, उतना ही उस बूढ़े की बात पर मुझे विश्वास होता जाता। लेकिन अमरीका के विद्वान इस बात को सुनने के लिए भी तैयार न थे।

१९४६ में जब मैं ने यह बात अमरीका के एक मानव-विज्ञानी को बतायी तो उस ने मेरी पूरी बात सुन कर कहा, ''दक्षिण अमरीका की बहुत-सी प्राचीन जातियां गायब हो गयी थीं, इतना ही हम जानते हैं। इस से अधिक जो कुछ कहा जाता है, वह केवल कपोल-कल्पना ही है।''

''वे प्राचीन जातियां कहां गायब हो सकती थीं, क्या इस बारे में आप अपने विचार व्यक्त करने की कृपा करेंगे?''

''न तो हमें उन जातियों के बारे में कोई जानकारी है, न इस संबंध में कि पेरू छोड़ कर वे कहां गायब हुईं? पर, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उन में से किसी भी जाति का कोई सदस्य प्रशांत महा-

प्रशांत महासागर में कुछ द्वीपसमूह हैं। उन के निवासी मूल रूप से किस नस्ल के हैं—यह बात लंबे अरसे से मानवविज्ञान के विद्वानों के लिए समस्या बनी रही थी। नार्वे के मानव-शास्त्री थार हेयरडाल की मान्यता थी कि हवाई द्वीपों से न्यूजीलैंड तक फैले टापुओं की मूल संस्कृति एक है और १४ सदी पहले इन द्वीपवासियों के पूर्वज पेरू से आये। उस की बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया। तब उस ने उन लट्ठों के बेड़ों का विवरण खोज निकाला जिन पर बैठ कर सदियों पहले इन द्वीपवासियों के पूर्वज पेरू से ४,३५० मील की समुद्री यात्रा कर इन द्वीपों में पहुंचे थे।

अपनी बात सिद्ध करने के लिए हेयरडाल ने स्वयं एक वैसा ही लकड़ी का बेड़ा बनवा उस पर अपने साथियों सहित उतनी ही लम्बी समुद्री यात्रा की। इस हलके, मामूली तथा साधनहीन बेड़े पर यात्रा कर प्रशांत महासागर से टक्कर लेना कोई हंसी-खेल नहीं था। इस की सफलता का समाचार सुन विश्व चकित रह गया था। अपनी इस विस्मयकारी साहसिक यात्रा के लोमहर्षक विवरणों को थार हेयरडाल ने अपनी पुस्तक 'कोनटिकी एक्सपेडीशन' में संग्रहीत किया है। इस के रूपांतरकार हैं हरिमोहन शर्मा।

ढांचे के निर्माण के लिए चुना गया। उन के दोनों सिरों पर खांचे बना दिये गये ताकि वे रस्सों की गांठों से निकल कर अलग न हो जायें। कोनटिकी और उस के साथियों ने अपने बेड़े में लोहे का प्रयोग बिलकुल नहीं किया था। मैं ने भी अपने बेड़े में लोहे का कतई प्रयोग नहीं किया। हमारा बेड़ा बिलकुल कोनटिकी के बेड़े-जैसा ही था। न कहीं तारों का प्रयोग हुआ था और न कहीं एक भी कील ठोंकी गयी थी। नौ बड़े-बड़े लट्ठों को पानी में एकसाथ रख कर उन्हें मजबूत रस्सों से बांध दिया गया था।

सब से बड़ा लट्ठा जो लंबाई में ४५ फुट था, बीच में रखा गया था। उस के दोनों ओर क्रमशः उस से छोटे लट्ठों को रखा गया था। इस प्रकार दो लट्ठों को बांधा गया। सब से छोटे दो लट्ठे तीस-तीस फुट लंबे थे। इस व्यवस्था से बेड़े को धारहीन वक्राकृति मिल गयी थी। बेड़े के पृष्ठभाग को आडी दिशा में सीधा काटा गया था, और बीच के तीन लट्ठों को ऐसा बांधा गया था कि वे बेड़े को खेने वाली विशाल पतवार के लिए एक अच्छा आधार बन गये थे।

नौ लट्ठों को रस्सों से मजबूती से बांध कर पतले लट्ठों को तीन-तीन फुट के अंतर से एक-दूसरे को काटते हुए बिछाया गया था। टूटे हुए बांसों का डेक बनाया गया और उस के ऊपर बांस की खपच्चियों से बनी हुई एक चटाई बिछायी गयी। बेड़े के बीच में मैं ने बांसों की एक केबिन बनायी जो बांस की पत्तियों से आच्छादित थी। इस केबिन के सामने एक दूसरे पर झुकते हुए दो मस्तूल लगाये गये और उन्हें ऊपर की ओर बांध दिया गया। बड़े पाल को अतिरिक्त बल प्रदान करने के उद्देश्य से उस के ऊपर बांस के दो डंडों को मजबूती से बांध दिया गया।

कोनटिकी और उस के साथी यात्रा में अपने साथ सूखा गोश्त, भाजियां और फल ले गये थे। मीठा पानी उन्होंने डेक के बीच में लगे खोखले बांसों में भर कर उन्हें दोनों ओर से सील कर दिया था। डेक के नीचे पानी को जमा करने का एक लाभ यह भी था कि सागर उसे सदा शीतल रखता था।

मैं ने २५० गैलन मीठा पानी ७६ छोटे-छोटे पीपों में भर कर रखा और खाने के सामान को कार्डबोर्ड के बने डब्बों में भरा। नरम बेंत की बनी डलियों में फल भर कर उन्हें डेक पर रख दिया गया। खाद्य-सामग्री और मीठा पानी मेरे अनुमान से हम लोगों के लिए छह महीने के लिए काफी था।

कई देशों के लोग हमारे इस अजीबोगरीब बेड़े को देखने आये। सब ने उसे देख कर यही कहा कि यह बेड़ा कभी भी ४,००० मील की यात्रा पूरी नहीं कर पायेगा। लकड़ी के एक स्थानीय व्यापारी ने सिर हिलाकर मुझ से कहा, "१,००० मील भी नहीं पहुंच पाओगे कि यह लकड़ी पानी से भीग कर डूब जायेगी।"

मेरे देश के ही एक शुभचिंतक ने कहा, "ये रस्से रगड़ खा-खा कर
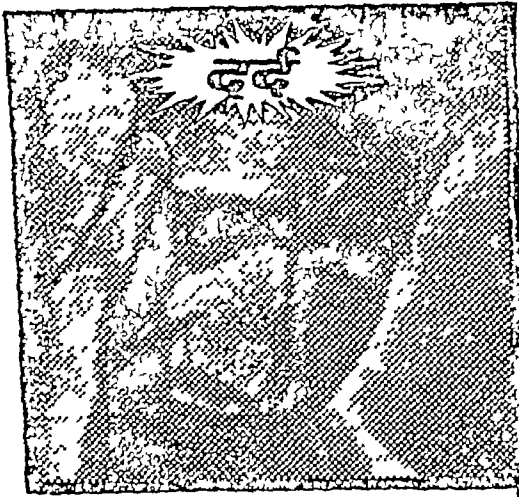
सिरदर्द में पक्का आराम पाइये

'एनासिन' इसलिए इतनी असरदार है कि उस मे डाक्टर के नुस्खे की तरह कई दवाइयां हैं — इसी कारण यह फौरन और पूरा आराम देती है।

1. 'एनासिन' में तत्वों का अनोखा मेल है, इसलिए दर्द में फौरन आराम मिलता है।
2. 'एनासिन' घबराहट दूर करती है — सिरदर्द अक्सर इसी से होता है।
3. 'एनासिन' सर्दी-जुकाम व इन्फ्लूएंज़ा का बुखार घटाती है।
4. 'एनासिन' दर्द में अक्सर महसूस होनेवाली बेचैनी व थकावट को मिटाती है।
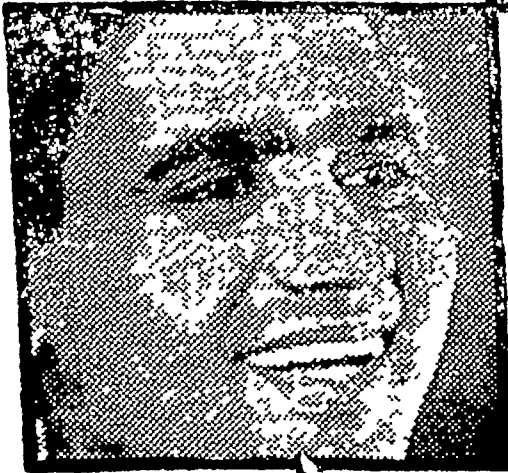
एनासिन

बेहतर है क्योंकि इसके ४ फायदे हैं

Registered User
GEOFFREY MANNERS & CO. LTD.

हो कमजोर पड़ जायेंगे। बीच यात्रा में इन्होंने जवाब न दिया तो कहना।''

अन्य मत थे कि मैं और मेरे साथी समुद्री हवाओं के कारण सागर में जा गिरेंगे तथा सागर की उन्मत्त लहरें बेड़े को तार-तार करके रख देंगी। खारे पानी के निरंतर स्पर्श से हम लोगों के शरीर में फोड़े ही फोड़े हो जायेंगे। बेड़े का आकार गलत है। इस का डूब जाना निश्चित है।

किसी ने भी कोई ऐसी बात नहीं कही, जिस से हमारी हिम्मत थोड़ी-सी भी बंधती।

इन बातों को सुन कर मैं निराश न हुआ और न मेरे साथी। मुझे दिलासा देने के लिए एक ही बात काफी थी—यदि इसी लकड़ी के बने बेड़े सदियों पहले लोगों को पेरू से पोलिनेशिया सही सलामत ले जा सकते थे तो अब वैसा ही एक बेड़ा हम लोगों को सुरक्षित पोलिनेशिया क्यों नहीं ले जा सकता?

अपने बेड़े पर दो चीजें हम ने अवश्य ऐसी रखीं जो कोनटिकी और उस के साथियों के पास नहीं थीं। इन में एक थी वायरलेस-यंत्र, जिस के द्वारा हम बाहरी दुनिया को संदेश दे सकते थे तथा वहां से संदेश प्राप्त भी कर सकते थे। दूसरी चीज थी रबड़ की बनी रक्षा-नौका जो इसलिए रखी गयी थी कि उस पर चढ़ कर हम कभी-कभी दूर से बेड़े के फोटो ले लिया करें।

बेड़े का नाम मैं ने पेरू के धर्माचार्य कोनटिकी के नाम पर कोनटिकी ही रखा। २८ अप्रैल को अपनी लंबी तथा खतरनाक यात्रा के लिए मैं अपने साथियों सहित इस बेड़े पर सवार हुआ। बेड़ा लगभग उसी स्थान से चला, जहां से कभी कोनटिकी के बेड़े गये होंगे।

१४५० वर्ष पूर्व जब कोनटिकी के बेड़े खुले सागर में अपनी यात्रा के लिए रवाना हुए होंगे, उस समय उन्हें बंदरगाह पर खड़े बड़े-बड़े जहाजों से टकरा जाने का कोई डर न था, परंतु हमें यह डर था। अपने बेड़े को जहाजों की टक्कर से बचाने के लिए हमें एक मोटरबोट की मदद लेनी पड़ी। वह हमें बंदरगाह के बाहर छोड़ने गयी।

हमें विदा करने के लिए काफी भीड़ जमा थी, पर किसी ने हमें प्रसन्नतापूर्वक विदा नहीं किया। सब उदास थे और सभी मन ही मन शायद यही सोच रहे थे कि वे आखिरी बार हम लोगों को देख रहे हैं। मोटरबोट को हमें बंदरगाह के पास की खतरनाक 'सागर गलियों' से निकालने में पूरी रात लग गयी। सुबह होते ही मोटरबोट रुक गयी और उस ने हम से जो रस्से जोड़ रखे थे, वे अलग कर दिये गये। वापस बन्दरगाह की ओर जाते हुए नाविकों ने हमें शुभेच्छापूर्ण विदाई दी। जब वह क्षितिज के उस पार विलीन हो गयी, तब हम सब ने उस पर से अपनी आंखें हटा कर एक-दूसरे को देखा। हमारी ४,३५० मील लंबी यात्रा आरम्भ हो गयी थी। मेरा अनुमान था कि इस यात्रा में ९४ दिन लगेंगे।

पूरे दिन कोनटिकी अपनी बेढगी चाल से पश्चिम की ओर चलता रहा । प्रशात महासागर में बडी लहरें उठ रही थी और दक्षिण-पूर्वी ठडी हवा चल रही थी । कोनटिकी लहरों के ऊपर-ऊपर ही चलता रहा । लहरों के वेग से उस के दिशा बदलने या लहरों के नीचे आ जाने के अवसर नहीं आये । हलका होने के कारण वह फुरती से लहरों के ऊपर चढ जाता था और उस का डेक केवल हवा के जरिये आने वाले झागों से भीगता था।

अपने स्वीडनवासी साथी को हम ने अपना सब से पहला रसोइया नियुक्त किया । उस ने एक खाली पेटी के नीचे स्टोव जला कर कोको तैयार किया । बिस्कुटों के साथ कोको पीने में बडा आनंद आया । केले अभी तक नहीं पके थे पर नारियल के अदर छेद करके हम ने उस का पानी पिया।

शाम होते-होते समुद्री हवाए पूरे वेग से चलने लगीं । उन के चलने से सागर ने भी तूफानी रूप धारण कर लिया । बेडे के पृष्ठभाग से आ कर लहरें हमें बहा कर ले जाने का प्रयत्न करती थीं । पर बहादुर कोनटिकी फुरती और सफाई से इन लहरों पर सवार हो जाता था । चारों तरफ पानी ही पानी दिखायी देता था और पेरू की असम और दंतीली पर्वत-श्रेणी दिखायी देनी बद हो गयी थी। शुरू के चौबीस घटों में हम ने बेड़े को खेने का क्रम प्रत्येक के लिए इस प्रकार रखा—दो घटे तक खेना तथा बाद में तीन घंटे का विश्राम ।

अगले दिन भी सागर तूफानी ही बना रहा । बेड़े को बिना खेये आगे ले जाना कठिन था । बराबर खेते-खेते हम सब थक गये थे और तीसरी रात को तो हम में खेने की भी शक्ति नही रही । अत मे पाल खोल दिये गये और हम सब आ कर अपनी छोटी-सी केबिन मे सो गये, और सुबह तक सोते रहे ।

चौथे दिन सुबह हम ने सागर को शात पाया । आसमान में छाये बादल भी छट गये थे और सूरज निकल आया था । हमारा एक साथी एरिक हेसिलबर्ग अनुभवी नौ-चालक था । उस ने हिसाब लगा कर बताया कि हम समुद्रतट से लगभग १०० मील की दूरी पर हैं । रेडियो ठीक काम कर रहा था और सारे दिन हम लोग पेरू के समुद्रतट के लोगों से बातें करते रहे ।

तूफान के बाद 'कोनटिकी' की रफ्तार बढ गयी और वह चौबीस घटे में ५०-६० मील जाने लगा । सर्दी कम हो जाने पर बेडे के चारों ओर मछलियों का जमघट भी दिखायी देने लगा । शार्क मछलिया भी आतीं और हमें घूर कर चली जातीं । समुद्र में उडती हुई मछलिया भी मिलती हैं। ऐसी ही एक मछली एक दिन डेक पर आ कर गिरी । हम ने फौरन उसे पकड कर उस के जरिये दो बढ़िया डलफिन मछलिया और पकडीं ।

रात को मोमबत्ती जलाते ही उड़ने वाली मछलिया उस की ज्योति से आकर्षित हो कर डेक पर आ गिरती थीं । सुबह उठने पर हमें डेक पर

कई उड़ने वाली मछलियां अधमरी अवस्था में पड़ी हुई मिलतीं। उन्हें फौरन तलने के लिए ले जाया जाता। प्रति दिन इस समुद्री नाश्ते के मिल जाने के कारण हमारा भोजन-भण्डार धीरे-धीरे ही खाली हो रहा था।

और सब तो ठीक था पर एक चिंता हमें खाये जा रही थी। चिंता यह थी कि यह बेड़ा कब तक पानी के प्रभाव से बचा रहेगा? प्रति दिन हम देखते थे कि बेड़े की लकड़ी काफी पानी सोखती जा रही है। एक दिन एक भीगे लट्ठे में जोर से अंगुली दबा कर देखा तो पानी का फव्वारा-सा छूटने लगा। किसी से कुछ कहे बिना मैं ने भीगी लकड़ी का एक टुकड़ा तोड़ कर पानी में फेंक दिया। टुकड़ा धीरे-धीरे डूबता हुआ सागर की अथाह गहराइयों में खो गया। बाद में मैं ने देखा कि सब साथियों ने भी ऐसा ही करके देखा, उस समय जब कि उन के खयाल में उन्हें कोई देख नहीं रहा था। दिलासा देने वाली बात सिर्फ यह थी कि यदि लकड़ी में चाकू का फल घुसाया जाता तो गीली सतह के आध इंच नीचे लकड़ी बिलकुल सूखी मिलती थी।

कोनटिकी ने धीरे-धीरे उष्णकटिबंधीय जलक्षेत्र में प्रवेश किया। इस समय तक हम ७५० मील से अधिक का फासला तय कर चुके थे। प्रशांत महासागर की लहरों का खिलौना बना हुआ हमारा बेड़ा आगे बढ़ा जा रहा था।

१७ मई को नार्वे का स्वाधीनता-दिवस था। उस दिन रसोइये की ड्यूटी मेरी थी। प्रशान्त सागर ने फिर उग्र रूप धारण कर लिया था यद्यपि हवा ज्यादा तेज नहीं चल रही थी। डेक पर सात उड़ने वाली मछलियां पड़ी मिलीं तथा दो नयी किस्म की मछलियां मेरे एक साथी के सिरहाने आ पड़ी थीं। पाल हवा के जोर से तना था पर बेड़ा दो मील प्रति घंटे की चाल से चला जा रहा था। हमें पेरू छोड़े बीस दिन हो चुके थे और हम वहां से ८५० मील दूर थे। मंजिल तक पहुंचने के लिए हमें ३,५०० मील की यात्रा और करनी थी।

उष्णकटिबंधीय सागर में आ कर हमें अधिकाधिक मछलियां मिलने लगी थीं। एक दिन विश्व की सब से बड़ी मानी जाने वाली मछली ह्वेल ने हमारा पीछा करना शुरू किया। उस का सिर मेंढक के सिर की भांति चौड़ा और सपाट था और दोनों आंखें सिर के दोनों सिरों पर थीं। उस का जबड़ा चार-पांच फुट चौड़ा रहा होगा तथा उस के मुंह के दोनों कोनों से झालर-सी लटक रही थी। वह बुलडाग की तरह मुंह बनाती हुई तथा अपनी दुम से पानी उड़ाती हुई काफी देर तक हमारा पीछा करती रही। उस ने करीब एक घंटे तक कोन-टिकी का पीछा किया। उस की नीयत कुछ खराब देख कर एरिक हेसेलबर्ग ने ह्वेल का शिकार करने वाला भाला उस के माथे पर दे मारा। इस पर उस ने इतने जोर से डुबकी लगायी कि हमारा बेड़ा उलटते-उल-

टने बचा।

कोनटिकी सागर की सतह से कुल १८ इंच ऊपर था इसलिए छोटी-छोटी मछलियां आसानी से चढ़ कर ऊपर डेक या केबिन में आ जाती थीं। एक बार हमारे एक साथी को अपने तकिये पर सारडाइन मछली आराम करती हुई मिली।

हम ने अपने रेडियो को केबिन के एक सुरक्षित कोने में रखा था। अमरीका में ऐसे कई शौकीन लोग थे जो हर रात हम से पूछते थे कि यात्रा में हमें कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है। रेडियो का विभाग हम ने हाग-लैंड और रैबी को दे रखा था। एरिक हेसेलबर्ग रस्सों और पाल की मरम्मत में लगा रहता था। मैं रोज डायरी में यात्रा का विवरण लिखता जाता था, मछलिया पकड़ता था और बीच-बीच में फोटो भी लेता रहता था। हालीवुड का एक रेडियोप्रेमी हमें बताता रहता था कि इन को किस प्रकार डेवलप करना चाहिये। वह अपने रेडियो के माध्यम से हमारी सब गतिविधियों में काफी रुचि लेता रहता था। एरिक हेसेलबर्ग एक अच्छा चित्रकार भी था। वह हम लोगों के तथा विचित्र प्रकार की मछलियों के चित्र बनाता रहता था।

१९ मई तक हमारे कोनटिकी बेड़े ने १,००० मील का फासला २२ दिन में तय कर लिया था। हमारे सब फल सड़ गये थे और नारि-यलों में से हरी-हरी कोंपलें निकल आयी थीं। सौभाग्य से आलू अच्छी अवस्था में थे। कार्डबोर्ड के डब्बों में जो भोजन-सामग्री थी, वह अभी तक सुरक्षित थी। इस के अति-रिक्त ताजी तली हुई मछलियां तो हमें रोज ही मिल जाती थीं। हम सब का स्वास्थ्य अच्छी हालत में था।

ह्वेल मछलियां तो अक्सर हमारे बेड़े के पास आ जाया करती थीं, पर एक दिन एक ह्वेल ने पास आ कर हम लोगों का मुआयना करने का निश्चय किया। वह कोनटिकी से कुल छह फुट दूर थी और हम लोग उस की फुफकार बड़ी आसानी से सुन सकते थे। उस की चमकदार नाक भी साफ-साफ दिखायी देती थी। यदि वह और पास आ जाती तो केवल एक भाले से उसे रोकना असम्भव था।

दो-तीन अवसरों पर हम एक और भीमकाय मछली के कारण जल-समाधि लेते-लेते बचे। हमारा बेड़ा इस अवसर पर सागर की सतह पर उभरी काली शिलाओं के पास से गुजरा। वास्तव में वे शिलाएं नहीं, 'जायंट रे' नामक विशाल और खतर-नाक मछलियां थीं जो प्रायः सागर की सतह के ऊपर इसी प्रकार अचल और गतिहीन अवस्था में पड़ी रहती हैं। खुशकिस्मती से जब तक हमारा बेड़ा इन मछलियों के निकट रहा, वे हिली नहीं। इन में से किसी ने उसे शिला समझ कर उस पर उत-रने की कोशिश भी नहीं की।

११ जून को यात्रा के पैंतालीसवें दिन कोनटिकी पेरू तथा तुआमोतस द्वीपसमूहों से, जहां मेरा विश्वास था कि कोनटिकी और उस के साथी हजारों वर्ष पहले अपनी यात्रा के

दौरान रुके थे, अब भी २,००० मील दूर था। वैसे हम ने अपनी यात्रा लगभग आधी पूरी कर ली थी।

जब मौसम शांत होता था तो मैं अकेला या अपने साथियों के साथ रबड की जीवन-नौका में बैठ कर दूर से बेड़े के फोटो लेने की कोशिश करता था। एक बार इस जीवन-नौका से फोटो लेते समय एक भयंकर दुर्घटना होते-होते बच गयी।

मैं अपने एक साथी के साथ जीवन-नौका से बेड़े के फोटो ले रहा था कि अचानक कौनटिकी की रफ्तार बढ़ गयी और जीवन-नौका काफी पीछे रह गयी। बेड़े में बैठे हमारे चार साथियों ने बेड़े की रफ्तार कम करने के लिए शीघ्रता से पाल उतार दिये, पर केबिन पर पड रहे हवा के जोर से बेड़ा तेजी से आगे ही बढता रहा। उसे रोकने का कोई उपाय समझ में नहीं आ रहा था और पानी इतना गहरा था कि लंगर डालने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। एक ही उपाय था कि हम तेजी से जीवन-नौका को ले कर बेड़े के पास ले जायें। अपना पूरा जोर लगा कर हम दोनों ने ऐसा ही किया और काफी परिश्रम के बाद ही बेड़े तक पहुंच सके।

इस समय मौसम साफ चल रहा था। धूप भी निकल आयी थी और प्रशांत महासागर भी शांत था। कभी-कभी आकाश काले बादलों से घिर जाता और वर्षा होने लगती। हम लोग इस वर्षा का पूरा लाभ उठाते थे और उस के पानी को कनस्तरों में जमा करके रख लेते थे। पीपों में हम जो पानी ले कर चले थे, उस में से दुर्गन्ध आने लगी थी।

२१ जुलाई को कौनटिकी ने ३,००० मील की यात्रा पूरी कर ली लेकिन इसी दिन हमें एक भयंकर तूफान का सामना करना पड़ा। सूरज डूबते-डूबते बेड़ा भयंकर लहरों के बीच डूबने-उतराने लगा। उस की रस्सियां प्रचंड वायु और लहरों के जोर से चरमरा रही थीं। हमारा एक साथी हरमैन रस्सियों को मजबूती से बांधने के उद्देश्य से बाहर आया। वहां घोर अंधकार था। अंधेरे में उसे ठीक सूझायी न पड़ा और वह पानी में गिर पड़ा। दुर्भाग्य से उस ने उस समय लाइफ-बेल्ट भी नहीं बांध रखी थी।

रस्सी में बांध कर एक लाइफ-बेल्ट उस की ओर फेंकी गयी, पर हवा इतनी तेज थी कि बेल्ट उस की ओर पहुंचने के स्थान पर बार-बार हमारे बेड़े पर ही आ गिरती थी। हरमैन एक अच्छा तैराक था, पर पूरी तेजी से तैरने की कोशिश करने पर भी बेड़े तक नहीं पहुंच पा रहा था। कौनटिकी और उस के बीच का फासला प्रति क्षण बढ़ता ही जा रहा था। हमारा एक साथी हागलैंड एक लाइफ-बेल्ट बांधे और दूसरी हाथ में लिये समुद्र में कूद पड़ा। तूफानी लहरों मे दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के पास आने की कोशिश करते रहे। अंत में हरमैन ने हाथ बढ़ा कर लाइफ-बेल्ट को पकड़ ही लिया। फिर दोनों को बेड़े पर खींच लिया गया।

जुलाई के महीने में हमें दस्युकाक (उष्णकटिबंध में पाया जाने वाला एक शिकारी पक्षी) दिखायी देने लगे थे। दस्युकाक समुद्रतट से १,००० मील की दूरी तक ही उड़ते हैं। इस से हम ने यह अनुमान लगाया कि हम समुद्रतट से १,००० मील की दूरी पर हैं। दस्युकाक पश्चिमी दिशा से उड़ कर आ रहे थे, इसलिए यह अनुमान लगाना भी सहज था कि समुद्रतट पश्चिम की ओर है। अत: हम ने बेड़े का रुख उसी ओर कर दिया जिस ओर से वे पक्षी उड़ कर आ रहे थे।

३० जुलाई को हमारी यात्रा के ९३ दिन पूरे हो चुके थे। हम सब नींद में थे कि हरमेन केबिन में आ कर हम से बोला, "आओ, आओ द्वीप की तटरेखा के दर्शन करो!" इस खबर को सुन कर सब जाग पड़े और बारी-बारी से मस्तूल पर चढ़ कर हम सब ने सागर के अंतिम सिरे पर नीली पेंसिल से अंकित रेखा के समान तटरेखा देखी। सूर्योदय न होने के कारण यह रेखा अस्पष्ट थी।

सुबह साढ़े छह बजे यह रेखा और भी स्पष्ट तथा चमकीली दिखायी देने लगी। निकटतम द्वीप कुछ मील की दूरी पर ही था तथा उस का रेतीला समुद्रतट और उस के पीछे हवा में झूलते हुए ताड़ के वृक्ष स्पष्ट दिखायी देने लगे थे। एरिक हेसेल-बर्ग ने इस प्रवाल द्वीप को पूका-पूका द्वीप बताया।

जैसे-जैसे बेड़ा अपनी राह पर चलता गया, वैसे-वैसे वह द्वीप हमारी नजरों से ओझल होता गया। विपरीत हवा तथा गरजती हुई लहरों के कारण बेड़ा उस द्वीप तक नहीं पहुंच सकता था। पर उस द्वीप के ओझल होते ही अन्य द्वीपों की तटरेखाएं हमें दिखायी पड़ने लगीं। ९७वें दिन हमें अंगताऊ द्वीप दिखायी दिया। सफेद रंग का एक बादल प्रकाशकुण्डल की तरह उसे घेरे हुए था। द्वीप के आदिवासी हमारे बेड़े को देख कर हमारा अभिनंदन करने के लिए अपनी डोंगियों में बैठ कर हमारी ओर आने लगे, पर ज्वार तथा विपरीत हवा के कारण बेड़े को उन की डोंगियों के समान, चट्टानों से भरे सागर में ले जाना अत्यंत कठिन था। हम ने इस द्वीप में पहुंचने की बहुत कोशिश की पर असफल रहे। हार कर हम ने बेड़े को उस की स्वाभाविक दिशा में जाने दिया।

७ अगस्त हमारी यात्रा का १०१वां तथा अंतिम दिन था। उस दिन सुबह से ही हमें क्षितिज पर छोटे-छोटे हरे द्वीप दिखायी देने लगे थे। इन में सब से बड़ा द्वीप रारोरिया था। इस द्वीपसमूह और सागर के बीच रारोरिया नामक एक समुद्री पर्वतमाला आती थी जिस से टक्कर लगते ही हमारा छोटा-सा बेड़ा तो क्या बड़े से बड़ा जहाज भी चूर-चूर हो सकता था। हवा कोनटिकी को सीधी इसी पर्वतमाला की ओर ले जा रही थी। हम ने अनुमान लगा कर देखा कि कुछ ही घंटों में यह टक्कर हो जाने वाली थी। इस टक्कर से बचाना मुश्किल था, इसलिए हम ने उस से
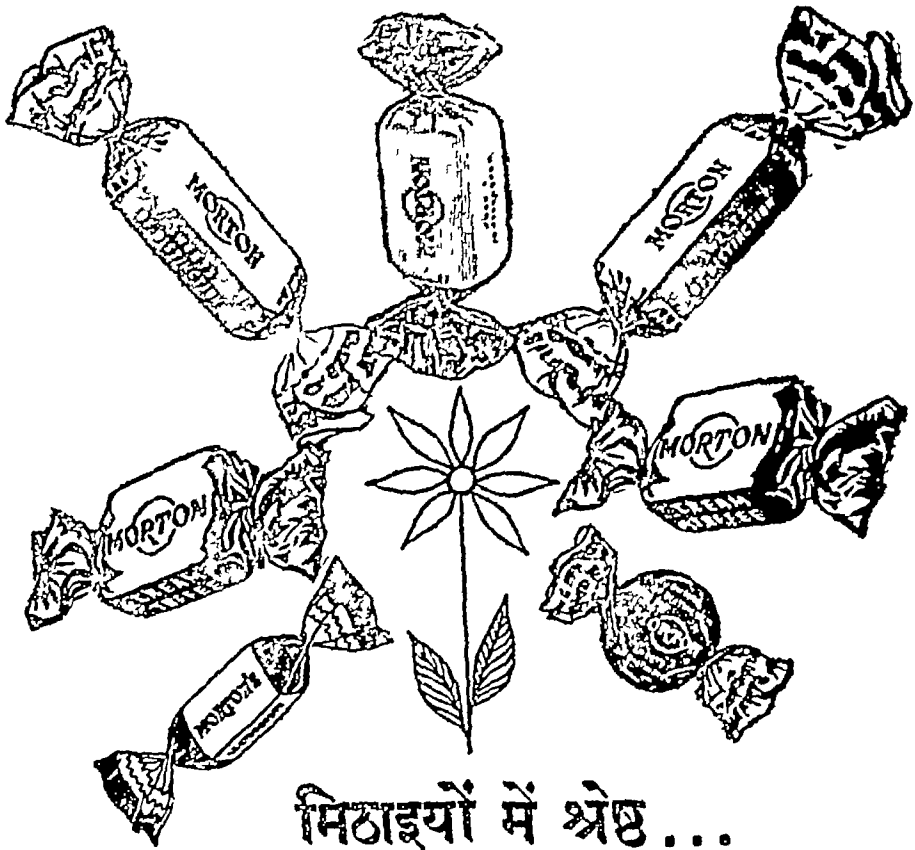
मिठाइयों में श्रेष्ठ...

मॉर्टन

की मिठाइयाँ

- लक्टोबोनबॉन
- क्रीम टॉफी
- सुपर बटर स्कॉच
- चाकलेट नॉवेल्टीज
- पाइनएपल क्रीम
- रैस्पबेरी फिंगर

तथा अन्य भी कई प्रकार की मिठाइयाँ

ASP/M-2/65 HIN

—सुप्रसिद्ध मिठाइयाँ

सी० एण्ड ई० मॉर्टन (इंडिया) लि०

उच्च कोटि की मिठाइयों और कन्डेन्स्ड मिल्क के निर्माता

बचाने की तैयारियां शुरू कर दीं। चट्टानों के निकट होने के कारण सागर की लहरों में अजीब खलबली-सी मची थी। वे तेजी से चट्टानों की ओर दौड़ती हुई जाती थीं और उस से भी अधिक तेजी के साथ वापस लौटती थीं। पर लहरों से भी अधिक तेजी थी हवा में, जो कोन-टिकी को सीधा चट्टानी पर्वतमाला की ओर ले जा रही थी। लहरें बेड़े को ऊपर-नीचे उछालती हुई आगे ले जा रही थीं।

कुछ समय बाद चट्टानें हमें साफ-साफ दिखायी देने लगीं।

आधी पानी से बाहर और आधी पानी के अंदर छिपी यह पर्वतश्रेणी दूर से सागर के शरीर पर लगे विशाल तिल की तरह लगती थी। २५ मील लंबी उस पर्वतमाला पर सागर की लहरें जोर से टकरातीं और फेनों का एक पर्वत आसमान को छूने चल देता। प्रशांत महासागर यहां पर स्वयं को पराजित अनुभव कर रहा था।

मैं इस द्वीप में पहले आ चुका था इसलिए जानता था कि इस शैल-माला से टक्कर होने की घटना रोकी नहीं जा सकती थी क्योंकि यह समुद्र के अंदर ही अंदर कई मील तक चली गयी थी। यह पर्वतमाला कई जहाजों की तबाही का कारण बन चुकी थी। केवल एक उपाय से हम अपने को तथा अपने कीमती सामानों को बचा सकते थे। वह उपाय मैं ने अपने साथियों को समझा दिया और वैसी ही तैयारियां शुरू कर दीं।

सब महत्त्वपूर्ण कागजों और फिल्मों को ऐसे थैलों में कस कर बांध दिया गया जिन पर पानी का असर न हो सकता था। अन्य जरूरी चीजें रस्सी से मजबूती के साथ बांध कर अलग रख दी गयीं। बांस की केबिन को कैनवास से ढक कर उस के चारों ओर मजबूत रस्से बांध दिये गये। बांस से बने डेक को खोल दिया गया। हवा रोकने वाले तख्तों को नीचे रखने के लिए जो रस्से लगे थे, उन्हें खोल डाला गया। इन तख्तों के ऊपर जाते ही हमारे बेड़े की पानी में गहराई नीचे वाले लट्ठों के बराबर हो गयी। लहरों को हमें चट्टान पर फेंकने में ज्यादा दिक्कत न हो—ऐसा प्रबंध हम ने कर दिया। हवा रोकने वाले तख्तों के न होने तथा पाल के नीचे होने पर अब कोन-टिकी पूरी तरह हवा और लहरों की दया पर निर्भर था। अब हम यही चाहते थे कि लहरें उसे जल्दी से जल्दी चट्टानों की ओर ले जायें।

पानी के खाली पीपों में रद्दी सामान और लकड़ी डाल कर उस का लंगर बनाया गया। इस अजीब से लंगर में हम ने अपना सब से बड़ा रस्सा बांधा और उसे 'पोर्टमास्ट' के नीचे बांध दिया ताकि लंगर के फेंकते ही कोन-टिकी का पृष्ठभाग पहले फेन वाली उग्र लहरों में गिरे। ये सब तैयारियां हो जाने के बाद हम ने अपने जूते १०० दिन बाद पहने। लाइफ-बेल्ट भी बांध लीं, यद्यपि चट्टानों से टक्कर होने पर वे हमारी अधिक रक्षा न कर सकती थीं। हमें डूबने का उतना डर न था, जितना मूंगे की

SUNLIGHT
नए फ़ार्मूलेवाले
सनलाइट
से आप के कपड़े चमक उठते हैं!
हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन
S 56-77 HI

चट्टानों से छिल-छिल कर चकना-चूर हो जाने का।

इस के बाद हम ने बेडे को कस कर पकड लिया। मैं ने अपने सभी साथियों को यही आदेश दिया था कि कुछ भी हो, बेड़े से अलग नहीं होना है। हमारी योजना यह थी कि चट्टान का सारा आघात बेड़े के लट्ठे ही सहें।

कूदने की कोशिश हमें नहीं करनी थी क्योंकि तब लहरें हमें नुकीली चट्टानों पर जोर से पटकतीं और हम बिना मौत मारे जाते। रबड की जीवन-नौका भी इस समय काम नहीं आ सकती थी क्योंकि भयंकर लहरें उसे उलटा कर देतीं और मूंगे की चट्टानें उस के चिथड़े-चिथड़े कर देतीं। सिर्फ लट्ठे ही सब आघातों को सह सकते थे और हमें कभी न कभी तट पर पहुंचाने में सहायता कर सकते थे।

हम बेडे में लेटे हुए सांस रोक कर उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे जब बेड़ा जा कर चट्टानों से टकराता। हम सब गंभीर अवश्य थे, पर भय-भीत बिलकुल नहीं। बेड़े की क्षमता तथा अंत तक लडने की हिम्मत में हमें पूरा भरोसा था। जो बेडा हमें ४,३५० मील तक ले आया था, वह सही-सलामत समुद्रतट तक भी ले जा सकता था।

केबिन के अंदर एक कोने में सिमटा टोरस्टिन अपने एक नये रेडियो-मित्र से संपर्क स्थापित करने की कोशिश कर रहा था। वह ९०० मील पश्चिम की ओर स्थित कुक द्वीपसमूहों के एक द्वीप रारोटोंगा को संदेश भेजने का प्रयत्न कर रहा था कि कोनटिकी तेजी से पर्वतश्रेणियों की ओर जा रहा है और यदि अगले ३६ घंटों तक कोनटिकी से उसे कोई संदेश प्राप्त न हो तो वह इस बात की सूचना वाशिंगटन स्थित नार्वे के दूतावास को दे दे। वह बडी व्यग्रता से रारोटोंगा से संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था, पर वहां से कोई उत्तर नहीं आ रहा था।

पौने दस बजे के करीब हमें समुद्र के ऊपर उभरी हुई पर्वतश्रेणी साफ-साफ दिखायी देने लगी। उस के चारों ओर सफेद फेन उगलती समुद्री लहरें आकाश से बातें करने की कोशिश कर रही थीं। इस समय हम सब ने कोनटिकी पर अंतिम बार भोजन किया। तीन-चार मिनट बाद मूंगे की चट्टानों से घिरी हुई वह समुद्रतटीय झील भी दिखायी देने लगी जो द्वीप तक पहुंचने में एक और बाधा थी।

पांच मिनट बाद इस यात्रा के अंतिम लेकिन रोंगटे खडे कर देने वाले दृश्य की शुरूआत हुई। लहरों के चट्टानों से टकराने का स्वर ऐसा सुनायी पडने लगा मानो कोई एक-साथ सैकड़ों नगाड़े बजा रहा हो। अब हम चट्टान से कुल १०० गज की दूरी पर थे। चारों तरफ लहरों के कर्णभेदी शोर के अलावा कुछ और सुनायी नहीं देता था, और सामने फेन के बीच दिखायी दे जाती थी विकराल चट्टान।

दो-तीन मिनट बाद लंगर तेजी से सागर की ओर लपकता हुआ भागा और फिर नीचे बैठ गया। कोनटिकी

भारत के हर कोने से स्वेच्छा से भेजे गये पत्र प्रमाणित करते हैं

फोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट व दंत-क्षय को दूर करता है

हर उम्र के लोग मसूढ़ों के कष्ट व दंतक्षय के लिये फोरहन्स टूथपेस्ट की सफलता का वर्णन करते हैं

देखिये ये क्या लिखते हैं :

"अपने दांतों की सफेदी और चमक के लिये मैं फोरहन्स का आभारी हूँ जिसे मैं काफी दिनों से इस्तेमाल करता आ रहा हूँ। मेरी उम्र सत्ताइस वर्ष की है। पहले मैं पान और तम्बाकू खाया करता था। जैसा कि आपको ज्ञात होगा ही तम्बाकू खाने से दांतों पर धब्बे पड़ जाते हैं और काले रंग की परत जम जाती है। लेकिन फोरहन्स ने एक अद्भुत काम किया। उससे मेरे सभी धब्बे खत्म हो गये और दांत सफेद होकर चमकने लगे।"

पी बी, बंगलोर

"फोरहन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल करने से मुझे मसूढ़ों के भयानक कष्ट से मुक्ति किस तरह मिली, यह आपको बताना अपना फर्ज समझता हूँ। अब मैं फोरहन्स का भक्त बन गया हूँ और सहर्ष सूचित करता हूँ कि मसूढ़ों के दर्द, सूजन और मुंह की बदबू से मुझे मुक्ति मिल गई है। पहले इन विकारों ने नाक में दम कर लिया था। मेरी यही कामना है कि फोरहन्स (टूथपेस्ट) पर भगवान की कृपा हमेशा बनी रहे।"

एच आर एस बम्बई

"मैं आपको सूचित करना चाहती हूँ कि किशोरावस्था से मैं फोरहन्स टूथपेस्ट इस्तेमाल कर रही हूँ। इतना ही नहीं, मेरे घर के सभी लोग इसी टूथपेस्ट को इस्तेमाल कर रहे हैं क्योंकि दांतों को चमकीला सफेद और मसूढ़ों को मजबूत व स्वस्थ रखने के लिये हमने इसे बहुत ही फायदेमंद पाया है।"

श्रीमती के वी बंगलोर

★ ये प्रमाणपत्र जेफ्री मॅनर्स एण्ड क० लिमिटेड, के किसी भी दफ्तर में पढ़े जा सकते हैं।

फोरहन्स एक दांत-डाक्टर द्वारा निर्मित टूथपेस्ट

मुफ्त! CARE OF THE TEETH AND GUMS की रंगीन पुस्तिका

अगर आपको दंत-रक्षा की सचित्र पुस्तिका की जरूरत है तो १० पैसे का टिकट (डाक खर्च के लिये) इस पते पर भेजिये डिपार्टमेन्ट K.9, मॅनर्स डेन्टल एडवायजरी ब्यूरो, पोस्ट बेग नं० १००३१, बम्बई-१

नाम . ...

पता .. . .

. .. .

अपने पृष्ठभाग के चारों ओर घूमने लगा। हम मृत्यु के मुंह में थे पर सब का दृढ़ विश्वास था कि हम अतत. सकुशल समुद्रतट पर पहुंच जायेंगे।

ठीक इसी समय टॉरस्टिन रारो-टोंगा के अपने अनजान रेडियो-मित्र के साथ संपर्क स्थापित करने में सफल हो गया। उस ने अपना संदेश उस को दे कर अंत में कहा, "५० गज और बाकी हैं। हम चले. अलविदा।"

लंगर जवाब देता जा रहा था लहरों की गरज बढती जा रही थी और सागर एक विशाल दैत्य की भांति तेजी से सांस ले रहा था। लगता था इस सांस के साथ हमारा नन्हा-सा बेड़ा ऊपर, और ऊपर, और ज्यादा ऊपर चला जा रहा है।

मैं ने फिर आदेश दिया, "बेडे से चिपटे रहो। बेड़े से अलग न होना।"

सब किसी न किसी रस्सी को जकड़े लेटे थे। खड़े नहीं हो सकते थे क्योंकि खड़े होते ही हवा और लहरें हमें दबोच लेतीं और नुकीली चट्टानों पर ले जा कर पटक देतीं।

जब हम ने जान लिया कि सागर ने बेड़े पर पूरी तरह कब्जा कर लिया है तब लंगर के रस्से को काट दिया। अब लहरें बड़ी तेजी से हमें उड़ा ले चलीं। लहरों ने बेड़े को काफी ऊंचा उठा लिया था। कोनटिकी लहरों के हमले से कांप-कांप जाता था और सागर के अत्याचार के कारण बार-बार कराह उठता था। मुझे इतनी उत्तेजना थी कि खतरे के बाव-जूद मेरा खून खौलने लगा था। मुझे न जाने क्या सूझा कि जोर-जोर से 'हुर्रे, हुर्रे' चिल्लाने लगा। मेरे साथियों ने समझा होगा कि मैं पागल हो गया हूं। वे भी जोश में थे पर मेरी तरफ देख कर केवल मुसकरा रहे थे।

हमारा यह जोश जल्दी ही ठंडा पड गया। चमकदार हरी दीवार की भांति सागर की लहरों ने मिल कर बेडे पर जोरदार हमला बोल दिया। लहरों के आघात से मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे जबरदस्त चांटा मार दिया हो। हम सब बेड़े सहित सागर के नीचे चले गये। मेरा शरीर बेड़े से अलग होने का प्रयत्न करने लगा पर मैं अपने पूरे जोर के साथ बेडे से चिपटा रहा। जिस क्षण मुझे लगा कि मेरी बाहें मुझ से अलग होने जा रही हैं, उसी क्षण जल का वह पहाड मुझे अपने शरीर पर से उतरता हुआ प्रतीत हुआ।

हम सब बेड़े को जकड़े हुए लेटे थे। सभी अब तक जीवित थे।

कोनटिकी अभी तक तैर रहा था, अभी तक अपराजित था। पर अगले ही क्षण एक नयी हरी दीवार हमें अपनी ओर आती हुई दिखायी दी। चीते-जैसी फुरती के साथ हम सब ने दोबारा रस्सियों को पहले से भी अधिक दृढता के साथ पकड लिया। मैं ने चिल्ला कर फिर अपने साथियों को इस नये खतरे से सावधान किया और फिर अपनी जगह पर सिमट कर रस्सों से चिपट गया।

इस के अगले ही क्षण जैसे सारी

अपने पृष्ठभाग के भारी ओर घूमने लगा। हम गुम्म के मारे से थे पर सब का दृढ़ विश्वास था कि हम अंतत: सकुशल समुद्रतट पर पहुंच जायेंगे।

ठीक इसी समय टॉर्स्टिन रारो-टोंगा के अपने अनजान रेडियो-मित्र के साथ सम्पर्क स्थापित करने में सफल हो गया। उस ने अपना संदेश उस को दे कर अंत में कहा, "५० गज और बाकी हैं। हम चले. अलविदा !"

लंगर जवाब देता जा रहा था, लहरों की गरज बढ़ती जा रही थी और सागर एक विशाल दैत्य की भांति तेजी से सांस ले रहा था। लगता था इस सांस के साथ हमारा नन्हा-सा बेड़ा ऊपर, और ऊपर, और ज्यादा ऊपर चला जा रहा है।

मैं ने फिर आदेश दिया, "बेड़े से चिपटे रहो। बेड़े से अलग न होना।"

सब किसी न किसी रस्सी को जकड़े लेटे थे। खड़े नहीं हो सकते थे क्योंकि खड़े होते ही हवा और लहरें हमें दबोच लेतीं और नुकीली चट्टानों पर ले जा कर पटक देतीं।

जब हम ने जान लिया कि सागर ने बेड़े पर पूरी तरह कब्जा कर लिया है तब लंगर के रस्से को काट दिया। अब लहरें बड़ी तेजी से हमें उड़ा ले चलीं। लहरों ने बेड़े को काफी ऊंचा उठा लिया था। कोनटिकी लहरों के हमले से कांप-कांप जाता था और सागर के अत्याचार के कारण बार-बार कराह उठता था। मुझे इतनी उत्तेजना थी कि खतरे के बावजूद मेरा खून खौलने लगा था। मुझे न जाने क्या सूझा कि जोर-जोर से हुर्रे, हुर्रे चिल्लाने लगा। मेरे साथियों ने समझा होगा कि मैं पागल हो गया हूं। वे भी जोश में थे पर मेरी तरफ देख कर केवल मुसकरा रहे थे।

हमारा यह जोश जल्दी ही ठंडा पड़ गया। चमकदार हरी दीवार की भांति सागर की लहरों ने मिल कर बेड़े पर जोरदार हमला बोल दिया। लहरों के आघात से मुझे लगा जैसे किसी ने मुझे जबरदस्त चांटा मार दिया हो। हम सब बेड़े सहित सागर के नीचे चले गये। मेरा शरीर बेड़े से अलग होने का प्रयत्न करने लगा पर मैं अपने पूरे जोर के साथ बेड़े से चिपटा रहा। जिस क्षण मुझे लगा कि मेरी बांहें मुझ से अलग होने जा रही हैं, उसी क्षण जल का वह पहाड़ मुझे अपने शरीर पर से उतरता हुआ प्रतीत हुआ।

हम सब बेड़े को जकड़े हुए लेटे थे। सभी अब तक जीवित थे।

कोनटिकी अभी तक तैर रहा था, अभी तक अपराजित था। पर अगले ही क्षण एक नयी हरी दीवार हमें अपनी ओर आती हुई दिखायी दी। चीते-जैसी फुरती के साथ हम सब ने दोबारा रस्सियों को पहले से भी अधिक दृढ़ता के साथ पकड़ लिया। मैं ने चिल्ला कर फिर अपने साथियों को इस नये खतरे से सावधान किया और फिर अपनी जगह पर सिमट कर रस्सों से चिपट गया।

इस के अगले ही क्षण जैसे सारी

कयामत ही हम पर टूट पडी। कोन-टिकी अथाह सागर में जैसे खो-सा गया। इस बीच सागर ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर हमें बेड़े से अलग करने का प्रयत्न किया। एक ओर सारा सागर था और दूसरी ओर एक असहाय बेडे से चिपका हुआ बेड़े से भी अधिक असहाय मामूली इनसान। सागर ने दूसरी बार कोनटिकी को फिर उदरस्थ करके भी चैन की सास न ली। जब गर्वोन्नत कोनटिकी दूसरी बार भी उस के जबडे से बच कर आ गया तो उस ने तीसरी बार उस पर हमला किया।

लेकिन इन तीन हमलों के बाद भी कोनटिकी अपराजेय था। उस के मस्तूल और केबिन को ही थोडी-सी क्षति पहुंची थी। हमें लगा कि कोनटिकी के सहारे हम ने सागर पर विजय प्राप्त कर ली है। विजय के इस उल्लास और गर्व से हमें नये विश्वास तथा नयी शक्ति की प्राप्ति हुई। इसी विश्वास के साथ तो हम ने यह अभियान आरंभ किया था।

जब सागर कोनटिकी को पराजित करने में असमर्थ रहा तो उस ने झल्ला कर उसे चट्टानों पर ला पटका। हमारे शरीर बुरी तरह छिल गये, फिर भी बेडे के चट्टान पर पहुंचते ही हम एक-एक करके बेडे से चट्टान पर आये। रबड की जीवन-नौका को फुरती से अलग करके हम ने उस में अपना सारा सामान—खाने की चीजें, रेडियो, किताबें, कपड़े, पानी के पीपे आदि भरे और कंधे तक गहरी झील में पैदल चलते हुए इस नाव को धक्का देते हुए समुद्रतट पर ले आये।

हम खुश थे, बहुत खुश। हम गा रहे थे, नाच रहे थे और ताड के पेडों के उस पार तैरते हुए बादलों की ओर देख कर मुसकरा रहे थे। जिस द्वीप पर सागर ने हमें ला पटका था, उस में कोई न रहता था। हम ने रेडियो द्वारा रारोटोंगा के अपने रेडियो-मित्र से तथा अपने अन्य रेडियो-मित्रों से सपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। हमारा रेडियो-मित्र हेराल्ड तो हमारी यात्रा के निर्विघ्न पूरी होने का समाचार सुन कर हर्ष के मारे रो ही पडा। हमारे इन रेडियो-मित्रों ने शीघ्र ही यह समाचार सारे विश्व में फैला दिया कि कोन-टिकी की यात्रा निर्विघ्न समाप्त हुई।

आसपास के द्वीपों में रहनेवालों ने कोनटिकी को चट्टानों से टक्कर होती देखी थी। वे अपनी-अपनी डोंगियां ले कर शीघ्र ही वहा आ गये। इन लोगों ने हमें शानदार दावत दी तथा अपने संगीत और नृत्य से हमारा खूब मनोरंजन किया।

कुछ घंटे बाद फ्रास-सरकार का दो मस्तूलों वाला जहाज 'तमारा' हम लोगों को लेने के लिए आ गया। हम ने अपने मेजबानों से विदा ली और जहाज में बैठ कर ताहिती आये, जो फ्रास के अधिकार वाले द्वीप-समूहों की द्वीप-राजधानी है। कोन-टिकी बेडे को ताहिती की राजधानी पपेट लाया गया जहा नार्वे के दो मस्तूलों वाले जहाज 'थार' ने उसे तथा हम लोगों को शरण दी।
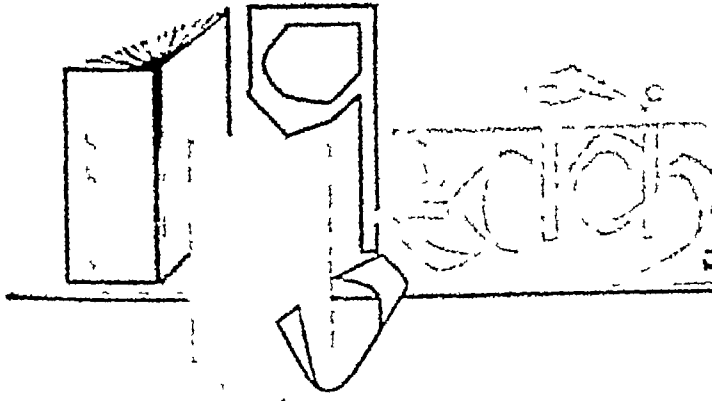
चौंसठ रूसी कविताएं

रूपांतरकार—डा० हरिवंशराय बच्चन; प्रकाशक—राजपाल एंड संज, दिल्ली-६; पृष्ठ—१५७; मूल्य—३.००

प्रत्येक भाषा के साहित्य की समृद्धि के लिए अन्य भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का अनुवाद आवश्यक होता है और हिन्दी का यह सौभाग्य है कि स्वातंत्र्योत्तर इस दिशा में सराहनीय कार्य हुआ है।

इस पुस्तक में चौबीस रूसी कवियों की चौंसठ कविताओं के अनुवाद हैं। रूपान्तरकार हैं हिन्दी के जाने-माने कवि डा. बच्चन। कविताओं का अनुवाद अंगरेजी से हिन्दी में किया गया है। बच्चनजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें रूसी भाषा का ज्ञान नहीं है, फिर भी उन्होंने रचनाओं की मौलिकता बनाये रखने का दावा किया है। संकलन की कुछ रचनाएं तो बहुत मार्मिक हैं, जिन में 'पैगम्बर, तातियाना का पत्र, बंदी, संगतराश, मधुऋतु से पूर्व, पतझड की शाम, हैमलेट, बच्चे' आदि उल्लेखनीय हैं।

बच्चनजी को प्रमुख रूप से गीतकार कहा जाता है। लगता है इसी कारण तुकों के मोह में कहीं-कहीं हलके शब्द आ गये हैं।

'बोरिस पास्तरनाक' की प्रथम कविता 'निशा और उषा' की प्रथम पंक्ति में 'चिड़ियों का पर' समझ में नहीं आया। 'का' के स्थान पर 'के' होना चाहिये था। इसी कवि की द्वितीय कविता के अन्त में एक मात्रा पूरी करने के लिए 'अलमारी' की जगह 'आलमारी' खटकता है।

पुस्तक के आरम्भ में रूसी कविता के क्रमिक विकास तथा इतिहास का बच्चनजी द्वारा किया गया खोजपूर्ण विहंगावलोकन प्रशंसनीय है।

—दिनेश सक्सेना 'दिनेशायन'

वे दिन

लेखक—निर्मल वर्मा; प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-६; पृष्ठ—२३२; मूल्य—५.५०

'वे दिन' पढ कर काफी पुरानी एक फिल्म याद आ गयी—'ए रोमन हॉलीडे'। (आलोचित उपन्यास भी फिल्मी हैं, यह आशय कदापि नहीं।) फिल्म में एक निश्चयत दिलचस्प कहानी के माध्यम से दर्शक को पूरा रोम दिखा दिया गया था। नगर-दर्शन-जैसे रूखे फारमूले को भी कितने दिलचस्प, साथ ही सुरुचि-पूर्ण ढग से पेश किया जा सकता है—मैं ने सोचा था। 'वे दिन' में प्राग है। उपन्यास में एक *भीनी-भीनी* प्रेम-कहानी धीमी गति से चलती है, जिस मे सवेदन-तीव्रता की कमी नहीं; लेकिन 'वे दिन' का समूचा कथानक पार्श्व में चला गया है। उभरा है सिर्फ इतना कि क्रिसमस की छुट्टियों में प्राग कैसा होता है।

हिन्दी में सचेतन कहानी से पहले अ-कहानी की बात चली थी। ऐसी कहानी जो रूढ अर्थों में कहानी न हो, *अ-कहानी कही गयी।* उसी तरह 'वे दिन' अ-उपन्यास है। इस का कथानक या 'उपन्यासपन' मात्र इतना है कि एक टूरिस्ट युवती, जो परि-त्यक्ता है, अपने पुत्र और मन के एक हद तक डरावने खोखलेपन के साथ प्राग आती है। 'मैं' उस का गाइड है, जिस को वह कुछ ही दिनों में अपने लिए शारीरिक रूप से प्राप्त कर लेती है। उस के विदा होने पर गाइड अकेला रह जाता है।

फ्रांज, मारिया, टी टी इत्यादि अनेक पात्र हैं जो कथानक (या कहिये, अ-कथानक) के पार्श्व-चरित्रों के रूप में सामने आते हैं, लेकिन उन के बारे में इतना अधिक बताया गया है कि समाप्ति पर जब उन में से कोई भी चरित्र 'परिपूर्ण' नहीं लगता, तो बहुत कष्ट होता है। ये सभी पात्र उपन्यास के नायक के दोस्त अथवा परिचित हैं। इस दोस्ती या परि-चय के अलावा उपन्यास के साथ उन का कोई सम्बन्ध नहीं है।

'वे दिन' के प्राय सभी सवाद ऐसे हैं कि अगरेजी से ज्यों-के-त्यों उतारे हुए लगते हैं। इस से जो बनावट आयी है, वह मात्र एक लेखकीय औपचारिकता लगती है—सप्रयास ओढी हुई औपचारिकता।

शुरू में उपन्यास दिलचस्प है, लेकिन दुनिया का सर्वश्रेष्ठ करिश्मा भी किसी को लम्बे अरसे तक बांध कर नहीं रख सकता। करिश्मा, चाहे वह जादू का हो, चाहे भाषा अथवा विदेशीपन की सायासता का, *क्षणिक मनोरंजन ही कर सकता है।*

—मनहर चौहान

सन्तुलन-असन्तुलन

लेखक—मनहर चौहान; प्रकाशक—उमेश प्रकाशन, दिल्ली-६; पृष्ठ—११८-११२; मूल्य—४.५०

इस पुस्तक में दो उपन्यासो को एक अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया गया है, किन्तु समूची सामग्री अनोखी नही है और न उस का प्रस्तुतीकरण ही सर्वत्र विशेष जानदार बन पाया है।

'असन्तुलन' रिपोर्ताज अधिक, उप-न्यास कम लगता है। सितम्बर-अक्तू-

वर, १९६४ (लेखक द्वारा दी हुई तारीखें) में दिल्ली में जो कुछ हुआ, उसी का वर्णन लेखक ने लगभग यथा-तथ्य कर दिया है। महंगाई, मुनाफा-खोरी, मकान-समस्या, बाढ़, मिलावट, चुस्त लिबास, मध्यमवर्गीय अभावग्रस्त-ता आदि को मिला कर उपन्यास की रचना हुई है। कथा इन सब के बोझ से दम तोड़ती प्रतीत होती है। लंबे-लंबे नीरस वर्णन उबा डालते हैं। इन के बावजूद उपन्यास में बराबर एक सनसनी बनी रहती है।

उपन्यास का अंत पढ़ कर 'भूखी पीढ़ी' (हंग्री जेनरेशन) आन्दोलन की याद आ गयी। संक्षेप में, उपन्यास की यथार्थता इतनी बोझिल और गरिष्ठ है कि कथावस्तु की रोचकता यदि पूर्णतः नहीं तो बहुत कुछ कम अवश्य हो गयी है। यदि सामयिक समस्याओं के वर्णन में लेखक संयम से काम लेता और मूल समस्या (बदलती हुई मान्यताएं, बदलता हुआ परिवेश और व्यक्ति) का सही ढंग से निर्वाह करता तो निस्सन्देह उपन्यास काफी अच्छा बन जाता।

दूसरा उपन्यास 'सन्तुलन' लेखक की अंतर्दृष्टि और संवेदना को अच्छे ढंग से उभारता है। इस से 'सांस्कृतिक विलम्बन' (कल्चरल लैग) की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। एक गुजराती परिवार का आत्मीय चित्रण करते हुए लेखक पाठकों की पूरी सहानुभूति नायिका (जिसे 'छप्परपनी' कह कर तिरस्कृत किया जाता था) के प्रति खींच लेता है। अंत बड़ा ही मार्मिक हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यासों की भाषा सुघड

और ि
वहा श्र
शहरी तथ;
रूप से दि
पूर्ण सफल

चे

लेखक—शंकर
कमल चौधरी; प्र
प्रकाशन, दिल्ली; पृ
मूल्य—११.००

चौरंगी' एक क
कहानियां नहीं, अने
एक कहानी है। वह
का चित्र और आलोच

प्राचीन चित्रों में जि
ही फलक पर कई घटन
करके उस की वर्णनात्म
बनाया जाता है, उस
चित्र की स्थिरता के
क्रम की प्रवाहमयत
उसी प्रकार इस
में एक ही वस्तु को
कई लोगों से, कई को
और दर्शाने का प्रयत्न कि

किसी भी कथानक
और शैली के अतिरिक्त तीस
अनुभूतियों का होता है और
की कुशलता पर निर्भर कर
वह किस सीमा तक पाठक
में अपने पात्रों के लिए अ
उत्पन्न कर सकता है। 'चौ
कोण से एक पूर्ण सफल कृ
पाठक इसे पढ़ते समय यह
नहीं करता कि वह किसी

हास्य-व्यंग्य

शिकार

स्तम्भ

चित्र-परिचय

मुखपृष्ठ : फ्लोरा फाउंटेन (बंबई)
छायाकार—पी. के. भाटिया

सूर्यास्त : छायाकार—राज
तिलक : छायाकार—ओ. पी. अग्रवाल
भुट्टे की बहार : छायाकार—एन. रामकृष्ण
फूल और लार्वा : छायाकार—राज

... फाउंडेशन (बंबई)

... छायाकार—पी. के. मांटय

छायाकार—राज
छायाकार—ओ. पी अग्रवाल

छायाकार—एन. रामकृष्ण
छायाकार—राज

निबन्ध एवं लेख

कविताएं

कथा-साहित्य

भर
ना मस्त और महकती

सर्वाधिक
लोक-प्रिय
ओरिएन्ट
पंखे
ओरिएन्ट जनरल इंडस्ट्रीज लिमिटेड
कलकत्ता-५४

रेलें हमारे देश का सबसे
बड़ा राष्ट्रीय उपक्रम हैं
और भविष्य में भी रहेंगी

—जवाहर लाल नेहरू

३,००० करोड़ रुपये से भी अधिक मूल्य की परिसम्पत्ति वाली भारतीय रेलों से प्रतिवर्ष ६१० करोड़ रुपये का कुल राजस्व प्राप्त होता है। भारतीय रेलें देश का सबसे बड़ा राष्ट्रीय उपक्रम हैं और इनमें १२.७ लाख कर्मचारी काम करते हैं। भारतीय रेलें ५७,००० किलोमीटर लम्बे मार्ग में देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई हैं। एक ही व्यवस्था के अधीन ये संसार की दूसरी सबसे बड़ी परिवहन प्रणाली है। प्रतिदिन इनसे ५० लाख से भी अधिक यात्री सफर करते हैं और ५ लाख मीट्रिक टन माल ढोया जाता है। भारतीय रेलें राष्ट्र की जीवन रेखा हैं। भावी भारत को और भी अधिक सम्पन्न बनाने में ये सबसे आगे हैं।

राष्ट्र सेवा में रेलों का ११२ वाँ वर्ष

भारतीय रेलें

व्यक्ति की सेवा से
राष्ट्र निर्माण में योग दें

HINa-65

११२ वर्षों से
देश की
सेवा में
जनता की भलाई के लिये
जिससे वे बल तथा शक्ति अर्जित करती हैं।
भारतीय रेलें
जन सेवा से राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

अप्रैल अक में 'विन्द,-विन्द, विचार' चार चाद लगाते है तो आचार्य कृपालानी का निवध हिन्दी-विरोधियों पर मरहम। वृजेन्द्र खरे, वालकवि वैरागी तथा देवेन गुप्त की कविताएं विशेष पसन्द आयी। 'हम भी क्या' यथार्थ का चित्रण करता है तो 'तुरुप' हंसी का मसाला प्रस्तुत करता है।

—निहंग, दरभंगा

अप्रैल अक में 'छूटते किनारे' कहानी ने विशेष प्रभावित किया। मुखपृष्ठ वहुत सुन्दर था। 'विन्द,-विन्द, विचार' सदा की भाति आकर्षक रहा।

—हरदेव सरल, हिसार

'छूटते किनारे' कहानी के नाम पर एक व्यर्थ का प्रयास है। सार-सक्षेप के अतर्गत 'सागर भी हारा' ने हृदय को छू लिया। दिग्विजय सिंह का हास्य-व्यग्य पढ कर हसते-हसते लोट-पोट हो गया। 'दधीचि की तपोभूमि' एव 'अमरीका के गाधी' सूचनापरक लेख थे।

—ओमप्रकाश शर्मा, जम्मूतवी

'जीवन एक अनवूझ पहेली', 'हसने का मौसम' तथा 'गोष्ठी' स्तम्भ मुझे वहुत पसद आते है। पत्रिका को जव तक आद्योपान्त पढ़ न लूं, मुझे चैन नही पड़ता।

—राजेश भाटिया, सूरत

अप्रैल अक में कहानियों की अपेक्षा लेख ज्यादा पसद आये। स्तम्भ सभी अच्छे थे।

—गोपालशरण सिंह, पटना

मैं 'कादम्विनी' का नया पाठक हू। इस की प्रशसा में अधिक न कहते हुए इतना अवश्य कहूगा—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले
तावत् 'कादम्विनी' लोकेषु प्रचरिष्यति

—अविनाशी ठाकुर, पुलगांव

अप्रैल अक में प्रकाशित 'भावात्मक एकता मच' भाषा सवधी समस्याओं के निवारण में योग देगा। इसे जारी रखें। 'डा ग्रियर्सन', 'नैहर छूटो जाये' तथा 'लौ वुझी नही' अच्छी रचनाए थी। 'घन-वालाए' कविता ग्रामीण शब्दों की कचुकी ओढ़े लगी।

—के. सी भारती, अल्मोड़ा

खेद है कि पृष्ठ ८५ की पहली पंक्ति मे 'नाम की महिमा . . .' के स्थान पर भूल से 'राम की महिमा . . .' छप गया है। —सं०

सीताचरण दीक्षित

शब्द-सामर्थ्य की कमी प्राय. उन्नति में बाधक होती है। वह सरलता से दूर की जा सकती है। निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये। उत्तरों में दिये चिह्नों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तत्०=तत्सम, सं०=संज्ञा, वि०=विशेषण, क्रि०=क्रिया, पुं०—पुंलिग, स्त्री०=स्त्रीलिंग।

१. समवेत—क. फैला हुआ, ख. निहित, ग. एकान्त, घ. एकत्र।

२. गवाक्ष—क झरोखा, ख गाय की आख, ग साड, घ फहारा।

३. उपहास—क परिहास, ख. अपहास, ग खिल्ली उड़ाना, घ. मुसकाना।

४. श्रीहत—क श्रीयुत, ख जिस का चेहरा फक पड गया हो, ग आहत, घ. निहत।

५. अभिसंधि—क कुचक्र, ख मेल-जोल, ग निशाना, घ राजतिलक।

६. अंगराग—क. शरीर का रग, ख. आभूषण, ग सुगंधित लेप या उबटन, घ सुन्दर वस्त्र।

७. संगोपन—क चोरी, ख अनिष्ट से रक्षा के लिए छिपाना, ग चराना, घ. सगदिली।

८. चिरंतन—क चिरकाल से चला आता हुआ, ख अनन्त, ग. अनादि, घ शाश्वत।

९. वरासन—क. सिंहासन, ख. अच्छा भोजन, ग. विस्तर, घ. श्रेष्ठ आसन।

१०. एकान्तिक—क एकान्तवासी, ख गुप्त, ग अविकल्प, घ स-विकल्प।

११. हार्द—क हार्दिक, ख. मर्म, ग कोमल, घ. प्रेम।

१२. उद्वर्त्तन—क दूसरों के बाद भी जीते रहना, ख कूद-फांद, ग, उद्दडता, घ सद्वर्तन।

१३. विसर्जन—क अधिक सर्जन, ख खदेड़ देना, ग भूलना, घ. त्यागना।

१४ अपरिमेय—क अद्वितीय, ख. जिस की माप-जोख न हो सके, ग. असख्य, घ विस्तृत।

शब्द-सामर्थ्य के उत्तर

१. **समवेत**—घ एकत्र, सम्मिलित —रणभूमि पर समवेत योद्धागण, तत्० वि०

२. **गवाक्ष**—क झरोखा (विशेषत गोल), वातायन, छोटी खिडकी। तत्० स० पु० वि०—गवाक्षित। स० गव-जाल=खिडकी की जाली

३. **उपहास**—ग. खिल्ली उड़ाना, मजाक उडाना, निन्दा—यह न परिहास है, न अपहास, कवितादेवी का उपहास अवश्य है। तत्० स० पुं० वि०—**उपहास्य, उपहासास्पद, उपहासित**

४. **श्रीहत**—ख जिस का चेहरा फक पड़ गया हो, निस्तेज, हतप्रभ—रंगे हाथों पकड़े जाने पर श्रीहत न होते तो क्या होते ? तत्० वि०

५. **अभिसंधि**—क कुचक्र, साठ-गांठ, बुरे उद्देश्य से गुप्त मत्रणा करना, घात साधना—शत्रु से मिल कर देश में अराजकता फैलाने की अभि-सधि (अथवा दुरभिसधि) विफल कर दी गयी। तत्० स० स्त्री०

६. **अंगराग**—ग सुगंधित लेप या उबटन, महावर, प्रसाधन की सामग्री—सहज रूपवती, फिर अगराग से शोभित, मेरी बेटी सुरबाला-जैसी दीख रही थी। तत्० स० पु०

७. **संगोपन**—ख अनिष्ट से रक्षा के लिए छिपाना हवा-पानी, रोगों और जीव-जन्तुओं के आक्रमण से बचाने के लिए छिपाना या सभालना और इस प्रकार पालन-पोषण करना, सवर्धन करना—बाल या शिशु-संगोपन। तत्० स० पुं० वि०—**संगोपित**

८. **चिरंतन**—क चिर, दीर्घ या पुरातन काल से चला आता हुआ, अति प्राचीन, लगभग शाश्वत—चिरतन कुटुम्ब-प्रणाली, चिरतन सिद्धात। तत्० वि० उभय लिग

९. **वरासन**—घ श्रेष्ठ आसन, ऊंचा आसन—उन्हें वरासन देना आवश्यक था, इसलिए मंच पर बैठाया गया। तत्० स० पुं०

१० **एकान्तिक**—अविकल्प, अंतिम, निर्णायक, जिस का अन्तिम लक्ष्य या अर्थ एक ही हो, एकमुखी, अनेकान्तिक के विपरीत—एकान्तिक (फाइनल) निर्णय या आदेश। तत्० वि०

११. **हार्द**—ख. मर्म, सार, तत्व, गूढा—सगीत की हार्द ध्वनि, साहित्य का हार्द विचार और भाषा का हार्द उस के वाक्-प्रयोग होते हैं, इस कविता का हार्द बताइये। तत्० स० पु०

१२. **उद्वर्तन**—क दूसरों के बाद भी जीते रहना (सर्वाइवल)—सृष्टि के नियमानुसार, जो सब से योग्य है वही उद्वर्त्तन का अधिकारी है। योग्यतम का उद्वर्त्तन (सर्वाइवल आफ द फिटे-(स्ट) तत्० स० पुं०

१३. **विसर्जन**—घ त्यागना—मूर्ति जल में विसर्जित कर दी गयी। विदा करना—सब साथियों को विसर्जित कर दिया। बरखास्त या समाप्त करना—सभा का विसर्जन, नौकरी से विसर्जित। तत्० स०

१४. **अपरिमेय**—ख जिस की माप-जोख न हो सके, बहुत अधिक—अपरिमेय शक्ति का धनी है। तत्० वि० विपरीतार्थी—**परिमेय**

जे० के० वोर्डज व्यापार व उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों मे आपकी सेवा में संलग्न हैं—जिल्द साजों से जूता साजों तक, प्रकाशकों से लेकर सिगरेट उद्योग तक, मिठाई वनाने वालों से किताबें वनाने वालों तक और स्टेशनरी वालों से लेकर पेकिंग करने वालों तक—किसी भी समय पर और कहीं पर—जे० के० वोर्डज सर्वत्र उपलब्ध हैं।

स्ट्रॉ प्रोडक्टस् लिमिटेड □ ११ रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता १ □ कारखाना : चौला रोड, भोपाल
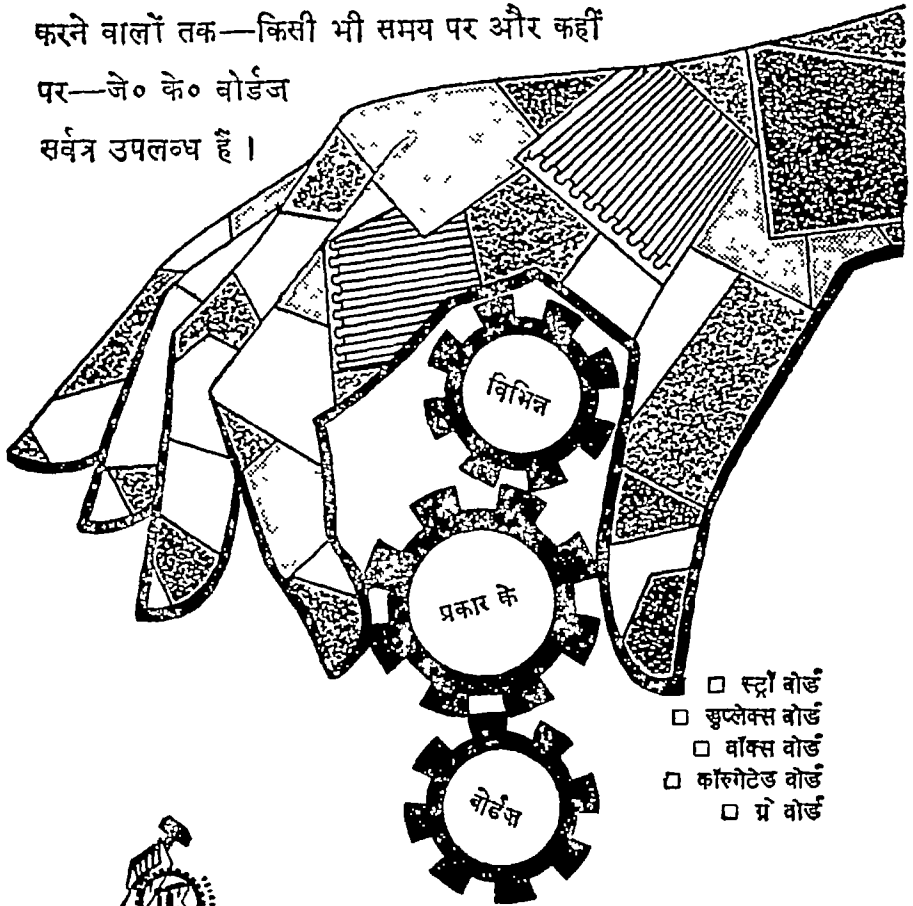
* एक सौम्य पीताभ किरण ने अपने अतनु क्रोड़ में ले कर मुझे दर्प-निरसित कर दिया है।

* मेरी अदम्य जिजीविषा को पावनता से अभिसिंचित करने वाली प्रकाश-वधूटी, मैं अब तुम्हारा हूं।

* निरभ्र नीलाकाश के निस्सीम विस्तार को सीमांकित करने के लिए तत्पर मैं ऊर्ध्वबाहु खड़ा था कि सहसा इस किरण ने मुझे अपने परिचय में ले लिया।

* जीवन में सहसा हो जाने वाले इन संयोगों से ही आस्था ले कर हम इन के सूत्रधार को समस्त आस्तिकता का अर्घ्य देते हैं।

* 'आछोर अंतरिक्ष को, मान लो, तुम अपने बाहुओं में समेट भी लो — किन्तु, उस के पश्चात ?'

* इसी प्रश्न की पूर्वपीठिका पर चरण धर कर मेरी किरण उतरी थी।

* आरंभ में लगा कि ऐसे प्रश्न संभवतः हमारी सहिष्णुता की परीक्षा के लिए उठाये जाते हैं।

* नीलांचल की चौहद्दी बांध देने-जैसी अकल्पनीय उपलब्धि को नकारने योग्य दंभ जिस प्रश्न में हो, वह अपने बेतुकेपन से चौंकाता जितना है—झुंझलाहट उस से कम उत्पन्न नहीं करता।

* किन्तु एक अतिकाय कार्य जिस के सामने हो, ऐसे प्रश्नों के मुंह लगने या उन्हें मुंह लगाने जितना अवकाश उसे नहीं होता।

* बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का मानव, मैं, प्रकृति के प्रत्येक मुखौटे को उतार फेंकने के लिए संकल्पबद्ध हूं—'उस के पश्चात' की ऊहापोह में मुझे नहीं पड़ना है।

* लेकिन, टाल देने से प्रश्न यदि मौन हो जाया करते तो न धनुषों पर प्रत्यंचाएं चढ़तीं और न वेणुओं के रंध्रों से प्राण-स्वर फूटते।

* आस्था से उठने वाले प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहते—उन की प्रति-

ध्वनियां उन के समाधानों की पालकी बन कर लौटती हैं।

★ किरण ने ही उत्तर दिया, 'उस के पश्चात यह कि तुम्हें फिर इसी धरती पर लौट आना है।'

★ 'इस का आशय ?' अब मैं संयम खो चला था, 'क्या इस का आशय यह कि जब मुझे लौट कर इसी धरती पर आना है, तब अंतरिक्ष की ओर जाने का लाभ ही क्या है ? समस्त ज्ञान-विज्ञान की जननी जिज्ञासा का बस इतना ही मूल्य है तुम्हारी दृष्टि में ! पृथ्वी से हम बंधे हैं, क्या इसीलिए हम न सागर में उतरें और न आकाश में चढ़ें . . .'

★ मैं और भी कुछ कहता परंतु किरण की हंसी ने मुझे टोक दिया।

★ जब कोई किरण हंस कर टोकती है, तो अवश्य ही किसी ऋचा का निर्माण होता है। मैं सावधान हो कर सुनने लगा।

★ 'तुम धरती से बंधे हो, इसीलिए तुम्हें आकाश और पाताल की सीमाओं से परिचित होना है। इस समस्त विराट के सम्राट तुम, वह मध्य-बिन्दु हो जिस तक सब को आना है और जिसे सब तक जाना है। असामर्थ्य की परिखा से घिर बैठने के लिए नहीं जन्मे हो तुम। बांहें फैलाओ कि उन में सागर भी सिमट आयें और आकाश भी। किन्तु यह धरती —इसे क्यों भूल जाते हो तुम ? क्यों भूल जाते हो कि दसों दिशाओं को अपने में समाहित करने वाली बांहें छोटी हैं, यदि उन के आलिंगन में किसी दीन-दुखी को स्थान नहीं है। धरती की पीड़ा मिटी नहीं, तो अम्बर के माथे पर कुकुम का अर्थ कुछ नहीं है। याद रखो, द्रवों में सब से पवित्र है अश्रु, नादों में सब से स्पर्शिल है आर्तस्वर और कर्मों में सब से श्रेष्ठ है परमार्थ।'

★ और इतना कह कर उस सौम्य पीताभ किरण ने अपने अतनु क्रोड़ में ले कर मुझे दर्प-निरसित कर दिया।

★ अब मैं उसी का हूं।

दिनों दिन प्रगति की ओर अग्रसर

(नयी पीढ़ी का नया मासिक)

★ 'नंदन' ने हिन्दी बाल-साहित्य के इतिहास में नये अध्याय की सृष्टि की है। शीर्षस्थ एवं लोकप्रिय लेखकों और कवियों से बच्चों के लिए पहली बार श्रेष्ठ रचनाओं को विशेषरूप से लिखवाने का श्रेय 'नंदन' को है।

★ 'नंदन' अपने पाठकों को भारत के स्वर्णिम अतीत के दर्शन कराता है। वर्तमान की सामाजिक-वैज्ञानिक उपलब्धियों की प्रतीति कराकर भविष्य के लिए उत्तम नागरिक बनने की प्रेरणा देता है।

★ इसलिए अपने बच्चों को 'नंदन' दीजिए और निश्चिन्त हो जाइए। 'नंदन' में वह सब कुछ है, जिसकी उन्हें जरूरत है

नंदन' का प्रत्येक अंक अपने में एक विशेषांक

★ रोमांचकारी कहानिया
★ सद्गुणों के विकास पर बल
★ धारावाहिक उपन्यास
★ चित्र-कथाएं
★ कहानी लिखो
★ खोजो तो जानें

मई अंक में : १३ कहानियां, ४ लेख ५ कविताएं
कुछ विशेष लेख · डा. जाकिर हुसैन, मोरारजी देसाई, डा. वी. के. आर. वी राव, प्रकाशवीर शास्त्री, तारकेश्वरी सिन्हा, अमृता प्रीतम आदि।

जून अंक में : कई विशेष आकर्षण—तीन लम्बी कहानियां, दो चित्रकथाएं, कई रंगीन चित्र।

'नंदन' का चंदा—वार्षिक ५ रु०, अर्द्धवार्षिक २.५० रु०, तिमाही १.५० रु०

नंदन

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन
नयी दिल्ली-१

दण्ड

त्रावणकोर के अत्याचारी दीवान जयनंदन की क्रूरता से प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी। उत्पीड़ित जनता ने वेलु थम्पी के नेतृत्व में शासन के विरुद्ध आंदोलन छेड़ दिया। महाराज बलराज वर्मा ने जयनंदन को हटा कर वेलु थम्पी को दीवान बना दिया।

नये दीवान ने उत्पीड़क शासन-तंत्र के एक-एक अधिकारी को हटा दिया और उन के स्थान पर मुक्ति-संग्राम के तपे-तपाये योद्धा नियुक्त किये। उस ने पुराने अधिकारियों की अनीति को जड़ से मिटा देने की घोषणा की।

तभी सूचना मिली कि नये शासन के एक ग्राम-अधिकारी ने राजकीय कागज-पत्रों में गोलमाल कर सरकार को धोखा दिया है। जांच करने पर अभियोग सत्य प्रमाणित हुआ। ग्राम-अधिकारी बंदी बना कर दरबार में लाया गया।

"पुराने शासन-तंत्र के अधिकारियों के बेईमानी करने पर उन्हें क्या दंड दिया जाता था?" दीवान वेलु थम्पी ने पास खड़े सचिव से पूछा।

"उन की वह संपत्ति जब्त कर ली जाती थी जिसे वे अनीति से अर्जित करते थे और प्रजा के समक्ष उन की भर्त्सना की जाती थी," सचिव ने उत्तर दिया।

"हूं!" वेलु थम्पी के माथे पर क्रोध की रेखाएं उभर आयीं, "यह अधिकारी मेरे उस शासन-तंत्र का अंग है जिसे प्रजा ने सत्ता दी है और जो नैतिक समझा जाता है। इस ने राजसत्ता को ही नहीं, उस लोकमत को भी धोखा दिया है जिस की शक्ति ने अनीति के विरुद्ध संघर्ष किया। अतएव इसे प्राचीन व्यवस्था की अपेक्षा अधिक निर्मम दंड मिलना चाहिये। जिन अंगुलियों से इस ने राजकीय पत्रों में गोलमाल किया है उन्हें काट दिया जाये।"
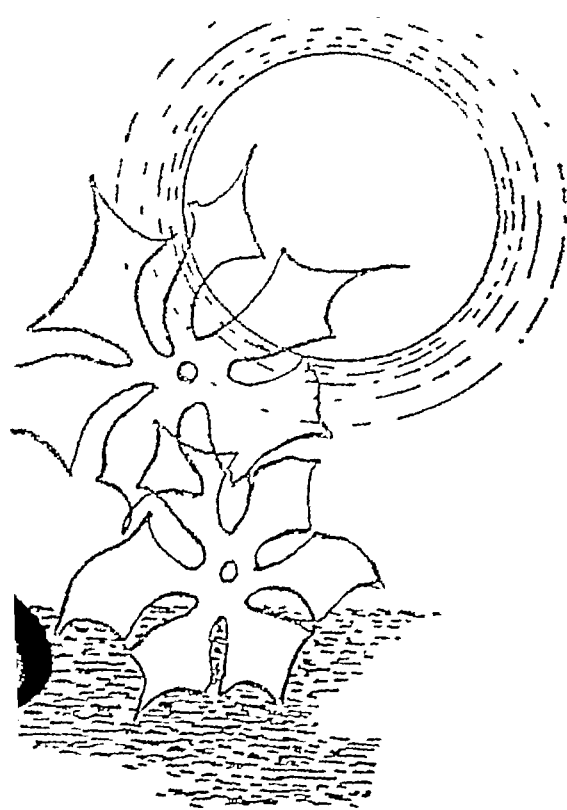
आचार्य विनोबा भावे

आम का मौसम था। अभी आम गदराये नहीं थे। अचानक एक दिन जोरों की आंधी आयी और सारे कच्चे आम झड़ गये। बेचारे किसानों का बेहिसाब नुकसान हुआ। जो आम नीचे गिरने से फूट गये, वे घर पर डालने लायक रह गये। जो साबित रहे, उन्हें टोकनों में भर कर किसान बेचने निकले।

एक किसान हमारे आश्रम में अपने आम बेचने आया। वैसे तो टोकना भर आम के दाम तीन रुपये होते थे, पर इस बार ग्राहक ने एक रुपये में पूरा टोकना लेना चाहा।

किसान गिड़गिड़ा कर बोला, "भैया, बहुत नुकसान हुआ है, थोड़ा और दो।" ग्राहक ने सवा रुपया दे कर टोकना खाली करा दिया।

आंधी के कारण सारे आम झड़ गये, इस से किसान बहुत दुखी था। उधर ग्राहक को खुशी इस बात की थी कि इस साल आम बहुत सस्ते रहे।

तीन रुपयों का माल दे कर किसान हाथ में सवा रुपया लिये अपने घर जा रहा था। रास्ते में मेरी झोंपड़ी पड़ी। मैं ने उस से पूछा, "क्यों भाई, आम सब बिक गये?"

उस ने मुंह लटका कर जवाब दिया, "हां, सवा रुपया मिला।"

मैं ने पूछा, "आम तौर पर कितने मिलते हैं?"

"तीन रुपये।"

मैं ने कहा, "तो फिर इतने सस्ते तुम ने दे क्यों दिये?"

वह बोला, "क्या करूं? इतना सारा बोझ फिर घर ले जा कर भी

क्या करता ? जो मिला, सो सही।"

मैं ने उस के तीन रुपये पूरे कर दिये और फिर आश्रम के अपने साथी को बुला कर कहा, "तुम्हारा क्या खयाल है ? जब यह किसान संकट में है, तब हमें इस के दुःख में हाथ बटाने की बात सूझनी चाहिये या इसे लूटने की ?"

साथी समझदार थे। मेरी बात जल्दी ही उन की समझ में आ गयी।

लेकिन आज के समाज मे ऐसा तो हर दिन होता ही रहता है। हमें इस बात का भान भी नही रहा है कि ऐसा करके हम किसी प्रकार का कोई अधर्म या अन्याय कर रहे हैं। हम तीन रुपये के आम सवा रुपये में छीन लेंगे, फिर जो पौने दो रुपये बचेंगे, उन में से चवन्नी मंदिर में चढ़ा आयेंगे और अपने-आप को भगवान का भक्त मानेंगे।

प्रेम, विद्या और धर्म, तीनों हमारे परम मित्र हैं। इन की मदद के बिना हमारा काम चल नही सकता। लेकिन हम ने इन्हें घर में, विद्यालय में और देवालय में कैद कर रखा है। प्रेम को घर से बाहर निकल कर समाज में व्यापक बनना चाहिये। धर्म को मंदिर की हद से बाहर निकल कर हाट-बाजार में हर जगह फैल जाना चाहिये और प्रगति के मार्ग में विद्या के जो पहाड खडे हो गये हैं, उन से अज्ञान के गड्ढे भर जाने चाहियें।

मंदिरों के धर्म को बाजार तक आने नही दिया गया, लेकिन इस से धर्म और व्यवहार के बीच का संबंध तो टूट नही सका। मंदिर का धर्म बाजार मे नहीं जाने दिया गया, तो बाजार का अधर्म मंदिर में घुस गया। आज बाजार में खुला अधर्म चलता है, तो मंदिर में वही छिपे-छिपे चलता है।

यही हाल प्रेम का भी हुआ है। प्रेम को घर में बन्द किया, सीमा में बाधा, तो वह विषयासक्ति में बदल गया। शुद्ध जल को घडे में बंद करके रखेंगे, तो उस में भी कीडे पड जायेंगे। प्रेम बहता रहता, तो उस में से सुवास निकलती और हम उस से पुष्ट होते।

विद्या की भी आज यही हालत है। उसे हम ने कालिजों और विश्वविद्यालयों में कैद कर रखा है। "मैं आक्सफोर्ड का एम ए हूं, इसलिए मुझे मद्रास के एम ए से अधिक वेतन मिलना चाहिये," हम इस तरह सोचने और कहने लगे। विद्या अविद्या में बदल गयी। उसे मद ने घेर लिया। ज्ञान में तो नम्रता होती है। ज्ञानी खडे पैरों सब की सेवा करता है। लेकिन आज तो ज्ञानी अभिमानी बन गया है। ब्याह के बाजार में अधिक पढे-लिखे लडके के ऊंचे दाम लगते हैं। पढा-लिखा लड़का स्वयं भी ज्यादा दहेज चाहता है। यह है आज की विद्या का रूप !

इस प्रकार विद्या, प्रेम और धर्म को हम ने कैद करके रखा है। नतीजा यह हुआ है कि विद्या अविद्या बन गयी है, प्रेम काम-वासना में बदल गया है और धर्म ने पाखण्ड का रूप धारण कर लिया है।

अलेक्सेई लियोनोव

हम जानते थे कि निस्सीम अंतरिक्ष में चरण रखना कठिन होगा और इस काम को पूरा करने में पग-पग पर अचूकता का ध्यान रखना होगा। यही कारण है कि यान से बाहर निकलने और विचरण करने के सारे कार्य ठीक कार्यक्रम के अनुसार करने के प्रयत्न किये गये।

अंतरिक्ष-यान वोस्खोद-२ के कक्ष में पहुंचते ही हम ने नवप्रयोग की तैयारी आरंभ कर दी। कप्तान पावेल बेल्यायेव की अनुमति से मैं ने एक झोले-जैसी वस्तु धारण की। उस में जीवन-रक्षा की ऐसी यंत्र-प्रणाली थी जो अपने-आप काम करती थी। मैं ने उस का उपयोग करना आरंभ किया—यह कार्य लाक-चैंबर में पग रखने से पहले शुरू कर दिया था। हम ने साज-सामान, यंत्र-प्रणालियों और उस औजार की जांच आरंभ की जो शरीर-क्रियात्मक प्राचल (फिजियोलाजिक पैरामीटर) अंकित करता है। इस यंत्र को महाकाश में मुक्त विचरण के समय मापन-कार्य संपादित

बीस मिनट

करना था। इस के अतिरिक्त अतरिक्ष-पोशाक के प्राचल (पैरामीटर) को अंकित करने वाले यंत्र की भी जाच की गयी।

हम ने कमरे में और लाक-चैंबर मे दबाव अंकित किया, फिर यान के कमरे से लाक-चैंबर में जाने वाला द्वार खोला। इसी रास्ते से मैं तैरता हुआ यान के कमरे में वापस लौटा था।

मैं ने अतरिक्ष-पोशाक में दबाव समतल किया, इस चीज की जाच की कि यहा हवा बद है या नही, फिर हेलमेट (सिर को ढकने वाला उपकरण) देखा कि वह ठीक से बद है या नही और उस से जुड़ा प्रकाश-फिल्टर ठीक स्थिति में है या नही। अतरिक्ष-पोशाक में आक्सीजन की पूर्ति की ठीक जाच-पड़ताल करने और अतरिक्ष-यान से बाहर निकलने के सबध में सभी बातों की दिमाग में अच्छी तरह तसवीर उतार लेने के बाद मैं महाव्योम में गोता लगाने के लिए तैयार हो गया।

बेल्यायेव ने कमरे का द्वार बंद किया। लाक-चैंबर से दाब को सोखने के बाद कप्तान ने बाहर निकलने का द्वार खोल दिया। शून्य अतरिक्ष में चरण रखने का मार्ग सामने था। बाहर क्या हो रहा है, यह शीघ्र से शीघ्र देखने के लिए

पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति से मुक्त हो कर गगन की सीमाहीन गोद में बीस मिनट तक स्वच्छन्द रूप में तैरने वाले रूसी अंतरिक्ष-यात्री अलेक्सेई लियोनोव की कहानी उन्हीं की जबानी
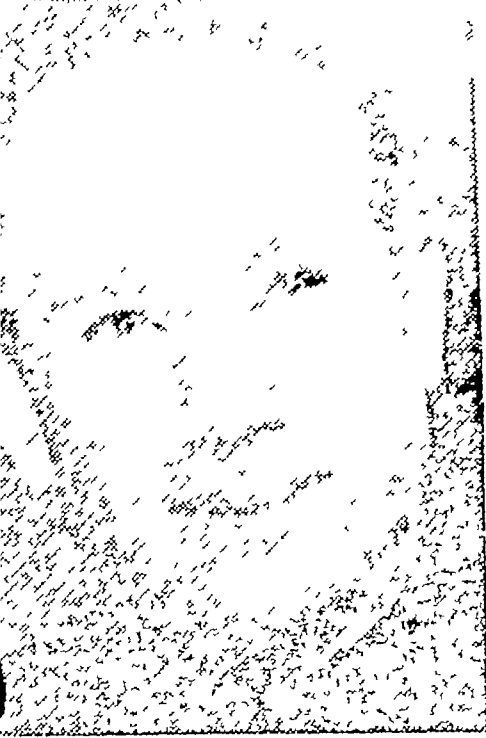
अलेक्सेई लियोनोव

मैं अधीर था। यान से बाहर निकलने की वह ऐतिहासिक घड़ी आ पहुंची। मैं ने अपना सिर द्वार से बाहर निकाला।

बाह्य अंतरिक्ष के असीम विस्तार का क्रम मेरी आखों के समक्ष अनावृत होता चला गया। इस पूरे सौंदर्य का वर्णन करने के लिए मुझे शब्द नहीं मिलते। मैं ने वहां से पहली बार पृथ्वी देखी। वह राजसी ढंग से, शालीनता के साथ मेरी दृष्टि के सामने घूम रही थी और बिलकुल सपाट लग रही थी। केवल उस के कोनों का वक्ररेखीय आकार मुझे इस तथ्य का आभास करा रहा था कि यह भूमंडल है।

प्रकाश फिल्टर काफी सघन था, फिर भी भव्य मेघमालाओं, कृष्णसागर (ब्लैक सी) की नीलिमा, सागरतटीय रेखा, काकेशस पर्वतमाला और बंदरगाहों के दृश्य मेरी आखों के सामने आते गये और आगे बढ़ते गये। यान से विदा होने तथा मुक्त अंतरिक्ष में पग रखने की घड़ी आ चुकी थी—वह घड़ी जिस के लिए हम ने इस क्षण तक तैयारी की थी। बिना किसी जल्दबाजी के मैं पूरी तरह से निकला और धीरे-धीरे यान से दूर जाने लगा। जो जीवन-रक्षक जंजीर मुझे यान से बांधे हुए थी वह पूरी तरह फैल चुकी थी, अतः मेरे शरीर के यान से दूर होते जाने का क्रम रुक गया। मैं ने अपने को यान से अलग करने के लिए जो हलका-सा प्रयास किया था, उस ने यान को मामूली-सा कोणीय-चलन (एंगुलर मूवमेंट) प्रदान किया। हमारे अद्भुत अंतरिक्ष-यान का पूरा दृश्य मेरी आखों के सामने आने लगा।

मेरा अनुमान था कि खूब उभरे हुए रूप में प्रकाश तथा छाया दोनों दिखायी देंगी। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। यान के जो भाग छाया में थे वे भी अच्छी तरह दृष्टिगोचर हो रहे थे, क्योंकि सूर्य की किरणें पृथ्वी से प्रतिबिम्बित हो रही थीं। मैं ने हलके हाथ से जीवन रक्षक जंजीर को खींचा और अंतरिक्ष-यान की ओर बढ़ने लगा। मैं उस के पास पहुंच गया और उस के बाद धीरे-धीरे फिर उस से दूर जाने लगा। इस तरह मैं ने ब्रह्मांड के पूर्ण सौंदर्य के दर्शन किये।

स्थिर तारे, टिमटिमाहट का नाम नहीं और पार्श्वभूमि में अगाध आकाश

जो गहरे बैंगनी रंग से मखमली काला रूप धारण करता जा रहा था। मैं ने देखा—विस्तीर्ण भूखंड तैरते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। वोल्गा को देखते ही मैं उसे पहचान गया। फिर भीमकाय यूराल के पर्वत दिखायी दिये। उस के बाद मैं ने ओब और येनिसेई नदियां देखीं और ऐसी अनुभूति हुई मानो मैं एक विराट रंग-बिरंगे नक्शे के ऊपर तैर रहा हूं। दूरी बहुत थी, इसलिए नगरों और अन्य उभरी हुई रेखाओं को पहचानना कठिन था। पर जो तूलिका और चित्रकारिता के अन्य उपकरणों के अभ्यस्त हैं, उन के लिए प्रकृति का उस से अधिक भव्य, मनोहारी दृश्य देख पाना संभव नहीं जो मैं ने देखा था। आकाश के अंधकार को भेदती प्रखर सूर्य-किरणें हेलमेट के पारदर्शी उपकरण से अंदर प्रवेश कर रही थीं। उन किरणों में जो ताप था, उसे मैं अनुभव कर रहा था। मैं ने फिर तारे देखे और देखा भूमंडल का अंतहीन विस्तार।

किसी भी हलचल की सहायता से अपने प्रभाव को रोकना असंभव है, यह तो मैं प्रशिक्षण काल के अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता था। इसलिए मैं केवल इस की प्रतीक्षा करता रहा कि जीवन-रक्षक जंजीर को लपेट कर अपने शरीर के घुमाव की गति कम करूं। यह ठीक है कि मैं जीवन-रक्षक जंजीर को पकड़ कर और कोणीय गति को जन्म दे कर अनुप्रस्थ अक्ष के चारों ओर अपना घुमाव रोक सकता था, पर मैं ऐसा नहीं करना चाहता था। मैं तो चाहता था कि पूरे दृश्य-पटल का अवलोकन करता रहूं और अपने अमूल्य समय का एक क्षण भी न गंवाऊं।

कुछ समय बाद मैं ने जीवन-रक्षक जंजीर को जोर से खींचा, किन्तु तुरंत ही अपनी ओर आते अंतरिक्ष-यान को दूर रखने के लिए विवश हो गया। पहले तो मुझे यह बात सूझी कि मेरे हेलमेट का पारदर्शी उपकरण यान से न टकराये। इसलिए मैं द्वार के पास पहुंचा और अपने हाथ से वेग की तीव्रता कम की। यह बहुत सरल सिद्ध हुआ। मैं ने अनुभव किया कि पर्याप्त प्रशिक्षण की दशा में बड़ी सुगमता से हिला-डुला जा सकता है तथा विभिन्न कार्यों के बीच अच्छी तरह समन्वय किया जा सकता है।

मैं पूर्णतः प्रफुल्लचित्त अनुभव कर रहा था। मुक्त, अनंत अंतरिक्ष में विचरण रोक देने को जी नहीं कर रहा था। मुझे अंतरिक्ष-यान में वापस लौटने का आदेश मिल चुका था, फिर भी मैं ने एक बार और अपने को धक्का दे कर द्वार से दूर कर दिया। क्यों? इसलिए कि धक्के के बाद कोणीय वेग के मूल को एक बार और जांच सकूं। मैं ने महसूस किया कि धक्के की दिशा में जरा भी पीछे हटना समवर्ती समतल में घुमाव पैदा करता है। स्पष्ट है कि जो लोग अंतरिक्ष में काम करेंगे, उन्हें शून्य गुरुत्वाकर्षण में निश्चित स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना होगा। पहले यह माना जाता था कि अंतरिक्ष में शून्य का आमना-सामना करने में मनोवैज्ञानिक अवरोध अलंघ्य है। मुझे इस प्रकार

के अवरोध का जरा भी सामना नहीं करना पड़ा। सच तो यह है कि मैं इस प्रकार के कथित गतिरोध की बात बिलकुल भूल गया। इस बारे में सोचने का कोई मौका भी न था। बात यह थी कि मैं ने जो बीस मिनट अंतरिक्ष में बिताये, वे तो वोस्खोद-२ की उडान के मुख्य अंग थे।

एक और वस्तु ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की—वह थी अपने मित्र और कप्तान से तथा पृथ्वी से निरंतर संपर्क। बाह्य अंतरिक्ष में मैं ने जरा भी एकाकीपन अनुभव नहीं किया। दूसरे, अपनी अंतरिक्ष-पोशाक तथा अपने पास मौजूद उपकरणों की अचूकता पर मेरा पूरा-पूरा भरोसा था। इन के कारण मैं पूर्ण आश्वस्त था कि इस प्रयोग का परिणाम सुखद रहेगा। दुर्भाग्यवश समय बड़ी तेजी से बीतता गया और मुक्त अंतरिक्ष में सशरीर विचरण समाप्त करने की घड़ी आ गयी। मैं ने वह सिनेमा-कैमरा हटा दिया जिस ने अंतरिक्ष में मेरी कुदान का दृश्य अंकित किया था। फिर मैं ने तुरत द्वार में प्रवेश करने का यत्न किया। पर यह कार्य बहुत सुगम सिद्ध नहीं हुआ। असल चीज यह है कि फुलाये हुए अंतरिक्ष-वस्त्र में हिलना-डुलना सीमित रहता है।'

मुक्त अंतरिक्ष से विदा लेने के लिए मुझे कुछ शारीरिक श्रम करना पड़ा और इस कारण कुछ समय लगा। अतल· जब मैं ने लाक-चैंबर में प्रवेश किया और अंतरिक्ष-यान के कप्तान बेल्यायेव के पास पहुंचा तो उन्होंने मुझे यान से बाहर निकलने के कार्य-क्रम की सफल पूर्ति पर बधाई दी मेरे काफी शारीरिक श्रम करने के बावजूद स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाली जीवन-रक्षक यंत्र-प्रणाली पूर्णतः विश्वसनीय सिद्ध हुई और मैं ने हवा की कमी या तापमान में प्रतिकूल घट-बढ़ अनुभव नहीं की। पर, जब मैं सीट पर बैठ गया तो मैं ने अनुभव किया कि मेरे माथे और गालों पर पसीने की धार बह रही है। स्पष्ट है कि बाह्य अंतरिक्ष में विचरण करना कोई सैर-सपाटा नहीं है। महीनों की सर्वतोमुखी प्रशिक्षा के बिना मैं अपने कार्य को पूरा न कर पाता।

हम अनुभव करते हैं कि हमारा यह कार्य तो आरंभ-मात्र था। बाह्य अंतरिक्ष की विजय का मार्ग सुगम नहीं है, पर मुझे विश्वास है कि विज्ञान ब्रह्मांड के रहस्यों की और गहराई तक भेदने में हमें सफलता प्रदान करेगा और ये उपलब्धियां मानव की सुख-समृद्धि के लिए प्रयुक्त होंगी।

"क्या आप बता सकते हैं कि डाकखाना कहां है ?"

"भाई, मैं भी बड़ी देर से इसे ढूंढ़ रहा हूं।"

"तो ऐसा कीजिये, आप उत्तर की तरफ चलिये और मैं दक्षिण की ओर जाता हूं। जब हम हर बार मिला करेंगे, अपनी खोज के बारे में विचार-विमर्श कर लिया करेंगे।"

तुम्हारी राह पर

संगिनी तुम को समीरण गुदगुदाती या नहीं
मैं चढाता फूल की माला तुम्हारी राह पर

पल्लवों की ओट हो जब पंख पंखों से मिले
तुम खड़ी होगी कहीं श्लथ आम्र-मंजरियों तले
हर दिशा से घेरता तुम को उठा होगा तिमिर
शून्य में खोने लगी होंगी तुम्हारी मंजिलें
संगिनी यह ज्योति तुम को पथ दिखाती या नहीं
मैं सजाता दीप की माला तुम्हारी राह पर

चांद ने सींचा तुम्हें होगा वसंती आग से
वेध कोकिल ने दिया होगा हिया रति-राग से
अंग में अनुराग का सागर उठा होगा लहर
मौन आमंत्रण मिला होगा जुही के बाग से
प्रिय तुम्हारी प्यास ये बूंदें बुझातीं या नहीं
मैं लुटाता अश्रु-घन माला तुम्हारी राह पर

चल पड़ी होगी तभी डोली निशा की झूमती
गुनगुनाती-सी पिया की हर गली को चूमती
एक क्षण रुक-सी गयी होंगी हृदय की धड़कनें
नैन के आगे तुम्हारी सृष्टि होगी घूमती
झलकियां इन की तुम्हारा दुख भुलातीं या नहीं
मैं बनाता स्वप्न की माला तुम्हारी राह पर

— गिरिधर गोपाल —

प्रस्तुत है रमेश बक्षी की एक नयी कहानी, साथ ही उस की पृष्ठभूमि का दिग्दर्शक उन का वक्तव्य। इस से पूर्व आप कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, जैनेन्द्रकुमार तथा ममता अग्रवाल की कहानियां पढ़ चुके हैं। आगामी अंकों में अन्य कहानीकारों की रचनाओं की प्रतीक्षा करें

इस साल पहली जनवरी को फिर मेज ठीक की और पूरे डेढ़ साल बाद जब लिखना शुरू किया तो ऐसा लगा जैसे पहली कहानी लिख रहा हूं और नयी पीढ़ी के नये हस्ताक्षर में उसे छपना है। शहर पर शहर, नौकरी पर नौकरी, घर पर घर छोड़ते चले जाने ने एक ऐसी विसंगत मनोस्थिति बना दी है जिस का एक छोर अखंड टूटना है और दूसरा किसी ऊंचाई, किसी पहली किरन की तलाश। मेरी कहानी में शहर का नाम महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है नगर-चक्र और इस चक्र से भी ऊपर है : जबरदस्ती की पीड़ा, करुणा और भावना को नकारना। जो अपने घर की दीवार और छत से मोह का रिश्ता जोड़े हैं वे भ्रम में हैं और झूठ बोलते हैं। केवल सुविधा के लिए ये सब नाटक हम ने रचे हैं, सारा अंदाज उन नर-मादा पक्षियों-जैसा ही है जो बरसात से बचने या अण्डा देने के लिए तिनके जोड़ते हैं—आहार, निद्रा, आदि के लिए घर दरकार नहीं है। कोई देखे आकाशी पंछियों को—मैदान से दाने चुने, डाल पर नींद निकाली, बिजली के तारों पर प्यार किया—उन के घोंसले अधिक व्यावहारिक और पायेदार हैं, हमारे तथाकथित निवासस्थानों से, जहां परंपरा फर्श, समीक्षक छत और रिश्ते दीवार हैं, जहां बाप का नाम 'पता' और अनियोजित संतानें भविष्य हैं।

यह मैं सरासर महसूस करता हूं कि मेरी पहली कहानी सब से अधिक सुगठित कहानी थी—ठीक नाक-नक्श, ठीक आदि-अंत, चुस्त-दुरुस्त; और

अंतिम कहानी सब से अधिक टूटी हुई होगी—कच्ची, शिल्पहीन, बदतमीज लेकिन ईमानदार। अपने लिखने-दिखने और रहने-सहने में मेरी यात्रा चिड़ियाघर से जंगल और आत्मभोगी पीड़ा से 'फर्मेण्टेड' दर्द की तरफ है। इसी एक बिन्दु पर मैं विश्वनाथ गोस्वामी हूं—दो और भी दोस्त इसी तादात्म्य वाले हैं, एक कमलेश्वर, दूसरा दूधनाथ—शेष सब गार्जियन हैं।

मैं चेतला के काठपुल पर खड़ा था और मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि दाहिने-बायें, किस तरफ घूमने से शांतिपुरवाले विश्वनाथ गोस्वामी के घर तक पहुंच सकूंगा। गंगा-नहर के सड़े हुए पानी से बदबू के ऐसे भभके उठ रहे थे कि सिर भिन्नाने लगा। घाट के ऊपर गोबर ही गोबर था। गंगा में चार सूअर तैर रहे थे, दो औरतें उस पानी को सिर-आंखों पर

चढा रही थीं ।

मैं ने एक भद्र मोशाय से पूछा, "यहा विश्वनाथ गोस्वामी की वाडी कौन-सी है ?"

"विश्वनाथ गोस्वामी ?" वे रुके और बोले, "यहा हर आदमी का नाम विश्वनाथ गोस्वामी है ।"

वे चले गये। मैं पुल की दूसरी तरफ माछबाजार की ओर आ गया। मैं उसे न भी ढूंढता लेकिन शांतिपुर याद आता है और इस दोस्त के प्रति ऐसी हमदर्दी फूट पडती है कि मुझ से रहा नहीं जाता ।

शांतिपुर ! हम दोनों के घर पास-पास थे। दोनों ही एक उम्र के, एक-से कद वाले थे। हमारे घर दुर्गा-पूजा होती थी। बाबा कलकत्ता जाते और दुर्गा लाते थे। ऐसा आनन्द आता कि हम खाना-सोना तक भूल जाते। हम एकसाथ पढे हैं, लेकिन पिछले दस साल से मैं कलकत्ता में हूं और विश्वनाथ ? यदि वह परसों ट्राम में सहसा दिखायी न दे गया होता तो यह भी पता नही चलता कि दो दोस्त एक ही महानगर में रहते हैं ।

"विश्वनाथ, तुम ! शातिपुर से यहां !" मेरा एक हाथ उस के कधे पर था। वही बडे पट्टेवाली धोती और बेतर-तीब सिला हुआ कुरता ।

"नौकरी ढूढते हुए यहा आ गया। एक स्टा कंपनी में नौकरी मिली है ।"

"लेकिन भले आदमी, तुम मुझ से तो मिले होते। क्या तुम्हें नही मालूम कि मैं यहा हूं ? हम ने तो जब से शातिपुर का घर बेचा, उधर गये ही नही। तुम ने तो कमाल कर दिया। मैं इस बात को स्वीकार भी कैसे करूं कि तुम कलकत्ता में ही हो और मुझ से मिलना भी जरूरी नहीं समझा ?"

"मैं आज-कल में तुम्हें खोजने ही वाला था। बस ऐसे ही इस-उस चक्कर में समय नहीं मिला।"

"तो कब आये कलकत्ता ?"

"यही कोई तीनेक बरस हुए हैं।"

मैं उस का चेहरा देखता रह गया—जो कभी मुझ से ज्यादा स्वस्थ था, उस का मुह किसी लबे शंख की तरह निकल आया था। सारा शरीर नारियल के उस पेड-सा लग रहा था जिस के सब पत्ते सूख गये हों। हाथ में मैला-सा अलमीनियम का टिफिन-बाक्स, किसी सख्त कंघे से पीछे की तरफ खींचे हुए बाल, होंठों के आसपास कुछ सफेद-सा, सामने के दोनों दात टूटे हुए, अगुलियों के सारे नाखून कटे-फटे और पैरों में तीन जोड़वाली चप्पल। जब पूछा कि कहां रहते हो तो वह बडी देर तक पता बताता रहा। न तो उस ने किसी निश्चित सडक या गली का नाम बताया न ठीक ठीक नंबर ही दिया। यही कहता रहा कि चेतला के काठ-पुल आ कर वहा से कालीघाट से उलटी दिशा मे दाहिने या बायें घूम जाना।

जहा खडा हूं वहा से दाहिने-बायें दोनों तरफ ऐसी गदी बस्ती है कि कही भी उस का मकान हो सकता है। शातिपुर में बचपन की सुबहें कैसे हसते-खेलते बीतती थीं और वे शामें ! विश्वनाथ मेरे लिए बाग से फल चुरा कर लाता, स्कूल में मेरे लिए

दूसरे लडकों से झगड पडता और मेरे आगे-पीछे छाया की तरह चलता। हम दोनों ने तब शातिपुर में काली का एक नया मदिर बनाने की कल्पना की थी। यह तो सयोग है कि आज मैं हर दृष्टि से सपन्न हू, जब कि वह तीन बरस से कलकत्ता की खाक छान रहा है और ऐसे मकान में रहता है जिस का ठीक-ठीक पता भी न दिया जा सके।

मैं दाहिने मुड़ा और आगे ही चलता गया। एक गली में घुसा और एक-एक घर मे झाकता बाहर आ गया। इस तरह इतने बडे शहर में किसी को खोज लेना सरल नही है, लेकिन अगर आज नही ढूढ पाया तो वह मकान हाथ से चला जायेगा। चित्त-रंजन में मेरे घर के पीछे दो कमरे हैं। थोड़ा और आगे चलने पर मुझे बहुत सारे टूटे हुए मकान दिखायी दिये। हर दीवार पर गोबर के कडे जमे हुए थे और दुर्गंध सडक तक फैल रही थी। उस गली में उकडू बैठा एक बच्चा पाखाना कर रहा था। वह मुझे आता देख कुछ सहमा, लेकिन फिर सिर झुका कर बैठ गया। मुझे आगे तक कोई नही दिखायी दे रहा था, सो मैं ने उस से ही पूछा, "बिसनाथ गोसामी कोथाय थाकछे ?"

उत्तर में वह उठ खडा हुआ और बोला, "बाबा ?" तो क्या यह विश्व-नाथ गोस्वामी का लड़का है ? वह आगे-आगे चल रहा था। हैंडपप के कारण सारी जमीन तरबतर थी। पास में दो औरतें बरतनों के बीच बैठ कर बड़ी तन्मयता से उन्हें साफ कर रही थी। एक बहुत संकरी गली पार करने पर वह मुझे एक चौखंडी में उतार ले गया। मैं समझा, आगे और कोई रास्ता होगा कि एक बरा-मदे में विश्वनाथ को मैं ने देख लिया। हरे रग की लुगी बाधे वह बैठा हुआ एक तिनके से दात साफ कर रहा था।

"अरे तुम ! मकान ढूढ़ने में तक-लीफ तो नही हुई ?" वह उठ खडा हुआ। उस के बोलने में तो स्वागत था, लेकिन चेहरे पर कोई भाव आया-गया नही।

बच्चा अदर से एक चटाई उठा लाया और उस के साथ ही तीन और बच्चे बरामदे में आ गये। तीनों के पेट जरूरत से ज्यादा बडे थे और तीनों की नाकें बह रही थी। विश्व-नाथ ने उन की तरफ देखा तो वे एक कतार में दीवार से चिपक कर खडे हो गये। जो बच्चा मुझे यहा छोड़ने आया था, वह अदर जा कर अपनी मा को बताने लगा कि बाबा का कोई 'बधु' आ जाने से वह ठीक से पाखाना भी नही जा सका।

"मैं ने बताया तो था तुम्हें कि काठ-पुल से दाहिने घूमना और मेरा घर आ जायेगा," विश्वनाथ खभे से टिक कर बैठ गया, "जैसा मकान है वैसा है, अब क्या करें ?"

सामने तीन और घर थे। एक में मछली पकायी जा रही थी, दूसरे में कोई गृहोद्योग चल रहा था और तीसरे में ताला लगा था। सहसा धुए का एक गुबार-सा आया तो मैं परेशान हो गया। सामने गगा की नहर थी

और घाट के किनारे था श्मशान। एक चिता जल रही थी और चिटक चिटक कर लपटों के बीच से धुआं उठ रहा था। वही एक गुबार अभी बरामदे में आ गया था, जिस के कारण मास-मज्जा की दुर्गंध सारे घर में फैल गयी थी।

"सामने श्मशान . . कितनी दुर्गंध यहा फैल रही है! इस मकान को तो तुम्हें एकदम छोड देना चाहिये। कैसे रह लेते हो इस में? कहां वह शांतिपुर का बागवाला मकान और कहा कलकत्ता का यह बरामदा।" मुझ से वहां ठीक से बैठा भी नही जा रहा था। मेरी बात सुन कर वह हें-हें करके हस दिया और अदर जा कर बोला कि चाय बनायी जाये।

"चाय तो रहने दो," मैं ने कहा।

"रहने कैसे दो?" उस ने साधिकार कहा, "अदर आओ न।"

अदर, एक कमरा। एक कोने में अगीठी दहक रही थी और उस की पत्नी चाय का पानी चढा रही थी। एक बहुत छोटा-सा लट्टू जल रहा था। शायद छत तोड़ कर तार सहित वह लट्टू कही से लाया गया था। स्विच कही नही था, शायद इसलिए कि जिस लट्टू का जलना चौबीसों घटे जरूरी हो उसे बुझाने की क्या जरूरत?

उस की पत्नी ने मुझे नमस्कार किया और एक कोने में सिकुड गयी। सारे बच्चे हमारे पीछे-पीछे अदर आ गये थे। जैसे ही विश्वनाथ ने उन की तरफ देखा, वे फिर बरामदे में जा कर एक कतार में खडे हो गये। कमरे के दूसरे कोने में चारपाई थी।

"बाबा!" विश्वनाथ बोला। चारपाई पर एक हरकत भर हुई। विश्वनाथ कहता गया, "इन्हें लकवा मार गया है। हाथ-पैर, जबान सब बेकार। एक वैद्य की दवा चल रही है।"

उस की पत्नी बीच में ही बोली, "वैद्य का कहना है कि दो महीने में बाबा उठ कर चलने लगेंगे।"

बाबा ने मेरी तरफ देखा—खूब चमकती हुई आखें, वैसी ही जैसी शांतिपुर में थी। उन्होंने हाथ उठाने की कोशिश की, कुछ बोलना भी चाहा, लेकिन न हाथ उठा सके और न कुछ बोल ही पाये।

हम फिर बरामदे में बैठे थे और टूटी नाकवाले चाय के दो प्याले सामने रखे थे। सामने एक चिता जल चुकी थी और दूसरी की तैयारी हो रही थी। मैं ने एक घूट भर कर पूछा, "इस श्मशान में क्या रात-दिन चिताए जलती रहती हैं?"

सवाल का उत्तर विश्वनाथ के लडके ने बडे उत्साह से दिया, "यहा तो दस-दस लाशों के 'क्यू' लगे रहते हैं, जैसे राशन की दुकान पर लगता है न। जिस का नबर आता है, वह जल जाती है।"

विश्वनाथ ने उस की तरफ घूर कर देखा तो वह चुप हो गया। फिर उठा और पीछे की दीवार से लग कर पैर खुजलाने लगा। धुए का एक और गुबार फिर बरामदे में आ गया।

"मैं एक जरूरी काम से तुम्हारे पास आया हू। मैं चितरजन में जहां रहता हू, वहा पीछे दो कमरे खाली हैं।

कमरे खूब अच्छे हैं और तुम्हारे परिवार के लिए काफी होंगे। बच्चों का स्कूल पास है। सामने ही पार्क है। वहां एक प्रसूतिगृह है न, उस से दस गज दूर यह मकान है।"

उस ने मेरी बात के उत्तर में चाय समाप्त कर दी। इतनी देर में बच्चों ने अंदर जा कर अपनी मां को मकान की खबर भी कर दी।

मकान! बच्चों में ऐसी फुरती आ गयी जैसे आज्ञा मिलते ही सारे सामान को ढो कर ले जा सकते हैं। पत्नी हाथ का काम छोड़ दरवाजे से आ लगी। विश्वनाथ ने प्रसन्न दिखायी देने की चेष्टा की, लेकिन वह बोला कुछ नहीं।

"हम तो जब से आये हैं तब से दूसरा ढूंढ रहे हैं," उस की पत्नी बोली।

मैं ने विश्वास दिलाया, "यह मेरा शांतिपुर का दोस्त है। क्या मैं इस के लिए इतना भी नहीं कर सकता कि एक मकान ढूंढ दूं।"

विश्वनाथ सामने श्मशान को देखता रहा। वह ऐसे निर्लिप्त हो कर चिता का जलना देख रहा था जैसे वह चिता नहीं, अंगीठी हो।

"तुम्हारा क्या खयाल है, विश्वनाथ?" मैं बोला, "एक तो मकान अच्छा है, दूसरे मेरे बिलकुल पास है। तीसरे, यहां की गंदगी से तो तुम्हें मुक्ति मिलेगी!"

"हां, ठीक कह रहे हो तुम। मकान तो बदलना ही है," उस ने बीड़ी जला कर एक फूक्का भर धुआं छोड़ा।

"तो उसे अभी देख लो।"

"देखना क्या है? इतनी अच्छी जगह, इतना अच्छा मकान, तुम्हारा देखा हुआ..." उस ने दूसरे कश में बीड़ी खत्म कर दी।

"तो उठो," कहता हुआ मैं उठ खड़ा हुआ। वह अंदर जा कर शरीर पर कुरता डाल आया। सारे बच्चे कतार में दीवार से लगे खड़े रहे, पत्नी अंदर चली गयी। बाबा को हलकी-सी खांसी उठी और वहीं बैठ गयी।

गलियां पार कर हम सड़क पर आ गये। मैं खुश था कि उसे बेहतर मकान इतनी जल्दी, इतनी सुविधा से दिलवा दूंगा। बोला, "तो मकान कब बदल रहे हो?"

"तय तो हो जाये," वह धीरे-से बोला।

"तय ही समझो। वह तो मेरा परिचित है," मैं ने उत्तर दिया।

"ठीक है, बदल लेंगे।"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

श्री लक्ष्मी सौंदर्य और संपत्ति की देवी है। इस की पूजा-मान्यता हिंदू, जैन और बौद्ध तीनों धर्मों में थी। 'ऋग्वेद' के 'खिल सूक्त' में देवी श्री लक्ष्मी का बहुत ही उदात्त और पल्लवित वर्णन पाया जाता है। इस में श्री देवता को हिरण्यवर्णा तथा सोने और चांदी की मालाओं से युक्त कहा गया है। वह श्री देवता लक्ष्मी ही है, जो स्वर्ण, गौ और अश्व की संपत्ति को प्राप्त कराने वाली है। घोड़ों के साथ हाथियों का नाद सुन देवी प्रसन्न होती है।

जब हम श्री देवी का आह्वान करते हैं, वह हमें प्राप्त होती है। उस की कृपा से सुनहले कोट वाले महल तैयार हो जाते हैं (हिरण्य प्राकारां)। वह कभी गीले और कभी सूखे रूप में दिखायी पड़ती है, जैसे खेत की हरी फसल और पकी हुई फसल के रूप में। वह पद्मिनी है अतः उसे 'पद्मा श्री' भी कहते हैं। जहां कमलों से भरे सरोवर होते हैं, वहां के सौंदर्य में देवी का निवास समझना चाहिये। वह देवी अत्यंत उदार है। देवता जब लोक में आते हैं, वे श्री का आश्रय लेते हैं। श्री उज्ज्वल यश से जगमगाती देवी है।

बिल्व लक्ष्मी का प्रिय वृक्ष है जिस का जन्म सूर्य के प्रकाश में तप से हुआ। बिल्व-पुष्प अपने प्रभाव से भीतर और बाहर की अलक्ष्मी को हटाता हुआ सब प्रकार का सुख और स्वास्थ्य देता है। यह बिल्व वृक्ष दोनों का सखा है। यह भी हमारे समान इस राष्ट्र में उत्पन्न हुआ है और सब प्रकार की ऋद्धि करने वाला है।
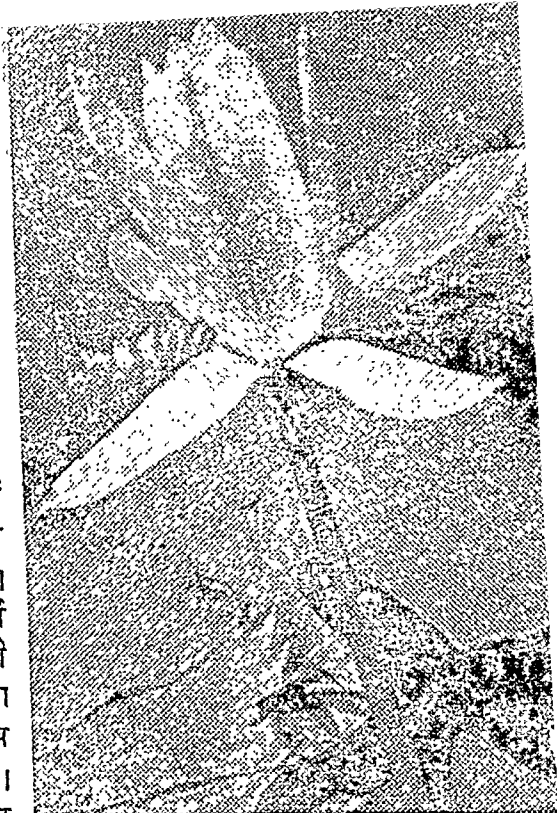
लक्ष्मी की एक बड़ी बहिन है जिस का नाम ज्येष्ठा है। वह अलक्ष्मी या कालकर्णी भी कही जाती है। जहां लक्ष्मी तेज से प्रकाशित है, वहां अलक्ष्मी मल से मलीन है। भूख और प्यास उस के मल हैं। अभूति और असमृद्धि का स्वरूप पापिष्ठा अलक्ष्मी

में जब उस के घर गया था, वह ऐसे नहीं बोल रहा था। शायद वह मेरे एकाएक वहां पहुंचने से खुश नहीं हुआ था।

"कहां से बोल रहे हो?" प्रश्न मैं ने हंसते हुए पूछा, लेकिन सहसा गंभीर हो गया कि कहीं बाबा चल तो नहीं बसे।

"हर टेलीफोन अपना है। कहीं से भी बोलने में क्या फर्क पड़ता है?"

"ठीक है। और सुनाओ — बाबा कैसे हैं?"

"हां, बाबा ठीक हो गये हैं। वे बोलने भी लगे हैं, लाठी के सहारे धीरे-धीरे चलते भी हैं," वह कह रहा है, "उस वैद्य की दवा ने तो जादू ही कर दिया।"

"यह बहुत अच्छा हुआ," मेरे सिर से जैसे उस दिन के गम का भार उतर गया।

"आज मैं तुम्हें उसी काम के लिए फोन कर रहा हूं। मुझे मकान चाहिये।"

"हां, हां, मैं कोशिश करता हूं।"

"हां, हां, नहीं। जरूर जल्दी से जल्दी। तुम ने जो बताया था, वही मकान मिल जाये तो बड़ा अच्छा रहे। वहां निश्चित ही मुझे बड़ी सुविधा रहेगी।"

"देखता हूं।"

"देखता हूं क्या? मैं तुम्हारे भरोसे हूं। तय हो जाये तो मैं आज ही वहां आ सकता हूं।" कहां तो ढूंढ़ा हुआ मकान हाथ से निकल जाने दिया और कहां अब आज के आज ही मकान बदलने की पड़ी है।

"वाकई जल्दी है। मुझे तो मरने की फुरसत नहीं। बच्चे छोटे हैं, बाबा कमजोर, भागदौड़ कौन करे?"

"तो?" जाने कैसे मैं बोल गया।

"तो-तो क्या यार! बीबी है न, नवां महीना लग गया है। तुम ने बताया था कि वहां प्रसूतिगृह दस गज दूर ही है। वहां रहने से यह तो होगा कि वक्त-बेवक्त दर्द उठे तो वह खुद ही अस्पताल चली जाये।"

लाइन कट गयी थी या मैं ने ही काट दी थी या उस ने फोन रख दिया था, कुछ पता नहीं। इतना याद है कि उठ कर मैं ने खिड़की खोल दी थी और हवा का एक झोंका, एक बौछार, एक कौंधा कमरे में घुस आया था।

यह भी याद है कि मैं ने घबरा कर खिड़की बंद कर दी थी।

ऋण लेने के लिए आये हुए किसान को एक फार्म भरने को दिया गया। फार्म भर कर जब उस ने बैंक-मैनेजर के सामने रखा तो पढ़ कर वह चौंक पड़ा। 'पिता की उम्र' वाले कालम के सामने १२० वर्ष तथा 'मां की उम्र' के सामने ११२ वर्ष भरा हुआ था। "क्या यह ठीक है?" मैनेजर ने पूछा।

"जी हां, आज यदि वे जीवित होते तो उन की उम्र इतनी ही होती।"

घोड़े, दास-दासी और स्त्री-पुरुषों से भरे घरों में लक्ष्मी का वास रहता है। इस प्रकार 'ऋग्वेद' के काल में देवी पद्मा श्री या श्री लक्ष्मी की उदात्त कल्पना पायी जाती है। 'यजुर्वेद' के पुरुष-सूक्त में श्री और लक्ष्मी को विष्णु की पत्नियां कहा गया है। 'महाभारत' और 'रामायण' के युग में श्री या पद्मा श्री की मान्यता का लोक में अत्यधिक प्रचार था। 'सुन्दरकांड' में कहा गया है कि हनुमान ने सीता को देख कर समझा कि वह नंदन वन का देवता है (अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नंदने)।

श्री लक्ष्मी का अंकन भरहुत और सांची के स्तूप-शिल्पों में कई बार हुआ है। उड़ीसा की उदयगिरि और खंडगिरि की गुफाओं में भी श्री देवी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मथुरा की शुंग और कुषाण युग की कला में भी श्री की बहुत-सी मूर्तियां मिली हैं। ये दो प्रकार की हैं, पद्मा श्री जो कमल पर आसीन है तथा हाथ में कमल की माला लिये है और गजलक्ष्मी जिस में हाथी उस का अभिषेक कर रहे हैं।

यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि इन देवियों के नामों तथा रूपों में भेद होते हुए भी उन की विविधता में एकता का सूत्र है। 'वायुपुराण' में देवी के ५६ नाम बताये गये हैं जिन में लक्ष्मी, षष्ठी, भद्रा, रेवती, महिषमर्दिनी, कात्यायनी, उमा, हेमवती, गौरी आदि भी हैं। अंत में कहा गया है कि महादेवी के प्रज्ञा और श्री, अर्थात श्री और सरस्वती ये ही दो रूप हैं। इन्हीं से सहस्रों देवियां उत्पन्न हुई हैं जो जगत में व्याप्त हैं। इस विवरण को पढ़ कर कालिदास की श्री और सरस्वती का स्मरण हो आता है जिन्हें कवि ने एक-दूसरे से भिन्न कहा है। इस स्थल पर दी गयी देवियों की नामावली को शुंग, कुषाण और गुप्त काल में प्रचलित देवियां समझना चाहिये। इन का समन्वय स्वयंभू के मुख से निकली हुई एक महाशक्ति के साथ किया गया।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि एक ही महाशक्ति या महादेवी के दो रूप महिषमर्दिनी, कात्यायनी एवं श्री लक्ष्मी हैं। लोकधर्म में दोनों पृथक थीं किंतु यह मान्यता भी थी कि उन के मूल में एक ही देवी की शक्ति है। इस का सब से पुष्ट प्रमाण 'देवी सहस्रनाम' की सूची में आये हुए अनेक नामों में पाया जाता है। उसे ही चंडिका और विंध्यवासिनी कहा है

अनेकरूपा श्री लक्ष्मी

ही है। मलों को दूर करने का एक उपाय सुगंधि का आह्वान है। गंध के द्वार से लक्ष्मी का प्रवेश होता है। शरीर के इंद्रिय-द्वारों से उत्पन्न होने वाली सुगंधि स्वास्थ्य का लक्षण है। उस से प्रतीत होता है कि शरीरस्थ प्राण और धातु पुष्ट हो रहे हैं। पोषण का यह वेग अत्यंत बलवान है और वह सब व्याधियों को दबा देता है। यदि इस स्वास्थ्य-लक्ष्मी के दर्शन करने हों तो उस का सब से उत्तम प्रमाण मल में पाया जाता है अतः मल को वर्चस भी कहते हैं। जो पुरुष श्रेष्ठ वर्चस से युक्त होता है, वही वर्चस्वी बनता है। उस के शरीर में अन्न-रस और धातुओं का परिपाक नितांत निर्मल देखा जाता है। इसी कारण स्वास्थ्य का संवर्धन करने वाली प्राणशक्ति को गंध द्वारा नित्यपुष्ट दुराधर्ष और करीषिणी कहा गया है। मनोकामना, अभिलाषा और वाणी का सत्य तथा अन्न से प्राप्त होने वाला जो रूप पशुओं में दिखायी पड़ता है, वही हम में से प्रत्येक को प्राप्त हो।

यह कल्पना की गयी है कि सृष्टि के आरंभ में जब पानी और मिट्टी हुई थी तब धरती पर विराट और व्यापक कर्दम या कीच फैली हुई थी। उस कीच से ही सर्वप्रथम कमल का जन्म हुआ।

प्रकृति के गर्भ में निहित उत्पादिका शक्ति का जो बीज कहीं पानी के नीचे छिपा था वही अंकुरित हो कर पानी के ऊपर प्रकट हो गया। उसी के आसन पर कमलों की माला पहने हुए पद्मा श्री लक्ष्मी प्रकट हुई। उस कीचड़ से भी एक प्रकार की गंध उठ रही थी जो कमल की गंध बन गयी और जिस से श्री लक्ष्मी के स्वरूप की कल्पना हुई। वही माता श्री देवी अपनी उस कर्दमगंध (चिक्खल, हिंदी चिकलायंध) को परिष्कृत करती हुई प्रत्येक घर, कुल या वंश में अवतीर्ण हो रही है।

वह पद्ममालिनी श्री चांदी और सोने के वर्ण की (चंद्रा हिरण्मयी) है। अग्नि के पिंगल रंग-जैसा ही उस का रंग समझना चाहिये। वह पीले वस्त्र पहनती है और आर्द्रता या रसों में निवास करती है। पृथ्वी की अग्नि और आकाश का सूर्य, ये दो पुष्कर हैं जिन में निवास करने के कारण देवी श्री पुष्करिणी कहलायी। सूर्य की जो सुनहरी धूप है, वह लक्ष्मी का रूप है। वही हिरण्मयी सूर्या भी है।

राजप्रासादों के रत्नगृहों में हाथीदांत की खूंटियों से युक्त सुनहरी लाटों पर जो हेम-मालाएं और रत्नों के कंठे लटकाये जाते थे, वहां लक्ष्मी के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। सोना-चांदी, गाय-

श्री श्री
पिकनिक के समय 'हां' कहते
समय श्री-श्री ने सोचा भी न था
कि रास्ते भर उन्हीं
को लादना
पड़ेगा!
वापसी में
सौदामिनी देवी को
सामान भी ढोना
पड़ा। अब वे
पिकनिक विरोधी
आन्दोलन करने
का विचार कर रहे हैं।
आप भी आमंत्रित हैं।
ज.जोशी

तथा पद्मा लक्ष्मी और हरिप्रिया भी बताया गया है। वह दुर्गा, अपर्णा, शांवरी और नारायणी रूप में भी है। वही वेदों की त्रयी विद्या है। वही राजाओं की राजनीति और दंडनीति है। वही गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, चर्मण्वती आदि नदियों के रूप में प्रजाओं का संवर्द्धन करती है। वही इंद्राणी, माहेश्वरी, ब्राह्मी और कौमारी है। वही चंडी और गौरी है। वही षट्चक्रवासिनी कुंडलिनी है। क्षुधा, तृष्णा, वृद्धा तथा तरुणी उसी के रूप हैं। वही अनेक काल-खंडों में कला, दिशा, मुहूर्त, निमेष आदि के रूप में आती है। कामाक्षी, शाकंभरी, जयंती, कुमारी आदि रूप धारण करके भूमि के अनेक भागों में भी विराजमान है। कपालभूषण, काली और शिवदूती उसी के रूप हैं। देहपुष्टि और मनस्तुष्टि भी वही है।

आयुर्वेद-विद्या औषधि, वैद्य-चिकित्सा और सुपथ्य उसी के रूप हैं। वही स्वास्थ्यरूपिणी है। वायु, मेघ, वृष्टि और अन्न उसी के रूप हैं। समस्त नृत्य, गीत, संगीत, देवता, गंधर्व और अप्सराएं देवी के ही रूप हैं। चित्रकारों की रेखाएं और लेखकों के सुलेख भी उसी के रूप हैं। वही लेखक-प्रिया सरस्वती है। काशी, कांची आदि सप्तपुरी उसी की संज्ञाएं है। वही वेद-विद्या और सब ज्ञान का रूप है। वही सर्वशास्त्रमयी तथा श्रुति-स्मृतियों को धारण करने वाली है। वह सब अभावों से रहित है। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति उसी के रूप हैं। वही आहार को पचाने वाली जठराग्नि है। वही लाल तथा काली मिट्टी है। तीन दिन तक ऋतुमती होने वाली नारी-शक्ति वही है और वही जरायु से वेष्टित गर्भ को धारण करती है। प्राची, प्रतीची आदि दिशाएं उसी के रूप हैं। पिता-माता, पुत्र-पुत्री आदि परिवार के समस्त प्राणी उसी के रूप हैं। समुद्र की मर्यादा, दुर्गों की खाइयां और प्राकार सब उसी देवी की शक्ति से उत्पन्न हैं। वही अणु और वृहत, स्थावर और जंगम रूपों में प्रकट होती है। धनुष की प्रत्यंचा उसी का रूप है जो दुष्टों का विनाश करती है। धनुष और यष्टि खड्ग और अंकुश में उसी की शक्ति व्याप्त है। वह सर्व-देवमयी, सर्वसौभाग्यदायिनी और सर्व-सिद्धि प्रदायिनी है। जितने मंगल हैं, सब उसी के रूप हैं। वह वर-दायिनी वेदमाता है।

ऊपर के इस उल्लेख से विदित होता है कि 'सहस्रनाम देवी स्तोत्र' के लेखक के मन में देवी के स्वरूप की कितनी विराट कल्पना थी। जितना विशाल यह लोक और मानव-जीवन है, उतना ही देवी के रूपों का अनंत विस्तार है। चैत्र और आश्विन के नव-रात्रों में होने वाली देवी-पूजा में भारत की अत्यंत प्राचीन परंपरा सुरक्षित है।

गुलाब के कांटों की शिकायत करने की अपेक्षा मुझे इसी में आनंद आता है कि कांटों ने गुलाब का ताज पहना है।

—जूबर्ट

सिखों के ग्रंथसाहब में सादर स्थान पा चुके हैं।

ज्ञानदेव का रचा हुआ भगवद्गीता का भाष्य 'भावार्थ-दीपिका' अथवा 'ज्ञानेश्वरी' के नाम से विख्यात है। एकनाथ ने श्रीमद्भागवत के एकादश स्कंध पर मराठी में पद्यबद्ध भाष्य लिखना शुरू किया। इस ढिठाई के लिए एकनाथ को धमकाने के हेतु बनारस के पंडितों ने उन्हें काशी बुलाया। किन्तु एकनाथ का ज्ञान, चारित्र्य, भक्ति, नम्रता और भाषा-प्रभुत्व देख कर पंडितों ने उन की सराहना ही की और आदेश दिया कि बनारस में रह कर ही उस भाष्य को पूरा किया जाये। काशी के पंडितों ने पूरा होने पर उस ग्रंथ का जुलूस निकाला। उस के बाद ही एकनाथ को महाराष्ट्र लौटने दिया। जिस तरह पंजाब में भक्त नामदेव का ठिकाना है, उसी तरह बनारस में एकनाथ का मठ आज भी विद्यमान है। ज्ञानेश्वर की "भावार्थ-दीपिका" आज गीता-भाष्यों में अद्वितीय है।

ऐसे महान संतों की परंपरा को शिखर तक ले जाने वाले तुकाराम जाति के शूद्र थे। उन के खानदान का पेशा बनियों का था। उन के पुरखाओं ने किसी समय लड़ाई में प्राण अर्पण करके क्षात्र-तेज प्रकट किया था। स्वयं तुकाराम तो कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के भी गुरु बन चुके थे।

जो भक्त अपने-अपने गांव से हर साल पैदल पंढरपुर की यात्रा करते हैं उन को 'वारकरी' कहते हैं। महाराष्ट्र का धर्म-जीवन वारकरियों के द्वारा ही परिपुष्ट हुआ है। जब ये मस्ती में आ कर जोरों से नाम-संकीर्तन करते हैं, तब या तो कहेंगे—"जय हरि विट्ठल, जय हरि विट्ठल" अथवा रट लगायेंगे—"ज्ञानबा तुकाराम, ज्ञानबा तुकाराम।"

विट्ठल नाम है भगवान विष्णु का। उसी को विठोबा और पांडुरंग भी कहते हैं। कृष्णावतार पूरा करके बौद्धावतार शुरू करने के पहले भगवान रुक्मिणी की मनुहारें करने के लिए डिंडिरवन में आये थे। उसी स्थान को पंढरपुर कहते हैं। महाराष्ट्र के संतों के विठोबा कृष्णावतार और बौद्धावतार के संधि-रूप हैं। ज्ञानदेव और तुकाराम संत-परंपरा के सीमाचिह्न हैं।

संत-शिरोमणि तुकाराम और समर्थ रामदास स्वामी दोनों छत्रपति शिवाजी के समकालीन थे। शिवाजी को दोनों के आशीर्वाद प्राप्त थे। शिवाजी महाराज तुकाराम के भजन-कीर्तन सुन कर तल्लीन हो जाते थे। एक बार तुकारामबुवा को अपने यहां बुलाने के लिए शिवाजी ने सम्मानपूर्वक वाहन भेजा। भेंट-स्वरूप कुछ धन भी भेजा। तुकाराम ने अस्वीकार करते हुए सब वापस भेज दिया। साथ ही, अच्छी नसीहत के अभंग लिख कर भेजे और सलाह दी कि समर्थ रामदास के चरणों में ही अपनी सारी निष्ठा एकत्र करें।

एक बड़ा अकाल पड़ने पर उन की हालत बहुत कठिन हो गयी। इधर वैराग्य भी बहुत बढ़ गया था। दूसरे कुटुम्बी जनों के साथ लेन-देन का

○ काका कालेलकर

महाराष्ट्र के संतों में तुकाराम संत-शिरोमणि माने जाते हैं । सब संतों ने एक स्वर से कहा है, "तुका झालासे कळस"—तुकाराम संत-मंदिर का शिखर है ।

महाराष्ट्र की संत-परंपरा सुसंगठित और सुव्यवस्थित है । जहां तक लोक-जीवन का सम्बंध है, इस परंपरा का प्रारम्भ ज्ञानेश्वर से माना जाता है । इस का पूर्ण विकास संत तुकाराम में हुआ ।

जिस तरह काशी (वाराणसी) भारत की धर्मधानी है, उसी तरह महाराष्ट्र के संतों की संतधानी है—पंढरपुर । आषाढ़ी और कार्तिकी महाएकादशी के दिन महाराष्ट्र के असंख्य भक्त पंढरपुर में एकत्र होते हैं, वहां के विठोबा का दर्शन करते हैं, भीमा-चन्द्रभागा नदी के विशाल रेतीले तट पर भजन-कीर्तन करते हैं, नम्रता से एक-दूसरे के चरण छूते हैं और भक्ति के गीत गाते-गाते अपने गांवों को लौटते हैं । महाएकादशी के पूर्व और बाद में पंढरपुर जाने के रास्ते पर आप को इन भक्तों का दर्शन होगा । हाथ में या बगल में वैराग्य की छोटी-सी गेरुआ ध्वजा ले कर वे पैदल यात्रा करते हैं । हाथ में मंजीरा ले कर भगवान का नाम तो वे गाते ही हैं, लेकिन भगवान की भक्ति सिखाने वाले संतों का नाम उन्हें भगवान के नाम से कम प्यारा नहीं होता । वे घोष करते जायेंगे—

निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई
एकनाथ, नामदेव, तुकाराम
तुकाराम, तुकाराम

इन में से पहले चार तो भाई-बहिन ही हैं । एकनाथ उच्च कोटि के विद्वान, ब्राह्मण, दयामूर्ति संत थे । नामदेव जाति के दर्जी थे । वे ज्ञानदेव के समकालीन भक्त थे, जिन्होंने भक्तिमार्ग की ध्वजा पंजाब तक फहरायी और शायद वहीं अपना चोला भी छोड़ा । उन के गीत (अभंग)

संकलन जब प्रकाशित करना चाहा तब मैं ने उस के लिए नाम दिया—महाराष्ट्र वेद ।

अगर सारे महाराष्ट्र पर किसी एक पवित्र व्यक्ति का सर्वाधिक प्रभाव है तो वह निस्संदेह तुकाराम का ही है। जब महाराष्ट्र में अंगरेजों का राज्य शुरू हुआ तब राज्यकर्ताओं ने महाराष्ट्र के पंडितों की मदद ले कर तुकाराम की गाथा प्रकाशित करवायी। स्वराज्य होते ही बम्बई-सरकार ने उस का पुनर्मुद्रण स्वयं किया। उस की दस हजार प्रतियां आठ दिनों के अंदर ही समाप्त हो गयीं और तुरन्त उस की नयी आवृत्ति प्रकाशित करनी पड़ी।

तुकाराम में आंतर-बाह्य-जैसा भेद था ही नहीं। दिल में जो-कुछ उगा उसे जैसा का तैसा, साफ-साफ, सीधी भाषा में उन्होंने लिख दिया। इसलिए उन के अभंग संत-जीवन के विकास का सुन्दर और स्पष्ट आत्मचरित ही हैं। अपने जमाने की रूढ़ और भोली भक्ति से प्रारम्भ करके उन्होंने अद्वैत साक्षात्कार के शिखर तक प्रयाण किया था। इस अध्यात्म-यात्रा के सारे पद क्रमशः तुकाराम के अभंगों में पाये जाते हैं।

एक अंगरेज ने तुकाराम के अभंग पढ़ने पर लिखा है, "जिस समाज के घर-घर में तुकाराम की वाणी पहुंच गयी है, उस को ईसामसीह की वाणी सुना कर उस का उद्धार करने का प्रयत्न व्यर्थ है।"

तुकाराम की भक्ति देख कर जब लोग उन की पूजा करने लगे तब अत्यन्त ग्लानि से उन्होंने भगवान से शिकायत की कि इस में तो मेरे गिर जाने का मसाला भरा है। अपने मन की स्थिति और अपने दोष प्रगट करते उन्होंने कभी भी संकोच न किया और जब उन की साधना सफल हुई तब आत्मविश्वास से अपने लक्ष्य की बात करते भी उन को संकोच न हुआ। तुकाराम की जितनी निर्मल और पारदर्शक वाणी दुनिया में कम ही पायी जाती है।

दंभ का स्फोट करनेवाले तुकाराम के अभंग भी दुनिया के नैतिक साहित्य में उच्च स्थान पायेंगे। तुकाराम का जीवन-चिन्तन भी भगवच्चिन्तन से कम नहीं था। तुकाराम महाराष्ट्र की और भारत की लोकोत्तर आध्यात्मिक पूंजी हैं। आज के युग में उस पूंजी की उपयोगिता विशेष है।

"क्या आप ऐसा जानवर बता सकते हैं जिस की आंखें हों किन्तु देख न सके, टांगें हों किन्तु चल न सके—फिर भी इतनी ऊंची कुलांच लगा सके जितनी कुतुब-मीनार ?"

सभी ने अपनी अक्ल घिसी, लेकिन कोई जवाब न दे सका। अंत में प्रश्नकर्ता ने बताया, "काठ का घोड़ा।"

"लेकिन वह इतनी ऊंची कुलांच कैसे लगा सकता है जितनी कुतुब-मीनार ?"

"भाई, कुतुब-मीनार कुलांच कैसे लगा सकती है ?"

हिसाब पूरा करके जो-कुछ देनदारों से लेना था उस के अपने हिस्से के खत-पत्र तुकाराम ने नदी में डाल दिये और सारा समय भगवान की सेवा में व्यतीत करने का निश्चय किया।

ज्ञानेश्वर भाई-बहिनों को सामाजिक आतंक बहुत-कुछ सहना पड़ा था। वह किस्सा बहुत बड़ा है। एकनाथ की चर्चा कर ही चुके हैं। तुकाराम भी रूढ़िवादी जन-समाज के आतंक से नहीं बचे थे। शूद्र हो कर धर्म का उपदेश करता है, संस्कृत का धर्म-ज्ञान जनता की भाषा में प्रगट करता है, ये अभियोग तुकाराम के विरुद्ध थे। (तुकाराम ने भगवद्गीता का अनुवाद मराठी अभंगों में किया है। पुराने लोग स्वीकार नहीं करते कि वह तुकाराम का ही किया हुआ है।) तुकाराम को किस तरह से सताया गया इस का वर्णन यहां नहीं करेंगे, किन्तु उन से कहा गया था कि संस्कृत का धर्म-ज्ञान देशी भाषा में लाने का पाप मत करो और जो-कुछ आज तक लिखा है वह पानी में डुबा दो। समाज के नेता ब्राह्मणों की आज्ञा तो माननी ही चाहिये अतः तुकाराम ने अपने अभंगों की बहियां पानी में डुबा दीं और अपने विट्ठल भगवान के पास प्रार्थना करने गये।

(भारत की सब भाषाओं ने संस्कृत के गण-वृत्त और मात्रा-वृत्त लिये हैं, इन के अलावा हर एक भाषा के अपने-अपने छन्द भी हैं। मराठी में सब से व्यापक, लोकप्रिय, सरल, किन्तु समर्थ छन्द है—"ओवी।" उसे लयबद्ध गद्य भी कह सकते हैं। इस "ओवी" का ही एक विशेष रूप है "अभंग।" अभंगों के अनेक प्रकार हैं। उन की रचना सादी होती है। वे गाये भी जाते हैं। ओवी, अभंग, साकी, दिंडी, कटाव—ये हैं मराठी के विशेष छन्द।)

एक बार आमदनी के खत-पत्र पानी में डुबा दिये थे, अब धर्म-सेवा और जन-उद्धार के लिए लिखे गये उपदेश के कागजात भी डुबाने पड़े। दीन और दुनिया दोनों से वंचित होने पर उन्होंने भगवान से पूछा कि अब मेरे जीवन का अर्थ क्या है? अब जी कर क्या करूं? दस दिन बिना खाये-पिये मंदिर में पड़े रहे। भगवान को तुकाराम के कवित्व की बहियां पानी से निकाल कर देनी पड़ीं। सब कोरी थीं। समाज समझ गया कि तुकाराम ईश्वरी पुरुष हैं, उन को छेड़ने से अनर्थ होगा।

तुकाराम के काव्य में भक्ति-रस तो भरा हुआ है ही, अमल में लाने का वेदांत भी है। उन्होंने केवल भक्ति-ज्ञान की बातें नहीं लिखीं, वे समाज के नैतिक सुधारक भी थे। ईश्वर-प्राप्ति के लिए उन्होंने दुनियादारी का व्यवहार तो छोड़ दिया था, लेकिन व्यवहार को वे अच्छी तरह से समझते थे और समाज की क्रूरता, कपट, दंभ और अनाचार की स्पष्ट शब्दों में निन्दा करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया।

यह भी एक कारण था कि समाज के चंद लोग उन से नाराज रहते थे। किन्तु सामान्य जन-समुदाय उन की अभंग-वाणी का वेद-वाणी-जैसा आदर करता था। मेरे एक स्नेही प्रकाशक ने तुकाराम की वाणी का एक अच्छा-सा

ने नील के स्रोत का पता लगाया था। स्पेक ने 'जर्नल आफ दि डिस्कवरी आफ दि सोर्स आफ नाइल' में लिखा है, "कर्नल रिगवी ने मुझे एक बड़ा दिलचस्प कागज दिया जिस के साथ नील और चंद्रगिरि के बारे में एक नक्शा था। यह प्राचीन हिन्दुओं के पुराणों के आधार पर तैयार किया गया था . . . इस से स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दुओं का अफ्रीका के उत्तरी और दक्षिणी छोरों के साथ किसी न किसी प्रकार का संपर्क अवश्य रहा होगा।"

ईसा-पूर्व की चौथी शताब्दी में मिस्र के तटवर्ती नगर सिकंदरिया से भारत मूंगे मंगाता था। इस का उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी है। मोजंबिक के नगर सोफाला से भी भारत के तट तक जहाज आते-जाते थे। ईसा की पहली शताब्दी में इटली के लेखक प्लिनी की 'नेचुरल ज्योग्रेफी' से भी स्पष्ट है कि भारत और मिस्र के बीच घनिष्ठ व्यापारिक संपर्क थे। 'पेरीप्लस' नामक यूनानी पुस्तक में भी भारत और अफ्रीका के व्यापारिक संबंधों का विवरण है। भड़ौंच और कोंकण से अफ्रीका के पूर्वी तट पर भारतीय जहाज गेहूं, चावल, घी, तेल, सूती कपड़े, आदि ले कर जाते थे। तीसरी शताब्दी के लेखक कासमस ने लिखा है कि इथियोपियाई भारत को पन्ना निर्यात करते हैं। मार्कोपोलो ने भारत, अफ्रीका एवं मैडागास्कर के बीच व्यापारिक जहाजों के आने-जाने का उल्लेख किया है। उस ने लिखा है कि मलाबार तट से मैडागास्कर तक आने में एक जहाज को २०-२५ दिन का समय लगता है पर वापस लौटने में विरुद्ध प्रवाह के कारण दो महीने तक संघर्ष करना पड़ता है।

१४१० से पुर्तगाली भारत पहुंचने का मार्ग खोज रहे थे, पर सफलता नहीं मिल पा रही थी। बाद में वास्को डि गामा को यात्रा के लिए चुना गया। वास्को डि गामा को एक नक्शा दिया गया जो एक भारतीय जहाज में भ्रमण करके इटली के लेखक फ्रा मारो ने तैयार किया था। इस की सहायता से वास्को डि गामा पहले मोजंबिक के पूर्वी तट पर आया और फिर मिलिंदी में उतरा। यहां उस ने अनेक भारतीय जहाज देखे। नक्शा होने के बावजूद वास्को डि गामा मिलिंदी से एक भारतीय मार्गदर्शक ले कर भारत की ओर २४ अप्रैल, १४९७ को चला। उस भारतीय की ही सहायता से वह भारत पहुंच सका।

जंजीबार में पहला ब्रिटिश जहाज 'लिओयार्ड' १५९१ में पहुंचा था। इस जहाज के कप्तान विलेल ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि उन दिनों जंजीबार में भारतीय व्यापारियों के बहुत-से पक्के मकान थे। १८६० में जंजीबार में रहने वाले एकमात्र ब्रिटिश कप्तान रिगबी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि जंजीबार में सभी दुकानें भारतीयों की हैं। प्रोफेसर कूपलैंड के अनुसार पूर्वी अफ्रीका का अधिकांश व्यापार भारतीयों के हाथ में था। स्वयं जंजीबार के सुलतान के खजांची और कर वसूल करने वाले भारतीय व्यापारी थे। रिचर्ड बर्टन ने अपनी पुस्तक 'जंजीबार सिटी' में लिखा है

भारत और अफ्रीका

जगमोहनलाल माथुर

भारतीयों को प्राचीन काल से ही शंख-द्वीप अथवा अफ्रीका के बारे में अच्छा ज्ञान था तथा पूर्वी अफ्रीका और पश्चिमी भारत के बीच व्यापारिक और सांस्कृतिक संपर्क थे। सुप्रसिद्ध विद्वान विल्फोर्ड ने स्वीकार किया है कि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित शंख-द्वीप अफ्रीका ही है। वे तो अफ्रीका नाम की उत्पत्ति भी संस्कृत से मानते हैं। 'वायु-पुराण' में कहा गया है : "शंख-द्वीप कई सौ योजन क्षेत्र में फैला हुआ है और वहां म्लेच्छ रहते हैं। वहां शंख-गिरि नामक पर्वत है जो धुले हुए सफेद शंख की तरह चमकता है और वहां पुण्य करने वाले बसते हैं।"

भारतीय अफ्रीका को शंख-द्वीप कहते थे। यदि हम शंख की आकृति और अफ्रीका महाद्वीप की तुलना करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीयों द्वारा इस का नामकरण सर्वथा उचित था।

विल्फोर्ड ने विभिन्न पुराणों के आधार पर नील के स्रोत अमर सरोवर (विक्टोरिया झील) तथा चंद्रगिरि (रुवेंजी पर्वत) का नक्शा बनाया था। इसी के आधार पर जान हॅनिंग स्पेक

ग्रह के सामने सरकार को झुकना पड़ा। जनरल स्मट्स ने गांधीजी को बुलाया और बातचीत द्वारा भारतीयों की बहुत-सी कठिनाइयों का हल ढूंढ़ा गया। अहिंसा की हिंसा पर अफ्रीका में ही पहली विजय हुई।

गांधीजी के इस नये अस्त्र सत्याग्रह की सफलता से पराधीन अफ्रीकियों में बिजली-सी दौड़ गयी। गांधीजी के विचारों की अफ्रीकियों पर जबरदस्त छाप पड़ी। उत्तरी रोडेशिया के राष्ट्रवादी नेता केनेथ कौंडा के अनुसार : "महात्मा जीवित हैं। हमारा नेतृत्व करते हैं, हमें उन का अनुसरण करना है।" केनिया के सुपरिचित नेता जोमो केन्याटा कहते हैं, "हम अफ्रीका में रहने वालों के दिलों में महात्मा गांधी के लिए विशेष स्थान है।" डाक्टर क्वामे एंक्रूमा ने भी अपनी आत्मकथा में गांधीजी और अहिंसा का प्रभाव स्वीकार किया है।

इस समय अफ्रीका में भारत के कूटनीतिक संबंध लगभग सभी स्वतंत्र अफ्रीकी देशों से हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भारत अफ्रीका के लिए बहुत सहायक सिद्ध हो रहा है। १९६३ में भारत में अफ्रीकी देशों के २२४ विद्यार्थी पढ़ रहे थे। यह संख्या आगामी वर्षों में और भी बढ़ेगी। १९६३ में यूनेस्को कार्यक्रम के अंतर्गत भारत ने अफ्रीकी देशों के लिए ३३ छात्रवृत्तियां दी थीं। लाइबेरिया और युगांडा की शिक्षा-व्यवस्था को सुचारु रूप देने के लिए भारत ने यूनेस्को के तत्वावधान में कई शिक्षा-विशेषज्ञ भेजे हैं। इन के अलावा इथियोपिया में ६००, नाइजीरिया में २०० तथा सूडान और घाना में भी कुछ भारतीय शिक्षक शिक्षा का प्रसार करने में जुटे हैं।

तकनीकी क्षेत्र में भी भारत अफ्रीका को काफी सहयोग दे रहा है। नाइजीरिया की पनबिजली योजनाओं, रेलवे, हवाई-सेवाओं तथा इंजीनियरी कार्यों में बहुत-से भारतीय जुटे हैं। सोमालिया में ऋतु-वैज्ञानिक और टिड्डी-निरोधक विशेषज्ञ अधिकतर भारतीय हैं। सूडान में कई भारतीय ऋतु-वैज्ञानिक के रूप में काम कर रहे हैं।

सैनिक क्षेत्र में भी भारत ने अफ्रीका को कम योग नहीं दिया। राष्ट्रसंघ के महासचिव की प्रार्थना पर भारत ने ५,७२३ सैनिक कांगो भेजे थे जो ३० महीने वहां रहे। इन में ३६ सैनिकों ने कांगो की अखंडता की रक्षा के लिए अपना रक्त बहाया। जिस बहादुरी और सूझबूझ से भारतीय सैनिकों ने काम किया, उस की महासचिव ने खूब प्रशंसा की थी।

इथियोपिया में हरार नामक स्थान पर बनी 'हेले सिलासी सैनिक अकादमी' भारत-अफ्रीकी सहयोग का अनुपम उदाहरण है। इस की स्थापना १९५७ में भारतीय सैनिक अधिकारियों के सहयोग से हुई थी। नाइजीरिया ने भी अपने नौ-सैनिक प्रशिक्षित करने के लिए भारतीय अफसरों की सेवाएं मांगी थीं। देहरादून, खड़कवासला और कोचीन के सैनिक प्रशिक्षण-केन्द्रों में घाना, नाइजीरिया आदि देशों के सैनिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

व्यापारिक क्षेत्र में भी हमारा अफ्रीका

कि पूर्वी अफ्रीका के लगभग प्रत्येक बंदरगाह में सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकांश भारतीय ही थे।

अफ्रीका और भारत के बीच व्यापारिक ही नहीं सांस्कृतिक संबंध भी था। पूर्वी अफ्रीका में भारतीय संस्कृति की छाप अब भी विद्यमान है। पूर्वी तट से लगभग २५० मील दूर दक्षिणी रोडेशिया में जिंबाबवे के खंडहर यहां की प्राचीन सभ्यता के ध्वंसावशेष हैं। १९३१ में कुमारी केटन टामसन ने लिखा था कि भारतीय व्यापार से ही जिंबाबवे की देशीय संस्कृति का विकास हुआ था। उस के अनुसार १४ वीं शताब्दी में जिंबाबवे की खानों का सोना दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध साम्राज्य विजयनगर में जाता था। जरमन प्रोफेसर लिओ प्रोबेनियस का, जिन्होंने जिंबाबवे के खंडहरों की खुदाई करायी थी, विचार था कि जिंबवावे की संस्कृति पर दक्षिण भारत की हंपी संस्कृति की छाप है। यहां से प्राप्त गरुड़-जैसे पक्षियों की आकृतियों, भारतीय मनकों, सूर्य की स्वर्ण मूर्तियों, शिवलिंगों आदि पर भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट झलकती है। इथियोपिया में भी शिवलिंग की तरह पत्थर की आकृतियां मिलती हैं।

जंजीबार में ब्रिटिश रेजीडेंट मेजर पीयर्स तथा बर्टन के वृत्तांतों से ज्ञात होता है कि जंजीबार में नारियल, नारंगी और आम के वृक्ष भारत से ले जा कर लगाये गये। बर्टन के अनुसार सीताफल, केवड़ा आदि के पौधे भी भारत से लाये गये। मकई को यहां स्वाहिली भाषा में 'मंहिदी' कहा जाता है, जिस का अर्थ है भारतीय। इस से पता लगता है कि मकई भी भारत से गयी थी।

भारतीयों ने अफ्रीकी देशों के आर्थिक विकास में काफी सहायता की है। आज पूर्वी अफ्रीका के छोटे-से-छोटे गांव में भी भारतीयों की दुकानें मिल जायेंगी। भारतीय ज्यादातर खुदरा व्यापारी हैं। ईस्ट अफ्रीका रायल कमीशन (१९५३-५५) ने स्वीकार किया है कि भारतीय व्यापारियों की लगन तथा साहस के कारण ही आज व्यापार इतना विकसित हुआ है। उन्होंने दुर्गम से दुर्गम स्थानों में भी दुकानें खोली हैं। युगांडा की रेलवे लाइन के निर्माण में भारतीयों का योगदान सर्वविदित है।

अफ्रीका की उन्नति से भारतीयों का प्रसन्न होना स्वाभाविक है। गांधीजी ने अहिंसा का प्रथम प्रयोग अफ्रीका में ही किया था। १८९३ में गांधीजी बैरिस्टर के रूप में दक्षिणी अफ्रीका गये और लगभग २१ वर्ष वहां रहे। इस प्रवास में उन्होंने भारतीयों के प्रति गोरों का अपमानजनक व्यवहार देखा। स्वयं गांधीजी को रेल के द्वितीय श्रेणी के डब्बे से बाहर निकाल दिया गया क्योंकि उन की चमड़ी गोरी नहीं थी। इस के अलावा दक्षिणी अफ्रीका की गोरी सरकार ने कई अनुचित कानून बनाये थे। परिणामस्वरूप गांधीजी ने भारतीयों को तैयार कर अहिंसक आंदोलन शुरू किया। सत्याग्रह का वह पहला परीक्षण था। गांधीजी यहीं पहली बार गिरफ्तार हुए और उन्हें दो वर्ष की सजा हुई। आखिर सत्या-

हम सब लोग परिस्थिति के कैदी हैं और हरेक क्रिया की प्रतिक्रिया सब के मन में अलग-अलग होती है। मन के आवेग और विचारों का एक अंदाजा तो किया जा सकता है, पर कौन-से काम को कौन कैसे सुलझाता है, यह कहना कठिन है।
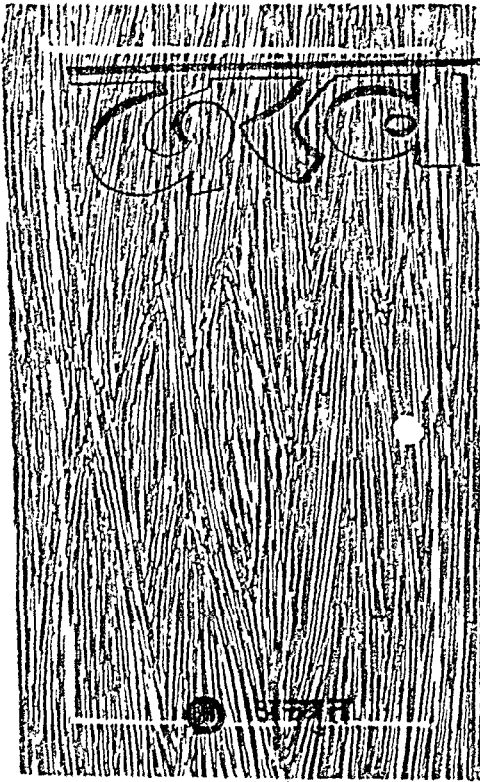
किशोर रात का जगा था, इसलिए काफी दिन चढ़े तक सोता रहा। उस मित्र-भोज के बाद ताश की पार्टी जो जमी, उस ने सोचा, शायद रात भर ही चलेगी। पर वह औरों की अपेक्षा जल्दी ही छुट्टी पा गया। पता नहीं, वह लोगों में हिल-मिल क्यों नहीं पाता। लोग उसे घमंडी कहते हैं। यदि वह ज्यादा मित्रता दिखाता तो उस के सौजन्य से चिढ़ जाते, और कुछ नाराजगी दिखाता तो कहते कि किशोर उन की दिल्लगी उड़ा रहा है।

तरुण, छोटी वहिन नीरजा और उस की सहेली शीला के साथ दिन को चोरा जाने का प्रोग्राम उस ने बनाया था। प्रायः- आधा दिन ढल चुका था और वह नीली पतलून, मटमैली कमीज पहने कुतर-कुतर कर जल्दी-जल्दी टोस्ट खा रहा था। उस की नजर बार-बार अपने कपड़ों पर अपने आप आ कर अटक जाती। पता नहीं नीली पतलून पर वह मटमैली कमीज कैसी लगी। बरामदे की तरफ दरवाजे से तेज सूरज की रोशनी चारों ओर ढली हुई थी।

तरुण उसे लेने आता ही होगा। कहीं किशोर की वेश-भूषा देख कर वह हंसने तो न लगेगा। उस ने दूसरे टोस्ट पर ज्यों ही मक्खन लगाना शुरू किया कि बंगले के फाटक पर हार्न बज उठा।

जल्दी से टोस्ट मुंह में ठूंस, चाय का घूंट पिया और वह दरवाजे की तरफ लपका।

पर दरवाजा तो जाम ही हो गया,

से सहयोग बढ़ रहा है। अभी तक लगभग ३९ अफ्रीकी देशों से हमारे व्यापारिक संबंध हैं, पर हमारा ज्यादा व्यापार संयुक्त अरब गणराज्य, कीनिया, नाइजीरिया, इथियोपिया उत्तरी तथा दक्षिणी रोडेशिया, न्यासालैंड, सूडान, तांगानिका तथा जंजीबार से है। काहिरा, खारतूम, आदिस अबाबा, मोंबासा, लागोस और ट्यूनिस में भारत के वाणिज्य कार्यालय काम कर रहे हैं। भारत वस्त्र, जूट, चाय, साइकिलें, सिलाई की मशीनें, बिजली के पंखे, डीजल इंजन, होजरी की चीजें, रासायनिक पदार्थ, दवाएं आदि अफ्रीकी देशों को भेजता है तथा अफ्रीकी देशों से कपास, फास्फेट, जिंक, तांबा, सीसा, लौंग आदि मंगाता है। १९६१ में भारत ने अफ्रीका को लगभग ११५ करोड़ रुपये का माल भेजा था।

अफ्रीका से हमारे सदियों पुराने संबंध हैं और आज भी उन की मधुरता में कमी नहीं। स्वर्गीय नेहरूजी ने एक बार कहा था, "अफ्रीका से हमारे रिश्ते काफी करीब के हैं। बीच में समुद्र जरूर है लेकिन जैसे समुद्र अलग करता है वैसे ही जोड़ता भी है। अफ्रीका के मुल्क हमारे पड़ोसी हैं। उन के यहां जो कुछ हो रहा है, हमें उस में पूरी दिलचस्पी है। हम उम्मीद करते हैं कि जो दो-चार मुल्क अभी तक गुलाम हैं, वे भी जल्दी ही आजाद हो जायेंगे . . . हम चाहते हैं कि अफ्रीका के मुल्कों से हमारा करीब से करीब का रिश्ता हो और उन की तरक्की में जहां-जहां हम मदद कर सकते हैं, खुशी से करें।"

होने की व्यथा

आओ ये चिह्न गिनें
कहें सूख गयी नदी की कथा

पल दो पल को ही
फिर लौट चलें
जीवित नावों वाली धार
फिर हो लें एक बार फेन-फूल
फिर झलकें दियना उस पार

आओ इतिहास बनें
कि यहीं एक मंदिर भी था

यह जुड़ता क्षण
हम को वेबस कर
डूब गया किरनों के संग
डूब गयी गंध, कुलाचें, बातें
डूब गये हिरनों के रंग

आओ, अनुगूंज सुनें
भरे मौन से
होने की व्यथा
कहें सूख गयी नदी की कथा

—ओम प्रभाकर—

वह इस चक्कर में पड़ा रहा, पर उसी समय घर के सामने तरुण का हार्न बज उठा। किशोर ने दरवाजा खटखटाया और जोर से हिलाया। तरुण ने फिर हार्न बजा कर जोर से पुकारा, "क्यों बाबू, अब तक सोये ही हैं क्या ?"

"चिल्लाओ मत, आ जो रहा हूं," किशोर ने अंदर से जवाब दिया। वह अब भी न समझ सका कि दरवाजा क्यों नहीं खुल रहा है।

"समय हो गया," तरुण फिर चिल्लाया।

किशोर ने हैंडिल उल्टा-सीधा फिर घुमाया और दरवाजे पर धक्का दिया। बार-बार उस के मगज में यही आता था कि नीरजा से वह क्या कहेगा।

"जब तैयार हो तो बात क्या है ? बाहर निकलो तो," तरुण ने पुकारा।

"मुझे खूब सुनायी देता है, नाहक शोर न मचाओ," और झल्लायी-सी आवाज में चिल्लाया, "कम्बख्त दरवाजा . . ."

"क्या कहा ?" और तरुण कंकड़ों पर जूते चरचराता दरवाजे पर आ पहुंचा।

किशोर ने अपने हाथों की ओर ताका। हैंडिल घुमाते-घुमाते वे दुखने लगे थे। एक बार फिर उस ने हिम्मत से अपना रूमाल लपेट कर हैंडिल पकड़ा और पूरा जोर लगाया, पर बेकार।

ठीक इसी समय तरुण ने दरवाजा खटखटाया।

"क्यों नाहक ठप-ठप कर रहे हो ? मैं तुम से तीन इंच पर ही तो हूं," और उस ने भी दरवाजे पर हाथ से 'ठप' कर दिया।

"जानते हो, दिन कितना चढ़ गया ?" तरुण बोला।

"बाबा, जानता हूं, यह कम्बख्त दरवाजा जो नहीं खुलता !" और उस ने तान कर ठप से एक घूंसा दरवाजे पर मारा।

"क्या करना चाहते हो, कुछ मैं समझा नहीं," तरुण ने पूछा।

"अरे भाई, दरवाजा . . . यह दरवाजा नहीं खुल रहा। हैंडिल नहीं हिलता।"

"बाहर चाबी तो नहीं है ?"

"मैं कहां कहता हूं कि बाहर चाबी है — चाबी तो कब की खो चुकी। कम्बख्त रामू, मेरे नौकर को भी जाना था नीरजा के साथ।" उसे शायद जान कर बन्द करने की यह सब ने मिल कर साजिश की हो। उसे याद हो आया, कालेज से पास करके जब उस ने अपनी फैक्टरी का काम देखना शुरू किया तो कितने महीनों तक उसे सब निराशा से आच्छन्न ही दीखता था।

तरुण ने बाहर से हैंडिल घुमाने की कोशिश की। 'न', यह तो नहीं घूमता, स्प्रिंग जाम हो गया दीखता है।"

"देखूं, जरा घुमाओ, मैं भी साथ-साथ भीतर से जोर लगाता हूं।"

"तो, 'रामा पुरुषोत्तम माधो रामा' हूं-हूं, नहीं हिलता।"

"किसी भी तरह निकलो भाई, नहीं तो नीरजाजी और शीला चल देंगी। और फिर चोरा का गेट भी खुला नहीं मिलेगा।"

जैसे ताला बंद हो। किशोर को याद ही न था कि उस ने चाबी भी घुमायी हो। दरवाजे का हैंडिल फिर घुमाने की कोशिश की और घूर कर देखने लगा। रात को लौटा, तब उसे जोर की नींद आ रही थी। नौकर तो उस का नीरजा के साथ चला गया था और रसोइया उस की मां के साथ। दरबान दूर फाटक पर था। उस की चिल्लाहट सुनने वाला कोई भी न रह गया था। छुट्टियों में वह शिलांग घूमने आया था। पर ये छुट्टियां अब उसे भारी मालूम पड़ रही थीं।

क्या यह संभव था कि गहरी नींद के झोंके में उस ने कुछ ज्यादा होशियारी की हो और बिना सोचे ताला बंद कर लिया हो? पर उस का अवचेतन मन इसे मानने को तैयार न था। उधर चेतन मन कह रहा था कि यह कोई छलना है। उस ने हैंडिल दोनों हाथों से पकड़ कर फिर जोर से घुमाया, पर वह टस से मस भी न हुआ।

वह थक कर आतुरता से प्रकोपित हो पागल की तरह जोर से हंस पड़ा। किशोर के मित्र शायद विश्वास कर भी लेंगे और उसे कोई दोष न देंगे। पर नीरजा? जब कभी वह किसी बात को पूर्ण सत्य बता कर उस पर जोर देता तो नीरजा उसे टेढ़ी नजर से देखने लगती। यदि उस ने शिकायत की तो तुनक कर मुंह फेर लेती। नीरजा की दलीलें तर्कपूर्ण हों या तर्कशून्य, वह किशोर की जबान बंद कर देती।

समझ न सका कि कितनी देर तक

फाड़ कर चिल्लाते हो ?"

इस तरह की विचित्रताओं में भी जो आवेग को रोक रखता है उसी का चरित्र बनता है — किशोर सोचने लगा। पर वह सदा भयभीत-सा क्यों रहता है ? दूसरे ही क्षण किशोर चिल्ला उठा, "तुम समझते हो कि मैं कम-अक्ल हूं।"

"कौन तुम्हें वृद्ध कहता है, पर उत्कंठित हो कर दरवाजा कैसे खोलोगे ?"

"दिन भर उपदेश दे कर ही शायद दरवाजा खुल जाये," किशोर ने कहा। न मालूम क्यों लोग अपने आप को ऊंचा चढ़ाने के लिए दूसरे को गिराने की तरकीब गढ़ते रहते हैं, वह सोचने लगा।

"पर, मैं लोहार भी नहीं कि चावी गढ़ दूं।"

"वाह, यह अच्छी याद दिलायी। वह साइकिल-मरम्मत की दूकान है न यहां, पहाड़ी से उतरते ही . . ."

"जनाब, आज रविवार जो है, कितनी बार बताऊं। पर तुम ने इतने जोर से दरवाजा बन्द क्यों किया ?"

"यही तो मुसीबत है, बिलकुल याद नहीं कि मैं ने बन्द किया हो," कह कर किशोर सोचने लगा। उस ने तो दरवाजा खुला ही छोड़ा था रात को। हां, सुबह-सुबह रामू भी आया था। अरे, खूब रही, नीरजा चाय रखने जो आयी थी ! "हां, खूब याद आयी, बाथरूम के दरवाजे पर थपथपा कर चिल्ला कर कह रही थी कि देर न करना। बस, उसी ने बन्द किया, जरूर।" यह सोचते ही किशोर जैसे हवा में उड़ने लगा। यह देरी नीरजा के कारण ही हुई। पर जब नीरजा की तीखी नजर उस के मानो भीतर कुछ भांपने की कोशिश करेगी तो क्या वह उसे दोषी ठहरा सकेगा ?

"कितने बजे ?" किशोर फिर चिल्लाया।

"साढ़े बारह, पर मैं दूर थोड़े ही हूं, चिल्लाते क्यों हो ?"

"तो भैया, तुम तो चल दो, मैं बैठा हूं—क्या करूं ?" कितनी बार किशोर अनुतप्त हुआ है कि उसे कोई आराम से नहीं पड़ा रहने देता। कितनी बार उस का मन ललचाया है कि वह एक हफ्ते तक किसी से भी न मिले, और सुबह सो कर, दिन खो कर और शाम सपनों में बिताये।

"अच्छा, सुनो, खिड़की से निकल सकते हो ?" तरुण ने सुझाव दिया।

"यह भी तो मुसीबत है। कम्बख्त खिड़की भी तो कब से चिपक कर जाम पड़ी है।"

"अच्छा, तो कोई चाकू हो तो दो, कोशिश करूं, शायद ताले का स्प्रिंग खराब हो गया है।"

"ओ माई गाड ! हां, खूब, ठीक तो है, एक है तो भोथरा-सा बिना धार का चाकू," वह चिल्ला कर बोला और दरवाजे पर आ कर फिर थपथपी देने लगा।

"लेकिन तुम्हें दूं कैसे ?"

"अरे, नीचे जरा फांक है, सरका दो उसी से।"

"न, यह तो नहीं जा सकता। इस का बेंट फंस जाता है।"

"कैसे खोजते फिरे थे हम लोग

"क्या करूं, हवा बन जाऊं ?" और उस ने दरवाजे पर कस कर लात जमायी, जैसे पीटने से दरवाजा खुल ही जायेगा। बार-बार उस ने सोचा कि चुनौती मान कर पूरा यत्न किया जाये तो रास्ता निकल ही आता है। पर चुनौती के नाम से ही वह घबरा जाता।

"पर क्या कमरे में एक ही दरवाजा है ? उधर बरामदे में भी तो दरवाजा खुलता है," तरुण ने पूछा।

"और क्या-क्या है ?" जरा झिड़क कर किशोर ने जवाब दिया, "अरे मियां, जमीन से बीस फुट ऊपर बरामदे से क्या कूद पड़ूं ?" किशोर ने एक बार फिर हैंडिल जोर लगा कर घुमाया और साथ ही दरवाजे पर जोर की लात जमायी। पर हैंडिल जरा भी न हिला।

"हां, समझा तो, और क्या करोगे ?"

किशोर को बड़ी घुटन मालूम दे रही थी। मानो वहां कमरे में हवा बिलकुल न हो। साथ ही नीरजा का भय खाये जा रहा था। यह बात नहीं कि वह बहस करने में किसी से कम हो, पर नीरजा जब बोलना शुरू करती तो सब का मुंह बन्द कर देती। जब किशोर किसी काम में अधिक व्यस्त हो तो नीरजा कहती, "क्यों न जिन्दगी पर खूब हंसो और इस के खंड-खंड खुशी में बीतने दो। यह तो एक जुआ है। जुआ खेल कर भी तुम उतने ही सफल कहलाओगे जितने कि धीरे-धीरे हिसाबी ढंग से चींटी की चाल चल कर। जीवन शीशे की वस्तु नहीं कि इसे बचा-बचा कर रखो। फेंको, दांव लगाओ।" नीरजा की उक्तियां ही निराली थीं। इस का अर्थ यह भी नहीं कि उस में छिछोरापन हो। उसे तत्वज्ञ बनने की जरूरत ही क्या थी ? वह तो विश्व के तार में सीधी ही बंधी है। उस के अवरुद्ध यौवन से जीवन फूट पड़ता है। किशोर सोच गया।

तरुण ने बाहर से एक बार फिर दरवाजा खटखटाया।

"तुम जाओ, कम से कम तुम तो शामिल हो जाओ, मैं यहां अकेला बैठा तपस्या करूंगा।" उसे अब चौरा-जाने का यह प्रोग्राम बहुत अखरने लगा। कालेज के समय तो था ही किन्तु अब भी उसे कहानी पढ़ने का बड़ा शौक है। कभी-कभी किशोर कहानी के नायक के साथ अपना भी एकीकरण कर उसी की जगह स्वतन्त्र विचरण करता और सब कुछ भूल कर सुख के हिंडोलों में झूलता।

"पर आखिर निकलोगे कैसे ?"

"हां, यह करो न। जब तुम मुझे निकालने का जिम्मा ही लेते हो तो क्यों न झट से किसी चाबीवाले को पकड़ लाओ ?" उस ने फिर हिम्मत बटोर कर कहा।

"पर छुट्टी के दिन, और यहां इस पहाड़ पर, चाबीवाले को कहां खोजता फिरूं ?"

"जरा जाओ तो, कहीं न कहीं फेरी करता मिल जायेगा," किशोर चिल्लाया।

"अरे भाई, मैं भी तो तुम से तीन ही इंच की दूरी पर हूं—क्यों गला

"लो, अब तुम्हें निकाल कर छोड़ूंगा, खींचो," तरुण चिल्लाया।

"तुम ने बहुत किया, अब छोड़ो मुझे," किशोर ने ऊपर से जवाब दिया।

"छोड़ो भी इन बातों को, चलो फुरती करो।"

"कुछ देर पहले तो मैं आत्महत्या की सोच रहा था।"

किशोर ने सिर पर से बैरट उतार कर फेंक दी और सिर खुजाने लगा। आज-कल की शायद यह परिपाटी है कि कहना कुछ और मन में रखना कुछ—किशोर सोचने लगा।

"तुम्हें बुरा लग रहा है कि कमरे से निकलने की कोशिश नहीं करता," वह बोला।

"मैं जरा भी . . ."

"सच, तुम जानते हो कि चेरा का गेट कब का मिस हो चुका?"

"नहीं, नहीं।"

"क्यों बुद्धू बनाते हो मुझे? मैं तुम्हारी जगह होता तो बेहद चिढ़ जाता।"

"अरे, खींचो तो।"

"मैं यह भी जानता कि दरवाजा अपने आप जाम हो गया, तब भी तुम पर बिगड़ता," किशोर बोलता ही गया, "तुम भी जरूर यही सोचते हो।"

"मैं कुछ नहीं सोचता, अब अधर में लटका कर तो न रखो।"

उसी उलझन में खोया-सा किशोर चादर खींचने लगा। लेकिन कोई दो फुट खींचते ही उस का मन निराशा में डूब गया। नहीं, वह नहीं खींच सकेगा। उस में ताकत ही नहीं है। नहीं होगा, वह कितनी ही हिम्मत करे। उस का मन होने लगा कि वह खूब फूट कर रो पड़े। पर यह क्या! तरुण ऊपर तक पहुंच और रेलिंग फांद उस की पीठ थपथपाने लगा।

"वाह भाई, वाह, खींच ही लिया तुम ने आखिरकार!"

किशोर कुछ हतप्रभ और भयातुर-सा खड़ा रह गया। उस ने एक कठिन काम पूरा तो कर दिया, पर अब जैसे उस का सत निकल गया हो। उसे संदेह होने लगा कि क्या उस ने ही ऊपर तक तरुण को खींच लिया या तरुण खुद ही ऊपर तक चढ़ गया। उस ने चाकू तरुण को पकड़ा दिया, मानो किसी ने अपने आप उस का हाथ पकड़ कर यह करा दिया हो। तरुण लपक कर अंदर दरवाजे पर पहुंचा किशोर भी पीछे-पीछे गया। दरवाजे को देख तरुण देखता ही रह गया। उस ने किशोर के मुंह की तरफ देखा, फिर दरवाजे की तरफ।

किशोर चकित-सा रह गया। ताले के लैच को बंद रखने वाली चिटकनी लगी हुई थी। उछल कर उस ने चिटकनी खींच दी। अवसन्न हो कर खड़ा था। भाग्य के इस अन्याय पर उस के मन से मार्मिक पीड़ा उफना कर छलक पड़ी। ●

"जब से गोपाल के पास पैसा नहीं रहा, उस के आधे दोस्त तो उसे भूल ही गये!"

"और बाकी आधे?"

"उन्हें अभी मालूम नहीं हुआ है कि वह सब कुछ खो चुका है!"

ऐसी ही कोई चीज छुट्टियों में शिमला में। तुम्हारे पायजामे में नाड़ा ही नहीं जाता था।" तरुण याद करने लगा।

"गयी वह छुट्टी तो। अब तो चेरा के गेट को याद करो।"

"अच्छा, देखूं तो, पीछे की तरफ से कोई उपाय हो सकता है क्या?"

किशोर दरवाजे पर एक लात जमा, दौड़ कर पीछे बरामदे पर जा खड़ा हुआ। यह वर्षा के बाद का मौसम था। सामने की जमी हुई कंकरीली जमीन हरियाली से आच्छादित थी। बीच-बीच में फूलों के गुच्छे निकले हुए थे।

"मैं तो अब पागल-सा होता जा रहा हूं। कुछ करना हो सो करो। किधर चले गये?"

"आ रहा हूं। क्यों? कुछ उपाय सूझा?" तरुण ने पूछा।

"टूटे तो टूटने दो।" और किशोर रेलिंग पर चढ़ने की कोशिश करने लगा। तरुण और किशोर कालेज में साथ ही पढ़े थे। तरुण ऊंची कूद में हमेशा इनाम पाता था और किशोर खेल-कूद में कच्चा था। वह फिर कूद कर अपना हुनर दिखाना चाहता है, किशोर सोचता गया। उस ने कातरता से सामने के पहाड़ देखे, फिर नीचे जमीन की तरफ देखा। उसे कूदने में काफी जोखिम लगा। एका-एक किशोर ने महसूस किया कि वह ऊपर से कूद गया है और ऐसी लचक से कूदा कि तरुण देखता ही रह गया। पर तुरन्त उस के स्वप्न का धागा टूट गया।

"अरे, जरा तरुण का दिमाग दौड़ने दो। अच्छा, दो चादरें निकाल कर उन में गांठ लगाओ।"

"मालूम है तुम्हें, सुन्दर भी एक दिन ऊपर से कूद गया था।" भीतर से चादरें ला कर किशोर दोनों में गांठ देने लगा। "इस शहर से तो दूर ही भले। मनहूस दरवाजा भी तो कैसा है! लो, लेकिन अब चादर पकड़ेगा कौन?"

"एक तरफ रेलिंग में बांधो।"

"मुझे सिर भी साथ ही थोड़े तोड़ना है! यह झूले की तरह हिलती है।"

"कहीं आस-पास कोई सीढ़ी नहीं है क्या?"

"कहो तो रेलिंग उखाड़ कर बना डालूं।"

तरुण जरा अंदाज लगा कर देखने लगा। "अच्छा, मुझे ऊपर खींच सकते हो?"

"उस बड़े लकड़ी के खोखे को पास ले आओ, शायद उस पर खड़े हो कर चादर पकड़ सको।"

तरुण ने चादर पकड़ने की कोशिश की, पर उछल-उछल कर भी कुछ दूर ही रह गया। "तुम भी बेकार ही वक्त गंवाते रहे, तुम तो जाओ," किशोर अपने भाग्य को कोसता-सा बोला। उस के मन में यह भी घबराहट होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि तरुण का बोझ ऊपर न उठा सके और उसे बीच में ही गिरा दे। उस ने बैठे-बैठाये यह आफत और मोल ले ली।

किशोर इसी पशोपेश में उलझा था कि बरामदे के खम्भे को पकड़ तरुण ऊपर उछला और चादर पकड़ कर उस पर लटक गया।

के कारण चित्रों में सजीवता प्रतीत होने लगी। शहंशाह अकबर के पृष्ठ-पोषण से यह कला उन्नत हो रही है और अनेक चित्रकारों ने प्रसिद्धि प्राप्त की है। चित्रकला के दारोगा (निरीक्षक) प्रति सप्ताह समस्त चित्रकारों की कृतियां शहंशाह के सम्मुख रखते हैं और उन की सुन्दरता और भव्यता के अनुसार चित्रकारों को इनाम देते हैं और उन का वेतन बढ़ाते हैं।" अबुल-फजल के अनुसार ऐसे चित्रकारों की संख्या सौ से अधिक थी। कुछ चित्रकार तो अपनी कला में इतने प्रवीण थे कि वे यूरोप के श्रेष्ठ कलाकारों से टक्कर लेते थे। ऐसे कलाकारों में मीर सैयद अली, अब्दुस्समद तथा उस के शिष्य दशवंत और बसावन थे।

दशवंत और बसावन जाति के कहार थे। पहले वे पालकी उठाते थे, पर अकबर ने उन में छिपे चित्रकार को पहचाना और उन्हें पालकी उठाने से मुक्ति दिला कर कला-गुरु अब्दुस्समद की संरक्षणता में दे दिया। आगे चल कर दोनों बड़े प्रतिभाशाली सिद्ध हुए। अबुलफज़ल ने उन की प्रशंसा में लिखा है, "वे अपने उस्ताद से भी आगे बढ़ गये। संसार-प्रसिद्ध चित्रकारों में उन की गणना होने लगी।" 'रज्म-नामा' के अधिकांश चित्र दशवंत और बसावन ने बनाये हैं। दशवंत के चित्र प्रायः देखने में नहीं आते, पर बसावन के चित्र जयपुर के पोथी-खाने में 'रज्म-नामा' में देखने को मिल जाते हैं। दशवंत के चित्र उच्च कोटि के होते थे। जब उस की कला उत्कृष्टता की ओर उन्मुख थी, मस्तिष्क के विकृत हो जाने के कारण उस ने सन् १५८४ में आत्महत्या कर ली।

अब्दुस्समद के चित्र कोमलता, सुन्दरता और बारीकी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उस के बारीक काम का अनुमान इसी से लग जाता है कि वह पोस्त के दाने पर कुरान की आयत लिख देता था। कला-पारखी अकबर ने उसे 'शीरीं-कलम' की उपाधि से विभूषित किया था।

'आईने-अकबरी' में अबुलफजल ने १३ प्रसिद्ध चित्रकारों के नाम और दिये हैं जो इस प्रकार हैं— केशव, लाल, मुकुन्द, मिसकीन, फारूखबेग, माधो, जगन्नाथ, महेश, खेमकरन, तारा, सांवला, हरिवंश और राय। इन चित्रकारों को अकबर ने मध्य एशिया, कश्मीर, लाहौर, गुजरात आदि से बुलाया था। फारूखबेग के चित्रों में मंगोल तथा चीनी चित्रकला का प्रभाव स्पष्ट है, क्योंकि वह मध्य एशिया से आया था। शेष में अधिकांश के चित्र मुगल शैली के हैं।

हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता की भावना उत्पन्न हो, इसलिए अकबर ने 'ईरानी शैली' को 'भारतीय शैली' में मिला कर 'मुगल शैली' का एक नया रूप सामने रखा। बौद्ध धर्मावलम्बी सम्राट कनिष्क ने भी इसी प्रकार यूनानी और भारतीय शैली मिला कर 'गांधार शैली' को जन्म दिया था। मुगल शैली का उद्गम 'हमजानामा' से माना जाता है। अकबर से पूर्व बाबर और हुमायूं की समकालीन चित्रकला पर पूर्णतः ईरानी छाप थी।

अकबर-कालीन चित्रकला के उदा-

महेन्द्र वर्मा

अकबर (१५५६-१६०५ ई०) ने अपनी प्रजा में एकता एवं बंधुत्व की भावना उत्पन्न करने के लिए समन्वय की नीति का अनुसरण किया था। यह नीति उस ने न केवल शासन में, अपितु कला के क्षेत्र में भी अपनायी। उस के शासन में हिन्दू और मुसलमान कलाकारों ने मिल-जुल कर चित्रकला को श्रेष्ठता के शिखर पर पहुंचा दिया था।

अकबर को चित्रकला की प्रारंभिक शिक्षा फारस के ख्वाजा अब्दुस्समद शीराजी से प्राप्त हुई थी, जो तत्कालीन ईरानी शैली का सर्वश्रेष्ठ कलाकार था। चित्रकला के प्रति अकबर की असीम रुचि के विषय में उस के समकालीन इतिहासकार अबुलफजल ने लिखा है, "शहंशाह की अभिरुचि चित्रकला की
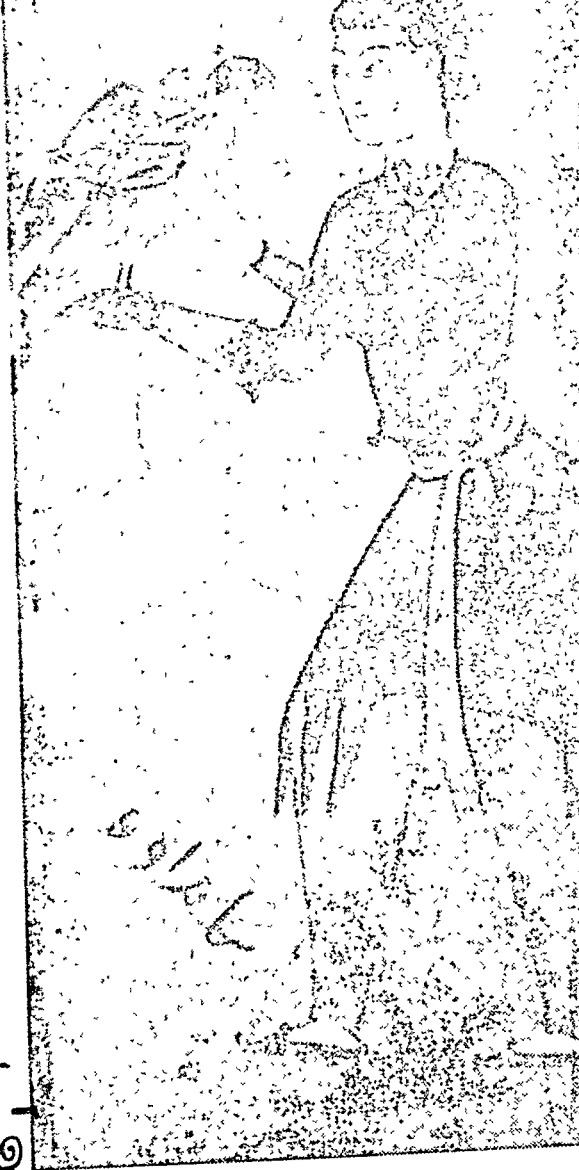
ओर अधिक है। वे उसे अध्ययन और मनोरंजन का साधन समझते हैं।" अकबर के संरक्षण और समुचित प्रोत्साहन के कारण थोड़े ही समय में कुशल चित्रकारों की संख्या बढ़ गयी और कला का स्तर भी उच्च हो गया। अबुलफजल ने 'आईने-अकबरी' में लिखा है, "रेखाओं की भव्यता और कला-कौशल

कौशल्या अश्क

अश्कजी के साथ बाजार जाना भी एक बड़ी समस्या है। कभी इन का मूड ही नहीं होता। किसी तरह मूड बनता है और मैं इन्हें तैयार होने को कह कर रिक्शा मंगवाती हूं, तो ऐन चलने के समय उन के कोई मित्र आ जाते हैं। रिक्शेवाला खड़ा रहता है—कोई शरीफ रिक्शेवाला हुआ तो धीरे-से और कोई बागी किस्म का हुआ तो जोर से दो-चार बार देर हो जाने की बात कहता है। इन के मित्र यदि समझदार हुए तो उठ जाते हैं, नहीं बाजार जाने का बना हुआ मूड और की हुई तैयारी धरी-की-धरी रह जाती है।

लेकिन इस में दोष मित्र ही का हो, ऐसी बात नहीं। वह कई बार उठना भी चाहता है, पर ये अपनी लच्छेदार बातों में उसे उलझाये रखते हैं। स्वयं उठने का नाम लें तो वह उठे।

एक दिन सुबह उठते ही मैं ने कहा, "आप मेरे साथ बाजार चलें और कपड़े पसन्द करने में मेरी सहायता करें तो सभी के लिए ऊनी, रेशमी और सूती कपड़े खरीद लायें। दीवाली निकट आ रही है, फिर फुरसत न मिलेगी और दीवाली के बाद मैं दिल्ली चली जाऊंगी।" बेपरवाही से बोले, "चले चलेंगे। चलने से घंटा-आध-घंटा पहले बता देना।"

साढ़े नौ बजे मैं ने कहा, "आप तैयार हो जाइये, दस-साढ़े दस तक दुकानें खुल जायेंगी। खाने का समय

हरण आज भी अनेक स्थानों में मिल जाते हैं। इन से उस काल की चित्रकला का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। फतेहपुर-सीकरी के भित्ति-चित्र, जिन के कुछ अंश आज भी देखे जा सकते हैं, उस के ज्वलंत उदाहरण हैं। अकबर के ही समय में 'चंगेजनामा', 'बाबरनामा', 'जफरनामा', 'तैमूरनामा', 'रज्मनामा', 'अमीर-हमजा', 'हमजानामा', 'अमार-दानिश', 'कलीला-दमन' (पंचतंत्र), 'दरबनामा', 'खमसा-ए-निजामी', 'अनवार-इ-सुहेली', 'लैला-मजनूं', 'बहारिस्तान-ए-जामी', 'आईने-अकबरी' आदि ग्रंथों को चित्रित किया गया। 'बाबरनामा', 'दरबनामा', और 'खमसा-ए-निजामी' ब्रिटिश म्यूजियम में, 'तैमूरनामा' बांकीपुर की खुदाबख्श लाइब्रेरी में, 'रज्म-नामा' जयपुर के पोथीखाने में, 'अनवार-इ-सुहेली' रायल एशियाटिक सोसाइटी और ब्रिटिश म्यूजियम में, 'लैला-मजनूं' इंडिया आफिस लाइब्रेरी में तथा 'बहारिस्तान-ए-जामी' बाडलियन लाइब्रेरी में आज भी हैं। 'रागमाला' और 'बारहमासा' के भी अनेक चित्र बने। श्री एन. सी. मेहता के मतानुसार अकबर के पुस्तकालय में २४,००० हस्तलिखित पुस्तकें थीं।

सब से पहले 'दरबनामा' और 'बाबरनामा' के आख्यानों को चित्रित किया गया था। बाद में 'रज्मनामा' 'तैमूरनामा', 'बहारिस्तान-ए-जामी', "खमसा-ए-निजामी', 'कलीला-दमन', 'अकबरनामा', 'रामायण' आदि ग्रंथों के आख्यानों को चित्रित किया गया। वैसे 'हमजानामा' का कार्य हुमायूं के समय में ही प्रसिद्ध चित्रकार मीर सैयद अली के सिपुर्द किया गया था। मीर सैयद अली के हज पर चले जाने पर अकबर के समय में इसे अब्दुस्समद ने पूरा किया। 'हमजानामा' के १,४०० चित्र १२ जिल्दों में चित्रित किये गये थे।

अकबर के समय की चित्रकला की सजीवता का प्रमाण जैनाचार्य मुनि जिनविजय द्वारा संपादित 'कृपार-कोश' में इस प्रकार है, "अकबर ने जैन आचार्य हीरविजय सूरि को, जिन्हें उस ने जगद्गुरु की उपाधि दी थी, बुलाया। पुस्तकालय के समीप स्थित चित्रशाला में बिछे कालीन पर जब आचार्य ने पैर रखा तो वे यह सोच कर ठिठक गये कि कालीन पर बैठे जीव कहीं उन से दब न जायें।" इस प्रसंग से स्पष्ट है कि अकबर के काल में चित्रकला पर्याप्त रूप से समृद्ध थी।

चित्रकार : देखिये, यह कितना यथार्थवादी चित्र है! 'दफ्तर में काम के वक्त' शीर्षक भी मैं ने कितना उपयुक्त दिया है।

मित्र : लेकिन तुम ने आधे लोग कुरसियों पर सोते हुए और आधे चाय पीते हुए दर्शाये हैं!

चित्रकार : इसीलिए तो यथार्थवादी है।

बोले, "नहीं डिजाइन तो अच्छा है, पर मुझे नींद आ रही है। घर चल कर थोड़ी देर आराम कर लें। फिर एक प्याला चाय का पी कर चले आयेंगे और सब कुछ खरीद ले जायेंगे।"

जब से बीमार हुए हैं, दोपहर को एक-आध घंटा सोते हैं, इसलिए मैं चुपचाप इन के साथ चली आयी। चाय पीते-पिलाते शाम हो गयी और मैं ने झुंझला कर कहा कि आप समय का जरा भी खयाल नहीं रखते। तब बोले, "मैं तुम्हारी तरह वक्त बरबाद नहीं करता। एक जगह चीज देखी, पसन्द की और ले कर घर चले आये। 'टाइम इज मनी, माई डियर।' तुम ने कभी गौर नहीं किया कि जब तुम चार आने गज कीमत कम करने की गरज से चार घंटे घूमती हो तो चालीस रुपये का हर्ज करती हो। अपने समय की तुम्हें चिन्ता न हो, पर मेरे समय का तो खयाल रखा करो।"

"जी हां, आप समय का जैसा खयाल रखते हैं मैं खूब जानती हूं," मैं चिढ़ कर बोली और सम्भव था कि झगड़ा शुरू हो जाता कि पटना से एक मित्र आ गये और बात टल गयी। उस दिन फिर कहीं भी जाना सम्भव न हुआ, बाजार की बात तो दूर रही।

एक बार बाजार गये तो कपड़े की जिस दुकान में हम गये, उस में खासी भीड़ थी। कुछ लोगों के साथ बच्चे भी आये थे। इन्होंने सीटी बजायी, फिर चिड़िया बुलायी और बच्चों के दोस्त बन गये। बच्चों के माता-पिता निश्चिन्त हो कर कपड़ा खरीदते रहे और बच्चे इन से खेलते रहे। मैं इस प्रतीक्षा में रही कि भीड़ छंट जाये, बच्चे चले जायें, तो कुछ देखूं। थोड़ी देर बाद बच्चे अपने माता-पिता के साथ चले गये। मैं ने कपड़ा निकलवाया। कुछ नये लोग भी आ गये थे। ये बोले, "वाह, बहुत अच्छा कपड़ा है! कैसे गज दिया है?" दो या ढाई, कुछ इसी तरह दुकानदार ने बताया। बोले, "बड़ा सस्ता है!" साथवाले ग्राहक से बोले, "यह जरूर लीजिये साहब, बहुत अच्छा है।" मुझ से बोले, "तुम भी यही ले लो।"

कपड़ा कोई खास न था। मौका देते तो और कुछ देख कर मैं ले लेती। वह कपड़ा मैं ने नहीं लिया, पर दूसरों ने लिया। ये घंटा-आध घंटा इसी तरह बोलते, कपड़ा निकलवाते और दूसरों को पसन्द करवाते रहे। मैं ने ऊब कर कहा, "चलिये, अब फिर आयेंगे।" "हां चलो!" ये बोले, "इस वक्त यहां भीड़ होती है। असल में यहां दोपहर को आना चाहिये और आराम से खरीदना चाहिये।" चलते समय दुकानदार से बोले, "साहब, आप को तो मुझे कमीशन देना चाहिये। मैं ने आप का इतना कपड़ा बिकवा दिया।"

दुकानदार हंसा, लेकिन मेरी मनःस्थिति की आप कल्पना कर सकते हैं। गये थे अपने लिए कपड़ा खरीदने और दूसरों को खरीदवा कर चले आये!

एक दिन हम जूते लेने गये।

जहां कहीं आयेगा, वहीं किसी होटल में खा लेंगे और सारा काम करके ही आज लौटेंगे ।"

मैं ने कहा, "आप ने तो सुबह चलने का वादा किया था, इतनी जल्दी मूड को क्या हो गया ? लोग आराम से सब काम कर लेते हैं, आप का मूड ही नहीं बनता और वह भी बाजार जाने के लिए ।"

बोले, "हम शायर हैं, घसियारे नहीं !"

क्रोध तो मुझे बहुत आया, पर धीरज से काम लेना ही ठीक जान पड़ा । कहा, "बाजार जाने में कौन-सी शायरी करनी है आप को ? चलिये, उठिये, जल्दी से तैयार हो जाइये !"

मेरी झुंझलाहट देख कर हंसे और तैयार होने चले गये । मैं ने रिक्शा मंगा लिया । ये रिक्शे में बैठने ही वाले थे कि सामने से इन के एक मित्र आते दिखायी पड़े । उछल कर ये रिक्शे से उतरे और उन की ओर बढ़े । मुझे आशा थी कि जल्दी ही मित्र से आज्ञा ले लेंगे । रिक्शा खड़ा देख मित्र महोदय ने कहा भी, "आप लोग कहीं बाहर जा रहे हैं । मैं फिर कभी आऊंगा ।" पर उन का हाथ थामे ये कमरे में आये और बोले, "कहीं जा नहीं रहे हैं, यहीं बाजार तक जाना है । तुम बैठो, गरम-गरम प्याला चाय का पियो, तुम्हारे बहाने हमें भी मिल जायेगी,' और मेरी ओर मुड़े, "क्यों तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं ? चाय पी कर चले चलेंगे ।"

चाय बनाते, पीते, पिलाते साढ़े ग्यारह बज गये । रिक्शेवाला खड़ा था, मैं ने कहा, "रिक्शेवाला खड़ा है, उसे लौटा दूं ?"

बोले, "अब तो देर हो गयी है, खाना खा कर ही चलेंगे ।"

खाना घर में मना कर दिया था, बच्चे सुबह खा कर स्कूल चले गये थे और हमें तो बाजार में खाना था । मुझे डर लगा कि कहीं मित्र को खाने के लिए इन्होंने रोक लिया तो क्या होगा, पर इन का मूड सचमुच बाजार जाने का बन गया था । मित्र चले गये तो मैं ने कहा कि खाना हमें तो बाजार में खाना था, घर पर नहीं । बोले, "चलो, पहले चल कर खाना ही खाया जाये । उस के बाद एक अच्छा-सा पान खायें, एक सिगरेट तुम मुझे ले देना, मैं धुआं उड़ाता हुआ तुम्हारे साथ बाजार में घूमूंगा और तुम्हारी सब चीजें पसन्द कर दूंगा ।"

खाने के बाद हम ने पान भी खाया, होंठों में सिगरेट रख कर इन्होंने धुआं भी उड़ाया और हम दुकान की ओर बढ़े । एक दुकान पर कपड़ा देखा, पसन्द भी आया, पर डिजाइन साधारण था । मैं ने कहा, "एकाध दुकान और देख लें !" और हम अगली दुकान की ओर बढ़े । बहुत-से कपड़े देखे, मुझे एक डिजाइन अच्छा लगा । मैं ने इन से पूछा, "यह आप को पसन्द है ?" जरा-सा निकट हो कर कहने लगे, "एक बात कहूं, नाराज तो नहीं हो जाओगी ?" मैं ने सोचा डिजाइन शायद इन्हें पसन्द नहीं आया । "न पसन्द हो तो और कहीं देख लेते हैं," मैं ने कहा ।

चित मिलता, वड़े इतमीनान से उसे नमस्कार करते, उस से हाथ मिलाते और वातचीत करने लगते । किसी तरह हम हैण्डीक्राफ्ट की दूकान पर पहुंच गये । मैं ने चीजें खरीद कर वण्डल वंधवा लिया। यह कभी दूकान के अन्दर और कभी वाहर टहलते और सीटी वजाते रहे । समय काफी हो गया था । मैं ने कहा, "चलिये अव आप के लिए सैंडल ले लें और घर चलें।" सैंडल देखे, काफ लेदर के थे । पंजा जरा छोटा था । मैं ने कहा, "साथवाली दूकान में देख लेते हैं ।" वोले, "मैं तो एक ही नजर में पसन्द कर लेता हूं ।"

"मरजी आप की," मैं ने कहा और सैंडल ले कर हम चले आये ।

दिल्ली पहुंचने के दूसरे दिन ही इन का पत्र मिला । लिखा था, "सैंडल तो अच्छे हैं, पर तुम्हारे जाने के वाद पहने तो छोटे निकले । ये पैसे वरवाद हो गये ।"

अपनी इस उतावली के कारण जूतों पर इन्होंने न जाने कितनी वार पैसे वरवाद किये हैं । शायद ही कभी इन्होंने आरामदेह जूता खरीदा हो ।

और यों चाहे इन्हें खरीदना हो चाहे मुझे, वाजार जाना और ढंग से खरीदना इन के लिए मुश्किल है । घंटों दोस्तों में वैठे वेकार गप्पें हांकेंगे, छेड़-छाड़ करेंगे, अपने फक्कड़पने में वेतुकी वातें करेंगे और उन का नतीजा फुरसत से भुगतेंगे, वेहिसाव समय नष्ट करेंगे, लेकिन जव कभी वाजार चलने को कहूंगी तो इन्हें अपना काम याद आ जायेगा । वीस झंझटों से चलेंगे तो दुनिया जहान की वात करेंगे, वस चीज खरीदने में कभी ध्यान न देंगे । या तो झटपट खरीद लेंगे, या कीमत ज्यादा दे देंगे और यदि कभी जवरदस्ती इन्हें मैं दो-चार दूकानों में घसीट ले जाऊंगी, तो वाजार-दर्शन में औरतों की दिलचस्पी और चार आने की चीज खरीदने में चालीस रुपये के समय वरवाद करने की आदत पर अपने वहुमूल्य विचार प्रकट करते चलेंगे । यहां तक कि स्वयं मेरा मूड खराव हो जायेगा और मैं विना खरीदे अथवा विना मन से चीज खरीदे वापस आ जाऊंगी ।

इन की ऐसी आदत को देखते हुए मुझे अकेले ही 'शॉपिंग' कर लेनी चाहिये । लेकिन न जाने क्या वात है कि यह सव जानते-समझते और चाहते हुए भी जव कभी 'शॉपिंग' करनी होती है तो मेरे मुंह से निकल जाता है, "चलिये जरा वाजार, चीज खरीदने में मेरी मदद कर दीजिये ।"

"मां, क्या तुम अभिनेत्री हो ?"
"नहीं तो, वेटी ! तुम यह क्यों पूछ रही हो ?"
"क्योंकि पिताजी कहते हैं कि जव तुम उन के सामने वात करती हो तो एक दृश्य उपस्थित हो जाता है ।"

मैं जूतोंवाली दुकान में गयी तो ये बोले, "तुम देखो, मैं दो मिनट में आता हूं। वहां मार्कण्डेय बैठा है, उस से जरूरी बात करनी है।" और ये साथ के रेस्तरां में चले गये। मुझे बड़ा गुस्सा आया। जब आध घंटा प्रतीक्षा करने पर भी ये नहीं आये, तो अपने लिए जूता खरीद लिया और रेस्तरां में जा कर देखा कि ये एक मार्कण्डेय ही नहीं, खासी टोली में घिरे बैठे हैं और गप्पें चल रही हैं। चिढ़ कर मैं ने कहा, "मैं चलती हूं, आप आ जाइयेगा।"

बोले, "जूता नहीं लिया?"

मैं ने कहा, "अपना मैं ने ले लिया है।"

बोले, "अरे, मेरा भी ले लेतीं।"

"मेरे नाप का तो आप को आयेगा नहीं," मैं ने चिढ़ कर कहा।

बोले, "गुस्सा क्यों होती हो, चाय का प्याला पियो। मैं जूता फिर ले आऊंगा। मुझे तो एक सेकंड से ज्यादा लगेगा नहीं।"

और एक सेकंड में जैसे खरीदते हैं, उस का भी सुनिये।

एक बार की बात है, मुझे दिल्ली जाना था। सभी रिश्तेदार वहीं हैं। सोचा यू. पी. हैण्डीक्राफ्ट से कुछ तोहफे लेती जाऊं। सारी तैयारी कर, शाम को चाय का एक प्याला पी मैं ने इन से कहा, "चलिये जरा सिविल लाइन तक। कुछ चीजें लानी हैं।" सौभाग्य से फौरन मान गये। नीलाभ प्रकाशन के दफ्तर में हम ने रिक्शा छोड़ दिया। मैनेजर को जरूरी हिदायतें दे कर मैं इन्हें साथ लिये यू. पी. हैण्डीक्राफ्ट की ओर चल दी। हालांकि मुझे उसी रात जाना था और मैं जल्दी में थी, पर इन्हें इस की कोई चिन्ता नहीं। जो मित्र-परि-
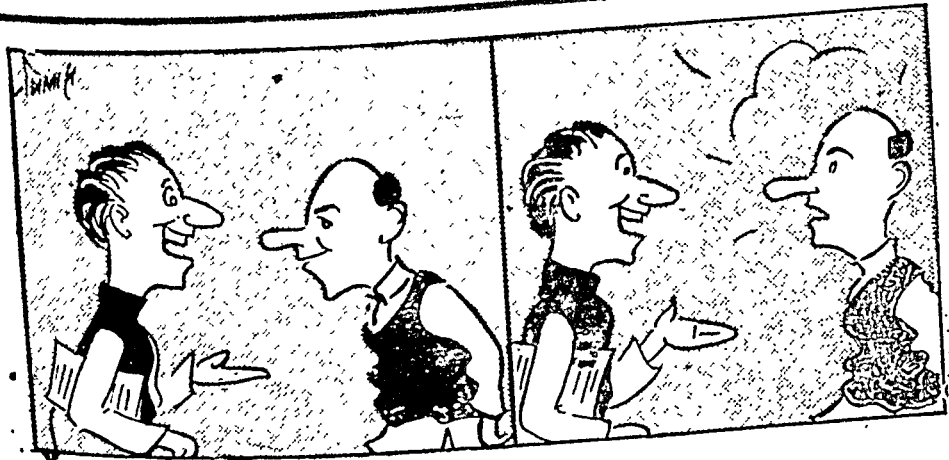
"बन्धु! चार ही पंक्तियां सुनाने के बाद करतल-ध्वनि से वातावरण गूंज उठा . . . और वह इतनी तीव्र हो गयी कि मुझे कविता-पाठ का लोभ संवरण करना पड़ा!"

जाते समय नीचे की हवा बंद कर लेता था। बंद हुई हवा नलिका में से एक सुरीली आवाज के साथ निकलती थी। इस प्रयोग के बाद सिवियोस के ध्यान में वायुसंचालित यंत्रों द्वारा वाद्ययंत्रों के आविष्कार की बात आयी।

सिवियोस ने पानी से चलने वाली एक घड़ी, स्प्रिंग, पानी से बजने वाले आरगन, पानी के जोर से चलने वाले पम्प आदि का आविष्कार भी किया। उस ने इस बारे में एक पुस्तक भी लिखी थी, जो दुर्भाग्य से उपलब्ध नहीं है। पर कई लेखकों ने उस के आविष्कार की कहानियों को लिपिबद्ध करके उसे अमर बना दिया है। उस के बनाये पम्पों और आरगनों के अवशेष प्राप्त हो चुके हैं। सिवियोस ने प्राचीन मिस्र की घड़ी क्लेपसायड्रा को भी विकसित किया। मूल घड़ी एक ऐसे कलश द्वारा चलती थी जिस के एक छेद से पानी नियमित अवधि से गिरता रहता था। सिवियोस द्वारा विकसित घड़ी में सुइयां चलती थीं तथा घंटों के पूरे होने की सूचना एक संगीतमय स्वर से मिलती रहती थी।
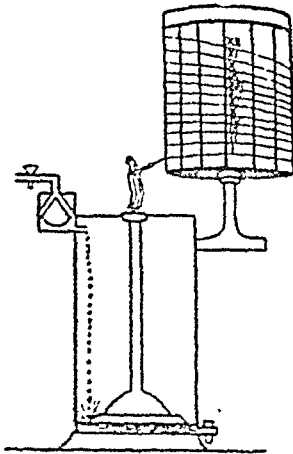
सिवियोस द्वारा निर्मित घड़ी

सिवियोस ने स्वयं भी एक घड़ी का निर्माण किया था। एक ऊंचे स्तम्भ के बीच में बारह घंटे अंकित थे। ग्रीष्म तथा शीत ऋतुओं में दिन में घंटों की संख्या का अन्तर दिखाने के लिए स्तंभ घुमा दिया जाता था। मिस्र के प्राचीन निवासी घंटे का निर्धारण सूर्योदय से सूर्यास्त तक की अवधि को बारह भागों में विभाजित करके करते थे। अपनी घड़ियों के संचालन के लिए सिवियोस ने दांतेदार पट्टियों का आविष्कार भी किया था, पर उन का निर्माण सुलभ न होने के कारण बहुत दिनों तक पानी से चलने वाली घड़ियां डोरियों और चरखियों की मदद से चलती रहीं।

सिवियोस के बाद फिलोन, जो संभवतः सिवियोस का शिष्य ही था, इस क्षेत्र में खूब चमका। उस की पुस्तकों से ज्ञात होता है कि उस ने अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण के अलावा गोफन, उत्तोलक (लीवर), रस्सी द्वारा काम करने वाले इंजन तथा वायु संचालित यंत्रों का भी विकास किया। फिलोन ने कई आश्चर्यजनक खिलौनों का भी आविष्कार किया। उन खिलौनों को सिकंदरिया के धनाढ्य मनोरंजन के लिए खरीदते थे। उन में ऐसे 'जादुई' मधुकलश भी थे जो गुप्त विधियों द्वारा शराब देते थे, उन के

● एल० स्प्राग डि कैम्प

कई सदियों तक मिस्र का सिकंदरिया नगर विज्ञान की दृष्टि से विश्व का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा। इस की स्थापना सिकन्दर ने ईसा के जन्म से ३३१ वर्ष पूर्व की थी। उस के साम्राज्य का अंत हो जाने पर मिस्र उस के एक सेनाध्यक्ष तोलेमाइयोस के अधिकार में आ गया। उस ने मकदूनियाई राजवंश की स्थापना की, जिस ने क्लियोपैट्रा की मृत्यु (ईसा के जन्म से ३० वर्ष पूर्व) तक मिस्र पर राज्य किया।

इस राजवंश के प्रथम तीन सम्राट योग्य शासक तो थे ही, असाधारण विद्वान भी थे। तोलेमाइयोस प्रथम इतिहासज्ञ, द्वितीय जीव-शास्त्र के माने हुए विशेषज्ञ तथा तृतीय कुशल गणितज्ञ थे। इन तीनों ने सिकंदरिया के विख्यात संग्रहालय और पुस्तकालय को समृद्ध किया। यहीं एण्टोस्थनीज ने पृथ्वी का सही आकार ज्ञात किया था, यहीं हिप्परकास ने अक्षरेखा तथा देशान्तर-रेखा का आविष्कार किया था तथा यहीं एरिस्टारकास ने निर्धारित किया था कि पृथ्वी सूरज के चारों ओर घूमती है, सूरज पृथ्वी के चारों ओर नहीं। यहीं हीरोफिलास ने शरीर-रचना-शास्त्र तथा एरिस्ट्राटास ने जीव-विज्ञान की नींव डाली थी।

कई अन्य महान आविष्कारक भी सिकंदरिया में हुए। उन में सब से बड़ा था सिवियोस, जिस ने एक साधारण नाई का पुत्र होने पर भी अपने आश्चर्यजनक आविष्कारों के कारण वह ख्याति अर्जित कर ली जो इस युग में एडीसन को मिली।

एक दिन सिवियोस अपने पिता की दुकान में एक ऐसा दर्पण लगाने का विचार कर रहा था, जिसे खिड़की के चौखटे की भांति ऊपर-नीचे, दायें-बायें खिसकाया जा सके, पर खिसकाने की प्रक्रिया ग्राहकों को दिखायी न दे। उस ने छत की एक वल्ली के नीचे लकड़ी की एक ऐसी नली लगायी जिस के दोनों ओर चरखियां थीं। दर्पण के चौखटे में लगी डोरी एक चरखी से दूसरी तक नली पर होती हुई जाती थी। डोरी के दूसरे सिरे पर एक भारी बोझ बंधा था जो एक नलिका के माध्यम से ऊपर-नीचे होता था। दर्पण को जब डोरी द्वारा खींचा जाता था, तब तुल्यभार नीचे

पुस्तकों में उत्तोलक (लीवर), मिश्रित चरखी, मेख, दंतिचक्र, कलदार धनुष, पानी की ऊंचाई मापने वाले शीशे के ट्यूबों आदि का जिक्र है। उस जमाने में इतने कुशल कारीगर न थे जो हीरो द्वारा कल्पना किये गये यांत्रिक आविष्कारों को मूर्त रूप दे सकें, पर सिकंदरिया के पुजारी लोग हीरो के कई यांत्रिक आविष्कारों से अपने भक्तों को चमत्कृत किया करते थे। हीरो के एक ऐसे ही यांत्रिक आविष्कार से मन्दिर के दरवाजे स्वतः खुल जाते थे। यह काम एक विशाल और अदृश्य पिस्टनछड़ को अदृश्य सिलिण्डर में प्रवेश कराके हवा के जोर से कराया जाता था। हवा अग्नि में से निकल कर इस अदृश्य सिलिण्डर में प्रवेश करती थी। हीरो ने एक ऐसा यंत्र भी बनाया था जिस में से 'पवित्र जल' तभी निकलता था जब उस में एक विशेष सिक्का डाला जाये।

उस ने ऐसे दर्पणों का निर्माण भी किया जिन में बड़ी भद्दी और बेढंगी शक्लें दिखायी देती थीं। इन दर्पणों का उपयोग भक्तों को 'राक्षसों का दर्शन' कराने के लिए किया जाता था।

हीरो के निर्माणों में सब से अधिक कौशलपूर्ण वस्तु थी उस का भाप का इंजन। एक देग के ऊपरी भाग में दो मुड़ी हुई छड़ों पर एक गोला रखा रहता था। देग में से निकलती हुई भाप एक मुड़ी हुई खोखली छड़ के भीतर से गुजरती हुई गोले में प्रवेश करती थी। भाप दो मुड़ी हुई टोंटियों के जरिये बाहर निकलती रहती थी और भाप के इस संचार के फलस्वरूप गोला उसी सिद्धान्त से घूमता था, जिस सिद्धान्त से 'रोटरी लान-स्प्रिन्कलर' घूमता है।

जब यूरोपीय वैज्ञानिकों ने भाप को उपयोग में लाना आरंभ किया तो उन्हें हीरो की उपलब्धियों की याद आयी। १६७० में चीन में एक मिशनरी ने दो फुट की नमूने वाली भाप-गाड़ी बनायी थी। इस के इंजन का नमूना हीरो के चक्करझूले से ही लिया गया था। यह इंजन इस गाड़ी को कुछ इंच तो खींच ही लेता था।

इन्हीं दिनों हीरो के इंजन का वर्णन उस की पुस्तक में पढ़ कर इंगलैंड के वारसेस्टर निवासी मार्क्विस ने भाप की शक्ति से चलने वाले पम्पों का आविष्कार किया। इन्हीं पम्पों का सुधार करते-करते जेम्स वाट ने भाप का इंजन बनाया।

हीरो अपने कठपुतलियों के खेल में उन्हें विशेष यंत्रों द्वारा मानवाकार रूप दे कर उन से मानव-जैसे कार्य कराया करता था। मध्ययुगीन यूरोप के जादूगर वरगिल ने इस आविष्कार के आधार पर अपने एक विख्यात जादू के खेल की कल्पना की और आज के वैज्ञानिकों ने स्वचालित यंत्र-मानवों की।

हीरो की मृत्यु के बाद भूमध्यसागरीय क्षेत्र में विज्ञान की प्रगति एकदम समाप्त हो गयी। यांत्रिकी में नेतृत्व की मशाल उस की मृत्यु के बाद चीन के वैज्ञानिकों के हाथ में आयी, तदनन्तर यूरोप के वैज्ञानिकों के हाथ में।

प्याले खाली कर देते थे तथा अन्य चमत्कारों का प्रदर्शन करते थे। फिलोन के अधिकांश आविष्कार जन-साधारण के उपयोग में भले ही न आ सके हों, पर उन्होंने यांत्रिक विज्ञान की प्रगति में बड़ा योग दिया।

फिलोन ने अपनी पुस्तक में एक महत्वपूर्ण आविष्कार का, जिसे हम आजकल घट-यंत्र (वाटर-व्हील) के नाम से जानते हैं, उल्लेख किया है। कई घटयंत्रों का प्रयोग तो वह केवल अपने जादू के खेलों के लिए ही कभी-कभी करता था। उस ने एक ऐसे घट-यंत्र का भी वर्णन किया है जिस में वाल्टि-यों की एक कड़ी नीचे लगी एक चरखी के द्वारा चक्कर लगाती थी। उस के वर्णन से यह ज्ञात नहीं होता कि वह स्वयं ही उस का आविष्कारक था, पर इस में सन्देह नहीं कि बाद में कुओं से पानी निकालने, गेहूं आदि के दाने पीसने के लिए जिन घट-यंत्रों का आवि-ष्कार हुआ उन के मूल में फिलोन का घट-यंत्र ही था। फिलोन ने हवाई चक्की के पंखों से बांधे जाने वाले पहियों का आविष्कार करके बाद में उस के आधार पर कई अन्य आविष्कारों को सम्भव बनाया था।

फिलोन के बाद भी सिकंदरिया में कई अच्छे इंजीनियर हुए। बायटन नामक इंजीनियर ने दांतेदार चक्कर की सहायता से एक घंटाघर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की कोशिश की थी। एथीने-योस नामक इंजीनियर ने एक घण्टा-घर बनाया था जिसे उस के आगे लगे पहिये के चक्के की सहायता से घुमा
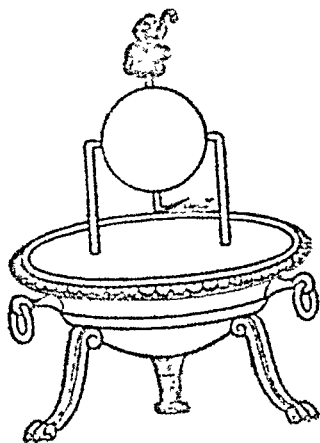
हीरो द्वारा निर्मित भाप के इंजन की रूप-रेखा

कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था। कुछ लोगों का अनुमान है कि इन दोनों आविष्कारों ने ही आज की मोटरकार की कल्पना सहज बनायी थी।

सिकंदरिया का अंतिम और शायद सब से अधिक योग्य इंजीनियर था हीरो। योग्य इंजीनियर होने के अलावा वह एक कुशल वैज्ञानिक लेखक भी था। पहले समझा जाता था कि उस का जन्म ईसा से पूर्व तीसरी सदी में हुआ था, पर हाल के प्रमाणों से यह निश्चित हो गया है कि उस का जन्म ईसा-जन्म के २०-३० वर्ष बाद हुआ था। उस की लिखी पुस्तकों में मुख्य हैं—'यांत्रिकी', 'गोफन-कला', 'वायु-विज्ञान', 'स्वचालित यंत्र', 'परिमाण-दर्पण' आदि। इन पुस्तकों के लैटिन तथा अरबी भाषाओं में अनुवाद ही उप-लब्ध हैं, मूल यूनानी भाषाओं में लिखी पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। हीरो ने उन

जयभिख्खु, गुजराती के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। उन की कुछ रचनाएं भारत तथा प्रदेश सरकारों से पुरस्कृत हैं। लगभग २० उपन्यास तथा ४० कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत कहानी १९६४ में गुजरात सरकार द्वारा पुरस्कृत एक कहानी-संग्रह से ली गयी है

● जयभिख्खु
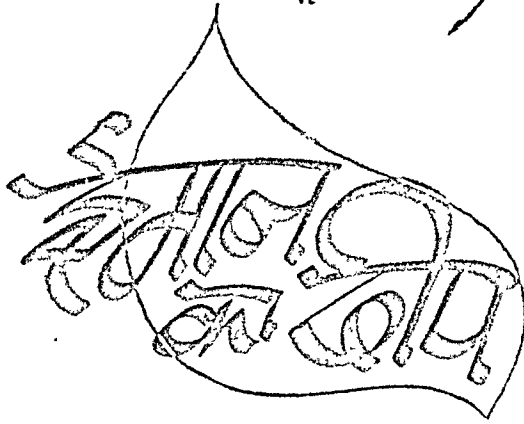
दिल्ली के एक पत्रकार को एक दिन फोन मिला : "स्वामी श्रद्धानंदजी की हत्या हो गयी है और हत्यारा गिरफ्तार कर लिया गया है। आप तुरंत आइये।"

पत्रकार रिसीवर रख कर तुरंत चल पड़ा। वहां स्वामी रामानंदजी भी उपस्थित थे। उन्होंने ही पत्रकार को फोन किया था। सामने ही स्वामी श्रद्धानंदजी का शव रखा था। मुख का तेज, भौंहों की दृढ़ता और होंठों का संकल्प अभी वैसा ही था जैसा उन के जीवनकाल में रहता था। वे मानो कह रहे थे—हत्यारा मुझे मार नहीं सका, वरन मुझे अमर कर गया।

हत्यारा अब्दुलरशीद पकड़ लिया गया था। उस से रिवाल्वर छीन लिया गया था। स्वामीजी की देह में हुए छेदों से झरने की तरह खून बह रहा था।

पुलिस इंस्पेक्टर शेख नजीरुलहक मामले की जांच कर रहे थे। बाहर भीड़ इकट्ठी होती जा रही थी और वातावरण में उन्माद भरता जा रहा था।

"यह कुकर्म ख्वाजा हसन निजामी का है। अब्दुलरशीद उन का नौकर तथा एजेंट है!"

भीड़-रूपी बारूद के ढेर को तो मात्र

सन्नाटे को वेध गयी। गोली खाने वाला चीत्कार के साथ लुढ़क गया। हत्यारा मिर्जा गालिब की कब्र की ओर भागा।

ख्वाजा हसन निजामी बाहर दौड़ कर आये। देखा कि उन के वृद्ध ससुर ख्वाजा अहमद सादिक के शरीर से खून की धाराएं बह रही थीं। कुछ ही देर में उन का प्राणान्त हो गया।

रात का अंधकार घना था और हत्यारा भाग चुका था।

देखते ही देखते वहां भीड़ इकट्ठी हो गयी। निजामी साहब के मित्र और रिश्तेदार भी पहुंच गये। वह पत्रकार भी पहुंच गया जो स्वामी श्रद्धानंदजी की मृत्यु के समय उपस्थित था।

हत्यारा कौन हो सकता है, इस पर विवाद चलने लगा। "कोई प्रसिद्ध हिन्दू ही होगा," यह आम राय थी।

पुलिस को कौन-कौन-से हिन्दुओं के नाम दिये जायें, इस पर विचार किया जाने लगा। पत्रकार ने स्थिति का अध्ययन किया। इस में निर्दोषों के सताये जाने की भावना स्पष्ट दीखी। उस ने तुरंत ही निजामी को एकांत में ले जा कर प्रश्न किया, "हत्यारे को आप जानते हैं अथवा उसे देखा है?"

"नहीं।"

"क्या आप को विश्वास है कि वह हिन्दू ही होगा?"

"नहीं! सादिक साहब का एक मुसलमान परिवार के साथ पीढ़ीगत वैर चलता था। उस परिवार का ही कोई आदमी होगा।"

"तो किसी हिन्दू का नाम देना ईमान के खिलाफ न होगा?"

"हां! आप का सिद्धांत मैं जानता हूं। मुझे पुलिस इंस्पेक्टर शेख साहब ने स्वामीजी की हत्या के समय का किस्सा बताया है। मुझे हैरान करने की चेष्टा करने वालों को आप ने ही रोका था।"

"मनुष्य के लिए परीक्षा का समय रोज-रोज नहीं आता, कभी-कभी ही आता है। मनुष्य को उस में उत्तीर्ण होना चाहिये। यदि आप मानते हैं कि हत्यारा हिन्दू ही है तो वैसा कहिये, नहीं तो पुलिस को अपराधी की खोज करने दीजिये।"

पुलिस की जांच शुरू हुई। बाद में एक मुसलमान गिरफ्तार हुआ। दो कुटुम्बों के बीच पीढ़ियों का वैर था, उसी के परिणामस्वरूप हत्या हुई थी।

अदालत में मुकदमा चला। पर्याप्त प्रमाण के अभाव में अभियुक्त को संदेह का लाभ मिल गया और वह मुक्त कर दिया गया। परन्तु बढ़ती हुई असत्य की शृंखला टूट गयी। ईमान का दीप सुरक्षित रह गया।

वह सिख पत्रकार सरदार दीवानसिंह दिल्ली के तत्कालीन साप्ताहिक 'रियासत' का संपादक था।

"तुम्हारे पड़ोसी को लोग अब बुराई क्यों करने लगे हैं? पहले तो उस की तारीफ करते थे।"

"क्योंकि अब उस ने कार बेच दी है।"

एक चिनगारी ही चाहिये थी। तुरंत शोर मच गया — ख्वाजा हसन निजामी हत्यारा है।

पत्रकार ने अब्दुलरशीद की ओर देखा और भीड़ से कहा, "मैं इस आदमी को पहचानता हूं।"

"ख्वाजा हसन निजामी तुम्हारा भी मित्र है इसलिए तुम इसे भी जरूर पहचानते होगे।" भीड़ ने पत्रकार की बात स्वीकार कर ली।

"इस ने ही हत्या की है, इस का मुझे दृढ़ विश्वास है," पत्रकार ने कहा।

"विश्वास की आवश्यकता ही नहीं है। रिवाल्वर के साथ ही हत्यारा गिरफ्तार हुआ है। परंतु बात यह है कि इस कांड का सूत्रधार परदे के पीछे है। उसे पकड़ा जाना चाहिये," लोगों ने कहा। वे ख्वाजा हसन निजामी को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते थे।

पत्रकार ने फिर निर्भीकता से भीड़ को संबोधित कर कहा, "अब्दुलरशीद मेरे यहां क्लर्क था। इस का मजहबी पागलपन मैं जानता हूं। इस कुकृत्य की जिम्मेदारी केवल इसी पर है। हमारा मजहबी जोश ऐसा नहीं होना चाहिये कि कोई निर्दोष सताया जाये और हम स्वयं सत्य के दरबार में अपराधी बन जायें।"

पत्रकार भूमिका बांध कर आगे बोला: "मैं ने इसे नकल करने का काम दिया था। एक बार अफगानिस्तान से समाचार आया कि वहां के शाह ने अहमदिया पंथ के कितने ही लोगों को पत्थरों से मरवा दिया है। बीसवीं सदी में मजहब या पंथ के नाम पर मतभेद के कारण ऐसी सजाएं हों, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं ने अफगान सरकार की आलोचना करने वाला एक लेख लिखा। उसे नकल करने को मैं ने इसी अब्दुलरशीद को दिया। अब्दुलरशीद थोड़ी देर बाद वह लेख लिये मेरे पास आया। इस का चेहरा तपे तांबे-जैसा हो रहा था। इस ने कहा, 'यह लेख मैं तैयार नहीं कर सकूंगा। आप सिख हैं, गैरमुसलिम। शरियत (मुसलिम विधान) की आप को जानकारी नहीं है। ऐसे लोगों को मार देना ही धर्म-संगत है।' "

पत्रकार ने कुछ देर रुक कर फिर बात आगे बढ़ायी, "मैं ने उसी दिन अब्दुलरशीद को वेतन दे कर निकाल दिया। फिर यह अफगानिस्तान चला गया। इसे किसी भी मजहबी बात पर दीवाना बनाया जा सकता है और मजहबी पागलपन में यह कुछ भी कर सकता है। ऐसे कामों को यह धार्मिक मानता है। अफगानिस्तान से यह एक रिवाल्वर भी ले आया था। इस से यह काम किसी दूसरे ने नहीं कराया है, मजहबी पागलपन ने कराया है।"

पत्रकार की इस बात ने भीड़ को शांत कर दिया। सांप्रदायिकता पर सत्य की विजय हुई। श्रद्धानंदजी के शरीर से वहे रक्त की पवित्रता सुरक्षित रही।

कुछ दिन बाद! सूरज ढल रहा था, अंधेरा गहराता जा रहा था। तभी ख्वाजा हसन निजामी के घर के सामने गोली चलने की आवाज

मानो सारे संसार को एक यही चिन्ता हो कि हजरत जैसे सो कर उठें, उन्हें खबर सुनायी जानी चाहिये। काफी या चाय की चुस्कियां लेते हुए वह पढ़ता है कि किसी आदमी की आंखें किसी ने निकाल लीं। इस भलेमानस को कौन बताये कि हजरत, आप अन्धकार में रहते हैं और आप की दो आंखें तो क्या, आंख की एक पलक भी सही-सलामत नहीं है। रही मेरी बात, सो मेरा काम तो डाकखाने के बिना आसानी से चल सकता है। मैं तो समझता हूं कि डाकखाने के द्वारा जो समाचार आते हैं, उन में बहुत कम काम के होते हैं। यदि उपयोगितावादी दृष्टि से देखा जाये, तो कहना पड़ेगा कि जीवन में मुझे जो चिट्ठियां मिली हैं, उन में सिर्फ एक या दो ऐसी थीं जिन की कीमत उन पर लगे डाक-व्यय के बराबर थी। एक पेनी में जो चिट्ठी जाती है उस में लोग बस एक पेनी-मूल्य के विचार भेजते रहते हैं और यह सारी दिल्लगी बड़ी गंभीरता के साथ दोहरायी जाती है।" थोरो के प्रस्तुत कथन से यदि हम वर्ष भर तक आयी अपनी बोझीली डाक का उपयोगिता की दृष्टि से महत्तम निकालें तो हमें स्थायी महत्व की कुछ ही चिट्ठियां मिलेंगी जिन्हें हम सुरक्षित रखना चाहेंगे।

आज अमरीका में जीवन की रफ्तार बड़ी तेज है। सर्वत्र भाग-दौड़ ही दिखलायी पड़ती है। मोटरें, बसें भागती जा रही हैं। नीचे जमीन में रेलगाड़ियां चल रही हैं, ऊपर पुल पर रेलगाड़ियां दौड़ रही हैं। आकाश में विमान और हेलीकोप्टर उड़ रहे हैं। कहां हवा से होड़ लेने का यह कार्य-व्यापार और कहां मस्त थोरो के ये फक्कड़ाना विश्रांतिपूर्ण विचार— "रेलवे लाइन बनाने वाले भले आदमियों से कोई पूछे कि अगर हम इधर-उधर फालतू आने-जाने के बजाय घर बैठ कर अपना काम करें तो फिर रेल की जरूरत किसे पड़ेगी? हम रेलों पर नहीं चढ़ते, रेलें ही हम पर चढ़ती हैं। रेलवे-लाइन के नीचे जो स्लीपर (श्लिष्ट अर्थ में सोनेवाले) बिछे हैं, उन में कोई आइरिश है तो कोई अमरीकी। रेलें उन पर बिछी हैं और मृत शरीर मिट्टी से ढके हैं, जिन पर बड़े आराम से गाड़ियां चलती हैं।"

थोरो सही अर्थ में प्रकृति-पुत्र थे। धरती उन की माता थी। प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने छुट्टियों में वे अपने पूरे परिवार के साथ जाया करते थे। थोरो को बाल्यावस्था में ही प्रकृति के सौंदर्य और शक्ति के आनंद की गहरी अनुभूति होने लगी थी। थोरो उन टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में बार-बार जाते जो किसी निर्जन रास्ते में खत्म हो जातीं और अकसर उन्हें कानकार्ड के चरागाहों के पार सूने खेतों, उजड़े बागों या दूर जंगलों और झीलों में पहुंचा देतीं। वे प्रति दिन बीस-तीस मील पैदल चलते। नदियों के किनारे पड़े-पड़े घण्टों छछूंदरों और मछलियों की लीला देखते। पीले रंग की धनुषाकार मछलियों को थपथपाते, कीचड़ में से कछुए उठा लेते। उन की राय में—"धनोपार्जन में लगाये गये एक दिन से ज्यादा उपयोगी वे बारह

मस्तमौला थोरो

● कैशनीप्रसाद चौरसिया

अमरीकी दार्शनिक थोरो की अमर वाणी में अहिंसा, अपरिग्रहशीलता, शाकाहारिता और फक्कड़ाना मस्ती इतनी अधिक है कि थोरो के अमरीकी होने का विश्वास ही नहीं होता। मन, वचन और कर्म से वे भारतीय दिखलायी पड़ते हैं। कहां आज के न्यूयार्क की १,४०० फुट ऊंची एम्पायर स्टेट बिल्डिंग जिस में ऐसी लिफ्टें लगी हुई हैं जो सब से ऊपर की मंजिल पर पहुंचा देने में मात्र डेढ़ मिनट का समय लगाती हैं और कहां उन्नीसवीं सदी के थोरो का यह कथन—"आर्थिक संकट से ग्रस्त आदमी को तीन डालर में एक लम्बा संदूक खरीद लेना चाहिये और उस में हवा के आने-जाने के लिए सूराख कर लेना चाहिये। पानी बरसने पर उस में घुस कर और भीतर से ढक्कन बन्द कर मजे में रात बितायी जा सकती है। किराये का कोई झंझट ही नहीं। कितने ही आदमी सचमुच इस से थोड़े ही बड़े संदूकों में रहते हैं और किराया देते-देते मरते हैं!"

न्यूयार्क नगर के पांचवें हिस्से स्तीनहेस्तान की १,७८० पृष्ठों की टेलीफोन डाइरेक्टरी है जिस के प्रत्येक पृष्ठ पर अनुमानतः ५०० टेलीफोनों के नंबर हैं, अर्थात अकेले स्तीनहेस्तान में नौ, पौने नौ लाख टेलीफोन हैं। एक ओर विचारों के आदान-प्रदान एवं संचार की इतनी तीव्र गति और दूसरी ओर थोरो का यह नुकीला व्यंग्य—"खाना खाने के बाद आध घंटे की झपकी ले कर आदमी चौंक कर पूछता है—'अरे भई क्या खबर है?'

रहा। वसन्त में सुबह-सुबह जब नदी की घाटी और जंगल एक पवित्र और उज्ज्वल प्रकाश से नहा उठते हैं, मैं कितनी बार उन चरागाहों में एक टीले से दूसरे पर, एक बेंत की जड़ से दूसरी पर कूदता हुआ घूमा हूं।"

थोरो अपनी वेश-भूषा से ठठेरे, बिसाती या मिस्त्री प्रतीत होते थे। कभी-कभी तो लोग उन्हें आवारा समझने की भूल कर बैठते थे। एक बैंक की चोरी का पता लगाती हुई पुलिस ने उन का पीछा भी किया था। यात्रा में सदा उन के साथ रहने वाली दो चीजें थीं, बड़ा-सा टोप और एक छाता। टोप के अस्तर के अंदर वे अपने चुने हुए वनस्पतियों के नमूने रख लेते थे ताकि वनस्पतिशास्त्रियों वाली पेटी का बोझा उन्हें न उठाना पड़े। छाता उन के लिए एक फालतू बरसाती कोट की अपेक्षा ज्यादा आरामदेह था। थोरो स्कैटिंग करने (बर्फ पर फिसलने) में बहुत अभ्यस्त थे। झील की सतह पर जमी हुई एक इंच मोटी बर्फ पर लेट कर झील के अन्दर वे इस प्रकार देखते मानो वह शीशे में जड़ी तसवीर हो। स्फूर्तिदायक ठंडी हवा के थपेड़े उन्हें बहुत अच्छे लगते थे। रात में वे उल्लुओं और लोमड़ियों की बोलियां सुनते।

थोरो की अपरिग्रहशीलता का इस से बढ़ कर और कौन-सा दृष्टान्त मिल सकता है कि एक बार किसी महिला ने उन्हें एक चटाई भेंट की। चटाई को वापस करते हुए वे बोले, "श्रीमतीजी, मेरे घर में इतनी जगह नहीं है कि इस चटाई को रख सकूं और न मेरे पास इतना समय ही है कि इसे झाड़ कर साफ करूं।" इसी प्रकार उन्होंने अपनी डेस्क के ऊपर रखे सफेद पत्थर के तीन टुकड़ों को यह कह कर खिड़की के बाहर फेंक दिया था कि अपने दिमाग को झाड़-पोंछ कर साफ करने का काम ही क्या कम है, जो व्यर्थ में एक झंझट और मोल ली जाये। शायद ही कभी थोरो प्रीति-भोजों में सम्मिलित हुए हों। वे गौरव के साथ कहते थे, "लोग इस बात में अभिमान करते हैं कि उन के भोजन में कितना अधिक व्यय होता है और मुझे इस बात का अभिमान है कि मेरे भोजन में कितना कम खर्च होता है।" शुद्ध-जल को वे सर्वोत्तम पेय के रूप में स्वीकारते थे और सिगरेट तो उन्होंने कभी नहीं पी, हां बचपन में भूल से कमल के डंठल सुलगा कर अवश्य पिये थे।

आज के व्यस्त युग में जहां मनुष्य बाह्य प्रदर्शनों और खोखली व्यस्तता में पड़ कर अपने आप को भूल गया है, थोरो-जैसे मस्तमौला मनीषी का सन्देश और आचरण अपने आप में एक गंभीर अर्थ से ओतप्रोत है।

"वह कौन-सा घोल है जो रुपये को पिघला सकता है?" रसायन-शास्त्र के शिक्षक ने पूछा।

"जी, शादी!" एक विद्यार्थी ने उत्तर दिया।

घण्टे हैं जो मैं ने मेंढकों से आत्मीयतापूर्ण बातें करने में बिताये। जब मैं वाल्डेन झील के तट पर धूप सेंकता हूं तब उस की उष्णता और प्रवाह की कलकल ध्वनि मुझे पिछले बंधनों से मुक्त कर देती है। रुपये-पैसे का नहीं, पर उज्ज्वल धूप और गरमी के सुहावने दिनों का मैं खूब धनी था।''

उन की दिनचर्या के कुछ अमर संस्मरण इस प्रकार हैं—''ग्रीष्म ऋतु की यह बड़ी सुहावनी शाम है जब कि शरीर रोम-रोम से आनंद ग्रहण करता है। प्रकृति के संग अनोखी स्वच्छंदता के साथ विचरण करता हुआ मैं उस का अभिन्न अंग बन गया हूं . . . मैं पशुओं को, साधारण अर्थ में बर्बर नहीं मानता। मैं उन के प्रति एक रागात्मक आत्मीयता का अनुभव करता हूं क्योंकि मैं ने उन्हें कभी कोई बकवास करते नहीं सुना . . . यदि ये खेत, ये नदियां, ये जंगल और इन के निवासियों के सीधे-सादे रहन-सहन में मेरी दिलचस्पी खत्म हो जाये तो बड़ी से बड़ी संस्कृति और दौलत भी मेरा नुकसान पूरा नहीं कर सकती . . . समाज में चीड़ की सुगंध के समान कोई सुगंध नहीं है, कोई सुरभि इतनी तीव्र और स्वास्थ्यवर्धक नहीं है जैसी चरागाहों और खेतों के जीवन में . . . मैं ने दो वर्ष मुख्यतः फूलों के साथ बिताये हैं, उन का खिलना देखने से अधिक अनिवार्य काम मेरे लिए और कोई नहीं था . . . यदि तुम्हारे मन में विषाद है तो कीचड़ में उगते दुर्गन्धयुक्त पौधों को जा कर देखो जो वीरता से नये वर्ष का सामना कर रहे हैं। क्या अपनी दुर्गन्ध से हताश हो कर वे मरने के लिए तैयार हो गये हैं . . . जंगल हमारे लिए शक्तिवर्धक औषधि के समान है। हमें आवश्यकता है उन दलदलों में धंस कर उस पार तक जाने की जहां छोटी बतखें और मुर्गियां फिरती हैं, जहां चक्रवाक की आवाज और घास की खुशबू मिलती है, जहां कोई जंगली या भटकी हुई अकेली चिड़िया ही अपना घोंसला बनाती है और जहां ऊदबिलाव पेट के बल रेंगते दिखायी देते हैं . . .

''पांच साल से तुम्हारे ऊपर बुरे ग्रह हैं . . .''
''पर मेरी शादी हुए तो पचीस साल हो गये . . .''

● होतीलाल भारद्वाज

लाख मना करने पर भी हरी के पिता ने उस की शादी एक स्थानीय वकील की लड़की से तय कर दी। दिल्ली अथवा कलकत्ता-जैसा कोई बड़ा शहर होता तो कोई बात भी थी, लेकिन किशनपुर छोटा-सा कस्बा ही ठहरा। उसे सब से बड़ा दुःख यह था कि शादी के पश्चात वह प्रेम-पत्र कैसे लिख सकेगा! वकील साहब का घर ही कितनी दूर है! किसी ने देख लिया तो क्या कहेगा? उस ने अपने मित्रों की पत्नियों के लंबे-लंबे पत्र पढ़-सुन रखे थे। कहानियों और उपन्यासों में कितने ही प्रेम-पत्र पढ़ लिये थे और कई फिल्मों में भी प्रेम संबंधी पत्र-व्यवहार का आनंद देखा था। इन सब से प्रेरित हो कर उस ने कल्पना में ही अपनी कल्पित पत्नी को कितने ही पत्र लिखे थे और उस के पास उन के उत्तर भी आ चुके थे। लेकिन अब इन सारी कल्पनाओं को धूसरित होती देख कर उसे अत्यंत दुःख हुआ। अब वह शारदा को किस प्रकार पत्र लिखेगा? किस प्रकार वह उत्तर देगी? दोनों को विरह कैसे सतायेगा और उसे प्रेम-पत्रों में वह कैसे प्रकट करेगा? इन बातों को सोच कर उस ने इस शादी का विरोध किया, लेकिन विधि का विधान कि उस के सारे अरमान मिट्टी में मिल गये! पिता के सामने उसे झुकना पड़ा और उस की शादी शारदा से हो गयी।

घर में चार ही प्राणी थे—हरी, शारदा, हरी की मां और उस के पिता। हरी के पिता अकसर दौरे पर रहते थे। उस दिन उस की मां भी किसी काम से बाहर चली गयी। शारदा भीतर कमरे में कुछ काम कर रही थी। हरी ने अपने कमरे से उसे आवाज दी, "शारदे!"

"जी," दूसरे कमरे से तुरन्त

कसम, तुम्हारे विना एक पल भी एक युग के वरावर लगता है। यह कमरे की दीवार करोड़ों मील लंबी हो जाती है। फिर वताओ तुम्हारे पास कैसे आऊं? तुम कितनी सुन्दर हो, शारदे! भगवान कसम तुम कलेजे में विठा लेने के काविल हो। तुम्हारी चंचलता, झूमती चाल, हिरनी-जैसी आंखें, चांद-सा गोरा चेहरा—उफ, कितने याद आते हैं ये सव! वस, क्या कहूं भई, अपने हिस्से में तो ठंडी आहें ही पड़ी हैं, सो भरे जा रहा हूं। कितना तड़पाओगी इस जिन्दगी में?

वातें तो वहुत थीं, पर शेष तुम्हारा उत्तर आने पर,

तुम्हारी याद में . . .
और किस का?
हरी

पत्र पढ़ कर शारदा को गुस्सा भी आया और हंसी भी। एक ही घर में जव तड़प का यह हाल है तो दूर होने पर न जाने क्या हाल होता? वह पत्र ले कर हरी के पास गयी, पर हरी ने अपने कमरे के किवाड़ वंद कर लिये थे। खटखटाने पर हरी ने कह दिया, "उत्तर लिख कर दराज में से फेंक दो।"

"पर, उत्तर देना जरूरी ही है क्या?" शारदा ने वाहर से पूछा।

"विलकुल, जरा जल्दी करो न।"

"पर, मुझे ऐसा कुछ भी नहीं लगता, फिर क्या लिखूं?"

"तुम भी खूव हो! ऐसी वातें महसूस होने के लिए नहीं, लिखने के लिए ही होती हैं। जाओ, जाओ, उत्तर लिख कर भेज दो," हरी ने अंदर से ही कहा।

लगभग पांच मिनट वाद ही शारदा का यह पत्र हरी के हाथ में था—

मजनूजी,

पत्र पढ़ कर तुम्हारी तनहाइयों का पता चला। वाकई तुम्हारा दर्द दया के काविल है। मुझे तुम से दिली हमदर्दी है। पर, सच मानो मुझे विरह विलकुल नहीं सताता। यह मुहव्वत का इंद्रजाल ही तो है। जव तुम्हारी तड़पन वढ़े तभी मुझे आवाज दे लेना। मैं स्वयं तुम्हारी सेवा में हाजिर हो जाऊंगी, क्योंकि तुम से तो दीवार की दूरी पार नहीं होगी। याद रहे मेरे पास इन ऊल-जलूल वातों के लिए समय नहीं है। आशा है भविष्य में पत्र नहीं लिखोगे।

तुम्हारी ही (पर लैला नहीं)
शारदा

मध्य युग में आस्ट्रिया के राजघराने में परंपरागत विश्वास चला आ रहा था कि उस राजवंश के संस्थापक की अंगूठी जो भी पहने रहेगा, उसे कभी भी चोट या घाव नहीं लगेंगे। इस वंश के एक शासक ने अपने प्रधान पुरोहित से एक दिन पूछा, "यदि मैं इसे पहने हुए तीसरी मंजिल से कूद जाऊं तो?"

"अंगूठी को कोई क्षति नहीं होगी," उस ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

आवाज आयी।

"जरा यहां आओ।"

"कहिये," कहते हुए शारदा कमरे में आयी। हरी ने मुसकान-भरी दृष्टि से शारदा की तरफ देखा और आंगन की ओर इशारा करते हुए कहा, "सामने जो लिफाफा पड़ा है उसे उठाओ और कमरे में ले जा कर पढ़ो। फिर उस का उत्तर लिख कर वहीं फेंक जाना।"

शारदा हतप्रभ-सी खड़ी रह गयी। वह इस सब का मतलब नहीं समझ सकी। उस ने विस्मयपूर्वक पूछा, "यह क्या है ?"

"क्या-क्या कुछ नहीं। जो मैं ने कहा है वह करो। अरे, जाओ तो सही . . . तुम समझीं नहीं, पर मैं अभी तुम्हें कुछ नहीं बताऊंगा। सच मानो तुम बहुत खुश होगी पढ़ कर, जाओ, जाओ !" और हरी ने शारदा को हलका-सा धक्का दे कर बाहर भेज दिया।

शारदा की समझ में कुछ भी नहीं आया। उस के हृदय में अनेक विचार आ रहे थे, पर पति की आज्ञा मान कर उसे जाना ही पड़ा। लिफाफा उठा कर वह अपने कमरे में चली गयी और उसे खोल कर पढ़ने लगी। लिफाफे में एक पत्र था, जिस में लिखा था—

प्राणाधार शारदे,

मेरा पत्र पा कर तुम्हें विस्मय तो होगा, लेकिन क्या करूं ? तुम्हें तो यह भी नहीं गवारा होता कि दो लाइन तो लिख कर भेज दो। ठीक है जी, अपनी कौन परवाह करता है ! एक हम हैं कि न दिन चैन, न रात चैन। जब से तुम्हें देखा है, तुम्हारी

निशा-गीत

फिर रात झुकी
किरन डूबी, दृष्टि रुकी

दृष्टि रुकी, मन जागा
पी अंधियारा भागा
दशों दिशाओं में
आनन्द दुखी
तारे उगे लाखों
देखा अपनी आंखों
ऊपर-नीचे
सब जीत चुकी

दो पल का इन्द्र, नहुष
उल्लू, चुल्लू में खुश
धुत्कार में बदल ली
छाती की धुकधुकी

भीतर का उजियाला
जैसे आत्मा का छाला
आशा की बात
बिलकुल बेतुकी

—भवानीप्रसाद मिश्र—

कसम, तुम्हारे बिना एक पल भी एक युग के बराबर लगता है। यह कमरे की दीवार करोड़ों मील लंबी हो जाती है। फिर बताओ तुम्हारे पास कैसे आऊं? तुम कितनी सुन्दर हो, शारदे! भगवान कसम तुम कलेजे में बिठा लेने के काबिल हो। तुम्हारी चंचलता, झूमती चाल, हिरनी-जैसी आंखें, चांद-सा गोरा चेहरा—उफ, कितने याद आते हैं ये सब! बस, क्या कहूं भई, अपने हिस्से में तो ठंडी आहें ही पड़ी हैं, सो भरे जा रहा हूं। कितना तड़पाओगी इस जिन्दगी में?

बातें तो बहुत थीं, पर शेष तुम्हारा उत्तर आने पर,

तुम्हारी याद में . . .
और किस का?
हरी

पत्र पढ़ कर शारदा को गुस्सा भी आया और हंसी भी। एक ही घर में जब तड़प का यह हाल है तो दूर होने पर न जाने क्या हाल होता? वह पत्र ले कर हरी के पास गयी, पर हरी ने अपने कमरे के किवाड़ बंद कर लिये थे। खटखटाने पर हरी ने कह दिया, "उत्तर लिख कर दराज में से फेंक दो।"

"पर, उत्तर देना जरूरी ही है क्या?" शारदा ने बाहर से पूछा।

"बिलकुल, जरा जल्दी करो न।"

"पर, मुझे ऐसा कुछ भी नहीं लगता, फिर क्या लिखूं?"

"तुम भी खूब हो! ऐसी बातें महसूस होने के लिए नहीं, लिखने के लिए ही होती हैं। जाओ, जाओ, उत्तर लिख कर भेज दो," हरी ने अंदर से ही कहा।

लगभग पांच मिनट बाद ही शारदा का यह पत्र हरी के हाथ में था—

मजनूजी,

पत्र पढ़ कर तुम्हारी तनहाइयों का पता चला। वाकई तुम्हारा दर्द दया के काबिल है। मुझे तुम से दिली हमदर्दी है। पर, सच मानो मुझे विरह बिलकुल नहीं सताता। यह मुहब्बत का इंद्रजाल ही तो है। जब तुम्हारी तड़पन बढ़े तभी मुझे आवाज दे लेना। मैं स्वयं तुम्हारी सेवा में हाजिर हो जाऊंगी, क्योंकि तुम से तो दीवार की दूरी पार नहीं होगी। याद रहे मेरे पास इन ऊल-जलूल बातों के लिए समय नहीं है। आशा है भविष्य में पत्र नहीं लिखोगे।

तुम्हारी ही (पर लैला नहीं)
शारदा

मध्य युग में आस्ट्रिया के राजघराने में परंपरागत विश्वास चला आ रहा था कि उस राजवंश के संस्थापक की अंगूठी जो भी पहने रहेगा, उसे कभी भी चोट या घाव नहीं लगेंगे। इस वंश के एक शासक ने अपने प्रधान पुरोहित से एक दिन पूछा, "यदि मैं इसे पहने हुए तीसरी मंजिल से कूद जाऊं तो?"

"अंगूठी को कोई क्षति नहीं होगी," उस ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

● कुन्तल गोयल

मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि दिल खोल कर हंसना लाभप्रद है तो रोगों के निवारण के लिए रुदन भी एक सहज उपचार है। मनुष्य ही ऐसा संवेदनशील प्राणी है जो मानसिक आघातों से त्रस्त हो कर आंसू बहा सकता है। एक अमरीकी वैज्ञानिक की पुस्तक से प्रेरणा ले कर पश्चिमी जरमनी के एक वैज्ञानिक ने मनुष्य के आंसुओं का गहन अध्ययन किया है। इन वैज्ञानिकों ने अपने अन्वेषणों से आंसुओं के भावात्मक पक्षों को प्रकाशित किया है।

आंसू अश्रु-ग्रंथि से निकलने वाला हलका तथा क्षार-गुणयुक्त एक तरल पदार्थ है। इस घोल में चीनी, प्रोटीन तथा कीटाणुनाशक तत्वों का भी समावेश होता है, जिस में अनेक रोगों का मुकाबला करने की शक्ति निहित है।

स्त्रियों के आंसू पुरुषों से भिन्न होते हैं। प्रसन्नता के आवेश से उत्पन्न आंसू दुःख अथवा विपत्ति में छलकने वाले आंसुओं से भिन्न होते हैं। दुःख से बहुत अधिक मात्रा में निसृत आंसू स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। रोगी के आंसुओं में मनुष्य की जीवन-शक्ति के अनुरूप परिवर्तन आ जाता है। डाक्टर तथा वैज्ञानिक इस तथ्य की खोज-बीन कर रहे हैं कि क्या आंसुओं के रासायनिक परीक्षण से रोगों का निदान सम्भव है? स्टटगार्ट के एक मनोवैज्ञानिक ने अनेक परीक्षणों से इस तथ्य की पुष्टि की है कि अश्रु-विश्लेषण द्वारा कई रोगों का इलाज किया जा सकता है।

आंसू दुःख, चिन्ता, क्लेश तथा मानसिक आघातों से मुक्ति दिलाने तथा मन हलका कर आकस्मिक मनोव्यथाओं

कसम, तुम्हारे विना एक पल भी एक युग के बराबर लगता है। यह कमरे की दीवार करोड़ों मील लंबी हो जाती है। फिर बताओ तुम्हारे पास कैसे आऊं? तुम कितनी सुन्दर हो, शारदे! भगवान कसम तुम कलेजे में बिठा लेने के काबिल हो। तुम्हारी चंचलता, झूमती चाल, हिरनी-जैसी आंखें, चांद-सा गोरा चेहरा—उफ, कितने याद आते हैं ये सब! बस, क्या कहूं भई, अपने हिस्से में तो ठंडी आहें ही पड़ी हैं, सो भरे जा रहा हूं। कितना तड़पाओगी इस जिन्दगी में?

बातें तो बहुत थीं, पर शेष तुम्हारा उत्तर आने पर,

तुम्हारी याद में . . .
और किस का?
हरी

पत्र पढ़ कर शारदा को गुस्सा भी आया और हंसी भी। एक ही घर में जब तड़प का यह हाल है तो दूर होने पर न जाने क्या हाल होता? वह पत्र ले कर हरी के पास गयी, पर हरी ने अपने कमरे के किवाड़ बंद कर लिये थे। खटखटाने पर हरी ने कह दिया, "उत्तर लिख कर दराज में से फेंक दो।"

"पर, उत्तर देना जरूरी ही है क्या?" शारदा ने बाहर से पूछा।

"बिलकुल, जरा जल्दी करो न।"

"पर, मुझे ऐसा कुछ भी नहीं लगता, फिर क्या लिखूं?"

"तुम भी खूब हो! ऐसी बातें महसूस होने के लिए नहीं, लिखने के लिए ही होती हैं। जाओ, जाओ, उत्तर लिख कर भेज दो," हरी ने अंदर से ही कहा।

लगभग पांच मिनट बाद ही शारदा का यह पत्र हरी के हाथ में था—

मजनूजी,

पत्र पढ़ कर तुम्हारी तनहाइयों का पता चला। वाकई तुम्हारा दर्द दया के काबिल है। मुझे तुम से दिली हमदर्दी है। पर, सच मानो मुझे विरह बिलकुल नहीं सताता। यह मुहब्बत का इंद्रजाल ही तो है। जब तुम्हारी तड़पन बढ़े तभी मुझे आवाज दे लेना। मैं स्वयं तुम्हारी सेवा में हाजिर हो जाऊंगी, क्योंकि तुम से तो दीवार की दूरी पार नहीं होगी। याद रहे मेरे पास इन ऊल-जलूल बातों के लिए समय नहीं है। आशा है भविष्य में पत्र नहीं लिखोगे।

तुम्हारी ही (पर लैला नहीं)
शारदा

मध्य युग में आस्ट्रिया के राजघराने में परंपरागत विश्वास चला आ रहा था कि उस राजवंश के संस्थापक की अंगूठी जो भी पहने रहेगा, उसे कभी भी चोट या घाव नहीं लगेंगे। इस वंश के एक शासक ने अपने प्रधान पुरोहित से एक दिन पूछा, "यदि मैं इसे पहने हुए तीसरी मंजिल से कूद जाऊं तो?"

"अंगूठी को कोई क्षति नहीं होगी," उस ने शांत स्वर में उत्तर दिया।

● कुन्तल गोयल

मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि दिल खोल कर हंसना लाभप्रद है तो रोगों के निवारण के लिए रुदन भी एक सहज उपचार है। मनुष्य ही ऐसा संवेदनशील प्राणी है जो मानसिक आघातों से त्रस्त हो कर आंसू बहा सकता है। एक अमरीकी वैज्ञानिक की पुस्तक से प्रेरणा ले कर पश्चिमी जरमनी के एक वैज्ञानिक ने मनुष्य के आंसुओं का गहन अध्ययन किया है। इन वैज्ञानिकों ने अपने अन्वेषणों से आंसुओं के भावात्मक पक्षों को प्रकाशित किया है।

आंसू अश्रु-ग्रंथि से निकलने वाला हलका तथा क्षार-गुणयुक्त एक तरल पदार्थ है। इस घोल में चीनी, प्रोटीन तथा कीटाणुनाशक तत्वों का भी समावेश होता है, जिस में अनेक रोगों का मुकाबला करने की शक्ति निहित है। स्त्रियों के आंसू पुरुषों से भिन्न होते हैं। प्रसन्नता के आवेश से उत्पन्न आंसू दुख अथवा विपत्ति में छलकने वाले आंसुओं से भिन्न होते हैं। दुख से बहुत अधिक मात्रा में निसृत आंसू स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। रोगी के आंसुओं में मनुष्य की जीवन-शक्ति के अनुरूप परिवर्तन आ जाता है। डाक्टर तथा वैज्ञानिक इस तथ्य की खोज-बीन कर रहे हैं कि क्या आंसुओं के रासायनिक परीक्षण से रोगों का निदान सम्भव है? स्टटगार्ट के एक मनोवैज्ञानिक ने अनेक परीक्षणों से इस तथ्य की पुष्टि की है कि अश्रु-विश्लेषण द्वारा कई रोगों का इलाज किया जा सकता है।

आंसू दुख, चिन्ता, क्लेश तथा मानसिक आघातों से मुक्ति दिलाने तथा मन हलका कर आकस्मिक मनोव्यथाओं

शाही ठाठबाट की रीत...

अरविंद

ये बढ़िया कपड़े सजधज में अनोखे हैं

*Licensed User

● कुन्तल गोयल

मनोविज्ञान की दृष्टि से यदि दिल खोल कर हंसना लाभप्रद है तो रोगों के निवारण के लिए रुदन भी एक सहज उपचार है। मनुष्य ही ऐसा संवेदनशील प्राणी है जो मानसिक आघातों से त्रस्त हो कर आंसू बहा सकता है। एक अमरीकी वैज्ञानिक की पुस्तक से प्रेरणा ले कर पश्चिमी जरमनी के एक वैज्ञानिक ने मनुष्य के आंसुओं का गहन अध्ययन किया है। इन वैज्ञानिकों ने अपने अन्वेषणों से आंसुओं के भावात्मक पक्षों को प्रकाशित किया है।

आंसू अश्रु-ग्रंथि से निकलने वाला हलका तथा क्षार-गुणयुक्त एक तरल पदार्थ है। इस घोल में चीनी, प्रोटीन तथा कीटाणुनाशक तत्वों का भी समावेश होता है, जिस में अनेक रोगों का मुकाबला करने की शक्ति निहित है।

स्त्रियों के आंसू पुरुषों से भिन्न होते हैं। प्रसन्नता के आवेश से उत्पन्न आंसू दुख अथवा विपत्ति में छलकने वाले आंसुओं से भिन्न होते हैं। दुख से बहुत अधिक मात्रा में निसृत आंसू स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। रोगी के आंसुओं में मनुष्य की जीवन-शक्ति के अनुरूप परिवर्तन आ जाता है। डाक्टर तथा वैज्ञानिक इस तथ्य की खोज-बीन कर रहे हैं कि क्या आंसुओं के रासायनिक परीक्षण से रोगों का निदान सम्भव है? स्टटगार्ट के एक मनोवैज्ञानिक ने अनेक परीक्षणों से इस तथ्य की पुष्टि की है कि अश्रु-विश्लेषण द्वारा कई रोगों का इलाज किया जा सकता है।

आंसू दुख, चिन्ता, क्लेश तथा मानसिक आघातों से मुक्ति दिलाने तथा मन हलका कर आकस्मिक मनोव्यथाओं

रोग चिकित्सक विलियम व्रियां ने मत व्यक्त किया है कि अमरीका में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की लंबी आयु का रहस्य यह है कि वे ऐसी फिल्में देखने की शौकीन हैं जिन में बार-बार रोना आता है। इस तरह रोने से भावनाओं को बड़ी राहत मिलती है, रोनेवाले का दिल हलका हो जाता है। डा० व्रियां का यह मत भी ध्यान देने योग्य है कि यदि पुरुष भी जोर-जोर से रो लिया करें तो उन्हें व्रण तथा हृदय-रोग कम हुआ करें। मध्यप्रदेश की बनजारा जाति में तो लड़कियों को रोने की शिक्षा भी दी जाती है। जो लड़की रोने में कुशल नहीं होती, उस से कोई भी युवक विवाह करने के लिए तैयार नहीं होता।

अंत में यह भी क्यों भूलें कि हंस कर यदि मनुष्य दूसरों के सुख में वृद्धि करता है तो रो कर वह दूसरों के दुख बांट लेता है। आंसू की सब से बड़ी विशेषता उस का कल्याणकारी रूप है। वह मनुष्य को अकर्मण्य नहीं बनाता। वेदना से निसृत आंसुओं की तरलता अंतर्ज्वाला को शान्त कर जीवन को प्रकाश देती है। इसीलिए महाकवि प्रसाद ने 'आंसू' में विश्व-बंधुत्व के दर्शन किये हैं और यही आंसू कवि के जीवन की मूल प्रेरणा है—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छायी
दुर्दिन में आंसू बन कर
वह आज बरसने आयी

* * *

सब का निचोड़ ले कर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकण-सा
आंसू इस विश्व सदन में

रामभरोसेजी के पास एक घबराया हुआ युवक पहुंचा और बोला, "क . . . क . . . क्या . . . अ . . . आ . . . आप . . . म . . . मु . . . मुझे . . ."

"हां, हां! क्यों नहीं बेटे! पर क्या वह राजी हो गयी है?" रामभरोसेजी ने मुसकान फेंकते हुए कहा। पहले तो युवक हक्का-बक्का रह गया, फिर उस ने पूछा, "मैं समझा नहीं! कौन राजी हो गयी है?"

"मेरी बेटी भाई! तुम उस से विवाह करना चाहते हो, है न?" रामभरोसेजी ने उसे बढ़ावा देने की नीयत से कहा।

"जी नहीं," युवक ने उत्तर दिया, "मैं तो केवल यह जानना चाहता था कि क्या आप मुझे पांच रुपये उधार दे सकते हैं?"

"हरगिज नहीं," रामभरोसेजी ने तेजी से कहा, "मैं तो तुम्हें जानता तक नहीं।"

को सहने में सहायता पहुंचाते हैं। उस स्थिति की कल्पना ही कितनी दारुण है कि जब व्यक्ति प्रसन्नता में हंस न सके और दुख में रो न सके! ऐसे अनेकानेक व्यक्तियों की मनःस्थितियों का परीक्षण किया गया है जो मानसिक आघातों को चुप-चुप सहने के कारण पागल हो गये हैं। रो लेने से दुखी मन को कितनी राहत मिलती है, इसे भुक्त-भोगी ही जान सकता है। हाल ही में पश्चिमी जर-मनी के डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि आंसुओं का किसी भी रोगी के शीघ्र स्वस्थ होने पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। यह आवश्यक नहीं है कि चिल्ला कर ही रोया जाये। परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि आंसुओं के साथ शरीर का विष भी बाहर निकल जाता है।

रोना मनुष्य के लिए कितना अनि-वार्य है, इस संबंध में चिकित्सकों के अनेक मत हैं। जब कभी आप रोना चाहते हैं, किन्तु परिस्थितिवश आंखों में आये आंसुओं को रोकते हैं, तो अनेक बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे पुराना जुकाम, नजला, नेत्र-रोग, सिर और हृदय में पीड़ा, गरदन अकड़ जाना, चक्कर आना आदि। कई बार बच्चों के जोर-जोर से रोने पर बड़े उन्हें चुप कराने के लिए धमकाते हैं और बच्चे भय से एकाएक रोना बंद कर देते हैं। इस से उन के स्वा-स्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। रोने की क्रिया के कारण वायु की वृद्धि हो जाती है और अकस्मात उस के बंद हो जाने से वही वायु शरीर के किसी स्थान पर जा कर रुक जाती है। फल-स्वरूप पेट के दर्द तथा अन्य रोगों के उत्पन्न होने की आशंका हो जाती है।

अमरीकी चिकित्सक जेम्स बाड ने कई वर्षों के अनुसंधान से निष्कर्ष निकाला है कि यदि पुरुष कभी-कभी रो लिया करें तो उन के स्वास्थ्य में सुधार हो सकता है। यह एक प्राकृ-तिक उपलब्धि है, जिस की उपेक्षा से मनुष्य मानसिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता और वह मन को दुखी बना कर जीवन के संपूर्ण सुखों को नीरस बना लेता है। इसीलिए तो कहा जाता है कि मन का निरोग होना सुखी होने की पहली शर्त है और यह तभी संभव है, जब मन चिन्ता एवं निराशा से दूर हो। मन ही मन निराशा, चिन्ता तथा अपनी मनोव्यथा में घुटते रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिप्रद है। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक रोती हैं। संभ-वतः इसीलिए कई ऐसी व्याधियों से वे मुक्त रहती हैं जिन्हें पुरुषों को भुगतना पड़ता है। पुरुषों पर मर्यादा का यह मिथ्या अंकुश है कि उन्हें रोना नहीं चाहिये या उन के लिए रोना अशोभनीय है। मनोवैज्ञानिक चिकि-त्सकों का मत है कि वर्तमान जीवन-पद्धति में जो कुण्ठाएं और तनाव की स्थिति हैं उसे बहुत हद तक आंसुओं के द्वारा दूर किया जा सकता है। स्टटगार्ट के डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों का यह भी कथन है कि रोने से मनुष्य शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है। इसीलिए छोटे बच्चों को कभी-कभी रोने देना भी श्रेयस्कर है।

न्यूयार्क के विश्वविख्यात मानसिक

मैं एम.ए. कर चुका था। एक दिन मां ने एकांत में मुझे अपने पास बुलाया और बोलीं, "मदन, अब तुम बड़े हो गये हो और तुम्हें शादी कर लेनी चाहिये। यही शादी करने की उम्र है। मैं भी बहुत उत्सुक हूं, अपनी बहू का चांद-सा मुखड़ा देखने को। तुम पंडित बंशीलाल को जानते हो जो बांदरा में रहते हैं? उन्हीं की एक भतीजी है। रहती तो वह दिल्ली में है, परंतु तुम्हारी सुविधा के लिए वे लोग उसे यहीं बुलवा लेंगे। तुम लड़की देख कर पसंद कर लोगे, तभी संबंध पक्का किया जायेगा। वे लोग तो शादी भी बंबई में ही करने को तैयार हैं।" और मैं ने अपनी स्वीकृति दे दी।

जिस दिन लड़की देखने जाना था, मैं बहुत घबराया। लड़कियों से शरमाना मेरी पुरानी कमजोरी थी। वैसे, मैं ने अपने मस्तिष्क में उन खूबियों की एक लंबी सूची तैयार कर ली थी, जो मैं अपनी होने वाली पत्नी में चाहता था।

मुझे एक सजे-सजाये कमरे में बैठा दिया गया। कुछ ही देर बाद पंडित बंशीलाल कमरे में तशरीफ लाये। उन के पीछे एक सुन्दर लड़की थी, शरमीली और भोली-सी। उस का रंग तो ऐसा चमक रहा था जैसे सुनहरी धूप में बिछे आस्ट्रेलियन गेहूं के चमकीले दाने। "यह है मेरी भतीजी मीना," पंडित बंशीलाल ने परिचय कराया।

मैं जैसे ही नमस्ते करने के लिए खड़ा हुआ, सारे बदन का खून दौड़ कर मेरे चेहरे पर जमा हो गया। पूरे २० मिनट मैं वहां रहा, परंतु उस पहली नमस्ते के बाद और कुछ भी मेरे मुंह से न निकल सका।

वह लड़की मेरी कल्पना से कहीं अधिक सुन्दर थी। आने वाले दिनों को सपनों में पिरोते हुए मैं घर पहुंचा। जाते ही माता-पिता को हरी झंडी दिखा दी। कुछ ही दिनों में हमारे विवाह की तारीख पक्की हो गयी।

मेरी ससुरालवाले बहुत ही पुराने विचारों के हैं। शादी के दिन तक उन्होंने मीना को छिपा कर रखा। हम में से कोई उसे एक पल को भी न देख सका। जब भी किसी ने कोशिश की, "हमारे घर का यही रिवाज है," कह कर उन्होंने टाल दिया। विवाह के समय, रेशमी कपड़ों में बंधी हुई एक गठरी मेरे साथ रख दी गयी और पंडितजी ने मंत्रों का उच्चारण शुरू कर दिया। अग्नि-कुण्ड की परिक्रमा लेने के लिए जैसे ही मैं चलने लगा, वह गठरी भी मेरे साथ-साथ खिसकने लगी अथवा खिसकायी जाने लगी। पंडितजी के आदेशानुसार बहुत-सी तहों के बीच छिपे उस के हाथ को टटोल कर मुझे पकड़ना पड़ा। उस समय मुझे उस का हाथ बहुत ही मुलायम और गरम प्रतीत हुआ। फेरों के तुरंत बाद पहले की तरह ही उसे छिपा दिया गया। उसी शाम विदा करा कर हम घर पहुंच गये, परंतु मैं देखने में असफल ही रहा। इस बार मेरे घरवालों ने ही मुझे रोका, "इतने बेसब्र मत बनो! तुम्हारे लिए पूरा जीवन पड़ा है, कुछ घंटे और धीरज रखो, फिर चाहो तो उसे खा भी जाना।" सब ने मेरी बेसब्री का खूब मजाक उड़ाया।

आधी रात के करीब मुझे कमरे में धकेल दिया गया। उस का चेहरा देखते

एम० एस० अहलूवालिया

आज वे लोग टीनी को देखने आ रहे हैं। उन का कहना है कि लड़का स्वयं लड़की देखना चाहता है। हमारी टीनी ने शहजादियों-जैसा रूप पाया है। उस में सभी तो गुण मौजूद हैं—खूबसूरत, संगमरमर-सा गोरा रंग और ग्रेजुएट भी है। उन का लड़का भी बहुत अच्छा है। टीनी के लिए बिलकुल ऐसे ही वर की हमें खोज थी।

मुझे वह दिन याद आ रहा है, जब मैं अपनी होने वाली पत्नी को देखने गया था। और वह दिन भी, जब मेरी नन्ही बहिन टीनी ने मेरी शादी को बरबादी में बदलने से बचाया था।

जरूरत नहीं है। जिंदगी की खुशियों को नये दृष्टिकोण से नापते हुए मैं अपनी पत्नी के पास पहुंचा और उस से माफी मांगी। "कल रात मैं ने जो कुछ किया या कहा, उस के लिए मुझे माफ कर दो। उन सब बातों को भूल जाओ। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारा आने वाला जीवन सुखमय होगा।"

और आज मैं अपने आप को पृथ्वी का सब से सुखी मनुष्य मानता हूं। मेरी पत्नी मुझे चाहती है, मुझे आदर की दृष्टि से देखती है। हमारे बच्चे हमारे प्रेम के साक्षी हैं।

टीनी को देखने लड़का अपने चाचा के साथ आया। मैं ने उसे बहुत पसंद किया। वह खूब लंबा-चौड़ा, गोरा-चिट्टा था। पी-एच. डी. और एक सफल प्रोफेसर होते हुए भी वह मुझे बहुत सीधा लगा। उस ने स्वच्छ दूधिया कुरता और पायजामा पहन रखा था और बात भी ठेठ हिंदुस्तानी में करता था।

उन को छोड़ आने के बाद मैं ने टीनी को बुलाया और पूछा, "बताइये मिस साहिबा, किस दिन आप शादी के धागे में बंधना चाहती हैं ?"

"छि:, क्या बच्चों-जैसी बातें कहते हो ? मैं शादी करूंगी, उस से ? तुम ने उस के कपड़ों को देखा ? और वह अंगरेजी भी नहीं बोल सकता। अगर मैं उस बुद्धू से शादी करूं, जो सिर से पांव तक पूरा गंवार हिंदुस्तानी लगता है, तो मेरी सहेलियां क्या कहेंगी ? मैं कभी भी उन्हें अपना चेहरा नहीं दिखा सकूंगी।"

ग्राहक : बाहर आप ने बोर्ड में लिखवा रखा है कि आज आप के यहां कद्दू और अंगूरों की कोई स्पेशल सब्जी बनी है।

मैनेजर : जी हां !

ग्राहक : विचित्र बात है ! मैं ने आज तक नहीं सुना कि कद्दू और अंगूर मिला कर सब्जी बनायी जाती हो। खैर, सब्जी में अंगूर कितने मिलाये गये हैं ?

मैनेजर : ५०-५० प्रतिशत। आठ कद्दू और आठ अंगूर।

* * *

गंगा में नाव उलट गयी थी। कुछ लाशें मिल गयी थीं और कुछ का पता नहीं था। एक सज्जन ने अखबार में विज्ञापन दिया : 'नाव-दुर्घटना में मेरा भाई भी शिकार हुआ है। उस की लाश जो भी गंगा से ढूंढ़ लायेगा, उसे ५० रुपये का पुरस्कार दिया जायेगा। उस की पहचान यह है—नीली पैंट, माथे पर घाव का निशान; विशेष : हकलाता है।'

ही मैं बुरी तरह चौंक उठा। यह वह लड़की नहीं थी जिसे मैं ने देखा था। यह उतनी ही काली थी, जितनी मुझे दिखायी गयी लड़की गोरी। मुझे धोखा दिया गया था। "यह सब क्या है ? तुम कौन हो ?" मैं जोर से चीखा।

वह रोने लगी, "कृपया मुझे माफ कर दीजिये। मेरे मां-बाप ने आप के साथ धोखा किया है। मेरे पिता को डर था कि आप मुझे देखते ही इनकार कर देंगे, इसीलिए दूसरी लड़की दिखा कर उन्होंने आप से हां करवा ली।"

मेरा तो दिमाग भिन्ना गया था। "मैं इस शादी को नहीं मानता," कहता हुआ मैं कमरे से बाहर हो गया और सीधा मां के पास दौड़ा। "मां, यह वह लड़की नहीं है जो मुझे दिखायी गयी थी। मैं एक काली औरत को जीवन भर के लिए अपने साथ बांध कर नहीं रख सकता। आप उसे इसी समय वापस भेज दीजिये।"

घर भर में कुहराम मच गया। सब गुस्से से पागल हो रहे थे। कुछ लोगों ने मुझे समझाते हुए कहा कि अब तो विवाह हो ही गया है अतः समझदारी से काम लेना चाहिये, पर मैं कुछ भी मानने को तैयार नहीं था। मैं तो जैसे पागल हो गया था—"मुझे एक काली लड़की के साथ जीवन बिताने के बजाय सारा जीवन अकेले रहना स्वीकार है। मेरे मित्र क्या कहेंगे ? कैसे मैं उन के आगे अपना सिर ऊंचा उठा पाऊंगा ?"

वह भयानक रात मैं ने हर व्यक्ति, हर वस्तु को कोसते हुए काटी। दूसरे दिन सुबह मैं ने गौर किया कि मेरी नन्ही बहिन टीनी कुछ खिची-खिची है, जैसे मुझ से रूठ गयी हो।

"तुम्हें क्या हो गया है ?" उस के पास जा कर मैं ने स्नेह से पूछा।

"आप बहुत खराब आदमी हैं। मैं आप से नहीं बोलूंगी, कभी भी नहीं बोलूंगी।"

"पर मेरी प्यारी गुड़िया, बता तो सही तुझे हुआ क्या है ?"

आप ने मेरी प्यारी भाभी का दिल दुखाया है। वे सारी रात रोती रहीं। अब भी रो रही हैं।"

"देखो टीनी, वह तुम्हारी भाभी नहीं है। क्या तुम उलटे तवे-जैसी भाभी चाहती हो ?"

"रंग के पीछे कौन जाता है। वे तो बहुत ही अच्छी हैं। कल उन्होंने मुझे अपनी गोद में बैठाया, खूब प्यार किया। और भैया, उन की हंसी कितनी मीठी है ! वे मुझे खूब अच्छी लगती हैं।"

"पर मुझे काली-बदसूरत पत्नी नहीं चाहिये।"

"क्यों ? क्या काले लोग बुरे होते हैं ? आप का दोस्त बंटी भी तो काला है। उस का रंग तो भाभी से भी ज्यादा काला है, पर आप उसे कितना चाहते हैं ! भाभी को आप ने अच्छी तरह नहीं देखा। वे तो बहुत ही अच्छी हैं। आप ने उन का दिल दुखाया, इसलिए मुझे आप से चिढ़ हो गयी है। आप मुझे बिलकुल अच्छे नहीं लगते।"

आठ वर्षीया टीनी के शब्द मुझे चुभ गये। उस का कहना ठीक था। बाहरी रंग-रूप ही जीवन की सब से बड़ी

दिन तथा शूद्र का २२ वें दिवस नाम रखने का निर्देश है।

नाम और व्यक्तित्व में कभी-कभी बड़ा अंतर दिखायी देता है। जालिम-सिंह नाम से किसी बड़ी-बड़ी, खड़ी मूंछोंवाले भयंकर व्यक्तित्व का आभास होता है। किन्तु संभव है कि प्रत्यक्ष-दर्शन में वह कल्पित क्रूर मुख सौम्य बन जाये—बिलकुल कोमलराम। इसी विषमता पर अनेक कहावतें चल पड़ी हैं—'आंख के अंधे और नाम नैनसुख', 'नाम धन्नासेठ, पास में कौड़ी नहीं', 'नाम शेरसिंह और चूहों से डरें', 'सींक-जैसी देह और नाम गजराज', आदि। कभी-कभी नाम का अपूर्ण उच्चारण भी भ्रामक होता है। उर्मिला-प्रसाद, सीताराम आदि नामों का पूर्वार्द्ध-उच्चारण उन्हें नर से नारी बना देता है। संक्षिप्तता के इस युग में प्रायः आस्पद पूरे नाम को ढक कर अधिक परिचित हो जाते हैं। वर्मा, शुक्ल, पांडे आदि आस्पद इस के उदाहरण हैं।

नाम रखने की हर प्रांत की अपनी रीति है। गुजरात एवं महाराष्ट्र में अपने नाम के साथ पिता का नाम तथा आस्पद भी जोड़ते हैं, यथा महा-देव गोविन्द रानाडे, मोहनदास करम-चंद गांधी आदि। कभी-कभी गांव के नाम में संबंधवाचक चिह्न 'कर' (का) भी लगा देते हैं, महा-देव गोविन्द कानिटकर, दांडेकर, आलतेकर, मभ्रूगांवकर आदि इसी श्रेणी में आते हैं। ये आस्पद गांव से ही नहीं, अन्य पदार्थों से भी संबद्ध रहते हैं। केलेकर, निंबे आदि का संबंध यदि फलों से है, तो पांढरे, काले, गोरे आदि का रंगों से। 'तांबे' धातु से तथा 'गायतोंडे' और 'वाघमारे' पशुओं से संबंधित हैं। पारसियों में व्यक्तिगत नाम के साथ पिता-पितामह तथा ग्राम का नाम होता है, यथा आई. जे. एस. तारा-पोरवाला। मद्रासी नामों में स्थान के नाम का उल्लेख सर्वप्रथम होता है। तांजोर माधोराव, सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि इस के उदाहरण हैं। पार-सियों में नाम के साथ वर्तमान या पुरा-तन पेशे का भी कथन रहता है, यथा दारूवाला। मुसलमानों में खुदाबख्श, ईदू, ईदा, बकरीदन-जैसे पर्व-संबद्ध नाम भी मिलते हैं।

पहाड़ी क्षेत्रों में नाम के साथ दत्त या आनंद भी अंत में जोड़ा जाता है। उत्तर प्रदेश में संप्रदाय-भेद से नाम में देवी-देवताओं का तथा कभी-कभी इष्टदेव, तीर्थ, नदी आदि का भी समावेश रहता है, जैसे रामस्वरूप, गंगादास, प्रयागदास आदि। धार्मिक नामों में रामकृष्ण, कृष्णशंकर, गनेशी-राम आदि नाम उदारता के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण नर-नारी दोनों को ग्रहण करता हुआ भी भगवान के अर्द्धनारी-श्वर रूप का स्मरण कराता है, पर रमाशंकर या लक्ष्मीशंकर की जोड़ी मिलानेवालों को क्या कहें? आज के युग में तो अभिनेता-अभिनेत्रियों के नाम ही देव-देवियों का प्रेरक स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं।

सप्ताह के दिनों के आधार पर सोमवारू, मंगरू, बुद्धू, बिफ्फई, शुकरू, सनीचरा और अतवारू-जैसे नाम भी

डा० शिवनन्दन कपूर
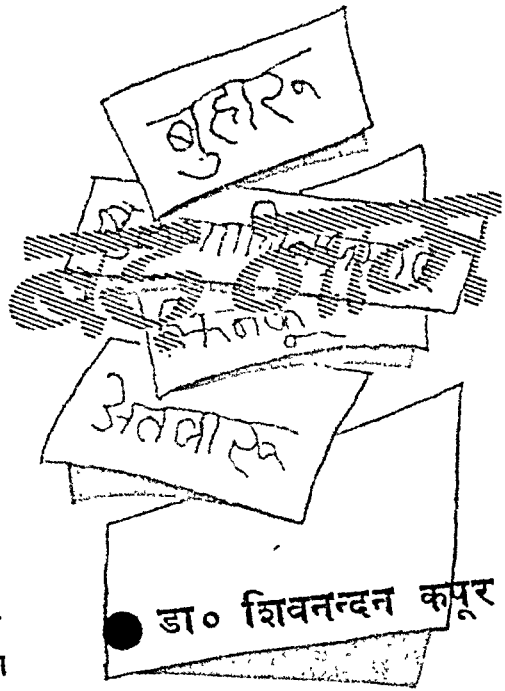
राम की महिमा संतों ने भी स्वीकार की है । यहां तक कहा गया है, 'रामह, ते वड़ नाम ।' नाम ऐसा जीवंत है कि चमकता है, चलता है, स्थिर रहता है, विकता है और पूजा भी जाता है । भारतीय नारियां पति का नाम जपती और उन के नाम पर आजीवन वैठी रहती हैं । मनुष्य कहीं रहे, उस के नाम का जादू लोगों के सिरों पर चढ़ कर वोलता है । नलवा के नाम का प्रभाव अफगान वच्चों की आंखों में नींद वन कर छा जाता था । प्रिय का नाम विरहिणी के रोम-रोम में प्रेम वन कर छाया रहता है । मानव मरण-शील है, पर नाम अमर है । इस नाम को चलाने के लिए लोग क्या नहीं करते ? कोई नामलेवा रहे, इस के लिए सव कुछ लुटा डाला जाता है । नाम उछल जाने या धराये जाने से लोग डरते हैं । पर प्रेम-पथ में वह भी क्षम्य है ।

जीवन के सोलह संस्कारों में नाम-करण संस्कार का भी महत्व है । पहले यह संस्कार गुरु के द्वारा होता था । अव इस प्रकार की प्रथा का ह्रास हो चला है । देवताओं के अनेक नामों का उल्लेख है । 'विष्णु सहस्र-नाम' इस क्षेत्र में अग्रणी है । मनुष्य के भी अनेक नाम हो सकते हैं । नटवरलाल की भांति छद्म नाम नहीं, अपितु राशि-नाम, प्यार का पुकारने का नाम, उपनाम आदि । परसू, पर-सुआ, परसुराम प्रसिद्ध ही हैं । कभी-कभी किसी को चिढ़ाने के लिए भी लोग विनोदात्मक नाम रख देते हैं और वह प्रचलित हो जाता है ।

'गोभिल-गृह्य-सूत्र' में जन्म से ११ वें या १२ वें दिन नामकरण का उल्लेख है । स्मृतियों में क्षत्रिय का १३ वें दिन, वैश्य का १६ वें
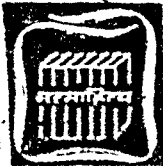
मिले हैं। ये बेचारे उन विशेष दिनों में ही उत्पन्न हुए थे। ग्रह-शांति के लिए कभी-कभी बच्चों को सात प्रकार के अन्न से तौला जाता है। बस वे 'सत-अनज' और फिर 'सतंज' कहलाने लगते हैं। दुष्ट ग्रहों की नजर से बचाने के लिए घसीटे, बुहारू, कतवारू आदि उपेक्षापरक नाम रख दिये जाते हैं। इस से, कम से कम नाम रखनेवालों की दृष्टि में वे अकाल-मृत्यु से बच जाते हैं।

बच्चे के भविष्य और अपनी आकांक्षा को ध्यान में रखते हुए सूबेदारसिंह, करनैलसिंह, जरनैलसिंह, बाबूसिंह, दारोगासिंह, तहसीलदारसिंह आदि नाम रखे जाते हैं। वातावरण भी इस क्षेत्र में सहायक होता है। भिण्ड-जैसे डाकू-ग्रस्त क्षेत्र में, जहां जीवन की सब से बड़ी सिद्धि दारोगा बन जाना या फौज की नौकरी में चले जाना है, वहां प्रायः दारोगासिंह की अधिकता के साथ सूबेदारसिंह, हवलदारसिंह और जमादारसिंह नाम मिलते रहते हैं। अवस्था-भेद के सूचक जेठू, छोटक, नन्हे, नन्हकू, झिनकू आदि नाम हैं। पद के आधार पर बने डिप्टियाइन, मास्टराइन, हवलदारिन आदि संबोधन प्रायः नाम का पूर्ण स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

कभी-कभी घटनाएं भी मनुष्य के नाम-निर्माण में सहायक होती हैं। वाल्मीकि मुनि वैसे तो रत्नाकर थे, तपस्या में देह पर वल्मीक अर्थात बांबी (दीमक की) लग जाने से वे वाल्मीकि कहलाये। भूकंप के समय उत्पन्न 'भुंइडोलनी' भी संसार में विद्यमान हैं। फैशन भी नामकरण में सहायक होता है। प्राचीन काल के 'पंचचूडा' (अप्सरा) तथा 'पंचशिख' (मुनि) आदि नाम उन के पांच चोटियां रखने के सूचक हैं। घृताची, उर्वशी, द्रोण आदि नाम यदि जन्मस्थान के सूचक हैं, तो 'मुरारि' कर्म का। 'तिलोत्तमा' में निर्माण-क्रिया—अर्थात तिल-तिल रत्न ले कर बनाये जाने का स्पष्ट कथन है। 'छांगुर' आदि नाम अंग-विकृति के सूचक हैं।

कुछ नाम हास्यास्पद हो जाते हैं। गेंदालाल अंगरेजी की कृपा से पशु-पुत्र अर्थात गेंडालाल हो जाते हैं। एक परिवार में लोटा, कटोरी, गिलसिया, सुराही-जैसे नाम भी हैं। उस परिवार में बच्चे नहीं जीवित रहते थे। दैव-संयोग से, इस प्रकार के एक नाम ने बच्चे को सुरक्षित रखा, फिर तो परंपरा हो गयी।

कुछ समय पूर्व बड़ों के नामांत का अनुकरण करते हुए नाम रखने की प्रथा थी। हरिश्चंद्र के यहां प्रेमचंद्र, कृष्णचंद्र तथा रामचंद्र की भरमार रहती। कुछ में एक ही वर्ण से बच्चों का नाम रखने की रुचि रहती है तथा, सतीश, सुरेश, सुधीर, आदि। स्वतंत्रता-प्रसाद, बुल्गानिनप्रसाद आदि में राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय भावना है। मुकुल, अमिता, मंजूषा तथा अंत में 'इंद्र' लगने वाले नामों पर बंगाली प्रभाव है।

विदेशों में आकार, चरित्र, घटना, स्थान, पिता, पेशा आदि को ध्यान में रखते हुए इन्हीं के आधार पर नामकरण होता है। यूनानियों में घट-

● डेविस हावर्ड

नदी में गिरते ही मेरा पूरा शरीर अकड़ गया। मैं अपने आप को होश में रखने के लिए भरसक चेष्टा कर रहा था लेकिन ठंडा पानी मेरे दिमाग को सुन्न किये डाल रहा था। जिस मगर का हम लोग पीछा कर रहे थे, वह अनुमान से अधिक फुरतीला, चालाक और बलवान सिद्ध हुआ था। मैं उस पर कई हारपून फेंक चुका था पर वह फुरती से सब को साफ बचा गया। उसे बींधने का दृढ़ निश्चय कर मैं ने उस के खुले जबड़े का निशाना लिया लेकिन इस के पहले कि मैं हारपून फेंक पाता, उस ने नाव पर दुम से जोरदार प्रहार किया। नाव के अचानक डगमगा जाने से मैं संतुलन न रख सका और नदी में जा पड़ा। गिरते-गिरते मुझे हेनरी की आवाज सुनायी दी, "नाव को मजबूती से पकड़ लो। मगर तुम्हारे पीछे ही है और मैं उस पर हारपून फेंक रहा हूं।"

मैं पानी में नीचे चला गया। जब कुछ क्षण बाद ऊपर आया तो देखा कि मगर नाव के दूसरी ओर था। मुझे देख कर हेनरी चीखा, "खबरदार, उधर ही रहना!" और उस ने टार्च जला दी। प्रकाश में मैं ने आगे बढ़ कर नाव का एक तख्ता पकड़ लिया।

"एक मिनट यों ही पकड़े रहो, मैं तुम्हें खींचे लेता हूं," हेनरी ने कहा। तभी नाव को एक जबरदस्त झटका लगा और मेरे हाथ से तख्ता छूट गया। मैं फिर गोते खाने लगा। नाव तक पहुंचने के लिए मैं ने पूरी तेजी से हाथ-पांव मारने शुरू किये। घुप्प अंधेरे में कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। अचानक मेरा हाथ किसी वस्तु से टकराया। किसी तरह आंखें गड़ा कर देखा और देख कर मेरा खून जमने को हो गया। मेरे हाथ ने मगर की खाल का स्पर्श किया था। वह मेरे पास ही तैर रहा था। तभी हेनरी की आवाज सुनायी दी, "भाई, तुम तैर कर दूर निकल जाओ! यहां एक नहीं, कई मगर हैं और सब से लड़ना मूर्खता है। जल्दी भागो!" इस के साथ ही उस की टार्च चमक उठी। प्रकाश में जो कुछ मैं ने देखा, उस से भय के मारे मेरे प्राण निकलने को हो गये। १०-१५ गज की दूरी पर वह विशाल तथा विकराल मगर, जो हमारा लक्ष्य था, अपने भयंकर

नामों पर नाम मिलते हैं। 'बेन गोमी' (पीड़ा-पुत्र) की मां प्रसव के समय ही मर गयी थी। प्रसव-समय के अनुसार 'जून' तथा 'क्रिसमस' नाम भी मिलते हैं। प्यूरिटन लोगों में प्रेत-बाधाओं को धोखा देने के लिए 'ह्यूमिलिटी' तथा 'ट्रेंचिल्स'-जैसे नाम रखे जाते थे। सेमेटिक भाषाओं में प्रायः ईश्वर-संबद्ध नाम हैं। नाम के प्रारंभ में लगने वाले 'जान' हेब्रू भाषा से, 'थियोडोर' ग्रीक से, एवं 'ओस' एक जरमन देवी के नाम से ग्रहीत है। संत जार्ज के कारण अंगरेजों में जार्ज का प्रचलन हुआ। अमरीका में जार्ज वाशिंगटन की गूंज है। भारत में 'जवाहर' भी जगह-जगह चमकता है। एंग्लो-सैक्सन नाम एडवर्ड अंगरेज राजाओं के कारण विख्यात हुआ। संत टामस के प्रति आदर-भावना से टामस नाम का प्रचलन हुआ। हेरोडोटस तथा उस के अनुवर्ती कुछ अन्य लेखकों ने तो अफ्रीका की एक ऐसी जाति का उल्लेख किया है, जिस के सदस्यों का अपना कोई व्यक्तिगत नाम ही नहीं पाया जाता।

नाम अमर है, शाश्वत है। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने नाम की इसी महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए कहा है, "नाम के आकर्षण से बढ़ कर भी क्या कोई आकर्षण है? इस दृश्य-जगत में मैं ने दो सार पाये—रूप और नाम। रूप देह के साथ मर जाता है, किन्तु नाम कभी नहीं मरता। वह अंतिम काल-रात्रि तक बोलता रहेगा। नाम मौन है, तो सब मौन है।"

शेव के मामले में अंगरेज दुनिया में सब से चुस्त हैं। हिसाब लगाया गया है कि अमरीकी, जरमन और स्विस मर्द औसत तौर पर हफ्ते में पांच बार शेव करते हैं। फ्रांसीसी तो आम तौर से हफ्ते में दो बार शेव करते हैं लेकिन अंगरेज हर रोज अपनी दाढ़ी बनाते हैं।

इस का अर्थ हुआ कि एक अंगरेज अपने पूरे जीवन में अपने चेहरे पर दो वर्ग मील के लगभग उस्तरा फेरता है और ढाई करोड़ बाल काटता है। साठ साल की उम्र वाले व्यक्ति के ३,२५२ घंटे, यानी आधा साल, शेव बनाने में निकल जाता है।

आजकल इंगलैंड में मूंछ और दाढ़ी बढ़ाने पर नुक्ताचीनी कम होती है और टैक्स भी देना पड़ता, किन्तु १६ वीं शताब्दी में महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने तो दाढ़ी रखने वाले पादरियों पर प्रति वर्ष ३ शिलिंग ४ पेंस टैक्स लगा दिया था।

खींच रहा है। मैं ने अपनी टांगें छुड़ाने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया क्योंकि मैं जानता था कि इस प्रकार का प्रयत्न करते ही मेरी टांगें कट कर उस के मुंह में रह जायेंगी। मैं मृत्यु से अंतिम समय तक लड़ना चाहता था, आत्मसमर्पण करना नहीं। इसीलिए मैं बचने की युक्ति इस स्थिति में भी सोच रहा था यद्यपि अब मेरे और मृत्यु के बीच का फासला समाप्त हो चुका था।

मगर मुझे नदी के तल में खींच ले गया। मैं जानता था कि यदि मैं ने जरा भी हरकत की तो मगर मुझे निगल जायेगा अतएव मैं मुरदे के समान बना रहा। मुझे सांस रोकने का अभ्यास था। अतः कुछ मिनटों तक पानी के अंदर रहने में कठिनाई नहीं हुई। सांस लेने के लिए लगभग दो मिनट बाद मगर ऊपर आया। मैं उसी प्रकार उस के जबड़ों में दबा हुआ था। पानी की सतह पर आते ही मैं ने पूरी ताकत से झटका दिया और उस के जबड़ों की पकड़ से मुक्त हो गया। साथ ही मैं ने कमर में बंधी चमड़े की पेटी से शिकारी चाकू निकाल लिया। इस के पहले कि मगर फिर झपटता मैं ने उस की गरदन पर चाकू का गहरा वार कर दिया। उस की गरदन से खून का फुहारा छूट गया, लेकिन उस ने जख्म की परवाह किये बिना मुझ पर दोबारा हमला किया। मेरी टांगें फिर उस की पकड़ में आ गयीं। इस बार मैं तीव्र पीड़ा के कारण अपने को बेहोश होने से न बचा सका। हां, मुझे महसूस हो रहा था कि मगर मुझे दबाये तेजी से पानी के अंदर तैर रहा है। कुछ देर बाद मैं बेहोश हो गया।

आंखें खुलने पर मैं ने अपने को एक अंधेरी तथा दुर्गंधयुक्त खोह में पाया। मैं कीचड़ में धंसा पड़ा था। मैं ने उठने की चेष्टा की, लेकिन हाथ-पैर हिलाने में असमर्थ रहा। दर्द से एक-एक अंग फट रहा था। सड़े मांस की दुर्गंध दिमाग की एक-एक नस को फाड़े डाल रही थी। कुछ समय बाद जब मेरी आंखें अंधेरे में देखने की कुछ अभ्यस्त हुईं तो मैं ने चारों ओर बेहद डरावना दृश्य देखा। खोह में चारों ओर मांस के लोथड़े, हड्डियां, अधखाये अंग आदि बिखरे पड़े थे। अब मैं समझा कि यह मगर का स्टोर रूम था। यहां वह अपनी रसद एकत्रित करता था। मुझे भी मुरदा समझ कर वह मुझे यहां फेंक गया था। हो सकता है कि दिन के समय मगर यहां विश्राम भी करता हो।

अब इस खोह से निकलने के लिए मैं ने दिमाग दौड़ाना शुरू किया। अचानक मुझे खोह के ऊपर मगर के खर्राटों की आवाज सुनायी दी। अब निश्चय था कि मैं कोई हरकत नहीं कर सकता था अन्यथा उस के जाग जाने का डर था। मैं ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि मगर मछलियां खाने नदी में चला जाये, ताकि मैं बचाव का कोई रास्ता निकाल सकूं। लगभग आधा घंटा यों ही बीत गया, लेकिन मुझे एक-एक क्षण एक-एक

जबड़े खोले मेरी ओर देख रहा था। उस के पीछे दो छोटे मगर और थे।

मैं ने जान बचाने की एक बार फिर चेष्टा की। मैं ने फिर नाव की तरफ तैरना शुरू किया। उसी समय हेनरी का फेंका हुआ हारपून सनसनाता हुआ आ कर उस विकराल मगर के गले में धंस गया। वह पीड़ा से छटपटाता हुआ उलट गया और अपनी दुम तेजी से फटकारने लगा। उस के तड़पने से पानी उबल-सा रहा था। वह तड़पता हुआ मेरे पास पहुंच गया। अचानक उस की दुम मेरी पीठ पर लगी और मुझे प्रतीत हुआ जैसे किसी ने एक साथ सैकड़ों कोड़े मेरी पीठ पर बरसा दिये हों। दर्द से मैं तिलमिला उठा, साथ ही पानी के अंदर गोता लगा गया।

अब हेनरी अंधाधुन्ध हारपून फेंक रहा था और वे सनसनाते हुए मेरे सिर के ऊपर से उड़ रहे थे। मैं समझ गया कि कोई न कोई हारपून मुझे बींध डालेगा। मैं गला फाड़ कर चिल्लाया, "अरे बेवकूफ, इस तरह फेंकना बंद कर! क्या मुझे मार डालना चाहता है?"

हेनरी ने फिर टार्च जलायी। मैं ने देखा कि नाव अब मुझ से ३०-४० गज की दूरी पर थी। दो-तीन मगर अब भी मुझ पर घात लगाये कुछ दूरी पर मौजूद थे। हारपूनों की मार ही उन्हें अब तक रोके हुए थी अन्यथा वे न जाने कब का मुझे निगल चुके होते।

मैं मन ही मन उस घड़ी को कोस रहा था जब मैं ने और हेनरी ने मिल कर मगर की खालों का धंधा करने की योजना बनायी थी। मगर की खाल अच्छी कीमत पर बिक जाती थी। हमारी योजना बाद में नाव में मोटर लगवाने तथा एक अच्छी राइफल खरीदने की थी। अचानक मुझे महसूस हुआ कि मगर ने मेरी टांगें मुंह में दबा ली हैं और मुझे पानी के अंदर
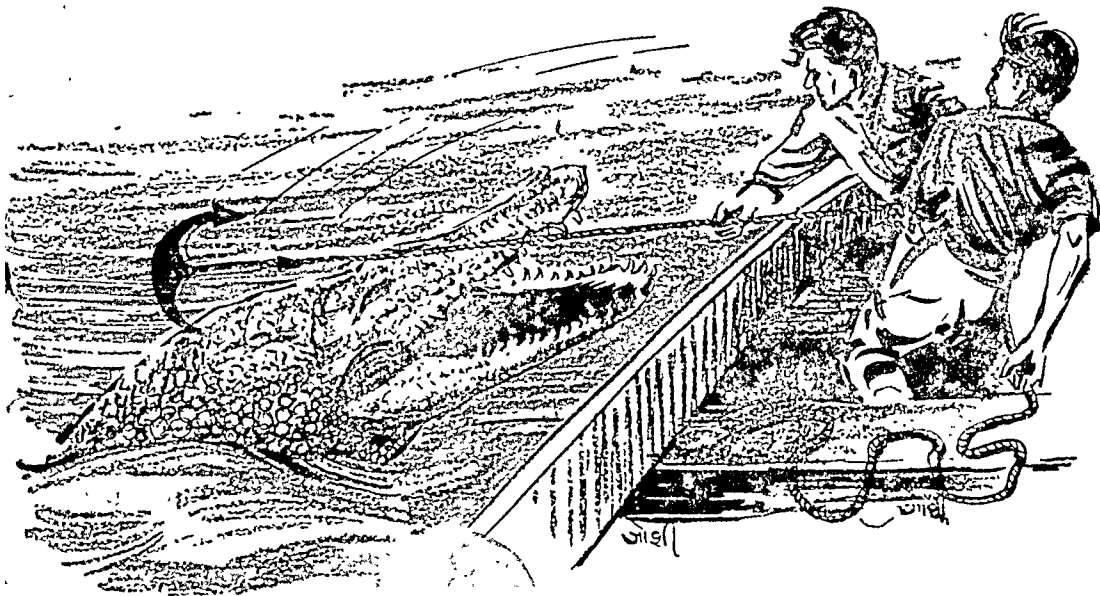
आध घंटे तक इंस्पेक्टर दरवाजा पीटता रहा तब कहीं जा कर गायक महोदय की संगीत-साधना टूटी और उन्होंने दरवाजा खोला। "झूठ बोलने की जरूरत नहीं है। मेरे सामने बड़े-बड़े गुंडे कांपते हैं। कुछ छिपाने की कोशिश की तो खाल उधेड़ दूंगा। ठीक-ठीक बताओ, तुम ने हत्या कब की, किस हथियार से की और लाश कहां है?" इंस्पेक्टर एक सांस में कह गया।

"जी . . . जी . . . क्या मतलब?" गायक हकलाया।

"तुम्हारे पड़ोसी ने एक घंटा पहले थाने में सूचना दी है कि तुम किसी राग विभावरी की हत्या कर रहे हो! हां, लाश कहां छिपायी है?"

★

"श्रीमानजी, आप मेरे पड़ोसी हैं इसलिए नरमी से निवेदन करना चाहता हूं कि आप अपने कुत्ते को बेच दें। जब भी मेरी लड़की गाने का अभ्यास शुरू करती है, वह जोरों से भूंकने लगता है।"

"लेकिन शुरूआत तो आप की लड़की ही करती है।"

★

"जिस तरह सिंदूर विवाहित स्त्रियों की निशानी है, उसी प्रकार पुरुषों के लिए भी कुछ होना चाहिये," पत्नी ने कहा।

"निशानी की क्या जरूरत है, उन का चेहरा देख कर ही पता चल जाता है कि विवाहित हैं," पति ने उत्तर दिया।

★

"भाई, अब तो मैं ने साहित्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। मैं तेजी से कहानियां लिखने में जुटा हूं।"

"अभी तक कुछ बिकीं?"

"कहानियां तो नहीं; हां, घड़ी, अलमारी, टेबल, ओवरकोट, सोफा आदि बिक गये।"

★

"जानते हो, कल मैं ने एक दावत में ४९ रसगुल्ले खाये!"

"भाई, एक और खा लेते तो पूरे ५० हो जाते।"

"वाह, क्या केवल एक रसगुल्ले के लिए सैकड़ों लोगों के सामने पेट कहलवा कर अपना मजाक बनवाता।"

तटों के बराबर लग रहा था। मगर के दांतों ने मेरी टांगों में बड़े-बड़े छेद कर दिये थे जो मुझे तड़पाये डाल रहे थे। मगर के भय से मैं सिसकी भी नहीं भर सकता था। कुछ समय बाद मुझे प्रतीत हुआ कि मगर नदी में चला गया।

अब मैं अपनी पीड़ा और घावों को भूल कर शरीर को हिलाने की चेष्टा करने लगा। कुछ देर बाद जब शरीर में कुछ जान आयी, मैं ने हाथों से कीचड़ टटोलते हुए ऊपर चढ़ने की चेष्टा की। खड़े होने की चेष्टा करते ही मैं धड़ाम से फिर कीचड़ में जा गिरा। मेरा पूरा शरीर कीचड़ और खून से लथपथ था। सवेरा होने तक मैं उस खोह से बाहर निकलने का प्रयत्न करता रहा किन्तु हर बार फिसल कर गिरने के और कुछ हाथ न आया। इसी प्रयत्न में मेरे बायें हाथ की हड्डी भी टूट गयी। जब खोह में कुछ प्रकाश भरने लगा तब मैं ने बाहर निकलने का कोई और मार्ग तलाश करना प्रारंभ किया। मेरी प्रसन्नता का अंत न था जब मैं ने दूसरी ओर भी एक और तंग-सा रास्ता देखा। यह रास्ता भी मगर ने ही खोद-खोद कर बनाया होगा क्योंकि वहां भी हड्डियों और सड़े मांस के ढेर लगे थे।

मैं हड्डियों के उस ढेर पर चढ़ गया और टटोल-टटोल कर आगे बढ़ने लगा। काफी प्रयास के बाद मेरे हाथों ने आखिर नदी की बालू का स्पर्श कर ही लिया। बाहर निकल कर मैं ने देखा कि वहां घुटने तक पानी था। किसी तरह अपने को घसीटता हुआ मैं तट पर पहुंच गया। लेकिन तट पर पहुंचते ही मैं फिर बेहोश हो कर गिर पड़ा।

बाद में हेनरी ने बताया कि मेरी खोज में वह लगातार नदी में नाव खेता रहा था। इसी बीच उस ने उस घायल मगर का भी शिकार कर लिया था जिस ने मुझे अपनी कैद में डाला था। उस मगर को मार कर जब वह लौट रहा था तो तट पर उसे एक लाश-सी दीखी। कौतूहलवश जब वह उस लाश-सी वस्तु के पास आया तो मुझे देख कर चकित रह गया। मैं उसे दुर्घटना के तीसरे दिन सुबह मिला था अतः तब तक बेहोश पड़ा रहा था। अगर हेनरी को मैं न मिल जाता तो कोई और मगर मुझे अपना भोजन बना लेता, यह निश्चित था। ●

"क्या तुम्हें टाइप करना आता है?" नौकरी के लिए आये हुए एक उम्मीदवार से पूछा गया।

"जी हां!"

"तुम किस तरीके से टाइप करते हो?"

"मैं बाइबिल के सिद्धांत के अनुसार टाइप करता हूं।"

"क्या?" सेक्शन आफीसर चौंक कर बोला।

"खोजो, और तुम पा जाओगे!"

● चन्द्रदत्त शर्मा 'इन्दु'

नये आदर्श

हम तिलस्मी हैं
हथेली पर सरसों उगाते हैं
बिना छन्द, लय, ताल के
सरगम गाते हैं
आओ सुनो
समझो गुनो
हम आदमी नहीं
आदर्शों के पुतले हैं
गहरे नहीं उथले हैं
मील के पत्थर की तरह
दूसरों को रास्ता बताते हैं
और स्वयं
चुपचाप खड़े
सड़क पर गड़े
सोते रह जाते हैं

धीरे-धीरे आ

डूब गयी संध्या सिन्दूरी
कहते-कहते बात अधूरी
मधु-भीगी मादक रजनी को
सोते नहीं जगा

दर्द-भरी भूली यादों पर
मेरे मन के अवसादों पर
अपनी करुणा के रूपहले
आंसू नहीं बहा

शबनम से भर-भर कर प्याली
फूलों ने भी प्यास बुझा ली
आ, मेरे प्यासे अधरों पर
दो बूंदें ढुलका

गगरी-भरी चांदनियां लाया
चंदा कौन देश से आया
फेनिल किरणों की पलकों पर
सपना नया उगा

मौन स्वरों में सरगम गाऊं
इतनी पीर कहां से लाऊं
घूम रहा हूं गहन तिमिर में
ज्यों तारा भटका

खत्तामलजी ने मित्रों को चायपान पर निमंत्रित किया था। बात-चीत के दौरान उन्होंने कहा, "भाई, एक मोटर खरीदनी है। अब सस्ती तो क्या खरीदूंगा, हां अठारह-बीस हजार की एक कामचलाऊ मिल जाये तो ठीक होगा।"

इतनी बड़ी रकम की इस लापरवाही से चर्चा करके खत्तामलजी ने अपनी अमीरी का रोब जमा ही लिया था कि उन का छह वर्षीय पुत्र बोल पड़ा, "पिताजी, क्या वह बड़ी-बड़ी मूछोंवाला आदमी फिर रोज-रोज आया करेगा, जो हमारे साईकल लेने के बाद तकाजे के लिए आया करता था?"

★

झगड़ू जैसे ही टैक्सी में बैठे कि वह एक जोरदार उछाल के साथ भाग चली और मोटरों, ट्रकों, साईकलों, पैदल चलनेवालों आदि से बाल-बाल बचती हुई मतवाली चाल से आगे बढ़ने लगी। झगड़ू के तो होश उड़ गये। अपना कांपता हुआ हाथ ड्राइवर के कंधे पर रखते हुए वे बोले, "ड्राइवर साब! मुझे कंपकंपी छूट रही है। मैं पहली बार टैक्सी में चढ़ा हूं।"

ड्राइवर ने पूरी ताकत से एक ठहाका लगाया और बिना पीछे देखे बोला, "मैं खुद पहली बार टैक्सी चला रहा हूं, भाई!"

★

पत्नी : मैं कहती थी न कि स्त्रियां ही पुरुषों को पूर्णता प्रदान करती हैं। इस पुस्तक में साफ लिखा है कि विवाह से पहले कालिदास वज्र मूर्ख थे, लेकिन पत्नी ने दो वर्ष में ही उन्हें प्रकांड पंडित बना दिया।

पति : उस एक कालिदास को सब रोते हैं। भागवान, हम-जैसे लाखों कालिदास भी तो हैं जो विवाह से पूर्व प्रकांड पंडित थे और पत्नी ने दो वर्ष में ही जिन्हें वज्र मूर्ख बना कर रख दिया।

★

प्रधान अध्यापक : आखिर आप ने इस लड़के को १०१ प्रतिशत नंबर दे कैसे दिये? क्या आप नहीं जानते कि १०० प्रतिशत से ज्यादा कुछ नहीं होता?

अध्यापक : क्योंकि उस ने एक ऐसे प्रश्न का भी उत्तर लिखा जो पूछा नहीं गया था।
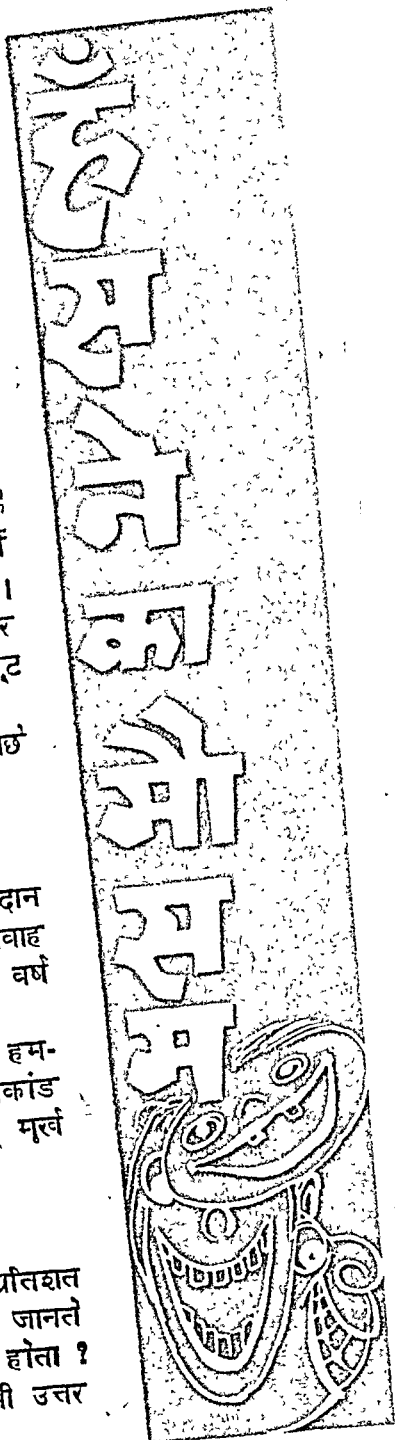
पोले तने में छिपा हुआ था। तने के भीतर किसी का हाथ गया। नाग ने उस पर काट लिया। उस हाथ की उम्र थी दस साल, और उस का स्वामी था रेग मैक्नेमेरा। उस ने खरगोश ढूंढ़ने के फेर में तने की पोल के भीतर हाथ डाला था और . . .

उस दिन यदि रेग का बड़ा भाई साथ न होता तो वह किसी सूरत में जिंदा नहीं बच सकता था। बड़े भाई ने तुरन्त उस की अंगुली चाकू से उड़ा दी और झटपट उसे घर ले जा कर दूसरे उपचारों का प्रबन्ध किया। रेग कई दिनों तक इतना बीमार रहा कि उस के बचने की आशा धूमिल हो गयी। लेकिन यह तो खतरनाक अनुभवों की शुरूआत ही थी। वह बच गया और फिर से खरगोश मारने निकल पड़ा। कुछ मास बीते और साइकिल भी आ गयी। यहां से उस के जीवन ने एक नया मोड़ लिया। अब वह था और थी उस की साइकिल। साइकिल के दो चक्के थे, जो इस दुनिया की तरह अनवरत घूम रहे थे। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी साइकिल-दौड़ों में वह भाग लेता गया और उन्नति करता गया।

बीस साल की उम्र में वह सिडनी चला आया। अब केवल दौड़ों में भाग ले कर आजीविका कमाना उस के लिए मुश्किल नहीं रहा था। रोशनी में आने का पहला मौका उसे १९१२ में मिला, जब कि उस ने एक और आस्ट्रेलियन साइकिल-धावक फ्रेंक कॉरी के साथ छह दिनों की दौड़ में भाग लिया और अमरीका व अन्य देशों के साइकिल-धावकों के गुट को हरा दिया। समय बीतने पर फ्रेंक कॉरी की प्रसिद्धि का सितारा डूबा, लेकिन रेग मैक्नेमेरा का सितारा दूनी कौंध से जगमगा उठा।

मेलबोर्न में भी छह दिनों की साइकिल-दौड़ का आयोजन किया गया। पूरे विश्व के साइकिल-धावकों ने भाग लिया, किन्तु आस्ट्रेलियनों के सामने कोई न टिक सका। अब वे लोग यूरोप व अमरीका की तरफ निकल पड़े, जहां की साइकिल-दौड़ों में विजय मिलने से बहुत धन प्राप्त हो सकता था। अब तक रेग मैक्नेमेरा ने 'जैमिंग' (यकायक तेज दौड़ाने) की कला में खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी।

लम्बी दौड़ों में, जो कई दिन चलती हैं, तेजी से साइकिल दौड़ाना खतरनाक होता है, क्योंकि साइकिल-धावक जल्दी हांफ जाते हैं। दौड़ में भाग लेनेवाले अपनी औसत रफ्तार बढ़ाने की कोशिश करते हैं, लेकिन बहुत तेजी से साइकिल नहीं दौड़ाते। आत्मविश्वासी खिलाड़ी 'जैमिंग' करते हैं, क्योंकि इस के लिए दौड़ में अलग से प्वाइंट दिये जाते हैं। प्रसिद्धि में चार चांद लगते हैं, वह अलग। इस से दौड़ में धन अधिक मिलता है।

१९२७ में रेग ने जिस बहादुरी से दौड़ की दुर्घटनाओं का सामना किया वह कभी न भुलायी जा सकेगी। न्यूयार्क के मेडिसन स्क्वायर गार्डेन में भीड़ समा न रही थी। ४० वर्ष का रेग इस दौड़ में भाग ले रहा था और उस की होड़ में जो खिलाड़ी थे वे उम्र में उस से प्राय: आधे थे—जवान और जोशीले। किन्तु रेग के पास १५ वर्षों

● सपनकुमार

अद्‌भुत था वह आस्ट्रेलियन, जिसे साइकिल-दौड़ के शौकीनों ने 'आयरन-मैन' अर्थात 'लोहे का आदमी' नाम दे रखा था। उस ने जितनी लोमहर्षक दौड़ों में भाग लिया, शायद ही और किसी खिलाड़ी ने लिया हो।
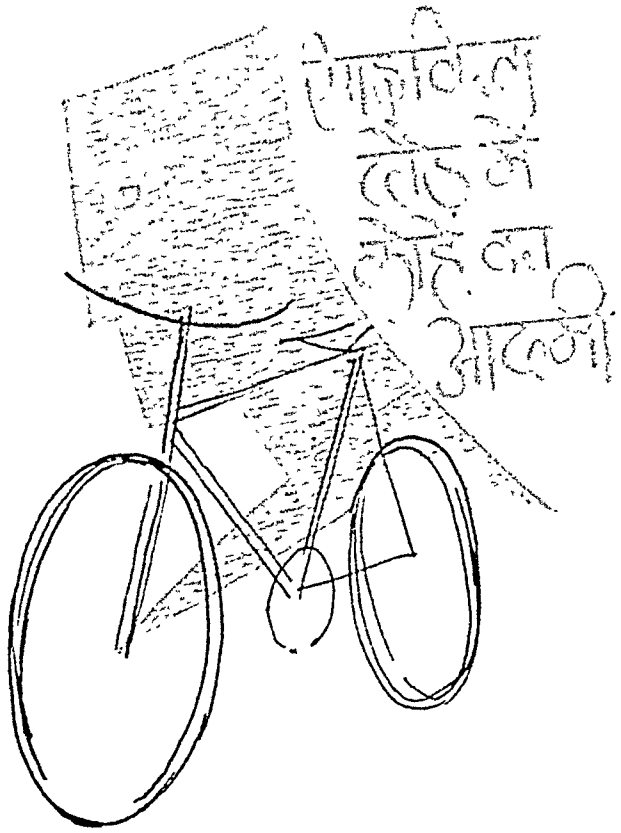
'लोहे के आदमी' के पेट में गड़बड़ियां थीं। उसे दो बार इतने बड़े आपरेशन करवाने पड़े कि वह मरते-मरते बचा। और भी दो बार वह मौत के कगार पर जा खड़ा हुआ था—दौड़ में हुई दुर्घटनाओं के कारण। चारों बार वह जी गया—साइकिल-दौड़ के इतिहास में नये पृष्ठ जोड़ने के लिए।

उस का नाम था रेग मैक्नेमेरा। न केवल उस की दौड़ों ने इतिहास बनाया, वरन उस के साथ हुई दुर्घटनाओं ने भी उस इतिहास में नये रंग भरे। उस की कोई पसली ऐसी नहीं थी जो कम-से-कम एक बार न टूटी हो। उस की खोपड़ी भी दो बार टूटी थी। दोनों पैर और एक बांह भी टूटने से न बच सकी थी। पैरों में कितनी बार साइकिल की तीलियां घुस गयीं या कितनी बार उस ने मुंह के बल पछाड़ खायी, इस का तो हिसाब ही नहीं था। उस के गले की हड्डी १८ बार टूटी थी। हर बार हड्डी तुड़वा कर उस ने आस्ट्रेलिया की ख्याति का मानो एक और दीपक जलाया।

बचपन से ही रेग ने चाहा था कि वह साइकिल-दौड़ों में हिस्सा ले कर आजीविका कमाये। बेचारा इतना गरीब था कि साइकिल खरीदने के लिए उसे खरगोश मारने का धन्धा करना पड़ा। उस समय वह सिर्फ दस साल का था और पश्चिमी न्यू-साउथ वेल्स के एक नगर नौरोमाइन में रहता था।

एक था काला नाग। वह किसी

(बम्बई के एक उपनगर में पुराने ढंग के मकान का कमरा। पात्रों की वेशभूषा और कमरे की सजावट मराठी ढंग की। दीवारों पर कई अवतारों और महापुरुषों के साथ संत ज्ञानेश्वर और तुकाराम के भी चित्र। कमरे की लम्बाई-चौड़ाई

का अनुभव था।

जब तक आधा रास्ता पार होता, रेग दूसरों से एक लेप (दूरी का एक विशेष माप) आगे निकल गया था। पिएत्रो लिनारी नामक एक इटालियन स दौड़ में रेग का सहयोगी था। चेंज-ओवर' करीब आ रहा था। रेग चाहता था कि लिनारी को दौड़ आगे चलाने में किसी तरह की दिक्कत न हो। दौड़ के लिए ज्यादा समय मिल जाये, इस के लिए रेग अपने हिस्से की दूरी जल्द-से-जल्द पार करने की चेष्टा में था। वह पूरी तेजी से पैडल चला रहा था कि अचानक धमाके के साथ उस की साइकिल का अगला पहिया बर्स्ट हो गया।

साइकिल ने पछाड़ खायी और रेग खिलौने की तरह जमीन पर उलट गया। पीछे-पीछे तीन साइकिल-धावक अंधी दौड़ लगाते हुए चले आ रहे थे। वे अपने को संभाल न पाये। तीनों अपनी साइकिलों समेत रेग के पसरे शरीर से टकरा कर गिर पड़े। रेग चोटों के कारण प्रायः बेहोश हो गया। बेहोशी से दो-चार क्षण पूर्व उस ने आभास पाया कि जो साइकिल-धावक पीछे रह गये थे, उन में से कुछ आगे निकले जा रहे हैं . . .

दो मिनट बीतने से पहले ही डाक्टर आ पहुंचा था। रेग होश में आया और आते ही पहला सवाल उस ने पूछा, "लिनारी सब से आगे है या नहीं ?"

उसे बताया गया कि दुर्घटना के बाद आगे की दौड़ लिनारी ने संभाल ली थी और इस समय वही सब से आगे था। थोड़ा निश्चिंत हो कर रेग लेट गया।

डाक्टर ने खेद के साथ सिर हिलाया और कहा, "मिस्टर रेग, आप साइकिल-दौड़ में भाग न ले सकेंगे। आप की तीन पसलियां टूट गयी हैं।"

"क्या ?" रेग कुहनियों के बल उठने लगा, "साइकिल पसलियों से नहीं, पैरों से चलायी जाती है। मेरे पैर तो नहीं टूटे हैं !"

"लेकिन . . ."

रेग कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं था। पट्टियां बंधवा कर वह उठ खड़ा हुआ और साइकिल पर सवार हो कर चल पड़ा। पीड़ा से वह आगे झुक आया था। उस का चेहरा विकृत हुआ जा रहा था। दर्शक आश्चर्य एवं आनन्द से चीख और उछल रहे थे।

होड़ में उतरे साइकिल-धावकों ने ठान लिया था कि 'जैमिंग' द्वारा रेग को पीछे छोड़ देंगे, लेकिन वे सफल होते तब न। रेग सब से आगे निकल गया और आगे ही रहा।

न केवल इस दौड़ में, बल्कि दो मास बाद की अगली दौड़ में भी रेग शामिल हुआ। इस बार भी उस का सहयोगी लिनारी था और जीत भी इन्हीं के गले में माला डालने के लिए उत्सुक खड़ी थी। इस दौड़ के आखिरी दिन रेग के साथ एक नहीं, पूरी छह दुर्घटनाएं हुईं, लेकिन रेग रेग ही था !

७० वर्ष की उम्र के बाद रेग ने दौड़ों में भाग लेना छोड़ दिया। अब उसे दौड़ों का रेफरी बना दिया गया था।

छोड़ दूं तो इंदु, उम्र भर क्वारी बैठी रहे ।

प्रमोद : आप ने अपने पर बात ले कर भी तो देख लिया । बार-बार के अपमान से तो यही अच्छा है कि इंदु क्वारी घर में बैठी रहे ।

(इंदु, रसोईघर की ओर चली जाती है । प्रमोद बाहर जाने लगता है)

विट्ठल : कहां चले ?

प्रमोद : दफ्तर, और कहां जाऊंगा ?

विट्ठल : वे लोग आ रहे हैं और तुम दफ्तर जा रहे हो ! एक दिन की छुट्टी नहीं ले सकते ? हे देवा, हे पांडुरंग, इस लड़के को सुबुद्धि दे !

प्रमोद : मेरा यहां क्या काम है ? मिठाई मैं ने ला दी है । बातचीत करने को आप हैं ही ।

विट्ठल : बस यही तो सारे रोगों की जड़ है । मैं जिन्दा हूं, इसलिए तुम कुछ नहीं करोगे । यही बात है तो मुझे जहर क्यों नहीं दे देते ?

विट्ठल : पिताजी, आप किसी बात को समझते तो हैं नहीं । जिन लोगों को आप ने बुलाया है, क्या वे उसी समाज के गुलाम नहीं हैं जिस ने शादी को एक व्यापार बना रखा है ? उन नर-भक्षी पशुओं को शाका-हारी बनाने की कोशिश करना व्यर्थ है, मैं उस में अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता ।

विट्ठल : बेटा, तुम अपनी जिद पर अड़े रहोगे तो इंदु का जीवन बरबाद हो जायेगा । समाज ही इतना पतित हो गया है तो तुम अकेले क्या कर सकते हो ? पहाड़ से टक्कर लेने पर अपना ही सिर फूटता है ।

(विट्ठलनाथ की नजर बाहर की ओर जाती है । कुछ आदमियों को आता देख कर वे उतावले हो उठते हैं)

विट्ठल : आ गये, वे लोग आ गये । खाट की चादर ठीक करो । अरे, इन मैले कपड़ों को अंदर फेंको । इंदु, मेहमान आ रहे हैं, कपड़े बदल लो । स्टोव जला दो, चाय की केतली रख दो । प्रमोद, तुम जरा इन चीजों को ठीक करो, मैं उन्हें ले आता हूं ।

(बाहर जाते हैं । प्रमोद खाट पर बिछावन ठीक करता है, फिर मैले कपड़ों को समेट कर ट्रंक में रखता जाता है या रसोईघर में फेंक देता है । विट्ठलनाथ मेहमानों के साथ कमरे में प्रवेश करते हैं । मेहमानों में गोखले साहब हैं—वय लगभग पैंता-लीस साल । उन की पत्नी लीलाबाई भी उन्हीं की उम्र की महिला हैं । उन का लड़का शरद दुबला-पतला, करीब पचीस साल का है । उसे बार-बार कंधे उचकाने की आदत है । उस की बहिन प्रमिला छोटे कद की मोटी लड़की है । प्रमोद मेहमानों को नमस्कार करता है और उन्हें यथा-स्थान बिठाता है । शरद पैंट की जेब में हाथ डाल कर कमरे के चित्र आदि देखने लगता है)

गोखले : (इधर-उधर नजर घुमा कर) कमरा आप को अच्छा मिल गया है । कितनी पगड़ी दी है ?

विट्ठल : अजी, यह कमरा तो हमारे पास काफी दिनों से है । उस वक्त पगड़ी की बीमारी नहीं थी ।

गोखले : हां-हां, अपने यहां पगड़ी

● मस्तराम कपूर 'उर्मिल'

सामान्य और पिछली ओर रसोईघर को जानेवाला दरवाजा। एक खाट बिछी है और तीन कुर्सियों के सामने एक तिपाई पड़ी है। प्रमोद के पिता विट्ठलनाथ खाट पर बैठे पान लगा रहे हैं। पान का बीड़ा मुंह में डाल कर वे डब्बा बंद करते हैं और फिर बेचैनी से इधर-उधर टहलने लगते हैं। कमरे की चीजें अस्त-व्यस्त हैं। मैले कपड़े कीलों से लटके हैं। विट्ठलनाथ मैले कपड़ों को कीलों से झपट कर उतारने लगते हैं)

विट्ठलनाथ : (स्वतः) हे पांडुरंग ! तू ही इस घर का बेड़ा पार लगायेगा। देवा, लड़का दे तो समझदार, नहीं तो निपूत ही रहना भला। इंदु, . . . ओ इंदु !

(इंदु का प्रवेश)

इंदु : क्या है बाबा ?

विट्ठल : है मेरा सिर ! कब से कह रहा हूं कि आज वे लोग आने वाले हैं। घर की सफाई करो। लेकिन तुम लोगों के लिए तो जैसे कोई कुत्ता भूंक रहा है।

इंदु : बाबा, मैं ने आप को मना किया था। आप ने उन्हें बुलाया ही क्यों ? आप दर्जनों बार मुझे दिखा चुके हैं और दर्जनों बार मुझे नापसंद किया गया—इसलिए कि आप दहेज नहीं दे सकते। क्या इतने पर भी आप उम्मीद लगाये बैठे हैं कि कोई दयालु आयेगा और आप के गिड़गिड़ाने से द्रवित हो मुझे पसंद कर लेगा ?

विट्ठल : बेटी, लड़कियों की शादी के लिए दौड़धूप करनी ही पड़ती है। दस घरों में बात चलती है तो एक घर मिलता है। लेकिन यहां यह सब कौन करे ! तुम्हारा भाई है, वह अपने को गवर्नर समझता है।

(प्रमोद का प्रवेश)

प्रमोद : क्या हुआ ? क्यों इतना परेशान हो रहे हैं आप ?

विट्ठल : परेशान न होऊं तो कहां अपना सिर फोड़ूं ? सब कुछ देख कर भी पूछते हो क्या हुआ ? हे देवा, हे पांडुरंग ! तू मुझे इस संसार से उठा ले।

प्रमोद : पिताजी, भगवान ने ही जिस की किस्मत में आराम नहीं लिखा उसे आराम कौन दे सकता है ? चंगे-भले गांव में थे सो दौड़े-दौड़े यहां चले आये—जैसे बम्बई में कदम रखते ही इंदु के लिए लड़का मिल जायेगा।

विट्ठल : आता नहीं तो क्या करता ? तुम्हारे-जैसे सपूत पर बात

दीठ उठी तो

दीठ उठी तो उजले-धौले
खिले मेघशिशु
शीश-शीश बिखरे फूलों से
हंसते स्वप्न हठात

दीठ खो गयी
जैसे भूला हास किसी का
शीश-शीश सज गया शून्य में
ज्योतिर्मय अवदात

कितनी मोहमयी यह ठिठकन
अभी-अभी तो
आत्मलीन निस्संग अकेली घूम रही थी
यही चांदनी रात

अभी न जाने
कहां-कहां के
किन बिछुड़ों को टेर
घेर सब को आंचल में
मुग्ध आत्महारा-सी पथ में ठिठक गयी है
कितनी मोहमयी
ममता की मूरत ज्यों साक्षात

आह ! नहीं यह ममता
केवल . . . केवल करुणा
या केवल जड़ संयोगों का
एक अंध संघात

और चांदनी
इन मेघों की घनीभूत ममता से लिपटी
उतनी ही अनछुई और अवदात

—रमेशचन्द्र शाह—

के नाम पत्र ।

प्रमोद : अच्छा !

प्रमिला : इन्हें कुश्ती लड़ने का भी शौक रहा है । इसीलिए कंधे उचकाने की आदत है ।

शरद : प्रमिला, बेकार की बातों में समय नष्ट मत करो । प्रोफार्मा निकालो ।

(प्रमिला प्रोफार्मा और कलम निकालती है)

गोखले : विट्ठलनाथजी, बुरा न मानना । ये नये जमाने के लोग हैं । इन्हें नयी-नयी बातों का शौक होता है ।

प्रमिला : हां, तो लड़की आगे आये और मेरे सवालों का उत्तर देती जाये ।

(इंदु आगे आती है । प्रमिला प्रोफार्मा भरने लगती है)

प्रमिला : नाम ?

इंदु : इंदु ।

प्रमिला : वय ?

इंदु : बीस साल ।

प्रमिला : रंग, वजन, ऊंचाई ?

इंदु : (कुछ सोच कर) रंग गोरा, वजन १०८ पौंड, ऊंचाई पांच फुट ।

प्रमिला : कमर, गरदन और बाजू की मोटाई ?

प्रमोद : आप दर्जियों का काम तो नहीं करते ?

शरद : अजी साहब, आप इन बातों को नहीं समझ सकते । लड़की की सुन्दरता इन चीजों से परखी जाती है । खैर, आप जल्दी-जल्दी प्रोफार्मा भरवा दीजिये ।

प्रमिला : लड़की की शिक्षा ?

इंदु : बी. ए. ।

प्रमिला : नौकरी करती है ?

का किसी ने नाम भी नहीं सुना था। यह बीमारी तो रिफ्यूजियों के साथ आयी। अब तो लोगों के दिल-दिमाग ही बदल गये हैं। जो कुछ है, पैसा है। हर काम में व्यापार और हर चीज में नफा ही नफा चाहते हैं। मैं तो विट्ठलनाथजी, इस बम्बई से तंग आ गया हूं। दिल करता है इस शहरी सभ्यता से दूर . . . किसी छोटे-से गांव में जा बैठूं और बाकी उम्र भगवान की याद में गुजार दूं।

विट्ठल : आप ठीक कहते हैं, गोखले साहब !

(प्रमिला की ओर देख कर)

यह आप की लड़की है ?

गोखले : जी, इस साल बी. ए. में है। मनोविज्ञान पढ़ती है। कहती है, अच्छी लड़की का चुनाव बिना मनोविज्ञान पढ़े नहीं होता। बस, साथ चली आयी।

प्रमिला : इस में कोई शक नहीं। फर्ज कीजिये लड़का आत्म-केन्द्रित है और लड़की समाज-केन्द्रित या फिर लड़का समाज-केन्द्रित है और लड़की आत्म-केन्द्रित तो शादी अधिक दिन नहीं टिक सकती।

(गोखले प्रमिला को घूर कर देखते हैं। वह चुप हो जाती है)

गोखले : (प्रमोद की ओर इशारा करके) यह आप का लड़का है ?

विट्ठल : जी, यह मेरा लड़का है प्रमोद।

लीला : इस की शादी हो गयी ?

विट्ठल : अजी लड़कों की शादी में कौन-सी देर लगती है। छोकरी का बेड़ा पार लग जाये, फिर सोचेंगे।

लीला : लड़की तो देखी होगी ?

प्रमोद : अजी, लड़कियां तो मैं दिन में सैकड़ों देखता हूं।

लीला : मेरा मतलब—कोई लड़की पसन्द कर ली है या करनी है ?

प्रमोद : पसन्द करने के खयाल से तो अभी कोई लड़की नहीं देखी।

(प्रमोद प्रमिला की ओर देखता है। प्रमिला घूम कर खड़ी हो जाती है और हाथ के 'वेनिटी बैग' को हिलाने लगती है)

लीला : प्रमिला, इधर बैठो, बेटी।

(प्रमिला चुपचाप आ कर बैठ जाती है)

शरद : पिताजी, जो बातें करनी हैं जल्दी कीजिये। अभी हमें पांच लड़कियां और देखनी हैं।

गोखले : हां-हां भई, काम की बात हो जाये। यह है हमारा लड़का। बी. ए. बी. काम है। सरकारी दफ्तर में एकाउन्टेन्ट है। तीन सौ रुपये वेतन है।

प्रमिला : तीन सौ वेतन और दस-बारह रुपये रोज ऊपर की आमदनी।

प्रमोद : ऊपर की आमदनी ?

गोखले : इस के शौकिया कामों की आमदनी।

प्रमोद : भाई साहब को किस बात का शौक है ?

गोखले : समाचार-पत्रों में कुछ लिखता है।

प्रमोद : ओ हो, यह तो बहुत अच्छी बात है। कोई निश्चित कालम लिखते होंगे ?

प्रमिला : कालम निश्चित ही है—लेटर टू दी एडीटर अर्थात सम्पादक

(गोखले से) हां, मैं बदले में आप की लड़की से शादी करने को तैयार हूं, लेकिन एक शर्त . . .

गोखले : वह क्या ?

प्रमोद : अदला-बदली बिलकुल बराबर होनी चाहिये ।

गोखले : बिलकुल बराबर होगी । न हम एक पाई लेंगे और न देंगे ।

प्रमोद : इतना ही नहीं । इंदु का वजन १०५ पौंड है । मुझे बदले में १०५ पौंड की ही लड़की चाहिये ।

लीला : यह क्या तमाशा है ? हमारी लड़की तो . . .

प्रमोद : यह तो आप को करना ही पड़ेगा । १०५ पौंड की लड़की के बदले अगर मैं २१० पौंड की लड़की ले लूंगा तो चित्रगुप्त की वही में मेरा नाम डबल मुनाफाखोरों में लिख दिया जायेगा ।

प्रमिला : पिताजी, चलिये यहां से इन लोगों को तो बात करने की भी तमीज नहीं ।

प्रमोद : इस में बदतमीजी की क्या बात है, देवीजी !

विट्ठल : प्रमोद !

गोखले : यह क्या बकवास है ? क्या आप लोगों ने हमें बेइज्जत करने को बुलाया था ? चलो शरद ! ऐसे बदतमीज लोगों से बात करना भी ठीक नहीं ।

प्रमोद : ठहरिये, कुछ नाश्ते-पानी की व्यवस्था की है . . . एक मिनट . .

गोखले : हम ऐसे लोगों के घर पानी तक नहीं पीना चाहते ।

(चारों बाहर निकल जाते हैं)

विट्ठल : बस, यही है तुम्हारी लियाकत ! केवल काम बिगाड़ना ही जानते हो । घर अच्छा था, लड़का भी बुरा नहीं था । आदमी की तरह बात करते तो हजार-डेढ़ हजार तक मान जाते ।

प्रमोद : पिताजी, आप लोगों ने शादी को एक मजाक समझ रखा है ।

विट्ठल : मजाक मैं ने नहीं तुम ने समझ रखा है । मैं कहता हूं, अगर कल मैं मर जाऊं तो इंदु, उम्र भर क्वारी बैठी रहे ।

प्रमोद : आप इस काम को मेरे ऊपर छोड़ दें । मैं भी इस का भाई हूं । इसे सुखी देखने की इच्छा मेरे मन में भी है ।

विट्ठल : अच्छा, मैं अब कुछ नहीं बोलूंगा । देखना है तुम यह काम कैसे करते हो ?

प्रमोद : मैं कल ही अखबारों में विज्ञापन देता हूं ।

(प्रमोद दूसरे कमरे में जाता है)

विट्ठल : विज्ञापन ! तुम विज्ञापनबाजी से इंदु की शादी करना चाहते हो ? अगर तुम ने ऐसा किया तो मैं जहर खा कर मर जाऊंगा ।

प्रमोद : (नेपथ्य से) बिना डाक्टर की पर्ची के आप को कोई दुकानदार जहर नहीं दे सकता ।

(परदा गिरता है) ●

"कल के कवि-सम्मेलन में तो कई बहुत अच्छे कवि थे, फिर आप को केवल अंगाराजी की ही कविता क्यों पसंद आयी ?"
"क्योंकि लड़कों की हूटिंग के बावजूद साफ सुनायी दे रही थी ।"

इंद, : नहीं ।

शरद : वेरी वेंड ! नौकरी नहीं करनी थी तो बी. ए. क्यों किया ?

प्रमिला : नाचना, गाना आता है ?

इंद, : हां ।

प्रमिला : आप दहेज कितना दे सकते हैं ?

विट्ठल : गोखले साहब, आप तो जानते हैं . . .

गोखले : हां भई, मैं सब कुछ जानता हूं । लेकिन इन नये लोगों के बीच में नहीं पड़ना चाहता। आप थोड़ा-बहुत जो दे सकते हैं लिखवा दीजिये ।

विट्ठल : लेकिन गोखले साहब, दहेज में बिलकुल नहीं दे सकता । मैं गरीब आदमी हूं । यह बात मैं ने आप को पहले ही बता दी थी ।

गोखले : लेकिन मैं कब दहेज मांगता हूं ? भई, शादी करने के बाद ये लोग अपनी नयी गृहस्थी बसायेंगे । पगड़ी दे कर मकान लेना पड़ेगा । घर का फर्नीचर, भांडे-बरतन, सभी का बोझ इन्हें उठाना पड़ेगा ।

इंद, : ये जरूरतें पति-पत्नी की हैं और शादी के बाद इन की व्यवस्था वे स्वयं कर सकते हैं । शादी के लिए इन की शर्त लगाना व्यर्थ है । इस का बोझ न लड़की के मां-बाप पर पड़ना चाहिये और न लड़के के मां-बाप पर ।

प्रमोद : शादी के बाद जब तक इन के लिए मकान की व्यवस्था नहीं हो जाती, ये इस मकान में रह सकते हैं, हम कहीं और चले जायेंगे ।

गोखले : लेकिन हम कोई नाजायज काम तो नहीं कर रहे । लड़कीवालों को कुछ न कुछ देना ही पड़ता है । हमारे घर भी जवान लड़की है, हम कहां से देंगे ?

(विट्ठलनाथ चुप हो जाते हैं)

प्रमोद : देखिये साहब, दहेज हम लोग नहीं दे सकते ।

शरद : चलिये पिताजी, हम अपना फैसला इन्हें डाक से भेज देंगे ।

लीला : एक काम क्यों नहीं करते ? प्रमिला की शादी यहां कर दो, मामला बराबर हो जायेगा ।

प्रमोद : हैं !

लीला : हमारी लड़की भी पढ़ी-लिखी है । नाचना-गाना जानती है । सीना-पिरोना, खाना-पकाना सभी की शिक्षा ली है इस ने ?

विट्ठल : गोखले साहब, यह सब क्या है ? हमारी बिरादरी में ऐसी शादी की अब तक कोई मिसाल नहीं ।

गोखले : लेकिन, यह कोई जरूरी नहीं कि जो अब तक नहीं हुआ वह आगे भी नहीं होना चाहिये ।

शरद : अगर हम पुरानी रूढ़ियों को छोड़ कर एकदम आगे नहीं बढ़ सकते तो हमारी सारी शिक्षा बेकार है ।

इंद, : अगर गाय, भैंस की तरह लड़की की अदला-बदली करने का नाम आगे बढ़ना है तो आप ने खूब प्रगति की है ।

शरद : (प्रमोद से) तो आप क्या कहते हैं ?

प्रमोद : मुझे मंजूर है ।

इंद, : भैया !

विट्ठल : प्रमोद !

प्रमोद : तुम चुप रहो इंद, !

घण्टी की ध्वनि सुन कर उन का कवि-हृदय जाग उठा। जेल की घण्टी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने एक कविता लिखी—ऐ सन्ध्या की घण्टी, तेरा स्वागत में किस प्रकार करूं . . . तेरी ध्वनि निश्चय ही स्वतंत्रता को पास लायेगी। तेरी आवाज मुझे तो आजादी के नारों में स्वतंत्रता का एक मधुर निनाद प्रतीत होती है।

वीर सावरकर देश की स्वाधीनता को सर्वोपरि महत्व देते थे। उन का कहना था कि मुक्ति या मोक्ष स्वाधीनता रूपी देवी की उपासना से ही संभव है। उन्होंने लिखा है—

मोक्षमुक्ति हीं तुझींच रूपे
तुलाच वेदान्ती
स्वतन्त्रो भगवति योगिजन
परब्रह्म ह्मणती

—ऐ स्वतन्त्रता रूपी देवी! तू ही वेद, मुक्ति और मोक्ष है। योगी तुझे ही परब्रह्म कहते हैं।

यौवनकाल में सुख-सम्पत्ति को लात मार कर और स्त्री-बच्चों का मोह त्याग कर उन्होंने कांटों का ताज पहना। मृत्यु को सम्बोधित कर अपनी एक कविता में उन्होंने कहा—ऐ मृत्यु! तुम अकेली चली आओ। अपने साथ रोगों की उत्पीड़क सेना मत लाना। यदि तुम अपनी सेना को साथ लायीं तो भी मैं उस का सामना करने को तैयार हूं। मैं मानता हूं कि यदि मैं ने विलास में कुछ क्षण बिताये हैं, तो उस के कारण मुझे इन बीमारियों से लड़ना पड़ेगा। अतः मैं तुम्हें यह सलाह देता हूं कि तुम अकेली ही आओ। मैं ने तो सोच-समझ कर ही अपने जीवन को संकटों की खाई में झोंक दिया है अतः मैं तुम्हारी रोगों की सेना से कदापि डरने वाला नहीं हूं।

वीर सावरकर के साहित्य का महाराष्ट्र में बड़ा सम्मान है। नागपुर विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टरेट' की उपाधि से सम्मानित किया है। वे महाराष्ट्र साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके हैं। उन की अनेक रचनाओं का अन्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। सुप्रसिद्ध मराठी उपन्यासकार श्री माडखोलकर ने सावरकर-साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है, "वीर सावरकर ने अपने यौवन में अण्डमान का दर्शन एवं अनुभव करके भी अपनी कविता को भयविह्वल न होने दिया। उस का ओज प्रतिपक्षियों के आसुरी आघातों द्वारा भी दुर्दमनीय सिद्ध हुआ, मानो वज्र सिद्ध करने के उपरान्त महर्षि दधीचि की शेष दिव्य अस्थियों में से विधाता ने सावरकरजी की प्रतिमा का निर्माण किया हो।"

२८ मई को उन के जन्म-दिवस पर हार्दिक बधाई।

"मेरा खयाल है कि तुम्हारी पत्नी बड़े परिवार से आयी है," मित्र ने कहा।

"आयी है! अजी, साथ लायी है।"

दो आजीवन कारावासों का दण्ड भुगत रहे थे। उन के दोनों भाइयों को भी क्रांतिकारी षड्यंत्र के आरोप में जब जेल में डाल दिया गया, तो उन्होंने अपनी भाभी को सांत्वना देने के लिए 'सांत्वन' काव्य की रचना की। मराठी में लिखे इस काव्य में उन्होंने लिखा—

तरी जे गजेंद्रशुंडेने उपटिलें
श्री हरिसाठी नेलें
कमल फूल तें अमर ठेलें
मोक्षदातें पावन

अर्थात, स्वयं को मुक्त करने के उद्देश्य से (भारत रूपी) हाथी की सूंड़ के द्वारा जो कमल-पुष्प (सावरकर बन्धु) भगवान (मातृभूमि) को समर्पित करने के लिए तोड़ा जाता है, वह निश्चय ही अमर होता है।

वीर सावरकर के इस काव्य से न केवल उन के परिवार को, अपितु अनेक क्रांतिकारियों के परिवारों को भी प्रेरणा तथा सांत्वना मिली।

वीर सावरकर के महाकाव्यों में 'कमला' और 'गोमान्तक' प्रसिद्ध हैं। 'गोमान्तक' चार हजार पंक्तियों का है। इस में उन्होंने पुर्तगालियों के अमानवीय अत्याचारों का मार्मिक वर्णन किया है। १४९७ में जब वास्कोडिगामा ने भारत की खोज करके गोमांतक पर अधिकार जमाया, तब पुर्तगाली कवि क्यमांइन्स ने अपने 'ल्युसिअड' महाकाव्य में बड़े दर्प के साथ पुर्तगाली वीरता का वर्णन किया। इसी दर्प को चूर्ण करने के लिए सावरकरजी ने 'गोमांतक' काव्य की रचना की। 'आत्मबल', 'मूर्ति दुजी ती', 'मांझे मृत्यपत्र', 'सायं घंटा', 'मरणोन्मुख शय्येवर', 'विरहोच्छवास' आदि उन के प्रसिद्ध लघुकाव्य हैं।

सावरकरजी ने वीर रस-प्रधान कविताओं की अधिक रचना की। वैसे शृंगार तथा प्रकृति-वर्णन पर भी उन्होंने सुन्दर कविताएं लिखीं। अण्डमान की कालकोठरी से उन्होंने उद्घोष किया —

अनादि मी, अनन्त मी, अवध्य मी भला
मारिल रिपु जगति असा कवण जन्मला

—मैं अनादि हूं, अनन्त हूं, अत: विश्व में कौन ऐसा शत्रु है जो मुझे मार सके!

वे गीता के महान उपासक हैं, अत: निर्भीकतापूर्वक कहते हैं—

अग्नि जालि मजसी, ना खड्ग छेदीत
भिडनी मला भ्याड मृत्यु पलत सुटतो

—न मुझे अग्नि ही जला सकती है और न खड्ग ही मेरा बाल बांका कर सकता है। मृत्यु तो मुझ से डर कर दूर भाग जाती है।

सावरकरजी अंगरेजों के चंगुल से निकल कर जहाज से समुद्र में कूद पड़े। मीलों तैरने के बाद फ्रांस के तट पर पहुंचने पर बंदी बना लिये गये। अपने बंदी-काल में उन्होंने कई कविताएं लिखीं। एक कविता में उन्होंने लिखा—कन्हैया की वह नाद-भरी मुरली यदि मारूबाजे का रूप धारण कर ले तो क्या ही अच्छा हो? भारतवर्ष की पराधीनता में अब यह मुरली किस काम आयेगी?

अण्डमान की कालकोठरी में जब वे कोल्हू में बैल की तरह जुत कर तेल पेर रहे थे तो सायंकाल बजनेवाली
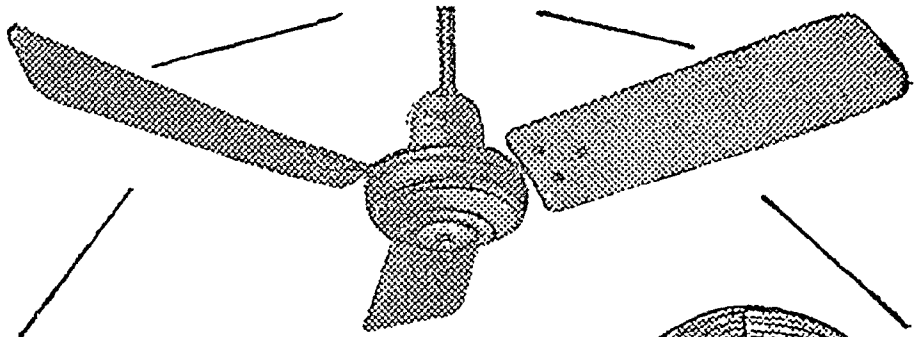
आपके
घर में
उषा
चाहिए सर्वोत्तम
संसार के करीब चालीस देशों के लोग लाखों की संख्या में ऊषा के पंखे इसलिए पसन्द करते हैं कि उसकी क़िस्म व कारीगरी में कहीं कोई दोष नहीं है और वह क्वालिटी में सर्वोत्तम हैं।
संसार के सबसे बड़े 'सिंगल युनिट' पंखे के कारखाने में बने हुए 'ऊषा' पंखे, भारत भर में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं।
पंखा खरीदते समय आप पूरे विश्वास के साथ 'ऊषा फैन' खरीद सकते हैं।
ऊषा के सभी सीलिंग पंखे डबल बॉल बेयरिंग युक्त हैं ताकि पंखे बिना किसी शिकायत के बहुत दिनों तक चल सकें।
ऊषा फैन
JAY उत्पादन
दि जय इंजीनियरिंग वर्क्स लि० — कलकत्ता ३१।
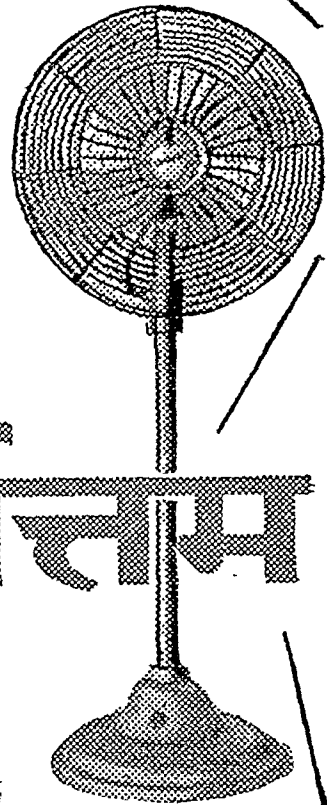
हास्य-व्यंग्य

शोध-कर्ताओ! सिनेमा-जगत अछूता है

● अशोक शुक्ल

सिनेमा के अत्यधिक प्रसार से आज हमारे सांस्कृतिक मूल्यों में आमूल परिवर्तन हो गया है। खेद है कि इस ओर विद्वानों ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। वैसे निर्विवाद रूप से यह विषय 'थीसिस' का है, पर शोधकर्ताओं के मार्ग-प्रदर्शन के विचार से इस निबंध में हिन्दी-सिनेमा का सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

आज के व्यस्त जीवन में व्यायाम और खेलों को समुचित प्रोत्साहन नहीं मिलता, इसीलिए हमारी वर्तमान पीढ़ी शारीरिक दृष्टि से पहले की अपेक्षा कम-जोर होती जा रही है। फिल्मों में इस ओर समुचित ध्यान दिया जाता है। यहां प्रेम करते समय यह अनिवार्य है कि नायक-नायिका किसी पार्क में, समुद्र के किनारे या वर्फ पर दौड़ें। दौड़-दौड़ कर प्रेम करने से उन का सौंदर्य दिन-प्रतिदिन निखरता ही चला जाता है। इसी प्रकार फिल्म की समाप्ति से पूर्व सभी प्रमुख पात्र नायिका को खलनायक से बचाने के लिए अथवा पहाड़ की चोटी से कूद पड़ने से रोकने के लिए दौड़ लगाते हैं। प्रायः प्रत्येक फिल्म में नायिका को (कूदने से रोकने के लिए) पहाड़ की चोटी पर जाने के लिए) पहाड़ की चोटी पर चढ़ना पड़ता है। इस से स्वास्थ्य भी बनता है और पर्वतारोहण की रुचि भी जाग्रत होती है।

पुराने समय में किसी सुन्दरी का प्रेम-पात्र बनना बड़ा कठिन था, इस के लिए व्यक्ति में अनेक गुणों का होना अनिवार्य था। फिल्म में इस कठिनाई को बहुत अंशों तक दूर कर दिया है। यहां नायिकाएं नायकों की बदमाशी, आवारागर्दी, और छेड़-छाड़ से संतुष्ट हो कर प्रेम कर लेती हैं। यदि किसी नायक में गंभीरता, ज्ञान, शराफत आदि दुर्गुण होते हैं, तो वे बुरा मान जाती हैं। इस प्रकार के सरल प्रेम के प्रयत्न अब सिनेमा-जगत से बाहर भी होने लगे हैं।

अब तक यह एक सर्वमान्य धारणा

जंगली जानवरों को निहत्थे मार डालना, मदमस्त हाथियों को वश में कर लेना इन के बायें हाथ का खेल है। सिनेमा के गुण्डे और पहलवान भी इतने शरीफ होते हैं कि थोड़ा-सा विरोध करने के बाद नायक के हाथों पूरी तरह पिट लेते हैं।

वास्तविक जगत में दुर्घटनाओं और प्रेम के लिए कोई निश्चित मौसम नहीं होता। इसलिए दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्तियों और प्रेमियों को बड़ा कष्ट होता है। फिल्मों में ऐसी अनिश्चितता नहीं पायी जाती। यहां दुर्घटनाएं उसी समय होती हैं जब बिजली कड़कती है और घनघोर वर्षा होती है। अकसर चित्र की नायिका खलनायक के षड्यंत्र के कारण घर से निकाली जाती है। उस के घर से निकलते समय बिजली भी कौंधने लगती है और बादल भी घिर कर गरजने लगते हैं। फिर जोरों की वर्षा भी होती है, भले यह वर्षा मात्र नायिका के ऊपर ही होती है और आसपास के मकानों तथा पेड़-पौधों पर इस का कोई असर नहीं होता, पर ऐसे में वह रास्ता भटक कर कहां से कहां चली जाती है। खैर, चित्र के अन्त में नायक से उसे सत्कारपूर्वक मिला अवश्य दिया जाता है। इसी प्रकार फिल्मों में प्रेम केवल चांदनी रातों में किया जाता है। वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि फिल्मों से बाहर के लोग अंधेरी रातों में भी प्रेम कर लेते हैं।

आजकल विवाह-जैसे उत्सव में भी सादगी की दुहाई दी जाती है। सुनते हैं कुछ विवाहों का तो पड़ोसियों तक को पता नहीं चलता। फिल्मों ने समाज की इस कुप्रथा का करारा जवाब दिया है। यहां बिना हड़बोंग मचे कोई भी विवाह संभव नहीं। जैसे ही फेरे लगने प्रारम्भ होते हैं, कोई वीर कड़कती आवाज में कहता है—'ठहरो!' इस के बाद वह एक संक्षिप्त-सा भाषण देता है। फिर खलनायक को विवाह की वेदी से मार कर भगा दिया जाता है, वहीं कहीं से खोज कर नायक को ले आया जाता है और नायक-नायिका का धूमधाम से विवाह रचाया जाता है। इस तरह की रौनक, जो फिल्मी विवाहों में पायी जाती है, अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि बाहरी जगत के अधिकांश रौनक-पसन्द नवयुवक सिने-तारिकाओं से विवाह करने के सपने संजोते रहते हैं।

इन के अतिरिक्त भी फिल्मों की अनेक विशेषताएं हैं। उदाहरण के लिए यहां सभी बच्चे तुतला कर ब्रह्मज्ञानियों की-सी बातें करते हैं, प्रत्येक घटना के बाद एक सुंदर-सा नृत्य होता है, नायक और नायिका विवाह से पूर्व स्वप्न में सशरीर परीलोक की सैर करते हैं, मृत्यु या अन्य कष्टों के समय संबंधित पात्र गाना गाते हैं, आदि। फिर कष्ट जितना अधिक होता है, गाना भी उतना ही सुरीला हो जाता है। आशा है, उपर्युक्त निरूपण के प्रकाश में पी-एच. डी. के प्रयासी विद्वान सिनेमा-जगत का सांस्कृतिक मूल्यांकन सुविधापूर्वक कर सकेंगे। ●

...ही है कि मृत्यु का समय अनिश्चित
...। बड़े-बड़े ज्योतिषी भी मृत्यु का
...ठीक समय बता सकने में असमर्थ रहे
है। पर फिल्म ने इस धारणा को बदल
दिया है। फिल्मों में मृत्यु-शय्या पर
पड़े व्यक्ति के पास एक दीपक रख
दिया जाता है। जब तक दीपक जलता
रहता है, तब तक वह व्यक्ति मर ही
नहीं सकता। जैसे ही दीपक बुझा
कि वह व्यक्ति तत्काल मरा।

फिल्म-जगत से बाहर की सभ्यता
सच्चे प्रेमियों को प्रेम करने की समु-
चित सुविधाएं नहीं प्रदान करती।
यह विचारणीय है कि उचित संरक्षण
के अभाव में नवयुवकों की प्रेम-शक्ति
चप्पलें खाने और हवालात जाने में
नष्ट हो रही है। फिल्म ने इस ओर
पूरा ध्यान दिया है। यहां पार्कों,
उद्यानों में पूरा एकान्त रखा जाता है,
ताकि नायक-नायिका मनचाहे ढंग से
प्रेम कर सकें। इस बात का भी
प्रबन्ध रखा जाता है कि प्रेम-प्रदर्शन
के समय अर्थात नायक-नायिका की
दौड़-धूप और युगल-गान के समय
पुलिस के सिपाही, पार्क-रक्षक चौकीदार
या सामान्य जनता के आदमी वहां
पहुंच कर बाधा न डाल सकें।

हिन्दी चित्रपट ने भगवान की भी
आदतें बदल दी हैं। पहले भगवान
भक्तों की करुण पुकार सुन कर नंगे
पांव दौड़ पड़ते थे, पर अब वे सुन्दर-
सा गाना सुने बिना प्रसन्न ही नहीं
होते। साथ ही ऐसा भी प्रमाण
नहीं मिलता कि कोई जोरदार गाना
सुन कर भी भगवान ने भक्त पर कृपा
न की हो।

कौन नहीं जानता कि संसार में बड़े-
बड़े अनर्थ क्रोध के कारण हो जाते हैं?
हर्ष की बात है कि फिल्मों में क्रोध
के कारण होने वाले अनर्थों पर पूरी
विजय पा ली गयी है। यहां क्रोध
आने पर दुश्मन पर प्रहार नहीं किया
जाता, वरन कांच के गिलास, टी-सेट
आदि फोड़ कर ही क्रोध प्रकट कर
लिया जाता है। जब बहुत अधिक
क्रोध दिखाना होता है तब फर्नीचर
उठा कर फेंकना, कपड़े फाड़ना और
सिगरेट तोड़ डालना आदि क्रियाएं
दिखायी जाती हैं।

सभ्यता में स्वीकृत परिवर्तनों के
साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यों में भी परि-
वर्तन आता है। क्रमशः यही मूल्य
सभ्यता के मानदण्ड बन जाते हैं।
फिल्म ने भी कतिपय नये मूल्यों की
स्थापना की है। यहां पुरुषों की
सभ्यता की परख मोटर तेज दौड़ाने,
अदा से सिगरेट पीने और लड़कियों
को छेड़ सकने के गुणों से होती है।
इसी प्रकार स्त्रियों की सभ्यता की
परख नाक सिकोड़ने, आंखें नचाने
और लहरा कर चलने के सद्गुणों से
की जाती है।

संसार में आज बुद्धिवाद का
बोलबाला है। बुद्धि के आगे शारी-
रिक बल को उचित महत्व नहीं
मिल पाता। फिल्म-जगत में इस
कमी पर गंभीरता से विचार हुआ है।
फिल्मों के सभी नायक असीम बल-
शाली होते हैं। वे बड़े-बड़े गुण्डों
और पहलवानों की भीड़ को अकेले ही
मारपीट कर परास्त कर देते हैं।
दसमंजिली इमारत से कूद जाना,

मारने की सामग्री पहुंचा दी जाये। कोई अनपढ़ नहीं, वरन शिक्षित व्यक्ति ऐसा करते देखे गये हैं। अध्यापकों पर सिफारिश का दबाव डाल कर या उन्हें ट्यूशन का लोभ दे कर कक्षोन्नति कराने की कोशिशें तो होती ही रहती हैं। किसी भी तरह लड़का अगला दर्जा पा जाये, इस बात का भूत लोगों पर सवार है? हम क्यों नहीं सोचते कि हमें विद्वान लोगों की आवश्यकता है, जो देश का गौरव बढ़ा सकें? उत्तर स्पष्ट है—हम चाहते हैं कि जैसे-तैसे लड़का पढ़ कर कुछ कमाने लग जाये। गरीब लोगों की बात जाने दीजिये, सम्पन्न लोग भी किसी तरह धनोपार्जन की कुंजी हाथ में थमा कर लड़के को पढ़ाई से अलग कर देना चाहते हैं।

इस सब का परिणाम यह होता है कि लड़के वास्तविक शिक्षा की अवहेलना करते हैं। वे सिर्फ इस कोशिश में रहते हैं कि जैसे भी हो हाथ-पांव मार कर दूसरी कक्षा में पहुंचा जाये। ऐसी स्थिति में शिक्षक बहुत चाहने पर भी कुछ नहीं कर सकता। लड़का यह समझता है कि परीक्षा में नकल करने पर अगर पकड़ लिया गया तो भी पिताजी कोशिश करके उसे बचाने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु अगर वह जान ले कि परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग करने पर उस की पीठ पर पिताजी के डंडे बरसेंगे, तो निश्चय ही उसे नकल करने का साहस नहीं होगा।

खेद है, ऐसा ही तो नहीं है। हमें प्रायः अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि अमुक स्थान पर किसी परीक्षार्थी ने अध्यापक को परीक्षा-भवन के बाहर पीटा और हम लोग इतने पतित हो गये हैं कि अपने बच्चों को ऐसा करने से रोक नहीं पाते।

इस तरह अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के बाद माता-पिता चाहते हैं कि शिक्षा-काल में लड़के पर किया गया व्यय मय ब्याज के वसूल हो जाये। उन की नजरों में आमदनी वाली जगह ही होती है। चाहेंगे लड़का दरोगा, इंजीनियर या रेलवे कर्मचारी बने। मेरा एक मित्र डाकखाने और रेलवे दोनों विभागों में क्लर्क की जगह के लिए चुन लिया गया। दोनों ही पदों का वेतन-क्रम समान था। किन्तु उस पर जोर डाला गया कि वह रेलवे की नौकरी स्वीकार करे, क्योंकि डाकखाने में ऊपर की आमदनी का कोई जरिया न था।

सोचता हूं, क्यों नहीं मैं ने रामकृष्ण से कह दिया कि उन का लल्लू इस वर्ष धन कमाने योग्य नहीं हो सकेगा। अब उसे अगले वर्ष फिर इसी कक्षा में पढ़ना पड़ेगा। ●

"सुना है, आप की पत्नी आजकल तेजी से संगीत सीखने में लगी हैं। क्या उन की आवाज में कुछ सुधार हुआ?"

"हां, पहले केवल पड़ोसी नींद हराम होने की शिकायत करने आते थे और अब पूरा महल्ला आता है।"

एस० लाल

शाम को ही रामकृष्ण हम से पूछ गये थे, "कल तो लल्लू का नतीजा सुनाया जायेगा न ! देखिये, भगवान क्या करते हैं ।" और मेरे 'हां' कहने पर, सुवह स्कूल में मेरा दर्शन करने की इच्छा प्रकट कर चले गये थे ।

रामकृष्ण मेरे महल्ले में ही रहते हैं । जुलाई में रामकृष्ण मेरे पास कई वार दौड़ कर आये थे ताकि मैं उन के लालता का नाम स्कूल में लिखवा दूं । नाम लिखे जाने तक वे कई वार स्कूल आये कि लल्लू की पढ़ाई कैसी चल रही है । मैं ने कई वार उन के पास सूचना भेजी कि लालता पढ़ाई में कमजोर है, घर पर देख-रेख रखें । रामकृष्ण हमेशा यह कह कर टाल जाते थे कि लड़के की खूव मरम्मत करते रहिये । गोया उसे पीटने की खुली छूट दे कर उन्होंने अपना सारा वोझ मेरे सिर डाल दिया था ।

उस शाम को जव वे मेरे घर आये तो जान-बूझ कर मैं ने अधिक वातचीत न की । मन ही मन मुझे हंसी आ रही थी और तरस भी । वे तो आये थे यह जानने कि जो भार उन्होंने मेरे सिर डाला था उसे मैं ठीक से वहन कर सका या नहीं । चाहता तो उसी समय वता देता कि लालता फिर नवें दर्जे में ही पढ़ेगा । लेकिन उन का उत्साह भंग हो जाता और दूसरे दिन शायद वे स्कूल न जाते । इसलिए मैं विलकुल चुप ही रहा और वे आस वांधे अपने घर लौट गये । मैं उन की वात सोच-सोच कर रात भर परेशान होता रहा ।

लोगों में शिक्षा के प्रति इतनी उदासीनता क्यों है ? वे शिक्षा को पैसा कमाने का साधन क्यों मानते हैं ? प्रायः ऐसी वातें देखने में आती हैं कि लड़का परीक्षा दे रहा है और उस के अभिभावक या परिचित परीक्षा-भवन के वाहर खड़े प्रयत्नशील रहते हैं कि किसी तरह उस तक नकल

लगभग २० वर्ष पुरानी घटना है। रात के दस बज चुके थे। मैं अपने मकान के छज्जे पर खड़ी थी। नीचे सड़क पर एक अंधा भिखारी अपनी साथिन के साथ जा रहा था। उसे देख कर मेरी इच्छा हुई कि इसे कुछ देना चाहिये। तभी भिखारी चलता-चलता रुक गया। उस की साथिन ने कहा कि चलता क्यों नहीं है? भिखारी बोला कि उसे एक आवाज सुनायी दी है कि यहां भीख मिलेगी। सुन कर मैं हतप्रभ हो गयी। मेरे अंतर की आवाज उसे कैसे सुनायी पड़ गयी? खैर, मैं ने नीचे आ कर उसे भीख दी। भिखारी तो चला गया, पर मेरे लिए एक मानसिक द्वंद्व छोड़ गया।

—सत्यवती भैया, वर्धा

मेरे एक चचेरे भाई अब भी इंजन-ड्राइवर हैं। कुछ वर्ष पूर्व वे कलकत्ता से एक एक्सप्रेस ट्रेन ले कर चले। मैं भी उन के साथ था। ट्रेन तेज रफ्तार से जा रही थी। स्टेशन समीप आया तो रफ्तार कम करने के लिए भाई साहब ने ब्रेक लगाया। पता चला कि ब्रेक बेकार हो चुका है।

अब स्टेशन आने में मुश्किल से तीन-चार मील रह गये थे और ट्रेन पूरी रफ्तार से भागी जा रही थी। ड्राइवरों ने मिल कर एक युक्ति निकाली। वे पूरे जोरों से खतरे का भोंपू बजाने लगे जिस से स्टेशन आने पर सिगनल-मैन ने ट्रेन को आगे बढ़ जाने दिया। अब सब मिल कर भाप की शक्ति को कम करने लगे और तब कुछ देर बाद जा कर इंजन काबू में आया। इस तरह एक बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते बच गयी।

—रवींद्रनाथ बख्शी, वाराणसी

मैं तब हाईस्कूल की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। नगर के प्रसिद्ध 'महावीर बाग' में दोपहर को जा कर पढ़ा करता था। एक दिन मैं वहीं एक आम के पेड़ के नीचे बैठा पढ़ रहा था कि अचानक एक तोता जोरों से चीं-चीं करता हुआ मेरे आसपास उड़ने लगा। मैं ने उस की ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो कुछ देर बाद वह बिलकुल मेरे सिर के ऊपर चीखता हुआ उड़ने लगा। उस की इस हरकत से मैं डर गया। तभी मेरी नजर चार-पांच फुट की दूरी पर फुफकारते हुए काले नाग पर पड़ी। वह मेरी ओर ही आ रहा था। मैं किताबें वहीं छोड़ कर घर की ओर सरपट भागा।

—नरेंद्रकुमार मेहता 'निराश', उज्जैन

मैं अपने दोनों भाइयों के साथ आंखमिचौनी खेल रहा था। मझला भाई चोर बना था और हमें छिपना था। मैं ने छोटे भाई को लकड़ी की एक बड़ी पेटी में छिपा कर ढक्कन बंद कर दिया। तभी एक मदारी महल्ले में आ गया। मदारी को देखते ही हम दोनों भाई तमाशा देखने के लिए सरपट भाग निकले। तमाशे की धुन में मैं छोटे भाई को बिलकुल भूल चुका था। तमाशा

पीना भी अच्छा है। यह एक वाक्य मेरे जीवन का पथ-प्रदर्शक बन गया। आज मैं इंजीनियरी के पांचवें वर्ष में हूं, तथा अभावों से निरंतर लड रहा हूं।

—शिवशंकर दीक्षित, भोपाल

मैं कमरा बंद कर लेटी ही थी कि खिड़की पर म्याऊं-म्याऊं की बड़ी करुण आवाज सुनायी दी। मैं

जीवन एक अनबूझ पहेली

उन दिनों मैं इंजीनियरी के प्रथम वर्ष में था। पिताजी को उस समय केवल १०० रुपये मासिक मिलते थे, अतः मेरे खर्च के लिए कुछ भी भेजना उन के लिए संभव नहीं था। हायर सेकंडरी में मिले अच्छे नंबरों तथा कुछ व्यक्तियों की कृपा से मैं किसी तरह छात्रावास में रह कर पढ़ रहा था। पैसों के अभाव में न ढंग के कपड़े पहन पाता था और न समय पर भोजन-व्यय दे पाता था। एक दिन वार्डन ने मुझे सब के सामने बुरी तरह डांट दिया। मैं ने भाई साहब को पत्र लिखा कि इस तरह का अपमानित जीवन मैं लगातार पांच वर्षों तक नहीं बिता सकता। उन्होंने मुझे लिखा : विष पीने से यदि कोई नीलकंठ (शिव) कहला सके तो विष

ने लेटे-लेटे ही बिल्ली को भगाने की कोशिश की, पर वह चीखती ही रही। मैं ने उठ कर बिजली जलायी। देखा कि एक बिल्ली खिड़की की जाली पर अपना सिर पटक-पटक कर म्याऊं-म्याऊं कर रही थी। मेरे भगाने पर भी वह न भागी तो मैं समझी कि शायद भूखी है। एक कटोरे में दूध रख कर मैं ने दरवाजा खोल दिया। वह तीर की तरह अंदर भाग गयी और दूध की तरफ देखा भी नहीं। कुछ देर बाद वह फिर खिड़की पर दिखायी दी, लेकिन दो बच्चों को अपने अंक में समेटे। अब वह कृतज्ञता से मेरी ओर देख रही थी। मैं सोचने लगी कि मां मां ही है चाहे वह इनसान हो, चाहे पशु।

—शीला शर्मा, हरदोई
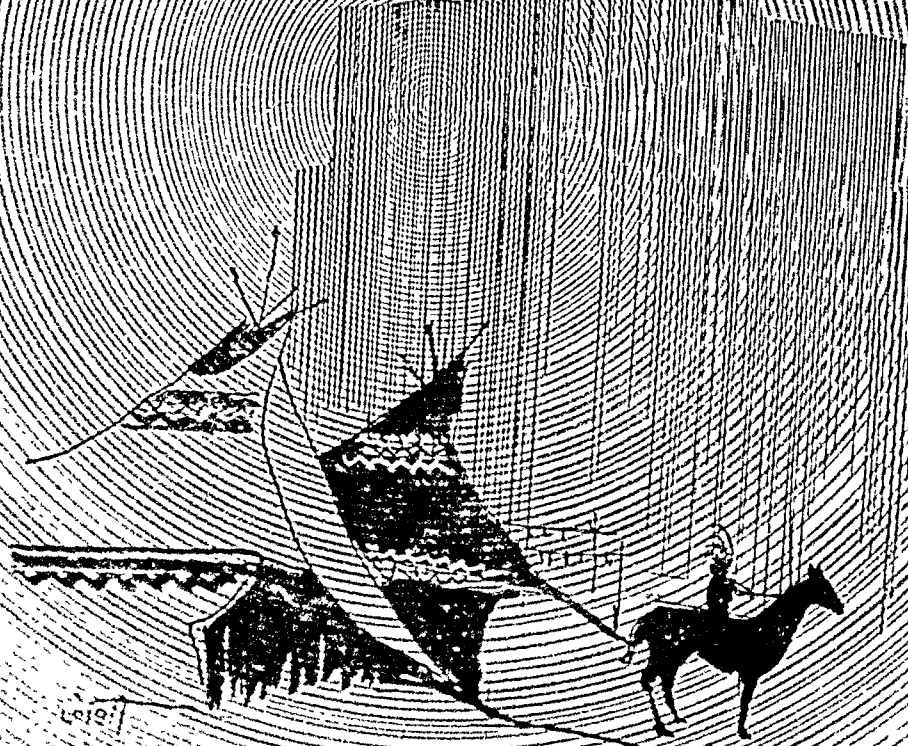
दिखाते समय मदारी ने अपने साथ ही वाले लड़के के गले पर चाकू रखा। तब मुझे छोटे भाई का ध्यान आया। मैं तेजी से घर भागा और जा कर पेटी खोली। वह बेहोश हो चुका था। कुछ देर बाद उसे होश आया। आज भी सोचता हूं कि यदि मदारी ने लड़के के गले पर चाकू न रखा होता तो क्या मुझे भाई की याद आती ?

—नानकराम कुमावत, पाली

जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का छात्र था। एक दिन मैं अपने परिचय-पत्र पर प्राक्टर के हस्ताक्षर कराने गया। उसी दिन मुझे फीस देनी थी अतः ३० रुपये भी लाया था। जब मैं फीस जमा करने गया तो पाया कि नोट कहीं गिर चुके हैं।

कुछ दिन बाद मैं आवेदन-पत्र ले कर प्राक्टर के पास गया। उस समय वे किसी लड़के से बात कर रहे थे। मेरा आवेदन-पत्र पढ़ कर वे आश्चर्य से बोले, "अच्छा, तुम्हारे भी तीस रुपये खोये हैं ! इस के भी तीस ही खोये हैं।"

मैं भी आश्चर्य से उस लड़के की तरफ देखने लगा। प्राक्टर फिर बोले, "इस में शक नहीं कि एक छात्र मेरे पास तीस रुपये जमा कर गया है जो उसे पड़े मिले थे। पर तुम दोनों उन्हें मांग रहे हो। तुम लोग कुछ प्रमाण दे सकते हो ?"

"सर, वे दस-दस के नये तीन नोट हैं और वे अंगरेजी या 'ला' विभाग में कहीं गिरे होंगे। चार-पांच दिन पहले मैं आप से हस्ताक्षर कराने आया था। नोट उसी दिन गिरे हैं," मैं ने कहा।

"चार-पांच दिन पहले मेरे रुपये भी गिरे हैं। वे भी दस-दस के नये तीन नोट थे। मैं 'ला' का छात्र हूं, अतः वे 'ला' विभाग में ही गिरे होंगे," दूसरे लड़के ने कहा।

मैं ने एक और प्रमाण प्रस्तुत किया, "सर, पिताजी ने नयी गड्डी के नोट निकाले थे अतः उन के नंबर क्रम से होंगे। मैं ने वे नोट परिचय-पत्र के अंदर रखे थे अतः वे बीच से मुड़े होने चाहियें।"

प्राक्टर ने उन नोटों को देखा, फिर मेरा परिचय-पत्र। तब उस लड़के को डांट कर भगा दिया। मुझ से वे बोले, "तुम्हारे सामने दो उदाहरण हैं। एक लड़के को ये रुपये पड़े मिले और वह मुझे दे गया। दूसरा यह लड़का था जो झूठ बोल कर ये रुपये ले जाना चाहता था, लेकिन जीवन में झूठ अधिक देर तक साथ नहीं दे पाता है।"

—कृष्णमुरारि त्रिपाठी, कानपुर

इस अंक के पुरस्कार-विजेता क्रमशः इस प्रकार हैं—शीला शर्मा, नरेंद्रकुमार मेहता निराश, नानकराम कुमावत। प्रथम पुरस्कार २५ रुपये, द्वितीय १५ रुपये तथा तृतीय १० रुपये। शेष प्रकाशित संस्मरणों पर ५-५ रुपये।

करना ही होगा। सब को पड़ोसी मानने के कारण ही आरन का चिढ़ाने का नाम भी 'पड़ोसी' पड़ गया था।

सीधे-सादे आरन के मन में बाइबिल के आदेशानुसार जीवन बिताने के अतिरिक्त कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। इसलिए, बड़ा होने पर यद्यपि उस ने अंगरेजी के अलावा ग्रीक भी सीखी, पर काम बढ़ईगीरी का ही सीखा। कुछ ही दिनों में वह यह काम सीख कर एक कुशल बढ़ई बन गया। इस से वह अपने और बूढ़ी मां के गुजारे लायक कमा लेता था।

बाइबिल का पाठ वह अब भी नियमित रूप से करता था। इस से उस के मन को बड़ी शांति मिलती थी। उस से अधिक शांत और प्रसन्नचित्त व्यक्ति गांव में था भी नहीं। पर, गांव के लोग देखते कि इस शांत, सीधे-सच्चे और विश्वसनीय व्यक्ति के जीवन में भी कभी-कभी एक गहरी अशांति उभर कर आ जाती थी। अशांति के इन क्षणों में वह अकसर लोगों से कहा करता था, "भगवान की कितनी अधिक कृपा है मुझ पर, पर उस कृपा का लाभ मैं औरों को नहीं पहुंचा पा रहा हूं।" लोग प्रश्न करते तो वह स्पष्टता से बताता कि उस की इच्छा पादरी बन कर धर्म-प्रचार करने की है। मां की मृत्यु के बाद उस की यह इच्छा और भी तीव्र हो गयी थी।

लेकिन पादरी बनना आसान न था। उस के लिए एक खास किस्म के प्रशिक्षण और बड़े आदमियों के परिचय की आवश्यकता थी, जो उस-जैसे मामूली आदमी के बस का काम न था। अतः बेचारा आरन अपनी इस इच्छा को मन में ही दबा कर रह जाता। यह विचार उसे बराबर खाये जाता था कि भगवान का सेवक बने बिना उस का भगवान से साक्षात्कार नहीं हो पायेगा। वह एकान्त मन से इस साक्षात्कार के लिए आकुल था।

जब उस की उम्र पचीस वर्ष की हो चुकी, पादरी बन कर लोगों को धर्म का पाठ पढ़ाने की उस की इच्छा अनायास पूरी हो गयी।

इस साल उस के गांव में धर्म-प्रचारकों का एक मेला हुआ। इस मेले में आरन ने कई धर्म-प्रचारकों के भाषण सुने, पर हार्ज नामक धर्म-प्रचारक के भाषण ने उस पर गहरा असर किया। हार्ज का भाषण क्या था, एक अपील थी जो उसे लगा सीधे उस से की गयी है।

संक्षेप में, हार्ज की अपील थी कि उसे मिनीसोटा नाम के एक पिछड़े प्रदेश में, जहां नब्बे प्रतिशत आबादी असभ्य रेड इंडियन लोगों की थी, धर्म-प्रचार करने के लिए कुछ साहसी और धर्मप्राण युवकों की जरूरत थी, ऐसे युवकों की जो इस दुनिया की दौलत और यहां के सुखों को ठुकरा कर स्वर्ग की दौलत पाने के लिए उस पिछड़े और जंगली प्रदेश के कष्टों को भोगने के लिए तैयार हों। आरन को लगा हार्ज ने यह पुकार उसी को संबोधन करके की है।

भाषण के अंत में वह हार्ज से मिलने गया। हार्ज से मिलने में कोई परेशानी नहीं हुई, पर हार्ज का अभिवा-

मूल : सिकलेयर लुई
रूपा० हरिमोहन शर्मा

भगवान कहां है ? क्या हम उस का साक्षात्कार कर सकते हैं ? अमरीका के नोवल-पुरस्कार विजेता सिकलेयर लुई कृत 'द गाड सीकर' उपन्यास में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर मिलता है। कथानक एक ऐसे सरल-हृदय और आदर्शवादी गोरे युवक के चारों ओर घूमता है जो धर्म-प्रचार के लिए रेड इंडियनों के बीच जा कर रहता है। अमरीका के इन मूल निवासियों को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाने के लिए आतुर अन्य ईसाई धर्म-प्रचारकों में वह क्या पाता है, इस का बड़ा ही वास्तविक चित्रण है। धर्म के नाम पर पाखंड की यह कहानी किसी भी देश की हो सकती है—हमारे देश की भी !

सन १८३० ! अमरीका के एक छोटे-से गांव के एक छोटे-से घर में आधी रात बीत चुकी है। दो लड़के सो रहे हैं। उन में एक गोरा है, एक काला। दोनों सपना देख रहे हैं। गोरा लड़का सपना देख रहा है कि वह रंगीन कांच की दीवारों वाले स्वर्ग में विचरण कर रहा है, जहां प्रकाश ही प्रकाश फैला है। काले लड़के के सपने पर अंधेरा छाया हुआ है। वह अपने को एक अंतहीन अंधेरे पथ पर जाते देख रहा है। सहसा, दूर क्षितिज में उसे एक घर दिखायी देता है, ठीक वही घर, जिस में इस समय वह सोया हुआ है। वह इस घर में आ जाता है। घर में पहुंच कर उसे लगता है कि वह शायद अब एक आदमी की तरह जी सकेगा। अब तक तो वह एक जानवर की भांति खोया हुआ ही घूम रहा था।

उन दिनों अमरीका में काले लोगों को आदमी नहीं समझा जाता था। उन्हें जानवरों से भी बदतर समझा जाता था, क्योंकि जानवर तो फिर भी किसी न किसी काम आ जाते हैं, काले लोग किस काम आ सकते हैं ? इसलिए, गोरे लोग उन के साथ चाहे जैसा व्यवहार करें, ठीक था।

गोरे लड़के आरन को छोड़ कर उस गांव के सब गोरे काले लोगों के साथ मनचाहा व्यवहार करते थे। पर, शांत और खुशमिजाज आरन काले, गोरे सब को अपना 'पड़ोसी' मानता था। और जब सब पड़ोसी हैं, तो बाइबिल के आदेशानुसार उन्हें प्यार

बना दिया है। पिताजी जब उन्हें आप के गिरजाघर में प्रार्थना करते सुनते हैं, तो हंसे बिना नहीं रहते। माफ कीजियेगा, धर्मप्रचारक मुझे कुछ खब्ती से लगते हैं।"

हार्ज हंसता हुआ अंदर चला गया। सेलीन और आरन अकेले रह गये। एकांत पा कर सेलीन ने बड़े नटखट स्वर में आरन से प्रश्न किया, "यह तो बताइये, रंगरूट पादरी साहब, कि चाचा हार्ज क्या सचमुच धर्मप्रचार के लिए आप को अपने साथ ले जा रहे हैं या उन का कोई और इरादा है?"

"कोई और इरादा? मुझे तो कुछ पता नहीं।"

"लेकिन मुझे पता है। चचा हार्ज न जाने कब से इस फिक्र में हैं कि मेरी शादी हो जाये। हो सकता है, उन्होंने आप को मेरे लिए पसंद किया हो। पर इतना याद रखियेगा, आरन साहब, कि शादी मैं अपनी मरजी से ही करूंगी, चचा हार्ज की मरजी से नहीं।"

आरन इस अप्रत्याशित और चुभती बात से दंग रह गया। कुछ क्षण सेलीन के चेहरे की ओर ध्यानपूर्वक देख कर उस ने पूछा, "आप उसी प्रदेश की रहने वाली हैं और काफी स्पष्टवादी लगती हैं। अपनी स्पष्ट राय दीजिये कि मेरा पादरी बन कर वहां जाना ठीक रहेगा या नहीं?" सेलीन को हंसने की कोशिश करते देख कर उस ने जल्दी से कहा, "मैं उन लोगों तक धर्म का प्रकाश लाना सचमुच जरूरी समझता हूं। वैसे, धर्मप्रचार मेरा पेशा नहीं है। मैं बढ़ईगीरी का काम करता हूं।"

सेलीन के भाव एकदम सहानुभूतिपूर्ण हो गये। उस ने शांत स्वर में कहा, "यह बात तो मैं भी मानती हूं कि उन लोगों को धार्मिक पाठ पढ़ाना बहुत जरूरी है। लेकिन आप . . . तुम शायद इस काम के लिए ठीक नहीं हो। तुम न तो पादरी हो, न बढ़ई! हां, अच्छे कपड़े पहन कर खासे शहरी और सुसंस्कृत लगने लगोगे।"

आरन को समझते देर न लगी कि सेलीन के इन शब्दों में प्रेम के स्थान पर दया और सहानुभूति ही है। वह अपनी इस विचित्र प्रशंसा का उत्तर देने का प्रयत्न कर ही रहा था कि कमरे में एक सुन्दर और सजीले युवक ने प्रवेश किया। आरन ने गौर किया कि सेलीन उस को ही बराबर देखे जा रही है। उस के लिए अब जैसे आरन कमरे में था ही नहीं।

परिचय की औपचारिक वार्ता के बाद आरन ने बातें करने की इच्छा से उस युवक से पूछा, "नीग्रो जाति की दास-प्रथा के उन्मूलन पर आप के क्या विचार हैं?"

"ऐसी बेकार की बातों में मैं कभी अपना समय बरबाद नहीं करता," युवक ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए कहा, "मैं ठहरा एक कवि, एक शरीफ कवि!"

न मालूम क्यों इस उत्तर से शांतचित्त आरन चिढ़ गया। उस ने विदाईस्वरूप युवक से हाथ मिलाते हुए कहा, "आप भले ही शरीफ कवि हों किन्तु मैं तो सिर्फ इतनी ही याद रखूंगा कि आप एक हृदयहीन और

दन करते समय उसे लगा जैसे वह एकदम ऊपर उठ गया है और उस ऊंचाई से अपने सब पापों को बिखरा हुआ देख रहा है। अगले क्षण उसे लगा जैसे वह धीरे-धीरे मर रहा है। अंत में उसे अनुभूति हुई कि मरने पर उस के सब कष्ट असह्य सुख में परिवर्तित हो गये हैं और वह सहसा शरीर धारण करके हार्ज के आगे झुक गया है . . . वह सचमुच हार्ज के सामने झुका हुआ था। हार्ज ने उसे सीने से लगाते हुए कहा, "भगवान तुम्हारा कल्याण करे, बेटे!"

आरन के मुंह से उस की पादरी बनने की इच्छा और उस के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद हार्ज ने गद्गद हो कर कहा, "मेरे प्यारे बेटे। तुम्हें स्वयं भगवान ने मेरे पास भेजा है। लोग तुम्हें 'पड़ोसी' भी कहते हैं न! अहा, कितना भला उपनाम है—'पड़ोसी'! तुम अब मेरे साथ रह कर भगवान का काम करोगे पड़ोसी—करोगे न?"

"जी, क्यों नहीं? इसी प्रार्थना के साथ तो मैं आप के पास आया था।"

"तो लो, परसों इस पते पर आ जाना। आगे की बातें वहां करेंगे।"

रेड इंडियनों को आरन ने कभी देखा नहीं था, पर घर लौटते समय वह इन अपरिचित और अनदेखे रेड इंडियनों के प्रति प्रेम से विह्वल हो रहा था, जैसे वह उन के बीच उन के बहुत निकट बैठा है। वे उस के नये 'पड़ोसी' थे।

हार्ज ने जो पता दिया था, उस पर पहुंचने के लिए आरन को सोलह मील की यात्रा करनी पड़ी। वहां पहुंचने पर हार्ज ने बड़े प्रेम से उस का स्वागत किया और उसे बताया कि वह किस प्रकार मिनीसोटा पहुंच कर उस के गिरजाघर में पहुंच सकेगा। दो दिन बाद आरन को बुला कर पता देने में हार्ज का अभिप्राय यह था कि वह जान ले कि आरन का जोश कहीं क्षणिक तो नहीं है। लेकिन आरन के आने से पूरी निश्चिन्तता हो गयी थी कि आरन का उत्साह सच्चा है और वह अपने इरादे से डिगेगा नहीं।

बातचीत के बाद हार्ज ने आरन का परिचय मिनीसोटा के अपने एकमात्र गोरे पड़ोसी लानार्क की लड़की सेलीन से कराया, जो उन दिनों न्यूयार्क में संगीत की शिक्षा ग्रहण कर रही थी और कुछ दिनों के लिए इस पते पर आयी हुई थी। उस से बातें करते ही मालूम पड़ जाता था कि वह कितनी स्पष्टवादी और हृदयग्राही लड़की है। हार्ज उसे चिढ़ाने के लिए उसे 'राजकुमारी' कह कर पुकारता था।

सेलीन इस नाम से चिढ़ती नहीं थी। हंस कर कहती, "चचा हार्ज, राजकुमारी तो मैं हूं ही, क्योंकि मेरे पिता आप के इलाके के राजा हैं, और सैकड़ों रेड इंडियन उन के नीचे काम करते हैं।"

"रेड इंडियन तो मेरे गिरजाघर में आ कर मेरे सामने भी झुकते हैं," हार्ज ने कहा।

"आप ने तो चाचाजी, उन सरल रेड इंडियनों को एकदम बेवकूफ

आसपास इसी तरह के पांच-छह घर और भी थे। ये घर इस निर्जन वन्य-प्रदेश के अलिखित पृष्ठों पर यत्रतत्र बिखरे विरामचिह्नों की भांति लगते थे।

हार्ज ने उस का स्वागत उत्साह से किया और उसे विश्वास दिलाया कि वह यहां बड़े मजे में रहेगा। पर दो-तीन दिनों में ही उसे मालूम पड़ गया कि यहां के वातावरण में काम करना उस के लिए कितना कठिन होगा। उस ने पाया कि रेड इंडियन लोगों को गोरे लोगों के धर्म में बिलकुल श्रद्धा नहीं है और वे उसे एकदम झूठा और प्रपंचपूर्ण मानते हैं। हल्दा नाम की रेड इंडियन अध्यापिका को छोड़ कर, हार्ज के साथ काम करने वाले किसी भी व्यक्ति में ईसाई धर्म के प्रति वास्तविक श्रद्धा नहीं है। सब हार्ज की समृद्धि और लोकप्रियता से डाह करते थे, और अब उस से भी डाह करने लगे थे। ऐसे दुर्भावनापूर्ण वातावरण में वह किस प्रकार जी सकेगा या धर्म-प्रचार कर सकेगा, यह आरन की समझ में बिलकुल न आता था। नेलीन होती तो शायद यह कुछ आश्वस्त भी हो सकता था, पर उस के आने तक तो उसे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने ऊपर ही निर्भर रहना था।

कुछ दिन बाद, उस के एक सह-योगी कार्लि ने उस का परिचय वुल्फ नाम के एक दिलचस्प रेड इंडियन से कराया, जो अंगरेजी के अलावा और भी कई भाषाएं तथा लिपियां जानता था। जब आरन ने वुल्फ को उस के अंगरेजी-ज्ञान पर शाबाशी दी तो वुल्फ ने माथे पर सलवटें लाते हुए कहा, "एक जमाना था जब मैं अंगरेजी सीखने के लिए बहुत प्रयत्नशील था, पर अब तो मैं जितनी अंगरेजी सीख चुका हूं उसे भुलाने की कोशिश कर रहा हूं। अब मैं अपनी जाति के लोगों की भाषा में ही बात करता हूं और उन्हीं के रीति-रिवाजों का पालन करता हूं।"

वानीफे ने कहा, "तुम-जैसे पथभ्रष्ट रेड इंडियनों का उद्धार करने का बीड़ा ही तो हम ने उठाया है।"

वुल्फ एकदम गरम हो उठा। बोला, "मिस्टर वानीफे! शायद आप भूल गये हैं कि अमरीका के मूल निवासी रेड इंडियन हैं और गोरे लोगों के अमरीका को दूषित करने के हजारों साल पहले भी बड़े सुख से रहते थे। उच्चता के जिस शिखर पर उन की संस्कृति पहुंची थी उस तक आप लोगों की संस्कृति कभी नहीं पहुंच पायेगी।" फिर उस ने आरन की ओर देखते हुए व्यंग्यपूर्ण लहजे में पूछा, "आप भी तो शायद यहां पादरी हो कर ही आये हैं न!"

गोरों के लिए वुल्फ के मन में क्या भाव है, यह भांप कर आरन ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "मुझे पादरी नहीं, एक मामूली बढ़ई समझिये। मैं आप की जाति के लोगों से भेंट करने का बड़ा उत्सुक हूं। बताइये, कब ऐसा सुअवसर प्राप्त हो सकेगा?"

वुल्फ को जैसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। उस ने उठ कर बाहर जाते हुए कहा, "आप यहां

नास्तिक व्यक्ति है ।"

सेलीन से विदा लेते समय उस की आंखें नीची थीं । "अलविदा सेलीन !" कहते हुए वह सोच रहा था कि अब सेलीन कभी भी उस से विवाह नहीं करेगी । उस सजीले युवक के मुकाबले में वह एक नीरस पादरी को कभी पसंद नहीं करेगी ।

पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, जब देखा कि सेलीन प्रेमपूर्ण निगाहों से उस की ओर देख रही थी । वह कह रही थी—अलविदा क्यों ? मैं तो कुछ दिनों में ही मिनीसोटा लौटने वाली हूं । तब देखूंगी कि तुम ने उन भोले रेड इंडियनों को कितनी सुबुद्धि प्रदान की है ।

"अगर तुम सचमुच आने वाली हो तो मैं उन डरावने लोगों के बीच भी रह सकूंगा ।"

"डरावने क्यों ? तुम शायद नहीं जानते कि मैं खुद आधी रेड इंडियन हूं । मेरी मां एक रेड इंडियन थी । क्या मैं तुम्हें डरावनी लगती हूं ?"

"बिलकुल नहीं । चलो, यह एक अच्छी बात मालूम हुई । अब मुझे प्रत्येक रेड इंडियन में तुम्हारी छाया दिखायी देगी ।"

घर लौटते समय आरन सोच रहा था कि कल ही तो उस ने निश्चय किया था कि मिनीसोटा में वह सब प्रकार के मोहजालों से दूर रहेगा । और अब ? सेलीन का मोहजाल ? सेलीन से विवाह की संभावना का मोहजाल ? क्या वह कभी सब मोहजालों से मुक्त, सरल, और सीधे-सादे भगवान का साक्षात्कार नहीं कर पायेगा ?

अपने घर से मिनीसोटा तक पहुंचने में आरन को १७ दिन लग गये । जब न्यूयार्क, पिट्सबर्ग, सेंट लुई आदि नगरों की गगनचुंबी इमारतों का अवलोकन करता हुआ वह अंत में मिनीसोटा पहुंचा, उस समय तक वह तेजी से औद्योगिक प्रगति करते हुए अमरीका के विभिन्न रूपों के दर्शन कर चुका था । मार्ग में उस ने गरदन झुकाये, चुपचाप अपना काम करते हुए, रेड इंडियनों को देखा था । उन की विवशतापूर्ण बुद्धिहीनता को देख कर उस ने कई बार सोचा था—इन लोगों का दिमाग भी इन के शरीर की भांति ही काला और अंधकारपूर्ण मालूम पड़ता है । इन अंधेरे दिमागों में प्रभु का संदेश कैसे पहुंचा सकूंगा मैं ?

इस यात्रा में उस ने भगवान की साकार कल्पना करने का प्रयत्न भी किया था । बहुत कोशिश करने पर भी किसी मूर्ति या बोधगम्य भगवान की आकर्षक कल्पना उस के मस्तिष्क में नहीं आ पाती थी । भगवान उसे अग्नि की लपलपाती लपटों के रूप में ही दिखायी देते थे । वह भगवान को एक सरल और सहृदय प्रतीक के रूप में देखना चाहता था, पर बार-बार वही लपटें उस के सामने आ जाती थीं । वह अपने को कोसता कि भगवान ऐसे निर्दयी नहीं हो सकते, वास्तव में ये लपटें उस के मन का भ्रम ही हैं ।

हार्ज का छोटा-सा गिरजाघर मिनीसोटा नदी के किनारे स्थित था । जिस घर में उसे ठहराया गया, वह कभी गोदाम या अस्तबल रहा होगा ।

"मैं भी ऐसा ही मानता हूं, लेकिन तुम में और मुझ में सिर्फ एक ही अंतर है। तुम यह मानते हो कि सब जातियां, सब इनसान, सब धर्म एक-से अच्छे हैं, पर मैं मानता हूं कि वे एक-से बुरे हैं। हा, हा, हा ! मेरी बात पर ताज्जुब कर रहे हो ! पर, ध्यान से इतिहास का अध्ययन करोगे तो पाओगे कि मैं ने जरा भी गलत नहीं कहा है।"

लानार्क ने हंसते हुए आगे कहा, "अब इस वुल्फ को ही ले लो। बड़ा ईमानदार लड़का है। मुझ से जब कभी होता है, उस की मदद कर देता हूं। लेकिन, लड़का चूंकि ईमानदार है, इसलिए मुझे पूरी उम्मीद है, एक दिन मौका आने पर मेरी जान लेने में भी नहीं हिचकिचायेगा। कोई ईमानदार रेड इंडियन किसी भी हालत में किसी गोरे आदमी को मन से नहीं चाह सकता। तुम चूंकि रेड इंडियनों के बीच काम करने जा रहे हो, इसलिए यह बात कह देनी जरूरी समझी।"

आरन एक अज्ञात भय से घिर आया। यह भय कुहरे की भांति गाढ़ा हो कर उस के मन को आच्छादित किये जा रहा था। वह तुरंत बाहर चला आया।

सितम्बर की सुहानी शाम थी। मिट्टी से भीनी-भीनी सुगंध उठ रही थी, पर आरन इस समय प्रकृति से बेखबर था। उस के मन में वही गहरा और अज्ञात भय व्याप्त था। रास्ते में बेंच पर बैठे हुए वुल्फ को देख कर उस का यह भय और भी बढ़ गया। वुल्फ उसे देख रहा था, पर उस की दृष्टि में न प्रेम था, न घृणा, बस एक ताना था। वह कांप उठा और तेजी से घर की ओर जाने लगा।

जिस अज्ञात भय से उस का मन उस शाम घिर आया था, वह शीघ्र ही गोरे लोगों और रेड इंडियनों के बीच हुए दो बड़े संघर्षों के रूप में प्रकट हो गया।

बड़े दिन के अवसर पर हार्ज की कोशिश रहती थी कि अधिक से अधिक रेड इंडियन गिरजाघर में एकत्र हों। पर उस साल वुल्फ और उस के साथियों ने शराब पी कर इतना उत्पात मचाया कि हार्ज को डर लगने लगा कि इस बार कोई रेड इंडियन बड़े दिन पर आयेगा भी या नहीं। उसे क्रोध तो बहुत आ रहा था, पर उस ने नम्रता का अवतार बनते हुए आरन से कहा, "ये बेवकूफ अपने भोले साथियों को प्रभु के सन्देश से वंचित रखना चाहते हैं, पर हम ऐसा हरगिज नहीं होने देंगे। चलो, अभी

है तो भेंट होती ही रहेगी। आप बड़ई भी है, जान कर बड़ी खुशी हुई। आप पादरी बन कर भी हमारे बीच आनंद से रह सकते हैं, बशर्ते आप यह न भूल जायें कि हम लोगों का भी अपना धर्म है, अपना भगवान है, अपनी श्रद्धा-भावना है और हम किसी अन्य का धर्म ओढ़ना पसंद नहीं करते। आप की जाति भी हमारी जाति का धर्म ओढ़ना पसंद नहीं करेगी।''

आरन को आशा न थी कि लेलीन के पिता लानार्क भी अप्रत्यक्ष-रूप से वुल्फ की ही बातों का समर्थन करेंगे, बल्कि उन की बातें वुल्फ की बातों से भी ज्यादा साफ और खरी थीं। उन्होंने कहा, ''वुल्फ सच ही तो कहता था। रेड इंडियन लोग हम से कहीं ज्यादा धार्मिक हैं। गोरे लोगों के सम्पर्क में आने से पूर्व उन में न झूठ बोलने की आदत थी, न चोरी करने की। हम ने ही उन्हें झूठ बोलना और चोरी करना सिखाया। धनुष-बाण के स्थान पर उन के हाथों में बंदूक दी। उन के स्वस्थ शरीरों को तपेदिक और आतशक रोगों की सौगात दी। हमारे कहने से उन्होंने हमारी दी हुई बंदूकों से उन भैंसों को मारा जिन से उन्हें गोश्त और खाल मिलती थी। किसलिए? ताकि गोश्त और खाल हमें मिल सके और उन्हें बेच कर हम पैसे कमा सकें। हम ने उन की शिकार की आदत छुड़ा कर खेती करना सिखाया ताकि वे खाद और खेती के औजार हम से हमारी कीमत पर खरीद सकें। हम धीरे-धीरे उन की जमीनों पर कब्जा करते जा रहे हैं और बदले में उन्हें देते जा रहे हैं—बाण्ड और रसीदें। जब वे अपना सब कुछ—भोजन, श्रद्धा और आत्मविश्वास की भावना—खो बैठते हैं, तो आते हैं हमारे पादरी, जो उन्हें डरा कर कहते हैं कि उन के दुर्भाग्य का कारण है उन के गंवार देवता, उन का अशास्त्रीय धर्म! जब उन में से कुछ डर कर ईसाई धर्म ग्रहण कर लेते हैं तो हम लोग खुशियां मनाते हैं, वाह कैसी शानदार जीत हुई हमारे ईसाई धर्म की!''

''ये सब . . . आप . . . आप के विचार हैं?'' चकित आरन ने पूछा।

''मैं ने इस बारे में कभी कोई विचार नहीं किया, आरन बेटे। मैं तो सिर्फ असलियत बयान कर रहा हूं। जब भी कोई संस्कृति आगे बढ़ी है उस ने उसी तरह दूसरों को कुचला है जिस तरह आजकल हमारी तथाकथित संस्कृति रेड इंडियनों को कुचलती जा रही है। सदा से ऐसा ही होता आया है। तुम और मैं तो बेसहारा साधन मात्र हैं, इस प्रगति के स्टीम-रोलर के एक छोटे-से पुर्जे भर! मेरे या तुम्हारे सोचने या कुछ करने से क्या हो जाने वाला है?''

''लेकिन, मैं अपने को ऐसा छोटा-सा पुर्जा नहीं बनने दूंगा। इस के अलावा मैं धर्म को किसी के शोषण का साधन नहीं मानता। मैं सब जातियों को, सब रंग के इनसानों को समान मानता हूं।''

करता हुआ। हमारे शत्रु आते हैं प्राणों का सौदा करने! कुछ जानें ले लेते हैं। कुछ दे देते हैं। लेकिन, अगर आप के मन में भी हमारी आत्माओं का सौदा करने का विचार है तो मैं पूछता हूं कि क्या आप सचमुच अपने धर्म में विश्वास करते हैं? क्या आप सचमुच मानते हैं कि भगवान का काम पहेलियां प्रस्तुत करना और आदमी का काम उन्हें हल करना है? और यदि आदमी ये पहेलियां हल न कर पाये तो उसे असह्य कष्ट भोगने पड़ते हैं?"

"आप ने मेरे धर्म को ठीक ढंग से समझा नहीं है।"

"मुझे जरूरत ही क्या है? मेरा धर्म मेरे सभी प्रश्नों के उत्तर दे देता है। आप का धर्म सीधी-सादी बातों को भी समस्याओं में बदल देता है।"

"ऐसा . . . शायद नहीं है।"

"मगर हमारे सामने आप के धर्म की ऐसी ही तसवीर आती है और यह धर्म हमें पंगु तथा डरपोक बनाये दे रहा है। आइजक को तो आप जानते ही हैं। आप के धर्म में श्रद्धा रखने से पूर्व वह एक बहादुर योद्धा था। उस के बाणों के आगे हमारे शत्रु टिक नहीं पाते थे, पर आप लोगों के धर्म के नरक ने, शैतान ने, उसे एकदम डरपोक बना दिया है। अपनी तीव्र पापानुभूति को वह अब शराब की बोतल में डुबाने की कोशिश करता है। आप का हार्ज उस से वादे तो स्वर्ग के करता है, पर यह याद दिलाना भी नहीं भूलता कि स्वर्ग का मार्ग नरक में से हो कर ही जाता है।"

अपने धर्म की इस व्याख्या से आरन सचमुच भ्रमित हो गया। उस ने पूछा, "आप का धर्म क्या इतना पेचीदा नहीं है? आप का भगवान क्या दुष्टों को क्षमा कर देता है?"

"हमारे भगवान का नाम है—वाकानतन्का। वह बाल-सूर्य की भांति शीतल और प्रभामय है। चारों ओर हमें उस का ही जलवा दिखायी देता है। आप लोग अपने भगवान की प्रार्थना करते हैं, पर हम नृत्य करके उस की आराधना करते हैं।"

भगवान का यह रूप आरन को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुआ। उस ने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "वाकानतन्का का साक्षात्कार किस प्रकार किया जा सकता है?"

"उस का साक्षात्कार असंभव है। दुनिया में उस ने अपने कई प्रतिनिधि —देवता— नियुक्त कर रखे हैं। हम दुनियावालों को अपने सब निवेदन इन्हीं देवताओं से करने पड़ते हैं।"

आरन को घोर निराशा हुई। भगवान की खोज का उस का मार्ग अंधी गली में आ कर खो गया था। फिर भी उसे लगा कि अपने धर्म की बारीकियां रेड इंडियनों को समझाने के लिए यह जरूरी था कि वह अपना अधिक समय उन के बीच में बिताये। वह उन के शिकारों, उत्सवों में भाग लेने लगा। रेड इंडियनों के उस के प्रति घृणा से बन्द ओंठ अब धीरे-धीरे खुल कर मुसकराने लगे थे। आरन को संतोष था कि भले ही वह ईसा का संदेश इन लोगों तक पहुंचाने में

मेरे साथ। इन सब को . . . इन सब से प्रार्थना करनी है कि वे हर वर्ष की भांति इस वर्ष भी वड़े दिन की प्रार्थना के लिए आयें।''

स्वभाव से हार्ज काफी अधीर था, पर धर्म-प्रचार की सफलता उस के लिए जीवन-मरण का प्रश्न था। अत: उस ने वड़ी नम्रता से रेड इंडियनों से उन के घर जा कर वातें कीं और नतीजा यह हुआ कि वड़े दिन की प्रार्थना के अवसर पर ६-७ रेड इंडियन उपस्थित हुए।

लेकिन विद्रोही रेड इंडियन चुपचाप नहीं वैठे थे। उन्हें गोरे लोगों को तंग करने का एक और अवसर मिल गया और इस अवसर पर दोनों दलों में जो दंगा हुआ, उस में कई जानें भी गयीं।

झगड़े का कारण वड़ा अजीव था। हर साल, ग्रीष्म ऋतु में रेड इंडियनों को काफी संख्या में मुर्गावियां शिकार करने को मिल जाती थीं। पर, उस ग्रीष्म ऋतु में, न जाने क्यों, मुर्गावियां वहुत कम आयीं। रेड इंडियनों के एक सरदार ने कहला दिया कि मुर्गावियों की अनुपस्थिति का कारण गोरे लोग ही हैं। उस ने यह भी फतवा दिया कि उस की जाति के जो लोग गिरजाघरों में जाते हैं उन पर रेड इंडियनों के देवता उकतोरी का प्रकोप होगा। फिर क्या था? तुरन्त रेड इंडियनों की एक सभा हुई, जिस में निश्चय किया गया कि सव गोरों को मार कर उन की सम्पत्ति नष्ट कर दी जाये। कुछ वुजुर्गों की राय से, गोरों को मारने की योजना तो रद्द हो गयी, पर गिरजाघर तथा अन्य घरों को काफी नुकसान पहुंचाया गया।

रेड इंडियन चूंकि संख्या में गोरों से कहीं अधिक थे, इसलिए इस लूट-मार के दौरान हार्ज विवश हो कर धीर वना रहा। गोरे समुदाय के अन्य सदस्य भी चुप थे। सिर्फ नीग्रो दासी मर्सी वरावर रोये जा रही थी। चूंकि आरन ही उस की ओर देख रहा था, इसलिए वह आरन को ही सुना-सुना कर कह रही थी, ''आरन, मेरे प्यारे वेटे! तुम यहां से चले जाओ, चले जाओ! देख नहीं रहे हो, हम सव इनसान नहीं, दीवाने लोग हैं, जो अपने-अपने मरने की वाट जोह रहे हैं!''

आइजक नाम के एक धर्मप्राण रेड इंडियन को अपना मित्र वना कर, आरन ने उन की भाषा सीखनी शुरू कर दी। शीघ्र ही उसे इस भाषा का कामचलाऊ ज्ञान हो गया। अव वह वूल्फ से स्वयं उस की भाषा में वात कर सकता था। एक दिन वह अनामंत्रित वूल्फ के घर पहुंच गया। वूल्फ ने उसे देख कर सिर्फ इतना ही कहा—''आओ!''

आरन ने मुसकराते हुए उस की भाषा में ही कहा, ''मुझे देख कर आश्चर्य नहीं हुआ?''

''नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं कि आप मुझ से कोई सौदा करने नहीं आये हैं। यहां तो जो आता है, सौदा करता हुआ आता है। गोरा आता है, हमें शराव और सिले-सिलाये कपड़े दे कर हमारी आत्मा का सौदा

से सुनाता ।"

शब्द ! शब्द !! शब्द !!! हार्ज के शब्द ! लानार्क के शब्द ! वूल्फ के शब्द ! ये शब्द कोई हल पेश करने के स्थान पर दिल-दिमाग को उलझाते हैं । मुझे ऐसा कोई जीवन-दर्शन क्यों नहीं सूझता जो मुझे भगवान की खोज के शब्दहीन मार्ग पर अग्रसर करा सके—आरन सोच रहा था, कई अनदेखे और अंधेरे रास्तों के मोड़ पर खड़ा हुआ । अंत में वह एक ही निश्चय पर पहुंच पाया कि भगवान की खोज लखपति बन जाने से न हो सकेगी और जब तक कोई स्पष्ट मार्ग न दिखायी दे, मिनीसोटा में ही रहना है ।

एक दिन वूल्फ ने आरन को अपने हाथ से लिखे कुछ पृष्ठ दिखा कर कहा, "मैं ने अंगरेजी में एक किताब लिखी है । पढ़ोगे ?"

आरन ने पढ़ने से पूर्व स्वयं एक प्रश्न पूछा, "तुम किसी बड़े शहर में पढ़ने गये थे न, वूल्फ ! फिर पढ़ाई पूरी क्यों न की ? यहां जंगल में आ कर क्यों रहने लगे ?"

"लोग मुझ से घृणा करते थे और मैं उन से और भी अधिक तीव्रता से घृणा करता था । बताओ आरन, तुम्हारे बड़े शहरों में शोरगुल, चोरी और गंदगी के अलावा है ही क्या ? मुझे तो यहां धनुष-बाण से शिकार करना बहुत अच्छा लगता है । खैर मेरी किताब पढ़ो ।"

एक-दो पृष्ठ पढ़ कर ही आरन समझ गया कि किताब में वूल्फ ने क्या कहने की कोशिश की है ? वूल्फ ने लिखा था कि "यदि गोरे लोग स्वयं रेड इंडियनों के देश से नहीं चले गये तो उन्हें जबरदस्ती बाहर निकाला जायेगा । गोरे लोगों को मालूम होना चाहिये कि जिस दिन सब रेड इंडियन एक हो जायेंगे उस दिन एक भी गोरा जीवित न बचेगा . . ."

पढ़ते-पढ़ते आरन को पसीना आने लगा । उस ने सुना, वूल्फ उस से पूछ रहा था, "क्या तुम मेरी किताब छपवा दोगे ?" कैसा अजीब सवाल था । आरन ने कहा "नहीं ।"

"तो फिर याद रखो कि हम तुम्हारे खिलाफ भी लड़ सकते हैं । तुम मदद करो या नहीं, मुझे तो अपनी जाति के लोगों को न्याय दिलवाना ही है । कुछ भी हो जाये, पर मैं अपनी जाति के लोगों को धोखा नहीं दूंगा ।" यह कह कर वह उन पृष्ठों को लिये हुए चला गया ।

धोखा ! इस शब्द की बारीकियों ने कई दिन तक आरन को खूब परेशान रखा ।

यदि वह वूल्फ की मदद नहीं करता तो सत्य, न्याय को धोखा देता है । और यदि वूल्फ की मदद करता है तो अपनी जाति के निर्दोष लोगों को धोखा देता है ।

क्यों, आखिर क्यों उसे किसी के प्रति झूठा होने को बाध्य होना पड़ रहा है ?

उसे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं मिल पाता था और उसे लगता था मानो वह किसी अंधेरी और अतुल गहराई में डूबता चला जा रहा है . . . डूबता चला जा रहा है !

कुछ ही दिनों में एक घटना और

सफल न हो पाया हो, पर उन का प्रेम और विश्वास जीतने में तो सफल हो ही रहा हूं।

हार्ज को आरन का रेड इंडियनों में उठना-बैठना बिलकुल पसंद नहीं था। वह बार-बार आरन को टोकता रहता था। एक दिन तंग आ कर आरन ने उस से कह ही दिया, "देखिये, जो काम मैं करने आया हूं, उस के लिए मुझे पहले इन लोगों से संपर्क तो बढ़ाना ही पड़ेगा। अगर आप मुझे ऐसा करने से रोकेंगे तो मुझे मजबूर हो कर वापस घर चला जाना पड़ेगा। बताइये, आप क्या चाहते हैं?"

इस के बाद हार्ज ने आरन को रेड इंडियनों के पास जाने से कभी नहीं रोका। रेड इंडियनों के बीच वह इतना अधिक समय व्यतीत कर रहा था कि दंगों के बाद लानार्क से मिलने का मौका भी नहीं मिला था। एक शाम वह लानार्क के पास जा पहुंचा कि शायद बातों-बातों में सेलीन के हालचाल का पता भी लग जाये।

दंगों के बारे में लानार्क ने कहा, "देखो भाई, भगवान की खोज में अपने-अपने ढंग से हम सभी लगे हैं—हार्ज, मैं, तुम, वुल्फ, आइजक, सभी। पर, इस खोज का सही नक्शा किसी के पास नहीं है। जहां तक बर्बरता का प्रश्न है, हम लोग काले लोगों और रेड इंडियनों से एक डिग्री भी कम नहीं हैं। इस बात पर मेरे अलावा बहुत कम लोगों ने गौर किया है कि असली माने में सभ्य आदमी न कभी पैदा हुआ है और न कभी होगा।"

सेलीन का जिक्र आने पर उस ने कहा, "भई, उस लड़की को कोई कभी नहीं समझ पायेगा—न मैं, न तुम। हम बस उस से ईर्ष्या ही कर सकते हैं।"

क्या लानार्क मुझे अपनी लड़की से दूर रहने को कह रहा है—आरन ने सोचा। उस ने आरन की ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा, "तुम कितना ही छिपाना चाहो, पर मुझ पर यह बात जाहिर है कि तुम जिस जोश से यहां आये थे वह अब करीब-करीब खत्म ही हो गया है। तुम इन रेड-इंडियनों की भाषा तो सीख ही गये हो, क्यों नहीं किसी व्यापार में लग जाते? चाहो तो मेरे धंधे में भागीदार भी बन सकते हो। मेहनत और सूझबूझ से काम लोगे तो चार-पांच साल में लखपति तो जरूर बन जाओगे। फिर तुम लंदन, न्यूयार्क, कहीं भी जा कर बड़े आराम से रह सकोगे। बोलो, क्या कहते हो?"

आरन ने कुछ क्षण सोच कर, मुसकराते हुए कहा, "मिस्टर लानार्क! आप को वह कहानी याद है जिस में बताया गया है कि किस तरह एक दिन शैतान भगवान के साथ पहाड़ की एक चोटी पर चढ़ गया था और उन से कहा था कि आप चाहें तो इस पृथ्वी को ले सकते हैं।"

"वह कहानी मुझे मालूम है। मगर, मिस्टर आरन आप को भ्रम है कि आप भगवान हैं, जब कि मुझे ऐसा कोई भ्रम नहीं है कि मैं शैतान हूं। जहां तक कहानी का सवाल है, शैतान शायद इस कहानी को दूसरे ही ढंग

ज्वालामुखी के मुख पर बैठे हैं, जो किसी भी क्षण भड़क सकता है।

ऐसी नाजुक घड़ी में सेलीन सहसा मिनीसोटा आयी।

डेविड के साथ मिल कर वूल्फ ने मिनीसोटा से सारे गोरों को भगा कर रेड इंडियनों के उद्धार की जो योजना बनायी थी, उस में सेलीन के आने से केवल एक अंतर आया कि वूल्फ ने लानार्क से जा कर कहा, "लानार्क! अब तक तुम ने हमें गुलामों की दृष्टि से देखा, अब बारी आयी है कि हम तुम्हें इसी दृष्टि से देखें। पर, तुम्हारे और सेलीन के मुझ पर कुछ अहसान हैं, इसलिए चेतावनी देने आया हूं कि रक्त-स्नान से बचना है तो शीघ्र ही मिनीसोटा छोड़ दो।"

"रक्त-स्नान! क्या कह रहे हो? पागल हुए हो?" लानार्क ने कहा

इस के बाद अगले कुछ हफ्तों में जो हुआ, वह एक दुःस्वप्न की भांति ही आरन को याद है—एक रात क्रोधोन्मत्त लानार्क ने किस तरह अपनी प्यारी बेटी सेलीन को घर से निकाल दिया था और किस तरह वह आरन की शरण में आयी थी . . . किस तरह फौज के कुछ सिपाही डेविड और वूल्फ को पकड़ने आये थे और किस तरह ये दोनों जंगल में ऐसे छिप गये थे कि बहुत कोशिश करने पर भी न मिले थे . . . किस तरह एक शाम डेविड एक गढ़े में मरा पाया गया और कैसे पागलों की तरह चिल्लाते हुए वल्फ ने लानार्क को सुना कर कहा था, 'तुम ने मेरे दोस्त को मरवाया है न, मैं तुम सब की जान लूंगा। किसी को जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। समझे' . . . किस तरह एक रात वूल्फ भी रहस्यमय ढंग से मारा गया था . . . किस तरह यह प्रकट हो गया था कि वूल्फ की हत्या के पीछे भी लानार्क का ही हाथ है . . . किस तरह सौ रेड इंडियनों को ले कर लानार्क ने आरन के आश्रम से सेलीन को मुक्त करने की योजना बनायी थी . . . किस तरह एक हाथ में बन्दूक और दूसरे हाथ से सेलीन को थामे हुए वह रातोंरात मिनीसोटा से भाग कर विनकाजिन आ गया था. . . . और अंत में किस तरह दो काले सेवकों की उपस्थिति में एक वृद्ध पादरी ने उन दोनों का विवाह करवाया था।

जब कभी यह दुःस्वप्न आरन को घेर लेता तो उस समय उस के मन में यही अपराध-भावना आती कि भगवान की खोज का सूत्र उस ने मिनीसोटा में कहीं अनजाने में गंवा दिया और अब भगवान से विमुख हो कर वह विपरीत पथ पर जा रहा है। धीरे-धीरे इस अपराध-भावना की चुभन भी कम होती गयी और अब उस के मन में यह अनुभूति भी न रही कि उसे भगवान का साक्षात्कार करना है। उसे अब चिन्ता थी कि वह अपनी छोटी-सी गृहस्थी का पालन कैसे करेगा? यह पारिवारिक उत्तरदायित्व अब उसे भगवान के प्रति उत्तरदायित्व से अधिक भारी लगता था।

धर्म-प्रचार का काम छोड़ कर अब उस ने मकान बनाने वाले एक

घटी, जिस ने उस की उद्विग्नता को और भी बढ़ा दिया। उस का अन्तर्द्वन्द्व इस सीमा तक पहुंच गया कि उसे प्रति क्षण लगता था कि वह पागल हो जायेगा।

रेड इंडियनों को भैंसों का शिकार करते समय डेविड नामक २२ साल के एक लड़के के दर्शन हुए थे, जो कुछ लोगों को पुण्यात्मा लगा था और कुछ को एकदम पागल। (वैसे बुजुर्ग रेड इंडियनों की दृष्टि में दोनों तरह के लोगों का एक-सा ही महत्व है।) जो भी हो, इस लड़के की कहानी बड़ी विचित्र थी। उस का पिता एक बड़े बाग का मालिक था और उस के बाग में सैंकड़ों काले लोग गुलामों की तरह काम करते थे। उन्हें कहीं आने-जाने की स्वतंत्रता न थी। डेविड, जिस के लिए काले-गोरे एक समान थे, मौका मिलने पर काले लोगों को पैसे दे कर रिहा कर देता था। उस के पिता इस आदत से बहुत परेशान थे। अंत में उन्हें डेविड से बड़ी आसानी से छुटकारा मिल गया, क्योंकि एक दिन डेविड को आदेश हुआ कि वह रेड इंडियनों के बीच जा कर रहे और उन्हें एक ऐसे धर्मग्रन्थ का पाठ कराये, जो स्वयं रेड इंडियनों के धर्मग्रन्थों पर आधारित हो।

स्पष्ट था कि वुल्फ डेविड का अभिन्न मित्र बने। यह मित्रता उस समय तो अटूट ही बन गयी जब वुल्फ को पहली बार देख कर डेविड ने कहा था, "दोस्त! तुम मेरे लिए अजनबी नहीं हो, क्योंकि यहां आने से पूर्व मैं ने तुम्हारे और तुम्हारी पुस्तक के दर्शन स्वप्न में कर लिये थे। प्रभु ने ही यह दर्शन कराया था और उन्हें ही यह मंजूर था कि मैं तुम्हारे पास आ कर रहूं और काम करूं।" आरन के सामने ही डेविड को गले लगाते हुए वुल्फ ने कहा था, "डेविड, तुम पहले गोरे व्यक्ति हो, जिस ने सत्य को जाना है।"

डेविड के आगमन से आरन, हार्ज और लनार्क तीनों परेशान थे। आरन को लगता कि बाइबिल में भगवान की खोज का जो सीधा-सादा मार्ग दिखाया गया है कोई उसे उस के सामने से गायब करता जा रहा है। हार्ज के रेड इंडियन शिष्यों की संख्या शून्य तक आ पहुंची थी। लानार्क का अब रेड इंडियन गुलामों पर पहले-जैसा दबदबा नहीं रहा था। तीनों को लगता था कि जैसे वे किसी ऐसे

"तुम मुझे समझने में भूल कर रहे हो, मेरे भाई ! हर धार्मिक कार्य का क्या व्यापारिक पक्ष नहीं होता ? और मुझे भगवान का कार्य करने की क्या आवश्यकता है, जब कि मैं स्वयं भगवान हूं। विश्वास न हो तो मेरे शिष्यों से पूछ कर देख लो। वे मुझे भगवान ही मानते हैं। मन की आंखें खोल कर मुझे देखो, मेरे प्यारे बेटे ! मैं तो स्वयं भगवान हूं। आओ, मेरी शरण में आओ।"

सेलीन ने सारी बात सुन कर सिर्फ इतना ही कहा, "तो आप किस में विश्वास करते हैं ?"

"जिन में पहले विश्वास करता था उन्हीं में अब भी करता हूं, पर उन की बातों में नहीं। मुन्स की बातें कोरी बातें ही थीं। उन के पीछे न सचाई थी, न कर्म की गरमी। इसीलिए शब्दों से मैं घबराने लगा हूं।"

"लेकिन प्रिय, शब्दों से ही तो हमें सौन्दर्य, श्रद्धा का आभास होता है।"

"मुन्स से विदा लेते ही मैं ने शब्दों का सहारा छोड़ दिया था और जिस क्षण मैं ने यह सहारा छोड़ा उसी क्षण मुझे लगा कि भगवान की मेरी खोज का अंत हो गया है। क्योंकि भगवान शब्दातीत हैं। इसीलिए जब हम अपने स्वभाव के अनुसार कर्म करते हैं तब हमें उस कर्म द्वारा ही आत्म-साक्षात्कार—स्वयं भगवान का साक्षात्कार—होता है। मैं मुन्स के समान धार्मिक भाषण देने और विशाल गिरजाघर बनाने के स्थान पर चुपचाप बढ़ईगीरी का अपना काम करना ज्यादा पसन्द करूंगा।"

"तुम गिरजाघर नहीं बनाओगे ? तुम भगवान में विश्वास नहीं करते ?"

"सेलीन प्रिये, शब्दों को पियो मत, शब्दों में उलझो मत। शब्दों से तुम भगवान को कभी नहीं खोज पाओगी। कान खुले रखोगी तो तुम्हें अपने दैनिक कार्यों में ही गिरजे की घंटियों की गूंज सुनायी देगी, आंखें खुली रखोगी तो तुम्हें हर तरफ वह जलवा दिखायी देगा, जो गिरजाघर में आत्मचिन्तन से दिखायी देता है।"

"तुम बहुत आत्म-केन्द्रित हो गये हो, आरन ! पर मैं जानना चाहती हूं, समझना चाहती हूं। अपने में ही लीन हो जाने से हमें क्या मिलेगा ?"

"तुम ईसाई हो न ! तो ईसाइयों के स्वाभाविक गुण नम्रता के साथ इस प्रश्न पर विचार करो। तब तुम्हें लगेगा कि कुछ जानने और समझने की जरूरत नहीं है। भगवान की खोज के लिए कहीं जाने, कुछ जानने और समझने की जरूरत नहीं है। उस की खोज हमारे अन्दर से ही आरम्भ होती है और हमारे अंदर ही समाप्त होती है। अपने अनुभवों से मैं ने आज इस सत्य को पाया है।" ●

"कल तो तुम मंदिर गयी थीं ! वहां जगद्‌गुरु के व्याख्यान में क्या-क्या सुना ?"

"कई तरह की बातें। कमला की लड़की आवारा है, रामप्रसादजी रिश्वत खूब लेते हैं, कृष्णा सास से लड़ कर चली आयी और इसी तरह की कई बातें।"

ठेकेदार के यहां बढ़ई की नौकरी कर ली थी। जिस नगर में ठेकेदार का कार्यालय था उस की आबादी बहुत तेजी से बढ़ती जा रही थी, इसलिए काम की कमी न थी।

कुछ दिन बाद मालिक बीमार पड़ गया और सारा कारोबार आरन के हाथ में ही आ गया। वह खुद बारह-बारह घंटे मेहनत करता था और अपने मजदूरों के साथ भी अच्छी तरह पेश आता था, इसलिए उसे धीरे-धीरे बड़े काम भी मिलने लगे।

एक दिन उस के सामने एक ऐसे विशाल भवन के निर्माण का प्रस्ताव आया, जिस में उसे पर्याप्त लाभ की आशा तो थी ही, साथ ही उसे यह विश्वास भी हो चला कि इस योजना के द्वारा उस के सामने भगवान की खोज का वह मार्ग भी खुल जायेगा, जो कुछ समय पहले उस ने ही अवरुद्ध कर दिया था। आर्थिक लाभ से अधिक आध्यात्मिक लाभ की दृष्टि से वह इस योजना के प्रणेता तथा विश्व-बन्धुत्व, जीवन-मुक्ति, विचार-स्वातन्त्र्य-जैसे पवित्र आन्दोलनों के प्रवर्तक डाक्टर एल्फ्रेड मुन्स से परिचय प्राप्त कर भगवान की खोज के अपने अभियान को पूरा करना चाहता था। वास्तव में वह डाक्टर मुन्स की बातों और धार्मिक भविष्यवाणियों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मन ही मन उस ने निश्चय कर लिया था कि इस योजना के पूरी होते ही वह सपरिवार डाक्टर मुन्स के चरणों में आ कर रहने लगेगा तथा अपने लड़के को पादरी बनवा कर उस से वह कार्य पूरा करवायेगा जो उस ने अधूरा छोड़ दिया था।

डाक्टर मुन्स की योजना आधे करोड़ की लागत का एक विशाल गिरजाघर बनवाने की थी, जिस के साथ एक विशाल पूजा-गृह, संगीत-सभा, चिकित्सालय भी सम्बद्ध थे। जब इस योजना को पूरी करने के लिए रुपया जुटाने का प्रश्न आया तो मुन्स ने मुसकरा कर आरन से कहा, "अभी तो मेरे पास नकद पैसा नहीं है, पर काम शुरू होते ही पैसों की वर्षा होने लगेगी। मेरे शिष्य अमीर हैं।"

"पर काम शुरू कैसे होगा?"

"इसीलिए तो मैं चाहता हूं कि तुम इस काम में मेरे भागीदार बन जाओ। लाभ का पचास प्रतिशत लेते रहना।"

"अर्थात?"

"अर्थात नक्शे के अनुसार निर्माण-कार्य शुरू कर दो। फिर आंख के अंधे, गांठ के पूरे भक्तों से रुपया खींचना मेरा काम है। हम दोनों को लाखों डालर का लाभ होगा। तुम तो व्यापारी आदमी हो, सोचो जरा-सी लागत से कितना फायदा उठा लोगे?"

आरन के सपने चकनाचूर हो गये। उस ने डाक्टर मुन्स से विदा लेते हुए गुस्से में कहा, "तो आप चाहते हैं कि मैं भी आप के साथ इस प्रपंच में शरीक होऊं। मैं ने समझा था कि आप . . . भगवान का कार्य कर रहे हैं, पर आप एक शरीफ चोर हैं और धर्म के नाम पर पाखण्ड करके भोले-भाले लोगों का पैसा हड़पना चाहते हैं। मुझे माफ कीजियेगा।"

बन्दी जीवन

लेखक—शचीन्द्रनाथ सान्याल; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; पृष्ठ—४३९; मूल्य—१०.००

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन का विशेष स्थान रहा है। पुस्तक में सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री सान्याल ने अपनी तेजस्वी लेखनी से विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी आन्दोलन के संगठन-पुनर्गठन, क्रांतिकारियों की वीरताएं, उन के त्याग आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। पुस्तक उपन्यास-जैसी रोचक होने के अतिरिक्त इतिहास की तरह प्रामाणिक भी है। करीब ४० वर्ष पूर्व पुस्तक के केवल दो भागों का प्रकाशन संभव हो सका था, किन्तु यह उन दिनों देशभक्तों के लिए मार्ग-दर्शिका थी। यद्यपि पुस्तक प्रथम प्रकाशन के तुरंत बाद साम्राज्यवादी सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी, पर इस के अनेक संस्करण गुप्त रूप से छपते रहे।

प्रस्तुत संस्करण में पूर्व प्रकाशित दो भागों के अतिरिक्त 'तृतीय भाग' भी सम्मिलित है। शहीद ग्रन्थ-माला के सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल का चौदह पृष्ठ का 'आत्म-चरित्र' भी इस में जोड़ दिया है। श्री रतनलाल बंसल ने परिशिष्ट रूप में कुछ पूरक तथ्य जोड़ कर पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी है।

शहीदों के श्राद्ध के अतिरिक्त पुस्तक देशभक्ति, शौर्य एवं बलिदान की प्रेरणा देती है। ऐसी पुस्तक का प्रकाशन सरकार की ओर से किया जाना आवश्यक है, जिस से यह कम मूल्य में सुलभ हो सके।

—पी. एस. भकुनी

साहित्य और मनोविज्ञान

लेखक—देवेंद्र इस्सर; प्रकाशक—बुक हाइव, नयी दिल्ली; पृष्ठ संख्या—१३५; मूल्य—३.५०

पुस्तक में साहित्य और मनोविज्ञान के पारस्परिक संबंधों को ले कर साहित्यकार की सृजनात्मक प्रक्रिया,

वास्तविक चित्रण किया है. इस की समीक्षा की जाये । प्रस्तुत कृति इस दृष्टि से काफी सफल है ।

सुरुचिपूर्ण छपाई, सुन्दर आवरण आदि के दृष्टिकोण से उपन्यास देख कर निराशा ही होती है । पृष्ठ-संख्या भी इतनी नहीं कि इस का मूल्य एक रुपया रखा जा सके ।

—मनहर चौहान

हिन्दी में सरकारी कामकाज करने की विधि

लेखक—रामविनायक सिंह; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; पृष्ठ—२३५; मूल्य—३.००

पुस्तक के ग्यारह अध्यायों में क्रमशः सरकारी पत्रों के आलेखन की पूर्ण दशा का ज्ञान, भारतीय राज-तंत्र, पत्रों के सम्बंध में कार्यालयों की कार्य-पद्धति, टिप्पणी-लेखन, सरकारी पत्रों का आलेखन तैयार करना, सरकारी पत्रों के नमूने, सारलेख के आवश्यक गुण, अच्छे सारलेख के लिए आवश्यक निर्देश, सारलेख के भेद और उदाहरण, अनुवाद-कला-सिद्धान्त, प्रक्रिया की सोदाहरण व्याख्या एवं मीमांसा की गयी है । अंत में छह परिशिष्ट दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं—वाक्यांशों के हिन्दी-पर्याय, विशेष प्रशासनिक शब्दावली, प्रमुख सामुदायिक पद-संज्ञाएं एवं समूहवाची प्रशासकीय शब्दावली, वैयक्तिक पद-संज्ञाएं, हिन्दी-पर्यायों के रूप में यथावत ग्रहीत अंगरेजी शब्द तथा कुछ अन्य बहुप्रचलित प्रशासनिक अंगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय ।

प्रशासनिक हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पुस्तक अवश्य सहायक होगी, जिस के लिए लेखक तथा प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं ।

—पी० एस० भकुनी

कविता : १९६४

सम्पादक — ओम प्रभाकर तथा भागीरथ भार्गव; प्रकाशक — कविता प्रकाशन, अलवर; पृष्ठ — १३८; मूल्य—३.००

बीसवीं सदी के चतुर्थ दशक में हिन्दी-काव्य में नयी कविता का एक प्रतिक्रियावादी नारा उठ खड़ा हुआ, जिस के अंतर्गत छंदमुक्त रचनाएं लिखी जाने लगीं । प्रारंभ में तो नयी कविता के अंतर्गत कुछ सराहनीय काव्य-सृजन हुआ भी, पर बाद में जिन्होंने इस विधा का अनुसरण एवं अनुकरण किया, उन में एक दुराग्रह ही शेष रह गया था ।

ऐसे समय में नवगीतों के इस संकलन के प्रकाशन की घटना हिन्दी-काव्य-जगत में ऐतिहासिक महत्व रखती है । संकलन इस बात का द्योतक है कि तथाकथित नयी कविता के लेखकों ने इस तथ्य का अनुभव किया है कि मानव-मन की गहनतम अनुभूतियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का माध्यम गीत ही है ।

नवगीतों के इस संकलन को तीन भागों में विभाजित किया गया है—प्रवर्तन, प्रचलन तथा प्रस्थापन । प्रथम दो के अंतर्गत ५६ कवियों की

मेट्रिक प्रणाली ही कानूनी प्रणाली है

खरीदारी केवल

किलोग्राम

मीटर

लिटर

में ही कीजिये

DA 61/676

वास्तविक चित्रण किया है, इस की समीक्षा की जाये। प्रस्तुत कृति इस दृष्टि से काफी सफल है।

सुरुचिपूर्ण छपाई, सुन्दर आवरण आदि के दृष्टिकोण से उपन्यास देख कर निराशा ही होती है। पृष्ठ-संख्या भी इतनी नहीं कि इस का मूल्य एक रुपया रखा जा सके।

—मनहर चौहान

हिन्दी में सरकारी कामकाज करने की विधि

लेखक—रामविनायक सिंह; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; पृष्ठ—२३५; मूल्य—३.००

पुस्तक के ग्यारह अध्यायों में क्रमशः सरकारी पत्रों के आलेखन की पूर्ण दशा का ज्ञान, भारतीय राज-तंत्र, पत्रों के सम्बंध में कार्यालयों की कार्य-पद्धति, टिप्पणी-लेखन, सरकारी पत्रों का आलेखन तैयार करना, सरकारी पत्रों के नमूने, सारलेख के आवश्यक गुण, अच्छे सारलेख के लिए आवश्यक निर्देश, सारलेख के भेद और उदाहरण, अनुवाद-कला-सिद्धान्त, प्रक्रिया की सोदाहरण व्याख्या एवं मीमांसा की गयी है। अंत में छह परिशिष्ट दिये गये हैं जो इस प्रकार हैं—वाक्यांशों के हिन्दी-पर्याय, विशेष प्रशासनिक शब्दावली, प्रमुख सामुदायिक पद-संज्ञाएं एवं समूहवाची प्रशासकीय शब्दावली, वैयक्तिक पद-संज्ञाएं, हिन्दी-पर्यायों के रूप में यथावत ग्रहीत अंगरेजी शब्द तथा कुछ अन्य बहु-प्रचलित प्रशासनिक अंगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय।

प्रशासनिक हिन्दी के प्रचार-प्रसार में पुस्तक अवश्य सहायक होगी, जिस के लिए लेखक तथा प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

—पी० एस० भकुनी

कविता : १९६४

सम्पादक — ओम प्रभाकर तथा भागीरथ भार्गव; प्रकाशक — कविता प्रकाशन, अलवर; पृष्ठ — १३८; मूल्य—३.००

बीसवीं सदी के चतुर्थ दशक में हिन्दी-काव्य में नयी कविता का एक प्रतिक्रियावादी नारा उठ खड़ा हुआ, जिस के अंतर्गत छंदमुक्त रचनाएं लिखी जाने लगीं। प्रारंभ में तो नयी कविता के अंतर्गत कुछ सराहनीय काव्य-सृजन हुआ भी, पर बाद में जिन्होंने इस विधा का अनुसरण एवं अनुकरण किया, उन में एक दुराग्रह ही शेष रह गया था।

ऐसे समय में नवगीतों के इस संकलन के प्रकाशन की घटना हिन्दी-काव्य-जगत में ऐतिहासिक महत्व रखती है। संकलन इस बात का द्योतक है कि तथाकथित नयी कविता के लेखकों ने इस तथ्य का अनुभव किया है कि मानव-मन की गहनतम अनुभूतियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का माध्यम गीत ही है।

नवगीतों के इस संकलन को तीन भागों में विभाजित किया गया है—प्रवर्तन, प्रचलन तथा प्रस्थापन। प्रथम दो के अंतर्गत ५६ कवियों की

मेट्रिक प्रणाली

ही

है

खरीदारी केवल

किलोग्राम

मीटर

लिटर

में ही कीजिये

DA 61/676

(३) राजपुरा में १ यू एन का २७ अप से ।
(४) रेवाड़ी में २ बीआरआर न्यू ४वी आर आर का १६१ अप (प.रेलवे)
और १०० डाउन से ।
(५) बीकानेर में ९१ अप का १ जे एम वी से ।
(६) मेड़ता रोड में १ जे एमवी का २०९ अप और ९४ डाउन से ।
(७) लूनी में २ जे जे वी का १ जे जे एम से ।
(८) समदारी में २ जे एस वी का . जे जे वी से ।
(९) जंघपुर में २ जे जे वी का ९५ डाउन से ।
(१०) डेगाना में ९४ डाउन का .१२ डाउन से ।
(११) पीपर रोड में जे वी जे का ९४ डाउन से ।
(१२) डेगाना में २११ अप का ९३ अप से ।
(१३) फुलेरा में २१२ डाउन का (प. रेलवेज) ३२ डाउन, ६ डाउन और
२ डाउन से ।
(१४) फुलेरा में २११ अप का प रेलवेज) ३१ अप और ५ अप से ।
(१५) रेवाड़ी में ९१ अप का २०९अप से ।
(१६ पीपर रोड में १ जे पी वी का २०७ अप से ।
(१७) रेवाड़ी में २१० डाउन का २ वी आर एफ से ।
(१८) शिकोहाबाद में ३ एस एफ का ४० डाउन और १ टी. सी से ।
(१९) शिकोहाबाद में २ एस एफ का ४० डाउन, और १ टी सी और ११
अप से ।

७-गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन :

(१) २ डाउन कालका-हावड़ा मेल ८-२० बजे के स्थान पर ८-३५
बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी ।
(२) ३९ अप १४-२७ बजे के बजा १४-१७ बजे मुगलसराय से प्रस्थान
करेगी ।
(३) २ ए टी डी (आगरा/टूंडला/दिल्ली) पेसेंजर ८-३५ बजे के स्थान
पर ८-५५ बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी ।
(४) २७ अप १३-२० बजे के थान पर १२-५० बजे नई दिल्ली से
प्रस्थान करेगी और २१-१० बजे अमृतसर पहुंचेगी ।
(५) १९ डाउन ८-१० बजे के स्थान पर ७-१० बजे दिल्ली पहुंचेगी और
९-२० बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी ।
(६) २०४ डाउन १६-४८ बजे के थान पर १६-२५ बजे रेवाड़ी पहुंचेगी।
और १९-१५ बजे के स्थान पर १८-५० बजे दिल्ली पहुंचेगी ।
(७) ३६४ अप १३-१० बजे के थान पर १८-३५ बजे दिल्ली से
प्रस्थान करेगी ।

(६) २ एल एल कंगरवुर्द ''।
(७) ३३१ अप वहावलवासी ''।
(८) १ जे आर जे अलाकोर ''।
(९) २ वी एच वहमान दिवाना ''।
(१०) ३ जे एच आर ८ जे एच जन्द, सिधाहाल्ट में रुकेगी।
(११) ३६२ अप मिण्ढे ब्रिज में रुकेगी।
(१२) २ जे एल चिहरू ''।
(१३) २एएलएफ हमीरा आंरचंकीमन ''।
(१४) २ ए एल जे घुंगरान हाल्ट ''।
(१५) ५२ डाउन कांठ ''।
(१६) १८ डाउन भगत की कोठी ''।
(१७) २०७अप/२०८ डाउन ठठाना मिठारी ''।
(१८) २३१ अप पटेलनगर ''।
(१९) १०० डाउन पालम ''।
(२०) १ वी डी एस/२ वी डी एसविजवासन,
पाटली और खलीलपुर
(२१) १ वीडीआर और २२०डाउन तोला जोरी ''।
(२२) २ वी वी आर जुहारपुर ''।
(२३) २ वीएसएच/३ वीएस एचकालना ''।
(२४) ३ वीवीवी/४वीवीवी नरुआना।
जोधपुर सामाना ''।
(२५) १ वीआरएस/२वीआरएस सुई ''।
(२६) ३ वीएसआर/४ वीएस आर मोलीसर ''।
(२७) २ टीसी, १ एजीए १टीसी और २ एसी लांसनमऊ ''।
(२८) ६एल सी सोनिक और जैतीपुर ''।
(२९) ५५ अप हकीमपुर ''।

५-गाड़ियां रुकने के स्थान जो समाप्त हुए गए।
(१) ७ एफ एफ गहमनीवाला में नहीं रुकेगी।
(२) १ एल जे गुरनी ''।
(३) १ एएच आर १० जे एचाजन्द,सिधा हाल्ट ''।
(४) २ वी आर एफ सुई ''।

६-नये मेल (कनेक्शन)
(१) फीरोजपुर में ८७ अप का २ी एफ से।
(२) कुरुक्षेत्र में २ एन के का ५८ डाउन से।

उत्तर रेलवे-सूचना

१ अप्रैल, १९६५ से समय-सारिणी में संशोधन किया जाएगा। निम्नांकित महत्वपूर्ण परिवर्तन होंगे :—

१-पुनःस्थापित नई गाड़ियां

डगाना और फ,लेरा के बीच दोनों ओर की एक गाड़ी (पैसेन्जर २१२ डाउन/२११ अप)।

२- परिवर्द्धित गाड़ियां

आगरा फोर्ट और मेड़ता रोड के बीच चालने वाली २०७ अप/२०८ डाउन एक्सप्रेस गाड़ियां जोधपुर तक और से परिवर्द्धित कर दी जाएंगी।

३- गति-वर्द्धित गाड़ियां

(१) ५१ अप स्यालदाह-पठानकोट एक्सप्रेस	त्वरित की गई	२० मिनट
(२) ५७ अप पठानकोट	"	"	५ मिनट
(३) ९३ अप दिल्ली - जोधपुर मेल	"	"	३० "
(४) ९४ डाउन जोधपुर - दिल्ली	"	"	५५ "
(५) ९५ अप बीकानेर - माड़वाड़		"	१५ "
(६) ९७ अप जोधपुर - बाड़मेर एक्सप्रेस		"	३५ "
(७) २०४ डा. अहमदाबाद- दिल्ली	"	"	२ "
(रेवाड़ी - दिल्ली के बीच)		"	१५ "
(८) २०७ अप आगरा फोर्ट मेड़ता रोड (कुचामन रोड-मेड़ता रोड के बीच)	"	"	७० "
(९) ४ बी आर आर रतनगढ़-रेवाड़ी पैसेन्जर		"	७० "
(१०) २ बी आर आर	"	"	१५ "
(११) १ बी आर आर रेवाड़ी - रतनगढ़	"	"	३५ "
(१२) ३ बी आर आर	"	"	५० "
(१३) २ बी डी बी भटिण्डा-दिल्ली	"	"	२५ "
(१४) १ बी आरएस सिरसा-रेवाड़ी	"	"	२० "
(१५) २ बी आर एस रेवाड़ी-सिरसा			

४- गाड़ी रुकने के नए स्थान

(१) १ जे एफ खोजवाला में।
(२) १ ए बी पी सोहल ।
(३) २ ए के बापाराय "।
(४) ८ एल एफ सुल्हानी "।
(५) २ एल जे एच जसोवाल में रुकेगी।

रचनाएं हैं तथा प्रस्थापन में नवगीत संबंधी चार लेख हैं।

चूंकि प्रवर्तन में निराला के अतिरिक्त तथाकथित नयी कविता के छंद से अनभिज्ञ कवियों की ही रचनाएं हैं, इस कारण उन के गीतों का स्तर प्रचलन के गीतों से हलका रह गया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का गीत किसी भी बाजारू फिल्मी गीत से कम नहीं है।

ठाकुरप्रसाद सिंह, भारती तथा केदारनाथ सिंह के गीत सुन्दर हैं।

प्रचलन के अंतर्गत वीरेन्द्र मिश्र, ओम प्रभाकर, नरेश सक्सेना, नीलम सिंह, शलभ, श्रीकृष्ण तिवारी तथा रवीन्द्र भ्रमर के गीत नयी संभावनाओं की ओर निश्चित संकेत हैं।

लगता है बहुत से गीत निरर्थक एवं निम्न स्तर के होते हुए भी किसी दुराग्रह के कारण सम्मिलित किये गये हैं।

—दिनेश सक्सेना 'दिनेशायन'

प्राप्ति-स्वीकार

भारतीय क्रिकेट के नवरत्न; लेखक—हरिमोहन शर्मा; प्रकाशक—वोरा एंड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि०, बम्बई-२; पृष्ठ—१०७; मूल्य—२.००

मिट्टी की लोथ; लेखक—हरिप्रकाश; प्रकाशक—साहित्य संस्थान, दिल्ली; पृष्ठ—१८२; मूल्य—४.००

विश्वासघात; लेखक—यज्ञदत्त शर्मा; प्रकाशक—स्टार पब्लिकेशन्स, दिल्ली-६; पृष्ठ—१२४; मूल्य—१.००

जगमगाते दीप; लेखक—महावीर प्रसाद हलवाई; प्रकाशक—कुटीर प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ—१५४; मूल्य—१.७५

बेगम और गुलाम; लेखक—रामकुमार भ्रमर; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१; पृष्ठ—१२८; मूल्य—१.००

आंखें, आंसू और कब्र; लेखक—बृजभूषण सिंह 'आदर्श'; प्रकाशक—अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर; पृष्ठ—६७; मूल्य—१.००

सपने बिकाऊ हैं; लेखक—राधाकृष्ण; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१; पृष्ठ—१३२; मूल्य—१.००

चम्बल के कक्कू; लेखक—रामनारायण चतुर्वेदी; प्रकाशक—अनिल प्रकाशन, आगरा; पृष्ठ—१७५; मूल्य—१.५०

आकृतियां उभरती हुई; (कहानी-संग्रह) लेखक—विविध; प्रकाशक—आलोक संगम, डालटेनगंज; पृष्ठ-संख्या—१३५; मूल्य—३.५०

विरागिनी; लेखक—महतापसिंह नेगी; प्रकाशक—विद्या मंदिर लिमिटेड, नयी दिल्ली; पृष्ठ—१४०; मूल्य—३.००

किसान ने शराब बनायी; लेखक—टाल्सटाय; अनुवादक—रामजीसहाय; प्रकाशक—संगम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद; पृष्ठ—५६; मूल्य—०.६२

और वह हार गयी; लेखक—आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र; प्रकाशक—त्रिवेणी पाकेट बुक्स, इलाहाबाद; पृष्ठ—२२०; मूल्य—२.७५

दी हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड की ओर से रामनन्दन सिन्हा द्वारा हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित तथा प्रकाशित

(३) राजपुरा में १ यू एन का २७ अप से।
(४) रेवाड़ी में २ वीआरआर न्यू ४वी आर आर का १६१ अप (प.रेलवे) और १०० डाउन से।
(५) बीकानेर में ९१ अप का १ जे एम बी से।
(६) मेड़ता रोड में १ जे एमवी का २०९ अप और ९४ डाउन से।
(७) लूनी में २ जे जे बी का १ जे जे एम से।
(८) समदारी में २ जे एस वी का . जे जे बी से।
(९) जोधपुर में २ जे जे बी का ९५ डाउन से।
(१०) डेगाना में ९४ डाउन का .१२ डाउन से।
(११) पीपर रोड में जे बी जे का ९४ डाउन से।
(१२) डेगाना में २११ अप का ९३ अप से।
(१३) फुलेरा में २१२ डाउन का (प. रेलवेज) ३२ डाउन, ६ डाउन और २ डाउन से।
(१४) फुलेरा में २११ अप का प रेलवेज) ३१ अप और ५ अप से।
(१५) रेवाड़ी में ९१ अप का २०९अप से।
(१६ पीपर रोड में १ जे पी बी का २०७ अप से।
(१७) रेवाड़ी में २१० डाउन का २ बी आर एफ से।
(१८) शिकोहाबाद में ३ एस एफ का ४० डाउन और १ टी. सी से।
(१९) शिकोहाबाद में २ एस एफ का ४० डाउन, और १ टी सी और ११ अप से।

७-गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन :

(१) २ डाउन कालका-हावड़ा मेल ८-२० बजे के स्थान पर ८-३५ बजे दल्ली से प्रस्थान करेगी।
(२) ३९ अप १४-२७ बजे के बजा १४-१७ बजे मुगलसराय से प्रस्थान करेगी।
(३) २ ए टी डी (आगरा/टूंडला/दिल्ली) पैसेंजर ८-३५ बजे के स्थान पर ८-५५ बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी।
(४) २७ अप १३-२० बजे के थान पर १२-५० बजे नई दिल्ली से प्रस्थान करेगी और २१-१० बजे अमृतसर पहुंचेगी।
(५) ११ डाउन ८-१० बजे के स्थान पर ७-१० बजे दिल्ली पहुंचेगी और ९-२० बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी।
(६) २०४ डाउन १६-४८ बजे के थान पर १६-२५ बजे रेवाड़ी पहुंचेगी। और १९-१५ बजे के स्थान पर १८-५० बजे दिल्ली पहुंचेगी।
(७) ३६४ अप १३-१० बजे के थान पर १८-३५ बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी।

(६) २ एल एल कंगरवर्द ,, ।
(७) ३३९ अप वहावलवासी ,, ।
(८) १ जे आर जे अलाकोर ,, ।
(९) २ वी एच वहमान दिवाना ,, ।
(१०) ३ जे एच और ८ जे एच जन्द सिघाहाल्ट में रुकेगी ।
(११) ३६२ अप मिण्टो व्रिज में रुकेगी ।
(१२) २ जे एल चिहरू ,, ।
(१३)२एएलएफ हमीरा और चंकीमन ,, ।
(१४) २ ए एल जे घुंगरान हाल्ट ,, ।
(१५) ५२ डाउन कांठ ,, ।
(१६) १८ डाउन भगत की कोठी ,, ।
(१७)२०७अप/२०८ डाउन ठठाना मिठारी ,, ।
(१८) २३१ अप पटेलनगर ,, ।
(१९) १०० डाउन पालम ,, ।
(२०) १ वी डी एस/२ वी डी एसविजवासन, पाटली और खलीलपुर
(२१) १ वीडीआर और २२०डाउन तौला जोरी ,, ।
(२२) २ वी वी आर जुहारपुर ,, ।
(२३) २ वीएसएच/३ वीएस एचकालना ,, ।
(२४) ३ वीवीवी/४वीवीवी नरुआना। जोधपुर सांमाना ,, ।
(२५)१ वीआरएस/२वीआरएस सुई ,, ।
(२६) ३ वीएसआर/४ वीएस आर मोलीसर ,, ।
(२७)२ टीसी, १ एजीए १टीसी और २ एसी सोसनमऊ ,, ।
(२८)६एल सी सोनिक और जैतीपुर ,, ।
(२९) ५५ अप हकीमपुर ,, ।

५-गाड़ियां रुकने के स्थान जो समाप्त हुए गए।

(१) ७ एफ एफ गहमनीवाला में नहीं रुकेगी।
(२) १ एल जे गुरनी ,, ।
(३) १ एएच और १० जे एचाजन्दसिघा हाल्ट ,, ।
(४) २ वी आर एफ सुई ,, ।

६-नये मेल (कनेक्शन)

(१) फीरोजपुर में ८७ अप का २१ एफ से।
(२) कुरुक्षेत्र में २ एन के का ५८ डाउन से।

जून अंक पढ़ कर अति प्रसन्नता हुई। 'बिन्दु-बिन्दु विचार' ने अंक को सजाया एवं संवारा है! 'अनचाहे प्रशंसक से' कविता तथा 'पुरस्कार का भाग्य' कहानी रुचिकर लगीं!

—रवीन्द्र शलभ, मेरठ

जून अंक में 'बिरादरी' कहानी, अकेला एवं 'मनोज' की कविताएं सुन्दर थीं। ब्रह्मानन्द श्रीवास्तव का व्यंग सशक्त रहा। साज-सज्जा तथा सामग्री की दृष्टि से 'कादम्बिनी' प्रति अंक एक नया सोपान चढ़ती है।

—भगवतीलाल व्यास, उदयपुर

हिन्दी की सभी पत्रिकाओं में 'कादम्बिनी' ही ऐसी पत्रिका है, जिस में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक लेखों का समावेश पाया जाता है। कहानियां, कविताएं और विविध सामग्री पाठकों का केवल मनोरंजन नहीं करतीं, उन का ज्ञानवर्द्धन भी करती हैं।

—कमलेशकुमार, सतना

मई अंक में कौशल्या अश्क की 'मुसीबत है खरीदारी भी' पढ़ा। जून अंक में उपेन्द्रनाथ अश्क का जवाब पढ़ा। मैं इसी प्रकार के झगड़ों के संबंध में दोनों के अनेक लेख पढ़ चुका हूं। इस प्रकार पति-पत्नी के आपसी झगड़े प्रकाशित होने लगेंगे तो पत्रिका, पत्रिका न रह कर छोटा-मोटा महाभारत हो जायेगी। लगभग सभी पाठक यह भली भांति जान चुके हैं कि श्री और श्रीमती अश्क के घरेलू जीवन में इस प्रकार के झगड़े उठते ही रहते हैं। बार-बार इस प्रकार के लेख लिखने से साहित्य को क्या लाभ? इस में अश्कजी की तुनुकमिजाजी और आत्मप्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं श्री और श्रीमती अश्क से प्रार्थना करूंगा कि यह पारस्परिक प्रचार बंद करें। यदि इस प्रकार के लेखों में जन-रुचि हो तो मैं भी अपने मित्रों के पति-पत्नी संबंधी झगड़ों को प्रकाशित करवाऊं?

—राजेन्द्र पाण्डेय, सीतापुर

जून अंक अच्छा लगा। अंचल, अकेला और मनोज की कविताएं अधिक मार्मिक हैं, कहानियों में अमरकान्त और भ्रमर की अच्छी लगीं। लेखों में 'काल की रस्सी' तथा 'इस्पात का संगीत' उत्तम रहे। 'बिन्दु-बिन्दु विचार' इसी प्रकार देते रहें, इस में सूक्तियों-जैसा आनन्द एवं प्रेरणा मिलती है।

—प्रेमशंकर आलोक, कानपुर

जून अंक में ग्रेजिया देलेदा की '... बहुत पसंद आयी। 'हंसने का मौ... 'कहानी का वह राक्षस' और '...

तथा २११/डब्ल्यु आर ११/डब्ल्यु आ ३ द्वारा अजमेर और दिल्ली के बीच
चाल रही हैं, २११/२२० (डब्ल्यु आर११/२०) पैसेंजर को अजमेर तक और
से परिवर्धित कर दिए जाने के कारण समाप्त कर दी जाएगी।

(८) प्रथम और द्वितीय श्रेणी की बोगी के स्थान पर एक प्रथम और
तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट बोगी ५ अप/६ डाउन मेलों द्वारा लखनऊ तथा
अमृतसर के बीच चलेगी।

(९) एक तृतीय श्रेणी की बोगी १४डाउन/१३ अप एक्सप्रेसों द्वारा
दिल्ली साहिबगंज के स्थान पर दिल्ली और भागलपुर के बीच चलेगी।

(१०) एक तृतीय श्रेणी की बोगी ३७२/३४१/५ एल जे एच और ६
एल जे एच/३४२/१ डी एस यु द्वारा सहारनपुर-लुधियाना के बीच चलने
के स्थान पर ३४१/५ एल जे एच और ६ एल जे एच/३४२ द्वारा दिल्ली
और जाखल के बीच चलेगी।

(११) एक तृतीय श्रेणी की बोगी जो २०३/२०४ (डब्ल्यु आर ३/४) द्वारा
दिल्ली और बांदीकुई के बीच चल रही है, इन्हीं गाड़ियों द्वारा अजमेर तक
और से परिवर्धित कर दी जाएगी।

(१२) एक प्रथम और तृतीय श्रेणी का कम्पोजिट और एक ३ स्लीपर जोध-
पुर-जयपुर के बीच १६/२०८ (डब्ल्यु आर ८) और ३/डब्ल्यु आर ७ (२०७)/
१५ के स्थान पर २०८-२०७ (डब्ल्यु आर ८/७) द्वारा चलाया जाएगा।

(१३) प्रथम और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट बोगी के स्थान पर एक तृतीय
श्रेणी की बोगी ६ अप/५ डाउन मेलों द्वारा दिल्ली और झांसी के बीच
चलेगी।

(१४) २०७/२०८ (डब्ल्यु आर ७/८) एक्सप्रेसों को जोधपुर तक और से
बढ़ा दिए जाने के कारण, थ्रु और सेक्शनल कैरिजें जो वर्तमान में २०७/
१५ और १६/२०८ से मेड़ता रोड को स्थानान्तरित कर दी गई हैं, अब
२०७/२०८ द्वार जोधपुरा तक चलाई जाएंगी।

१०- समय-सारिणी का मूल्य :

मानचित्र केवल अंग्रेजी की समय-सारिणी में उपलब्ध होंगे—प्रत्येक
का मूल्य ३० पै.।

नये समयों का क्रियान्वयन : गाड़ियां ३१ मार्च/१ अप्रैल, ६५ की मध्य
रात्रि से या यथाशीघ्र नए समय के अनुसार चलेंगी।

गाड़ियों के समय, थ्रु कोचों के पुनःस्थापन और निरसन (कैंसीलेशन),
गाड़ियों के स्थान के श्रेणियों के समंजन संबंधी विस्तृत सूचना के लिए अप्रैल
१९६५ की समय-सारिणी देखें जो रेलवे बुकिंग, आरक्षण, पूछताछ कार्या-
लयों और महत्त्वपूर्ण स्टेशनों के बुकस्टालों तथा मुख्य परिचालन अधी-
क्षक से प्राप्त होगी।

दो वार चला करेगा।

एक्स दिल्ली, सोमवार तथा वृहस्पतिवार को।

एक्स वीकानेर, मंगलवार तथा शुक्रवार को।

(५) ९३ अप/९४ डाउन जोधपुर मेलों पर एक आंशिक वातानुकूलित कोच दिल्ली और जोधपुर के वीच ३१-८-६५ तक निम्न प्रकार से सप्ताह में तीन वार चलाता है।

एक्स दिल्ली, सोमवार, वुधवा और शनिवार को।

एक्स जोधपुर, रविवार, मंगलवार और वृहस्पतिवार को।

(२) वातानुकूलित स्थान जो समाप्तकर दिए गए :

५९ अप/६० डाउन श्रीनगर एक्सप्रेस पर आंशिक वातानुकूलित कोच जो नई दिल्ली और पठानकोट के वीच सप्ताह में तीन वार चलता है, अव नहीं चलेगा।

९. थ्रू/सेक्शनल कैरिजों के चलने में परिवर्तन :

(१) एक प्रथम और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट वोगी जो ८५ अप/३१ अप और ३२ डाउन/८६ डाउन मेल गाड़ियों द्वारा दिल्ली होकर कानपुर सेंट्रल और अमृतसर के वीचा चाल रही है, थ्रू यात्रियों द्वारा उसका वहुत कम उपयोग किए जाने के कारण समाप्त कर दी जाएगी।

(२) एक प्रथम और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट वोगी और एक तृतीय श्रेणी की वोगी जो आगरा छावनी और दिली के वीच चल रही है, ३५५/८४ और ८३/३५६ गाड़ियों के स्थान पर २ टी ए/८४ और ८३/१ टी ए गाड़ियों द्वारा चलाई जाएंगी।

(३) एक प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट वोगी जो एक्स आगरा छावनी से इलाहावाद को चल रहो है, ३५५/१४ के स्थान पर २ टी ए/१४ द्वारा चलायी जाएगी।

(४) एक तृतीय श्रेणी की वोगी जो दिल्ली से कोटद्वार को चल रही है, ४१ अप/५२ डाउन/३ के एन के स्थान पर ४१ अप/२ एस एम/३ के एन द्वारा चलाई जाएगी।

(५) तृतीय श्रेणी के वोगी के स्थान पर एक द्वितीय और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट वोगी ८७/१ वी एच और २ वी एच /८८ द्वारा कालका और हिन्दुमल कोट के वीच चोलगी।

(६) तृतीय श्रेणी की वोगी के स्थान पर एक प्रथम और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट वोगी ८६/१ एस वी और ४ एस वी/८५ गाड़ियों द्वारा दिल्ली और समस्तीपुर के वीच चलेगी।

(७) एक तृतीय श्रेणी की वोगी जो ब्ल्यू आर ४/डब्ल्यू आर २०/२२०

(८) १ वी डी वी १४-५५ बजे के स्थान पर १४-५ बजे दिल्ली से प्रस्थान करेगी और २-० बजे के स्थान पर१-३० बजे भटिण्डा पहुंचेगी।

(९) २ बी डी बी ०-५५ बजे के स्थान पर १-४५ बजे भटिण्डा से प्रस्थान करेगी और वर्तमान के समान १४-२५ बजे दिल्ली पहुंचेगी।

(१०) २ बी आर एस ६-५० बजे के स्थान पर ६-५५ बजे रेवाड़ी से प्रस्थान करेगी और १३-२० बजे के स्थानपर १३-५ बजे सिरसा पहुंचेगी।

(११) १ बी आर एस १५-५ बजे केस्थान पर १४-५० बजे सिरसा से प्रस्थान करेगी और २१-४० बजे के स्थान पर २१-० बजे रेवाड़ी पहुंचेगी।

(१२) २ बी आर एफ १-२५ बजे के स्थान पर २-२५ बजे रेवाड़ी से प्रस्थान करेगी।

(१३) २ बी आर आर अब ४ बी आर आर ०-५बजे के स्थान पर २३-१५ बजे रतनगढ़ से प्रस्थान करेगी और ९-३० बजेके स्थान पर ७-३० बजे रेवाड़ी पहुंचेगी।

(१४) ४ बीआर आर अब २ बीआरआर ६-१० बजे के स्थान पर ६-१५ बजे रतनगढ़ से प्रस्थान करेगी और १५-३५बजे के स्थान पर १४-३० बजे रेवाड़ी पहुंचेगी।

(१५) आगरा और कानपुर के बीचचलाने वाली २ ए सी/३ ए सी पैसेन्जर गाड़ियों को बंद करके उन्हें टूंडला से चलाया जाएगा और टूंडला-कानपुर के बीच उनकी संख्या २ टी सी/१ टी सी तथा टूंडला-आगरा के बीच २ टीए/१टीए होंगी।

इन गाड़ियों के समय निम्नांकित होंगे :—

२ टी सी		१ टी सी
३-५ बजे प्र.	टूंडला	आ. २-० बजे
९-४५ बजे आ.	कानपुर	प्र. १७-४० बजे
२ टी ए		**१ टी ए**
२२-३० बजे प्र.	आगरा	आ. ५-५५ बजे
२४-०० बजे आ.	टूंडला	प्र. ४-१५ बजे

८-(१) **गाड़ियों में वातानुकूलित स्थान की व्यवस्था :**

(१) १ अप/२ डाउन मेलों (दिल्ली-कालका) पर आंशिक वातानुकूलित कोच सप्ताह में तीन बार के स्थान पर प्रतिदिन चला करेंगी।

(२) ४१ अप/४२ डाउन मसूरी एक्सप्रेस पर दिल्ली और देहरादून के बीच एक आंशिक वातानुकूलित कोच प्रतिदिन चला करेगा।

(३) ३ डाउन/३३ अप और ३४ डाउन/४ अप मेलों द्वारा एक पूर्ण वातानुकूलित कोच बंबई सेंट्रल और पठानकोट के बीच प्रतिदिन चला करेगा।

(४) ९१ अप/९२ डाउन बीकानेर मेल पर एक आंशिक वातानुकूलित कोच दिल्ली और बीकानेर के बीच ३१-७-६५ तक निम्न प्रकर से सप्ताह में

जून अंक पढ़ कर अति प्रसन्नता हुई। 'बिन्दु-बिन्दु विचार' ने अंक को सजाया एवं संवारा है! 'अनचाहे प्रशंसक से' कविता तथा 'पुरस्कार का भाग्य' कहानी रुचिकर लगीं!

—रवीन्द्र शलभ, मेरठ

जून अंक में 'बिरादरी' कहानी, अकेला एवं 'मनोज' की कविताएं सुन्दर थीं। ब्रह्मानन्द श्रीवास्तव का व्यंग सशक्त रहा। साज-सज्जा तथा सामग्री की दृष्टि से 'कादम्बिनी' प्रति अंक एक नया सोपान चढ़ती है।

—भगवतीलाल व्यास, उदयपुर

हिन्दी की सभी पत्रिकाओं में 'कादम्बिनी' ही ऐसी पत्रिका है, जिस में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक लेखों का समावेश पाया जाता है। कहानियां, कविताएं और विविध सामग्री पाठकों का केवल मनोरंजन नहीं करतीं, उन का ज्ञानवर्द्धन भी करती हैं।

—कमलेशकुमार, सतना

मई अंक में कौशल्या अश्क की 'मुसीबत है खरीदारी भी' पढ़ा। जून अंक में उपेन्द्रनाथ अश्क का जवाब पढ़ा। मैं इसी प्रकार के झगड़ों के संबंध में दोनों के अनेक लेख पढ़ चुका हूं। इस प्रकार पति-पत्नी के आपसी झगड़े प्रकाशित होने लगेंगे तो पत्रिका, पत्रिका न रह कर छोटा-मोटा महाभारत हो जायेगी। लगभग सभी पाठक यह भली भांति जान चुके हैं कि श्री और श्रीमती अश्क के घरेलू जीवन में इस प्रकार के झगड़े उठते ही रहते हैं। बार-बार इस प्रकार के लेख लिखने से साहित्य को क्या लाभ? इस में अश्कजी की तुनुकमिजाजी और आत्मप्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मैं श्री और श्रीमती अश्क से प्रार्थना करूंगा कि यह पारस्परिक प्रचार बंद करें। यदि इस प्रकार के लेखों में जन-रुचि हो तो मैं भी अपने मित्रों के पति-पत्नी संबंधी झगड़ों को प्रकाशित करवाऊं?

—राजेन्द्र पाण्डेय, सीतापुर

जून अंक अच्छा लगा। अंचल, अकेला और मनोज की कविताएं अधिक मार्मिक हैं, कहानियों में अमरकान्त और भ्रमर की अच्छी लगीं। लेखों में 'काल की रस्सी' तथा 'इस्पात का संगीत' उत्तम रहे। 'बिन्दु-बिन्दु विचार' इसी प्रकार देते रहें, इस में सूक्तियों-जैसा आनन्द एवं प्रेरणा मिलती है।

—प्रेमशंकर आलोक, कानपुर

जून अंक में ग्रेजिया देलेदा की '[illegible] बहुत पसंद आयी। 'हंसने का मौ[illegible] 'कहानी का वह राक्षस' और '[illegible]

तथा २१९/डब्ल्यू आर १९/डब्ल्यू आ ३ द्वारा अजमेर और दिल्ली के बीच
चाल रही हैं, २१९/२२० (डब्ल्यू आर१९/२०) पैसेंजर को अजमेर तक और
से परिवर्द्धित कर दिए जाने के कारण समाप्त कर दी जाएगी।

(८) प्रथम और द्वितीय श्रेणी की बोगी के स्थान पर एक प्रथम और
तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट बोगी ५ अप/६ डाउन मेलों द्वारा लखनऊ तथा
अमृतसर के बीच चलेगी।

(९) एक तृतीय श्रेणी की बोगी १४डाउन/१३ अप एक्सप्रेसों द्वारा
दिल्ली साहिबगंज के स्थान पर दिल्ली और भागलपुर के बीच चलेगी।

(१०) एक तृतीय श्रेणी की बोगी ३७२/३४१/५ एल जे एच और ६
एल जे एच/३४२/१ डी एस यू द्वारा सहारनपुर-लुधियाना के बीच चलने
के स्थान पर ३४१/५ एल जे एच औ ६ एल जे एच/३४२ द्वारा दिल्ली
और जाखल के बीच चलेगी।

(११) एक तृतीय श्रेणी की बोगी जो२०३/२०४ (डब्ल्यू आर ३/४) द्वारा
दिल्ली और बांदीकुई के बीच चल रही है, इन्हीं गाड़ियों द्वारा अजमेर तक
और से परिवर्द्धित कर दी जाएगी।

(१२) एक प्रथम और तृतीय श्रेणी का कम्पोजिट और एक ३ स्लीपर जोध-
पुर-जयपुर के बीच ९६/२०८ (डब्ल्यूआर ८) और ३/डब्ल्यू आर ७ (२०७)/
९५ के स्थान पर २०८-२०७ (डब्ल्यू आर ८/७) द्वारा चलाया जाएगा।

(१३) प्रथम और तृतीय श्रेणी की कम्पोजिट बोगी के स्थान पर एक तृतीय
श्रेणी की बोगी ६ अप/५ डाउन मेलों द्वारा दिल्ली और झांसी के बीच
चलेगी।

(१४) २०७/२०८ (डब्ल्यू आर ७/८) एक्सप्रेसों को जोधपुर तक और से
बढ़ा दिए जाने के कारण, थ्रू और सेक्सनल कैरिजें जो वर्तमान में २०७/
९५ और ९६/२०८ से मेड़ता रोड को स्थानान्तरित कर दी गई हैं, अब
२०७/२०८ द्वार जोधपुरा तक चलाई जाएंगी।

१०- **समय-सारिणी का मूल्य :**

मानचित्र केवल अंग्रेजी की समय-सारिणी में उपलब्ध होंगे—प्रत्येक
का मूल्य ३० पैं.।

नये समयों का क्रियान्वयन : गाड़ियां ३१ मार्च/१ अप्रैल, ६५ की मध्य
रात्रि से या यथाशीघ्र नए समय के अनुसार चलेंगी।

गाड़ियों के समय, थ्रू कोचों के पुनःस्थापन और निरसन (कैंसीलेशन),
गाड़ियों के स्थान के श्रेणियों के समंजन संबंधी विस्तृत सूचना के लिए अप्रैल
१९६५ की समय-सारिणी देखें जो रेलवे बुकिंग, आरक्षण, पूछताछ कार्या-
लयों और महत्वपूर्ण स्टेशनों के बुकस्टालों तथा मुख्य परिचालन अधी-
क्षक से प्राप्त होगी।
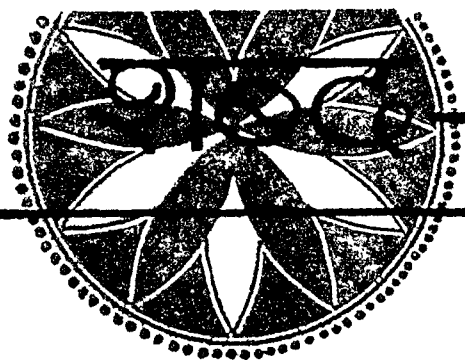
● सीताचरण दीक्षित

निम्नलिखित शब्दों के जो सही अर्थ हों उन पर चिह्न लगाइये और अगले पृष्ठ में दिये उत्तरों से मिलाइये—

१. अंगांगीभाव—क. अहंकार, ख. परस्पर उपकृत तथा उपकारी का भाव, ग. महंगाई, घ. हौसला।

२. देव-सभ्य—क. देवताओं के समान सभ्य, ख. अत्यन्त सभ्य, ग. इन्द्र, घ. जुआरी।

३. दैनिकी—क. रोज-रोज का वेतन, ख. हाजिरी रजिस्टर, ग. अखबार, घ. प्रभाती।

४. वंध्य—क. वध योग्य, ख. वंदना योग्य, ग. फल-हीन, घ. निपूती स्त्री।

५. चयन—क. चूसना, ख. चबाना, ग. निचोड़ना, घ. संग्रह करना।

६. कुचेल—क. बुरा चोला, ख. मैले कपड़े पहननेवाला, ग. कुचाली, घ. कुचोर।

७. तीर्थ-काक—क. तीर्थ का कौवा, ख. पंडा, ग. लोभी मनुष्य, घ. तीर्थयात्री।

८. शयनीय—क. सेज, ख. सोनेवाला, ग. निद्रालु, घ. उत्साहहीन।

९. छत्रभंग—क. एक रोग, ख. छाते का टूट जाना, ग. गिरना, घ. अराजकता।

१०. उपादेय—क. सुन्दर, ख. उपयोगी, ग. अनिवार्य, घ. हानिकारक।

११. तोषामोद—क. संतुष्ट करना, ख. खेलना, ग. खुशामद, घ. उत्सव।

१२. सांगोपांग—क. सम्पूर्ण, ख. हाथ-अंगुलियों सहित, ग. आपादमस्तक, घ. हाथ-पैर।

१३. अभिरूप—क. कुरूप, ख. स्वरूप, ग. बनावटी रूप, घ. अनुरूप।

१४. निरवद्य—क. अकथनीय, ख. निर्दोष, ग. निन्दनीय, घ. मंजा हुआ।

१५. कुटिलाशय—क. खल, ख. नीति-पटु, ग. साधु, घ. महाशय।

१६. दिवास्वप्न—क. दिन का स्वप्न, ख. मनोराज्य, ग. योजना, घ. आकांक्षा।

१७. पंडितम्मन्य—क. अपने को पंडित माननेवाला, ख. महापंडित, ग. विद्वान, घ. अयोग्य।

१८. दिवा-प्रदीप—क. सूर्य, ख. जी-हुजूर, ग. अप्रसिद्ध व्यक्ति, घ. चोर।

१९. गाढ़मुष्टि—क. जोर से घूंसा मारनेवाला, ख. पहलवान, ग. उदार, घ. कंजूस।

२०. ऐतिह्य—क. इतिहास, ख. दंतकथा, ग. जीवनी, घ. इतिहास-लेखक।

रचनाएं प्रभावशाली रहीं ।

—निशीथ, राजनांदगांव

'भारत में कितना सोना है' लेख सामयिक और समस्या प्रधान था ।

'मियां की जूती मियां के सिर' 'मुसीबत है खरीदारी' का अच्छा उत्तर बन पड़ा है । 'इस्पात का संगीत' एवं 'असूर्य लोक' लेखों ने विशेष प्रभावित किया ।

अंचल तथा रवीन्द्र भ्रमर की कविताओं ने हृदय को छू लिया ।

कहानियों में 'पुरस्कार का भाग्य' प्रशंसनीय थी । 'हंसने का मौसम' उदासी के बादलों को छिटकाने में समर्थ था ।

—हरदेव सरल, हिसार

जून अंक में 'पुस्तकों के शिकारी' हास्य-व्यंग्य ने प्रभावित किया । मैं भी पुस्तकों के शिकारियों से बहुत परेशान था । बहिन-भाई के प्यार का चित्रण बड़ा मार्मिक रहा ।

—विजयस्वरूप अष्ठाना, गोविन्दपुर

सुन्दर कहानियां पढ़ कर मेरा मन कहीं और ही खो गया । 'जीवन एक अनबूझ पहेली' स्तंभ बहुत पसंद आया ।

—कुमार गुरमानी, लश्कर

जून अंक में 'पुरस्कार का भाग्य' और 'कहानी का वह राक्षस' कहानियां पसंद आयीं । 'स्वतंत्रता, एकता, अखंडता' लेख विशेष अच्छा लगा । ग्रेजिया देलेदा के 'मां' का हिन्दी रूपांतर बहुत बहुत अच्छा लगा ।

—बालकृष्ण गुप्त, सिरसौद

जून अंक में प्रकाशित लेख 'भारत में कितना सोना ?' सूचना की दृष्टि से उत्तम था ।

—विजयकुमार सौमित्र, कलकत्ता

'अंचल' की कविता उत्कृष्ट रही । 'स्वतंत्रता, एकता, अखंडता' सामयिक लेख था । 'पुरस्कार का भाग्य' अच्छी कहानी थी ।

—गिरीश्वर मिश्र, देवरिया

जून अंक में 'आप की दृष्टि' के अंतर्गत श्री महेन्द्र एन. पुरोहित ने सुझाव दिया था कि बीच के चित्रों के स्थान पर कोई अन्य स्तंभ प्रारंभ करें । उन का सुझाव जंचा नहीं । यों तो 'कादम्बिनी' अपने उत्कृष्ट चयन के कारण ही सजी-संवरी रहती है, परंतु इन चित्रों द्वारा उस में और निखार आ जाता है । इसलिए चित्रों को बंद कर देना उचित नहीं होगा ।

—कृष्णचन्द्र, रायपुर

हाल में ही मैं ने 'कादम्बिनी' का पहली बार अध्ययन किया । पत्रिका को मैं ने अपने लिए बहुत ही उपयुक्त पाया ।

—आलोककुमार भट्टाचार्य, कानपुर

'बिन्दु-बिन्दु विचार' के लिए सहस्रों बधाइयां ! वास्तव में यह स्तंभ भावरूपकों के द्वारा जीवन के सत्य पाठकों के सम्मुख रखता है । 'गोष्ठी' के अंतर्गत विविध प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं ।

—मंगलेशचंद्र डबराल, काफलपानी (टिहरी गढ़वाल)

'कादम्बिनी' नियमित रूप से पढ़ता हूं । यह अपने ही ढंग की पत्रिका है । लेखों और कहानियों का चयन सर्वोत्कृष्ट होता है । जून अंक में 'बिन्दु-बिन्दु विचार', 'शब्द-सामर्थ्य बढ़ाइये', श्री प्रकाश एवं अश्क जी के लेख पसंद आये ।

—शुभनारायण सिंह, श्रीनगर

कला, काव्य। तत्. वि.

१५. कुटिलाशय—क. खल, शठ, दुष्ट आशय वाला — कुटिलाशय व्यक्तियों की मैत्री कब तक टिक सकती है? तत्. वि. पुं.

१६. दिवास्वप्न—ख. मनोराज्य, आकाश-कुसुम की रचना, भविष्य के लिए बड़ी-बड़ी असंभव कल्पनाएं—राम-राज्य की स्थापना एक दिवास्वप्न मात्र रह गया। तत्. सं. पुं.

१७. पंडितम्मन्य—क. अपने को पंडित मानने वाला, अपने पाण्डित्य का अभिमान करने वाला, अहंकारी—पंडित जो बात एक वाक्य में कह देता है, पण्डितम्मन्य उसे ही कहते नहीं थकते। तत्. सं. पुं.

१८. दिवा-प्रदीप—ग. अप्रसिद्ध व्यक्ति, घट-दीप, जिस में प्रकाश तो है फिर भी जिसे लोग देख नहीं पाते—अपनी नम्रता के कारण आप दिवा-प्रदीप बन कर रह गये। तत्. सं. पुं.

१९. गाढ़-मुष्टि—घ. कंजूस, कृपण, जो खर्च या दान करने के अवसर पर अपनी मुट्ठी जोरों से बांधे रहता हो, धन निकालता ही न हो—गाढ़-मुष्टि मत बनो, मुक्त हस्त से पीड़ितों की सहायता करो। तत्. सं.-वि. उभय लिंग

२०. ऐतिह्य—ख. दन्तकथा, परंपरागत कथा या ज्ञान—परशुराम ने समुद्र में परशु फेंका तो उतनी जगह से समुद्र हट गया, यह ऐतिह्य है। तत्. सं. पुं.

तत्० = तत्सम, तद्० = तद्भव, सं० = संज्ञा, वि० = विशेषण, क्रि० वि० = क्रिया विशेषण, पुं० = पुंलिंग, स्त्री० = स्त्रीलिंग, हि० = हिन्दी।

वचन-वीथी

★ जो कल्याण की बात सुन कर उसे स्वीकार कर लेता है और अपने मत का दुराग्रह छोड़ देता है, दुनिया उस के पीछे-पीछे चलती है।

—महाभारत

★ विश्वास से प्रेम, शरीर से भोजन, विनय से कुल और बोली से देश पहचाना जा सकता है।

—सौन्दरनन्द

★ अनुराग अंतर्वेदना की सब से उत्तम औषध है।

—प्रेमचन्द

★ कड़वे आदमी का शहद भी कड़वा होता है।

—शेख सादी

★ मुख देखे की कौन मिताई!

—सूरदास

★ वह मरता नहीं जिस की खूबी हो बाकी
वह गायब नहीं जिस का हो जिक्र हाजिर

—हाली

★ जो अपने हिस्से का काम किये बिना ही भोजन चाहते हैं वे चोर हैं।

—महात्मा गांधी

१. अंगांगीभाव—ख. परस्पर उपकृत तथा उपकारी का भाव, मुख्य-गौण भाव, अंग के साथ उपांग का जो आश्रय-आश्रित सम्बन्ध होता है, उस का भान—संस्था और सेवक में सच्चा अंगांगीभाव (या अंगांगभाव) होना आवश्यक है। तत्. सं. पुं.

२. दैव-सभ्य—घ. जुआरी, द्यूत-कार—(विनोदी प्रयोग) अब दीपावली के प्रकाश में भी दैव-सभ्यों के दर्शन नहीं होते। तत्. वि. सं. पुं. । दैव-सभा=जुए का अड्डा।

३. दैनिकी—क. रोज-रोज का वेतन, मजदूरी, रोजी—दैनिकी बांटने के लिए काफी रुपया नहीं है। तत्. सं. स्त्री.

४. वंध्य—ग. फलहीन, व्यर्थ (व्यक्ति या वस्तु)—कितना प्रयत्न किया, परन्तु सब वन्ध्य रहा! तत्. वि. पुं. । स्त्री. वंध्या=बांझ। वंध्या-सुत=असंभव वस्तु।

५. चयन—घ. संग्रह करना, चुन-चुन कर एकत्र करना (फूल, शब्द, सूक्तियां आदि)—आप को क्या पसन्द है, फूलों का चयन या शब्दों का चयन? तत्. सं. पुं.

६. कुचैल—ख. मैले-कुचैले कपड़े पहननेवाला, बहुत गरीब, सुदामा का परिचायक शब्द—कहां कुबेर और कहां कुचैल, क्या खूब मेल मिलाया ने! तत्. वि. सं. पुं.

७. तीर्थ-काक—ग. लोभी मनुष्य, तीर्थों के कौवे जैसे भोजन पर घात लगाये रहते हैं वैसे ही हर वस्तु का लोभ करने वाला मनुष्य—गंगा-स्नान करने से तीर्थ-काक कर्ण नहीं बन सकता। तत्. सं. पुं.

८. शयनीय—क. सेज, शय्या, बिस्तर—शिला उन का शयनीय था, कंद-मूल-फल आहार। तत्. सं. पुं.

९. छत्रभंग—घ. अराजकता, राजा, सेनापति या मुखिया के न रहने से जिस प्रकार लोग तितर-बितर तथा मनमाने हो जाते हैं, वैसी हालत—उन के जाने से संस्था का छत्रभंग हो गया; लोकतंत्रीय राष्ट्र का छत्रभंग कभी नहीं होता। तत्. सं. पुं.

१०. उपादेय—ख. उपयोगी, उत्तम, ग्रहण करने योग्य—विज्ञान का अध्ययन तुम्हारे लिए अधिक उपादेय है। तत्. वि.

११. तोषामोद—ग. खुशामद (फारसी—खुश+आमद, बंगला—खोशामोद, उस का समध्वनिक—तोष+आमोद =तोषामोद)—उन का तोषामोद या तोषामोदन किया। तत्. सं. पुं. (बंगला में ही प्रयुक्त) तोषामोदी—खुशामदी।

१२. सांगोपांग—क. सम्पूर्ण, अंग-उपांगों सहित—साहित्य का सांगोपांग अध्ययन, (विनोद में) अरे, तू तो सांगोपांग आ गया! तत्. क्रि.-वि.

१३. [illegible]—घ. अनुरूप, जो अपनी योग्य [illegible] कन्या [illegible] ही [illegible]

१[illegible]

इसलिए नहीं वच सकते, क्योंकि उन का नियन्ता होता है अविवेक तथा दुराग्रह ।

★ हम किस के नियन्ता हैं ?

★ चुनने के लिए वहुत विकल्प नहीं हैं हमारे सामने—हम या तो सव के पूर्ण नियन्ता हैं, अथवा किसी के भी रंचमात्र नहीं ।

★ सव के पूर्ण नियन्ता हम वनना चाहें तो हमें ठीक-ठीक और अन्तिम रूप से जान लेना होगा कि जो अपना नियन्ता स्वयं है, वही सव का भी नियन्ता है ।

★ ये जो दो गौरैया आपस में लड़ रही हैं, इन में से जिस एक ने भी दूसरी पर आक्रमण किया होगा—उसे दुर्वल जान कर जय की आशा से ही किया होगा ।

★ निर्वलता युद्ध की मां भी है और धाय भी ।

★ गौरैया गौरैया पर ही आक्रमण करती है, गरुड़ पर नहीं ।

★ गरुड़ चूंकि अपना नियन्ता स्वयं है, इसीलिए अपने सम्वन्ध के सभी का नियन्ता भी वही है ।

★ विष्णु का वाहन वनने की योग्यता गरुड़ में इसीलिए है, क्योंकि वह सर्पों का विनाश करने में सक्षम है ।

★ विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप में शांति के प्रतीक पद्म का स्थान जयघोष के प्रतीक शंख, अस्त्र के प्रतीक चक्र तथा शस्त्र की प्रतीक गदा के वाद ही आता है; और वह तभी सार्थक भी है ।

★ जिस प्रकार विष्णु वहां हैं, जहां गरुड़ है; उसी प्रकार श्री वहां है, जहां विष्णु हैं ।

★ हमारी कठिनाई यह है कि हम गौरैया वने रह कर ही श्री का वरण करने का दुःसंकल्प किये वैठे हैं ।

★ हम गरुड़ वनें—यह समय की मांग भी है और हमारी आवश्यकताओं की भी ।

★ युद्ध हो रहा है—एक भयानक और मरणान्तक युद्ध ।

★ दो गौरैया आपस में लड़ पड़ी हैं ।

★ सामने प्रस्तर-पीठ पर है किसी धन्यपुरुष की पूर्णाकार मूर्ति, उस के चारों ओर है लोहे के जंगले से घिरा एक आंगन—यह युद्ध उसी आंगन में हो रहा है ।

★ किसलिए हो रहा है यह युद्ध ? जीवन के लिए आवश्यक किस वस्तु की संसार में इतनी कमी है कि उस पर एकाधिकार के लिए इन्होंने प्राणों को दांव पर लगा दिया है ?

★ जल के परिमाप से गौरैया की तृषा कितनी है ?

★ नगण्य ।

★ खाद्य के परिमाप से गौरैया की बुभुक्षा ?

★ नगण्य ।

★ और वायु के परिमाप से गौरैया का श्वास ?

★ और आश्रय के परिमाप से गौरैया के नीड़ का क्षेत्र ?

★ और आकाश के परिमाप से गौरैया की उड्डीन-क्षमता ?

★ और काल के परिमाप से गौरैया की जीवनावधि ?

★ नगण्य ! नगण्य !! उपहासास्पद सीमा तक नगण्य !!!

★ फिर भी युद्ध हो रहा है—एक भयानक और मरणान्तक युद्ध, जिस का कारण मेरी समझ में नहीं आ रहा है ।

★ लगता है—युद्धों के कारण नहीं हुआ करते, हुआ करते हैं केवल परिणाम ।

★ कितना अच्छा होता यदि युद्धों के भी कारण हुआ करते और उन्हें दूर कर देने से युद्धों से बचना सम्भव हो जाया करता।

★ दुर्भाग्य यह है कि परिणामों से हम इसलिए नहीं बच सकते, क्योंकि उन का नियन्ता होता है युद्ध और युद्धों से हम

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

जो वस्तुत: आर्य जाति के 'पितर' हैं। अथर्व के ऋषियों के भी ये पितर थे। यह इस बात का एक प्रमाण है कि ऋग्वेद और अथर्ववेद के रचना-काल में अन्तर है। अथर्ववेद का सूर्या सूक्त ऋग्वेद के सूर्या सूक्त से भिन्न नहीं है। हां, कुछ अधिक बढ़ा हुआ है।

यहां जिन ऋषियों के नाम हैं वे ऋक् ऋचाओं के प्रसिद्ध रचयिता हैं। अत: ऋग्वेद में जिन पूर्वजों और उन के भी पूर्वजों और उन के भी पूर्वजों का जिक्र है, वे इन से भिन्न और सहस्रों वर्ष पहले के नहीं, तो सैंकड़ों वर्ष पहले के अवश्य होने चाहियें। अथर्ववेद के ऋषियों को अपने पूर्वजों के नाम याद थे, पर ऋक् के रचयिता ऋषियों को अपने पूर्वजों के नाम विस्मृत हो गये थे। अत: प्रश्न यह है कि उन विस्मृत पूर्वजों की संस्कृति क्या थी? डा. कीथ ने उस संस्कृति का नाम, 'ऋत्-वरुण' दिया है।

यह ज्ञात वैदिक संस्कृति से न केवल पर्याप्त प्राचीन थी, बल्कि भिन्न भी थी। मोहनजोदड़ो की मुद्राओं पर डा. वरे ने 'ऋक्', 'साम', 'यजु' नाम पढ़े हैं। इस का अर्थ है कि 'ऋत्-वरुण' संस्कृति आज से कम-से-कम १०-१५ हजार साल पहले की थी।

प्राचीन वैदिक संस्कृति के समाज का जीवन गणजीवी था। इस जीवन का अन्त होने पर ही वर्ग-वर्णयुक्त समाज-निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण-काल में जा कर यह प्रक्रिया पूर्ण हुई। ऋग्वेद में यत्र-तत्र प्राचीन संस्कृति का गौरव-गान मिलता है। इस के साथ ही ऋषि ऋत् के लोप और अनृत के उदय पर दु:ख भी प्रकट करता है। विश्व का नियंत्रण करने वाले ऋत् तत्व का नये युग में अंत हो गया। इस के साथ ऋत् संस्कृति के पालक वरुण का तेज भी हतप्रभ हो गया। नये युग के देवता इन्द्र का उदय हुआ, जो लूट-पाट और युद्धों का देवता था। यहां यह भी कहा जा सकता है कि जब आर्य प्रशान्त महासागर और हिन्द महासागर में फैले बीस-हजार द्वीपों में बसते थे और वहां से बड़े-बड़े पोतों और जलयानों में बैठ कर भारत आते थे, तब की संस्कृति 'ऋत्-वरुण' थी। इस विचार का एक कारण यह है कि ऋग्वेद में जिस बड़ी यात्रा में समुद्री-यात्राओं और जहाजों के निर्माण की बात कही है, वह शेष तीन वेदों में नहीं पायी जाती। समुद्र के प्रति अनुराग न रहने का कारण क्या है? यही न कि आर्यों ने प्रशान्त और हिन्द महासागर के द्वीपों में जाना बंद

ऋत: वरुण सभ्यता

ऋग्वेद निःसंशय ज्ञात विश्व-साहित्य की प्राचीनतम पुस्तक है। परन्तु क्या वैदिक संस्कृति भी आद्य संस्कृति है?

जर्मन वैदिक पण्डित डा. कीथ ने सर्वप्रथम इस ओर संकेत किया था। श्री गाडगिल ने पुनः इस प्रश्न की ओर विद्वानों का ध्यान खींचा है। वैदिक संस्कृति मानव-समाज की आद्य संस्कृति नहीं है और न ऋग्वेद के ऋषि ही आदि भारतीय ही हैं, क्योंकि ऋग्वेद में ही कहा गया है :

इदं नमः ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः।

यहां नमस्कार केवल ऋषियों को ही नहीं बल्कि उन के साथ पूर्वजों को और वैदिक पंथ के प्रवर्तकों को भी किया गया है।

ऋग्वेद के ऋषियों को इस बात का ज्ञान था कि उन के पूर्वज यहां रहे हैं, और वे उन के सेवित मार्ग का ही अनुसरण कर रहे हैं।

अथर्ववेद के ६-१०८ के रचयिताओं को भी इस का ज्ञान था कि वे ऋषियों द्वारा प्रशंसित वाणी का प्रचार कर रहे हैं। प्राचीन ज्ञानियों के ज्ञान का ही वे विस्तार कर रहे हैं।

अथर्ववेद में जिन ऋषियों की चर्चा की गयी है, उन के नाम द्रष्टव्य हैं, ये दोनों मंत्र १८-३-१५-१६ में देखे जा सकते हैं :

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः, श्यावाश्वः सोभरि अर्चनानाः।
विश्वामित्रो अयं जमदग्नि अत्रिः, अवन्तु नः कश्यपो वामदेवः॥
विश्वामित्र, जमदग्ने, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम, वामदेव।
शर्धि नो अत्रिः अग्रभीत् नमोभिः सुशंसासः पितरोऽमृता नः॥

इन दो अथर्व मंत्रों में उन ऋषियों के नाम गिनाये गये हैं, जिन के नामों पर कुल, वंश और गोत्र चले हैं और

है, वहां समुद्र स्थित अज्ञात द्वीपों की भी बात कही गयी है, जहां कभी ऋत्-वरुण संस्कृति के उपासक रहते थे। उस काल को वे भूले नहीं थे। उसे वे परमात्मा के समान ही पूज्य और रक्षक मानते थे। अजय घाटी, चौबीस पर-गना में प्राप्त अवशेष इस सत्य की संभवतः पुष्टि करें।

समस्त समाज का हित करने वाले मंत्र वर्गीय-वर्णीय हितों के पोषक हो गये, तब ऋत्-वरुण संस्कृति का भी अंत हो गया। नूतन सामाजिक क्रान्ति हुई। ऋत्-वरुण संस्कृति आध्यात्मिक और सरल थी। यज्ञ-याग की उस में प्रधानता नहीं थी। नवीन सामा-जिक संस्कृति भोगवादी और भौतिक थी। गीता का यह श्लोक इस बात की पुष्टि करता है :

त्रैगुण्य विषया वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्थो निर्योग-क्षेम आत्मवान्॥

वैदिक कर्म-काण्डों के विरोध में क्रांति हुई और 'ऋत्-वरुण' संस्कृति के बाद उदित और उत्पन्न संस्कृति भौतिकवादी थी, यह इस से स्पष्ट है।

'ऋत्' शब्द का अर्थ पश्चिमी विद्वा-नों ने भी विश्व में विद्यमान नैसर्गिक और नैतिक व्यवस्था किया है। 'ऋत्' शब्द की कल्पना से वैदिक ऋषि को यज्ञों की परम्परागत विधि, नियमों से ले कर विश्व की भौतिक-नैसर्गिक और नैतिक व्यवस्था तक से अभिप्रेत है। प्राकृतिक, भौतिक, सामाजिक और नैतिक घटनाओं में ऋषि ऋत् का अस्तित्व देखते थे। प्रातःकाल उषा का उदय ऋत् के अनुसार होता है, चमकीला भासमान सूर्य ऋत् से ही भास्कर है। गौ का कच्चा दूध ऋत् का फल है। तीक्षियों के संघर्ष से ऋत् के पथप्रदर्शन में मानवों के हित के लिए अग्नि पैदा की जाती है। ऋत् की आज्ञा से नदियां बहती हैं।

ऋत्-विषयक यह भव्य कल्पना निसर्ग तक सीमित नहीं है। महान पूर्वज अंगिरस की महिमा वर्णन करते हुए ऋषि कहता है :

त इद् देवानां सधमाद आस ऋतावानः कवयः पूर्व्यास :।
गूढं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्य-मन्त्रा अजनयन्नुषासम्।
समान ऊर्वे अधिसंगतासः संजानते न यतन्ते मिथस्ते।
ते देवानां न मिनन्ति व्रता न्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमाना :॥

ऋत् की स्तुति करते हुए उल्लास-पूर्ण आनन्द में ईश्वर के साथ अपने को अनुभव करता है। 'ऋत्' का पालन करने वाले पूर्वजों के समाज की विशिष्टता को बताया गया है। वे सामान्य पशुओं के साथ संयुक्त हो कर एक मन हो गये। वे मिल कर प्रयत्न करते हैं, जिस से देवों को हानि न पहुंचे। परस्पर एक-दूसरे को हानि न पहुंचाते हुए वे सम्पत्ति के साथ अग्रसर होते हैं। ऋषि ने गणों और व्रातों के भयों का जो वर्णन किया है वह वस्तुतः सामूहिक जीवन का वर्णन है। सायणाचार्य ने सामू-हिक जीवन के वैभव की व्याख्या करते हुए लिखा है :

समान ऊर्वे सर्वेषां साधारणे गोसमूहे

कर दिया था। वे स्थायी रूप से यहां ही बस गये थे। यहां आर्यों के बसने पर आर्यों का देवता वरुण नहीं रहा, इन्द्र हो गया। इस कल्पना की पुष्टि के लिए ठोस प्रमाण की आवश्यकता है।

नये युग के नये देवता इन्द्र आदि का चरित्र नैतिक दृष्टि से उच्च नहीं था। इन्द्र-अहल्या की कथा प्रमाण के रूप में पेश की जा सकती है। 'ऋत्-वरुण' संस्कृति के लोप होने के साथ प्राचीन भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों का भी लोप हुआ और वर्गीय एवं वर्णाधिष्ठित धर्म-नीति की नूतन कल्पना का उदय हुआ। यज्ञादि क्रियाकलाप ब्राह्मण-क्षत्रियों के अधिकार में चले गये। अब सम्पूर्ण समाज के लिए अन्नप्राप्ति के लिए यज्ञ-कर्म नहीं रहे। ऋग्वेद में सम्पत्ति के समान विभाजन, सामूहिक श्रम और निर्मत्सर जीवन की झलक दिखायी देती है। यथा : ऋग्वेद का १०-१९१ सूक्त देखिये। यहां सामूहिक जीवन-प्रणाली के दर्शन होते हैं।

अतः प्रार्थना की गयी है :

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते॥
समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मंत्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

यहां जो कुछ भी प्रार्थना है, सम्पूर्ण समाज के लिए है, एक व्यक्ति के लिए नहीं है। अन्य मंत्रों में दिखायी देने वाले 'मैं' का यहां सर्वदा अभाव है। यह ही इस बात का एक प्रमाण है कि ऋत्-वरुण संस्कृति समूह वाली थी। व्यक्ति की उस में प्रधानता नहीं थी।

प्राचीन आर्य प्रशांत और हिन्द महासागर के दूरतम द्वीपों से आये थे और इसे वे भूले नहीं थे, इस की साक्षी ऋग्वेद के नवें और दसवें मण्डल के ये मंत्र देते हैं :

असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तो अव ता उदन्युवः।
क्षियोमृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः॥
एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा विचष्टे।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वः॥

पहले में कहा गया है कि निरंतर अखण्ड रूप से सैंकड़ों धाराओं वाले फुहारे चलते हैं और ईश्वर हम सब को उस आपत्ति से बचाता है। दूसरे में स्पष्ट रूप से कहा गया है, एक समुद्र है, रत्न-धारक है, सब को जन्म देने वाला है और हम सब के हृदयों को विशेष रूप से जानता है। उन स्रोतों के मध्य जो गुप्त स्थान है, वहां पहुंच जाओ।

यहां परमात्मा की जहां बात कही

समय ऋत्-कल्पना का अंत हो चुका था, इस से यह अनुमान निकालना गलत न होगा।

इसी प्रकार यह विचार कि यह दृश्य विश्व ऋत् तत्व की केवल छाया है, वैदिक ऋषि को मान्य नहीं था। उत्तर-कालीन अध्यात्मवाद से निकले इस विचार का वैदिक ऋषि की इहलोकवादी विचार-सारणी से कोई ताल-मेल नहीं है। विश्व की सुव्यवस्था ऋत् प्रणीत है, यह कहना यह सिद्ध नहीं करता कि विश्व एक माया है। डा० राधाकृष्णन ने यह माना है कि वैदिक आर्य इहलोकवादी थे। परंतु उन का यह भी कहना है कि धीरे-धीरे आर्यों ने इस इहलोकवादी दृष्टिकोण का परित्याग कर दिया और अध्यात्मवाद को ग्रहण किया। यह ऋत्-कल्पना का विकास नहीं था, जैसा कि राधाकृष्णन प्रभृति मानते हैं। ऋत्-कल्पना प्रारंभ में नैसर्गिक-भौतिक स्वरूप की थी। बाद में उसे परमेश्वर की इच्छा का नैतिक स्वरूप प्राप्त हुआ। किन्तु, इस मान्यता का कोई वैदिक आधार नहीं है। इस के विपरीत 'जेन्दावस्ता' से यह बात पुष्ट होती है कि ऋत्-कल्पना में नैसर्गिक-नैतिक दोनों स्वरूपों का समावेश था।

ईरान से भारत में आने पर आर्य लोग ऋत्-कल्पना को भूल गये। इस कारण उत्तरकालीन वैदिक ऋषि इस के विलुप्त हो जाने पर दुःख प्रकट करते हैं। ऋत् की तुलना प्लेटो के 'युनिवर्सल' से नहीं की जा सकती है। हां, चीन के 'टाओ' से की जा सकती है। चीनियों ने 'टाओ' में विश्व-व्यापक तत्वों का दर्शन किया था। परंतु भारत में ऋत्-पंथ समाप्त हो गया और चीन में 'टाओ' पंथ के अनुयायी निरंतर संघर्ष करते रहे। इन्होंने नूतन वर्गीय समाज को स्वीकार नहीं किया और संघर्ष जारी रखा। अतः इन का विचार-प्रवाह बराबर चलता रहा।

ऋत्-कल्पना एकमात्र वैश्विक व्यवस्था की सूचक नहीं है, अपितु सामाजिक, नैतिक व्यवस्था की भी सूचक है। इस विषय में ऋषि का यह रोचक कथन ध्यान देने योग्य है : ओ अग्नि, तुम्हारी भार-स्वरता और चमक हम तक पहुंच रही है। इस के साथ ही तुम हमारे लिए ऋत् की गाय भी लाये हो।

गाय पाने की ऋषि की इच्छा को तो देखिये :

वालित्था तद् वपुषे धायि दर्शनं
देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुपह्वरते साधते मति-
र्ऋतस्य धेना अनयन्तसस्रुतः॥

इन्द्र, तू पहले के समान अन्न का रक्षक है और तू ऋत् का भी रक्षक है, अतः तू हमारी गाँओं की खोज में मदद कर और हमारे साथ रह। गाँओं की खोज कर रहा ऋषि कहता है :

तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं
यस्मिन् यज्ञो वारमकृण्वत क्षय-
मृतस्य वारसि क्षयम्।
वि तद् वोचेरध द्वितान्तः
पश्यन्ति रश्मिभिः।
स धा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो
बन्धुक्षिभ्द्यो गवेषणः॥

हे मित्र-वरुण, ओ असुर, ऋत्-स्वामी, आप ऋत् की घोषणा करने वाले हैं। हमारा संबंध गाय और जल के साथ

संजानते एकबुद्धयो भवन्ति ।

इसी प्रकार—

ऋतस्य धना अनयन्त सस्त्रुतः ।

सायण ने 'सस्त्रुत' का अर्थ 'समानं गच्छत्यः' (समान रूप से साथ-साथ जाते हुए) किया है । इसी प्रकार—

देवानां भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते ।

अर्थात—प्राचीन काल में जिस प्रकार देवगण सामूहिक रूप से अपना भाग लेते थे—यह एक महत्वपूर्ण कथन है । ध्यान देने की बात यह है कि इस काल के ऋषि वैभवपूर्ण जीवन का सम्बन्ध 'ऋत्' से जोड़ते हैं । अंगिरस की शक्ति भी ऋत् के कारण है ।

ऋत् की कल्पना यदि केवल प्राकृतिक-वैश्विक व्यवस्था सम्बन्धी होती, तो इस के विलुप्त हो जाने पर कलपने और रोने की आवश्यकता न होती । सामूहिक जीवन से एकता, समता और निर्मत्सरता का लोप हुआ, समाज में पुराने समाज की याद उत्कटता के साथ आयी । ऋत् संस्कृति में प्राकृतिक और सामाजिक-नैतिक का भेद नहीं किया जाता था । चांद-सूर्य, मेधा आदि में जैसे नियमबद्धता प्राकृतिक है, उसी प्रकार समाज में सुव्यवस्था भी नैसर्गिक मानी जाती थी । गणजीवी समाज में समता, एकता और निर्मत्सरता के गुण होने अपरिहार्य थे । अन्न-प्राप्ति सुलभ न होने से यह मंत्र-तंत्रादि सिद्ध कार्य था । इस के साथ अन्न का समान वितरण भी अनिवार्य था । रिडले का मत है कि अनेक पीढ़ियों से चले आ रहे एक वेदान्य नियम ने उन पर विभाग लादा । इस परम्परा के चलते हुए नैतिक दंड को ऋषि ऋत् ही कहते थे ।

ऋत् का शब्दार्थ किया गया है । पहले से चला आया, बीती चाल, रीति और पद्धति । ऋत् के साथ यज्ञ का संबंध भी जुड़ा । सायण ने इसलिए माना है : **ऋत्=यज्ञ, ऋतज्ञा=अन्नस्य जनयित्री, ऋतयवः=यज्ञकामा=ऋषयः ऋतजात—यज्ञार्थ उत्पन्नाः, ऋतवानः=ऋतवन्तो यज्ञवन्तः उदकवन्तोवा ।**

आर्यों के सामूहिक जीवन का केन्द्र यज्ञ-याग था । प्राचीन काल में अन्न-प्राप्त्यर्थ मंत्र-तंत्रात्मक विधि का आश्रय लिया जाता था । ऋत्=यज्ञ, इस कल्पना के अंतर्गत समाज के 'भौतिक भरण-पोषण' का अर्थ भी सन्निहित था । ऋत्, यज्ञ, विदथ, व्रात, इन सब का एकसाथ लोप हो गया । इस काल को ही आजकल ऐतिहासिक वरुण युग का अस्तकाल कहते हैं । यह घटना एक महान सामाजिक परिवर्तन की सूचक है । इस से यह स्पष्ट है कि 'ऋत्-कल्पना' में केवल वैश्विक व्यवस्था का ही समावेश नहीं है, इस में नैतिक व्यवस्था का विचार भी सन्निहित है । अनेक इतिहासकारों और डा. राधाकृष्णन सदृश विद्वानों के इस कथन का कि इस कल्पना के भौतिक-ऐहिक विचारों से आध्यात्मिक विचारों का विकास हुआ है, कोई आधार नहीं मिलता । ऋत्-कल्पना का आगे विकास नहीं हुआ, प्रत्युत उस का उत्तरकाल में अंत हो गया । संशोधकों का मत है कि उपनिषदों में ऋत् शब्द केवल सात बार आया है । उपनिषद अध्यात्मवाद के उदय की सूचना देते हैं । परंतु उस

आज की कहानी : बोध और दिशाएं

प्रस्तुत हैं गिरिराज किशोर की कहानी तथा उन के ही शब्दों में कहानी की पृष्ठभूमि । अब तक इस स्तम्भ में कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, जैनेन्द्रकुमार, ममता अग्रवाल, रमेश बक्षी तथा अमरकान्त की कहानियां दी जा चुकी हैं ।

अपनी कहानी के बारे में कुछ कहना यानी वक्तव्य देना अपनी असमर्थताओं का ही भान कराता है । लगता है कि अपने ही गरीबान में मुंह डाल कर देखने के लिए मजबूर किया जा रहा हूं ।

इस कहानी को किसी दावे के साथ प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं । यह कहानी हमारे वर्तमान राजनीतिक जीवन का एक छोटा-सा 'टुकड़ा' है । इत्तफाक है कि मैं ने उसे थोड़ा-सा जाना है । उसे देख कर यही लगता है कि आज के राजनीतिक जीवन में सत्ताधारी लोग तक एक खास तरह के तनाव में जी रहे हैं । उन से सहानुभूति होती है ।

जोड़िये। ऋषि प्रार्थना कर रहा है :

प्रसा क्षितिरसुर या महि प्रिय
ऋतावानावृतया घोषथो वृहत्।
युवं दिवो वृहतो दयामायुवं
गो न धुर्युप युज्जाये अपः ॥

जो कोई ऋत् के फूल देता है, जिन को आदित्य बढ़ाता है, वह सर्वगुणी है, वह धन-संपन्न हो रथ में बैठ कर जाता है और सभाओं में धन का वितरण करता है। ऋत् की कल्पना में सामाजिक व्यवस्था किस प्रकार सन्निहित है, यह यहां देखिये :

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश
यं वर्धयन्ति पुष्ट्यश्च नित्याः।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन
वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥

ओ दयावान पृथ्वी! ऋत् का राज्य स्थापित होने दो जिस से हम अन्न के साथ संपत्ति पायें।

'ऋत्' सामाजिक और नैतिक व्यवस्था का निदर्शक है, यह ऋषि के इस वचन से प्रकट है :

युवो ऋतं रोदसी सत्यमस्तु
महेषुणः सुवताय प्रभूतम्
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै
सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥

ऋषि ऋत् से प्रार्थना करता है कि वह उसे संरक्षण दे, अपनी छाया और निवास में आश्रय दे। यज्ञ-कार्यों को पशु और अन्न दे। हे वरुण और अन्य देवगण! आप ऋत् के संरक्षक हैं, आप का जन्म ऋत् से हुआ है, ऋत् के साथ आप वृद्धि को प्राप्त हुए हैं, अनृताः का विनाश कीजिये। हम और अन्य वीर आप के आश्रय में सुख से रहें और संपत्ति प्राप्त करें :

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो
घोरासो अनृतद्विषः
तेषां वः सुम्नेसुच्छर्दिष्टमे नरः
स्याम ये च सूरयः ॥

एक बात और द्रष्टव्य है। ऋत् का जहां वर्णन है उस का देवता प्रायः मित्रावरुण है। मित्रावरुण का एक अर्थ अहोरात्र है। इस से स्पष्ट है कि ऋत्-कल्पना जहां वैश्विक व्यवस्था की द्योतक है, वहां यह एक सामाजिक एवं नैतिक व्यवस्था की भी द्योतक है। वरुण-युग की संस्कृति ऋत् थी। यह गणजीवी समाज की संस्कृति थी, जिस की विशेषता सामूहिक जीवन, समान वितरण और पूर्ण समानता थी। इस युग का अंत कब हुआ और कैसे हुआ, यह काल के अतिरिक्त और कौन बता सकता है?

"अरे, आप के पूरे शरीर पर पट्टियां कैसे बंधी हैं? क्या शिकार में किसी जानवर की चपेट में आ गये थे?"

"नहीं, कल बड़े शिकार पर नहीं गया था। बस, १३ बतखें मारीं।"

"अजीब बात है! क्या बतखें जंगली थीं?"

"बतखें तो नहीं, हां उन का मालिक जंगली निकला।"

मौकों पर भैयाजी साहब को जबरदस्ती लिटा तो देते हैं, पर उन के जाते ही साहब फिर उठ बैठते हैं। इस बार विजयसिंह ने खंखार का प्रयोग

● गिरिराज किशोर

किया, लेकिन बलवंत बाबू ने बिना उस की तरफ देखे ही कहा, "पानी छोड़ जाओ ... हम अपने-आप पांव मार लेंगे।"

विजयसिंह ने कहना चाहा—"नहीं साहब, मुझे जाने की जल्दी नहीं ... मैं तो सिर्फ आप को समय बताना चाहता था, क्योंकि डाक्टर ने ज्यादा देर तक जागने को मना किया है।' लेकिन "जी ... नहीं ..." कहते-कहते आगे कुछ भी कहने का प्रयास कार के पेट्रोल की तरह अचानक समाप्त हो गया। दरअसल बलवन्त बाबू ने उस की तरफ कुछ इस तरह देखा कि उन की नजर के इशारे के साथ ही साथ वह खड़ा होता चला गया और वह नजर उसे अधमरे कानखजूरे की तरह उठा कर कमरे से बाहर छोड़ आयी।

बलवन्त बाबू की चहलकदमी बराबर जारी है, यह जान कर उस के मन में अजीब-सी बेबसी उभरने लगी, क्योंकि अधिक जागने से उन के स्वास्थ्य को खतरा है—और उन का स्वास्थ्य करोड़ों आदमियों का स्वास्थ्य है। लेकिन वह उन को रोक पाने की स्थिति में बिलकुल नहीं। सोने के कमरे में उन को टहलते हुए देख कर वह और भी अधिक चिन्तित हो उठा। इस से पहले टहलने का यह कार्यक्रम रोजाना दफ्तर में या बाहर वाले बरांडे में होता रहा है। बारह बजे के करीब जब दफ्तर से उठते हैं तो दिन भर बैठे रहने के कारण पैरों में जमे हुए खून का दौरा ठीक करने के लिए पन्द्रह-बीस मिनट टहला करते हैं। टहलना खत्म करने पर बिना किसी का नाम लिये ही पुकारते हैं—"चलो।" विजयसिंह तुरन्त पैड उठा कर उन के पीछे-पीछे हो लेता है। यह पैड रात को उन के सोने के कमरे में ही रहता है। उस पर अंगरेजी में लिखा है 'एम. एम.' और 'कान्फीडेंशल।' जब बलवन्त बाबू कमरे की ओर जाते हैं तो जमीन पर बेंत टेकने की आवाज रात के उस मौन और स्थिरता को कुरेदती-सी महसूस होती है। कमरे में प्रवेश करने के लिए जहां छह सीढ़ियां चढ़ने का सवाल आता है उस जगह बलवन्त बाबू ठहर जाते हैं और विजयसिंह उन के पीछे से निकल कर बायीं बगल में आ जाता है। उस समय बलवन्त बाबू के लिए उन का अपना वजन लगभग नगण्य हो जाता है—आधा

विजयसिंह (झंडो) पांव झारने के लिए जब चिलमची में पानी ले कर लौटा तो देखा बलवन्त बाबू सोने के कमरे में ही टहल रहे हैं। क्षण भर वह उन्हें आश्चर्य-भरी नजर से देखता रहा, फिर गरम पानी की चिलमची हलकी-सी आवाज के साथ फर्श पर रख दी। आवाज शायद उन्हें सुनायी नहीं पड़ी। टहलते समय उन के हाथ बराबर क्रियाशील थे। कभी पीछे और कभी सीने पर। लटके रहने पर उन की अंगुलियों में माला फेरने की-सी हरकत होने लगती थी। विजयसिंह ने घड़ी की तरफ देखा—एक बजने वाला है। वह सोचने लगा—भैयाजी को जगाया जाये; क्योंकि डाक्टर ने कहा है कि रात को जरा-सी भी अधिक देर तक जागने पर साहब का ब्लडप्रेशर बढ़ सकता है। लेकिन उस ने भैयाजी को बुला कर लाना उचित नहीं समझा। ऐसे

और धीरे-धीरे कुछ समझाने लगे। चलते समय बलवन्त बाबू ने सूचना मंत्री से कहा, "अभी जा कर कलक्टर को टेली-फोन कर दीजिये और सुबह पांच बजे विशेष प्लेन से चले जाइये . . . फाइल ले कर दस बजे तक यहां लौट आना है।"

तीनों मन्त्रियों के चले जाने पर बलवन्त बाबू के चेहरे का तनाव कुछ कम हुआ और उस स्थिति को अनुभव करने के लिए पलंग पर आंखें बन्द करके लेट गये। बलवन्त बाबू ने पलंग पर से ही पुकारा। विजयसिंह के जाने पर उन्होंने आई. जी. पुलिस की कोठी पर टेली-फोन करने का आदेश दिया।

कुछ ही देर में दूसरी तरफ से आई. जी. साहब की हड़बड़ाहट-भरी आवाज सुनायी दी—"यस सर ..." विजयसिंह ने बलवन्त बाबू को रिसी-वर दिया। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक तुरन्त चले आने के लिए कहा और साथ ही उस समय कष्ट देने के लिए क्षमा भी मांगी। कुछ ही देर में आई. जी. साहब अपनी गाड़ी से पहुंच गये। मुख्य मंत्री ने उन्हें बड़े स्नेह के साथ पलंग के बराबर वाली कुरसी पर बिठा लिया और धीरे-धीरे बातें करने लगे। आई. जी. के चेहरे पर क्षण-क्षण भाव-शून्यता आती जा रही थी। चलते समय बलवन्त बाबू ने उन से कहा, "जरा, कर्नल मोथम को भी मेरी ओर से कह दीजिये . . . ग्यारह बजे के करीब वे भी आ जायें . . ."

जब आई. जी. साहब बलवन्त बाबू को सैल्यूट कर बाहर आये तो विजय-सिंह ने उन्हें सैल्यूट मारा। सैल्यूट लेते हुए आई. जी. साहब ने मुसकरा कर पूछा, "ठीक हो ?" विजयसिंह ने बड़े झुक-झुक कर कहा, "हुजूर की इनायत है।" जब वे चले गये तो विजयसिंह सोचने लगा—बड़े आदमी की गोद में बैठे देख ये लोग अपने ही कुत्ते के हालचाल भी पूछने लगते हैं।

सुबह ठीक दस बजे सूचना मन्त्री आये तो विजयसिंह की ड्यूटी नहीं थी, फिर भी वह रामनिवास शैंडो के पास आ कर बैठ गया। जैसे ही सूचना मन्त्री आये जमादार-चपरासी उन को बलवन्त बाबू के पढ़ने के कमरे में ले गया। विजयसिंह रामनिवास को धीरे-धीरे रात का पूरा किस्सा सुनाने लगा। लेकिन जमादार को आते देख कर वह चुप हो गया। पर जमादार उन दोनों के पास रुका नहीं। वह सीधा पी. ए. साहब के कमरे की ओर चला गया। फिर लौट कर मुसकराते हुए बोला, "अज दंगल है—मेहताजी की भी बुला-हट हुई है।"

लगभग बीस मिनट बाद ही मेहता साहब यानी गृह मंत्री की कार आ गयी। इतनी उम्र होने पर भी इतना सजीला व्यक्तित्व ! जमादार धीरे-से बोला—"यह सूचना मंत्री, जो अन्दर बैठा है, मेहता साहब के सामने एकदम भैंसा-सा लगता है।" इस पर तीनों हंस दिये। मेहता साहब का शैंडो भी उन तीनों के पास आ कर बैठ गया। मेहता साहब के शैंडो ने मजाक के अन्दाज में कहा—"आज तुम्हारे साहब ने हमारे साहब को फोन करके कैसे बुला लिया ? हमारे साहब से तो, सुना है, तुम्हारे साहब नाराज हैं।"

जयसिंह के कंधे पर और आधा लाठी-तनी मोटी बेंत पर ! पलंग के बरा-
ही बिछी आराम-कुरसी पर बलवन्त
कर पांव फैला कर लेट जाते हैं ।
के ायसिंह सेकंडों में 'बिजली के डंडे'
वह ानी गरम कर ले आता है और किसी दवा की एक-दो बूंद डाल कर उन के पांवों को झारने लगता है । बलवन्त बाबू को लगता है कि उन के पांव की थकान धीरे-धीरे उस पानी में घुलती जा रही है । फिर विजयसिंह उन की टोपी, वास्कट, कुरता अन्दर वाले ड्रेसिंग रूम में टांग आता है । और बलवन्त बाबू जमुहाई लेते हुए, चुटकी बजा कर पलंग पर लेट जाते हैं ।

बलवन्त बाबू की वही बिना नाम की आवाज सुनायी दी—"सुनो . . ." वह तुरन्त गया । अभी तक टहलना जारी है । उसे खड़ा देख कर उन्होंने कहा, "जरा शिक्षा मन्त्री, उद्योग मन्त्री और सूचना मन्त्री तीनों को फोन करो ।" विजयसिंह ने घड़ी की ओर देखा । बलवन्त बाबू उस का तात्पर्य समझ गये और बोले, "कहना, हम अभी बात करेंगे ।" विजयसिंह उन के बेड-रूम में लगे गोपनीय टेलीफोन से ही सब को फोन करने लगा । दो ने तो स्वयं ही उठाया और बड़ी रुखाई से बोले—"कौन ?" बिना अपना नाम बताये वह जल्दी से बोल गया, "मन्त्री-जी से इसी समय मुख्य मंत्रीजी बात करना चाहते हैं ।" दूसरी तरफ का स्वर तुरन्त नरम पड़ गया—"अच्छा दे दो ।" लेकिन बलवन्त बाबू ने उन दोनों से एक ही वाक्य कहा—"तुरन्त चले आओ ।" लेकिन तीसरे मन्त्री के अर्दली ने ही टेलीफोन उठाया । वह काफी देर तक हील-हुज्जत करता रहा—"मन्त्रीजी सो रहे हैं . . . उन के पास कैसे जाया जा सकता है . . ." देर होते देख विजयसिंह ने रिसीवर बल-वन्त बाबू के हाथ में पकड़ा दिया । उन्होंने डांटते हुए कहा, "अपने मंत्री-जी से कहो—हम से इसी वक्त टेली-फोन पर बात करें . . ." और रिसी-वर रख दिया । मिनट भर बाद ही फोन की घंटी बजने लगी । बलवन्त बाबू ने टहलते ही टहलते, उन से भी इतना ही कहा, "तुरंत चले आओ ।"

पन्द्रह मिनट के अन्दर तीनों लोग उपस्थित थे । बलवन्त बाबू ने 'एम. एम.' और 'कान्फीडेंशल' वाला पैड इन तीनों के सामने रख दिया और स्वयं उसी तरह टहलना जारी रखा । बलवन्त बाबू ने टहलते हुए कहा, "आप ने 'ट्रान्सफर्स' की चेन देखी—सब जगहों पर अपने-अपने लोगों को बैठा कर शासन अपने हाथ में लेना चाहता है । मुझ तक से नहीं पूछा और आदेश भेज दिये गये । मेरे पास तो यह फाइल केवल सूचनार्थ आयी है ।" बलवन्त बाबू के चेहरे पर अपमान की अभेद्य भावना थी । तीनों लोगों में शिक्षा मंत्री थोड़े बुजुर्ग और दबंग भी होने के कारण बोले, "आप चिन्तित क्यों हैं ? इन 'आर्डर्स' को कैंसिल कर दीजिये ।" बलवन्त बाबू ने उन की ओर गौर से देखा और कहा, "यह तो मैं कर ही सकता हूं . . . और वह भी यही चाहता है ।" उस के बाद कुछ देर तक चारों चुप रहे । फिर बलवन्त बाबू पलंग पर बैठ गये

टूट गया। मेहता साहब बलवन्त बाबू के चेहरे की ओर उत्सुकतापूर्वक देखने लगे। उस समय दोनों के चेहरों पर उन के अपने-अपने भाव कठोरतापूर्ण गंभीरता और आश्चर्य-भरी उत्सुकता—बिखरे पानी की तरह फैलते जा रहे थे। बलवन्त बाबू ने एक नजर मेहता साहब के चेहरे पर डाली और फिर इस तरह आंखें बन्द कर लीं जैसे किसी विषम स्थिति का सामना करने से कतरा रहे हों। लेकिन धीरे-धीरे कुछ इस तरह कहना शुरू किया जैसे कोई दुखद कार्य कर्तव्यवश करना पड़ रहा है।

"कलक्टर ने आप की रिपोर्ट भेजी है . . ." बलवन्त बाबू क्षण भर के लिए रुक गये और साहस बटोरने का प्रयत्न करते हुए दृढ़ आवाज में पुनः बोले, "पिछले दौरे में आप ने किसी संभ्रान्त महिला के साथ बदतमीजी करनी चाही थी।"

मेहता साहब की आंखों में क्रोध की सुर्खी दिखायी दी, लेकिन उन्होंने बड़े ठंडे ढंग से जवाब दिया, "मैं कलक्टर और उन संभ्रान्त महिला से मिलना चाहूंगा।"

"मैं ने स्वयं इन्क्वायरी की है। बेहतर है बात पब्लिक होने से पूर्व ही दबा दी जाये, वरना . . ." कहते-कहते बलवन्त बाबू रुक गये और उन के चेहरे को गौर से देखने लगे। मेहता साहब की मुट्ठियां स्वतः खुल-बंद हो रही थीं। उन के हाव-भाव से लग रहा था कि अपने को संभालने के लिए उन्हें अतिरिक्त प्रयत्न करना पड़ रहा है। रोकते-रोकते भी उन की आवाज में रूक्षता आ गयी—"आप की इन्क्वायरी क्या कहती है?"

बलवन्त बाबू मुसकराये—"मैं जो इस समय आप को बुला कर समझा रहा हूं . . . क्या यह सब समझ लेने के लिए काफी नहीं है?" मेहता साहब अपनी कुरसी छोड़ कर उठ खड़े हुए और अयाचित मुंह से निकल गया—"बलवन्त बाबू . . ." गला रुंध गया, लेकिन उन की इस स्थिति के प्रति बलवन्त बाबू का भाव आपरेशन करते हुए डाक्टर का-सा था।

मेहता साहब की सांस फूलने लगी और वे यह कहते हुए तेजी के साथ निकल आये—"आप अपनी रिपोर्ट पब्लिक करा दीजिये, मैं स्वयं निबट लूंगा।"

लेकिन दरवाजे से निकलते ही आई. जी. और डी. आई. जी. ने सामने आकर ठक-ठक सैल्यूट लगाये। मेहता साहब के पैरों में ब्रेक-सा लग गया और मुंह से निकला—"आप?"

आई. जी. ने आवाज को झटका देते हुए भारी स्वर से कहा, "यस सर!" मेहता साहब की नजर चारों तरफ दौड़ गयी। लान की तरफ मुंह किये कर्नल मोथम पतले-से बेंत को अपनी पैण्ट पर फटाफट मार रहे थे। एस. पी. और डी. वाई. एस. पी. एक पेड़ के नीचे खड़े बतिया रहे थे और दरोगा दोनों सिपाहियों को कुछ समझा रहा था। मेहता साहब तीर की तेजी के साथ पुनः कमरे में लौट आये और चिल्ला कर बोले—"क्या मैं अपने को हिरासत में समझूं?"

बलवन्त बाबू जोर से हंस दिये—"हिरासत में! भला गृह मंत्री को हिरा-

फिर हंस कर बोला—"हमारे साहब के बिना सरकार चलाना आसान काम थोड़े ही है ।"

सूचना मंत्री अन्दर से निकले और गाड़ी में बैठ कर चले गये । रामनिवास और विजयसिंह को जमादार की बात याद आ गयी और दोनों एक-दूसरे को देख कर हंस दिये ।

उन के जाते ही आई. जी. साहब की स्टेशनवैगन आ कर रुकी । आई. जी., डी. आई. जी., एस. पी., डी. वाई. एस. पी., एक दरोगा और दो सिपाही । तीनों शैडोज ने उन सब को सैल्यूट मारा । आई. जी. साहब ने विजयसिंह की तरफ फिर मुसकरा कर देखा और पी. ए. के कमरे की ओर बढ़ गये । एस. पी., डी. वाई. एस. पी. लान में टहलने लगे । दरोगाजी दरवाजे के पास जा कर सिगरेट सुलगाने लगे । दोनों सिपाही मेहता साहब की कार और स्टेशनवैगन के बीच में खड़े हो कर बातें करने लगे ।

पी. ए. ने आई. जी. को समझाना चाहा कि गृह मंत्री बैठे हैं—इस समय सूचित करने पर मुख्य मंत्री नाराज हो जायेंगे । लेकिन उन्होंने उसी समय सूचना पहुंचा देने पर अतिरिक्त जोर दिया । पी. ए. को बलवन्त बाबू से जा कर कहने के लिए मजबूर होना पड़ा । बलवन्त बाबू और मेहता साहब बात करते-करते पढ़ने के कमरे से ड्राइंग-रूम में आ गये थे । वहां की आवाजें बाहर तक सुनायी पड़ रही थीं । मेहता साहब के साथ बलवन्त बाबू को इतनी जोर से हंसते देख कर सब लोगों को आश्चर्य था, क्योंकि बड़ी से बड़ी मजाक की बात पर मुसकराना मात्र बलवंत बाबू के लिए सीमा थी ।

आई. जी. साहब के आने की सूचना पाते ही बलवन्त बाबू एकदम गंभीर हो गये और उन्होंने नाराज होते हुए पी. ए. से कहा, "आप देखते नहीं—आई. जी. महत्वपूर्ण हैं या गृह मंत्री ? कह दीजिये बैठें ।"

पी. ए. के जाते ही मेहता साहब उठते हुए बोले, "अच्छा अब आज्ञा दें ।" लेकिन बलवन्त बाबू ने बांह पकड़ कर बैठा लिया और बोले, "ट्रान्सफर्स की चोन मुझे पसन्द आयी" और मुसकरा दिये । फिर आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले, "इस बीच सिवा 'कैबिनेट' के हम एक-दूसरे से मिले ही नहीं । न जाने मेरी ओर से आप के दिल में क्या बात पैदा हो गयी ।"

मेहताजी कुछ कहना चाहते थे कि चपरासी ने एक कार्ड ला कर रख दिया और जल्दी से बाहर खिसक आया । बलवन्त बाबू कार्ड को उठा कर जोर से पढ़ गये—"ओह, कर्नल मोथम"—फिर मजाक में बोले, "अरे भई, हम लोग घास-पात खाने वाले—वैसे ही आप लोगों का हम पर इतना रोब है . . ." सुन कर मेहता साहब जोर से हंस दिये । बलवन्त बाबू ने भी साथ दिया ।

मेहता साहब ने पुनः उठने का-सा आभास दिया । इस बार बलवन्त बाबू ने विशेष रुचि नहीं दिखायी । थोड़े गंभीर हो कर बोले—"मुझे आप से एक-दो बातें कहनी थीं ।" कुछ रुक कर पुनः बोले, "आप मेरे बड़े महत्वपूर्ण साथी हैं . . ." पुनः वाक्य

डबडबायी आंखें

दो आंखें
उपमा किन से दूं ? उपमा नहीं है
उन-जैसी वस वही हैं
खुलीं तो दिन निकला, मुंदीं तो
रात हुई
हंसीं—वहार और रोयीं—वरसात हुई
पांव नहीं हैं उन के, हैं आकाश पार
करने की पांखें
मैं ने उन में गगन देखा
दिन किरणों के, रात तारों की
मैं ने उन में भुवन देखा
फूल चरणों के, राह खारों की
दुःख से ऊब के
निराशा में डूब के
जब-जब भी आंखें मींची हैं
उन आंखों ने अशेष सुधा उलीची है
हरी उन्हीं से हुई सूखी हुई शाखें
आज वे आंखें डबडबायी हुई थीं
कुशलता से आंकी हुई-सी
इंद्रधनुषी भौंहें बांकी हुई-सी
नवायी हुई थीं कोने में
मोती एक रह गया हो जैसे भाड़े हुए
दोने में
आंसू की बूंद एक अटकी थी
अब टपकी तब टपकी-सी
गगन से उभकते हुए तारे-जैसी
कमल पर भिभकते हुए पारे-जैसी
जानें कौन-सी
गहरी पीड़ा प्रलय-सी मौन थी
उन गीले नील-कमल को
अचंचल हुए-से चिर चंचल को
पोंछ दूं, जी में आया
कपड़े की कोर गही, हाथ बढ़ाया
कि उन आंखों ने रोक दिया
स्नेह की दुर्वलता को रोक दिया
ऐ हमदर्द, यह कोई टूटता सितारा
नहीं है
तुम्हारी सहानुभूति डूबते का किनारा
नहीं है
यह युगों की भटकती घटा उमड़ी है
सावन सलोने की छटा नहीं है
जीवन-मंथन की हाला घुमड़ी है
कमल-पांखुरी पर ओस-बिन्दु,
सटा नहीं है
लाचारी आज कहर हो के आयी है
बिच्छू के डंक से पत्थर जैसे संखिया
होता है
ठेस खा-खा के वेबसी आज जहर हो के
आयी है
आंसू नहीं है यह, जलता अंगारा है
घुटती घुटन का खौलता हुआ पारा है
तुम्हारी उंगली
गुलाब-रस वोरी चंपा की कली
जल जायेगी
और, स्नेह की शीतलता से आग यह
बिफल जायेगी
इसे चूने दो, चूने दो
हम ने सदा ऊपर ही ताका है गगन को
जो चुनता रहा है सदा सांसों के धन को
भरोसा कब किया अपनी माटी की
मां का है
सो पिघली अगन के इस कण को
धरतीमाता के चरण छूने दो
कि आग के अंकुर दिन दूने हों
इन सांस के फानूसों में आग तो लगे
मानवता का खोया भाग तो जगे

—हंसकुमार तिवारी—

सत में लिया जा सकता है !" फिर एकदम गंभीर हो कर समझाते हुए कहा—"बैठ जाइये। पूरी बात सुनने से पहले संतुलन खो देना उचित नहीं होता। फिलहाल आप इस्तीफा दे दें। किस्सा खुद-ब-खुद दब जायेगा। जिस महिला ने आप पर लांछन लगाया है यदि वह मेरा विरोध करने पर उतर आये तो . . . मेरे पास भी इस के सिवा कोई चारा नहीं रह जायेगा।" फिर अपनी आवाज को और गंभीर बना कर बोले, "जो प्रमाण हैं वे ऐसे हैं कि कोई भी हिरासत में लिया जा सकता है—सरकार के रजामन्द होने की देर है। अगर आप चाहें तो फाइल भी देख लें।"

मेहता साहब ने कहा "मैं जानता हूं फाइल कमजोर नहीं होगी। अगर आप मुझ से इस्तीफा चाहते थे तो और भी बहुत-से तरीके थे।" कुछ देर तक मेहता साहब गरदन झुकाये कुछ सोचते रहे, फिर एकदम कहा, "लाइये कागज . . . मैं अपनी कायरता का परिचय भी दे दूं . . ."

बलवन्त बाबू ने तुरन्त एक कागज उन की ओर बढ़ा दिया। मेहता साहब ने जल्दी दो पंक्तियां खींच दीं, जिन का आशय सिर्फ यही था—'मैं अपनी कठिनाइयों के कारण इस्तीफा दे रहा हूं।' बलवन्त बाबू ने इस्तीफा ले कर धन्यवाद देते हुए कहा, "जो कुछ भी हुआ है वह मेरा और राज्य, दोनों का दुर्भाग्य है . . . आप-जैसा व्यक्ति मुझे कहां मिलेगा !"

मेहता साहब उन की बातों की ओर बिना ध्यान दिये उठ खड़े हुए। लेकिन बलवन्त बाबू ने बाहर देखते हुए मुसकरा कर कहा—"ठहरिये, मैं भी साथ चलता हूं।"

बलवन्त बाबू और मेहता साहब को आते देख कर आई. जी. और डी. आई. जी. ने एड़ियां बजा कर सैल्यूट किया। कर्नल मोथम का पतला-सा बेंत बे-वजह पतलून का पीटना छोड़ कर उन की बगल में स्थान पा गया। उन्होंने भी आगे बढ़ कर सलाम किया। बलवन्त बाबू ने उन तीनों की ओर मुखातिब हो कर मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहा, "माफ कीजियेगा, देर हो गयी। मेहता साहब से जरूरी बातें कर रहा था। आप लोगों को बेकार इतनी लम्बी ड्यूटी देनी पड़ी।"

लेकिन मेहता साहब बिना किसी ओर ध्यान दिये अपनी कार की तरफ बढ़ गये। आई. जी. ने इशारा किया। एस. पी. ने बढ़ कर कार का दरवाजा खोल दिया। बलवन्त बाबू ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और मुसकरा दिये।

विजयसिंह को अचानक ध्यान आया, रात वाला पानी अभी तक उन के बेड-रूम में उसी तरह रखा हुआ है।

"कितने दुख की बात है," मजिस्ट्रेट ने कहा, "कि जिन लोगों ने तुम पर विश्वास किया, तुम ने उन को धोखा दिया।"

"लेकिन जो विश्वास नहीं करता, उसे धोखा कैसे दिया जा सकता था !"

गुरुशरण

"वह सुन्दरता किस काम की जो १५ दिन में ही जाती है"—विनोबाजी ने जैसे ही वाक्य समाप्त किया कि स्व० जमनालाल बजाज की पत्नी वयोवृद्ध जानकी देवीजी मंच पर उपस्थित हो गयीं।

"दाढ़ी निकाल दी। अब मेरे कूं अच्छे लगते हो। क्या बकरे-जैसी तुक्की लगा रखी थी? देखो गांधीजी रोज हजामत बनाते थे कि नहीं। क्यों आप लोग बोलो न, बनाते थे कि नहीं? (सभा-मंडप के लोगों को संबोधित कर) अब देखो गोल-मोल चेहरा प्यारा लगता है।" जानकीदेवीजी भावविह्वल हो कहती जा रही हैं। सभा-मंडप में ७०० व्यक्ति बैठे हैं और जानकीदेवीजी विनोबाजी के गालों और दाढ़ी पर हाथ फेर रही हैं।

"सुन्दर होने के बारे में मुझे आज नयी जानकारी मिली," विनोबाजी ने मुसकराते हुए कहा।

"तुम्हें जानकारी ही क्या है? तुम तो अपने को पशु कहते हो। अब मेरी बात मान कर पुष्पक विमान (हवाईजहाज) में बैठ कर काठमांडू पशुपति नाथ के दर्शन करने चलो। मैं ने श्रीमनजी (जानकीदेवीजी के दामाद नेपाल में भारत के राजदूत श्री श्रीमन्नारायण) को लिख दिया है। लो बजाजवाड़ी के फालसे खाओ और यह मंदिर का चंदन और प्रसाद लो।" जानकीदेवीजी गद्‌गद भाव से अपनी पोटली खोलने में लगी थीं और श्रोतागण बड़े अभिभूत! विनोबाजी मुंह में फालसे डाले धीरे-धीरे अपना पोपला मुंह चला रहे थे। यह भी नहीं कि फालसे की गुठली थूक दें।

"अच्छा और क्या लायी हो?" विनोबाजी बोले।

"लायी तो बहुत हूं। यह लो १५० रुपये सर्वोदय-पात्र के संग्रह के। और ये ३६० रुपये शांतिकुमारजी के। उन्हों ने मंदिर के, कागज में रख कर भेजे हैं। तुम को मालूम है कि जब तुम ने हिन्दी के लिए उपवास किया तो मैं भी उपवास करती रही।

तीन पत्र

● यशोविमलानन्द

आज न आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं, न मेरे 'बाबू' श्री अन्नपूर्णानन्द, किन्तु दोनों ने हिन्दी साहित्य के लिए जो कुछ किया वह सदैव जीवित रहेगा। (अन्नपूर्णानंदजी मेरे ताऊ थे — मेरे पिता श्री परिपूर्णानंद वर्मा के बड़े भाई। मैं उन्हें 'बाबू' कहा करता था।)

अन्नपूर्णानंदजी ने हिन्दी साहित्य के हास्य अंग को सबल बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। वे आत्मविज्ञापन के घोर विरोधी तो थे ही, साथ ही लोगों से अधिक मिलते-जुलते भी नहीं थे। यही कारण है कि न तो उचित रूप से उन की रचनाओं का प्रकाशन हुआ और न प्रचार ही।

इतना सुन्दर एवं शिष्ट हास्य लिखने वाला व्यक्ति न केवल अत्यंत गंभीर वरन एकांत-प्रिय भी था। मैं ने उन्हें हंसते हुए कम ही देखा था।

यहां मैं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा अन्नपूर्णानंदजी को लिखे गये तीन पत्र प्रस्तुत कर रहा हूं। ये हिन्दी साहित्य की एक निधि हैं। इन से द्विवेदीजी के हृदय में श्री अन्नपूर्णानंदजी के प्रति न केवल अपार स्नेह एवं सम्मान का पता लगता है, वरन उन के अपने व्यक्तित्व की भी छाप मिलती है। पहला पत्र यों है—

दौलतपुर (रायबरेली)
१०.१०.३०

भाई साहब,

चिट्ठी मिली। पुस्तकें भी। आप ने मुझे खूब बनाया। आप से तो अब एक प्रकार की घनिष्ठता-सी हो गयी है। इस दशा में क्या आप को चुनाचुनी की चिट्ठी लिखनी चाहिये?

पूर्व वय में मैं ने हास्यरस की बहुत पुस्तकें पढ़ी हैं। अंगरेजी की तो बात ही नहीं, बंगला और मराठी में भी कितनी ही अच्छी पुस्तकें हैं। बंकिम के भी कई लेखों तथा पुस्तकों में इस रस का अच्छा परिपाक हुआ है। संस्कृत में भी अनेक प्रहसन हैं। चतुर्भाणी

उसी में बम्बई और मद्रास गयी। राजाजी से मिली, भक्तवत्सलम से मिली। तुम्हें चिट्ठी भिजवायी। अब तुम ने सर मुंडवा लिया, दाढ़ी निकलवा दी। अब विनोबा तो मर गया। गांधीजी भीतर पैठ गये। लो बजाजवाड़ी के चार फालसे और लो," जानकीदेवीजी ने आज्ञासूचक शब्दों में कहा।

"अच्छा," कह कर विनोबाजी ने फालसे ले लिये।

"थैंक यू वेरी मच," जानकीदेवीजी ने आनंदविह्वल हो कर कहा।

इन पंक्तियों के लेखक को सर्वोदय के व्याख्यानों से कहीं बढ़ कर यह दृश्य लगा, जिस में दिमागी कसरत नहीं बल्कि हार्दिकता ही हार्दिकता थी।
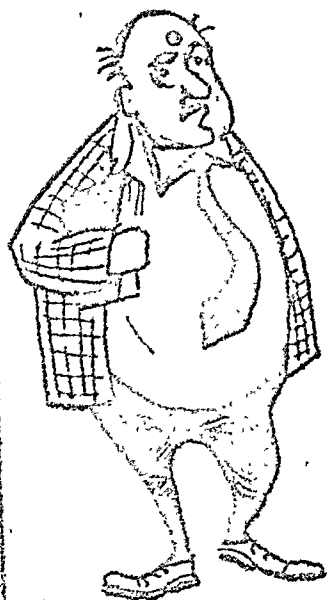
जमने वाले कवि

शिमला में हम को मिले, प्रोफेसर 'घड़ियाल'
चमक रही थी खोपड़ी, इधर-उधर कुछ बाल
इधर-उधर कुछ बाल, लगी चन्दन की बिन्दी
बोल रहे थे आधी इंगलिश, आधी हिन्दी
काका ! कवि-सम्मेलन में कुछ 'हैल्प' कराओ
जमनेवाले हिन्दी के 'पोइट' बतलाओ

पड़ी हमारे हृदय पर उन की गहरी छाप
करें जनवरी मास में कवि-सम्मेलन आप
कवि-सम्मेलन आप, लगेगा सब को प्यारा
शीतल वातावरण, बर्फ का शुभ्र नजारा
कहं काका कवि दांत किटकिटा कर जब गायें
कवि, कविता, श्रोता, संयोजक सब जम जायें

—काका हाथरसी—

नामक पुस्तक मैं ने मंगायी थी। पर आंखें काम नहीं देतीं। इस से अभी उसे संपूर्ण नही पढ़ पाया। सन ईसवी के पहले भी संस्कृत में प्रहसन लिखे जाते थे।

आप की पुस्तकें कल सुबह मिलीं। उन के कई लेख मैं ने पढ़े। आप ने खूब लिखा है। सम्मति लीजिये।

एक बात याद रखिये—परिहास शुद्ध होना चाहिये। जिस पर कटाक्ष किया जाये उसे भी हंसा दे। ग्राम्य भाव जरा भी न आने पाये। इस समय जो लोग हास्यावतार समझे जाते हैं उन की नक्ल न होनी चाहिये। वे तो प्रलापाचार्य या पूरे भाण हैं। उन में शराफत कहां!

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

नोट: मेरा दिमाग काम नहीं करता। शब्द ढूंढ़े नहीं मिलते। सम्मति को आप ठीक कर लीजिये।

उपर्युक्त पत्र को पढ़ कर दो बातें स्पष्ट हैं। पहली तो यह कि द्विवेदीजी ने अंगरेजी, मराठी, बंगला तथा संस्कृत में भी हास्यरस का अच्छा अध्ययन किया था। दूसरे, हास्यरस के हिन्दी लेखकों के संबंध में उस समय उन की क्या धारणा थी। हिन्दी के हास्यरस के लेखकों के लिए उन्होंने इने-गिने शब्दों में जो कुछ लिखा है, यदि उस का ध्यान रख कर इस दिशा में लेखक अपना कार्य करें तो हिन्दी साहित्य अधिक समृद्ध हो सकता है।

दूसरा पत्र जो उन्होंने पोस्टकार्ड पर लिखा था, उस में आत्मीयता की अधिक झलक दिखायी पड़ती है—

दौलतपुर (रायबरेली)
१२.११.३२

शुभाशिषः सन्तु,

९ तारीख की चिट्ठी मिली। चच्चा की पहुंच मैं परसों ही लिख कर बनारस भेज चुका हूं। उसे पढ़ लीजियेगा। उस में मेरा और मेरे कुटुम्ब की लड़कियों का बड़ा मनोरंजन हुआ। दो दिन घर में धूम रही। कोई व्यंग्य व्यर्थ नहीं। खूब लिखा।

इस जन्म में मुझ से कोई पुण्य कार्य हुआ नहीं। जन्म-जन्मान्तर में यदि कुछ हुआ हो तो मैं उसे दिये डालता हूं। उस के फल से बाबू शिवप्रसादजी आरोग्य लाभ करें। उन्हें ये वाक्य सुना ही दीजियेगा।

शुभैषी
म० प्र० द्विवेदी

उपर्युक्त पत्र में चच्चा शब्द से उन का तात्पर्य अन्नपूर्णानंदजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'महाकवि चच्चा' से है। चूंकि उन दिनों अन्नपूर्णानंदजी स्वर्गीय शिवप्रसाद गुप्त के इलाज के संबंध में लखनऊ में थे अतएव यह पत्र उन्हें २२, कैसरबाग, लखनऊ के पते पर लिखा गया था और इसीलिए बनारस का उल्लेख आया है।

अन्नपूर्णानंदजी श्री शिवप्रसाद गुप्त के पास काम करते थे और गुप्तजी द्विवेदीजी के अच्छे परिचितों में थे।

तीसरे पत्र में उन्होंने अन्नपूर्णानंदजी को अलग ढंग से सम्बोधित किया है—

दौलतपुर, रायबरेली
१५.३.३४

श्रीमान आनन्दजी,

आधा फागुन बीत गया। तब कहीं
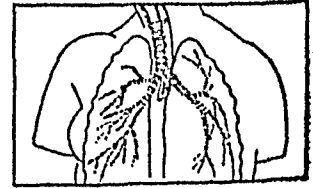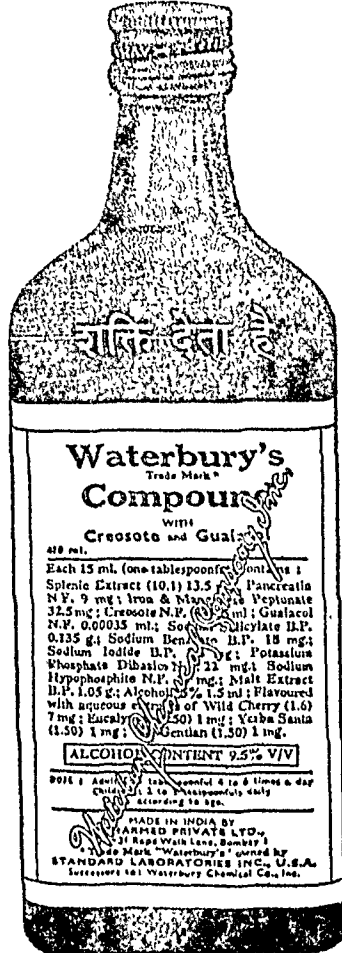
कपिल को ऐसा लगा जैसे वह खिड़की से बाहर देख ही नहीं रहा है बल्कि कुछ पहचानने की कोशिश भी कर रहा है । ट्रेन आ रही थी। पुराने किस्म की सीटी उस ने सुनी। सिर्फ सीटी ? नहीं, शायद उसी स्वर में गूंजती हुई कोई प्रतिध्वनि भी—किसी स्त्री-कंठ की एक तान । अनु काफी की ट्रे लिये दरवाजे तक आयी थी कि कपिल को सहसा इस तरह भागते देख कर ठिठक गयी ।

कपिल ने अवसर नहीं दिया । सीढ़ियों से तेजी से उतरता हुआ वह सीधे रेल की पटरियों की ओर बेतहाशा दौड़ा । अप्रत्याशित से घबरायी हुई अनु भी सिर्फ उस के पीछे-पीछे दौड़ भर सकी । लेकिन कपिल रुका

● मुद्राराक्षस

नहीं, तेजी से आती ट्रेन से ज्यादा तेज हो गयी थी उस की गति । एक क्षण का भी अंतर नहीं हुआ होगा शायद । तभी अनु का पैर किसी चीज में फंस गया, या वह सहसा अशक्त हो उठी। एक चीख के साथ वह सामने गिरी । ट्रेन गुजर गयी, धीरे-धीरे दूर चली गयी।

एक वीभत्स दृश्य अनु के रोम-रोम में समा गया था। देर तक उस से आंखें नहीं खोली गयीं । लेकिन उस ने देखा—वह है, सचमुच वही है, कपिल। हांफता हुआ पटरियों के पास बैठा कुछ खोज रहा है ।

"यह क्या कर रहे हो ? पटरियों पर क्या खोज रहे हो कपिल ?"

"अनु, वो-वो यहीं थी।"

"कौन यहीं थी ? कहां थी ?"

"वो, अनु, उस ने आत्महत्या कर ली। उस ने आत्महत्या कर ली !"

नौकर अब तक भागता हुआ आ पहुंचा था । बड़ी मुश्किल से ही अनु कपिल को लौटा कर घर तक ला सकी । कपिल किसी तपते बुखार के रोगी की तरह बके जा रहा था, "अनु, उस ने आत्महत्या कर ली !"

इतने दिन शादी को हो गये, कभी ऐसे नहीं दिखे । हां, एक बात जरूर

बड़ी अजीब रही है । तानपूरे को कभी हाथ नहीं लगाते । कभी गुनगुनाहट तक नहीं सुनी । संगीत से अचानक यह भयानक वैराग्य क्यों ? गहरी सांस खींच कर अनु ने कमरे की तरफ नजर डाली ।

"तुम सो जाओ, सो जाओ कपिल।"

"पागल हुई है अनु, मैं बिलकुल ठीक हूं।"

"तुम ठीक हो पर सो जाओ, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं कपिल !"

कपिल के सीने से विवशता की एक लंबी सांस निकली। धीरे से बोला,

आप की २९ माघ १९९० की चिट्ठी मिली।

१५ जनवरी ३४ को जो हरकारा भोजपुर और दौलतपुर की डाक ले कर रायबरेली की तरफ से आ रहा था वह रात में लुट गया। इस डाक के अखबार तो मुझे पीछे से मिल गये; पर चिट्ठी एक भी नहीं मिली। संभव है गुप्तजी की और आप की चिट्ठी इसी डाक में रही हो और नष्ट हो गयी हो।

यह जान कर खुशी हुई कि गुप्तजी पहले से बहुत अच्छे हैं। परमात्मा करे, वे शीघ्र ही पूर्ण नीरोग हो जायं।

आप की सनक का हाल सुन कर आश्चर्य तो नहीं कुतूहल जरूर हुआ। नाराजगी का तो जिक्र ही नहीं। क्यों साहब, स्वदेश का समझ कर आप ने हावी और नाराज शब्दों को तो अपना लिया, शायद ने क्या बिगाड़ा था जो उस का बहिष्कार करके स्यात् भी नहीं, स्यात को स्वीकार किया। खूब संस्कृत छांटी या बूंकी—

अरे पनरवा दौड़ महाकवि चच्चा आये
शब्दों के दो चार अनोखे बच्चा लाये

अखबार सब एक दर्वे में जमा होते रहते हैं। वह जब भर जाता है तब सारी सामग्री आने सेर में बिक जाती है। सामयिक पत्रिकाएं, पहले की सब की सब श्रीमती ना० प्र० सभा के मंदिर में विश्राम कर रही हैं।

इधर पीछे की पत्रिकाओं के प्रथमांक जिल्दों में बंधे हुए अपने हमजोलियों के साथ पड़े अपने दिन गिन रहे हैं। यहां कोई अंक न कूड़े-कमरे में पड़े हैं, न बोरों में, न टांडों पर। जो हैं, सब मेरी नजर के सामने एक बेंच पर जमा हैं। उन्हें छांट कर देखने में आज मेरे कोई ४ घंटे लगे। वक्त की यह बरबादी आप के नाम जमा कर ली है। फुटकर पत्र-पत्रिकाओं के जो प्रथमांक मुझे मिले हैं उन की नामावली इसी पत्र के साथ भेजता हूं। कौन-कौन आप को चाहिये, लिखिये तो फौरन भेज दूं।

भाई साहब मेरी आखिरी मंजिल तै हो रही है। जान तो यही पड़ता है। लिखने पढ़ने की शक्ति प्रायः सभी जाती रही है। बड़े कष्ट से यह पत्र लिख सका हूं। मुश्किल से एक दो फरलांग चल सकता हूं। नींद बहुत ही कम हो गयी है। आप किसी देवी-देवता को मानते हों तो प्रार्थना कर दीजिये—मुझे अब अधिक कष्ट न मिले।

आप की कृपा का प्रार्थी
म० प्र० द्विवेदी

उपर्युक्त पत्र में द्विवेदीजी ने भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार अत्यंत मनोरंजक ढंग से व्यक्त किये हैं। वे भाषा के संबंध में कितने सतर्क थे यह भी स्पष्ट है।

व्यंग्य और चुटकी का भी उन्होंने खूब सहारा लिया है, जैसे नागरी प्रचारिणी सभा के प्रारंभ में 'श्रीमती' जोड़ कर।

अन्नपूर्णानन्दजी को पत्र-पत्रिकाओं को प्रथमांक एकत्र करने का बड़ा शौक था। इस समय उन के संकलित किये लगभग दो हजार प्रथमांक उन की पत्नी श्रीमती जनकदुलारी के पास सुरक्षित हैं। अपने इन्हीं प्रथमांकों को एकत्र करने के सम्बंध में उन्होंने द्विवेदीजी को भी कष्ट दिया था।

संकोच ने असली बात फिर भी कंठ में ही दाब ली, पर कपिल समझ गया कि कुछ ऐसा है जो वे कह नहीं पाये। बोला, "आप मेरे लायक सेवा बताइये न!"

"मैं चाहता हूं कि इरा थोड़ा-बहुत संगीत सीख ले। आप जानते ही हैं कि लड़के वाले आजकल सब से पहले यही पूछते हैं कि लड़की गाना-बजाना जानती है या नहीं!"

"अजी, आजकल तो जो न हो थोड़ा है। खैर, इस में संकोच की क्या बात है! भेज दिया करिये।"

"एक बात और है," अवनी बाबू बोले, "इरा बेहद शरारती और चंचल है। आप को परेशान कर सकती है। पर सख्ती से काम लीजियेगा तो सब ठीक हो जायेगा। फिर कुछ कायदा आप से भी सीखेगी। आप की शालीनता का असर होगा।"

अवनी बाबू ने जितना कहा था, उस से ज्यादा ही निकली इरा। भयानक चंचलता और अकारण हंसी।

एक दिन इरा आयी, तो बुरी तरह हांफ रही थी, भयभीत भी थी। कपिल ने चिन्तित हो कर पूछा, "क्या हुआ?"

जवाब देने के बजाय वह हंसने लगी। हंस-हंस कर दोहरी हो गयी। कपिल क्षुब्ध हो उठा। हांफते हुए, हंसी के टुकड़ों में गूंथ-गूंथ कर इरा ने बताया कि वह माणिक को कीचड़ भरी नाली में धक्का दे आयी।

माणिक महल्ले के सारे लड़कों का सरदार था, बिगड़ा हुआ। गुंडा नहीं तो शालीन भी नहीं। महल्ले में खासा दबदबा था उस का। इरा को बचपन से छेड़ता आ रहा है, पर इस से अधिक और कोई बात नहीं थी। हां, पिछले दिनों से उस की दृष्टि परिवर्तित हो गयी थी। इरा इस परिवर्तन से कुछ घबरायी लेकिन उस की चंचलता कम नहीं हुई। आज माणिक इरा के साथ हो लिया। पता नहीं क्या-क्या बोलता आया। रास्ते में एक जगह मौका देख कर इरा उसे नाली में धक्का दे कर भाग खड़ी हुई।
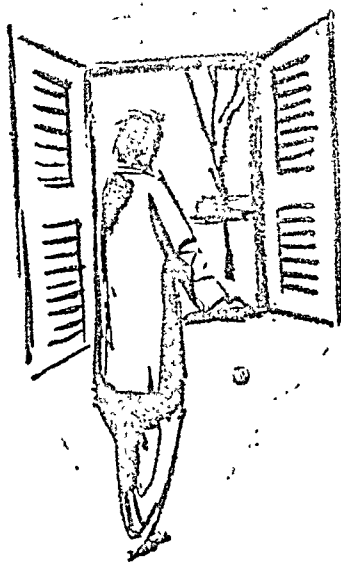
"बकवास मत करो इरा! कब से छेड़ता है? तुम ने बाबा से क्यों नहीं कहा?"

"अरे बाबा! बाबा से कह कर भला मैं अपने ही कान खिंचवाती? उलटा मुझे ही डांटते। आप को मालूम नहीं है मास्टरजी, बाबा मुझे शैतान की कुंजी कहते हैं। अरे, आप फिर कुछ

"अनु, मौसम बदल रहा है न ? जब कभी इस तरह मौसम बदलता है, हलकी, सर्द और खुश्क हवा के साथ उड़ते हुए पत्तों की खड़क सुनता हूं, मुझे एक गंध महसूस होती है। इस गंध में कहीं किसी के ताजे खून की गंध भी मिली है।"

अनु को एक हलकी झुरझुरी-सी महसूस हुई। अस्थिर हो कर उस ने कहा, "कपिल, चलो तुम लेट जाओ। लेटे-लेटे बात करो। मैं सिरहाने बैठ कर सुनूंगी।"

कपिल ने शायद सुना नहीं। आंखें अनु के शरीर को बेध गयीं। यादों की एक परत उघड़ गयी।

शायद उस दिन भी मौसम ऐसे ही बदल रहा था। हवा में सूखे पत्तों की चरमराहट उभर रही थी। कपिल रियाज कर रहा था, किसी बड़े संगीत-सम्मेलन की तैयारी में। तभी दरवाजे पर आ कर पड़ोस के अवनी बाबू ठिठक रहे। कपिल ने देख लिया। संगीत रोक कर नमस्कार किया।

"क्षमा कीजियेगा कपिल बाबू, मैं ने सोचा शायद आप इस समय फुरसत में हों, पर देखता हूं मैं ने आप की साधना में बाधा डाली," और अवनी संकोच से अंदर न आ सके। कपिल उठा और आदर के साथ उन्हें ले आया। कुरसी लाने अंदर चला पर अवनी चटाई पर ही बैठ गये।

दंगे से पहले और बाद जीवन में कभी कुछ बदलता है, अवनी ने नहीं जाना। कुछ बदला था तो दंगों के दिनों, ढाके में। वे थे, सुंदर सुहासिनी पत्नी थी और एक नन्ही बच्ची इरा बिलकुल मां-जैसी। रात अचानक शोर हुआ। छत से देखा, दूर-दूर तक आग ही आग दिखायी दे रही थी और उन्मत्त लोगों का राक्षसी शोर। आधी रात गये तक वे भयभीत हो कर नियति का इंतजार करते रहे। अंततः वही हुआ, दरवाजे पर कुल्हाड़ियां चलने लगीं। बाहर से बड़ी-बड़ी ईंटें आती रहीं। भागने की कोशिश में पत्नी को ईंट लगी। अवनी जैसे बंध गये। पत्नी ने ही जबरदस्ती बच्ची को सुरक्षित ले कर निकल जाने का आग्रह किया। इस के बाद जाने कहां-कहां भटकते-भटकते अवनी कलकत्ता आ बसे। अकेली लाड़ली बेटी इरा और क्लर्की, इसी नियति में सीमित वे बूढ़े हो गये।

अभाव बच्चों को शायद चंचल ज्यादा बना देता है। इरा की चंचलता पर अवनी को प्यार भी आता और क्षोभ भी होता। परसों निताई बाबू के पोते को पोखर में डुबकी लगवा दी। ठाकुरबाड़ी के कच्चे केले तोड़-तोड़ कर आवारा गायों को खिला दिये। चंचलता की ये गाथाएं सुन कर कपिल हंसने लगा। किसी कदर बुजुर्गियत से बोला, "बच्ची है अवनी बाबू, समय आने पर सुधर जायेगी। ब्याह हुआ नहीं कि दादी-अम्मा की तरह बुजुर्ग बन जायेगी।"

अवनी को लगा कि जिस उद्देश्य को ले कर आये थे, उस का सूत्र मिल गया। धीरे-से बोले, "ब्याह हो जाये तो एक बहुत बड़े दायित्व से मुक्त हो जाऊं।"

बोली, "आप महान संगीतज्ञ हैं लेकिन क्या महान हो कर साधारण व्यवहार भी भूल जाना होता है ?"

"जी, मैं समझा नहीं ?"

"क्या महानता के लिए अभिमान बहुत जरूरी होता है ?"

कपिल अचकचा गया। चौंक कर देखता रह गया। धीरे से बोला, "इतना पतन मेरा कभी हुआ है, याद नहीं पड़ता।"

अनु ने पंडाल में घटी बातें सुना दीं। कपिल ने क्षमा मांगी। अब अनु के संकुचित होने की बारी थी। दुस्साहस के लिए क्षमा मांग कर उस ने बताया कि वह कपिल से संगीत के बारे में कुछ निर्देश चाहती है।

इरा नहीं मिली। आयी नहीं कई रोज। कपिल ने मन को बलात उधर से हटा लिया लेकिन कहीं कुछ चुभता रहा। आखिर एक दिन वह फिर आयी। वही धुले फूल की तरह खिली, हंसती हुई। बोली, "मास्टरजी, आप डर गये होंगे कि पता नहीं मुझे क्या हुआ!"

कपिल ने कुछ चिढ़े-से स्वर में कहा, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं थी। व्यस्त था, अधिक सोचने का समय नहीं मिला।"

इरा बोली, "आजकल तबीयत ठीक नहीं रहती मास्टरजी, बुखार भी आता रहा।"

"आने की क्या जरूरत थी ?"

"आप व्यंग्य कर रहे हैं मास्टरजी ?"

"व्यंग्य मैं क्यों करूंगा! लेकिन बात क्या है ?"

इरा बोली, "बात कुछ भी नहीं। अब गैरहाजिरी नहीं होगी, नियम से सीखूंगी। सिखायेंगे न ? नाराज तो नहीं हैं ?"

नाराजगी तो कब की पिघल चुकी थी। कोई नया पाठ शुरू करने से पहले कपिल ने आग्रह किया कि इरा वही गाना सुना दे जिसे दुर्गा-पूजा के वक्त गाया था। इरा ने गाया, लेकिन गाते-गाते सहसा जैसे गीत पिघल गया हो इस तरह रो उठी। कुछ देर बाद ही वह सुस्थिर हो सकी। बोली कुछ नहीं, धीरे से उठ कर चली गयी। वह अगले रोज आयी। उस से अगले रोज भी। लेकिन जो छोर खो गया था, वह मिल नहीं सका। शायद इरा की हंसी ही वह छोर था। हंसी दोबारा नहीं मिली, खोया छोर भी नहीं मिला।

कपिल ने दूसरे दिन टोका, "इरा, तेरी आंखें क्यों लाल हैं ?"

उस ने कहा, "कुछ नहीं, आंख में धूल पड़ गयी।"

अगले रोज कपिल ने फिर पूछा, "आंख में धूल पड़ गयी है ?"

वह बोली, "नहीं, सिर-दर्द था।"

तीसरे रोज कपिल के यह पूछने पर कि क्या सिर-दर्द है, इरा ने कहा, "नहीं, रात को नींद नहीं आयी।"

"यह गलत है इरा! झूठ है!"

"कुछ भी नहीं, मैं ठीक तो हूं।"

"झूठ बोलती है तू! जरूर कुछ है, कोई समस्या है। कोई गांठ जिसे कहीं मन के भीतर छिपाया जा रहा है। क्या है, तू बताती क्यों नहीं ? मैं तेरा मास्टर ही नहीं, गार्जियन भी हूं, दोस्त भी और . . ."

सोचे जा रहे हैं ?"

"इरा, कल से तुम पांच के बजाय चार बजे आना। और हां, आगे इस तरह की कोई हरकत मत करना। कोई बात हो तो मुझे बताना।"

"आप को ?" इरा फिर खिल-खिला उठी।

थोड़ा-बहुत ही सीख सकी इरा। हां, सीखने का गुण उस में था, इस में शक नहीं। एक दिन उस ने आ कर कहा कि वह दुर्गा-पूजा के उत्सव में गाने के लिए अपना नाम दे आयी है तथा कपिल की शिष्या के नाम पर उसे बहुत महत्व दिया है, समिति वालों ने। कपिल बुरी तरह झुंझला उठा। ऐसे नाम डुबाना उसे अच्छा नहीं लगा। लेकिन इरा हंसी में ही नहीं, जिद में भी कपिल को मात कर गयी।

दुर्गा-पूजा का वह दिन आ गया। कपिल समझ रहा था कि ऐसी शिष्या भेज कर लोगों के लिए वह हंसी का पात्र ही बनेगा, इसीलिए गायन के समय वह पंडाल में सब से पीछे भीड़ में खड़ा रहा। लेकिन इरा ने ऐसा गाया कि कपिल स्वयं अपने को भी भूल गया। लोग झूम गये। गीत समाप्त होने पर कपिल भीड़ चीर कर स्टेज की तरफ लपका। रास्ते में कुछ लोगों ने उसे पहचाना। एक ऐसे चेहरे ने भी उसे पहचाना जिसे आज वह अच्छी तरह पहचानता है। अनु-राधा ! अनु ही थी जो लपक कर उस के सामने आयी लेकिन कपिल को अवकाश नहीं था, आगे निकल गया।

कपिल ने किसी ओर नहीं देखा। सीधे स्टेज की ओर गया लेकिन स्टेज पर इरा नहीं मिली। कहीं नहीं मिली। किसी से मालूम हुआ, अभी दो पल पहले माणिक उसे बधाई दे रहा था फिर उसी के साथ वह पंडाल से बाहर निकल गयी। कपिल को लगा, वह जल गया है। कहां जला है, पता नहीं। देर तक निरुद्देश्य भटकता रहा। रात बीते वह घर की ओर लौटा।

रास्ते में किसी ने उसे रोका और सादर नमस्कार किया। कपिल ने भी नमस्कार किया। अटक कर बोला, "आप को . . . "

"जी, आप से परिचय नहीं है मेरा। मेरा नाम अनुराधा बनर्जी है। म्यूजिक कालेज में अंतिम वर्ष है।"

कपिल अनौपचारिकता में भी सुस्थिर नहीं हो पा रहा था। पर अनु साधारण दुस्साहसी नहीं थी।

न लाल मध्य-
गने विद्वान
विश्व-
षे

ग्रीष्म की दोपहर

ग्रीष्म ऋतु में ताप का परिवेश बढ़ता जा रहा है
और कोई शुष्क स्वर में दोपहर को गा रहा है

सूर्य के प्रतिबिम्ब ही हर ओर मुझ को दीखते हैं
और इन को देख छाया के बटोही चीखते हैं
तीक्ष्ण किरणें तीर-सी अब सामने से चुभ रही हैं
हाय ! लपटों की कथाएं भी नहीं अब अनकही हैं

धूप के टुकड़े कि जो पढ़ते अभी तक थे ककहरा
अब उन्हीं का दल सड़क पर तान सीना आ रहा है

मरुथली की गोद में जल यों झुलस कर रह गया है
आग में जैसे किसी का पुत्र प्यारा दह गया है
रोक सकता कौन इन हब्शी हवाओं के दुधारे
कौन वापस भेज सकता राक्षसों को, जो पधारे

किस तरफ भागे, कहां छिप जाय कोई
तीर-पीछे-तीर अम्बर अनवरत बरसा रहा है

कांच की पिघली हुई हैं ढेरियां जैसे सड़क पर
इस चमक को कौन देखे ताप में पल भर ठहर कर
प्यास की नागिन नगर में, गांव में बोती जहर है
ओफ ! यह है आग का स्वर, मत कहो यह दोपहर है

तोड़ तन की मेंड़ बहती जा रही है स्वेद धार
और अन्तस की फसल का चिहन मिटता जा रहा है

—श्रीराम शुक्ल—

बोलिये न और क्या हो सकते हैं ? मान लीजिये मैं कहूं मेरी समस्या है कि आप मुझ से ब्याह कर लीजिये। कर सकेंगे ? बोलिये !" अचानक वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

"इरा, पागल हुई है ? घर जा, कल आना तब बात करूंगा।"

इरा का रोना थम गया। सुस्थिर हुई और धीरे से उठ खड़ी हुई। अब तक छिपा कर रखा गया एक लिफाफा निकाला। बोली, "मेरी शादी का निमंत्रण है। बाबा सुबह आये थे, आप मिले नहीं। रात को शायद फिर आयेंगे," कह कर वह चली गयी।

लिफाफे में निमंत्रण-पत्र के साथ एक खत भी था—

"आदरणीय मास्टरजी,

"मेरी शादी हो रही है। आप खुश होंगे। बाबा तो बेहद खुश हैं। मुझे भी खुश होना चाहिये न ? पर मैं नहीं हूं। मैं क्या करूं, मैं खुश नहीं हो सकती। एक अजीब धुआं है जो मेरे चारों तरफ लिपटता जा रहा है।

"आप को शायद न मालूम हो, दुर्गा-पूजा के दिन गाने के बाद मैं मंच पर नहीं थी। वहां कहीं नहीं थी। आप मुझे खुल कर कलंकिनी कह सकते हैं क्योंकि मैं उस रात माणिक के साथ थी। क्यों थी, इस का जवाब देने लायक मैं नहीं हूं। मैं ने क्यों अपने-आप को लुटा दिया, इस की सफाई भी नहीं दूंगी। माफी भी नहीं चाहूंगी। यह जो धुएं की दीवार मेरे सीने पर सिमटती आ रही है, यह मुझे हमेशा के लिए घोंट दे, यही चाहती हूं। माणिक ने धोखा दे दिया। पर मैं कैसे धोखा दूं उन्हें, जो मेरी मांग में सौभाग्य का सिन्दूर भरने आ रहे हैं ? कैसे धोखा दूं उन बाबा को . . ."

कपिल ने महसूस किया कि वातावरण मकड़ी के जालों की तरह दोनों के आसपास छा गया है। अनु काफी देर के बाद ही कुछ कह सकी। धीरे से बोली, मैं चाहती हूं, तुम एक बार फिर मुसकराओ। मन पर जमी हुई परतों को उतार दो। तुम्हारा तानपूरा इतने दिनों से बंद पड़ा है। ठहरो, मैं लाती हूं।"

"तानपूरा ! नहीं-नहीं अनु, मैं छू नहीं सकता।"

"यही नहीं होगा कपिल ! बिलकुल नहीं होने दूंगी। कथा का यही भाग है जहां मैं ने तुम्हारा वरण किया था। याद है न ? लेकिन तब तक तुम संगीत छोड़ चुके थे। कितनी विवशता थी, कितनी निरीहता थी तुम में तब। मैं खोजती रही कि तुम्हारे इस परिवर्तन के पीछे क्या है, पर तुम हमेशा अभेद्य बने रहे। आर-पार कभी नहीं देख सकी। लाओ, आज मुझे लौटा दो मेरा भाग्य ! आज लौटा दो !"

लेकिन अनु की बात को कपिल स्वीकार न सका। वह जानता था, वह डरता था कि जैसे ही तानपूरा छेड़ेगा, स्वरों में लहराते हुए किसी की हंसी के दायरे उभरेंगे और ऐसा लगेगा कि बिना कुछ किये वह उन दायरों में किसी को डूबते देख रहा हो।

दीवार की बड़ी घड़ी ने सहसा दो बजाये। "दो बजे हैं न अनु ?"

"हां कपिल, चलो उठो।"

सोचता कि किस तरह दोनों धर्मों को मिला कर एकाकार कर दिया जाये। हिन्दू योगी लालदास और मुसलमान फकीर सरमद का वह शिष्य था। उन से धर्मनिरपेक्षता और सहिष्णुता के सिद्धांतों एवं आदर्शों का उस ने पाठ पढ़ा। दाराशिकोह ने कई पुस्तकें लिखीं जिन में दो महत्वपूर्ण हैं। एक सूफी संतों की जीवनी पर है और दूसरी उपनिषदों का फारसी में अनुवाद।

शाहजहां अन्य पुत्रों की अपेक्षा दाराशिकोह को अधिक चाहता था। शाहजहां ने अनेक अवसरों पर दरबारियों के सामने दोहराया था कि उस के बाद राजगद्दी का अधिकारी वह दाराशिकोह को ही बनाना चाहता है। जब बीमारी की हालत में वह आगरा गया तो दारा उस का सब कामकाज संभालने लगा और बादशाह की तरफ से आदेश जारी करने लगा।

बादशाह की बीमारी की खबर उस के अन्य तीनों लड़कों को जब मिली तो वे सब ही राज्य प्राप्त करने के स्वप्न देखने लगे। शुजा बंगाल का गवर्नर था, मुराद गुजरात का और औरंगजेब दक्षिण का। इन के पास अपनी-अपनी विशाल सेनाएं थीं और उस से भी विशाल महत्वाकांक्षाएं। शुजा ने अपने आप को बंगाल का बादशाह घोषित कर दिया। मुराद ने औरंगजेब का सहयोग प्राप्त करके गुजरात में अपना राज्याभिषेक किया और दोनों अपनी सेनाएं ले कर दिल्ली की ओर बढ़ने लगे।

दाराशिकोह और शाहजहां को इन घटनाओं से बहुत धक्का लगा और दुख भी बहुत हुआ। साम्राज्य की तीन बड़ी सेनाएं उन को रोकने के लिए आगरा से मालवा भेजी गयीं। एक पूर्व की ओर शुजा के विरुद्ध, दूसरी गुजरात की ओर मुराद से लड़ने और तीसरी औरंगजेब को रोकने के लिए मालवा की ओर भेजी गयी। वह दक्षिण से अपनी सेना सहित दिल्ली की ओर तेजी से बढ़ रहा था।

डाक्टर किशोरीसरन लाल मध्यकालीन इतिहास के जाने-माने विद्वान हैं। १९३९ में इन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने इतिहास की विशेष योग्यता के लिए डाक्टर ताराचंद स्वर्ण-पदक प्रदान किया था। इन्होंने अध्यापन कार्य १९४४ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रारंभ किया था। इस के बाद ये क्रमशः नागपुर, सागर तथा विक्रम विश्वविद्यालयों से संबद्ध रहे। आजकल ये दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्रोफेसर हैं। इन्होंने शोध-महत्व के अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

'बोलियों न आ

मान लीजिए महल के निर्माता सम्राट शाहजहां को अपने प्रिय पुत्र की हत्या होते देखनी पड़ेगी और अपने अंतिम दिन कारावास में व्यतीत करने पड़ेंगे, उस युग में किसी ने यह कल्पना भी न की थी। ताजमहल लगभग १६५४ ईस्वी में बन कर तैयार हुआ और सितंबर १६५७ में शाहजहां अचानक बहुत बीमार हो गया। अपना अंतिम समय निकट जान कर वह दिल्ली से आगरा चला गया। वह चाहता था कि उस के प्राण अपनी प्रिय पत्नी मुमताज महल के स्मारक को देखते-देखते ही निकलें। लेकिन आगरा में तो

डा० किशोरीसरन लाल
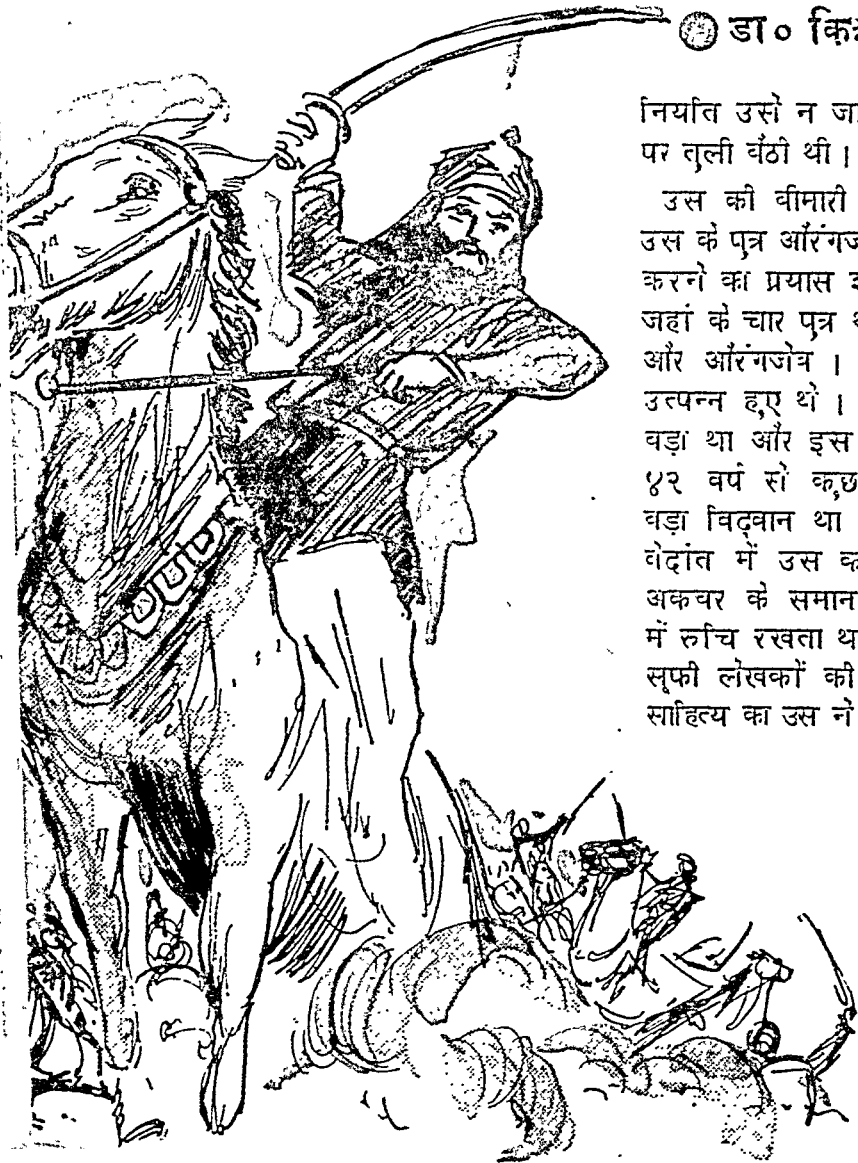
नियति उसे न जाने क्या-क्या दिखाने पर तुली बैठी थी।

उस की बीमारी की सूचना पाते ही उस के पुत्र औरंगजेब ने राजगद्दी प्राप्त करने का प्रयास शुरू कर दिया। शाहजहां के चार पुत्र थे—दारा, मुराद, शुजा और औरंगजेब। ये एक ही मां से उत्पन्न हुए थे। दाराशिकोह सब से बड़ा था और इस समय उस की उम्र ४२ वर्ष से कुछ अधिक थी। वह बड़ा विद्वान था और सूफी मत तथा वेदांत में उस की काफी रुचि थी। अकबर के समान वह भी सब धर्मों में रुचि रखता था। बाइबिल, कुरान, सूफी लेखकों की कृतियों और वेदान्त साहित्य का उस ने काफी अध्ययन किया था। वह हिन्दू और इसलाम धर्मों की उन बातों पर बहुत जोर देता था जो दोनों धर्मों में समान थीं। वह

इतिहास के झरोखे से

उस ने कुछ सेना एकत्र कर ली थी और लाहौर का खजाना भी उसे मिल गया था। इसी बीच औरंगजेब ने दिल्ली में अपने-आप को आलमगीर गाजी के नाम से सम्राट घोषित कर दिया था। उस ने अपने सामंतों को दाराशिकोह का पीछा करने के लिए भेजा। दाराशिकोह को लाहौर से भागना पड़ा। वहां से वह सिंध गया। फिर कच्छ को पार कर वह अहमदाबाद पहुंचा और फिर वहां से अजमेर की ओर भागा। लेकिन जहां वह जाता था, औरंगजेब की सेनाएं उस से पहले वहां पहुंच जाती थीं, फलस्वरूप दाराशिकोह को तुरन्त अगले किसी नगर को भागना पड़ता था। जब उसे भारत में प्राण बचते न दिखे तो उस ने फारस जाने का निश्चय किया, लेकिन उस का परिवार इस से सहमत न था।

उस की प्रिय पत्नी नादिराबानू बहुत बीमार थी और परिस्थितियों को देखते हुए दाराशिकोह ने एक अफगान जमींदार मलिक जीवन के यहां शरण ली। इन विपत्तियों को नादिराबानू अधिक दिन सहन न कर सकी और उस का देहांत हो गया। कुछ दिनों बाद मलिक जीवन ने धन के लालच में तथा औरंगजेब के क्रोध से डर कर दाराशिकोह को औरंगजेब की सेनाओं के हवाले कर दिया। २९ अगस्त को दारा दिल्ली पहुंचाया गया।

फ्रांसीसी चिकित्सक डाक्टर बर्नीयर ने उस दृश्य का सजीव वर्णन किया है जब दारा को अपमानपूर्वक दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया था। कीचड़ से लथपथ एक छोटी-सी हथिनी पर दाराशिकोह को खुले हौदे में बैठाया गया था। उस के कपड़े गंदे थे और पैरों में जंजीरें पड़ी थीं। उस के साथ उस का छोटा लड़का सिपेहरशिकोह भी था। उन के पीछे नंगी तलवार लिये नजरबेग नामक एक गुलाम था। उन को लालकिले के सामने तथा उन सब स्थानों पर घुमाया गया जहां उस ने और उस के पिता ने वैभवपूर्ण दिन बिताये थे। दाराशिकोह ने दुख और अपमान के कारण अपनी आंखें एक बार भी ऊपर नहीं उठायीं लेकिन रास्ते के दोनों ओर खड़ी भीड़ जोर-जोर से रो रही थी। अगली रात औरंगजेब की आज्ञा से नजर मोहम्मद ने दारा की हत्या कर दी। औरंगजेब ने दाराशिकोह के शव को एक बार फिर दिल्ली की सड़कों पर घुमाया और फिर उस को हुमायूं के मकबरे में दफनाने के लिए भेज दिया।

दाराशिकोह का अंत बहुत दुखद था। दारा की मृत्यु एक व्यक्ति की मृत्यु नहीं थी, वह मुगल साम्राज्य के एक सिद्धांत और पद्धति की भी मृत्यु थी। वैसे तो इतिहास ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में समय नष्ट नहीं करता कि यदि पृथ्वीराज मोहम्मद गोरी को हरा देता तो भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ता अथवा नेपोलियन वाटरलू का युद्ध जीत जाता तो आज यूरोप की क्या दशा होती। इसी प्रकार यह प्रश्न भी व्यर्थ है कि यदि दाराशिकोह जीत जाता और औरंगजेब के स्थान पर वह भारतवर्ष का बादशाह बनता तो देश की क्या दशा होती

दाराशिकोह को सब से अधिक भय औरंगजेब से था। औरंगजेब कट्टर सुन्नी था। वह युद्ध-चातुर्य में सब भाइयों से निपुण था। इन तीनों के विरुद्ध युद्ध-संचालन दाराशिकोह कर रहा था। सुरक्षा की दृष्टि से उस ने सूचनाओं के प्रसारण पर रोक लगा दी। इस संकट का सामना करने के लिए जो कदम दिल्ली की ओर से दाराशिकोह द्वारा उठाये गये, उन का एक भयंकर परिणाम हुआ। सारे देश में अफवाह फैल गयी कि शाहजहां का देहांत हो गया है। यदि यह अफवाह न फैलती तो शायद शहजादे इतने अधीर और उद्दंड न हो जाते।

अपने हरम को दौलताबाद के किले में छोड़ कर औरंगजेब फरवरी, १६५८ के आरंभ में अपनी सेना के साथ सिंहासन की प्राप्ति के उद्देश्य से उत्तर की ओर बढ़ रहा था। उस ने मुराद के साथ हाथ में कुरान ले कर कसम खायी थी कि मुगल राज्य जीतने के बाद उस को आपस में आधा-आधा बांट लेंगे। निश्चित योजना के अनुसार दोनों की सेनाएं १४ अप्रैल, १६५८ को मालवा में दीपालपुर नामक स्थान पर मिल गयीं। शाहजहां के पुत्रों में औरंगजेब ही सब से कुशल, अनुभवी और कूटनीतिज्ञ समझा जाता था इसलिए सब को यह विश्वास था कि सम्राट बनने में वही सफल होगा। इसीलिए साम्राज्य के बहुत से सामंत उस से जा कर मिल गये अथवा गुप्त रूप से उस के सहायक बन गये।

महाराजा जसवंतसिंह शाहजहां की ओर से ३५,००० सैनिक ले कर मालवा पहुंच गये। वहां औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना से उन का घोर युद्ध हुआ। दोनों बागी शहजादों की सेनाओं ने उन्हें धरमत के युद्ध में हरा दिया। इस विजय के बाद औरंगजेब आगरा की ओर बढ़ने लगा। १८ मई, १६५८ को दाराशिकोह ने आगरा किले के दीवाने-आम में अपने पिता शाहजहां से विदाई ली और औरंगजेब से लोहा लेने के लिए आगरा के बाहर सामूगढ़ के मैदान में आ डटा। ११ दिन बाद दोनों भाइयों के बीच सामूगढ़ का विख्यात और भयानक युद्ध हुआ। दिन भर लड़ाई चलती रही। मुराद बुरी तरह से घायल हो गया लेकिन विजय औरंगजेब की ही हुई। दाराशिकोह की ओर से लड़ते हुए राव छत्रसाल हाड़ा, राजा रामसिंह राठौर आदि अनेक प्रसिद्ध योद्धा मारे गये। दाराशिकोह जब परास्त हो कर रणभूमि से लौटा तो उस की आंखों के सामने अंधेरा छा चुका था। शाहजहां ने उसे मिलने के लिए बुलाया लेकिन उस ने यह कह कर कि वह सम्राट को मुंह दिखाने लायक नहीं है, पिता से मिलने नहीं गया। दूसरे दिन तीन बजे सवेरे अपनी कुछ रानियों और सेवकों के साथ वह दिल्ली की ओर चल दिया।

अपना काम निकल जाने के बाद औरंगजेब ने मुराद को बंदी बना कर ग्वालियर के किले में भेज दिया और स्वयं दाराशिकोह का पीछा करता हुआ दिल्ली की ओर चल दिया। दाराशिकोह औरंगजेब से बचता हुआ दिल्ली से लाहौर जा पहुंचा। उस समय तक

और कैसा भविष्य होता। इन प्रश्नों में उलझना व्यर्थ है क्योंकि ऐसी बात हुई ही नहीं।

फिर भी दाराशिकोह का मूल्यांकन करना ही होगा। वह एक निश्चित राजनीतिक और सामाजिक पद्धति में विश्वास करता था। वह पद्धति अकबर की प्रतिपादित की हुई थी। वैसे तो मुगल शासन-काल में कितने ही राजा सहिष्णु थे और कितने ही असहिष्णु, परंतु सहिष्णुता को एक नीति समझना और सब लोगों के साथ समानता का व्यवहार करना तथा इस उद्देश्य के लिए ठोस कदम उठाना केवल अकबर का काम था। मुसलमान शासकों में केवल अकबर ऐसा था जिस ने इसलामी कानूनों (जिन के द्वारा देश में शासन होता था) के अतिरिक्त कई ऐसे कानून बनाये थे जिन से इसलामी शासन में हिन्दुओं को भी बराबरी का स्थान मिल गया था। राजनीति में भी उन्हें समान स्थान प्राप्त था। यह नीति एवं कानून जहांगीर और शाहजहां के काल में भी लगभग चलते रहे। शायद यही कारण था जिस ने अकबर से शाहजहां तक के युग को मुगल शासन-काल का स्वर्ण-युग बना दिया था।

दाराशिकोह इसी नीति का अनुयायी था। वह सहिष्णुता तथा हिन्दू-मुसलमान एकता में विश्वास करता था। शाहजहां इसीलिए उसे सब पुत्रों से अधिक प्यार करता था। वह सूफी तथा अन्य धर्मों का साहित्य पढ़ने में रुचि रखता था। सैनिक मामलों में वह दक्ष नहीं था इसलिए औरंगजेब से हार गया। उस की हार के साथ उन सिद्धांतों की भी हार हो गयी जो अकबर के समय से चले आ रहे थे। औरंगजेब और उस के अनुयायियों ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा कि दारा इसलाम से हट गया है और धर्म की रक्षा के लिए ही औरंगजेब ने राज-कार्य संभाला है।

औरंगजेब ने किस सीमा तक इसलाम धर्म की रक्षा की तथा किस सीमा तक अपनी असहिष्णु नीति के कारण वह मुगल साम्राज्य के पतन का उत्तरदायी है—इन प्रश्नों से हमें यहां मतलब नहीं है। वैसे ऐतिहासिक शोध पत्रिकाओं में आजकल कुछ ऐसे लेख छपे हैं जिन में औरंगजेब के असहिष्णुता के कलंक को केवल झूठा आरोप बताने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी दाराशिकोह का अंत एक सिद्धांत और पद्धति का अंत था इसलिए उस का दुखद अंत और भी दुखद हो जाता है।

"अजी, रसोइये की क्या जरूरत है, मैं ही खाना बना लिया करूंगी।"

"हां, ठीक है। इस तरह मेरे बीमे का पैसा तुम्हें जल्दी मिल जायेगा।"

हास्य-व्यंग्य
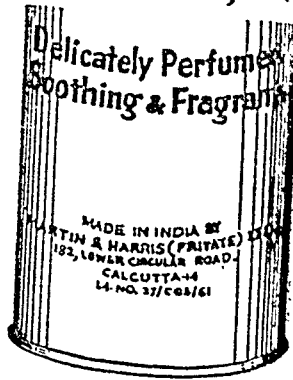
● अशोक शुक्ल

निकता का पुट देने से कविता गंभीर और रोचक हो जाती है। जो अगम्य होता है, उसे दर्शन कहते हैं अतः कवि दार्शनिकता के नाम पर सुविधापूर्वक ऐसी गूढ़ उक्तियां लिख सकता है जो उसे स्वयं स्पष्ट न हों जैसे :

देवि
यह सुवासित नासिका
ये किसलयों-से कर्ण
श्वेत मक्का की लड़ी-से दांत
अर्ध-मुकुलित-से तुम्हारे लघु नयन
यह रूप का भंडार
देख कर यह आज मुझ को
हो गया विश्वास है
कहीं तो ब्रह्म निश्चित है

दार्शनिक रचनाओं में एक लाभ यह भी है कि ये पाठ्यक्रम में बड़ी जल्दी आ जाती हैं। सौभाग्य से हिन्दी के परीक्षक भी कवियों की काव्यकला पर प्रश्न पूछने की अपेक्षा उन के दार्शनिक सिद्धान्तों से सिर फोड़ना अधिक पसंद करते हैं।

जिस प्रकार कोमलता स्त्रियों और रेशमी कपड़ों की विशेषता है, उसी प्रकार ऊबड़-खाबड़पन पुरुषों और कविताओं की विशेषता है। अनेक आलोचकों तथा विशेषज्ञों की मान्यता है कि कविताएं वही अच्छी हैं जो विषम, नीरस और ऊबड़-खाबड़ हों। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित है कि ऐसे प्रयोगों का सही होना आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए :

हाजिरी ले कर
जहां गुरुदेव ने मूंदा रजिस्टर
आंख सब की बचा
मैं कक्षा-भवन से
प्रस्फुटित हो कर चला आया

इस में 'प्रस्फुटित' शब्द खिलने के अर्थ में नहीं आया, वरन 'फूट जाने' अर्थात कक्षा से भाग आने के अर्थ में आया है। इसी प्रकार निम्न लिखित उदाहरण में भी प्रयोग का चमत्कार दृष्टव्य है :

स्फटिक शिला-सी स्वच्छ कुरसियां थीं, मेजें थीं
सम्मुख प्राचीरों में जड़े थे बड़े-बड़े मुकुर
बैरे ने आ कर सलाम किया, पूछा —नाथ,
आप के हुजूर में उपस्थित करूं मैं

गदगद हो मैं ने कहा — बेचते हैं

खेद के साथ कहना पड़ता है कि बेकारी के इस युग में जहां अन्य कुटीर-उद्योगों को इतनी प्रमुखता दी जा रही है, वहां काव्य-उत्पादन व्यवसाय पूरी तरह उपेक्षित है। यदि इस ओर भी समुचित ध्यान दिया जाये तो लाखों नौजवानों की आजीविका का प्रबंध हो सकता है। यही नहीं, बेकार नौजवान काव्य-उत्पादन-जैसे लोक-कल्याण के कार्य में लग जायें तो आये दिन सड़कों पर होने वाली प्रेम और विरह की दर्दभरी दुर्घटनाएं भी कम हो जायेंगी। इसी विचार से प्रस्तुत लेख में कविता करने की सरल, छात्रोपयोगी और अचूक विधि का वर्णन किया जा रहा है।

कविता बनायी नहीं जाती, बन जाती है—सर्वप्रथम काव्य-उत्पादक को यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये। कविता करते समय कवि को सोचने-विचारने और दिमाग (हो तो भी) लगाने की कतई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में कवि कविता नहीं करता, कवि की लेखनी कविता करती है। सच्चे कवि को चाहिये कि लेखनी जिस प्रकार चले, चलने दे।

कविता और प्रेम का संबंध इतना स्वाभाविक है कि एक बार प्रारंभ हो गया, तो बंद करना मुश्किल होता है। कविता के सहज उद्रेक की बात इस उदाहरण से अधिक स्पष्ट हो सकती है :

हिमाला से बरसतीं दूध-धाराएं मेरे हम-दम
न हम को पान की अथवा कड़कती धूप की चाहत
हमारे सामने तो ऊंट के अंत:करण से छन
झनकती पायलों के साथ दर्दीली नरम आहट

इस उदाहरण में मात्राओं के अनुपात से स्वत: आ जाने वाले शब्द रख दिये गये हैं और कविता बन गयी है। पूछा जा सकता है कि इस कविता का अर्थ क्या है? उत्तर में आप गंभीरता के साथ निवेदन कर सकते हैं कि सच्चे कवि भावावेश में कविता लिख जाते हैं, अर्थ का ज्ञान उन्हें नहीं होता। जब कविता पाठ्यक्रम में लग जाती है तब कुंजियां लिखने-वाले स्वयं उस का अर्थ खोज निकालते हैं।

कवि को अपनी धाक जमाने के लिए प्रत्येक कविता में दार्शनिकता का पुट देना पड़ता है। आलोचकों को भ्रम है कि दार्श-

समोसे लाओ
एक पात्र पानी और चटनी की बोतल
भी
दे गया बैरा और मुझ पर वज्रपात
हुआ
प्लेट तो थी ताजी पर समोसे सुवा-
सित थे

इस उदाहरण में 'सुवासित' का अर्थ सुगंधित नहीं, 'काफी दिनों के वासी' है।

कविता में सर्वाधिक महत्व शब्द-चयन का है इसलिए जहां तक संभव हो, कवि को कठिन शब्दों का प्रयोग करना चाहिये। साहित्य के इतिहास में इस बात के काफी प्रमाण मिलते हैं कि बहुत-से कवि सरल शब्दों में कविता लिखने के कारण प्रसिद्धि पाते-पाते रह गये। फिल्मी गीतों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि शब्द भाव की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होते हैं। कविता लिखने से पहले कुछ अच्छे शब्द छांट कर रख लेना चाहिये, फिर उन्हें कविता में यथास्थान फिट कर देना चाहिये।

शब्द-चयन : हिमाला, जुल्मो-सितम, मुहब्बत, जंग के बादल, इश्क का बाजार, फानी, अमन आदि।

कविता :

हिमाला, जंग के बादल, अमन,
जुल्मो-सितम, आंधी
मुहब्बत, इश्क का बाजार, फानी
जिन्दगी, बांधी

इस में यदि अर्थगत सौन्दर्य का ध्यान न भी रखा जाये तो भी कविता का ओज उसे अमरत्व प्रदान करने में समर्थ है।

नारी, प्रेम, विरह, मिलन, सौंदर्य आदि भावुक शब्दों के प्रयोग से काव्य में चुम्बकीय आकर्षण आ जाता है। काव्य-उत्पादकों को चाहिये कि केवल इन्हीं विषयों पर लिखें। नीचे इस प्रकार की कविता का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है।

प्रेमिके
तुम प्रेम की भंडार हो
शुद्ध रस की मदभरी दुकान हो तुम
रूप का अखबार हो
देवि
तुम सौन्दर्य से मंडित विरह की मूर्ति
मैं निपट वीरान उखड़ी-सी समस्या हूं
तुम समस्या-पूर्ति

काव्य-व्यवसाय में भी अन्य व्यवसायों की भांति पारस्परिक सहयोग का बड़ा महत्व है। नये कवियों को परस्पर मिल-जुल कर अपनी कविताओं के मूल्य निर्धारित करने चाहियें। एक-दूसरे की प्रशंसा करनी चाहिये तथा एक-दूसरे पर निबंध लिखना चाहिये। संभव हो तो अपने महल्ले के कवि-सम्मेलन में साथी कवि को अध्यक्ष बनवा देना चाहिये। इस से सहयोग की स्वस्थ और कल्याणकारी भावना भी विकसित होगी, यश भी प्राप्त होगा।

संत कबीर ने कहा था :

लेखक ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय
सार-सार को गहि रहै, थोथा देय उड़ाय

अर्थात लेखक को अपने पूर्वजों की कविताओं की सार-पंक्तियों का चयन कर लेना चाहिये। इस वृत्ति को आलोचकों ने 'मधु-संचय' नाम दिया है। उदाहरण देखिये :

हम नदी के द्वीप हैं
जी हां हुजूर, हम गीत बेचते हैं

तनहाइयों को गुंजाने वाला कवि

डा० भगवतशरण उपाध्याय

रूस की पिछली यात्रा में प्रसिद्ध उक्रेनी कवि निकोला वजान से साहित्य और सांकृत्यायन पर लम्बी चर्चा हुई—साहित्य पर कम, सांकृत्यायन पर अधिक। निकोला वजान सोवियत लेखक संघ के महामंत्री थे। राहुलजी के चिकित्सार्थ रूस जाने में वे सहायक हुए थे।

बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि निरस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग लेने तुरसुम जादे और नाजिम हिकमत दोनों आ रहे हैं। मुझे सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लेना था। खुशी हुई कि ताजिकी और तुर्की के विख्यात कवियों से फिर मिलन हो जायेगा। तुरसुम जादे से तो भारत और ताशकन्द में पहले भी भेंट हो चुकी थी, पर नाजिम हिकमत से चीन और वियना के बाद एक अरसे से नहीं मिल सका था।

नाजिम हिकमत, जिन का हाल में ही देहान्त हो गया है, दोहरे जिस्म के सुदर्शन कवि थे। ऊंचा-भरा कद, गहरी-तीखी आंखें, हंसी से खिलखिलाती कुछ भारी आवाज, बात करने की खासी कमजोरी। जहां भी वे मुझे मिले, अट्टहास के साथ ही मिले।

मैं नाजिम हिकमत का बड़ा प्रशंसक था। जिन्होंने देशों और दलित वर्गों की आजादी का इतिहास पढ़ा है, आज के अविरल संघर्ष को दूर-पास से देखा है, वे नाजिम हिकमत, नेरूदा, जलामिया और नजरुल इसलाम को कैसे भूल सकते हैं! चारों ही कवि परिस्थितियों और संघर्षों के शिकार!

मिलने के पहले नाजिम की अनेक कविताएं पढ़ चुका था—कविताएं जो मुरदे में भी जान डाल दें। ये कविताएं प्रायः कवि की लम्बी कैदों में, अंकारा और इस्ताम्बूल की जेलों की तनहाइयों में लिखी गयी थीं। सुना था कि तनहाइयों की दीवारें कविताओं की पंक्तियों से भर गयी थीं। जब तुर्की कवि अपनी ऊंची बोझिल आवाज

बरसते हैं मेघ झर-झर
भीगती है धरा
उड़ती गंध
उर्वशी ! अपने समय का सूर्य हूं मैं
आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे, धीरे, धीरे
बांसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के
पृष्ठ पर

अधिक लोकप्रिय स्तर पर कविता रचनी है तो कुछ इस प्रकार की कविता लिखी जा सकती है :

मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे
गजब भयो राम जुलुम भयो रे
जियो तो ऐसे जियो जैसे सब
तुम्हारा है
आज अपना हो न हो पर कल हमारा
है

मेरा लाल दुपट्टा मलमल का
कि जोगी तुझे ले जायेंगे
आज की मुलाकात बस इतनी
हमारे संग-संग चलीं गंगा की लहरें

सरल ढंग से सुन्दर कविता लिखने के लिए ऊपर दिये गये सभी सुझाव अनुभूत हैं ।

से उन कविताओं को पढ़ता तो अपनी तनहाई अपनी ही आवाज से भर देता, परिन्दों के पर फड़फड़ा उठते, पास की तनहाइयों के साथी कैदी अपनी वेड़ियां झनझना देते और गश्त करते खूंखार निर्मम वार्डर गश्त रोक, खामोश अपनी वेवसी के आंसू पोंछ लेते !

मेरा मन उन कविताओं को पढ़ वेवस हो जाता और सोचने लगता, कहां है वह कवि ? क्या कभी उस से साक्षात्कार हो सकेगा ? साक्षात्कार हुआ चीन में, जब हम दोनों अपने-अपने देश के प्रतिनिधि हो कर शान्ति-सम्मेलन में गये हुए थे। चीन और शान्ति-सम्मेलन ! आज चीन की कर-तूतों से दोनों की संगति पर हंसी आती है। पर, तब का चीन शायद दूसरा था।

कोलंबिया के प्रसिद्ध कवि जलामिया ने हम दोनों को मिलाने का जिम्मा लिया था। जलामिया क्रान्ति के कवि हैं। अत्यन्त सुन्दर और सुशील। कभी वे कोलंबिया के स्पेन में राजदूत तथा कोलंबिया सरकार में शिक्षा मंत्री भी रह चुके थे, पर अपने विचारों के कारण अब वे उस सरकार के जुल्म के शिकार थे। मेरा उन का संयोग पहलेपहल चीन में ही कला-प्रदर्शनी में हुआ, फिर चीनी कलावंतों के साथ एक गोष्ठी में। मैं ने कुछ लेख अपने देश में ऐसे लिखे थे जिन में एकसाथ समूचे संसार के साहित्य एवं कला के विकास का इतिहास प्रतिबिम्बित करने का प्रयास हुआ था। इसी दृष्टिकोण की चर्चा मैं ने चीनी गोष्ठी में की थी, जो जलामिया को बहुत भायी और उन्होंने समझाया था कि क्यों न हम दोनों मिल कर दो जिल्दों में एक ही तरुस्कंध की तरह समूचे संसार के साहित्य और कला का इतिहास तैयार करें। उस को स्वीकार करने वाले कुछ अन्य देशों के मित्रों की घंटे भर बाद एक बैठक में हम दोनों को शरीक होना था।

जलामिया ने सुझाया कि इसी बीच नाजिम हिक्मत से भी मिल लिया जाये और उन्हें भी अपना दृष्टिकोण समझा कर साथ ले लिया जाये। नाजिम चित्र-कला के भी प्रेमी थे। मेरे लिए, जो नाजिम का दीवाना था, उस से बढ़ कर भला क्या बात हो सकती थी। जलामिया की बांह में बांह डाली और विशाल सभा-भवन के बाहर 'लाबी' की ओर चले।

नाजिम काफी खत्म कर सेब का एक टुकड़ा मुंह में डालते हुए खड़े हो रहे थे। जलामिया ने मेरा परिचय उन्हें दे दिया और उन्होंने अपनी लंबी बांहों में मुझे समेट लिया। प्रसन्नमुख, पूरे चांद की चांदनी-जैसी मुसकराहट, घुंघ-राले-उलझे सुनहरे बाल, ऊपर को कुछ उठी सुनहरी मूंछें और सुनहरी भौंहें।

हाथ में उन के दो तसवीरें थीं, दोनों पिकासो की — एक उड़ता हुआ कबूतर, शान्ति का प्रतीक; दूसरा प्रसिद्ध चित्र गेरनिका। कबूतर वाला चित्र कला के प्रसंग में बड़ा विवादास्पद हो गया था। उस संबंध में सर्वत्र पिकासो की चर्चा हो रही थी। जब मैं ने उसे नाजिम हिक्मत के हाथ में देख उस की ओर संकेत कर कुछ कहा तब नाजिम जैसे भभक उठे।

मैं सुनता रहा, बीच-बीच में उन्हें रोकने के प्रयत्न भी करता रहा, पर वे रुके नहीं। उन की वाग्धारा फ्रेंच में
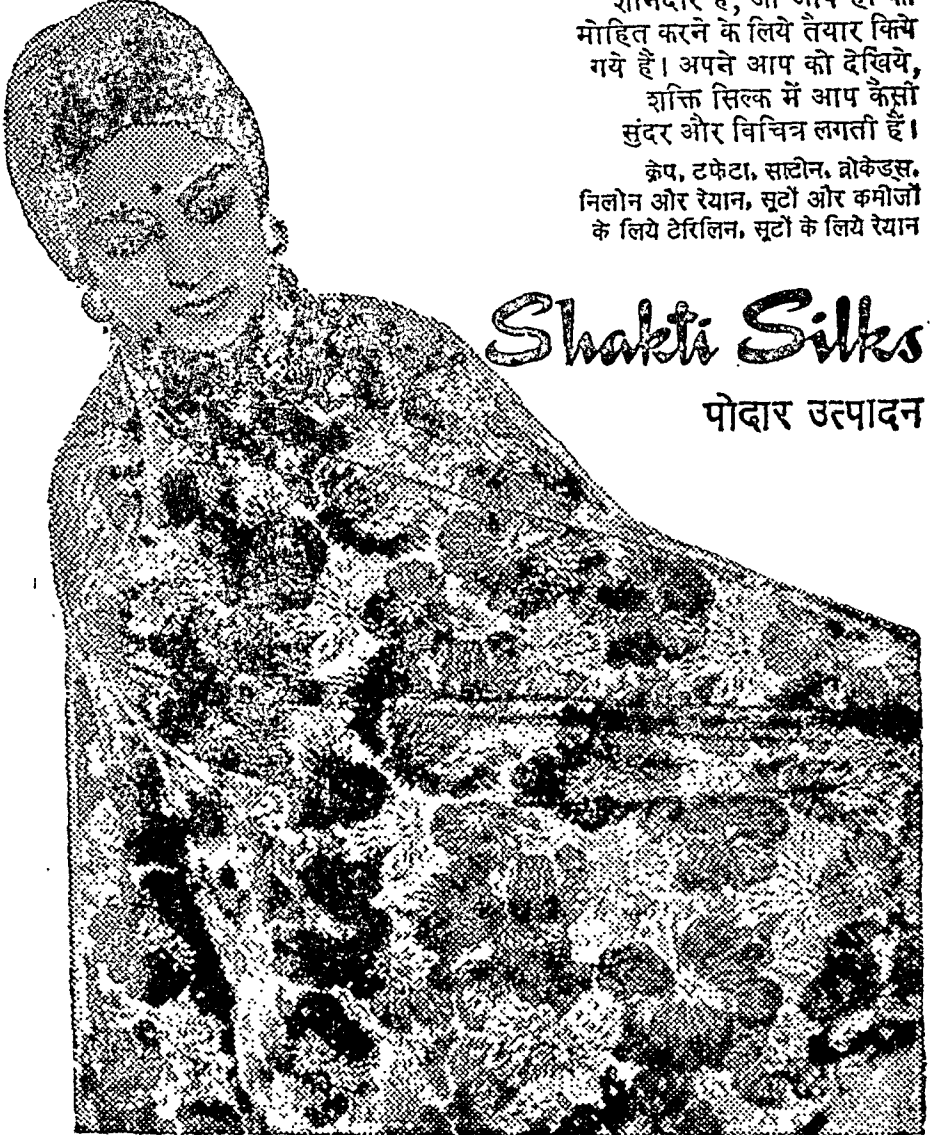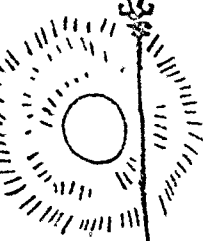
पीने का पानी
पीने का पानी
पीने का पानी

चलती रही। बारंबार जलामिया ने घड़ी की ओर इशारा कर कहा, "कहो, बैठक में जाना है।" पर कहता तभी न जब नाजिम का दुर्दम वाक्प्रवाह कहीं थमता। एक बार जब उन्होंने मेरी बोलने की उत्कंठा देखी भी तब तमक कर कह दिया, "ठहरो भाई। पहले मुझे पूरा कह लेने दो, तब तुम कहना। मैं चित्रकला जानता हूं, उस पर मैं ने विचार किया है। मेरी मां चित्रकार थी!"

और वाग्धारा फिर टूट पड़ती, मैं चुप हो जाता। जलामिया के बार-बार कोंचने से मुझे एक कहानी याद आती जो मेरी मां (जो चित्रकार नहीं थी) मुझे सुलाने के लिए मेरे बचपन में कहा करती थी। कहानी यों थी—एक सियार था—जवान। वह शेर के साथ रहता और उस के मारे हुए शिकार को उस के खा लेने के बाद स्वयं खा लिया करता। एक दिन उस की मां को लगा कि इतने क्रूर मालिक के साथ रहते कहीं ऐसा न हो कि कभी मालिक का तेवर बदले और वह बेटे को ही दबोच बैठे। वह घबड़ायी हुई अपने कुल के गुरु के पास गयी और अपनी आशंका प्रकट की। गुरु ने तत्काल एक कागज पर जंतर लिखा और मंतर पढ़ कर उसे सियार की मां को दे दिया। कह दिया कि इसे बेटे को दे कर कहना कि जब मालिक के बिगड़े तेवर देखे तब इस जंतर को उस के सामने कर दे, शेर शान्त हो जायेगा। सियार की मां ने जंतर बेटे को दे कर सब कुछ समझा दिया। सियार ने उसे बाजू पर बांध लिया और निर्भय हो शेर के साथ विचरने लगा। एक दिन शेर ने एक जानवर मारा और भोजन के पहले नदी पर स्नान करने चला गया। पर भूख से बेचैन जैसे ही वह लौटा, उस ने देखा कि सियार जानवर के जिस्म को अपनी जबान से चाट रहा है। यह सोच कर कि सियार ने उस का शिकार जूठा कर दिया, शेर गुस्से में सियार पर झपटा।

बेटे की रुआंसी गिड़गिड़ाहट सियार की मां ने सुनी। वह भागी हुई मांद से बाहर आयी तो देखा कि बेटा एक बड़े टीले के चक्कर लगा रहा है और क्रोधित शेर उस का पीछा कर रहा है। मां को तत्काल जंतर की याद आयी। वह टीले पर चढ़ चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगी, "बेटे, जंतर दिखा . . . जंतर दिखा!" घबड़ाये बेटे ने चिल्ला कर जवाब दिया, "अरे, यह जालिम शेर जरा दम लेने दे तब तो दिखाऊं!"

सो जब जलामिया मुझ से नाजिम को चुप कराने को कहें, मैं कहूं कि कि जरा ये दम लें, क्षण भर के लिए जबान रोकें तभी तो अपनी बात कहूं!

खैर, पैंतालीस मिनट तक एक सांस में बोल चुकने के बाद नाजिम हिकमत चुप हुए। तब तमक कर उन्होंने कहा, "अच्छा अब आप जवाब दें, मैं ने अपनी बात कह ली!"

मैं ने कहा, "अब क्या खाक कहूं? कहना तो बस इतना ही था कि मैं फ्रेंच नहीं जानता।"

वास्तविकता समझते ही एक बार तो जैसे उन की मूंछें और भौंहें एकसाथ हिलीं। फिर, एक जोर का ठहाका हुआ। आज भी वह ठहाका नाजिम की याद आते ही कानों में गूंज जाता है।

लेता। यदि लाश पानी में डाल दी जाये तो उस के फेफड़े खाली रहेंगे। पोस्टमार्टम से आसानी से अनुमान लगाया जा सकता था कि वह समुद्र में गिरने के पूर्व ही मर चुका था। और यह बात सारी जालसाजी का परदा-फाश कर सकती थी। अस्पतालों से संबंध स्थापित किया गया। एक ऐसे मुरदे की तलाश थी जिस के डूब कर मरने की बात बन सके। अंत में एक रिपोर्ट मिली कि अभी-अभी एक आदमी निमोनिया से मरा है। इस रोग से मरने पर फेफड़ा खाली नहीं रह सकता। उस में पानी जरूर रहेगा।

मृतक के संबंधियों को बिना उद्देश्य बताये इस बात पर राजी किया गया कि वे अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आवश्यकता के लिए उसे सेना को सौंप दें। इस के बाद वह लाश शाही नौसेना के मेजर विलियम मार्टिन के नाम से पुकारी जाने लगी। योजना कार्यान्वित होने तक यह लाश कोल्ड-स्टोरेज में सुरक्षित रख दी गयी।

मृत मेजर मार्टिन की जेब में जो पत्र रखे जाने थे, उन का उच्चस्तरीय, गोपनीय और महत्वपूर्ण होना आवश्यक था। शाही जनरल स्टाफ के उप-प्रधान सर आर्चीबाल्ड द्वारा तत्कालीन अफ्रीकी अभियान में १८वीं सेना के ग्रुप कमांडर जनरल एलेक्जेंडर को पत्र लिखे जाने की व्यवस्था की गयी। पत्र में सर आर्चीबाल्ड ने जनरल एले-क्जेंडर को विस्तार से बताया था कि रसद और सेना संबंधी उन की मांगें क्यों नहीं पूरी की जा सकतीं। पत्र में यह स्पष्ट संकेत किया गया था कि सेनाओं के प्रधान पश्चिमी भूमध्य सागर पर आक्रमण की योजना बनाने में व्यस्त हैं। अतः अफ्रीकी मोरचों की मांगें पूरी करने में विलम्ब हो सकता है। इसी पत्र में स्पष्ट किया गया था कि मित्र-शक्तियों का लक्ष्य सिसली नहीं, ग्रीस या दक्षिणी भूमध्य-सागर का कोई क्षेत्र है।

मैदान मुरदे के हाथ

ईवान ई० एस० मांटेग्यू

जिब्राल्टर से १३० मील उत्तर-पश्चिम अतलांतक की लहरों से धुला स्पेनी नगर हुएल्वा। नगर के कब्रिस्तान में चिरनिद्रालीन एक ब्रिटिश नागरिक। निमोनिया के घातक आक्रमण से प्राणत्याग करने के बाद इस के शव ने द्वितीय महायुद्ध में इतिहास का निर्माण कर दिया।

१९४२ की शरद ऋतु में मित्र-शक्तियों ने आक्रमण का लक्ष्य सिसली बनाया था। किन्तु कठिनाई यह थी कि जरमन सेनापति भी मित्र-राष्ट्रों की इस योजना को भांप चुके थे। उन्हें किसी तरह धोखे से यह विश्वास कराना था कि मित्र-शक्तियां सिसली नहीं, किसी अन्य मोरचे पर उतरने जा रही हैं।

यह काम बहुत ही कठिन था। काफी सोच-विचार के बाद ब्रिटिश सुरक्षा दल के एक सदस्य ने एक योजना प्रस्तुत की। जरमनी को मालूम था कि ब्रिटिश सैन्य-अधिकारी वायु-मार्ग द्वारा स्पेन के तट से उड़ते हुए उत्तरी अफ्रीका जाया करते हैं। स्पेन से दूर समुद्र में यदि नकली पत्रों के साथ कोई लाश छोड़ दी जाये और हवा का अनुकूल रुख उसे धरती की तरफ बहा ले जाये तो बात बन सकती थी। स्पेन पहुंचने पर लाश और पत्र जरमन खुफिया एजेंटों के हाथ लगते, जरमन यही समझते कि किसी दुर्घटना में फंस कर ब्रिटिश अफसर समुद्र में डूब गया है और उस के जेब के पत्र जरमनों को गुमराह कर सकते थे।

इस योजना में एक व्यावहारिक कठिनाई थी। मुरदा सांस तो नहीं

रवाना हो रही थी। प्रधान मंत्री चर्चिल से अनुमति ले कर मृत मार्टिन को इसी पनडुब्बी से भेजने का निश्चय किया गया।

१९ अप्रैल, १९४२ को सुबह छह बजे 'सेराफ' पर चढ़ कर मुरदा मेजर विलियम मार्टिन अभियान के लिए चल दिये। वे छह फुट लंबे एक पीपे में बरफ के बीच आराम से लेटे हुए थे। दस दिनों की खतरनाक यात्रा पूरी करके 'सेराफ' ३० अप्रैल को हुएल्वा नगर से १६०० गज की दूरी पर पहुंची।

घने अंधेरे में ठीक साढ़े चार बजे पीपे का ढक्कन खोल कर मुरदा मेजर मार्टिन को बाहर निकाला गया। लेफ्टिनेंट जेवेल ने मार्टिन के उड़ाका-जैकेट में हवा भरी। फिर उन्हें हल्के धक्के के साथ लहरों पर उछाल दिया। मुरदा मेजर को लहरों के थपेड़े दूर लेते गये। लेफ्टिनेंट जेवेल उन की शांति के लिए प्रार्थना कर रहा था और चार युवा अफसर सिर झुकाये उन के प्रति सम्मान प्रकट कर रहे थे। जेवेल ने वायु-सेना से मांगी हुई रबर की एक डोंगी समुद्र में फेंक दी। जल्दबाजी के कारण इस में सिर्फ एक ही अल्यूमीनियम की डांड़ रखी जा सकी।

अगली सुबह हुएल्वा के एक स्पेनी मछुए ने मेजर मार्टिन का शव पकड़ा। शव अधिकारियों को सौंप दिया गया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कहा गया कि समुद्र में डूब जाने के कारण दम घुट कर मृत्यु हुई। ब्रिटिश वाइस-कांसल को इस की सूचना दी गयी, कांसल ने २ मई, १९४३ को पूर्ण सैनिक

नये दर्द

कुछ नये दर्द स्वीकृत हुए
प्राण मेरे पुरस्कृत हुए

गीत लिख-लिख गयी लेखनी
दर्द बन श्लोक निसृत हुए

चेतना के शिखर पर रखे
वाद्य के तार झंकृत हुए

स्वयं आंचल दिया रेशमी
अश्रु मेरे समादृत हुए

प्राण थे आदिवासी मगर
प्यार पा कर सुसंस्कृत हुए

आंजते ही नयन प्यार से
जी उठे स्वप्न सब मृत हुए

ईश को भूल बैठा मगर
एक क्षण तुम न विस्मृत हुए

ईर्ष्या से दिये विश्व ने
किन्तु विष-पात्र अमृत हुए

छवि तुम्हारी मुखर हो गयी
मौन मेरे अलंकृत हुए

—चन्द्रसेन 'विराट'—

पत्र में यह भी कहा गया था कि ब्रिटिश सेनापति जरमनों को इस धोखे में रखना चाहते हैं कि उन के आक्रमण का लक्ष्य सिसली है। यह संकेत दूर की कौड़ी थी। इस से सिसली पर आक्रमण संबंधी ब्रिटिश योजनाओं का कोई सुराग मिलने पर भी जरमन उसे केवल प्रपंच मानने को विवश हो जाते।

इस के अलावा एक अन्य पत्र भी तैयार किया गया जिसे मृत मेजर मार्टिन की जेब में रखा जाना था। इसे लुई माउंटबेटन ने भूमध्यसागर के प्रधान सेनापति एवं नौसेनापति सर एंड्रयू कनिंघम को लिखा था। इस पत्र का एक अंश यों था—'. . . मैं समझता हूं कि मार्टिन आप के योग्य है। आक्रमण समाप्त होते ही इसे मेरे पास वापस भेज दें। यह अपने साथ कुछ सारडीनियों को ले आयेगा।'

सारडीनियावासी श्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। यह वाक्य जरमनों पर पूरा असर डाल सकता था। वे समझ सकते थे कि ब्रिटेन का लक्ष्य सिसली न होकर सारडीनिया है।

दूसरी समस्या थी मेजर मार्टिन का चित्र एवं परिचय-पत्र। मार्टिन की लाश में फौजी आन-बान और व्यक्तित्व कहां से आता! बड़ी मुश्किल से खोज कर मेजर मार्टिन की शक्ल से मिलता-जुलता एक आदमी पकड़ा गया और उसे फोटो खिंचवाने पर राजी किया गया।

अब मुरदे मार्टिन को व्यक्तित्व प्रदान करना था। उस की उड़ान की दिशा अफ्रीका की ओर निश्चित की गयी। युवा मार्टिन को जरा खर्चीला होना चाहिये अतः उस की जेब में लायड बैंक के हेड आफिस का एक पत्र भी रखा गया जिस में उसे ८० पौंड की रकम चुकाने को कहा गया था।

युवा अफसरों में रोमांस की कमी नहीं होती, अतः मुरदा मार्टिन के जीवन में पाम नामक युवती को लाया गया। मार्टिन के थैले में इस लड़की का एक चित्र और उस के दो पत्र भी रखे गये। पत्र कई जगह मुड़े थे जो बताते थे कि मार्टिन ने उन्हें बार-बार पढ़ा है। इसी थैले में ५३ पौंड का एक बिल सगाई की अंगूठी का रखा गया। यह संकेत था कि मार्टिन की सगाई हो चुकी है और लायड बैंक का कर्ज शायद इसी अंगूठी को खरीदने के लिए था।

इस के अतिरिक्त मेजर मार्टिन की सामान्य चीजें—पहचान-पत्र, बैज, घड़ी, सिगरेटें, पुराने बस टिकट, पत्रों के टुकड़े और चाभियां भी उस थैले में रख दी गयीं। इंगलैंड से रवाना होने के पूर्व मार्टिन अपने मंगेतर को थियेटर भी ले गया था, इस को सिद्ध करने के लिए उस की जेब में थियेटर-टिकटों के दो अद्धे भी रख दिये गये।

अब मृत मेजर मार्टिन आक्रमण के लिए पूर्णतया तैयार था। हुएल्वा के आस-पास मौसम की जांच की गयी, तो हवा भी अनुकूल मिली। वायु की गति मुरदा मार्टिन को नगर के समुद्र-तट पर बहा ले जा सकती थी। लेफ्टिनेंट जेवेल की कमांड में पनडुब्बी 'सेराफ' उसी दिन माल्टा के लिए
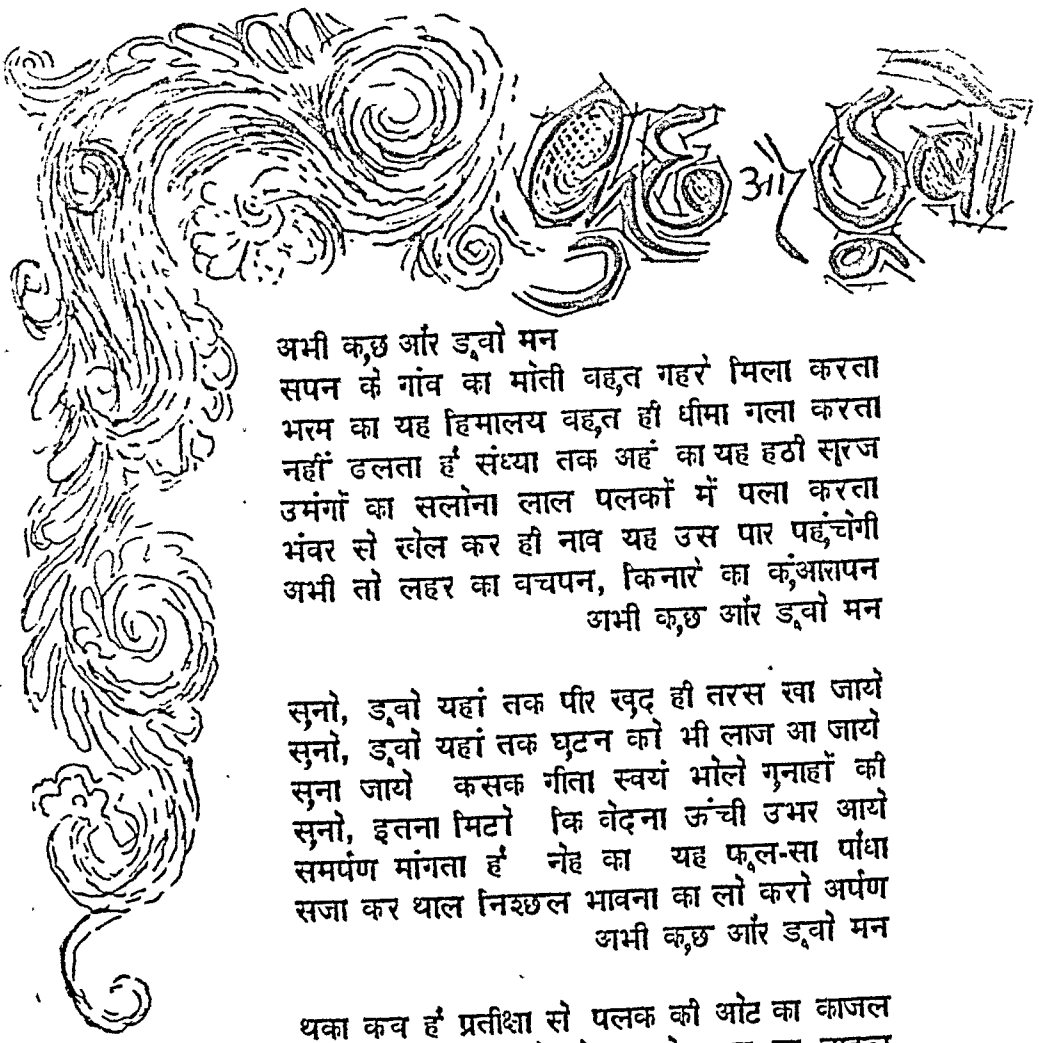
अभी कुछ और डूबो मन
सपन के गांव का मोती बहुत गहरे मिला करता
भरम का यह हिमालय बहुत ही धीमा गला करता
नहीं ढलता है संध्या तक अहं का यह हठी सूरज
उमंगों का सलोना लाल पलकों में पला करता
भंवर से खेल कर ही नाव यह उस पार पहुंचेगी
अभी तो लहर का बचपन, किनारे का कुंआरापन
अभी कुछ और डूबो मन

सुनो, डूबो यहां तक पीर खुद ही तरस खा जाये
सुनो, डूबो यहां तक घुटन को भी लाज आ जाये
सुना जाये कसक गीता स्वयं भोले गुनाहों की
सुनो, इतना मिटो कि वेदना ऊंची उभर आये
समर्पण मांगता है नेह का यह फूल-सा पौधा
सजा कर थाल निश्छल भावना का लो करो अर्पण
अभी कुछ और डूबो मन

थका कब है प्रतीक्षा से पलक की ओट का काजल
रुका कब है बरसने से उदासे नयन का बादल
बड़ा सुकुमार लगता है अचेतन में पला सपना
सदा से ही छला करता विगत का दूधिया आंचल
भुलावों के सहारे पर हमेशा सांस पलती है
अभी गाती बहारें हैं, अभी उजड़ा कहां आंगन
अभी कुछ और डूबो मन

—विश्वनाथ—

सम्मान के साथ मेजर मार्टिन को ह्यूल्वा के कब्रिस्तान में दफना दिया।

४ मई, १९४३ को अत्यंत गोपनीय एवं आवश्यक संदेश में स्पेन स्थित ब्रिटिश कांसल को निर्देश दिया गया कि वे तटस्थ स्पेनी सरकार से मेजर विलियम मार्टिन की जेबों से प्राप्त हुए कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण कागजात की मांग करें। किन्तु ह्यूल्वा स्थित जरमन एजेंट अंगरेजों से अधिक चालाक और तत्पर सिद्ध हुआ। भविष्य की घटनाएं बताती हैं कि उस ने मृत मार्टिन के कागज-पत्रों की नकल जरमन रीश तक भेजने में जरा भी देर नहीं की थी। ब्रिटिश और स्पेनी अधिकारियों में वार्ता होती रही किन्तु ३० मई, १९४३ तक न तो कागज-पत्र दिये गये, न इन की प्राप्ति ही स्वीकार की गयी।

ब्रिटिश अधिकारियों ने अपने शोक का रंग गहरा करने के लिए मार्टिन की कब्र पर तख्ती लगाने की अनुमति मांगी। मृत मेजर की मंगेतर ने कब्र पर चढ़ाने के लिए एक माला भेजी। अंत में मार्टिन का नाम हताहतों की सूची में डाल दिया गया।

मित्र-राष्ट्रों ने सिसली अभियान में जिस सरलता से सफलता पायी, उस से स्पष्ट है कि मृत मार्टिन अपने अभियान में पूरी तरह सफल हुए थे। किन्तु इस के पूरे प्रमाण तो युद्ध की समाप्ति पर ही प्राप्त हो सके।

जरमन नौसेना स्टाफ की युद्ध-डायरी में लिखा था कि मेजर मार्टिन की लाश प्राप्त होने के १४ दिन बाद जरमन सैन्य अधिकारी इस निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे कि मित्र-शक्तियों के आक्रमण का लक्ष्य सिसली नहीं, सारडीनिया होगा।

मेजर मार्टिन के कागज-पत्रों में वर्णित दो लक्ष्यों केप अराक्सोस और कैलामाता की सुरक्षा के लिए जरमन हाई कमांड ने फ्रांस से टैंकों और बख्तरबंद गाड़ियों के दो पैंजर दस्ते हटा कर वहां भेज दिये। सारडीनिया क्षेत्र में सुरंगें बिछाने, तोपें लगाने, कमांड स्टेशनों और चौकसी दस्तों को सशक्त करने में जरमन हाई कमांड ने पूरी ताकत लगा दी। जून में आर-बोटों (तारपीडो-बोटों) का पूरा दस्ता सिसली से ग्रीस भेज दिया गया।

सारडीनिया को दृढ़ बनाने की आज्ञा पर फील्डमार्शल विल्हेल्म कीटेल ने स्वयं हस्ताक्षर किये थे। पैंजर का एक पूरा दस्ता कोर्सिका भेजा गया, किन्तु ब्रिटिश सेनाओं ने इस क्षेत्र की ओर रुख भी नहीं किया।

सिसली पर मित्र-सेनाओं का आक्रमण शुरू होने पर भी जरमन सेनापतियों ने कोर्सिका, सारडीनिया के संभावित आक्रमण के प्रति सतर्कता को कम नहीं किया।

मुरदा मार्टिन के आक्रमण की सफलता का अनुमान महान जरमन सेनापति फील्डमार्शल रोमेल के इन शब्दों से लगाया जा सकता है : 'मित्र-शक्तियों ने सिसली पर आक्रमण करके जरमन सुरक्षा-पंक्ति बिखेर दी और यह सब हुआ एक सैनिक पत्र-वाहक की लाश से बरामद उन कागज-पत्रों के कारण, जो निश्चय ही बनावटी थे . . .'

कॅरिंगटन ने सोचा कि शायद वेसी को ही कोई बीमारी हो गयी हो लेकिन देखने में वह पूरी तरह स्वस्थ दिखायी देती थी। खुराक भी पूरी खा रही थी। अतः उन्होंने मवेशी डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर ने काफी सावधानी से वेसी को पूरी तरह जांच की। उस ने बताया कि गाय को कोई बीमारी नहीं है। डाक्टर को खुद आश्चर्य था कि वेसी ने दूध क्यों कम दिया!

कॅरिंगटन ने वीरसिंह से इस संबंध में सलाह की और सोचने लगे कि किस तरह वेसी को पूर्व-स्थिति में लाया जाये। वीरसिंह ने कहा, "साहब, वेसी रात को बहुत बेचैन हो जाती है। जब से आप ने मुझे वेसी के बगल वाला कमरा दिया है, मैं रोज रात को वेसी का दर्दीला रंभाना सुनता रहता हूं।"

चपरासी भी वहीं खड़ा था, बोला, "साहब, हो न हो कोई रात को आ कर गाय को दुहता है और दूध ले जाता है। उस कमरे में कोई दरवाजा नहीं है अतः चोर आसानी से दूध की चोरी कर ले जाता है। एक बात और है! चोर वेसी की पिछली टांगों को रस्सी से कस कर बांध कर दुहता है। वेसी के पिछले पैरों पर रस्सी बांधने के हलके निशान हैं।"

कॅरिंगटन ने वेसी के पिछले पैरों को ध्यान से देखा। वास्तव में रस्सी बांधने के हलके निशान थे। कॅरिंगटन यह देख कर क्रोध से भर गये और बोले, "हमें चोर को पकड़ना चाहिये!"

कॅरिंगटन ने वीरसिंह को आदेश

दिया कि रात को जैसे ही वेसी बेचैन हो, वह उन्हें आ कर जगा दे।

रात को वीरसिंह के दरवाजा खटखटाने के साथ ही कॅरिंगटन बिस्तर से उछल कर खड़े हो गये। उन्होंने लालटेन हाथ में ली और वीरसिंह को पीछे आने का संकेत किया। वे नहीं चाहते थे कि चोर को भागने का मौका मिले, अतः शीघ्रता से वेसी के कमरे की तरफ बढ़े। उन्होंने लालटेन धीमी कर दी थी ताकि चोर प्रकाश देख कर सावधान न हो जाये। उसी समय बादल के एक टुकड़े ने चांद को छिपा लिया।

कॅरिंगटन और वीरसिंह नौकरों के कमरों से लगे हुए सतर्कता से आगे बढ़ रहे थे। वेसी के कमरे के सामने पहुंच कर कॅरिंगटन ने लालटेन का प्रकाश बत्ती बढ़ा कर तेज कर दिया और वीरसिंह ने अपनी लाठी मजबूती से संभाल ली। इस तरह सतर्कता रख वे दोनों वेसी के कमरे में घुसे। उन्हें पूरी आशा थी कि वहां चोर अपनी रस्सी और बाल्टी के साथ मिलेगा।

सांप दूध-प्रेमी तो होता है पर उसे प्राप्त करने के लिए योजनाबद्ध चोरी करे, इस पर अधिकांश लोग विश्वास नहीं करेंगे। लेकिन एक ऐसी घटना प्रकाश में आयी है कि दूध चुराने के लिए एक धामिन सांप ने एक निश्चित योजना बनायी थी। उसी योजना के अनुसार वह रोज चोरी से दूध पीता था। यह अनुभव जे. ई. कॅरिंगटन को अलमोड़ा में हुआ था। कॅरिंगटन भारतीय वन विभाग में थे।

अलमोड़ा में उन्हें और तो सब-सुविधाएं थीं लेकिन शुद्ध दूध नहीं मिल पाता था। अतः उन्होंने एक गाय खरीदी, जो दिन भर में साढ़े तीन सेर से ज्यादा दूध नहीं देती थी लेकिन कॅरिंगटन को विश्वास था कि अच्छी खुराक तथा देखभाल से वह अधिक दूध देने में समर्थ हो जायेगी।

कॅरिंगटन ने उस गाय को बैरकों के कमरों में से एक में रखा। गाय की देखभाल के लिए उन्होंने माली के २५ वर्षीय लड़के बीरसिंह को १४ रुपये महीने पर नियुक्त किया। दिन में दो बार गाय को काफी मात्रा में भूसा, चोकर तथा ताजी घास खाने को दी जाती थी। कॅरिंगटन गाय के स्वास्थ्य का काफी खयाल रखते थे ताकि वह स्वस्थ रहे और काफी दूध दे। इस देखभाल का परिणाम यह हुआ कि गाय धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी और उस की हड्डियां मांस में छिप गयीं। अब वह इतना दूध देने लगी कि कॅरिंगटन के परिवार और उस के बछड़े के लिए वह पर्याप्त होता था। कॅरिंगटन ने गाय का नाम बेसी रखा था।

बेसी के स्वस्थ होने के लगभग दो महीने बाद अचानक एक सुबह कॅरिंगटन को खबर दी गयी कि उस दिन बेसी ने काफी कम दूध दिया है। स्वाभाविक था कि कॅरिंगटन सोचते कि किसी ने चोरी से दूध दुह लिया है। यह खबर मिलते ही बीरसिंह का पिता दौड़ा हुआ आया और कॅरिंगटन को अपने बेटे की सफाई देने लगा। वह बोला, "साहब, हम पहाड़ी लोग चोरी कभी नहीं करते। आप बीरसिंह के बारे में कतई शक न करिये।"

चोर रंगे हाथ पकड़ा गया था। मैं ने वीरसिंह से कहा कि वह बेसी को यहां से ले जा कर अपने कमरे में बांध दे और दरवाजे में बाहर से ताला लगा दे। उस कमरे की पिछली खिड़की काफी बड़ी थी जिस से काफी हवा आती थी। फिर मैं ने वीरसिंह से कहा कि वह चपरासी के कमरे में जा कर सो जाये। मैं ने बेसी को नये कमरे में दाना-पानी की व्यवस्था की और सोने चला गया।

"सुबह दफ्तर जाने से पहले मैं ने दूध-चोर धामिन से निबट लेने का निश्चय किया। मैं ने वीरसिंह और दोनों चपरासियों को बुलाया और उन से लाठियां ले लेने को कहा। फिर हम लोग बेसी के पुराने कमरे में गये। वहां एक कोने में घास का गट्ठर पड़ा हुआ था। एक चपरासी ने कहा कि पहले घास के ढेर में धामिन की खोज की जाये। जैसे ही हम लोग घास के ढेर की तरफ बढ़े, अचानक वीरसिंह चिल्लाया, 'वह रहा धामिन!' धामिन अचानक कमरे के बायें कोने के एक छेद में से निकल कर भागा था। हम तेजी से उस के पीछे भागे।

"धामिन बगीचे के उस भाग की तरफ भाग गया जहां वीरसिंह का पिता खुरपी लिये काम कर रहा था। मैं ने उसे आवाज दे कर कहा कि वह देखे कि धामिन कहां गया। उस ने यहां-वहां देख कर एक बिल की ओर इशारा कर के बताया कि धामिन उस में है। हम लोग उस बिल को घेर कर खड़े हो गये। फिर सोचने लगे कि बिल खोद कर धामिन को बाहर निकाला जाये अथवा बिल के मुंह पर आग जला कर? तभी माली ने कहा कि उस ने कल बाजार में एक संपेरा देखा है और क्यों न उसी को बुला कर उस से धामिन को पकड़वाया जाये।

"लगभग २० मिनट बाद उस्ताद अपने कंधे पर दो पिटारियां लटकाये हुए आया। मैं ने उसे बताया कि उसे क्यों बुलाया गया है! फिर मैं उसे उस बिल के पास ले गया जिस में हमारे अनुमान के अनुसार धामिन छिपा था। वह बिल से लगभग दस गज दूर गया और अपनी पिटारियां जमीन पर रख दीं।

"अब वह बिल से लगभग एक गज दूर उकड़ूं हो कर पंजों के बल बैठ गया। फिर उस ने अपनी बीन बजाना शुरू की। आधा मिनट बाद ही अचानक वह बिजली की तेजी से उछला। सांप उस से एक फुट से भी कम दूरी के एक बिल से अचानक निकल पड़ा था, जिस के बारे में हम लोगों ने कभी सोचा भी नहीं था।

"धामिन, बाड़ के किनारे-किनारे, जितनी तेजी से भाग सकता था, भाग निकला। धामिन की चपल गति देख कर हम लोग दंग रह गये। संपेरा भी बिजली की तेजी से उस के पीछे लगा था। इस के पहले कि धामिन बांसों के झुरमुट में घुस कर अदृश्य हो जाये, संपेरे ने झुक कर दाहिने हाथ से उस की पूंछ पकड़ ली। पूंछ पकड़ कर वह सीधा खड़ा हो गया और दाहिने हाथ को पूरा ऊपर उठा कर धामिन को हवा में तेजी से घुमाना शुरू किया। कुछ देर धामिन को हवा में चकरा कर

लेकिन उन लोगों को भारी निराशा ही हाथ लगी। कमरे में सिवा अशांत वेसी के कोई नहीं था। इन लोगों को देख कर बेचैन वेसी कुछ आश्वस्त-सी हुई। केरिंगटन ने सोचा कि चोर आवश्यकता से अधिक चतुर है। खैर, उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि चोर चाहे जितना चतुर हो, वे अगली रात उसे भागने का मौका न देंगे।

अगली रात उन्होंने वीरसिंह के कमरे में ही आरामकुरसी डलवा ली और उसी पर लेट कर वेसी के बेचैनी भरे स्वर की प्रतीक्षा करने लगे। उस रात आसमान साफ था और चंद्रमा अपने प्रकाश से धरती को नहलाये दे रहा था। इस समय वातावरण ऐसा निस्तब्ध था कि केरिंगटन वीरसिंह की सांसों की आवाज सुन रहे थे। इस के बाद की घटना इतनी विस्मयकारी है कि सुन कर सहसा विश्वास नहीं हो सकता। हम उसे केरिंगटन के शब्दों में ही प्रस्तुत करते हैं—

"मैं ने वीरसिंह के कमरे का दरवाजा पूरा खोल रखा था और रबर-सोल जूते पहन रखे थे। लालटेन में पूरा तेल भरा हुआ था। इस तरह मैं हर सम्भावित स्थिति का सामना करने के लिए तैयार बैठा था। चोर को भागने का मौका नहीं मिलना चाहिये—यह मैं ने दृढ़ निश्चय कर रखा था।

"लगभग ११ बजे वेसी का बेचैनी भरा स्वर सुनायी दिया। संभवत: प्रतीक्षित चोर आ चुका था। मैं सांस रोक कर वेसी के कमरे की आहट लेने लगा। वेसी की अशांत आवाज फिर सुनायी दी। अब मैं बिना आहट किये उठा। मैं ने लालटेन का प्रकाश तेज कर लिया और वेसी के कमरे के सामने पहुंच गया। मेरी नजर सीधे वेसी की पिछली टांगों की तरफ गयी। लेकिन वहां जो मैं ने देखा, मेरी आंखें सहसा उस पर विश्वास नहीं कर सकीं।

"मैं ने कल्पना की थी कि कोई देहाती उंकड़ूं बैठा दोनों हाथों से तेजी के साथ गाय दुह रहा होगा, लेकिन वहां तो एक विचित्र एवं रोमांचकारी दृश्य था—एक ऐसा दृश्य, जो मेरी कल्पनाशक्ति से परे था। एक धामिन सांप वेसी के पिछले पैरों को अपने लगभग पांच फुट लंबे शरीर से रस्सी की तरह जकड़े हुए था ताकि वेसी अपने पिछले धड़ से कोई हरकत न कर सके और वह आराम से उस के थनों में मुंह लगा कर दूध पी सके। आहट पाते ही धामिन ने अपने बंधन से वेसी की टांगों को मुक्त किया और बिजली-सी तेजी से गायब हो गया।

"अब चोर का पता लग गया था। मुझे यह भी पता चल गया कि वेसी के पिछले पैरों पर रस्सी के बांधने-जैसे निशान क्यों हैं। मैं ने वीरसिंह से कहा कि वह चपरासी को बुला लाये। चपरासी के आने पर मैं ने उसे सब किस्सा सुनाया। मैं ने उस से वेसी के थनों की परीक्षा करने को कहा। मैं जानना चाहता था कि धामिन आज दूध पी कर गया है या मेरी आहट पा कर यों ही भाग गया। उस ने थनों को देख कर बताया कि धामिन ने वेसी को दुह कर दूध पिया है क्योंकि थन गीले हैं।

"अब समस्या हल हो चुकी थी।

"यह तो मानना ही पड़ेगा कि राम बाबू की किस्मत ने अंतिम समय तक उन का साथ दिया।"

"कैसे?"

"यह तो तुम्हें मालूम ही है कि वे धोखे से सोने का टुकड़ा निगल गये थे। आपरेशन के बाद उसी सोने के टुकड़े से आपरेशन और अंतिम-संस्कार का सारा खर्च निकल आया।"

★

एक अमरीकी और रूसी में मित्रता थी। एक दिन अमरीकी बोला, "हमारे अमरीका-जैसी आजादी तुम्हारे यहां कदापि नहीं हो सकती! हम लोग वाशिंगटन में कहीं भी खड़े हो कर कह सकते हैं कि राष्ट्रपति जानसन राष्ट्रपति-पद के योग्य नहीं है।"

"इतनी आजादी तो हमारे रूस में भी है," रूसी बोला, "हम भी मास्को में कह सकते हैं जानसन राष्ट्रपति-पद के योग्य नहीं है।"

★

"साहब, इस शहर की तो सब सड़कें उखाड़ डालीं, अब क्या किसी दूसरे शहर में चलना है?" एक मजदूर ने ठेकेदार से पूछा।

"नहीं, सड़कों पर मिट्टी भर कर फिर से उखाड़ो।"

★

"देखो, रात को मैं ने सपने में देखा है कि आप ने मुझे १०० रुपये साड़ियां खरीदने के लिए दिये हैं। कितना अच्छा हो कि आप सपने की मधुरता न तोड़ें!"

"हां, हां, कौन तोड़ता है! जो रुपये मैं ने सपने में तुम्हें दिये हैं, उन्हें मुझे वापस मत करो।"

★

"मेरी तो किस्मत ही खराब है। मैं ऐसे बेवकूफ के पल्ले बांध दी गयी हूं जो न जुआ खेल सकता है, और न ही पी सकता है।"

"तब भी किस्मत खराब है? मैं तो समझती हूं कि पत्नियां ऐसे पति के लिए तरसती हैं।"

"तुम समझी नहीं, मेरा पति ये काम कर नहीं सकता, फिर भी करता है।"

★

"क्या तुम भी मुन्नू, खाना खाने से पहले भगवान की प्रार्थना करते हो?" चुन्नू ने कहा।

"नहीं, हम लोगों को इस की जरूरत नहीं पड़ती। मेरी मां खाना ठीक बना लेती है।"
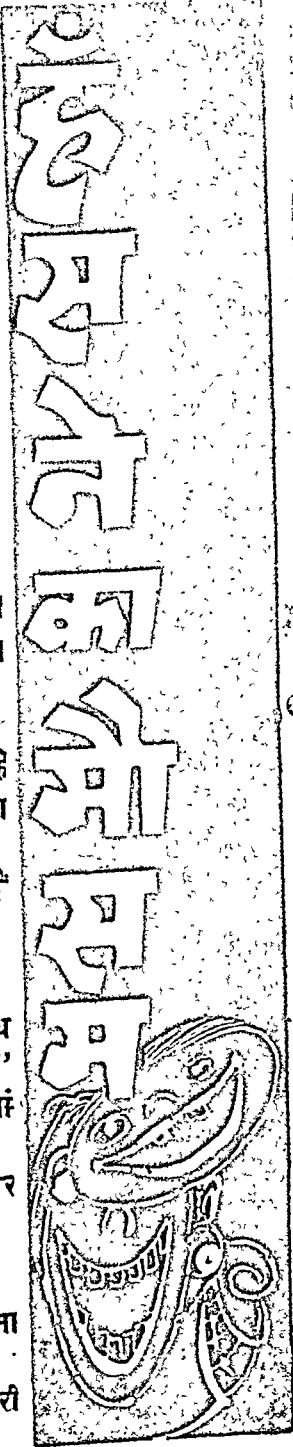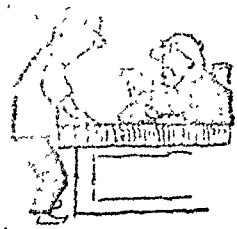
मैनेजर : देखो, तुम नये हो अतः जल्दी ही यहां के बारे में सब जानकारी ले लो ताकि ठीक से काम कर सको।

चपरासी : नहीं साहब, अब मैं जानकारी बिलकुल न प्राप्त करूंगा। पिछली नौकरी इसीलिए गयी क्योंकि मैं ने मैनेजर साहब के बारे में काफी जानकारी प्राप्त कर ली थी।

*

राजनीतिज्ञ महोदय अपने खयालों में डूबे चले जा रहे थे। रास्ते में उन्हें स्कूल के जमाने का सहपाठी मिला जिस ने उन्हें पहचान लिया। वह लपक कर राजनीतिज्ञ महोदय के पास आ कर बोला, "अरे नेताजी, लंबे समय बाद आप से मुलाकात हुई और वह भी भाग्य से। वैसे मैं आप के बारे में सुनता रहता हूं।"

राजनीतिज्ञ महोदय अपने विचारों में अभी भी डूबे थे। बोले, "सुनते होंगे, लेकिन साबित नहीं कर सकते।"

*

आगंतुक : क्या मैनेजर साहब नहीं हैं! अच्छा, तो यहां और कौन जिम्मेदार व्यक्ति है?

चपरासी : यदि आप का मतलब गलतियों से है, तो मैं हूं। यहां हर गलती के लिए मुझे ही जिम्मेदार ठहराया जाता है।

*

मरीज : लेकिन डाक्टर, मैं ने दो-तीन और डाक्टरों से अपनी जांच करायी थी, वे तो कुछ और कहते हैं।

डाक्टर : बकने दो। पोस्टमार्टम-रिपोर्ट से भी मेरी बात की ही पुष्टि होगी।

*

चिड़ियाघर में एक पिंजरे के सामने खड़े हो जानकारजी अपनी पत्नी से बोले, "देखो, ये शेर कितने शानदार हैं! हमारी ओर देख भी कितनी उत्सुकता से रहे हैं! मानो कुछ कहना चाहते हैं। क्या तुम बता सकती हो कि ये शेर क्या कहना चाहते हैं?"

"मैं बता सकता हूं," पास ही खड़े एक दर्शक ने कहा।

"आप!" जानकारजी ने चौंक कर कहा।

"जी हां! ये कहना चाहते हैं कि हम शेर नहीं, चीते हैं।"

शम्मी जानती थी कि खत होता तो पोस्टमैन ले कर आगे क्यों चला जाता, मगर उन का दिल रखने के लिए वह जरा देर फाटक में खड़ी हो कर आ गयी। इतनी देर में वड़ी बेगम को यकीन हो गया कि खत आया है। पंद्रह-बीस दिन हो गये, किसी-न-किसी का खत तो आया ही होगा !

उन्होंने ऐनक लगा कर हाथ फैलाया तो शम्मी बड़ी लज्जा से बोली, "कोई खत नहीं आया।"

"अच्छा," उन्होंने निराशा से ऐनक उतार दी और धम से पलंग पर लेट कर अपने मियां की प्रतीक्षा करने लगीं, जो डाक्टर के यहां गये थे। जवानी में कभी बच्चों ने उन्हें इतनी फुर-सत न दी कि मियां को एक कटोरा पानी पिला सकें, मगर बुढ़ापे में वे अब पल भर को कहीं चले जाते तो बड़ी बेगम नयी-नवेली दुलहनों की तरह व्या-कुल हो जाती थीं।

किन्तु आज अधिक प्रतीक्षा करने से पूर्व ही खांसने की आवाज आ गयी और हामिद साहब दवाओं और इंजेक्शनों के डब्बों से लदे अंदर आ गये। दुबले-पतले, झुकी कमर, हाथों में कंपकंपी, ब्लड-प्रेशर, दमा और हृदय के रोगी। दुनिया के मर्द जवानी में रंगरेलियां मनाते हैं और बुढ़ापे में शेरो-शायरी, इलेक्शनबाजी, क्लब या और कोई मनो-रंजन ढूंढ़ लेते हैं, मगर हामिद साहब की जवानी बीवी की फरमाइशों और बच्चों के तकाजों में बीती थी, इसलिए उन्हें न तो दोस्त बनाने की फुरसत मिली, न किसी और शौक को पालने की। अब वे विवशतया अपनी साठ बरस की बूढ़ी बीबी से प्रेम करने लगे थे। दोनों दिन-रात अपने-अपने पलंगों पर लेटे-लेटे एक-दूसरे की सेवा दवाओं से किये जाते और अपने बच्चों की बातचीत में खोये रहते।

आज भी आते ही हामिद साहब ने पूछा, "कोई खत आया ?"

बड़ी बेगम का जी न चाहा कि इन-कार करें, किन्तु मजबूरन 'न' कहना पड़ा।

सुनते ही उन्होंने दवाओं के डब्बे तिपाई पर रखे और जूते उतारे बिना पलंग पर लेट कर सुस्ताने लगे। "किसी से उधार ले कर बज्जू को रुपये भेजने ही पड़ेंगे। वह बहुत नाराज है, इसीलिए तो खत नहीं लिखता," उन्होंने करवट बदल कर उदास स्वर में कहा।

"खुदा जाने क्या जरूरत आ पड़ी होगी," बड़ी बेगम ने भी आंसू पी कर दीवार पर बैठी, सीटी बजाने वाली चिड़िया को देखा, जिस की नकल वाजिद बचपन में करता था।

"और तुम ने बड़ी दुलहन के लिए बाग के आम नहीं भिजवाये ?"

"आं-हां-आम तो भोला ने पारसल कर दिये थे, मगर सादिक मियां ने ट्रांजिस्टर की फरमाइश जो की थी ! दामाद की बात है। क्या टाल दोगे ?"

हामिद साहब उठ कर बैठ गये और बड़ी देर तक सोच-विचार के बाद बोले, "अब हम और इलाज नहीं करवायेंगे। तुम सादिक मियां की फरमाइश पूरी कर दो।"

"मैं ने राबआ के बच्चों के लिए नन्हे-नन्हे से कुरते और टोपियां सी

● जीलानी बानो

दुआ के बाद आंखें खोल कर वड़ बेगम ने देखा कि दिन ढल चुका है। साफ-सुथरे, सुनसान आंगन में नीरवता गूंज रही थी। फूलों की क्यारियों पर बहार छायी हुई थी और आंगन में पक्की जामुनों की वर्षा-सी हो रही थी।

सहसा उन्हें बहुत पुराने दिन याद आ गये जब उन के शरीर बच्चे कच्ची-पक्की जामुनें चबा डालते थे। फूलों की क्यारियों में कोई कली सुरक्षित न रहती थी और आंगन में हर वक्त कागज की कतरनें, फलों के छिलके और कीचड़ में सनी गेंदें लुढ़कती फिरती थीं।

फिर उन्होंने नमाज पढ़ने की चटाई लपेट कर करीमन मामा से पूछा, "दरवाजे पर कौन आया है ?" दिन में वे पचासों बार चौंक कर पूछा करती हैं, "कौन है ?" शुरू में तो करीमन और उस की लड़की शम्मी बड़ बेगम को पागल समझती थीं, किन्तु अब वे भी आदी हो गयीं।

आंगन में उन्होंने जो बड़ियां सुखाने को रखी थीं उन्हें कौवे ले-ले कर उड़ रहे थे। उन्होंने कई बार हाथ हिला-हिला कर कौवों को उड़ाना चाहा, किन्तु कौवे भी जैसे उस घर के बुड्ढे और असहाय लोगों से परिचित थे।

चटाई तय करके जब बड़ बेगम ने पानदान खोला तो कुछ समझ में न आया कि अब क्या करें। इसलिए उन्होंने खामखाह शम्मी को उठाया।

"शम्मी बिटिया, जरा देखना तो दरवाजे पर डाकिया है !"

लाटसाहब बनाने का बड़ा अरमान था।

लेकिन, लड़कियों की चिन्ताएं मारे डालती थीं। शफआ और रबआ तो खैर शक्ल की ही ऐसी थीं कि बाप डिप्टी-कमिश्नर न होते तब भी कोई न कोई राजे का बेटा, उड़ने वाले घोड़े पर बैठ कर उन के लिए आ ही जाता, मगर हादिया कमबख्त तो न शक्ल की थी न सीरत की। दिन भर बहिन-भाइयों से लड़ना-मरना और उन के खेल बिगाड़ देना उस का काम था। वह् बेगम कांप-कांप कर सोचतीं कि जाने मनहूस को पराये घर में चैन भी मिलेगा या उन्हीं के कूल्हे से लगी बैठी रहेगी! वैसे एक बात तो वे निश्चय किये बैठी थीं कि न तो कोई लड़का विदेश में नौकरी करे और न कोई लड़की दूर ब्याही जाये।

बच्चों की यह पलटन धीरे-धीरे अक्लमंद और उद्दंड होने लगी। शफआ ने बाप को बहस में कायल कर-के संगीत के स्कूल में प्रवेश ले लिया। हादिया को तसवीरें बनाने का शौक था और वह सदा दीवानी-सी सूरत बनाये जाने क्या चिड़िया-कांटे कागजों पर उतारा करती थी। माजिद और साजिद ने अब्बा के लगवाये हुए आम और अम-रूद के पेड़ कटवा फेंके और बाग में टेनिस का लान बन गया।

फिर सदा के रोगी वाहिद को जाने कौन-सी दवा रास आ गयी कि वह बोतल के भूत की तरह शायें-शायें बढ़ने लगा और एक दिन उस ने जिद की कि वह स्कूल की क्रिकेट टीम के साथ दिल्ली जायेगा। वह् बेगम तो सुनते ही विक्षिप्त हो गयीं, "ऐ है! दिल्ली कोई यहां है! अल्लाह मियां के पिछवाड़े . . ." हामिद साहब भी हिच-किचाये, मगर सोचा कि अभी से इतना घबराये तो भेज चुके इन्हें यूरोप! वाहिद का पांव घर से बाहर निकालना था कि सब ही को पर लग गये। आज कोई कश्मीर जा रहा है तो कल मद्रास। शफआ को भी केरल जाना पड़ा। पहली बार वाहिद घर से बाहर गया तो वह् बेगम ने दो-दिन तक खाना न खाया। दिन-रात रोती रहीं। मुसल्ला (नमाज पढ़ने की चटाई) बिछा कर बैठ गयीं, जैसे वाहिद दुश्मनों के चंगुल में घिरा हो। आठ दिन के बाद वह घर आया तो अम्मां की हालत देख कर उस ने खुद तोबा की कि अब कभी कहीं नहीं जायेगा, लेकिन जब राशिद डाक्टर बन गया तो उस के यूरोप जाने का दिन आ पहुंचा—एक न दो, इकट्ठे तीन बरस के लिए। वह् बेगम कब तक भूखी रहतीं, कब तक रातों को जागतीं! फिर छह और भी तो जिद्दी, कामचोर शैतान थे जो उन्हें एक मिनट का चैन न लेने देते थे। जवान बच्चों की मां भी कितनी मूर्ख और धीरज वाली होती है। बच्चों में ज्यों-त्यों वृद्धि आती गयी। वे साबित करते गये कि उन की मां का हर काम मूर्खता का होता है। खास तौर से लड़कियों को तो मां की हर बात हास्यास्पद लगती थी। वे लड़कियों की पसंद का कपड़ा पहनने लगीं। उन की पसन्द का घर में खाना पकता, लेकिन जिस दिन माजिद ने अब्बा को ज्यादा हिस्सा लेने पर टोका तो वह् बेगम के दिल में चांदनी-सी दमक उठी।

हैं। वे भी इसी के साथ भेज दूंगी।"
कुरतों और टोपियों के जिक्र ही से उन के चेहरे पर उजाला-सा फैल गया।

बहू बेगम तो उन औरतों में से थीं जो शादी के दिन से बच्चों की प्रतीक्षा शुरू कर देती हैं। उन्होंने पहली बार अपने दूल्हा की शक्ल देखी तो खुशी के मारे खिल उठीं। हाय बच्चे कितने खूबसूरत होंगे—बाप की तरह सुर्ख-सफेद रंग, यह बड़ी-बड़ी आंखें! उन का बस चलता तो वे दरजनों बच्चे पैदा कर डालतीं, मगर जाने क्या खराबी हुई कि वे सातवें बच्चे के बाद ही ठप्प हो गयीं।

दिन-रात मुरगी की तरह सब को पोटे तले दबाये रखतीं। उन बच्चों के लिए उन्हें कितने ही कठिन पहाड़ टाना पड़े। सब से पहले तो उन्हें एक बड़ा-सा खूबसूरत घर बनाने का चाव था। हामिद साहब के बाप-दादा ने तेरे-मेरे किराये के घरों में जिन्दगी गुजारी थी। उन्होंने तो बेटे को ग्रेजुएट बना कर ही अपनी जिन्दगी का कारनामा पूरा कर दिया था, किन्तु बहू बेगम बच्चों को खीरे-ककड़ियों की तरह बढ़ते देखतीं तो उन्हें नवासों-पोतों को पालने की फिक्र होने लगी। बहुओं को लड़ते देखने और दामादों के मिजाज सहने के लिए एक बड़े-से घर की जरूरत थी। उस की खातिर वे मियां से छिपा-छिपा कर आने-पाइयां जोड़ा करतीं। चार लड़कों को विलायत भेजने और तीन पढ़े-लिखे दामादों का मोल करना कोई हंसी-खेल तो न था। अगर वे मियां की थोड़ी-सी आय पर संतोष कर के बैठ रहतीं तो शायद उन के मियां भी अपनी शेरो-शायरी में खोये रहते, किन्तु बीवी के तकाजों से उन्हें उन्नति की सीढ़ियां तय ही नहीं बल्कि फलांगना पड़ीं और वे डिप्टी कमिश्नर तक बन गये। इस पर भी बहू बेगम का पैसे-पैसे पर दम निकलता था। वे एक बड़ी-सी कोठी बनाने का अरमान लिये बैठी थीं—हाय! कैसी कोठी थी कोतवाल साहब की! चारों लड़कों के अलग-अलग हिस्से, बेटे-दामादों के लिए अलग कमरे, नवासों-पोतों के लिए बड़ा-सा बाग और नौकरों के लिए क्वार्टर।

बड़ा लड़का राशिद खूबसूरत और तेजमिजाज था। बहू बेगम दिल ही दिल में सोचा करतीं कि यह जरूर विलायत से मेम लायेगा। इसीलिए उन्होंने राशिद वाला हिस्सा बिलकुल अंगरेजी ढंग का बनवाया था। मंझला माजिद हर वक्त मां के कूल्हे से लगा रहता था। जरा देर के लिए वे कहीं जातीं तो रो-रो कर जान निकाल डालता, इसीलिए उन्होंने माजिद के बीवी-बच्चों को भी अपने साथ रखने का इरादा कर लिया था। साजिद पढ़ाई का दीवाना था। हामिद साहब का खयाल था कि वह प्रोफेसर बनेगा। तभी तो बहू बेगम ने उस के कमरे में बहुतरी अलमारियां और शेल्फ बनवाये थे। लेकिन वाहिद सदा का रोगी था—न पढ़ने-लिखने का शौकीन, न खेलने-कूदने का। बारहों महीने वह किसी न किसी रोग में ग्रस्त हो पलंग पर लोटे-लोटे कराहता रहता था। बहू बेगम सोचतीं कि जाने यह निट-नया कुछ पढ़ेगा भी या नहीं। वे स्वयं बहुत कोमल थीं, इसीलिए उन्हें बच्चों को

वड़ी बेगम का संसार घर के भीतर था, किन्तु संसार की लंबाई-चौड़ाई का अनुमान उन्हें उस दिन हुआ जब शाफ़आ को उन के देवर अपने बेटे के लिए पाकिस्तान ले गये। वे तो काले कोसों अपनी बेटी को कभी न ब्याहतीं, मगर आसमानी निकाह को कौन रोक सकता है! शाफ़आ चली गयी तो वड़ी बेगम ने रो-रो कर ऐनक लगा ली। तोबा की, अब दूसरी लड़कियों को गैर-महल्ले में भी न देंगी। शाफ़आ ने भी पहले तो रो-रो कर हर रोज अम्मां को पत्र लिखे, लेकिन पहला बच्चा हुआ तो वह अम्मां को सूचित करना ही भूल गयी। दो बरस तक राशिद को भी अम्मां के पकाये हुए सालन और अब्बा की सूरत बहुत याद आयी और फिर एक दिन बहुत उदास हो कर उस ने वहीं घर बसा लिया।

इस समाचार ने वड़ी बेगम के दिल पर पत्थर दे मारा और हामिद साहब का ब्लडप्रेशर गिरने लगा। बचपन में उन्होंने जाने कितनी बार राशिद के गुलाबी गाल चूम कर एलान किया था कि 'मेरा बेटा तो विलायत की मेम लायेगा,' मगर जब वह दिन आया तो वड़ी बेगम को दिल का दौरा पड़ गया।

बड़े की देखा-देखी छोटे भाइयों के लिए भी कहीं न कहीं जाना जरूरी हो गया, मगर हादिया को उन्होंने सच-मुच पड़ोस में दिया। लड़का बचपन से देखा-भाला, फिर इतना विद्वान — किन्तु विदा के समय वड़ी बेगम यों कलेजा फाड़ कर रोयीं जैसे बेटी सात समुद्र पार जा रही हो। कहते हैं कि बुरी बात मुंह से निकालो तो हो कर रहती है—सो वही हुआ। हादिया के दूल्हे को बैठे-बिठाये जाने क्या सनक उठी कि वह अमरीका जाने की कहने लगा। सब इस बात को मजाक ही में टालते रहे और वह अमरीका चला गया। फिर वह दिन भी आ गया कि वड़ी बेगम यों रो रही थीं जैसे हादिया समुद्र पार जा रही हो।

इन बातों को दस वर्ष बीत गये। वड़ी बेगम ने चिड़ियां पाली थीं, जो मौका मिलते ही उड़ गयीं। वे सब कभी-कभार मेहमानों की तरह दो-चार दिन के लिए आ जाते थे। जीवन की तेज-रफ्तारी में उन्हें इतना अव-काश न मिलता था कि अपने देश आ कर बूढ़े मां-बाप का दिल बहलायें।

अब इस भायं-भायं करते घर में वे अकेली रह गयीं। उन का दिल तो सिर्फ अपने मियां की तनहाई पर कुढ़ता था, जो तनहाई से घबरा कर बुझते जा रहे थे। कोई इतना भी तो न था कि थर्मामीटर देख कर उन का टेम्प्रेचर ले सके। आये-गये की खुशामद करनी पड़ती। कभी-कभार कोई वहू किसी बच्चे के जन्म-दिन के अवसर का फोटो भेज देती कि दादा-दादी कोई तोफा भेज देंगे। बस फिर दोनों बुढ़िया-बुड्ढे को हफ्तों का मनोविनोद मिल जाता। हर आने वाले को वे फोटो दिखाते। प्यार करते-करते वड़ी बेगम तसवीर को पीक से रंग देती थीं।

वे दोनों अपने-अपने पलंगों पर लेटे ऊंघ रहे थे। अंधेरा बढ़ता जा रहा था, मगर कौन उठ कर रोशनी करता! बाहर सड़क पर शाम का हंगामा बढ़ता जा
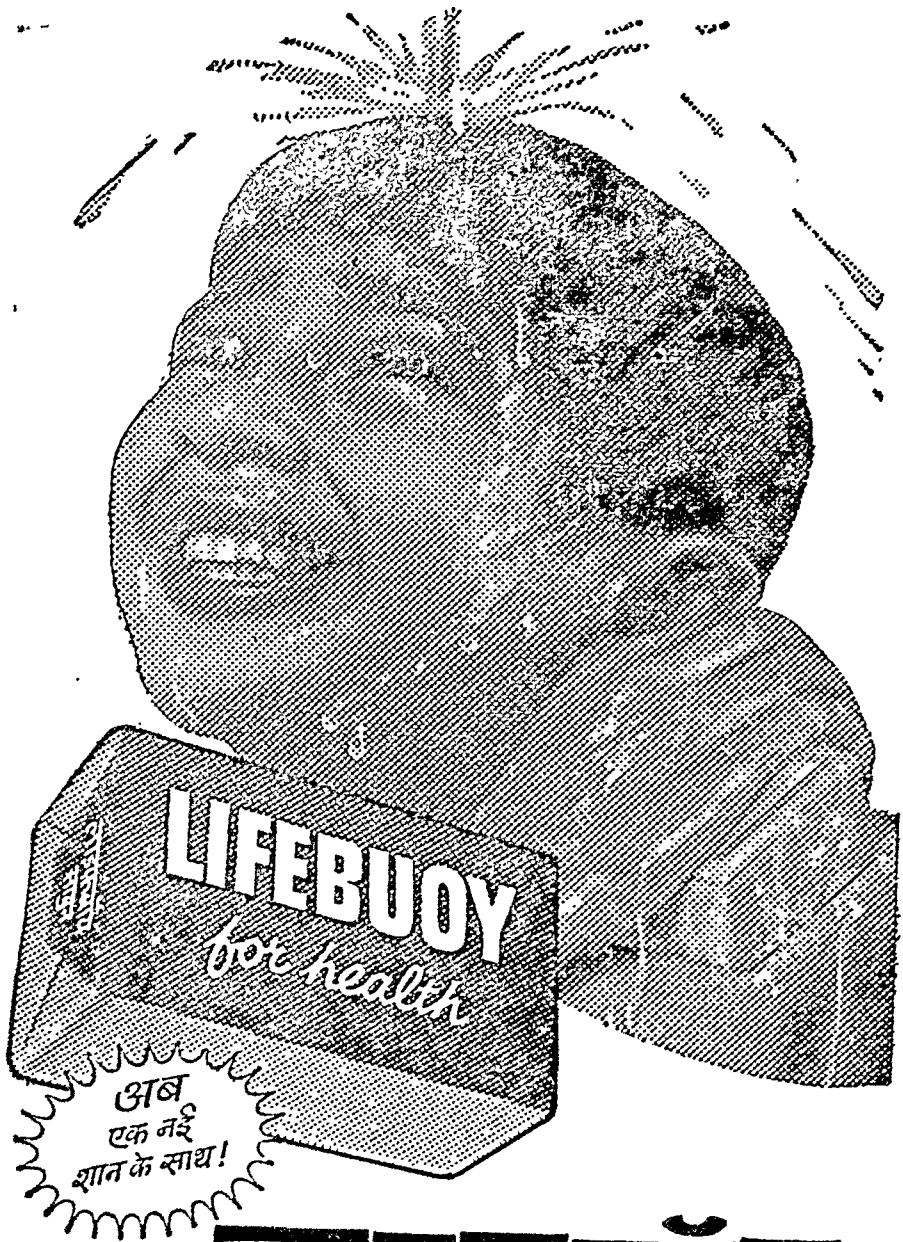
लाइफ़बॉय

है जहाँ

तंदुरुस्ती है वहाँ

L 37-77 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

एक अनोखा प्रयोग

● मैगनस

न्यू जरसी की कार्संटारफीन वेट्टी नामक महिला की गरदन में टी. बी. का एक फोड़ा हो गया। भयंकर दर्द उठता। आपरेशन से फोड़े को निकाल कर दर्द तो समाप्त कर दिया गया, लेकिन अभी एक सप्ताह भी न बीता था कि वेट्टी अंधी हो गयी।

देखने का काम दिमाग का 'विजुअल कारटेक्स' करता है। आंखें देखती नहीं है बल्कि देखने की साधन मात्र है। आंखों से विजुअल कारटेक्स तक असंख्य संवेद नसों का बना हुआ एक 'रास्ता' जाता है। इस रास्ते को दृष्टि-पुल नाम दिया जा सकता है। उस आपरेशन से वट्टी की गरदन में जो आघात पहुंचा था, उस ने इस दृष्टि-पुल को घायल कर दिया। डाक्टरों ने पेन्सिल जितनी मोटी रोशनी की किरणें वेट्टी की आंखों में डालीं लेकिन पुतलियों में किसी भी तरह की प्रतिक्रिया न हो सकी। आंखों के परदे कागज की तरह सफेद और चपटे हो गये थे। यह इस का प्रमाण था कि वेट्टी की अंदरूनी नसें मृत हो गयीं।

न्यू जरसी के पास ईस्ट आरेंज में डाक्टर जॉन वट्टन रहते थे। जब उन्हें वेट्टी के संबंध में पता चला तो अंधेपन से युद्ध करने की अदम्य आकांक्षा उन के भीतर जग उठी। वेट्टी का केस उन के पास लाया गया। उन्हें यह देख कर ज्यादा निराशा तो नहीं हुई कि वेट्टी को रोशनी का नाम मात्र का भी संवेदन नहीं होता है, क्योंकि उन्होंने सुनी हुई बातों के आधार पर ऐसी ही आशा की थी, लेकिन उन्हें अंदाजा हो गया कि मामला बहुत उलझा हुआ है।
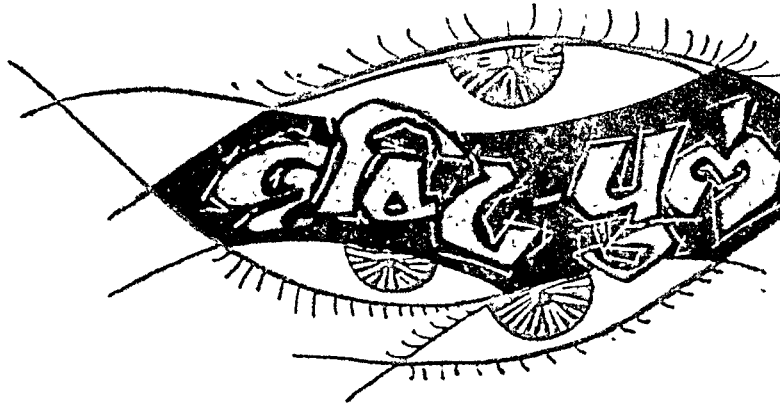
डाक्टर बट्टन के लिए यह भी एक बड़ी समस्या थी कि मानव-मस्तिष्क से संबंधित जानकारियां अधिक मात्रा में सुलभ नहीं थीं। पशुओं का मस्तिष्क किस तरह काम करता है, इसी आधार पर मानव-मस्तिष्क की कार्य-प्रणाली के

रहा था और इमामन ने हांडिया जला डाली थी। गोभी जलने की तेज बू फैली हुई थी।

इतने में अजान की आवाज आयी और दोनों कलमा पढ़ते हुए उठ बैठे।

वह बेगम नमाज की चौकी पर बैठी वुजू कर रही थीं कि उन की भतीजी रजिया आ गयी। अब उन का ज्यादा वक्त इन भतीजियों, भांजियों की समस्याएं सुलझाने में गुजरता था, मगर रजिया आज आयी तो सदा की तरह कहकहा लगाने के बजाय आंसुओं में डूबी हुई थी। आते ही उन से लिपट कर रोना शुरू कर दिया। मालूम हुआ कि रजिया के मियां ने दूसरा निकाह कर लिया है, क्योंकि रजिया के बच्चे नहीं थे।

यह बात सुन कर वह बेगम ने संतोष की दीर्घ सांस ली। जैसे सातों बच्चे एकसाथ उन के पेट में च्यांऊं-च्यांऊं कर रहे हों। फिर उन्होंने अपने आंसू पोंछ कर रजिया को सांत्वना दी, "ऐ, जाने निगोड़े की नीयत को क्या हो गया! भला तुम से ज्यादा खूबसूरत और मुहब्बत वाली कहां मिलेगी हरामखोर को . . ."

"मगर फूफी, उन का भी क्या कसूर है!" रजिया ने सिसकियां रोक कर कहा, "मैं बांझ हूं। खुदा ने मेरे नसीब ही खोटे कर दिये हैं तो वे क्यों औलाद के लिए तरसें, घर को आबाद करने वाला कोई तो हो। बुढ़ापे में तो इनसान को सिर्फ औलाद ही को सहारा होता है . . ."

"बांझ!" वह बेगम के सीने पर शब्द मूसल बन कर गिरा और रग-रग को कुचल गया। उन्होंने अपने भांय-भांय करते खाली घर को देखा और फिर हामिद साहब को, जो खांसते-खांसते, डगमगाते कदमों से उठ कर पानी पी रहे थे।

अचानक वह बेगम को ऐसा लगा कि वे खुद बांझ हैं। उन की कोख से आज तक कोई कोंपल नहीं फूटी। उन्होंने उस अंधेरे घर में रोशनी करने वाला कोई बच्चा पैदा नहीं किया। फिर अपने दुर्भाग्य पर वे रजिया से लिपट कर यों रोयीं जैसे आंसुओं में डूब मरेंगी।

"रजिया बेटी, मेरी गुड़िया, सब्र कर . . ." वह दिल ही दिल में बोलीं, " 'मां' को देख, वह तो बांझ से बदतर है . . . देख, देख . . ."

"सुबह जब मैं दफ्तर जा रहा था, मैं ने देखा कि मेरी बतख आप के घर में घुस रही थी। मैं बहुत जल्दी में था अतः बिना रुके चला गया। उस ने आप का घर गंदा तो नहीं किया?"

"नहीं जी, कोई बात नहीं। मेरा कुत्ता उसे खा गया।"

"खा भी जाने दीजिये। अभी जब मैं लौट रहा था, आप का कुत्ता मेरी कार से दब गया।"

जाये। बाल साफ किया हुआ हिस्सा नोवोकेन के प्रयोग से पूर्णतया सुन्न हो चुका था। डाक्टर पटनैम ने अपनी मार्किंग की गणनाओं के आधार पर एक जगह निश्चित की, जहां खोपड़ी की हड्डी में छेद किया जाना था।

डाक्टर ने वेट्टी की खोपड़ी के पीछे निश्चित स्थान पर सावधानी के साथ एक छोटा-सा छेद बनाया। इस के बाद तीन और जगहों का चुनाव करके वहां भी छेद किये गये। चारों छेदों में से एक-एक हाइपोडरमिक सुई मस्तिष्क के अंदर पहुंचायी गयी। ये सुइयां पोली थीं। स्टेनलेस स्टील के कुछ तार, जो मानवीय बाल से भी आधी मोटाई के थे, सुइयों में डाल कर मस्तिष्क में उतार दिये गये। सभी तार इन्सुलेटेड थे, सिर्फ उन के छोरों का हिस्सा जरा-सा खोल दिया गया था। जब ये तार, जिन की लम्बाई चार इंच थी, दो इंच की गहराई तक मस्तिष्क में उतर गये तो उन हाइपोडरमिक सुइयों को बाहर निकाल लिया गया। चारों तार मस्तिष्क के कोषों में फंस कर वहीं रह गये।

यह आपरेशन की पहली सीढ़ी थी। दो दिनों तक कुछ प्रारंभिक प्रयोग किये गये जिन में सफलताएं मिलीं। दोनों डाक्टरों ने उन चारों स्टेनलेस स्टील के तारों को एक काले रंग के छोटे डब्बे से संबंधित कर दिया। डब्बे और वेट्टी के सिर में काफी दूरी थी। इस डब्बे में से कुछ और भी तार निकले हुए थे जो कैमरे की फ्लैश लाइट-जैसे दिखायी पड़ते एक यंत्र से सम्बन्धित थे। काला डब्बा एक कन्वर्टर था और फ्लैश-लाइट-नुमा यंत्र कैडमियम सल्फाइड का फोटो इलेक्ट्रिक सेल था।

डाक्टर पटनैम ने वेट्टी को प्रयोग के मानसिक तनाव से छुटकारा दिलाने के लिए उस से इधर-उधर की बातचीत प्रारम्भ की। एकाएक उन्होंने पूछा, "जानती हो, फोटो सेल क्या होता है ?"

"नाम तो काफी सुना है, लेकिन ज्यादा जानकारी नहीं है। शायद दरवाजों में फोटो सेल ही लगे होते हैं जो करीब जाने पर अपने आप खुल जाते हैं।"

"हां, लेकिन फोटो सेल को हमें यहां किसी और ही तरह पहचानना होगा।"

"किस तरह ?"

"अच्छे फोटोग्राफर फोटो सेल का
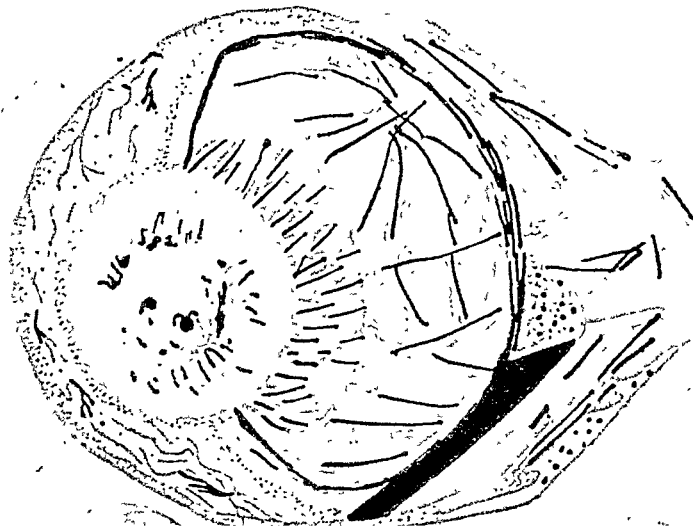
बारे में अनेक अनुमान लगा कर डाक्टर अपना काम चला लेते थे। डाक्टर बट्टन को मालूम था कि वेट्टी का केस ऐसे अनुमानों से सुलझने का नहीं। उन्होंने अपनी जेब से हजारों डालर खर्च करके अनेक बड़े-बड़े अस्पतालों का दौरा किया। पेरिस, ज्यूरिच, मिनिसोटा, राचेस्टर, बर्न इत्यादि में किये जाने वाले मस्तिष्क के आपरेशन पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो चुके थे। डाक्टर बट्टन ने सभी जगह जा कर मष्तिस्क के आपरेशनों का निरीक्षण किया। उन्होंने इस संयोग पर अपनी आशा टिका रखी थी कि शायद किसी आपरेशन से उन्हें कोई ऐसा सूत्र मिल जाये जो वेट्टी के दृष्टि-पुल को ठीक कर सके। अक्तूबर १९५७ में उन्होंने एक ऐसा उपाय ढूंढ़ निकाला जिस से थोड़ी-बहुत आशा बंधती थी।

जो उपाय प्राप्त हुआ वह सिर्फ कागजों पर था। इस से पहले कि उसे वेट्टी पर आजमाया जाता, डाक्टर बट्टन ने सोचा कि लास एंजेल्स के प्रसिद्ध डाक्टर ट्रेसी पटनैम की सहायता ली जाये। डाक्टर पटनैम को औषधि-विज्ञान और आपरेशन कला की अनेक उपाधियां प्राप्त थीं। अनेक बार विभिन्न संस्थाओं ने उन्हें सम्मानित किया था। डाक्टर बट्टन ने एक विस्तृत पत्र लिख कर अपनी खोज की संभावनाओं और वेट्टी के उलझे हुए केस का पूरा वर्णन किया। उन्होंने चाहा कि डाक्टर पटनैम इस आपरेशन में अपनी पूरी मदद दें।

शीघ्र उत्तर आ गया — डाक्टर पटनैम को अपना समय नष्ट करने की कोई जरूरत दिखायी नहीं पड़ी थी। उन्होंने साफ लिखा कि दृष्टि-पुल खराब हो जाने और पंद्रह वर्ष से अधिक का समय बीत चुकने के बाद ऐसे उलझे हुए आपरेशन की सफलता की आशा करना बेवकूफी ही होगी।

डाक्टर बट्टन ने तुरंत ही टेलीफोन का डायल घुमाया और सब से पहले जो हवाईजहाज लास एंजेल्स के लिए उड़ान भरने वाला था, उस में अपनी सीट रिजर्व करा ली। डाक्टर पटनैम ने कभी आशा न की थी कि डाक्टर बट्टन इतनी तेजी से यहां आ पहुंचेंगे।

डाक्टर पटनैम को उन का अदम्य उत्साह देख कर आश्चर्य ही हुआ क्यों कि उन्हें पूरा विश्वास था कि ऐसा आपरेशन कदापि सफल नहीं हो सकता। फिर भी डाक्टर वेट्टी ने डाक्टर पटनैम को उस आपरेशन में, प्रयोग के लिए ही सही, सहयोग देने के लिए राजी कर लिया।

वेट्टी को लास एंजेल्स बुलाया गया। वह अक्तूबर, १९५७ की २९ वीं तारीख थी। वेट्टी के सिर के पिछले सारे बाल काट दिये गये। वह आपरेशन की मेज पर पीठ के बल लेटी हुई थी। डाक्टर पटनैम ने सिर के साफ हुए भाग में हड्डियों के उभारों के आधार पर उस हिस्से को अंकित किया जहां विजुअल कार्टेक्स था। दोनों डाक्टरों में इस बात पर कोई मतभेद नहीं था कि आहत दृष्टि-पुल को ठीक करने का प्रयास असफल ही रहेगा। वे चाहते थे कि विजुअल कार्टेक्स को ही सीधे-सीधे (डायरेक्ट) 'छेड़' कर दृष्टि का संवेद पैदा किया

इस्तेमाल करते हैं। फोटो सेल उन के लाइट मीटर में लगे होते हैं। मीटर से उन्हें पता चलता है कि रोशनी किस माप की है और उस में अच्छा फोटो खींचने के लिए शटर को किस गति से क्लिक करना चाहिये। कैमरे का लेन्स कितना खोलना चाहिये, इस का भी अन्दाजा मीटर से लगता है। फोटो सेल रोशनी के प्रति बहुत संवेदनशील होता है।"

डाक्टर ने वेट्टी के हाथ में एक छोटी-सी चीज थमा दी और कहा, "यह सेल है। इसे अच्छी तरह पकड़े रहो। अभी मैं रोशनी जलाऊंगा-बुझाऊंगा। अगर तुम्हें जलने-बुझने का पता चले तो मुझे बता देना।"

जिस स्विच से बल्ब जलाना या बुझाना था, उस को पहले से ही ऐसा बना लिया गया था कि टिच की जरा भी आवाज न हो। चालीस वाट का एक बल्ब वेट्टी के हाथ के फोटो सेल के भीतर रखा गया था। ऐसी व्यवस्था थी कि बल्ब जलने से पैदा होने वाली गरमी का वेट्टी के हाथ को जरा भी पता न चले। वेट्टी का चेहरा तन आया।

एकाएक उसे रोशनी का हल्का-सा आभास हुआ। दृष्टि-पुल खराब होने के बावजूद पन्द्रह वर्ष बाद अन्धकार की कालिमा में रोशनी का हल्का-सा आभास भी उसे उत्तेजित करने लगा। तुरन्त वह किलक उठी, "डाक्टर! डाक्टर!! अभी आप ने रोशनी जलायी। ठीक है न?"

तुरन्त उन्होंने स्विच बंद कर दिया।

"बुझ गयी! रोशनी बुझ गयी।" वेट्टी ने उसी क्षण वैसे ही खनकते स्वर में कहा।

अब उस बल्ब को वेट्टी के हाथ के फोटो सेल में से निकाल कर कमरे में अलग-अलग जगहों पर जलाया गया। वेट्टी अपने सेल को हवा में अन्दाजे से इधर-उधर घुमाती रही। ज्यों ही सेल बल्ब की दिशा में आता, वेट्टी को रोशनी का हल्का संवेद होता। तुरन्त वह कह उठती, "यह रही रोशनी।"

डाक्टर पटनैम ने जा कर उस की पीठ थपथपायी और कहा, "हमारा आज का प्रयोग पूर्णतया सफल रहा है। तुम्हारे विजुअल कारटैक्स के कोष अभी मरे नहीं हैं। उन को दृष्टिसंवेद का अभ्यास दिलाने पर हमें भी सफलताएं मिल सकती हैं।"

दूसरे ही दिन अमरीका के सभी अखबारों ने वेट्टी के हाथ में रखी गयी 'फ्लैश सेल आंख' का हवाला प्रकाशित किया। आंखों के आपरेशन के क्षेत्र में सनसनी फैल गयी। साथ में डाक्टर बट्टन का वक्तव्य भी छापा गया था, "मस्तिष्क में उतारे गये इलेक्ट्रोड के तार दृष्टि का कितना संवेद पैदा कर सकते हैं, इस बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी हम ने अन्तिम प्रयोग की दिशा में एक कदम मात्र उठाया है।"

एग्नीज स्टोन नामक एक और लड़की पिछले तीस वर्षों से अन्धी थी। उस ने आगामी प्रयोगों के लिए अपनी सेवाएं प्रस्तुत कीं। हवाईजहाज से उसे लास एंजेल्स पहुंचाया गया। वहीं आपरेशन
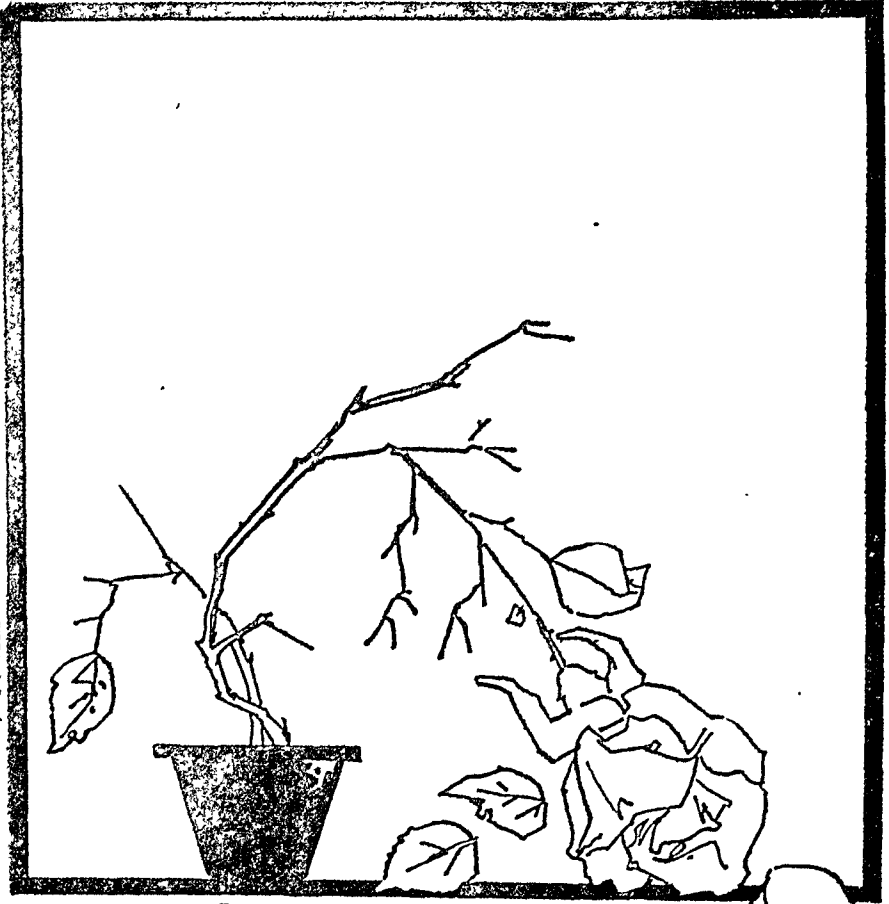
हास्य-व्यंग्य

[illegible] आते हैं मुसलचंद

अविनाश सरमंडल

आप ने वह मुहावरा तो सुना ही होगा 'दाल-भात में मूसलचंद' अर्थात ऐसा अवांछनीय व्यक्ति जो कहीं भी घुस कर दूसरों का मजा किर-किरा कर दे।

हमारे एक मित्र महोदय को यह मुहावरा फूटी आंखों नहीं सुहाता था। वे एक दिन चिढ़ कर बोले, "यह भी कोई मुहावरा है? बिलकुल बेमानी बकवास! परंपरा से इस का अर्थ प्रचलित न हो तो कोई मतलब हो नहीं सकता। कोई कहे 'कबाब में हड्डी' तो बात फौरन समझ में आती है। कबाब खाने वाले अच्छी तरह जानते हैं कि बीच में हड्डी का आ जाना कितना अखरता है। एक और मुहावरा है 'खीर में मूली'। स्पष्ट है कि मीठी खीर खाते हुए किसी व्यक्ति के मुंह में अनायास ही आ कर मूली स्वाद बिगाड़े तो खाने वाला चिढ़ेगा ही। बल्कि चिढ़ कर कह सकता है कि मूली की जगह सब्जी-रायते में है, खीर में इस का क्या काम? अगर नया मुहावरा बनाना ही था तो 'दाल-भात में कंकड़' कह सकते थे। यह भी कोई तुक है कि दाल-भात में मूसल ले आये! दाल-भात में मूसल का भला क्या काम?"

"मूसल का काम रहता है, तभी तो वह आता है और दाल-भात में मूसल आता है तभी तो मुहावरा बना है," जवाब दिया पोथी पढ़ती हुई दादी ने। उन के स्वाध्याय में मेरे मित्र का गरमागरम वक्तव्य इस सीमा तक बाधक बना हुआ था कि उन्हें हस्त-क्षेप करना ही पड़ा।

और प्रयोग उस के साथ हुए जो वेट्टी के साथ किये गये थे। लेकिन बहुत कम सफलता मिली।

इस का एक ठोस कारण था। वेट्टी को पन्द्रह वर्ष गुजर जाने के बावजूद याद था कि रोशनी का संवेद कैसा होता है। इसीलिए उस को अपने विजुअल कारटैक्स का संवेद पहचानने में दिक्कत न हुई। विपरीत इस के स्टोन तीस वर्षों में पूर्णतया भूल चुकी थी कि दृष्टि का संवेद कैसा होता है। विजुअल कारटैक्स का अभ्यास इतना छूट चुका कि अधिक सफलता न मिल सकी। हां, इतना अवश्य सिद्ध हुआ कि तीस वर्ष में भी विजुअल कारटैक्स के कोषों में रोशनी के संवेद की क्षमताएं थोड़ी-बहुत पैदा जरूर की जा सकती हैं।

वेट्टी को डाक्टर बट्टन अपने साथ ले कर न्यू जरसी आ गये। यहां उन्होंने अपनी इस मरीज पर अकेले ही आगे प्रयोग जारी रखे। आवश्यक होने पर डाक्टर पटनैम से सलाह मशविरा कर लिया करते। एक बार डाक्टर बट्टन ने वेट्टी के विजुअल कारटैक्स की हड्डी में एक नया छेद किया। इस बार उन्होंने मस्तिष्क में एक तार की जगह अत्यन्त सूक्ष्म (माइक्रोस्कोपिक) तारों का गुच्छा उतारा। इस प्रयोग में उन्हें एक टेलिविजन इंजीनियर से भी सहायता मिल रही थी। इंजीनियर ने एक बहुत ही संवेदनशील और उलझनपूर्ण बनावट का फोटो इलेक्ट्रिक सेल तैयार किया था। तारों के उस गुच्छे को इसी फोटो सेल से संबंधित कर दिया गया। इस के बाद तरह-तरह की रोशनियां जला-बुझा कर वेट्टी को उन की पहचान करने के लिए कहा गया।

एक और सफलता मिली।

पहले वेट्टी को सिर्फ रोशनी के जलने और बुझने का पता चलता था, लेकिन इस बार उस ने पहचाना कि रोशनी तेज है या धीमी।

डाक्टर बट्टन के पास उन्हीं दिनों चार्ल्स नामक एक नीग्रो आया। वह अन्धा था। डाक्टर ने उस के कन्धे से एक नया ही यन्त्र लटका कर पीठ पर अच्छी तरह बांध दिया। उस के मस्तिष्क में इतने सूक्ष्म और संख्या में इतने अधिक तार उतारे जा चुके थे कि वैसा प्रयोग वेट्टी के साथ भी नहीं किया गया था। सभी तारों को पीठ पर बंधे यंत्र से संबंधित कर दिया गया। फोटो सेल नीग्रो अपने हाथ में पकड़े हुए था। कन्वर्टर भी नीग्रो ने अपने शरीर पर ही धारण किया था।

इस बार अद्भुत सफलता मिली। नीग्रो ने न केवल रोशनी के कम या ज्यादा होने की पहचान की बल्कि उस ने सफेद और पीले रंग को भी पहचान लिया। उस ने अलग-अलग पैबन्दों में अन्धकार में लटके रोशनी के चकत्तों को देखा। एक और प्रयोग में नीग्रो ने रोशनी का पीछा भी किया।

"यह अंतिम सफलता नहीं है। हम तो कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ना चाहते हैं जिस से मस्तिष्क में उतारे गये इलेक्ट्रोड तारों के माध्यम से टेलिविजन-जैसे किसी उपकरण द्वारा, अंधों को ठीक उसी तरह देखने की क्षमता दी जा सके, जिस तरह हम देखते हैं"—डाक्टर बट्टन का यही कहना है।

धर्म की धरोहर

सुमन वात्स्यायन

घटना शायद सन १९५२ के जाड़े की है। पूर्वी बंगाल के पार्वत्य चटग्राम की मगरानी तीर्थ-यात्रा करने निकली थीं। पूजन-अर्चन एवं मार्ग-दर्शन की सुविधा के लिए उन के साथ किसी बौद्ध भिक्षु का रहना आवश्यक था। रानी ने कुशीनगर (जहां भगवान बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था) के महास्थविर श्री चन्द्रमणि से किसी 'विद्वान' भिक्षु को साथ कर देने का आग्रह किया था। मैं भी उन दिनों बौद्ध सन्यासी के रूप में कुशीनगर में ही रहता था। कुछ विचार-विनिमय के पश्चात मगरानी के साथ तीर्थ-यात्रा में जाने के लिए मुझे भेजा गया।

मगरानी का नाम था नोनुमा और वे अत्यंत श्रद्धालु बौद्ध थीं। मग लोग बर्मी जाति के हैं और बर्मा के विस्तार के समय वे सीमा पार कर भारत में आ बसे थे। पहले विभिन्न बर्मी जातियों के पूर्वी सीमांत प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। अंगरेजी शासन-काल में ये राज्य जागीर मात्र रह गये और इन्हें 'प्रिन्सपैलिटी' कहा जाने लगा। राजा मर चुके थे और राजकुमार छोटे थे, इसलिए रानी ही राज्य-कार्य करती थीं। रानी नोनुमा विदुषी

"मैं आप का मतलब समझा नहीं मांजी," मित्र की जिज्ञासा जाग्रत हो चुकी थी। पोथी बंद कर दादी हमारी ओर मुखातिब हुईं। "अब तो जमाना ही बदल गया है परंतु इस छोटे-से मुहावरे के पीछे एक विशिष्ट सामाजिक परंपरा छिपी है," अपने जमाने का जिक्र छिड़ने से उन के चेहरे पर एक अनोखी चमक आ गयी थी।

"हमारे जमाने में छोटी-छोटी बच्चियां व्याह दी जाती थीं। लड़कियों का व्याह होते ही उन्हें ससुराल नहीं भेजा जाता था, बल्कि वे नैहर में ही रहती थीं। सयानी होने पर उन का गौना होता था, तभी वे ससुराल जाती थीं। सगाई-शादी के बाद और गौने के बीच के समय में संपन्न परिवार वाले अपनी लाड़ली बहू के लिए गहने, कपड़े, फल, मेवे, तीज-त्योहार की मिठाइयां आदि भेजते रहते थे। इस प्रकार लड़की वाले के घर मेहमानों का आवागमन बना रहता था। जैसा आजकल के लोग समझते हैं कि ये बाल-विवाह विदेशी आक्रमणकारियों के भय से होते थे, गलत है। मध्यम वर्ग के सामाजिक आचार के वे अभिन्न अंग थे। ये विवाह कूटनीतिक संधि-विग्रहों-जैसे होते थे। व्याही-संबंधियों के आवागमन आधुनिक शिष्ट-मंडलों की सद्भावना यात्रा-जैसे ही थे। किसी परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा उस के संबंधियों की हैसियत तथा उन के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर थी।

"व्याही-संबंधी के आने पर आम तौर से काफी बड़े भोज दिये जाते थे। ऐसे अवसरों पर मेहमान अपने साथ बड़े-बड़े भोजनभट्ट लाते थे, जो मेजबान का चौका ही साफ कर देते थे। यदि खाने-खिलाने की प्रतियोगिता में मेजबान हार जाता तो उसे अपनी पराजय का प्रतीक मूसल ले कर मेहमानों के सामने से निकलना पड़ता था। इस का तात्पर्य शायद यह था कि सारा कुटा-पिसा अनाज अब समाप्त हो चुका है, अब आप के लिए मूसल से नया धान कूट कर लाते हैं। चतुर मेहमान मूसल देखते ही हाथ धो कर उठ खड़े होते थे। कोई फूहड़, पेटू, बेशर्म या विनोदप्रिय मेहमान यदि न उठे तो उस की पत्तल पर दाल-भात परोस कर मूसल पटक-पटक कर तब तक छींटे उड़ाये जाते थे जब तक वह भाग खड़ा न हो। इसे अभद्र या अशिष्ट व्यवहार नहीं समझा जाता था क्योंकि यह सर्वमान्य विनोद था। हो सकता है कि किसी अवसर पर, जब कि मेहमान भर पेट खाना न खा पाया हो, उसे मूसल का आगमन बहुत अखरा हो और उस ने कुढ़ कर कहा हो—ये कहां से आ गये दाल-भात में मूसलचंद!

"ऐसे चतुर सुजन भी हो सकते हैं जो पराये घर तो बढ़-बढ़ कर हाथ मारते हों परंतु अपने घर तुरंत ही खीसें निपोर कर मूसलचंद ले आते हों। ऐसे ही लोगों के लिए कहा गया है — पराये माथे परमानंद और अपने घर में मूसलचंद।"

दादी इतना कह कर मौन हो गयीं। मैं ने मित्र का कंधा धीरे-से दबाते हुए पूछा, "कहो बंधु, हो गया न मूसलचंदजी से परिचय?" ●

थीं। भारत के बंटवारे के समय पार्वत्य चटग्राम का जिला पाकिस्तान में चला गया। रानी नोनुमा के राज्य में एक प्रतिशत मुसलमान भी नहीं थे, फिर भी देश का यह महत्वपूर्ण सीमा-प्रदेश हमारे नेताओं ने खुशी-खुशी पाकिस्तान में जाने दिया। देश-विभाजन के बाद ही रानी नोनुमा ने एक प्रतिनिधि-मंडल दिल्ली भेजा जिस से असम और नागा पहाड़ियों से लगा हुआ उन का राज्य पाकिस्तान में न जाने दिया जाये। प्रतिनिधि-मंडल का एक सदस्य मैं भी था। देश का भूगोल और यहां बसनेवाली जातियों का इतिहास न जाननेवाले नेताओं की दृष्टि में भूमि का उस समय कोई विशेष महत्व नहीं था। परिणाम-स्वरूप खनिज पदार्थों, जंगलों और हाथियों से भरा मग प्रदेश पाकिस्तान में ही रहा। पिछले वर्षों में हजारों पाकिस्तानी मुसलमान इस प्रदेश के मूल निवासियों को लूटते और कत्लेआम करते हुए बसने लगे। मग और चकमा जाति के लोग अपना घरबार छोड़ कर भारत आ रहे हैं। आज इन का पुन-र्वास एक समस्या है।

तीर्थ-यात्रा में मगरानी जहां कहीं जातीं, उन का एक अपना रेल का डब्बा रिजर्व रहता था। इस में दो प्रथम श्रेणी की कोठरियां और रसोई, नौकर-चाकरों के लिए तीसरे दर्जे की एक कोठरी आदि की व्यवस्था रहती थी। प्रथम श्रेणी की एक कोठरी मेरे लिए सुरक्षित थी। सुबह-शाम रानी तथा राजकुमार सपत्नीक पूजा करने एवं उपदेश सुनने आते थे। मेरे डब्बे में चार बर्थ थीं। एक पर मेरा आसन रहता और तीन खाली। एक दिन मैं ने रानी से कहा, "मेरे डब्बे की तीन बर्थें खाली रहती हैं। राज-कुमार मेरे साथ हो लें तो आप सब को सुविधा रहे।" रानी ने मेरे प्रस्ताव को हंस कर टाल दिया। फिर मैं ने आग्रह किया, "मैं थर्ड क्लास के डब्बे में अपना आसन ले जाना चाहता हूं। इस से आप सब को दो डब्बे मिल जायेंगे और मुझे भी असुविधा नहीं रहेगी।" रानी ने गंभीर हो उत्तर दिया, "भन्ते, ऐसा कैसे हो सकता है! यह पवित्र बुद्ध-भूमि है। इस की अपनी संस्कृति और परम्परा है। आप विद्वान हैं, जानते होंगे कि भिक्षु का स्थान राजसिंहासन पर बैठनेवालों से ऊंचा है। आप तीसरी श्रेणी में सफर करेंगे तो मैं प्रथम श्रेणी में कैसे बैठ सकती हूं! मेरे बच्चों पर इस का कितना बुरा असर पड़ेगा। दूसरी बात, यदि हम लोग आप के डब्बे में जा कर बैठें तो हमें समान ऊंचाई के आसन पर बैठना होगा जो किसी भी प्रकार हमारे लिए शोभनीय न होगा। फिर अगर धोखे से भी आप के काषाय वस्त्र (भिक्षु-वस्त्र) पर हमारा पैर पड़ जाये तो हम कहीं के न रह जायेंगे। भन्ते, अनेक जन्मों तक पुण्य-संचय करने के बाद प्राणी इस पवित्र भारत-भूमि पर जन्म लेता है। यह भूमि धर्म की धरोहर है—अनेक बुद्धों की जन्म-भूमि है, इस की परंपरा का निर्वाह करने मात्र से मनुष्य आवागमन के दुख से छुटकारा पा सकता है।"

अपने घर पहुंच कर रानी नोनुमा

बँसी की टेर निराली

अरविंद

ये रंग-रंगीले मनमोहक डिजाइन के बढ़िया कपड़े हैं
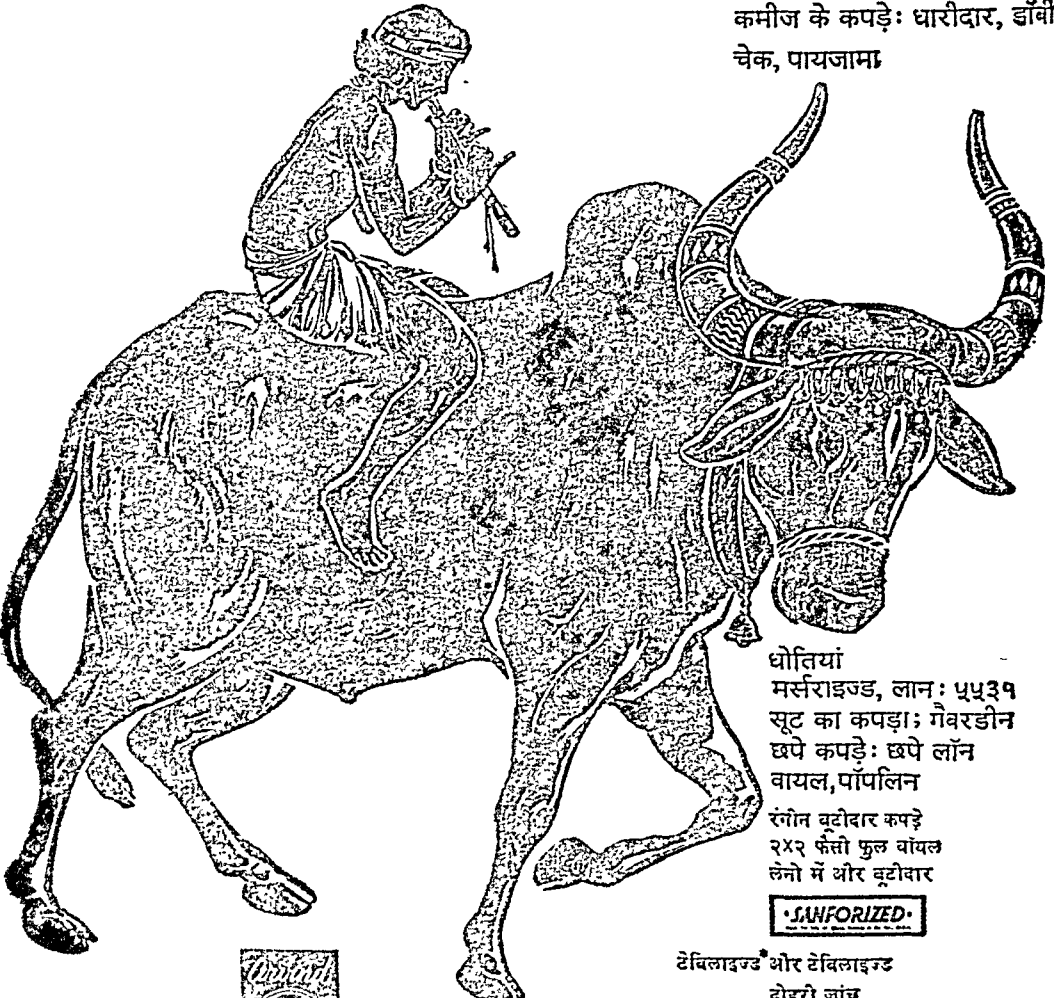
Registered Users

के० आर० एन० स्वामी

समाचारों का

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

जम्मू, १७ मई। ११ महीने पहले कायम हुई कश्मीर आवामी संघर्ष समिति के २१ वर्षीय नेता मौलाना फारूख ने जनमत संग्रह मोर्चा से गुमराह हुए मुसलमानों को अपनी समिति की सदस्यता के लिए आकर्षित करने का आंदोलन शुरू करने का फैसला किया है। जनमत संग्रह मोर्चा के अध्यक्ष अफजल बेग इस समय उटकमंड में शेख अब्दुल्ला के साथ नजरबंद हैं।

मौलाना फारुख ने इस समय यह ...लिए उठाया है क्योंकि...

अंगरेजी का एक शब्द है 'स्कूप'। पत्रकारिता में इस का अर्थ है ऐकान्तिक समाचार, अर्थात कोई ऐसा महत्वपूर्ण समाचार जो प्रतिद्वन्द्वी समाचार-पत्रों में आने से पहले अपने पत्र में प्रकाशित कर दिया जाये। 'स्कूप' एक ऐसा शब्द है जो किसी पत्रकार के लिए या तो दुःस्वप्न हो सकता है या बड़ा सुहावना स्वप्न—दुःस्वप्न तब जब कि प्रतिद्वन्द्वी संवाददाता उस से पहले ही किसी विशेष समाचार को पा जाये और सुस्वप्न तब जब कि उस के सिवा अन्य किसी को उस समाचार की हवा भी न लग पाये।

उदाहरणतया, १९५३ में एक पाकिस्तानी पत्रकार ने पश्चिमी पाकिस्तान के एक अस्पताल में बंदी रूप में रखे गये खान अब्दुल गफ्फार खां से भेंट कर अपने को उन अमरीकी पत्रकारों की कोटि का सिद्ध कर दिया जो 'संवाद-शिकारियों' के रूप में प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त पाकिस्तानी संवाददाता डाक्टर होने का बहाना कर बड़े इतमीनान से उन के वार्ड में चला गया। सुरक्षा-अधिकारी को इस में कोई असाधारणता नहीं प्रतीत हुई और उस ने कथित डाक्टर को वार्ड में चले जाने दिया। अन्दर पहुंच कर 'डाक्टर' ने सीमान्त नेता से 'इंटरव्यू' किया, जो छह वर्षों में पहली बार हुआ था।

अगस्त १९५३ में शाह ईरान के संबंध में भी एक पत्रकार ने दूसरों से बाजी मार ली। शाह तेहरान से भाग गये थे और समझ लिया गया था कि उन का भाग्य भी उन बादशाहों की

ने मुझे पार्वत्य चटग्राम आने के लिए आमंत्रित किया। महायुद्ध की गति तीव्र हो चुकी थी। अंगरेजी फौज सभी मोर्चों पर पीछे हट रही थी। आजाद हिन्द फौज वर्मा हो कर आगे वढ़ रही थी। ऐसे ही समय किसी प्रकार मैं रानी नोनुमा की 'राजवारी' माणिकचरी पहुंचा। उस समय वहां भीषण ठंड थी। विहार (बौद्ध मंदिर) वांस से अत्यंत कलापूर्ण ढंग से वना हुआ था। विहार के मध्यभाग में भगवान वुद्ध की विशालकाय मूर्ति भूमिस्पर्श मुद्रा में विराजमान थी। विहार के ही एक भाग में राजगुरु का निवासस्थान था और दूसरे भाग में मेरा। दैनिक कर्म से निवट कर सुवह तीन वजे ही रानी वुद्ध-पूजा के लिए मंदिर में आ जाती थीं। चार-साढ़े चार वजे वुद्ध-पूजा समाप्त कर वे मुझे नमस्कार करने के लिए मेरे कमरे के वाहर मंत्र-पाठ करती हुई खड़ी हो जातीं। इस समय ठंड के मारे रजाई में लिपटा मैं निद्रा-देवी की गोद में होता। जब तक मैं उठ कर रानी को आशीर्वाद न देता तव तक वे नंगे पांव, एक वस्त्र पहने खड़ी रहतीं। कभी-कभी वे एक-एक घंटा खड़ी रहतीं।

रानी नोनुमा अंगरेज पोलीटिकल एजेंट से स्वयं वात करतीं और राजकाज के प्रत्येक मामले को खुद देखतीं। उन्हें इस वात का विशेष दुख नहीं था कि उन के राज्य को अंगरेजी शासन ने अंगभंग करके एक जमींदारी मात्र रहने दिया है। जब कभी राजनीतिक चर्चा होती वे कहतीं, "अंगरेजी शासन तो अव मिट कर ही रहेगा, लेकिन भारत की स्वतंत्रता तव तक अधूरी रहेगी जब तक देशी रजवाड़े कायम रहेंगे।"

दो-चार रोज रहने के वाद मैं ने अपने आने का राजनीतिक उद्देश्य वताया। रानी नोनुमा ने कहा, "भारत की आजादी के लिए आप जो भी यहां करेंगे, मैं उस में सहायता करूंगी। हां, तत्काल मैं प्रकट रूप से कुछ नहीं कर सकती।" रानी नोनुमा ने अपना वचन निभाया और हम जब तक वहां राजनीतिक कार्यों में लगे रहे, वे प्रच्छन्न रूप से धन, जन और अस्त्र-शस्त्र से हमारी सहायता करती रहीं। मरणासन्न हालत में पुलिस से वचते हुए जव मैं लाहौर चला गया, तब भी वे मेरी सहायता करती रहीं। कई वर्ष वीत चुके। रानी नोनुमा नहीं रहीं। उन का राज्य नहीं रहा। उन की प्रजा या तो वर्वरता की शिकार हुई या शरणार्थी हो भटक रही है; किन्तु उन के शब्द 'भारत धर्म की धरोहर है' आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं।

पति : ऐसे जीवन से तो अच्छा है कि मैं मर जाऊं। प्रभो, तू मुझे उठा ले !
पत्नी : भगवान, इन से पहले मुझे उठा ले।
पति : प्रभो, तू इसी की सुन। मैं अपनी अर्जी वापस लेता हूं।

किन्तु पहले से ही तय किये गये संकेत के अनुसार इस का अर्थ था "एवरेस्ट पर विजय पा ली गयी।"

एक अमरीकी संवाददाता ने १९१४-१८ के महायुद्ध में ऐसी ही एक चाल चली थी। वह जरमन सेंसर करनेवालों से घिर गया था, जिन्होंने उसे तार से यह समाचार नहीं भेजने दिया था कि डचों द्वारा बांध तोड़ दिये जाने से देश में बाढ़ आ गयी है। कुछ सोच कर इस संवाददाता ने अपने मुख्य कार्यालय को यह तार दिया कि हालैंड वैसा ही हो गया है जैसा अमरीका का न्यू आर्लियन्स शहर जुलाई में हो जाता है। (न्यू आर्लियन्स शहर में प्रति वर्ष जुलाई में मिसीसिपी की बाढ़ आ जाती है।) मुख्य कार्यालय ने इस का अर्थ भांप लिया और उस ने पत्र में मुख्य शीर्षक दिया—जरमनों का बढ़ना रोकने के लिए डचों ने बांध तोड़ दिये।

१९०४ के रूस-जापान युद्ध में एक अंगरेज संवाददाता ने अपने साथियों से यह तय किया कि वह समाचार इस तरह भेजेगा कि एक शब्द छोड़ कर एक को मिलाने से ठीक अर्थ निकल सकेगा।

१९४४ में भारतीय राजनीतिक क्षेत्रों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि महात्मा गांधी और श्री जिन्ना के बीच हुए समूचे पत्र-व्यवहार का एक संवाददाता ने 'स्कूप' कर लिया। दोनों ही नेताओं ने यह घोषणा की कि समाचार उन के शिविर से नहीं निकला। श्री जिन्ना ने कहा कि मेरा आवास 'लौह-दुर्ग' है। गांधीजी ने कहा कि ऐसे मामलों में मैं कितना सावधान रहता हूं, इस बात को बताने की आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस उच्च कमान ने उक्त संवाददाता से अनुरोध किया कि वह यह वक्तव्य दे दे कि खबर गांधीजी के शिविर से नहीं मालूम हुई है। किन्तु संवाददाता अपने पेशे का पक्का था। उस ने उच्च कमान के आग्रह को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि ऐसा वक्तव्य देने से दोष श्री जिन्ना के साथियों के मत्थे मढ़ा जाता। इस अस्वीकृति की कीमत संवाददाता को अपनी नौकरी से हाथ धो कर चुकानी पड़ी और उस अद्भुत 'स्कूप' के लिए उसे पुरस्कार मिला एक हजार रुपये की छोटी-सी रकम। हाल में ही उक्त संवाददाता ने बताया कि उसे असली पत्र जिन्ना के सचिव से मिले थे, जिन के उस ने फोटो ले लिये थे।

कभी-कभी संवाददाताओं को समाचार तो बिलकुल ठीक मिल जाता है, किन्तु उन्हें अपने समाचार-पत्रों तक पहले पहुंचाने में कठिनाई होती है। न्यूयार्क से दूर एक महत्वपूर्ण समारोह का समाचार ले कर संवाददाताओं की एक टोली तेज रफ्तारवाली एक ट्रेन में सवार हुई। ट्रेन मार्ग के किसी स्टेशन पर नहीं रुकी। एक साहसी संवाददाता ने समाचार का सारांश तैयार किया। उस के साथ ही उस ने कुछ डालर भी पिन कर दिये। समाचार को तार से भेजने के लिए जितनी रकम की आवश्यकता होती, उस से दुगुनी रकम उस ने संलग्न कर दी थी। समाचार के साथ यह नोट लगा हुआ

तरह हो गया जो अपनी गद्दी खो चुके हैं। सौभाग्य से शाह के समर्थकों ने पुनः सत्ता प्राप्त कर ली और यह सूचना उन्हें एक नौसिखिया संवाददाता द्वारा मिली, जो शाह के साथ भेजा गया था। समाचार-एजेंसी ने यह तय किया था कि शाह के साथ कोई वरिष्ठ संवाददाता भेजने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु इस नौसिखिया संवाददाता ने बड़ी चुस्ती दिखायी। वह दौड़ा हुआ आया और शाह के कमरे में दाखिल हो गया। उस ने अन्दर से ताला बन्द कर लिया ताकि अन्य संवाददाता वहां न फटक सकें। फिर उस ने शाह को संवाद सुनाया। हर्षातिरेक में शाह ने उसे अपना फोन इस्तेमाल कर लेने दिया, जिस से उस ने अपनी समाचार-एजेंसी को उपर्युक्त संवाद की प्रतिक्रिया से अवगत कराया। कमरे के बाहर अन्य बहुत-से संवाददाता दरवाजा बंद होने के कारण हाथ-पैर पटक रहे थे।

'प्रतिद्वन्द्वी को समाचार के पास न फटकने दो'—संवाददाता के लिए यह मूल-मंत्र ही है। वैटीकन (पोप का राज्य) में एक महत्वपूर्ण समारोह था। एक फोटो फीचर सिंडीकेट ने समारोह की फिल्म लेने की अनुमति ले ली थी। समारोह में एकरूपता बनाये रखने के लिए फोटोग्राफर से भी धार्मिक पोशाक पहनने को कहा गया। जब समारोह प्रारंभ होने वाला था तब एक प्रतिद्वन्द्वी सिंडीकेट का फोटोग्राफर भी वहां हड़बड़ा कर पहुंचा। वह भी अनुमति लेना चाहता था। संयोग से वह उसी फोटोग्राफर के पास पहुंचा जो धार्मिक पोशाक पहने हुआ था। वैटीकन का कोई उच्च अधिकारी समझ कर उस ने अपने प्रतिद्वन्द्वी से समारोह के चित्र लेने की अनुमति मांगी। बनावटी अधिकारी ने उस फोटोग्राफर को कड़ी नजर से देखा और फौरन ही चले जाने का आदेश दिया। बेचारे कैमरामैन को सिर पर पांव रख कर लौटना पड़ा।

१९५३ में एवरेस्ट-अभियान की सफलता का समाचार लंदन के काठमांडू स्थित संवाददाता को बड़े घुमाव-फिराव से मिला। अभियान-दल के साथ 'टाइम्स' का जो संवाददाता था उसे यह आशंका थी कि यदि बेतार के तार द्वारा समाचार भेजा गया तो प्रतिद्वन्द्वियों को भी साथ-साथ समाचार मालूम हो जायेगा, अतः उस ने एक संवादवाहक को एक साधारण-से संवाद के साथ दौड़ाया। संवाद था—"मौसम अभी तक धुंधला है।"

था कि इसे पानेवाला तार से इस समाचार को समाचार-पत्र के न्यूयार्क कार्यालय को भेज दे। अतिरिक्त रकम तार भेजनेवाले के लिए थी। जब संवाददाता न्यूयार्क पहुंचा तो उसे यह देख कर खुशी हुई कि केवल उस के पत्र ने उस समाचार को छापा था।

एक अमरीकी पत्रिका की चेकोस्लोवाकिया स्थित एक महिला संवाददाता को एक महत्वपूर्ण मुलाकात का समाचार तार से भेजना था, किन्तु उस समय उस के पास इस के लिए पर्याप्त पैसे नहीं थे। तार-कर्मचारी ने तार भेजने से इनकार कर दिया। संकटापन्न संवाददाता को एक तरकीब सूझी। उस ने चुपके से एक तार राष्ट्रपति बेनेस के नाम लिखा—"प्रिय . . . कृपया इस तार-कर्मचारी को बर्खास्त करा दें।" यह तार उस ने तार-कर्मचारी के हाथ में पकड़ा दिया। तार पढ़ कर वह भौंचक्का हो गया। तब वह संवाददाता का पूरा समाचार भेजने को राजी हो गया, बशर्ते कि राष्ट्रपति के नाम तार को वापस ले लिया जाये। कहीं वह तार राष्ट्रपति को मिल ही जाता तो!

पिछले महायुद्ध में नारमंडी आक्रमण-दल के साथ जो मित्रराष्ट्रीय संवाददाता गये थे उन्हें जाने की तिथि विशेष की सूचना दिये जाने के बाद तालों में बंद कर दिया गया था। कई दिन पहले ही उन्हें खास हिदायत कर दी गयी थी कि वे न तो असंयत बातचीत करें, न शराब पियें।

यह उल्लेखनीय है कि युद्ध की चरम-सीमा के दिनों में भी ब्रिटिश समाचार-पत्रों पर 'सेंसरशिप' लादी नहीं गयी थी। सभी पत्रों ने स्वेच्छा से यह स्वीकार कर लिया था कि समाचारों को प्रकाशित करने से पूर्व सेंसर करा लिया जाये।

किन्तु समाचारों के समय से पूर्व प्रकट होने को रोकने के लिए रूस ने बड़े कठोर उपाय अपनाये थे। ६ मार्च, १९५३ को जब स्तालिन की मृत्यु की खबर फैली तो एक संवाददाता प्रातः ८ बजे मास्को के केन्द्रीय तार-कार्यालय में था। तुरन्त ही बहुत कड़ा सेंसरशिप लागू हो गया। न केवल कोई समाचार नहीं भेजे गये, वरन एक तार-आपरेटर ने स्विचबोर्डों के तारों को गड़बड़ कर दिया, जिन से दूसरे देशों को संवाद भेजे जाते थे। संवाददाता चीख-पुकार मचाये थे कि लंदन, पेरिस तथा स्टाकहोम से तार-संबंध जोड़ दिये जायें, किन्तु आपरेटर हाथ पर हाथ रखे चुपचाप बैठा था।

कुछ मिनट बाद ऊंघता हुआ-सा एक मेकेनिक आया। उस ने स्विचबोर्ड को पीछे से खोला और प्लगों से मुख्य तार को झटका दे कर खींच लिया। संवाददाताओं के लिए यह अंतिम आघात था, क्योंकि संसार का सब से बड़ा 'स्कूप' जो उन के पास था, बासी हो जाता। तार पुनः जोड़ने में साढ़े तीन घंटे लगे। वास्तव में विदेशों की राजधानियों में स्तालिन की मृत्यु का समाचार मास्को स्थित विदेशी संवाददाताओं से नहीं वरन मास्को रेडियो की लंदन में सुनी गयी खबर से मिला।

प्रायः संवाददाता को अपना 'स्कूप' जुटाने में सूत्र से सूत्र मिलाना पड़ता
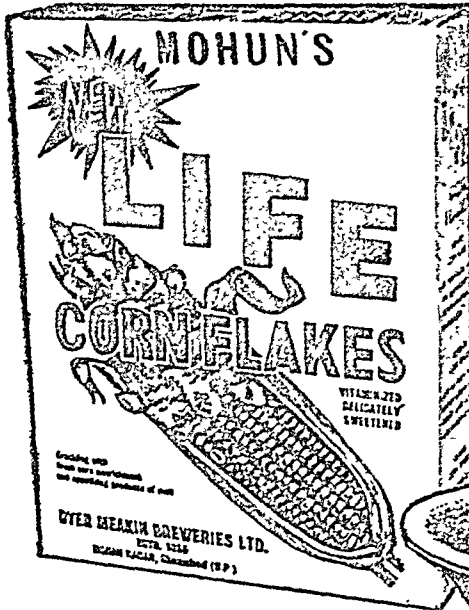
कुछ प्रेरक प्रसंग
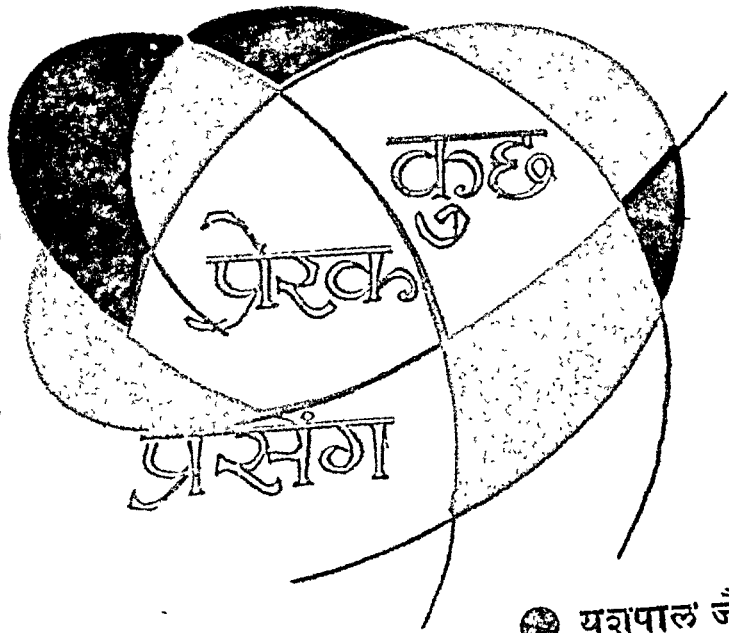
यशपाल जैन

घटना १९४७ की है। शायद नवंबर का महीना था। गांधीजी नयी दिल्ली की भंगी-बस्ती में ठहरे हुए थे। विभाजन के कारण शरणार्थियों की समस्या बड़े उग्र रूप में सामने थी। बहुत से लोग पाकिस्तान से दिल्ली आ गये थे और उन में बड़ी कटुता थी। गांधीजी उन्हें बार-बार समझाते थे पर उन का क्षोभ बढ़ता ही जाता था। एक दिन जब गांधीजी ने अपनी प्रार्थना सभा में कहा कि वे लोगों की तकलीफों को समझ सकते हैं पर उन्हें धीरज रखना चाहिये, तो एक वृद्धा रोते-रोते आवेग में बोल उठी, "नहीं, हमारा दुख-दर्द कोई नहीं समझ सकता। हमारा सब कुछ लुट गया है।" उन दिनों ऐसे दृश्य प्रायः हर रोज गांधीजी की प्रार्थना-सभा में उपस्थित होते थे।

एक दिन शाम को रोज की तरह मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ वहां पहुंचा। थोड़ी देर हो गयी थी इसलिए हम चुपचाप एक ओर को जा कर खड़े हो गये। प्रार्थना समाप्त होने पर गांधीजी उठ कर चले तो लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। उसे हटा दिया गया और गांधीजी अपने कमरे की ओर बढ़े। कमरा वहां से तीस-पैंतीस गज की दूरी पर होगा। रास्ते के दोनों ओर स्त्री-पुरुष खड़े थे। गांधीजी

हैं। स्वर्गीय ए. एस. अयंगार ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक बार वे एक तार देने के लिए तारघर में गये। उन्होंने देखा कि तार-आपरेटर डिक्शनरी में 'बैरेज' शब्द के हिज्जे देख रहा था। उन दिनों सक्खर बैरेज (बांध) योजना पर विचार किया जा रहा था। अयंगार महोदय ने सोचा कि उक्त योजना स्वीकृत हो गयी होगी। संबंधित विभाग से पूछताछ करने पर पता चला कि बात ठीक थी।

भगतसिंह ने जब केन्द्रीय धारासभा में बम फेंका तब भी एक नाटकीय घटना घटी। सब से पहले श्री अयंगार उस राष्ट्र-नायक के पास पहुंचे और उन से मुलाकात की, जब कि नीचे धारासभा के सदस्य अपनी सुरक्षा के लिए धक्का-मुक्की कर रहे थे। पुलिस श्री अयंगार के पहुंचने के कुछ मिनट बाद ही भगतसिंह के पास पहुंची।

कभी-कभी संवाददाता राष्ट्र के हित में स्वेच्छा से 'स्कूप' का त्याग कर देते हैं। १९५४ के बजट अधिवेशन में दिल्ली में केन्द्रीय सचिवालय में कुछ कागजात समय से पहले प्रकट हो गये, किन्तु संवाददाताओं ने संबंधित अधिकारियों को कागजात सौंप कर निर्धारित अवधि तक मामले को गोपनीय रखा।

ब्रिटेन में कुछ वर्ष पूर्व एक ऐसी ही घटना के फलस्वरूप ब्रिटिश वित्त मंत्री डा. ह्यू डाल्टन को इस्तीफा देना पड़ा। वे बजट प्रस्तुत करने के लिए पार्लियामेंट के अंदर जा रहे थे कि एक संवाददाता ने उन से एक चालाकी का प्रश्न किया। असावधानीवश डाक्टर डाल्टन ने जल्दी में उसे उत्तर दे दिया। संवाददाता को बजट में एक मामूली कर-प्रस्ताव का 'स्कूप' मिल गया। विरोधी पार्टी ने पार्लियामेंट में इस पर बहस किये जाने की मांग की। वित्त मंत्री की स्थिति में होने के कारण डा. डाल्टन को इस घटना के फलस्वरूप पद-त्याग करना पड़ा।

अकसर सरकारी अधिकारी सुरक्षा व्यवस्था को हास्यास्पद सीमा तक पहुंचा देते हैं। कोलम्बो देशों के बोगोर सम्मेलन में संवाददाताओं को नीरस सरकारी विज्ञप्तियां मात्र ही मिलती थीं। किन्तु आश्चर्य की बात है कि लंका के समाचार-पत्र ऐसे रोचक समाचारों से भरे रहते थे जो अन्य संवाददाताओं को नहीं मिल पाते थे।

१८७० के फ्रांस-जरमन युद्ध में जरमन राजनेता बिसमार्क ने विशेष हिदायतें जारी की थीं कि 'लंदन टाइम्स' के संवाददाताओं को कोई सरकारी वक्तव्य न दिये जायें। 'लंदन टाइम्स' ने इस के प्रतिशोध में एक ऐसा संवाददाता भेजा जिस की स्मरण-शक्ति गजब की थी। फलस्वरूप युद्ध-समाप्ति पर हुई फ्रांस-जरमन संधि 'लंदन टाइम्स' में शब्दशः प्रकाशित हो गयी, यद्यपि सभी संवाददाताओं को उसे केवल एक सेकंड के लिए दिखाया गया था। इस 'स्कूप' से बिसमार्क इतना चिढ़ गया कि वह सरकारी सम्मेलनों के शुरू में कहा करता था, "सज्जनो, मैं आशा करता हूं कि यहां 'लंदन टाइम्स' का संवाददाता नहीं है . . ." ●

उस में बैठ कर चले जायेंगे ।

जवाहरलालजी धीरे-धीरे मंच से उतरे । उन का अंग-रक्षक भी साथ उतरा तो उन्होंने उस को भिड़क कर लौटा दिया । लाखों की भीड़ थी और जवाहरलालजी को उस जन-समुदाय में पांच-सात सौ गज जाना था ।

ज्यों ही वे उस रास्ते पर बढ़े कि बहुतों के दिल कांप उठे । यदि उस भीड़ में से किसी ने कुछ कर दिया तो ? पर जवाहरलालजी निडर हो कर चले जा रहे थे और लाखों श्रद्धालु आंखें बड़े स्नेह से चुपचाप उन्हें देख रही थीं । वे भीड़ के अंत तक गये और वहां थोड़ा रुके । हम ने समझा कि अब कार आयी और वे अपने डेरे को रवाना हुए । लेकिन नहीं, वे मुड़े और मंच की ओर वापस चल पड़े । उस विशाल भीड़ के बीच जिन्होंने जवाहर-लालजी को मुसकराते चलते देखा, उस दृश्य को कभी नहीं भूल सकते । उतना आत्मविश्वास और निर्भीकता गांधीजी को छोड़ कर उन के समकालीन अन्य किसी भी नेता में शायद ही देखी गयी हो ।

वे लौट कर सीधे मंच पर गये और माइक के सामने खड़े हो कर सब का अभिवादन किया । बोले, "मैं आप सब को मुबारकबाद देता हूं । आप लोग इम्तहान में पास हो गये और बहुत अच्छी तरह से । मैं ने आप को १०० में ९५ नंबर दिये हैं । ५ इसलिए काट लिये कि एक आदमी ने मेरे पैर छूने के लिए अपना हाथ बढ़ा दिया था । खैर, अब मैं आप लोगों को आगे का तमाशा दिखाता हूं । आप खामोश रहें । देखिये, मेरे पास बहुत-से ऐक्टर हैं । वे आप को अपने-अपने करतब दिखायेंगे । मैं सब से पहले गुलाम मोहम्मद बख्शी को बुलाता हूं । आओ भाई !"

उस के बाद मंच पर एक के बाद एक कई नेता आये और उन्होंने बड़े ओजस्वी भाषण दिये । लाखों की भीड़ को नियंत्रित करने में जवाहरलालजी ने जो हौसला दिखाया, वह एक ऐति-हासिक घटना बन गयी । उन की इस निडरता का परिणाम यह हुआ कि अधि-वेशन के अंत तक एक पत्ता भी नहीं हिला ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के १९३७ या १९३८ के दीक्षांत-समारोह में दीक्षांत-भाषण देने के लिए महामना पंडित मदनमोहन माल-वीय आमंत्रित किये गये थे । समारोह का समय हुआ और सब की आंखें द्वार पर जम गयीं । ठीक समय पर हलचल हुई और मालवीयजी आये । सब ने खड़े हो कर उन का अभिवादन किया । वही परि-चित आकृति थी, जो प्राय: चित्रों में देखने को मिलती थी । लंबी अचकन, गले में दुपट्टा, सिर पर पगड़ी । ऐसा लगता था, मानो कोई ऋषि हों । चेहरे पर बड़ी मनोरम सात्विकता दिखायी देती थी ।

विश्वविद्यालय के अब तक के इति-हास में जितने दीक्षांत-समारोह हुए थे,

किसी नेता से बातें करते हुए आगे बढ़ रहे थे।

हम रास्ते के किनारे खड़े थे। मेरी गोद में चार वर्षीया अन्नदा थी। ज्यों ही गांधी पास आये, अन्नदा बड़े प्यार से चिल्लायी—बापू !

गांधीजी के साथ काफी लोग थे और संभवत: वे अपने साथ वाले सज्जन से बड़ी गंभीर चर्चा कर रहे थे, लेकिन एक बच्ची की पुकार सुन कर उस की अवहेलना नहीं कर सके। उन के पैर मानो स्वत: ही वहां रुक गये। उन के रुकते ही भीड़ ने उन्हें घेर लिया।

गांधीजी मुसकराते हुए कोई एक मिनट तक अन्नदा के सामने खड़े उस की ओर देखते रहे, फिर मुंह बना कर उन्होंने 'खौं' किया, जैसे घर के बड़े-बूढ़े बच्चों को खुश करने के लिए किया करते हैं और आगे बढ़ गये।

कांग्रेस के कल्याणी अधिवेशन में भीड़ का कोई ठिकाना न था। कलकत्ता के पास होने के कारण सारा नगर उमड़ पड़ा था। विशाल पंडाल में लाखों आदमी बैठ सकते थे।

खुले अधिवेशन का दूसरा दिन था। कुछ नेताओं के भाषण हो चुके थे, कुछ के होने वाले थे। अचानक भीड़ बेकाबू हो गयी और शोर मचने लगा। माइक पर बार-बार शांति रखने के लिए कहा गया, पर कौन सुनता ! व्यवस्थापकों को शक था कि साम्यवादी शरारत करने पर तुले हुए हैं और जो कुछ हो रहा है, उस में उन्हीं का हाथ है। उन्हें यह भी डर था कि थोड़ा अंधेरा होने पर वे लोग बिजली के तार तोड़ देंगे और इस तरह कांग्रेस के अधिवेशन को बिगाड़ देंगे।

जवाहरलालजी अध्यक्षता कर रहे थे। वे कुछ देर तक चुपचाप उस गड़बड़ी को देखते रहे, फिर उठ कर मंच पर आये। बोले, "आप सब चुप हो जायें। मैं आज आप को एक तमाशा दिखाना चाहता हूं।"

वे क्या तमाशा दिखायेंगे, इस उत्सुकता से लोगों का शोर बंद हो गया। जवाहरलालजी ने कहा, "तमाशा दिखाने से पहले मैं आप का इम्तहान लेना चाहता हूं। मंच के ठीक सामने आप लोग एक गज चौड़ा रास्ता बना दें। शर्त यह है कि कोई उठ कर खड़ा न हो और सब चुपचाप पीछे सरक जायें।"

उन का इतना कहना था कि लोगों ने सरक-सरक कर रास्ता बना दिया।

अब जवाहरलालजी बोले, "बहुत ठीक, मैं मंच से उतर कर नीचे आता हूं। इस रास्ते से, जो आप ने बनाया है, मैं अंत तक जाऊंगा और फिर लौट कर आऊंगा। शर्त यह होगी कि कोई भी आगे नहीं बढ़ेगा, उठ कर खड़ा नहीं होगा और मेरे पैर छूने के लिए एक भी हाथ आगे नहीं बढ़ेगा।"

हम लोगों ने सोचा कि जवाहरलालजी की यह चाल है। उन्होंने यह सब खेल इसलिए किया है कि लोगों के बीच से उस किनारे तक जायेंगे, उधर उन की मोटर आ जायेगी और वे

और उच्च कोटि की कवयित्री है ।

सरोजिनी नायडू का शरीर कुछ भारी था, पर स्फूर्ति फूटी पड़ती थी । वे आ कर मंच पर बैठ गयीं । उन का परिचय कराया गया और उस के बाद वे बोलने के लिए खड़ी हुईं । तभी माइक खराब हो गया । ठीक करने वाले ने उसे ठीक करने का प्रयत्न किया लेकिन सरोजिनी नायडू में इतना धैर्य कहां था कि खड़ी हो कर प्रतीक्षा करें । उन्होंने झट माइक को खींच कर एक ओर कर दिया और बड़ी ऊंची आवाज में बोलीं, "मेरी छाती में अब भी इतना दम है कि मेरी आवाज इस हाल के उस दूर कोने तक पहुंच सके । मुझे माइक की जरूरत नहीं है ।"

इतना कह कर उन्होंने बोलना आरंभ कर दिया । उन की आवाज सुरीली जरूर थी, लेकिन इतनी बुलंद होगी, इस का पता उस दिन चला । कोई डेढ़ घंटे बोलीं । विषय बड़ा गंभीर था लेकिन उन्होंने बीच-बीच में कहानियां और कविताएं डाल कर उसे इतना रोचक और सजीव बना दिया कि सुनने वाले मंत्र-मुग्ध हो कर बैठे रहे और उन की वाणी का मुग्ध भाव से आनंद लेते रहे ।

प्रयाग की साहित्यकार संसद की ओर से दिनकरजी की 'कुरुक्षेत्र' पुस्तक को पुरस्कृत किया गया था । लेखक को वह पुरस्कार प्रदान करने तथा उन्हें सम्मानित करने के लिए 'साहित्यकार संसद' ने इलाहाबाद में एक समारोह का आयोजन किया था । निरालाजी उन दिनों संसद के भवन में गंगा के किनारे, जहां समारोह की व्यवस्था की गयी थी, रहते थे । मैं जान-बूझ कर समय से कुछ पहले पहुंच गया, जिस से निरालाजी से कुछ बातचीत हो सके । मेरे साथ मेरी साली गायत्री थी जो विश्वविद्यालय में पढ़ाती थी ।

निरालाजी ने बाहर चबूतरे पर कुछ कुरसियां डलवा रखी थीं और स्वयं एक कुरसी पर बैठे कुछ गुनगुना रहे थे । हम लोगों का उन्होंने उठ कर अभिवादन किया । बैठने पर उन्होंने गायत्री के बारे में पूछताछ की कि वह कहां तक पढ़ी है और क्या करती है । जब उन्हें मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय में पढ़ाती है तो बोले, "हमारे पास भी एम. ए. के कई विद्यार्थी अंगरेजी पढ़ने आते हैं । हम उन्हें शेक्सपियर के नाटक पढ़ाते हैं ।"

इतना कहते-कहते वे उठे और किसी से चाय बनाने के लिए कह कर फिर हम लोगों के बीच आ बैठे और किसी कविता की पंक्तियां धीमी आवाज में सस्वर गाने लगे । इतने में दद्दा (श्री मैथिलीशरण गुप्त) और श्री राय कृष्णदास भी आ गये । उन के आने के कुछ देर बाद ही डाक्टर हेमचंद्र जोशी आ पहुंचे । निरालाजी ने उठ-उठ कर सब का अभिवादन किया और उन्हें सम्मानपूर्वक बिठाया । डाक्टर जोशी और निरालाजी के बीच मधुर संबंध नहीं है, यह सब को पता था । हमें आशंका

उन में दीक्षांत-भाषण सदा अंगरेजी में ही दिये गये थे अतः लोग सोचते थे कि मालवीयजी भी अंगरेजी में बोलेंगे। उन्हें अंगरेजी पर कितना अधिकार है, यह किसी से छिपा नहीं था।

पर मालवीयजी ने सब की आशा के विपरीत अपना भाषण हिंदी में आरंभ किया। परतंत्र भारत में ऐसा करना आसान न था। हिंदी के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करने का अर्थ था शासन के कोप को आमंत्रित करना। लेकिन मालवीयजी तो देश-भक्ति में डूबे थे और उन की निर्भीकता का लोहा विदेशी सरकार भी मानती थी।

उन्होंने कुछ ही वाक्य बोले होंगे कि एक नौजवान उठ खड़ा हुआ और बड़ी ऊंची आवाज में बोला, "सर, स्पीक इन इंगलिश! वी कांट अंडरस्टैंड योर हिंदी!"

उस युवक की बात सुन कर उन का चेहरा तमतमा आया। सच यह था कि वे इतनी क्लिष्ट हिंदी नहीं बोल रहे थे कि किसी को समझने में कठिनाई हो, लेकिन आभिजात्य वर्ग के कुछ लड़के अंगरेजी के इतने भक्त थे कि हिंदी को सहन नहीं कर पाते थे। मालवीयजी ने उस युवक की ओर देखा और तीव्र स्वर में कहा, "मुझे अंगरेजी बोलना आता है। शायद मैं अंगरेजी में अपनी बात हिंदी की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से कह सकता हूं। लेकिन मैं एक पुरानी अस्वस्थ परंपरा को तोड़ना चाहता हूं। जरा धीरज रखो, मेरी बात तुम्हारी समझ में आ जायेगी।"

उन का संकेत अंगरेजी में भाषण देने की मानसिक गुलामी की ओर था। उन्होंने अपनी बात इतने आत्म-विश्वास से कही कि आगे उस नौजवान को या और किसी को कुछ भी कहने का साहस न हुआ।

लगभग २९-३० साल पहले मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था। वहां समय-समय पर राष्ट्रीय नेता सीनेट हाल में भाषण देने आते रहते थे। विद्यार्थियों को इस से बड़ा लाभ होता था। नेताओं के दर्शन हो जाते थे और उन के विचार भी सुनने को मिल जाते थे।

उन्हीं दिनों श्रीमती सरोजिनी नायडू को आमंत्रित किया गया था। उन के भाषण का शीर्षक था—'वाचमेन, व्हाट आव द डान' (पहरुवे, कहो, भोर के क्या हाल-चाल हैं?) उस जमाने में पहरेदार लाठी में घंटी बांध कर घूमा करते थे और उस की घंटी की आवाज से लोग उसे पहचान कर पूछा करते थे कि सब कुशल-मंगल तो है न?

सरोजिनी नायडू के भाषण का विषय भी कुछ उस से मिलता-जुलता था। उन्हें बताना था कि स्वतंत्रता की जो नयी लहर उठ रही थी, उस का क्या परिणाम हो रहा था और उस की संभावनाएं क्या थीं?

सीनेट हाल विद्यार्थियों से खचा-खच भरा था। विषय तो महत्त्वपूर्ण था ही, दूसरे, छात्रों को पता था कि सरोजिनी नायडू बहुत अच्छी वक्ता

अपनों की चोट

गोपाल शेखरन

●

"आप के बी. ए. में क्या विषय थे ?"

"हिन्दी, अंगरेजी और संस्कृत ।"

"क्या आप ने 'मेघदूत' पढ़ा है ?"

"इस का शुद्ध नाम 'मेघदूतम' है।"

"हूं । जानता हूं । उस का कोई श्लोक सुनाइये," स्वर में रोष स्पष्ट था।

"जी, बी. ए. में पढ़ा था, अब तो याद नहीं ।"

"संस्कृत का व्याकरण पढ़ा है ?"

"जी हां, इंटर में पढ़ा था।"

"अच्छा बताइये, 'हेतु-हेतुमतभूत' किसे कहते हैं ?"

"यह मैं अब भूल चुका हूं।"

"हूं ! आप को अब कुछ भी याद नहीं । यह तो याद होगा कि लोक-

मुरली तेरे हाथ

तुम ने नूपुर की गूंज
चरण-अर्पित कर दी
हम ने प्राणों की डोर
वहीं नीचे धर दी
तुम ने ममता के फूल
कान में खोंस लिये
हम ने मन्दिर में देवी की
प्रतिमा गढ़ दी
तुम ने भोग्या का
बनजारी शृंगार किया
हम ने जीवन-धन
मुद्राओं पर तोल दिया
तुम ने जब-जब भी
दस्तक दी दरवाजे पर
हम ने खुद ही उठ कर
दरवाजा खोल दिया
तुम ने गाने में रुचि ली
हम ने गीत रचे
तुम जहां-कहीं भी डूबी हो
हम कहां बचे
अब आज असत से सत की
तम से ज्योति-पुंज की
नश्वर से अमृत की
शाश्वत स्वर-निकुंज की
ले चल दूति, उस ओर
जहां उदयाचल—ले चल
ले चल प्रणय-विभोर
हमें जीवन-तल — ले चल
मालिन, मन-सुगन्ध-वीथी के
सपनीले आंचल में ले चल
मुरली तेरे हाथ गुजरिया
जहां-कहीं जी चाहे, ले चल

—राजेन्द्र 'अनुरागी'—

हुई कि निरालाजी किसी बात पर उत्तेजित न हो उठें।

निरालाजी एक किनारे पर बैठे थे और जोशीजी दूसरे किनारे पर, इसलिए वे एक दूसरे से कुछ दूर पड़ गये थे। निरालाजी ज्यादातर हमीं लोगों से बातचीत करते रहे। थोड़ी देर में चाय बन कर आ गयी। निरालाजी ने 'ट्रे' अपने सामने रखवा ली। उन्होंने एक प्याला चाय बनायी और उस के बाद जो किया, उसे देख हम सब चकित रह गये। उन्होंने प्याला उठाया और सीधे डा० जोशी के पास जा कर दे आये। निरालाजी की मानसिक अवस्था उस समय भी ठीक न थी। बातचीत से और बाद में समारोह में अपने भाषण से उन्होंने इस बात को और भी पुष्ट कर दिया था। इतना होने पर भी वे यह नहीं भूले थे कि वे साहित्यकार संसद के भवन में रहते हैं और उन के यहां सब लोग आये हैं इसलिए वे सब का समुचित आदर-सत्कार करें।

भारतीय संस्कृति में अतिथि की बड़ी महिमा मानी गयी है। निरालाजी भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे और उन्होंने अपनी सुसंस्कृति का बड़ा उदात्त दृष्टांत हम सब के सामने रखा। कहने की आवश्यकता नहीं कि निरालाजी के इस व्यवहार से जोशीजी गद्गद हो गये और हमारे हृदय की जो अवस्था हुई, वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती।

"जी, यह तो वैसे ही . . ."

"नहीं, कोई भी चीज बिना कारण नहीं होती। आप अवश्य कम्युनिस्ट पार्टी से संबंध रखते हैं, तभी आप के अवचेतन मन ने आप को लाल रंग का कपड़ा खरीदने को बाध्य किया," वे सदस्य शायद मानव-मस्तिष्क के अध्ययनकर्ता थे।

हरीशानंद चेहरा लटकाये कमरे से बाहर निकला। दूसरे वर्ष वह काले रंग के सूट में 'इंटरव्यू' में गया। वे ही सदस्य फिर बोले थे, "मुझे आप के साथ पूरी सहानुभूति है।"

"जी, मैं आप का मतलब नहीं समझा," वह हड़बड़ा गया था।

"मेरा मतलब है कि आप के किसी नजदीकी रिश्तेदार अथवा मित्र की मृत्यु हो गयी . . ."

"जी, ऐसा तो कुछ नहीं हुआ, लेकिन आप को यह शक कैसे हुआ ?"

"तो फिर आप यह मरसिया वाली पोशाक क्यों पहने हैं ?"

इस बार हरीशानंद बहुत झुंझला गया था।

तीसरे वर्ष वह हलके नीले रंग का 'स्पाटेंड' सूट पहन कर 'इंटरव्यू' में गया। उस के दुर्भाग्य से पोशाक-विशेषज्ञ सज्जन इस बार भी बोर्ड में थे। पहला प्रश्न उन्हीं सज्जन ने किया। "क्या आप किसी पार्टी से आ रहे हैं ?"

"जी, नहीं तो !"

"तो फिर यह 'लाउंज सूट' क्यों पहन रखा है ?"

हरीशानंद का मन हुआ कि इस बार वह अपना या उन सज्जन का सिर फोड़ डाले। लेकिन ऐसा वह न कर सका और अन्य सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देने लगा। इस बार उस ने निश्चय किया था कि वह खादी के कपड़े पहन कर जायेगा ताकि वे पोशाक-विशेषज्ञ कुछ नुस्ख न निकाल पायें।

हरीशानंद ने फिर सिर को झटका दिया। दिमाग फिर बहक चला था। उसे तो 'इंटरव्यू' की तैयारी करनी चाहिये, न कि पुरानी बातों की याद। वह फिर व्याकरण की पुस्तक में डूब गया। ज्यादा देर वह अपने को पुस्तक में न उलझाये रख सका। उस की पलकें भारी हो उठी थीं। रात भी काफी बीत चुकी थी। उस ने पुस्तक एक ओर सरका दी और लेट गया। सोते-सोते वह फिर 'इंटरव्यू' के कमरे में पहुंच गया।

'इंटरव्यू बोर्ड' के सदस्य इस बार उस से पूरी तरह संतुष्ट नजर आ रहे थे—वह उत्तर भी तो बिलकुल ठीक दे रहा था। एक सदस्य ने उस से पूछा, "होनोलूलू में कैसा मौसम रहता है ?"

"अजी, वहां के मौसम की कुछ न पूछिये ? गरमी के दिनों में ऐसी गरमी पड़ती है कि कपड़े भी नहीं पहने जाते। ठंड के दिनों में ऐसी ठंड कि बर्फ पिघला कर पानी बनाना पड़ता है और बरसात के दिनों में तो हर आदमी वहां किश्ती रखता है।"

"गुड, वेरी गुड !"

इसी प्रकार उस ने सब प्रश्नों के उत्तर ठीक-ठीक दिये। जब वह कमरे से बाहर निकला तो पूरी तरह

सभा में किस सदस्य ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव पेश किया था ?''

''इतनी पुरानी बात अब तक मुझे कैसे याद रह सकती है !''

''आप तो 'आल-राउंड पुअर' हैं !''

हरीशानंद ने सिर को झटका दिया। ये भूले-बिसरे चित्र न जाने क्यों बार-बार मस्तिष्क के अंदर घुस कर पुरानी स्मृतियों को कुरेद जाते हैं ? लेकिन वह प्रयत्न करने पर भी पिछले 'इंटर-व्यूज' की बातें अपने दिमाग से नहीं हटा पाता। वह दो बार आई. ए. एस. की परीक्षा में बैठा और लिखित में उत्तीर्ण हुआ, लेकिन 'इंटरव्यू' में मामला चौपट हो जाता। हर बार ऐसे सवाल पूछे जाते कि वह चकरा जाता —ऐसे-ऐसे सवाल जिन के उत्तर सामान्य-ज्ञान की किताबों, यहां तक कि 'इनसाइक्लोपीडिया' तक में नहीं मिल सकते थे। एक 'इंटरव्यू' में किसी सदस्य ने उस से पूछा था कि भारत में अगर अंगरेज नहीं आये होते तो इस समय कौन-सा बादशाह यहां राज्य कर रहा होता ? इस प्रश्न का उत्तर भला वह क्या देता ? वह अपने को स्वाभाविक दशा में लाया और फिर व्याकरण और 'मेघदूतम' रटने लगा। इस बार उसे 'इंटरव्यू' में अवश्य सफल होना चाहिये।

लिखित परीक्षा में वह अच्छे नंबर ले ही चुका है, बस, इंटरव्यू में और निकल जाये ! हां, इस बार उस ने एक काम और किया है—उस ने 'इंटर-व्यू बोर्ड' के सदस्यों की रुचियों और विचारों का भी पता लगाना शुरू किया है। अब वह जान चुका है कि सदस्यों के व्यक्तिगत विचारों का भी बहुत महत्व है। उसे याद आया कि एक बार एक वृद्ध सदस्य ने पूछा था कि उस दिन के मौसम के बारे में उस का विचार क्या था ? और उस ने चहक कर कहा था, ''मौसम बड़ा सुन्दर है।'' फलस्वरूप वे सज्जन नाराज हो गये और उन्होंने हरीशानंद को बिल-कुल नालायक करार दे दिया था। बाद में पता चला कि उस दिन उन सज्जन का हाजमा खराब था और वह दिन उन्हें बेहद मनहूस लग रहा था।

हरीशानंद ने पता लगाया था कि इस बोर्ड के एक सज्जन सरकारी नीतियों के प्रबल समर्थक हैं, अतः उस ने सरकारी पत्रिकाओं की पुरानी फाइलें चाट डाली थीं। एक सदस्य को अपने बंगले के अहाते में सब्जियां उगाने का शौक था, अतः उस ने खेती-बाड़ी पर दर्जनों पुस्तकें पढ़ डाली थीं। इस प्रकार वह सदस्यों का सामना करने के लिए पूर्ण तैयार था।

हां, वेशभूषा के मामले में अभी तक वह अनिश्चित था। उसे एक 'इंटर-व्यू' की याद आयी। वह क्रिमसन लेक (सुर्ख लाल-जैसा) रंग का सूट पहन कर 'इंटरव्यू' में गया था। उस के कपड़ों को देख कर एक सदस्य ने पूछा था, ''क्या आप का संबंध पीकिंग के कम्युनिस्टों से है ?''

''जी . . . जी . . . मैं आप का मतलब नहीं समझा . . .'' वह हकला गया था।

''आप ने सूट लाल रंग का पहन रखा है !''

हास्य-व्यंग्य

चिट्ठी मनभरनी की

प्रवीणकुमार व्यास

परान पियारे डीयरजी के कमल-चरन में मनभरनी का रोज-रोज का परनाम। आगे, तुम को गये हुए इत्ता दिन हो गया कि भैंया ने अदरक सुखा कर सोंठ बना लिया। बाघ का कितना आहार खतम हो गया लेकिन बकरी का आहार नहीं आया। मुंहझौंसा डकपिउनवा सब की चिट्ठी लाता रहा मगर मेरे रोज पूछने पर भी तुम्हारी चिट्ठी कभी नहीं दिहिस। भला करे भगवान उस का कि आज तुम्हारा लिफाफा दे गे किया। लिफाफा में एकको चिट्ठी नहीं थी, पर हम अंदाजा लगा लिया कि ऐसा वुड़वकइ तुम ही कर सकते हो।

तुम जाये घड़ी कहते थेव कि मोहे नयी तरह की चिट्ठी लिखीयो। सोई नयी तरह कौन तरह होता है? शुलीया, रमसखीया, शिलो सब अपने पति को ऐसे ही पत्र लिखे हैं। ऊ लोग डीयर नहीं लिखती हैं। तुम हम को डीयर कह के बुलाते थे इसलिए हम डीयरजी लिख दिया है। और तुम ने सेर की किताब भेजने को कहा था पर किताब तो मिली नहीं। किताब रहती तो हम भी सेर लिख देते।

शीला, सुरसतीया वगैरह लिख के भेजती हैं लेकिन तुम तो कहते थे ई दोहा-ओहा पुरानी चीज है। यही वजह कर नहीं लिखा, आगे से एक किताब जरूर भेजना। लेकिन याद रहे, बंसीधर बोलता रहे कि अब सेर नहीं चलेगा, किलो चलेगा। सो सेर की किताब की जगह किलो वाली भेजना नहीं तो फिर सेर पढ़ कर 'मार वल्ले से' कहने की बजाय तुम बिगड़ कर कहोगे कि यह भी पुराना तरह है। मैं जानती हूं, तुम कितना जोर से बिगड़ते हो। खाली बादल की तरह गरजते हो, बरसते थोड़ी हो जी। उसी दिन रहरी के खेत में मेरा हाथ हाथ में ले कर तुम सनीमा का एक गीत गा रहे

संतुष्ट था। इस बार उस का चुना जाना निश्चित था। वह मस्ती में झूमता चला जा रहा था कि उस के एक परिचित मिल गये। उन्होंने पूछा, " 'इंटरव्यू' कैसा हुआ ?"

"बहुत अच्छा ! अभूतपूर्व !" उस ने चहक कर उत्तर दिया।

"तब तो तुम्हारा चुना जाना असंभव है," उन्होंने निराशा से कहा।

"अजी, हर मेंबर ने मेरे उत्तरों की तारीफ की !"

"तभी तो तुम्हारा चुना जाना असंभव है !"

"क्यों ?" उस ने चिढ़ कर पूछा।

"तुम्हारी कोई सिफारिश है ?"

"नहीं। लेकिन इस से क्या ? 'इंटरव्यू' तो अच्छा हुआ है।"

"तुम मूर्ख हो," इतना कह कर परिचित आगे बढ़ गये।

लेकिन उस के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब समाचार-पत्रों में प्रकाशित चुने गये उम्मीदवारों की सूची में उस का नाम नहीं था। उस ने सूनी आंखों से बाहर देखा। सड़क पर एक पुरानी-सी कार बिगड़ी पड़ी थी। उस ने सोचा कि उस का जीवन भी अब उसी रुकी हुई गाड़ी की तरह हो चुका है। वह अब कभी आगे न बढ़ सकेगा। उसे सामने एक घाटी दिखायी पड़ी—मौत की घाटी। उस ने अपनी आंखें बंद कर उस में छलांग लगा दी।

तभी वह उठ बैठा। उस के माथे पर पसीना चुहचुहा आया था। उस ने बाहर देखा—ऊषा की लाली फैल चुकी थी। वह फिर सामान्य-ज्ञान की पुस्तक पर झुक गया।

वर्माजी को अपने पूर्वजों का बनवाया मकान बिलकुल पसंद नहीं था अतः उन्होंने उसे बेच देने का पक्का इरादा कर लिया। इस के लिए उन्होंने एक दलाल से कह भी दिया। दो-तीन दिन बाद दलाल ने उन्हें फोन पर बताया कि उस ने एक ग्राहक ढूंढ़ लिया है।

"लेकिन अब मकान नहीं बेचना चाहता," वर्माजी ने कहा।

"आखिर क्यों ?" दलाल ने हैरान हो कर पूछा।

"कल के अखबार में तुम्हारा इस मकान के संबंध में विज्ञापन पढ़ कर मैं ने महसूस किया कि यह मकान बहुत ही शानदार है और इसे नहीं बेचना चाहिये।"

*

"आप अपने शिकारी जीवन की कोई ऐसी घटना सुनाइये जिस में बाल-बाल बचे हों !"

"अजी, मैं क्या अनाड़ी शिकारी हूं जो शिकार से बाल-बाल बचता ! अजी साहब, मैं नहीं, हजारों जंगली जानवर मेरी गोली से बाल-बाल बचे हैं।"
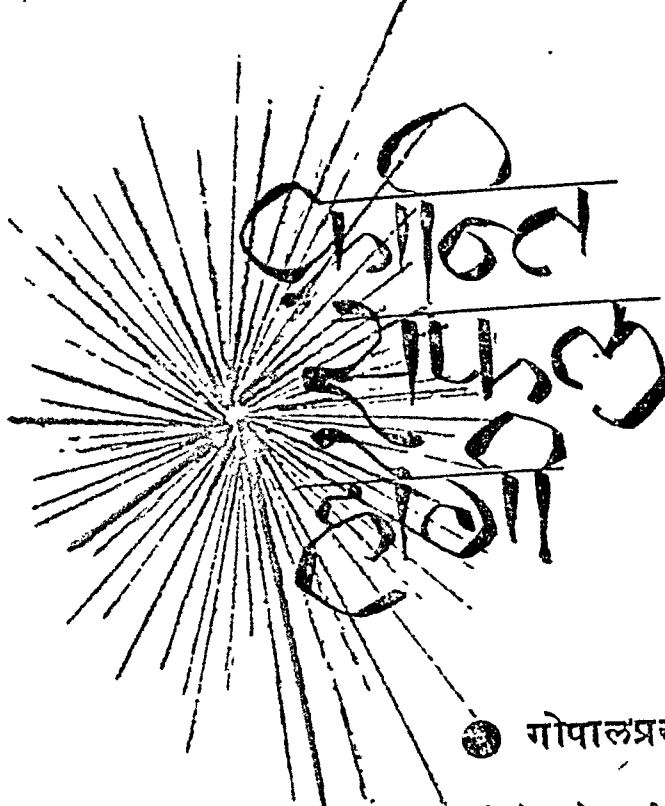
● गोपालप्रसाद व्यास

हिंदी भाषा नहीं है। हिंदी तो विचार है, सिद्धांत है, क्रांति है। भाषा तो अभिव्यक्ति का माध्यम भर होती है। हिंदी तो स्वयं अभिव्यक्ति है। भाषा तो केवल साधन होती है। हिंदी तो साध्य भी है और साधना भी। भाषा तो केवल बोली और लिखी जाती है। हिंदी तो वाणी है, जिसे कलम पूरी तरह उतार नहीं सकती, जिह्वा जिसे व्यक्त करने में पूरी तरह असमर्थ है।

हिंदी देववाणी नहीं नागरी है। वह पंजाब की पंजाबी, बंगाल की बंगाली या तामिलों की तमिल नहीं, वह तो निखिल हिंद की हिंदी है। वह सदियों की रूढ़, परंपरा और विगत के दर्प से कुंठित अहं-भावना नहीं, वह नये युग के नये सवेरे की नयी किरण है—नवोन्मेष से मुकुलित, नयी क्रांति से प्रेरित।

हमारे युग की प्रथम क्रांति का मंगलाचरण १८५७ में हुआ। तब विदेशी शासन के विरुद्ध पहली बार हिंदी जागे। बलिदानों की अमिट परंपरा पर पग धरती हुई यह क्रांति १९४७ में सफल हुई, जब जनता के कंधों पर से विदेशी शासन का जुआ उतार कर फेंक दिया गया। संसार की पहली रक्तहीन क्रांति! जिस ब्रिटिश राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, वह हिंदियों के असहयोग से पस्त हो कर हिंद से स्वयं ध्वस्त हो गया। जनता को अपना राज मिला।

इस राज को सुराज बनाने के लिए पुनः दूसरी क्रांति का आयोजन हुआ। राज और जनता के बीच की दीवारें
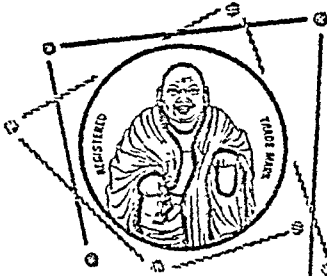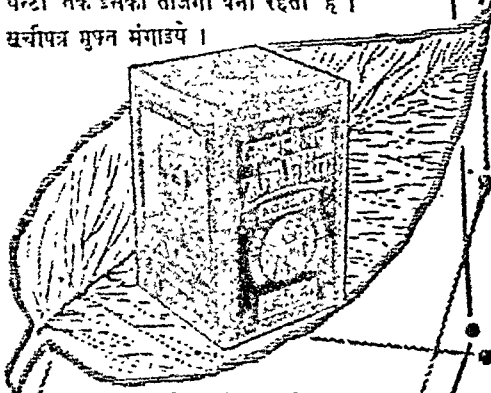
थे। और तभी तुम्हारे हाथ में से अपना हाथ छुड़ा कर जब मैं अपना सिर जोरों से खुजलाने लगी तब तुम ने कहा था कि मैं जाते ही ढील मारने की दवाई भेजूंगा। तब से कितनी बार अकली बुआ और मैया से मैं ने ढील हेरवाया मगर तुम्हारी दवाई नहीं आयी, नहीं आयी, नहीं आयी। और अब मेरी जिन्दगी में आवेगी भी नहीं। जब मैं मर जाऊं तो मेरे साथ जला देना। तुम को मेरी क्या फिकिर है? जरा मेरा दिल देखो!

उस दिन सोमवारी मेले में जब तुम मुझे अनरसे की गोली दे रहे थे और लभु काका ने तुम्हें ऐसा करते देख लिया था और मारे लात-जूते के तुम्हारा ओखा झाड़ दिया था। तब थी। रास्ते भर मैं रोती आयी। एक अनरसे की गोली तुम को खिला दी थी। रास्ते भर मैं रोती आयी। एक तुम्हारा दिल है। तुम वहां रोज सनीमा देखते होगे। सुनती हूं कि सनीमा में मरद अपनी परेमीका को ऐसे ही छोड़ कर दूसरी औरत से वियाह कर लेवे है। तुम जो देखोगे, वही न सिखोगे!

ऐसी जी करता है जी कि यह खटमलों वाली खटिया उड़नखटोला बन जाती तो सिधे तुम्हारी कालीज में पहुंच जाती। तुम्हारी याद बहुत आती है। ढील की दवाई और बंसीधर के लिए लेमचुस जरूर से जरूर भेजना और सिर में खोंसे वाले किलिप और रिबीन भी। कम लिखा, ज्यादा समझना।

तुम्हारी परेम-पियासीनी—मनभरनी

हम कैसे स्वतंत्र हैं जी, कि हमारा तंत्र विदेशी भाषा की अनजान कुंड-लियों में बंद है ? यह कैसा राज है जी, जिस की कोई अपनी राजभाषा नहीं है ? यह कैसी भाषण और लेखन की आजादी है जी, जिस में अपनी ही भाषा को मान्यता प्राप्त नहीं है ? यह कैसा हिंद है जी, जिस में खुद हिंदी को ही प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं ? यह कैसी क्रांति है जी, जिस के फलों पर अंग-रेजी तोते ही चोंच मार रहे हैं ? कौन कहता है जी, कि अंगरेज चले गये ? वे हमारे दिल पर, दिमाग पर, प्रजा पर, कार्य-प्रणाली आदि पर आज भी पूरी ताकत के साथ बने हुए हैं ।

पर नहीं, क्रांति विफल नहीं होगी । जो विफल हो जाये, वह क्रांति नहीं हुआ करती । वह आवेग होता है । जो विफल हो जाये, वह सिद्धांत नहीं स्वार्थ हुआ करता है । जो गूंज कर रह जायें, वे उत्तेजक नारे हुआ करते हैं, विचार नहीं । हिंदी नारा नहीं, सिद्धांत है । वह विफल नहीं होगी । यह नेताओं का नहीं, जनता का आंदोलन है, जो दबाया नहीं जा सकेगा ।

यह प्रश्न केवल हिंदी का नहीं, समूचे हिन्द का है । यह देश की सभी प्राणवान भाषाओं का प्रश्न है । इस का समाधान युग की राजनीति को करना ही पड़ेगा । आज नहीं, कल । कल नहीं, परसों । एक व्यक्ति के जीवन में वर्षों का मूल्य बड़ा होता है, मगर राष्ट्र के जीवन में ? राष्ट्रों के जीवन में दशाब्दियों का महत्व तो पल के बराबर भी नहीं । हां, क्रांति के वलाहक वलहीन न हों । अपने मनोवल को क्षीण न होने दें । क्रांति-कारियों के जीवन में ऐसे उतार-चढ़ाव तो आया ही करते हैं ।

मोटर तो चुरा ली उस ने, पर सितारे गर्दिश में थे वेचारे के । एक ही सप्ताह हुआ होगा कि मोटर के असली मालिक ने धर पकड़ा । हुआ यों कि हजरत बड़े फर्राटे से गाड़ी ले जा रहे थे । सिगनल की बत्ती लाल हो जाने पर आप ने गाड़ी रोकी और एक सिगरेट निकाल कर मुंह में लगा ली । सुलगाने ही वाले थे कि ट्रैफिक के सिपाही ने धर दबाया और चोरी के आरोप में गिरफ्तार कर लिया । मजे की बात यह है कि यह सिपाही ही मोटर का मालिक था । घटना पेरिस की है ।

★

पति : विवाह के बाद तो मेरी जिन्दगी कुत्ते की हो गयी है —बिलकुल इस टामी-जैसी ।

पत्नी : ईश्वर के लिए इतना झूठ न बोला करो । ये वेचारा तो रात में गुर्राता है और दिन में खर्राटे लेता है ।

तोड़ी जाने लगीं। राजा गये, नवाव गये, जमींदार और ताल्लुकेदार गये। भूमि किसान की हुई। किसान और राज्य के वीच के विचौलियों का खात्मा कर दिया इस दूसरी क्रांति ने।

लेकिन दो क्रांतियों के वाद भी जनता का राज सुराज नहीं वन सका क्योंकि किसान की वात शासक की समझ में नहीं आती थी और शासक की वात को समझने में किसान असमर्थ थे। मजदूरों की समस्याएं सरकार के लिए अनजानी थीं और मजदूर सरकार के मामलों से अनभिज्ञ थे। सरकार और जनता दोनों के वीच विदेशी राज और विचौलियों के जाने के वाद भी गहरा फासला वना हुआ था। वे एक-दूसरे के दुख-दर्द को जानते-पहचानते तो थे, मगर न तो अभिव्यक्त कर पाते थे और न दूर कर पाते थे। सरकार किसी और भाषा में सोचती थी तथा जनता किसी और भाषा में। सरकार किसी और भाषा में काम करती थी तथा जनता किसी और भाषा में। देशी भाषाओं और सरकार के वीच में विदेशी अंगरेजी मध्यस्थ वनी हुई थी। वह सुराज के प्रकाश को वीच में ही रोक लेती थी और जनता का अंधकार मिट नहीं पाता था। १९५० में तीसरी क्रांति का सूत्रपात हुआ। संविधान-निर्मात्री सभा ने निर्णय किया कि २६ जनवरी १९६५ से जनता और सरकार के वीच की अंगरेजी-रूपी दीवार गिरा दी जायेगी।

तिथि आयी लेकिन दीवार नहीं गिरी। उलटे इन १५ वर्षों में जहां-तहां से जो इक्की-दुक्की ईंटें खिसक गयी थीं, उन की मरम्मत के उपक्रम होने लगे। सोचा जा रहा है कि पुरानी दीवार पर लगे हाथों सीमेंट भी कर दिया जाये।

सरकार सोचती है कि वह अंगरेजी के घेरे में सुरक्षित है। जेलों में रहनेवाले पुराने क्रांतिकारी आज खुशी से अंगरेजी की कारा में वंद हैं। सोचते हैं, इस से वे और उन की सरकार सुरक्षित है। उन के हाली-हमाली भी यही चाहते हैं। अंगरेजी उन की रोजी-रोटी वन गयी है। क्रांति को धक्का हमेशा स्वार्थ और पेट ही ने तो दिया है।

तो क्या क्रांति विफल हो गयी? क्या सरकार को अफसरों की पकड़ और अंगरेजी की जकड़ से मुक्त नहीं कराया जा सकेगा? क्या सरकार और जनता के वीच के अंगरेजीदां विचौलियों का अव अंत नहीं होगा? क्या देश की भावना कंठ में घुट कर ही दम तोड़ देगी? क्या जनतंत्र में जनता की वाणी को समादर प्राप्त नहीं होगा? क्या समाजवाद अंगरेजी के ड्राफ्टों और आदेशों में ही सिमट कर रह जायेगा? विदेशी शासन से सहज मुक्ति पाने वाला भारत क्या विदेशी भाषा की दासता से अपना दामन नहीं छुड़ा पायेगा? क्या योजनाएं ऊपर से चलेंगी और उन को जनता की वाणी और विश्वास प्राप्त नहीं होगा? क्या ज्ञान और विज्ञान हम पर आरोपित ही होते रहेंगे? क्या नयी दुनिया में सिर उठा कर चलने के लायक कोई गर्व और गौरव हमारे वच्चों के पास नहीं वचेगा?

तेज किरणों के कारण श्यामा वनी वह सलोनी सुन्दरता मन-प्राण को वेसुध वनाये जा रही थी। थोड़ी दूर आगे वढ़ने के वाद ऊंचे पहाड़ पर एक प्राचीन दुर्ग दिखायी पड़ा। तरुण ने विना पूछे ही वताया, "यह इस देश का सव से प्राचीन और महान दुर्ग है।" गाड़ी चूंकि वड़ी तेज गति से भाग रही थी, इसलिए उस दुर्ग को १-१॥ मिनट तक ही आंखों में अटकाया जा सका।

म्युनिख मेरा पहला मुकाम था। वहां पहुंचते-पहुंचते संध्या हो गयी। अचानक वादल घिर आये और जोरों की वर्षा भी होने लगी। इंजीनियर ने भारत-प्रेम दिखा कर मुझे कई अच्छे होटलों का पता वता दिया।

मैं भीगता-भागता सामने के विशाल होटल में पहुंचा तो पता चला कि उस में कोई भी कमरा खाली नहीं है। दूसरा होटल पास में ही था। मैं ने अपने दोनों सूटकेस अपने हाथों में टांगे और 'होटल रेक्थालर' में पहुंच गया। सौभाग्यवश वहां दो कमरे खाली थे। मैं ने ४५ रुपये रोज किराये का एक विस्तर वाला कमरा रिजर्व करा लिया। जव होटल का मैनेजर मेरा पता और पेशा लिख रहा था तो पास में खड़ा होटल का यात्री-सहायक मुझे घूर रहा था। पासपोर्ट जमा करने के वाद वह मुझे पांचवी मंजिल पर लिफ्ट द्वारा ले गया। कमरा खोल कर मुझे अन्दर दाखिल कराते हुए उस ने कहा, "मैं जरमन नहीं, फ्रेंच हूं। मैं यहां

यात्री-वन्धु का काम करता हूं। मेरे पिता महायुद्ध में मारे गये थे। मां ने किसी और से शादी कर ली। मैं वारह वर्ष की उम्र से ही यहां काम कर रहा हूं।" पूछने पर आन्द्रे ने वताया कि अव उस की उम्र वीस वर्ष की है। वह भी भारत का प्रेमी निकल आया। वोला, "मुझे भगवान वुद्ध की मूर्ति देख कर वड़ी शान्ति मिलती है। आप अपने देश में लौट कर वहां से उन की एक प्रस्तर-मूर्ति जरूर भेजें।

नहा धो कर जव मैं खाने के लिए नीचे के रेस्तरां में आया तो वहां आन्द्रे पहले से ही मौजूद था। उस ने मेरे आते ही पूछा, "आप शाकाहारी हैं या मांसाहारी?" मैं ने कहा, "दोनों हूं," तो वह ठहाका मार कर हंस पड़ा और अपनी मर्जी से खाने का आदेश देने लगा। सभी चीजें एक-से-एक स्वादिष्ट। मैं ने आन्द्रे के न चाहने पर भी उसे भोजन में शामिल कर

जरमनी की सीमा में प्रवेश करते ही प्रकृति का जो मनोरम दृश्य सामने आया, वह बड़ा पुलकित करने वाला था। यदि मैं ट्रेन में सवार न होता तो मंत्रमुग्ध हो कर उन में खो जाता। जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले!
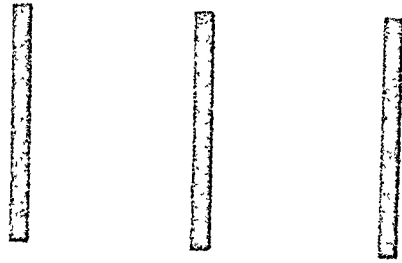
मगर मेरी तो बोलती ही बंद। निर्निमेष स्थिति में मुझे देख कर पास में बैठे हुए एक जरमन तरुण ने कामचलाऊ अंगरेजी में पूछा, "क्या आप पहली बार हमारे देश में आये हैं?" मेरे 'हां' कहने पर वह उल्लसित हो कर बोला, "क्या आप का देश ऐसा नहीं है?" मैं ने कहा, "ऐसा ही है, इसीलिए मैं इतनी आत्मीयता अनुभव कर रहा हूं।" तरुण की आंखें चमक उठीं। उस ने गहरी हरी पहाड़ियों और सघन खेतों की ओर मुझे आकर्षित करते हुए कहा, "प्रत्येक भारतीय जन्मजात कवि होता है। मैं इंजीनियर हूं। इन दृश्यों की सुषमा का जादू क्या जानूं!" इस पर हम दोनों हंस पड़े।

मैं जिस ट्रेन से यात्रा कर रहा था वह अन्तरराष्ट्रीय ट्रेन थी। उस का रास्ता अद्भुत था। दोनों ओर उच्च गिरि-शृंखलाएं, उन के नीचे दूर तक फैली हुई प्रगाढ़ हरीतिमा। सूरज की

दोनों ही जरमन हैं !"

मैं जरमनी में दस-बारह दिन ही रहा, मगर वहां मुझे जो आत्मीयता मिली वह यूरोप के और किसी भी देश में नहीं मिली। एक जरमन विद्वान ने मुझ से एक दिन कहा, "हम लोग एक ही रक्त के हैं। एक दूसरे को देख कर न जाने क्यों इतना अपनापन प्रतीत होने लगता है। सच कहता हूं, मैं तो अपनी पूर्वज-भूमि आप के भारत को ही मानता हूं।"

इस विद्वान की धारणा मुझे जरमनी-यात्रा में कई जगह चरितार्थ होती दिखायी पड़ी। कोई भी जरमन बच्चा मुझ काले आदमी को देख कर अलग नहीं रहता था। और देशों के बच्चों के ठीक विपरीत, वह आ कर मेरी गोद में बैठ जाता था और अपनी भाषा में जाने क्या-क्या पूछताछ करना शुरू कर देता था। कई बच्चे तो ऐसे मिले जिन्होंने मेरे सारे चेहरे को चुम्बनों से भर दिया और सीने से चिपक गये। मेरी समझ में इस आकर्षण का कोई वैज्ञानिक कारण नहीं आया, मगर उस जरमन विद्वान की बात रह-रह कर मेरे मस्तिष्क में कौंधने लगी कि हम एक ही रक्त के हैं।

मेरे साथी बनर्जी महोदय ने एक जरमन से पूछा, "क्या आप अपने देश के एकीकरण के लिए पुनः हिटलर-जैसे किसी नेता की अपेक्षा करते हैं ?" इस पर वह बिगड़ कर बोला, "बस कीजिये, हमें अब हिटलर की जरूरत नहीं है। हमें गांधी और जवाहर-जैसे नेता चाहियें, जो देश को एकीकृत करा सकें। जरमनी कभी गुलाम नहीं रह सकता।"

बहुत पुरानी बात है, एक आदमी आया और उस ने हुक्म दिया—'दुनिया के सारे आदमियों को एक कतार में खड़ा कर दो।' इतना कहना था कि चारों तरफ तहलका मच गया और लोग आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। खून बहता रहा उन लोगों की तलवारों से जो कतार में खड़े होना नहीं चाहते थे और उन लोगों से जो कतार में खड़े होने की हिमायत करते थे। यह देख उस हुक्म देने वाले आदमी ने अपने बाल नोंच लिये और सदमे के कारण उस के दिमाग की नसें फट गयीं। मगर उस के मरने की खबर आज तक उन लोगों तक नहीं पहुंची है जो इस बात पर लड़ रहे हैं कि कतार में खड़े होना चाहिये या नहीं . . . लगता है उस हुक्म देने वाले आदमी को स्वर्ग में भी शांति नहीं मिलेगी।

लिया और दो जाम भी पिला दिये। मस्त होने पर उस ने कहा, "वर्षा थम गयी है। चलिये, म्युनिख शहर की एक हलकी झांकी दिखा लाऊं।" मैं उस के साथ बाहर जो निकला तो रात के बारह बजे के करीब वापस लौटा। लगभग चार घण्टे तक होटल से गायब रहने के कारण आन्द्रे पर उस की मालकिन बिगड़ उठीं। जब उस ने मेरा नाम लिया और मेरा परिचय इस रूप में दिया कि ये प्रसिद्ध भारतीय कवि, लेखक और पत्रकार हैं तथा जरमनी पर एक पुस्तक लिख रहे हैं, तो मालकिन का पारा नीचे उतर आया और उन्होंने मुसकरा कर उस से जरमन में कुछ कहा, जिस से उस की बांछें खिल गयीं। मेरी भी जान में जान आयी।

होटल की मालकिन की एकमात्र पुत्री मोनिका की उम्र १६ वर्ष के आसपास होगी। उस की कविता, संगीत और चित्रकला के प्रति रुचि थी। उसे एक करोड़पति मालकिन की एकमात्र पुत्री के रूप में जानने से पहले मैं ने उसे दो दिन तक एक मेहतरानी की लड़की ही समझा। वह शाम को नीचे की सभी कोठरियों में व्रुश करती थी और फर्श पर बिछे कालीन के पीतल वाले बेल्ट पर 'ब्रासो' रगड़ कर उसे चमकाती थी। सिगरेट के जले-बुझे टुकड़ों को भी साफ करती थी। मैं ने इन कामों के आधार पर ही उपर्युक्त अनुमान लगाया था। तीसरे दिन मैं उस के साथ शहर की परिक्रमा करने गया। जब आठ घण्टे बाद थक कर लौटा और मैनेजर से पूछा कि नौकरानी को क्या इनाम देना चाहिये, तो मैनेजर शेर की तरह गरज कर बोला, "आप पागल हो गये हैं क्या?" मेरे हाथ जोड़ कर माफी मांगने पर उस ने बताया कि यह लड़की इसी तरह के सात होटलों की स्वामिनी की एकमात्र सन्तान है। एक-एक होटल की लागत २०-२५ लाख रुपये से ऊपर है।" मैनेजर की इस सूचना से मैं सन्न रह गया और मोनिका के साथ-साथ सारी जरमन जाति के प्रति नतमस्तक हो गया। वाह रे देश!

मैं ने म्युनिख में अनेक दिन बिता दिये। मोनिका मुझे रोज वहां के दर्शनीय स्थानों पर ले जाने लगी। उस ने मुझे वह स्थान भी दिखाया जहां हिटलर एक ऊंचे स्थल पर चढ़ कर खून खौलाने वाला भाषण दिया करता था। अब वह स्थान बमबारी के कारण गड्ढों और खंडहरों का भयावह वातावरण प्रस्तुत कर रहा था। मुझे उन ढूहों की तरफ कातर नेत्रों से ताकते देख कर मोनिका ने मेरा हाथ अपने हाथ में पकड़ लिया और जोर से अपनी ओर खींचते हुए कहा, "आइये, चलें यहां से! यह जरमनी की बरबादी का चिह्न है। चलिये 'ईशार' नदी के तट पर बैठ कर पिछली बातों को भुला दिया जाये!"

ईशार नदी जून के महीने में जवानी पर थी। उस की उच्छल ऊर्मियों को अपने चरण से स्पर्श करते हुए मोनिका ने पूछा, "कहिये, कैसी है यह जरमन सरिता?" मैं ने कहा, "ठीक तुम्हारी ही तरह चंचल और तेज।" मोनिका हंस कर बोली, "आखिर हम

के अतिरिक्त ये सामान ढोने के काम में भी आते थे। राजे-महाराजे इन्हें सैकड़ों की संख्या में रखते थे। अनुमान है कि आमेर-नरेश राजा मानसिंह के पास लगभग ५०० गाड़े थे जो सामान ढोने के काम आते थे।

गाड़ों के पश्चात रथ की रचना हुई। इसे गाड़े का विकसित रूप ही कहा जा सकता है। राजपूताने में रथों की परंपरा बहुत पुरानी है। रथों के निर्माण में अनेक प्रकार की सामग्री तथा सामूहिक सहयोग की आवश्यकता होती थी—काठ के लट्ठे, पतले तख्ते, अच्छे बांस के लंबे-पतले और लचीले डंडे, मजबूत और मुलायम चमड़े के थान एवं पट्टे, चमड़े के महीन तंतु, लोहे की छड़ें, धुरी, जंजीर, कमानी और कांटे, झालरें, कलश, सूत एवं सन के रस्से, ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र। ये रथ अपने-अपने प्रदेश की कला की ओर भी संकेत करते थे। चमार, लुहार, ठठेरे, दर्जी आदि अपने सामूहिक प्रयास से रथों का निर्माण करते थे। ये कारीगर खानदानी पेशेवर होते थे।

रथ में 'ठोकर' नामक अंग का विशेष महत्व था। यह रथ का अग्र-भाग होता था। ठोकर काठ के पतले डंडों तथा बांस से बनती थी। बैलों के लिए जुआ इसी भाग में होता था। नीचे दो पहिये होते थे और ऊपर के भाग में लोहे का आंकड़ा होता था। इसी ठोकर में रथ का अंग जोड़ दिया जाता था। ठोकर पर माच या मचान लगाने से खरसल, बहल और सग्घड़ बनती थी। विभिन्न प्रकार के माच लगाने से विभिन्न प्रकार की सवारियां बनती थीं। खरसल बनाने में ठोकर पर चार पाये वाला माच लगता था। यदि ठोकर पर चौकोर माच और उस के चारों किनारों पर चार डंडे लगा कर समचौकोर छतरी रख दी जाती थी, तो वह 'बहली' कहलाती थी। यदि ठोकर पर पलंग के आकार की माच और उस पर लंबी छत लगा दी जाती थी तो सग्घड़ बन जाती थी। बहल में एक आदमी बैठ सकता था और चालक के सिर तक छतरी नहीं आती थी, जब कि सग्घड़ में चार आदमी बैठ सकते थे और चालक के सिर के ऊपर भी छतरी रहती थी।

ठोकर सग्घड़ के माच के ऊपर यदि गोलाकार छतरी बना दी जाती थी और चारों खंभों में कमानियां लगा कर चार द्वार निर्मित किये जाते थे, तब रथ बनता था।

प्रयोग की दृष्टि से बहल गृहस्थों की स्त्रियों, धनवान वैश्यों, राज्य के ओहदेदारों आदि के निजी उपयोग में आती थी। खरसल हवाखोरी के लिए काम में लायी जाती थी। इस में धनिक, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा राज्य के कर्मचारी नगर-निरीक्षण अथवा वायु-सेवन के लिए निकलते थे। सग्घड़ में राज्य के उच्च कर्मचारी दौरा करते थे। शिष्ट पुरुषों के बैठने के लिए ठोकर में 'विशिष्टांग' जोड़ दिया जाता था। विशिष्टांग की रचना सग्घड़ के ऊपर लगे माच पर होती थी। इस के तल-भाग में दो पहिये और जोड़ दिये जाते थे। दो पहिये रहने पर भी विशिष्टांग उस समय तक नहीं चल सकता

प्राचीन राजस्थान की सवारियों में गाड़ा, रथ, वहली, खरसल और सग्घड़ प्रमुख थीं। इन में से अंतिम चार सवारियों की रचना गाड़ा के वाद हुई है। वास्तव में पहियेदार सभी सवारियों का जन्मदाता गाड़ा ही है।

खरसल, वहली और रथ इस के विकसित एवं परिष्कृत रूप हैं। प्राचीन काल में गाड़ा का अगला भाग त्रिकोणाकार और शेष भाग समचौकोर होता था। उस के अंग-उपांग लंबी कमानियों पर काठ के तख्ते जड़ कर वनाये जाते थे। समूचा ढांचा धुरी लगे दो पहियों पर टिका दिया जाता था। आजकल भी इसी प्रकार से गाड़ा तैयार किया जाता है। इन गाड़ों का ऊपरी अंग पोला होता था। इस में छोटे-छोटे खाने वने रहते थे। राजपूताने में इन गाड़ों की रचना एक विशिष्ट जाति के लुहार करते थे। ये लुहार अपने औजारों सहित इसी गाड़े पर वैठ कर भ्रमण करके अपनी रोजी कमाते थे।

ये गाड़े ऊपर से खुले रहते थे। वर्षा आदि से वचने के लिए इन के कोणगत छेदों में डंडे लगा कर छतरी लगा दी जाती थी।

गाड़े गेहाकार भी होते थे। किनारों पर लंवे-लंवे डंडे लगा कर 'थप्पर' डाल देते थे। थप्पर के नीचे चारपाई के आकार का एक मंच रहता था जिस पर गाड़ेवाला अपने परिवार सहित रह सकता था। सामान मंच के आस-पास रखा जाता था। गाड़े मारवाड़, मेवाड़ और ढूंढार में अलग-अलग आकारों के हो जाते थे पर मूल आकृति में परिवर्तन नहीं आता था। सवारी

के अतिरिक्त ये सामान ढोने के काम में भी आते थे। राजे-महाराजे इन्हें सैकड़ों की संख्या में रखते थे। अनु-मान है कि आमेर-नरेश राजा मानसिंह के पास लगभग ५०० गाड़े थे जो सामान ढोने के काम आते थे।

गाड़ों के पश्चात रथ की रचना हुई। इसे गाड़े का विकसित रूप ही कहा जा सकता है। राजपूताने में रथों की परंपरा बहुत पुरानी है। रथों के निर्माण में अनेक प्रकार की सामग्री तथा सामूहिक सहयोग की आवश्यकता होती थी—काठ के लट्ठे, पतले तख्ते, अच्छे वांस के लंबे-पतले और लचीले डंडे, मजबूत और मुलायम चमड़े के थान एवं पट्टे, चमड़े के महीन तंतु, लोहे की छड़ें, धुरी, जंजीर, कमानी और कांटे, झालरें, कलश, सूत एवं सन के रस्से, ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र। ये रथ अपने-अपने प्रदेश की कला की ओर भी संकेत करते थे। चमार, लुहार, ठठेरे, दर्जी आदि अपने सामूहिक प्रयास से रथों का निर्माण करते थे। ये कारीगर खानदानी पेशे-वर होते थे।

रथ में 'ठोकर' नामक अंग का विशेष महत्व था। यह रथ का अग्र-भाग होता था। ठोकर काठ के पतले डंडों तथा वांस से वनती थी। वैलों के लिए जुआ इसी भाग में होता था। नीचे दो पहिये होते थे और ऊपर के भाग में लोहे का आंकड़ा होता था। इसी ठोकर में रथ का अंग जोड़ दिया जाता था। ठोकर पर माच या मचान लगाने से खरसल, वहल और सग्घड़ वनती थी। विभिन्न प्रकार के माच लगाने से विभिन्न प्रकार की सवारियां वनती थीं। खरसल वनाने में ठोकर पर चार पाये वाला माच लगता था। यदि ठोकर पर चौकोर माच और उस के चारों किनारों पर चार डंडे लगा कर समचौकोर छतरी रख दी जाती थी, तो वह 'वहली' कहलाती थी। यदि ठोकर पर पलंग के आकार की माच और उस पर लंबी छत लगा दी जाती थी तो सग्घड़ वन जाती थी। वहल में एक आदमी वैठ सकता था और चालक के सिर तक छतरी नहीं आती थी, जब कि सग्घड़ में चार आदमी वैठ सकते थे और चालक के सिर के ऊपर भी छतरी रहती थी।

ठोकर सग्घड़ के माच के ऊपर यदि गोलाकार छतरी वना दी जाती थी और चारों खंभों में कमानियां लगा कर चार द्वार निर्मित किये जाते थे, तव रथ वनता था।

प्रयोग की दृष्टि से वहल गृहस्थों की स्त्रियों, धनवान वैश्यों, राज्य के ओहदेदारों आदि के निजी उपयोग में आती थी। खरसल हवाखोरी के लिए काम में लायी जाती थी। इस में धनिक, प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा राज्य के कर्म-चारी नगर-निरीक्षण अथवा वायु-सेवन के लिए निकलते थे। सग्घड़ में राज्य के उच्च कर्मचारी दौरा करते थे। शिष्ट पुरुषों के वैठने के लिए ठोकर में 'विशिष्टांग' जोड़ दिया जाता था। विशिष्टांग की रचना सग्घड़ के ऊपर लगे माच पर होती थी। इस के तल-भाग में दो पहिये और जोड़ दिये जाते थे। दो पहिये रहने पर भी विशि-ष्टांग उस समय तक नहीं चल सकता

प्राचीन राजस्थान की सवारियों में गाड़ा, रथ, वहली, खरसल और सग्घड़ प्रमुख थीं। इन में से अंतिम चार सवारियों की रचना गाड़ा के बाद हुई है। वास्तव में पहियेदार सभी सवारियों का जन्मदाता गाड़ा ही है।

खरसल, वहली और रथ इस के विकसित एवं परिष्कृत रूप हैं। प्राचीन काल में गाड़ा का अगला भाग त्रिकोणाकार और शेष भाग समचौकोर होता था। उस के अंग-उपांग लंबी कमानियों पर काठ के तख्ते जड़ कर बनाये जाते थे। समूचा ढांचा धुरी लगे दो पहियों पर टिका दिया जाता था। आजकल भी इसी प्रकार से गाड़ा तैयार किया जाता है। इन गाड़ों का ऊपरी अंग पोला होता था। इस में छोटे-छोटे खाने बने रहते थे। राजपूताने में इन गाड़ों की रचना एक विशिष्ट जाति के लुहार करते थे। ये लुहार अपने औजारों सहित इसी गाड़े पर बैठ कर भ्रमण करके अपनी रोजी कमाते थे।

ये गाड़े ऊपर से खुले रहते थे। वर्षा आदि से बचने के लिए इन के कोणगत छेदों में डंडे लगा कर छतरी लगा दी जाती थी।

गाड़े गेहाकार भी होते थे। किनारों पर लंबे-लंबे डंडे लगा कर 'थप्पर' डाल देते थे। थप्पर के नीचे चारपाई के आकार का एक मंच रहता था जिस पर गाड़ेवाला अपने परिवार सहित रह सकता था। सामान मंच के आसपास रखा जाता था। गाड़े मारवाड़, मेवाड़ और ढूंढार में अलग-अलग आकारों के हो जाते थे पर मूल आकृति में परिवर्तन नहीं आता था। सवारी

उस दिन कलकत्ता के 'कलकत्ता थियेटर सेंटर' में मेरा नृत्य था। आठ बजे नृत्य कर जब मैं बाहर निकली तो एक सज्जन प्रतीक्षा करते मिले। उन्होंने नृत्य की बहुत प्रशंसा की और कहा कि वे तीन-चार दिन बाद 'न्यू एंपायर' में एक विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे हैं और उस में मेरा नृत्य भी शामिल करना चाहते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि मैं अभी चल कर बात पक्की कर लूं। यद्यपि रात हो चुकी थी, फिर भी प्रशंसा और ख्याति के लोभ में मैं उन के साथ कार में बैठ गयी। कार आधे घंटे बाद एक शानदार इमारत के सामने रुकी। लिफ्ट के द्वारा वे मुझे एक शानदार फ्लैट में ले गये और बैठक में बैठने को कह कर चले गये। पास के कमरे से हंसने की आवाजें तथा गिलासों की खनखनाहट सुनायी पड़ रही थी। लगभग पांच मिनट बाद उस कमरे में एक और लड़की आयी। मैं ने उस से पूछा, "क्या तुम भी कार्यक्रम में भाग ले रही हो?"

"कैसा कार्यक्रम?" वह चौंक कर बोली।

यह सुन कर मैं घबरा गयी और उस को वहां आने का किस्सा सुनाया। वह लड़की तुरंत मेरा हाथ पकड़ कर खींचती हुई इमारत के पिछले हिस्से में ले गयी और सीढ़ियों की ओर इशारा करके बोली, "जितनी जल्दी हो, यहां से भाग जाओ। इस गली में उतर कर दाहिनी ओर भागना। चौरंगी पर पहुंचते ही टैक्सी लेना और घर भाग जाना। भविष्य में कभी किसी अनजान पर विश्वास न करना।" मैं सीढ़ियां उतर कर उस अंधेरी तंग गली में सरपट भाग निकली।

—मंजुल, अजमेर

हमारे प्रशिक्षण-केंद्र (इंडो-स्विस ट्रेनिंग सेंटर) में सब शिक्षक विदेशी हैं। प्रशिक्षण समाप्त होने पर कुछ विद्यार्थी स्विट्जरलैंड भी भेजे

था जब तक उस में ठोकर नहीं जोड़ा जाता था। प्राचीन काल में विशिष्टांग और ठोकर के संयोग से विविध प्रकार के रथ बनाये जाते थे। ठोकर की रचना तो समान रहती थी, परिवर्तन विशिष्टांग की रचना में किया जाता था, जिस के कारण अनेक प्रकार के रथ देखने को मिल जाते थे।

रथ, बहल, खरसल, सग्घड़ आदि की मढ़ाई बड़े सुन्दर ढंग से होती थी। मृत पशुओं के ताजे चमड़े को चीर कर बारीक तार बना लिये जाते थे। ये तंतु भार में हलके और मजबूत होते थे इसलिए कीलों के बजाय इन्हीं का उपयोग किया जाता था। कारीगर इन तारों की लचक, कोमलता, मजबूती आदि बनाये रखने के लिए इन पर अनेक क्रियाएं करते थे।

उक्त सवारियों के निर्माण में, विशेषकर रथ-निर्माण के लिए राजस्थान के कई स्थान प्रसिद्ध थे। महाभारत काल में विराटनगर (वैराठ) और चंपावती (चाटसू) विख्यात शिल्पियों के गढ़ थे। मुगल काल तक चित्तौर, रणथंभौर, अजमेर, जैसलमेर, सांभर, खंडेला और मंडावर रथ-निर्माण कला के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इन नगरों के अतिरिक्त आमेर, अमरसर, राजोर, उदयपुर, दौसा, भोरवाड़ा, माचोरी, मनोहरपुर आदि स्थान भी रथ-निर्माण-कला के महत्व को स्थिर किये हुए थे। पहले जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, अलवर, बीकानेर, उदयपुर, कोटा, बूंदी, करौली और जैसलमेर भी रथ-निर्माण के लिए विख्यात थे।

प्राचीन काल के कुछ रथ ऐसे होते थे जो सहसा दिखायी पड़ कर गायब हो जाते थे, समीप रहने पर भी नहीं दिखायी पड़ते थे, दूर रहने पर भी स्पष्ट दिखायी पड़ते थे, खाइयों में गिरने पर नहीं टूटते थे, पानी के प्रभाव से बचे रहते थे, पर्वतों पर सरलता से चढ़ जाते थे, इतने हलके होते थे कि हवा में उड़ जाते थे, इतने भारी होते थे कि हटाये नहीं हटते थे, इतने प्रकाशवान होते थे कि लोगों की आंखें चौंधिया देते थे, घोर प्रहार होने पर भी न टूटते थे आदि। उस युग के युद्धों को देखते हुए ऐसे रथों का होना असंभव नहीं था। रथों पर सवार हो कर घमासान युद्ध किये जाते थे। महाभारत के युद्ध में रथ प्रचुर संख्या में प्रयुक्त किये गये थे।

मुगल काल में रथों का उपयोग कम हो गया था फिर भी वे लोकोपयोगी थे। इस काल में वे सवारी के काम अधिक आने लगे थे इसीलिए उन्हें विविध रीतियों से सजाया जाता था। उपयोगिता एवं प्रयोगों के अनुसार उन पर हंस, मयूर, सिंह आदि चिह्नों का भी प्रयोग अधिक होने लगा था। कभी-कभी एक ही रथ को विविध कार्यों के लिए भी प्रयुक्त कर लिया जाता था पर सांकेतिक चिह्न बदल दिये जाते थे। रथ पर सफेद चादर डालने से विधवाओं के जाने की सूचना मिलती थी, लाल चादर सौभाग्यवती स्त्रियों के गमन की, जरी की चादर नवविवाहिता स्त्रियों की और काली चादर मृत व्यक्तियों के जाने की सूचना देती थी।

जायेंगे। हमारे कुछ साथी शिक्षकों के सामने उन के देश की प्रशंसा और भारत की बुराई करते रहते हैं ताकि शिक्षक प्रसन्न हो कर उन्हें स्विट्जरलैंड भेज दें। परंतु विदेशी भारत की बुराई सुन कर खामोश ही रहते हैं। एक दिन एक छात्र ने अपने स्विस शिक्षक से कहा कि भारत बहुत ही गिरा हुआ देश है। यह सुनते ही वह भड़क गया। बोला, "तुम लोगों को तो चाहिये कि जो भारतीय विदेशी के सामने भारत की बुराई करे उसे चांटा मारो, लेकिन तुम स्वयं बुराई कर रहे हो! तुम लोगों को देख कर ही तो हम भारत के बारे में राय बनायेंगे। जब तुम लोग ऐसी बातें करते हो तो हम लोग यहां के बारे में क्या सोचेंगे?" यह सुन कर सब के सिर शर्म से झुक गये।

—मनवानी, चंडीगढ़

बात ७ अप्रैल, १९६४ की है। मैं उस दिन बटालियन का वेतन लेने कालसी से देहरादून जाने वाला था। मेरे मित्र सूबेदार वी. एच. केल-कर मेरे पास आये और बोले, "मैं भी देहरादून जा रहा हूं, अतः तुम भी मेरे साथ ही चलो।" मैं ने स्वीकार कर लिया। श्री केलकर दस बजे तक तैयार नहीं हो सके अतः मैं उन्हें छोड़ कर मोटर से रक्षकों के साथ चल पड़ा। हम ने लगभग २० मील का फासला तय किया था कि श्री केलकर पीछे से स्टेशनवैगन में आये और नम-स्कार करते हुए हम से आगे निकल गये। पर दो मिनट भी नहीं बीते थे कि एक सीमेंट से भरा ट्रक उन की स्टेशनवैगन से टकरा गया। हम गाड़ी रोक कर दौड़े। स्टेशनवैगन सामने से कुचल गयी थी। बड़ी कठि-नाई से दरवाजा खोल कर सब को निकाला और अपनी गाड़ी में डाल कर अस्पताल भागे। डाक्टर ने बताया कि केलकर तो तत्काल ही चल बसे थे। उन के साथी धनबहादुर वहां पहुंच कर चल बसे। मैं सोचता हूं कि यदि उस दिन मैं भी श्री केलकर के साथ चला जाता तो?

—दिवाकर शर्मा, रिकांग पिउ
(हिमाचल प्रदेश)

मैं कोयले की एक खान में काम करता हूं। खानों में दुर्घटनाएं अकसर होती रहती हैं। लगभग दो साल पहले की बात है, मैं एक सुरंग में से जा रहा था। मुझे सुरंग की छत के कुछ पत्थर ढीले-से मालूम पड़े। एक मिस्त्री को बुला कर मैं ने कहा कि वह उन्हें ठीक कर दे। लगभग दो घंटे बाद हांफता हुआ एक आदमी मेरे पास आया और बोला कि मिस्त्री दब गया। मैं भाग कर दुर्घटना-स्थल पर पहुंचा। मैं ने देखा कि मिस्त्री सकुशल बैठा है, केवल एक-दो हलकी चोटें ही उसे आयी हैं। हुआ यह कि जब वह गर्डर लगा रहा था, उसी समय करीब ३० मन वजन का एक पत्थर का टुकड़ा ऊपर से गिर पड़ा। नीचे पड़े दो पत्थरों के कारण वह बीच में ही अटक गया और फर्श से ऊपर रहा, अतएव मिस्त्री बच गया। जो आदमी देख रहा था उस ने सोचा
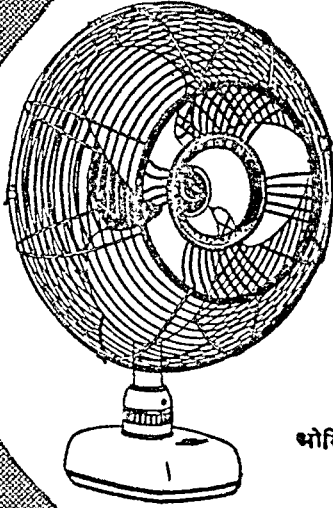
सर्वाधिक
लोक-प्रिय
ओरिएन्ट
पंखे
ओरिएन्ट जनरल इंडस्ट्रीज लिमिटेड
कलकत्ता-५४

मेरे एक सुशिक्षित और सुसंस्कृत मित्र हैं। पढ़ने के इतने शौकीन कि नयी से नयी साहित्यिक-विधा पर धाराप्रवाह बोल सकते हैं, परंतु उन की एक परेशानी है। वे अब तक किसी एक धंधे में जम कर नहीं लगे। कभी अध्यापन-कार्य किया तो कभी पत्रकारिता। अब इन सब से विमुख हो वे शेयर का धंधा करते हैं। कुछ दिन पहले वे मुझे मिले तो कहने लगे, "सोचता हूं, अध्यापन के क्षेत्र में लौट जाऊं। शायद मैं उसी के योग्य हूं, परन्तु डरता हूं कि कहीं वहां से फिर मन न उचट जाये।"

मन उचटने का रोग उन्हीं तक सीमित नहीं है। अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों की अवहेलना करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस मानसिक व्यथा में से गुजरना पड़ता है। ऐसे व्यक्ति को सदैव यह संशय रहता है कि जीवन की परिस्थितियों ने उस के साथ विश्वासघात किया है, अन्यथा वह असाधारण सफलता प्राप्त किये बिना न रहता।

वर्तमान से यह असंतोष व्यक्ति को जहां आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, वहां उसे प्रायः मानसिक रूप से अशान्त और व्याधि-ग्रस्त भी बना देता है। इस असंतोष को रचनात्मक मोड़ दिया जाये तथा व्यक्तित्व के संवारने-निखारने में इस का उपयोग किया जाये। इस के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति स्वयं को पहचाने तथा स्वाभाविक रुचियों-अरुचियों का विश्लेषण कर जीवन की नयी व्यवस्था अपनाये। इस में कोई संदेह नहीं कि यह आत्म-विश्लेषण प्रारंभ में बहुत पीड़ादायक होता है। व्यक्ति को निर्ममता से अपने चरित्र की सतही चीजों को उखाड़ कर रख देना होता है। परंतु, एक बार सूझ-बूझ से यह मानसिक अनुशासन आरंभ हो जाये तो यह हमारे व्यक्तित्व के विकास का सब से सशक्त साधन भी बन जाता है। इस का सब से सहज उपाय यह है कि हम अपने दोष और गुण अलग-अलग करके देखें। एक बार सिर्फ अपनी कमजोरियों पर दृष्टिपात करें,

भी नहीं था कि मिस्त्री के भाग्य से इतना बड़ा पत्थर बीच में अटक सकता है अत: वह यही समझ बैठा कि मिस्त्री दब गया।

—सतीश बत्रा, जे. के. नगर (वर्दवान)

गरमियों की छुट्टियां बिताने के लिए हम लोग कार द्वारा एक पहाड़ी स्थान को जा रहे थे। रात बिताने के लिए हम लोग एक गांव के डाक-बंगले में रुक गये। एकाएक जोरों की चीख सुनायी दी। हम लोग तुरंत चीख की दिशा की ओर भागे। देखा कि एक छोटा-सा खपरैल का मकान आग की लपटों में झुलस रहा था। तभी एक बच्चे के रोने की आवाज सुनायी दी। मैं उस ओर दौड़ी। लगभग एक वर्ष का बच्चा झोंपड़ी से कुछ दूर बैठा रो रहा था। दौड़ कर मैं ने बच्चे को उठा लिया। लोगों ने तब तक आग पर काबू पा लिया था। अंदर जा कर देखा कि उस बच्चे की लगभग २५ वर्षीया मां पूरी तरह जल कर मर चुकी थी। लोगों से पता चला कि बच्चे का पिता बाहर से ताला लगा कर कहीं चला गया था। अचानक आग लग जाने पर मां को कुछ न सूझा तो उस ने दो-तीन तख्ते किसी तरह तोड़ कर बच्चे को बाहर फेंक दिया। वह स्वयं बाहर न निकल पायी और जल गयी।

—सत्या शर्मा, शिवपुरी

पढ़ने में मैं हमेशा तेज रही लेकिन एम. ए. में हमारे एक शिक्षक दीक्षितजी, जो 'सेमीनार' लेते थे, न जाने क्यों मुझे अपमानित करते रहते थे। वे सदा मुझ से कठिनतम प्रश्न पूछते जिस का मैं उत्तर न दे पाती। अपमान का बदला लेने के लिए मैं ने अध्ययन में दिन-रात एक कर दिया ताकि दीक्षितजी के हर प्रश्न का उत्तर दे सकूं। जितना ज्यादा मैं अध्ययन करती, उन के प्रश्नों की कठिनता भी उतनी ही बढ़ती जाती। परीक्षा के परिणाम आये, मुझे प्रथम श्रेणी मिली थी। मन ही मन मैं ने दीक्षितजी का आभार माना कि उन्हीं की वजह से मैं ने इतना पढ़ा। मैं उन से मिलने गयी। वे बोले, "क्यों लड़की, मुझे खरी-खोटी ही सुनाने आयी होगी!" मैं स्तब्ध रह गयी। वे फिर बोले :

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़-गढ़ काढ़ै खोट
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट

तो उन की चोटें मेरे प्रयत्नों को उकसाने के लिए थीं? अब मैं उन के आगे नत-मस्तक थी।

—अंजलि, लखनऊ

इस अंक के पुरस्कार-विजेता क्रमशः इस प्रकार हैं—मंजुल, दिवाकर शर्मा, सतीश बत्रा। प्रथम पुरस्कार २५ रुपये, द्वितीय १५ रुपये तथा तृतीय १० रुपये। शेष प्रकाशित संस्मरणों पर ५-५ रुपये।

गुणों और विशेषताओं को बिलकुल भूल जायें। इस के बाद सिर्फ गुणों और विशेषताओं पर ही ध्यान दें, दुर्गुणों को एक ओर रख दें। मानस-शास्त्रियों का अनुभव है कि अपने व्यक्तित्व को एक अन्य व्यक्ति की दृष्टि से देखने का यह उपाय कुछ ही समय में संपूर्ण व्यक्तित्व का रूपान्तर करने की सामर्थ्य रखता है।

अधिकांश व्यक्तियों की सब से बड़ी चिन्ता यह रहती है कि अपनी वैयक्तिक प्रवृत्तियों को उचित दिशा और अभिव्यक्ति कैसे दी जाये। धन या पद-प्रतिष्ठा के प्रलोभन में अपनी प्रवृत्ति के विपरीत किसी भी धंधे में लग जाना आसान है। कभी-कभी तो यह हमारे बस की बात भी नहीं होती। महत्वाकांक्षी माता-पिता अपनी रुचि के धंधे में बच्चों को बचपन से ही लगा देते हैं। परंतु जैसे-जैसे समय गुजरता है, बच्चों की मूल प्रवृत्तियां विद्रोह करने लगती हैं। कोई अचरज नहीं कि ऐसी परिस्थिति में उस का मन जमे-जमाये धंधे से उचट जाये और वह किसी दूसरे संतोषप्रद कार्य की तलाश में भटकने लगे। बेरोजगारी और अवसर की न्यूनता से समस्या में और उलझन पैदा होती है।

अब व्यक्ति के सामने एक ही उपाय रहता है कि वह अपने काम की परिस्थितियों और अपनी प्रवृत्तियों के बीच कोई संतुलन स्थापित करे। इस के लिए आवश्यक है कि हम अपनी प्रवृत्तियों, स्वभाव और रुचियों को पहचानें, उन का विश्लेषण करें और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें थोड़ा-बहुत मोड़ भी दे सकें। आसपास की परिस्थितियों से असंतुष्ट अधिकांश व्यक्तियों की मुख्य समस्या यह है कि वे अपने मन को टटोलना नहीं चाहते। परिस्थितियों में दोष ढूंढ़ते हैं। दूसरे शब्दों में, वे चलना तो सीखना नहीं चाहते परंतु दौड़ लगाने की चेष्टा करते हैं।

अपना मन टटोलने का यह अर्थ नहीं है कि हम स्वयं के प्रति बहुत शंकालु हों और अपनी शक्ति-सामर्थ्य के प्रति निराश हों। इस का अर्थ यह है कि हम तथ्यों का सामना करें। हर व्यक्ति सितारवादक बन सकता है, परंतु कितने रविशंकर बन सकते हैं? हमें अपनी इस विफलता और अक्षमता के लिए परिस्थितियों को दोष देना उचित नहीं। अच्छा यह है कि हम अपनी योग्यता को कला के किसी अन्य अनुकूल क्षेत्र में उपयोग में लायें। सृजन का क्षेत्र अपने आप में अविभाज्य है। किसी भी एक रचनात्मक क्षेत्र में मिली सफलता हमें अनन्त सुख का भागी बना सकती है। परंतु उस के लिए बहाने नहीं, लगन और प्रतिभा चाहिये। अपनी प्रतिभा का विकास न करके, वर्तमान स्थिति के लिए बहाने खोजने की प्रवृत्ति हमें दुखी अवश्य बना सकती है, सुखी कदापि नहीं।

हाल में एक कम्पनी ने सहायक मैनेजर के पद के लिए विज्ञापन निकलवाया। यह छूट दी गयी थी कि कम्पनी के मातहत कर्मचारी भी अपना आवेदन-पत्र दे सकते हैं। मैं ने उस कम्पनी में काम करनेवाले अपने एक मित्र से पूछा कि वह आवेदन-पत्र दे रहा है या नहीं, तो वह संजीदगी से बोला, "अरे,

सपनकुमार
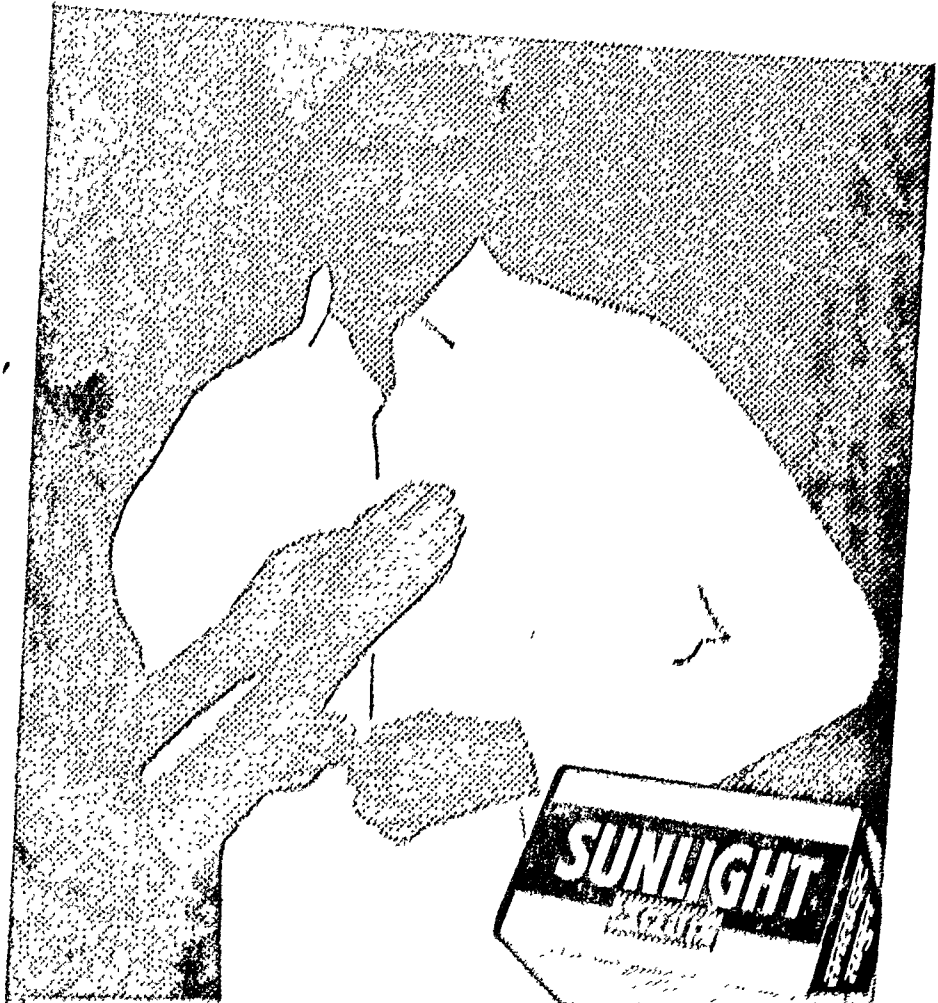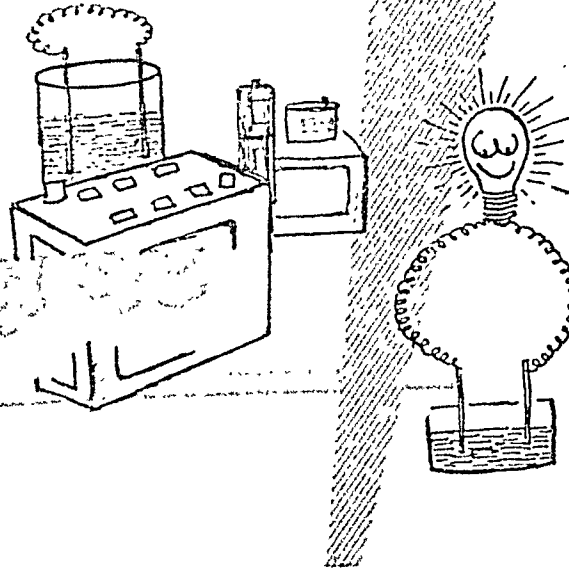
बिजली को जेब में रखना बहुत मुश्किल नहीं। हमारा आशय बैटरी से है। सामान्य टार्च, ट्रांजिस्टर, लोकल क्रिस्टल-सेट इत्यादि में बैटरी के सेल इस्तेमाल करते समय हम उन्हें जेब में ही तो रखे हुए घूमते हैं!

बैटरी का आविष्कार एलेसेंडरो वोल्ता नामक इटालियन भौतिक-शास्त्री ने सन १८०० में किया। उस ने जस्ते और तांबे के इलेक्ट्रोड को एसीटिक एसिड में रख कर बिजली का मंद प्रवाह प्राप्त किया। इस के बाद बिजली-उत्पादन विज्ञान में लगातार क्रांतिकारी परिवर्तन होते रहे हैं।

द्वितीय महायुद्ध के समय बैटरी-उद्योग में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया क्योंकि सैनिकों और अन्य अधिकारियों को आपस में बातचीत करने के लिए 'वाकी-टाकी' यंत्र इस्तेमाल करने पड़ते थे। उन में वहनीयता लाने के लिए आवश्यक था कि ऐसी बैटरियां ईजाद की जातीं जो आकार और वजन में कम होने के बावजूद ताकत की दृष्टि से किसी तरह कम न होतीं। न केवल इतना, बल्कि गरमियों और सर्दियों से भी बिना प्रभावित हुए वे लम्बे अरसे तक सेवा करती रहतीं।

हम बैटरी युग की दहलीज पर खड़े हैं। कुछ ही वर्ष बाद बैटरियां कितने विभिन्न स्वरूपों में हमारी सेवा के लिए

उस पद के लिए आदमी तो पहले ही तय हो गया है ! यह तो मात्र औपचारिकता है । अतः सोचा, आवेदन-पत्र दे कर ही क्या करूंगा !" किसी हद तक मेरे मित्र का उत्तर सही हो सकता है, परंतु क्या इस में आशंकित विफलता से कतराने, उस का मुकावला न कर सकने की भी प्रवृत्ति नहीं छिपी है ?

इस में कोई सन्देह नहीं कि परिस्थितियों या किसी हद तक अपने-आप से भी भागने का यह उपाय वहुत सरल है । परिस्थितियों का सामना करने के लिए साहस और सामर्थ्य चाहिये। अपने-आप को समझने के लिए दृढ़ संकल्प और मन का अनुशासन चाहिये। निश्चय ही ये गुण सहज-सुलभ नहीं हैं । मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह असहज और दुर्लभ के लिए ललकता तो अवश्य है, परंतु उसे पाने का पूरा प्रयत्न नहीं करता । वह सहज और सुलभ के दलदल में भटकते रहना चाहता है। परंतु जो दृढ़ता से प्रयत्न करता है वह एक-एक कर सभी मंजिलें पार करने लगता है । यदि राष्ट्रपिता गांधी सहज और सुलभ के मोह में फंस कर अपनी आत्मिक प्रवृत्तियों की उपेक्षा कर देते और साधारण ढंग से वकालत करते रहते, या नेताजी सुभाष वोस इंडियन सिविल सर्विस में ही रम जाते तो क्या होता ? यदि रामकृष्ण परमहंस अपने वड़े भाई की इच्छा के अनुसार अंगरेजी शिक्षा के मोहजाल में उलझ कर अपनी आध्यात्मिक रुचि से विमुख हो जाते तो ?

इन सब के जीवन की सफलता और उपलव्धि का श्रेय आत्म-साक्षात्कार , आत्म-ज्ञान की उन की प्रवृत्ति को ही दिया जा सकता है । अपने-आप को पहचानने की प्रवृत्ति से यदि हम इतने ऊंचे न भी उठ सकें तो भी इतना तो कर ही सकते है कि अपने व्यक्तित्व के विकास के अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करने का प्रयत्न कर सकें। अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण तभी हो सकता है जव हम अंतर्निहित प्रवृत्तियों को पहचानें । अपने मन के इस धर्म को पहचान कर यदि हम ने कुछ त्रुटि भी की तो वह मन की मांग के विपरीत किये गये कार्य से अधिक श्रेयस्कर होगी । गीताकार ने मार्ग-दर्शन करते हुए कहा है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

ब्रिटिश प्रधान मंत्री लायड जार्ज साउथवेल्स में एक सभा में भाषण करने गये । सभापति ने मजाक के तौर पर कहा, "श्री लायड जार्ज के वारे में मैं ने वहुत कुछ सुन रखा था। मैं समझता था कि वे वहुत वड़े आदमी होंगे, किन्तु वे तो वहुत छोटे हैं !"

उत्तर में लायड जार्ज ने कहा, "मुझे खेद है कि सभापति महोदय को मेरे रूप से निराशा हुई, किन्तु उन के नापने का ढंग कुछ जुदा है । नार्थवेल्स में तो ठोड़ी से ऊपर ही नापते हैं और यहां ठोड़ी से नीचे नाप रहे हैं ।"

वैटरी क्या है ? इस का बहुत कम लोग उत्तर दे पायेंगे। वैटरी पैक की हुई विद्युत-शक्ति है। प्रत्येक पैक एक इलेक्ट्रो-केमिकल (विद्युत-रासायनिक) इकाई है जिस में विशेष धातुओं को ओषजनीकृत करके ताप के बजाय विद्युत-प्रवाह प्राप्त किया जाता है। (प्रज्वलन क्रिया भी पदार्थ को ओष-जनीकृत करने की क्रिया है लेकिन उस से ताप प्राप्त होता है।)सूखे सेल 'प्राइमरी वैटरी' और गीली वैटरी 'सेकण्डरी' कहलाती हैं।

फिर से चार्ज की जा सके, ऐसी संसार की सब से छोटी वैटरी अमरीकी वैज्ञानिक माइकेल यार्डने ने बनायी है। इस वैटरी का वजन एक औंस के सातवें हिस्से के बराबर है। राकेट, उपग्रह, प्रक्षेपास्त्र इत्यादि के अनेक सूक्ष्म यंत्रों का संचालन करने के लिए वैटरी ही चाहिये। इन के लिए यार्डने की वैटरी का माडल ही इस्तेमाल होता है। यार्डने ने इसे ही विकसित रूप दे कर 'सिल्वर सेल जी-५' की योजना तैयार की है। यह विराट वैटरी पनडुब्बियों के संचालन में इस्तेमाल होगी।

वैटरी से संचालित कलाई-घड़ी उत्पादित की जा चुकी है। कुछ देशों में वह बाजार में भी आ चुकी है। सिर-दर्द की गोली जितनी बड़ी एक वैटरी से चलने वाली इस इलेक्ट्रानिक घड़ी को चाबी देने की कभी जरूरत नहीं होती। वह आश्चर्यजनक रूप से सही समय प्रदर्शित करती है और एक साल तक बड़े आराम से चल जाती है।

मेरीलैंण्ड (अमरीका) की एक विद्युत संस्था ने वैटरी से चलने वाली इले-क्ट्रिक ड्रिल बनायी है जो ३०,००० छेद कर सकती है। सामान्य रूप से इतने छेद करने की आवश्यकता तीन वर्ष के बाद पड़ती है। उस के हत्थे में दो छोटी वैटरियां लगी हैं। सिर्फ एक बार चार्ज करके वैटरी से तीन वर्ष तक काम लेना असम्भव नहीं। इस के अलावा, वैटरी को चार्ज करने की उलझनपूर्ण स्थिति का निवारण भी हो चुका है। प्रत्येक वैटरी के भीतर ही चार्ज करने वाला उपकरण अपने लघु रूप में फिट होगा। चार्ज करने के लिए सिर्फ इतना करना पड़ेगा कि वैटरी को किसी भी सामान्य प्लग द्वारा बिजली के तारों से सम्बन्धित कर दिया जाये। ऐसी वैटरियां 'इनरजाइजर सेल्स' कहलाती हैं। वहनीय टेलि-विजन सेट में इन का खुल कर इस्ते-माल हो सकेगा। ये टेलिविजन प्रदर्शन प्रारम्भ करने से पहले 'गरम होने का समय' नहीं लेंगे और उन के 'संचालन की गूंज' भी सुनायी न देंगी।

पिकनिक के शौकीन, मछली मारने के धुनी, शिकारी, टूरिंग एजेंट इत्यादि को ऐसे इलाकों में भी भटकना पड़ता है जहां बिजली का कनेक्शन न पहुंचा हो। उन के लिए पूरे विश्व में क्रांति लाने वाला वैटरी युग वरदान ही सिद्ध होगा। बूटपालिश के बुश, सिगरेट लाइटर, विभिन्न पेयों को मिलाने वाले 'मिक्सर', शेवर इत्यादि चीजें, जो आज बिजली से संचालित होती हैं, कल नन्ही-नन्ही वैटरियों से चलने लगेंगी। ऐसा समय आना भी असंभव नहीं जब वैटरी के उसी तरह के केन्द्र बन जायेंगे जिस तरह आज पेट्रोल-पंप बने हुए

उपस्थित हो जायेंगी, इस का अनुमान अभी से लगाया जा सकता है। भविष्य की बैटरियां 'सुपर बैटरी' कहलाती हैं। कुछ वैज्ञानिक उन्हें 'फ्यूएल-सेल' कहते हैं। उस का सिद्धान्त यह है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन को अत्यन्त निम्न दबाव में एकत्र करके सिर्फ उन्हीं से विद्युत प्राप्त की जाये। इस तरह की सुपर बैटरी कार में रखी जा सकती है। इसे अलकोहल अथवा इसी तरह के किसी अन्य तरल से चलाना सम्भव हो जायेगा। गैसोलीन का इस्तेमाल करने की आवश्यकता हटते ही कार की अनेक समस्याएं दूर हो जायेंगी। एक गैलन अलकोहल में सामान्य कार ७५ मील तक जा सकेगी।

पेरिस के एक प्रोफेसर हेनरी आंद्रे ने अपने निजी उपयोग के लिए लगभग दस वर्ष पहले ही एक ऐसी कार बना ली है, जो चांदी-जस्ते की बैटरी से चलती है। बैटरी की शक्ति कम हो जाने पर उसे फिर से चार्ज किया जा सकता है। एक बार चार्ज करके कार ३०० मील का फासला तय करती है। निश्चित रूप से प्रोफेसर आन्द्रे की सफलता प्रशंसनीय है, लेकिन उन की चांदी-जस्ता बैटरी बहुत महंगी है। कार का उत्पादन-खर्च २,००० डालर पड़ता है जब कि सिर्फ बैटरी है १,००० डालर की। बैटरी की कीमत कम करने के लिए दिन-रात अनुसंधान किये जा रहे हैं। कुछ मोटर संस्थाओं की योजना है कि यदि बैटरी किसी भी तरह सस्ती उत्पादित न की जा सके तो खरीदारों को बैटरी किराये पर देने की सुविधाएं प्रदान की जायें।

निकल-कैडमियम की बैटरी ऐसी कारों में ज्यादा इस्तेमाल होंगी। अत्यन्त शक्तिशाली बैटरियों से रेलगाड़ियां चलायी जायें, ऐसी कल्पना भी साकार होने में बहुत देर नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से तो यह बहुत ही सरल मालूम पड़ेगा। बैटरी एक तरह की बिजली ही है। जो रेलगाड़ी बिजली से चल सकती है, वह बैटरी से भी क्यों नहीं चल सकती? अनुमान है कि ७० लाख डालर के खर्च से बनायी गयी एक विराट बैटरी ८,००० हार्स पावर अथवा ५,००० किलोवाट विद्युत-शक्ति पैदा कर सकती है। इतनी शक्ति से आठ डब्बों की मुसाफिर-गाड़ी बड़े आराम से चलायी जा सकेगी।

वेस्ट वर्जीनिया की कोयला-खदानों में निकल-कैडमियम की बैटरियों द्वारा छोटी रेलगाड़ी (शटल) संचालित होती है। वह जिस स्टेशन पर रुकती है, वहां आवश्यकता होने पर उस की बैटरी फिर से चार्ज कर ली जाती है।

बैटरी के मुख्यत: दो प्रकारों से हम परिचित हैं—सूखी और गीली। सूखी वह है जिसे हम बोल-चाल में सेल कहते हैं। गीली वह है जो कार, ट्रक इत्यादि में इस्तेमाल होती है। उस में डिस्टिल्ड वाटर भरा होता है। कैडमियम या लोहे की निगेटिव प्लेट, निकल आक्साइड पाजिटिव प्लेट (या लेड एसिड) और एक अल्कालाइन इलेक्ट्रोलाइट गीली बैटरी में होती है। सेल सिर्फ एक बार प्रयोग में आ सकता है। गीली बैटरी एक बार डाउन होने के बाद फिर से चार्ज की जा सकती है।

व्यक्ति आजीवन गूंगा रह जाता था, लेकिन अब गले में एक इलेक्ट्रानिक लघु-यंत्र फिट किया जा सकता है । वह स्वर-पेटिका-जैसा ही कार्य करता है । उस की बैटरी गले के पास इस तरह लगी होती है कि कपड़ों में छिप कर दिखायी न पड़े । वजन इतना कम होता है कि महसूस हो न हो । न केवल बोलने, बल्कि दिल की धड़कनों को भी बैटरी-संचालित यंत्रों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है । दिल के दौरे का मरीज कई बार ऐसी स्थिति में जा पड़ता है कि बिस्तर से उठ ही न सके । उठते ही उस की धड़कन का नियमन असंतुलित हो जाता है । लगता है, धड़कन डूब रही है या बहुत बढ़ गयी है । ऐसे मरीजों की छाती पर आश्चर्यजनक 'हार्ट मशीन' फिट कर दी जाती है, जिस के सूक्ष्मतम तार दिल के अंदर तक पहुंचे होते हैं । ये इलेक्ट्रोड (विद्युदग्र) तार बैटरी से शक्ति प्राप्त करके धड़कन का नियमन करते हैं । यह बैटरी आकार में सिगरेट की डिबिया से बड़ी नहीं होती ।

इस वक्त आप यह लेख अपनी आंखों को कष्ट दे कर पढ़ रहे हैं । असंभव नहीं कि ऊंची आवाज में पढ़ कर सुनाने वाला बैटरी-संचालित यंत्र भी बन जाये जिस से आप को स्वयं पढ़ने का कष्ट न उठाना पड़े ।

मुझे कविसम्मेलन में बिसावर जाना था । वहां जाने के लिए यमुना पार करनी पड़ती है । मैं रेल के पुल पर चला गया । वहां एक सिपाही तैनात था । उस से बहुत अनुनय-विनय की, लेकिन उस ने पुल पार नहीं करने दिया । मैं ने लौट कर नाव द्वारा यमुना पार की और मोटर में बैठ कर बिसावर चला गया ।

इस घटना के तीसरे दिन मैं अपने विद्यालय के मैदान में टहल रहा था कि वही सिपाही उस रास्ते से हो कर गुजर रहा था । मैं ने उसे टोक कर कहा, "आप बिना इजाजत विद्यालय की फील्ड में हो कर कैसे जा रहे हैं ?" वह एकदम हतप्रभ हो गया । उस ने मुझे गौर से देख कर पहचानने की कोशिश की । कुछ क्षण बाद वह विनम्रता से बोला, "साहब, आप तो उस दिन धोती पहने थे ।" मैं ने उस से कहा, "अच्छा जाओ, कोई बात नहीं है !"

मैं सोचता हूं कि यदि पैण्ट पहन कर जाता तो सिपाही मुझे अवश्य पुल पार करने देता ।

वाह रे स्वतंत्र भारत ! पैण्ट हुई रानी और धोती उस की दासी !

—बरसानेलाल चतुर्वेदी

हैं। भविष्य में घर के अंदर अथवा बाहर के प्रत्येक काम के लिए बैटरी को चार्ज कराने लोग अपनी-अपनी बैटरियां ले कर विशेष केन्द्रों पर चले जाया करेंगे। एक बार का चार्ज और साल-डेढ़ साल की छुट्टी। इस व्यवस्था से बिजली की उलझनपूर्ण और खर्चीली फिटिंग से बचा जा सकेगा।

बिजली के बजाय बैटरी से ही सिलाई मशीन, वैक्युम क्लीनर, सील-तोड़क-यंत्र, कशीदाकारी-यंत्र, वहनीय मालिश-यंत्र, सिर की चम्पी करने का यंत्र इत्यादि संचालित किये जा सकेंगे। खदानों में काम करने वाले मजदूर बिजली सम्बन्धी दुर्घटनाओं के कारण कई बार पलक झपकते मौत की नींद सो जाते हैं। यदि बैटरी से संचालित लैम्प, बातचीत करने के यंत्र, चट्टानों में छेद करने के ड्रिलर इत्यादि बहुतायत से उपलब्ध हो जायें, तो खदानों में काम करना इतना खतर-नाक न रहे।

जब तक उपग्रह नहीं थे, उन के बिना काम चल जाता था। आज वे इतने सामान्य हो चुके हैं कि शायद उन के बिना काम चलने की कल्पना भी हम गवारा न कर सकें। उप-ग्रहों के कारण मनुष्य के दैनिक जीवन पर तो अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है, लेकिन वैज्ञानिकों की दृष्टि से उपग्रह अब एक अनिवार्यता हो गये हैं। उप-ग्रहों में अनेक प्रकार की हलकी-फुलकी और अत्यंत शक्तिशाली बैटरियां लगी होती हैं। अधिकांश बैटरियां उस समय अपने-आप चार्ज होती रहती हैं, जब उपग्रह सूर्य की रोशनी में से गुजरते हैं। फिर वे पृथ्वी की छाया में भी धूप से प्राप्त चार्ज द्वारा यंत्रों का संचा-लन जारी रखती हैं। एलेन शेपर्ड की विश्वविख्यात उपग्रह-उड़ान के दौरान बैटरी संबंधी इन प्रयोगों में क्रान्ति आयी थी। शेपर्ड के शरीर का बायो-फिजिकल (जीव-भौतिकी) विश्लेषण बैटरी से संचालित यंत्रों ने ही किया। उपग्रह से तरह-तरह के संकेत टेलीमीटर करके भेजना बैटरी की सहा-यता के बिना संभव था ही नहीं। इलेक्ट्रानिक कलाई घड़ी में बैटरी से प्राप्त शक्ति द्वारा जो 'टाइमिंग मैके-निज्म' चलता है, उसी का विकसित रूप उपग्रहों में इस्तेमाल होता है। एक सेकंड का फर्क भी उपग्रह की कार्य-क्षमता को नुकसान पहुंचा सकता है। समय विषयक सूक्ष्मतम भूल से उस का परिक्रमा-मार्ग भी प्रभावित हो सकता है। यह टाइमिंग मेकेनिज्म 'बैटरी का बेटा' ही कहा जायेगा।

पहाड़ों पर चढ़ाई करने वाले, ध्रुव प्रदेशों में अपनी जान हथेली पर रख कर भटकने वाले, समुद्र की छाती पर या उस के अंधकारमय गर्भ में अनुसंधान करने वाले बैटरी के बिना काम नहीं चला सकते। घनघोर जंगलों में रो-मांचक फिल्में उतारने के लिए बैटरी से ही संचालित कैमरा चाहिये। बैटरी से न केवल किसी फिल्म में आवाज भरी जा सकती है, बल्कि जो लोग बोलने में असमर्थ हैं, उन्हें भी बोलने की क्षमता दी जा सकती है। कैन्सर अथवा किसी अन्य बीमारी के कारण यदि आप-रेशन करके स्वर-पेटिका निकाल देनी पड़ी हो तो कुछ वर्षों पहले तक ऐसा

सागर के पेट में पहुंच चुकी है। लगभग समस्त धनराशि अभी तक सागर के कब्जे में ही है।

कल्पना कीजिये कि अपार धनराशि से युक्त एक जीर्ण जहाज किसी तूफान के कोप का शिकार हो कर सागर के उदर में समा गया और बहता-बहता प्रशांत या अतलांतक महासागर की किसी प्रवालिका में अटक कर वहीं रह गया। उस का उद्धार किया जाये तो वह आज भी अच्छी हालत में मिल सकता है। उस की धनराशि भी पहले-जैसी अच्छी हालत में प्राप्त की जा सकती है। वह व्यक्ति जो सिर्फ आधे मिनट तक अपनी सांस रोक कर सागर के तल तक पहुंचने का साहस कर सकता है, उस तल पर बिछी चांदी या सोने की मुद्राओं या रत्नों को समेट कर ऊपर ला सकता है। पर कोई नहीं जानता कि ऐसे जीर्ण जहाज कहां पड़े हैं।

जहाज के डूब जाने के बाद सागर की लहरें उस के पेट को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं और जहाज के कक्षों में सुर-

समुद्रों के तल में न जाने कितनी धनराशि और ऐतिहासिक महत्व की चीजें बिछी पड़ी हैं। दुर्घटनाओं के शिकार होने वाले जहाज सदियों से अपने युग की संस्कृति और सभ्यता को समुद्र के गर्भ में डाल रहे हैं। तल में पहुंच कर वस्तुएं नष्ट नहीं हो पातीं क्योंकि मूंगे और कीचड़ की मोटी तहें उन पर लिपट कर उन्हें नष्ट होने से बचा लेती हैं।

आर्थर क्लार्क और माइक विलसन किसी ऐसे ही डूबे खजाने की खोज में श्रीलंका के चारों ओर फैले समुद्र की गहराइयां छान रहे थे। उन्हें खजाना तो मिला लेकिन वह समुद्री पर्वत-मालाओं की तलहटी में बिखरा हुआ था जहां पहुंचना प्राणों की बाजी लगाना था। 'ट्रेजर आफ द ग्रेट रीफ' उन के साहस और सूझबूझ की रोमांचकारी कहानी है जो इन दोनों साहसिकों ने मिल कर लिखी है। रूपांतरकार हैं हरिमोहन शर्मा।

किसी सुबह उठ कर आप अपने घर की छत पर किसी उड़न-तश्तरी को खड़ा हुआ देखें तो कैसा लगेगा आप को? आप एक आश्चर्य के समुद्र में डूब जायेंगे। कुछ-कुछ ऐसा ही सुखद आश्चर्य हम गोताखोरों को सहसा सागर की गहराइयों में डूबे किसी खजाने को देख कर होता है।

मैं अपनी गिनती उन इने-गिने सौभाग्यशाली गोताखोरों में कर सकता हूं जिन्हें सागर के गर्भ में सदियों से विलुप्त खजाने को खोज निकालने तथा उस का उद्धार करने का रोमांचकारी अनुभव प्राप्त हुआ है। इसी असाधारण और रोमांचकारी अनुभव की कहानी मैं आप को सुनाने जा रहा हूं।

यदि कोई इस बात का लेखा-जोखा करने बैठ जाये कि पृथ्वी के आरंभ से अब तक सागर ने कितनी रत्नराशि उदरस्थ की है तो निश्चय ही उस का दिमाग चकरा जायेगा और जब वह इस बात का हिसाब लगाने बैठेगा कि आदमी ने सागर से कितनी वसूली की है तो भी उस के आश्चर्य की सीमा न रहेगी। वास्तविकता यह है कि आदमी अभी तक अपने गंवाये हुए खजाने का एक प्रतिशत भी सागर से वापस नहीं ले सका है। पिछले ४०० वर्षों में ही जहाज-दुर्घटनाओं के कारण अरबों रुपये के मूल्य की धनराशि

कर बड़ा जहाज भी चकनाचूर हुए बिना नहीं रह सकता था। श्रीलंका की ओर से भारत आने वाला प्रत्येक जहाज इन शैलमालाओं तथा लिटिल बेसेस (छोटी प्रवालिका, जो लंका के दक्षिणी तट से कुछ मील दूर स्थित है) से दूर रहने में ही अपना कल्याण समझता है। इस छोटी प्रवालिका के कारण भी कई जहाज-दुर्घटनाएं हो चुकी हैं।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि पिछले तीन हजार वर्षों में इन शैलमालाओं के कारण जितने जहाज दुर्घटनाग्रस्त हुए हैं, उतने भूमध्यसागर या एजियन सागर की कुछ शैलमालाओं को छोड़ कर *कहीं नहीं हुए हैं। यहां तक* कहा जाता है कि दिन में भी अनेक जहाज इन दोनों प्रवालिकाओं का शिकार बन चुके हैं। रात को तो किसी भी असावधान जहाज के लिए इन की चपेट से बच निकलना असंभव ही है। मानसून के दिनों में यहां दुर्घटनाएं अधिक होती हैं। अंत में ब्रिटिश सरकार ने १० मार्च, १८७३ को इन शैलमालाओं के पास एक बड़ा प्रकाशगृह बनवाया जो रात भर जहाजों को इस स्थल से दूर रहने की चेतावनी देता रहता है।

हम ने अनुमान लगाया कि इन शैलमालाओं के निकट गोताखोरी की जाये तो पुराने जहाजों के खजानों का पता लग सकता है। १९५८ में हम ने होशियारी से गोताखोरी करते हुए इन शैलमालाओं के आसपास के सागर का अध्ययन किया। इस अध्ययन में हमें लगभग एक साल लग गया। जब हम उस जल-भाग से भली-भांति परिचित हो गये तो १९५९ में उस प्रकाशगृह में आ कर रहने लगे। हमारा विचार उस प्रकाशगृह को अपना अड्डा बना कर खोज आरंभ करने का था।

खोज का प्रारंभ हम ने अप्रैल में किया। यह महीना हम ने काफी सोच-विचार कर चुना था क्योंकि इन शैलमालाओं के निकट गोताखोरी कुछ विशेष महीनों में ही की जा सकती है। वर्ष में लगभग दस महीने यहां मौसम इतना ज्यादा खराब रहता है कि गोताखोरी तो दूर, तट से नाव द्वारा प्रकाशगृह तक पहुंचना भी कठिन हो जाता है।

*मेरा खयाल है कि नौसिखिये गोता-*खोरों को इन शैलमालाओं के निकट गोताखोरी करने की कोशिश कभी भी नहीं करनी चाहिये। यहां सागर ऊपर से कभी-कभी बिलकुल शांत दिखायी देता है, किन्तु जल कभी एक क्षण के लिए भी शांत नहीं रहता। ऐसे अस्थिर जल में डुबकी लगाने और उस में से निकलने के लिए दृढ़ स्नायुओं और धीर चित्त की आवश्यकता है। गोताखोर को गोता लगाने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक कि तरंगें शिखर का रूप धारण नहीं कर लेतीं। तरंगों को शिखर को सीधा नीचे फेंक देना पड़ता है। इस में जरा भी चूक होने पर गोताखोर का शरीर चट्टानों पर गिर कर छिन्न-भिन्न हो सकता है।

हम ने गोता लगाने के लिए जो स्थान चुना था, वह इन शैलमालाओं से कई सौ फुट की दूरी पर था। वहां सागर अपेक्षाकृत शांत और अधिक

क्षित धनराशि को सीधे सागर-तल में पहुंचा देती है। कभी-कभी यह धनराशि सदियों के बाद भी सागर के तल से पहले-जैसी स्वच्छ और अखंडित अवस्था में मिल जाती है और कभी उस के ऊपर मूंगे या मिट्टी की मोटी और अभेद्य दीवार खड़ी हो जाती है। गोताखोरों के लिए ऐसी दीवार को पार करना बड़ा कठिन है। इस दीवार के अंदर यह धनराशि क्रमशः क्षीण होती रहती है। हजारों-लाखों साल बाद वह घिस कर या पूरी तरह सड़ कर अच्छी तरह सागर में घुल जाती है। विशेष रूप से चांदी का विलयन बहुत जल्दी होता है। इन प्राकृतिक कठिनाइयों के बावजूद यदि कोई सागर में डूबी धनराशि को प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो उसे एक चमत्कार ही समझिये। जहां तक मुझे ज्ञात है, पिछले पचास वर्षों में ऐसे चमत्कार बहुत ही कम हुए हैं।

मेरे साथ एक ऐसा ही चमत्कार १९६१ में भारत के निकट हुआ।

उन दिनों मैं अपने उत्साही साथी गोताखोर माइक विलसन के साथ श्रीलंका में रहता था। वहां रहते हुए हम दोनों को कई साल बीत गये थे। विलसन से मेरी जान-पहचान १९५१ में लंदन में हुई थी। वह कुछ दिनों तक ब्रिटिश मर्चेंट नेवी में गोताखोर रहा था और उस ने अपने गोताखोरी के जीवन के जो लोमहर्षक अनुभव सुनाये, उन्हें सुन कर मैं भी गोताखोर बनने के लिए तैयार हो गया था। मैं एक अच्छा तैराक था और लंदन के एक स्विमिंगपूल में रोज तैरने का अभ्यास किया करता था। मुझे फ्लिपर्स (तैरने में सहायक अंग) और नकाब पहन कर तैरने का अच्छा अभ्यास था, इसलिए पेशेवर गोताखोर बनने में मुझे ज्यादा कठिनाई नहीं हुई।

गोताखोरों के लिए उष्ण-कटिबंधीय देश ही सर्वोत्तम हैं, इसलिए हम दोनों ने इंगलैंड छोड़ कर किसी उष्ण कटिबंधीय देश में जा कर रहने का ही निश्चय किया। हम दोनों कुछ दिन आस्ट्रेलिया में रहे फिर श्रीलंका चले आये। १९५६ में जब हम दोनों लंका आये थे, सपने में भी खयाल न था कि यहां हम सात साल तक रहेंगे। उस समय हमारा इरादा अधिक से अधिक एक साल तक ही यहां रहने का था।

श्रीलंका में हम दोनों जब तक रहे, काफी व्यस्त रहे। विलसन ने एक गोताखोर केन्द्र खोल लिया था। हम लोग गोताखोरी के सब कामों को हाथ में लेने के लिए सहर्ष प्रस्तुत रहते थे। मदद के लिए हम ने रोडने जंकलास नाम के अनुभवी गोताखोर का सहयोग भी प्राप्त कर लिया था। गोताखोरी के अपने अनुभवों को सचित्र लेखों के रूप में प्रकाशित करवाने का काम मेरा था।

जो साहसिक कहानी मैं आप को सुनाने जा रहा हूं, वह श्रीलंका से लगभग छह मील दूर ग्रेट बेसेस (विशाल प्रनालिका) द्वीप के समानांतर स्थित, सागर में डूबी शैलमालाओं के निकट की है। जहाज इन शैलमालाओं से दूर ही रहते थे, क्योंकि उन से टकरा

दो धूमिल-से विशाल धब्बे, एक सफेद और एक भूरा, पानी के अंदर बड़ी तेजी से गुंथे हुए हैं । इतना रौद्र, वेगपूर्ण, शांत और शक्तिपूर्ण संघर्ष मैं ने सागर में आज तक नहीं देखा । उस की याद से आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।

सारा संघर्ष पल भर में ही समाप्त हो गया । प्रकृति के सनातन नियमों के अनुसार बड़ी शार्क ने छोटी शार्क को निगल लिया था । जब विजेता मछली अपने शिकार को अपने जबड़ों में दबोचे हुए एक अंधड़ की भांति मेरे पास से गुजरी तो 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' की सत्यता मुझ पर प्रकट हो गयी ।

१९६१ की एक शाम । विलसन अपने दो तरुण अमरीकी मित्रों के साथ शैलमालाओं के निकट पानी के अंदर चित्र खींचने गया था । वे लोग जब वापस लौटे तो मैं ने उन से पूछा, "चित्र साफ आये न ?" उन्होंने मुझे प्रश्न का सीधा उत्तर न दे कर बुदबुदा कर सिर्फ इतना कहा, "हां, ठीक ही आये होंगे ।" कह कर वे टिन की एक पुरानी पेटी ले कर मेरे दफ्तर में चले गये । वे लोग जब इस पेटी को ले कर गोताखोरी करने गये थे, उस समय उस में उन का कैमरा और कुछ फिल्में ही थीं लेकिन अब यह पेटी पहले से ज्यादा भारी लग रही थी । उस के भारीपन पर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था ।

कुछ देर बाद विलसन ने पेटी खोल कर उस में से पीतल की दो छोटी तोपें निकाल कर मुझे दिखायीं जो
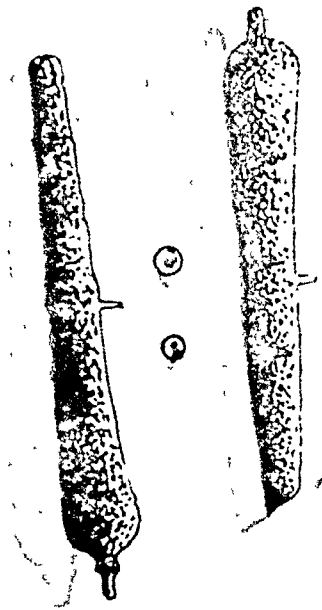
समुद्र-तल से प्राप्त दो छोटी तोपें

पुरानी होने के बावजूद काफी चमक रही थीं । मैं ने हर्ष से चिल्ला कर कहा, "लगता है, आज तुम्हें किसी खजाने की टोह लग गयी है !" मेरी खुशी का ठिकाना न था । कई वर्षों का सपना पूरा होता लग रहा था ।

तोपों को उलटते-पलटते हुए विलसन ने उन्हें उलटा कर दिया । उन के निचले भागों को देख कर पहले तो मुझे लगा कि मैं मूंगे के कुछ भद्दे गुच्छे देख रहा हूं । गुच्छों को ध्यान से देखने पर मेरी आंखें फटी की फटी रह गयीं । वे गुच्छे न थे, सैकड़ों पुरानी मुद्राएं थीं जो वर्षों तक सागर में पड़े रहने के कारण मैली पड़ गयी थीं और आपस में जुड़ भी गयी थीं । मैं ने एक गुच्छे को अलग कर

गहन था। लेकिन वहां पहुंचने के लिए हमें काफी तेज हवाओं का सामना करना पड़ा। उस स्थान पर पहुंच कर हमारा पहला उद्देश्य हिंसक शार्क मछलियों के सचेष्ट चित्र खींचने का था। हमें आशा थी कि बीच सागर में विचरण करने वाली शार्क मछलियां किनारे पर घूमने वाली शार्क मछलियों से कम डरपोक होंगी। बीच सागर की शार्क मछलियों को, जैसी आशा की थी, वैसा ही पाया।

रोडने शार्क मछलियों को पकड़ने में बड़ा निपुण था। वह अपने हार-पून (शार्क मछलियों को पकड़ने के लिए प्रयुक्त होने वाला भाला) से कोई साधारण मछली पकड़ता और उसे ऊपर खींचने के बजाय जल में ही रहने देता। भाले में उलझी मछली को तड़पते पांच-दस सेकंड ही बीत पाते थे कि कोई न कोई शार्क मछली उसे खाने के लिए वहां मौजूद हो जाती। हम लोग इस दृश्य को बच्चों-जैसी उत्सुकता से देखते। विलसन रोडने की मदद के लिए मौजूद रहता और मैं अपने कैमरे से शार्कों के 'एक्शन-फोटो' खींचने में व्यस्त रहता। शार्क पहले पानी के अंदर तैरते हुए किसी भूत के समान दिखायी देती और धीरे-धीरे पनडुब्बी के समान हमारे चारों ओर चक्कर लगाने लगती। इस प्रकार चक्कर लगाती हुई कई शार्क मछलियों के गतिवान चित्र मेरे पास मौजूद हैं।

इस के बाद होने वाली घटना पूर्ण-तया शार्क की प्रतिक्रिया पर ही निर्भर करती। यदि वह अधीर और डरपोक होती, या उस का पेट भरा हुआ होता तो वह फौरन वहां से गायब हो जाती। भरे-पेट पर कोई शार्क आदमी को तंग नहीं करती। भूखी शार्क ही आदमी को अपना शिकार बनाती है। बहुत ज्यादा भूखी शार्क आगा-पीछा नहीं देखती, एकदम हिंसक हो जाती है।

शार्क के चित्र लेना तो आसान था पर एक ही चित्र में आदमियों और शार्क मछलियों को ले आना आसान न था। काफी खतरनाक काम था फिर भी एक अवसर पर मैं ने एक ऐसा खतरनाक प्रयोग करने का निश्चय किया।

रोडने ने एक मामूली मछली पकड़ी और उसे उछाल कर पानी के ऊपर ले आया। मैं मछली से दस फुट की दूरी पर पेट के बल लेट गया। कैमरा माइक के हाथों में था और वह एक ही चित्र में शार्क को तथा मुझे ले आना चाहता था। उस ने मजाक में मुझ से कहा, "जरा संभल कर बैठना दोस्त! कहीं शार्क इस मछली के साथ तुम्हें भी न निगल जाये। तब चित्र में तुम शार्क मछली के पास दीखने के बजाय उस के मुंह में ही दिखायी दोगे।"

तभी एक अप्रत्याशित घटना घटी। जैसे ही एक शार्क ने आ कर उस मामूली मछली को दबोचा, न जाने कहां से उस से भी बड़ी एक शार्क बिजली की तरह चमकती हुई वहां मौजूद हो गयी। अगले ही क्षण दोनों शार्क मछलियां गुत्थमगुत्था हो गयीं। उन का संघर्ष इतना द्रुतशील था कि मानव-दृष्टि उसे देख पाने में असमर्थ थी। मुझे तो यही लग रहा था कि

उस काल के एक विशेष संवत ४५ में जारी किये गये थे। वे पश्चिम भारत में स्थित सूरत की शाही टकसाल में ढले थे। उस ने यह भी बताया कि ये मुद्राएं १८ वीं शताब्दी में एशिया के अधिकांश भागों में प्रयुक्त होती थीं।

संभवतः ये मुद्राएं किसी व्यापारी की थीं जो इन्हें ले कर माल खरीदने के लिए लंका या अन्य किसी एशियाई देश में जा रहा था। न मालूम क्यों हमें यह विश्वास हो गया कि उस स्थान पर, सागरतल में हमें टनों मुद्राएं मिलेंगी। हम ने एक नये अभियान की योजना बनायी ताकि सारे खजाने का सरलता से पता लगाया जा सके।

मौसम की खराबी के कारण १९६१ में तो इस अभियान को आगे बढ़ाना मुमकिन न दिखायी दिया पर हमारी तैयारियां चुपके-चुपके चलती रहीं। अगले वर्ष मौसम अनुकूल होते ही हम ने कोलंबो में एक नाव खरीदी जिस में हमारे सामान के अलावा एक दिन में खोजा हुआ पूरा सामान भी आसानी से आ सकता था। इस नाव का नाम हम ने रखा—रणमुथु। सिंहली भाषा में रणमुथु का अर्थ होता है—रत्न और सोना।

एक दुर्घटना के कारण मैं इस अभियान में अधिक भाग न ले पाया। चार महीने पहले हुई इस दुर्घटना के कारण मेरा शरीर आंशिक रूप से पक्षाघात का शिकार हो चुका था। एक-दो महीने बाद यद्यपि मैं सीधा चल सकता था और धीरे-धीरे तैर भी सकता था, फिर भी मेरी बायीं बांह पुराना था। वह नहीं हो पायी थी। और एकदम जर्जर के बाद, मैं पानी के अन्दर की बोतलों वाले कृत्रिम फेफड़े कुछ बोतलें भी भी सीख गया। की दो बोतलें

हमारी योजना यह थी कि पूरी तरह साफ होते ही विलसन और रुकल से सहायकों के साथ रणमुथु को अलग कोलंबो बन्दरगाह के बाहर जायें जाने उसे शैलमाला के निकट स्थित सर्वाधिक सुरक्षित बंदरगाह में ले जायें। खजाने की खोज तभी शुरू की जाये जब परिस्थितियां पूर्णतया अनुकूल दिखायी दें। जब यह दल उस स्थल पर पहुंचा तो सौभाग्य से परिस्थितियां पूरी तरह उस के अनुकूल थीं। दूर-दूर तक कोई दूसरा गोताखोर वहां मौजूद न था।

हम ने अपने अभियान की बात को गुप्त रखने का पूरा प्रयत्न किया था पर श्रीलंका-जैसे छोटे देश में ऐसी बात को ज्यादा देर तक गुप्त रखना असंभव था। कुछ दिनों बाद बहुत से लोगों को पता चल गया कि रणमुथु दक्षिणी तट पर क्या छानबीन कर रही है।

अन्य जानकार लोगों से ज्यादा डर न था, डर था प्रतिद्वंद्वी गोताखोरों से। उन से बचने के लिए हम ने अपनी सारी योजना श्रीलंका के पुरातत्व-विभाग के कमिश्नर डाक्टर सी. ई. गोदाकुंबरे को समझा दी। उन्होंने हमें उस ध्वस्त जहाज के खजाने का उद्धार करने का सरकारी आदेश-पत्र दे दिया। इस आदेश-पत्र को पाने के बाद कानूनी तौर पर उस

हाथ पर रख कर उस के भार का अनुमान करना चाहा। नहीं, वे सोने-जैसी भारी तो न थीं, अतएव चांदी की मुद्राएं अवश्य हो सकती थीं। अधिकांश मुद्राएं अच्छी हालत में थीं और उन पर अंकित फारसी लिपि के शब्द स्पष्ट पढ़े जा सकते थे। विलसन ने कहा, "वहां ऐसी बहुत-सी मुद्राएं हैं।"

उस स्थान पर पहुंच कर मुझे लगा कि १०० में से ९९ गोताखोर उस स्थान से बिना कुछ देखे और वहां कुछ क्षण भी रुके, सीधे आगे बढ़ जाते। बहुत होता तो उन्हें सागर-तल पर, पांच फुट की गहराई पर पड़ी एक छोटी-सी तोप दिखायी दे जाती। जहां विलसन और उस के साथियों को वे तोपें मिली थीं, उस से कुछ दूरी पर दो आकार-हीन टीले भी मुझे दिखायी दिये। ध्यान से देखने पर पता लगा कि किसी पुराने जहाज के दो लंगर एक साथ जुड़े पड़े थे। कुछ दूरी पर, जहां शायद जहाज का मध्य-भाग रहा होगा, लोहे की लगभग एक दरजन तोपें एक-दूसरे में उलझी पड़ी थीं। हम ने इस ध्वस्त जहाज का उद्धार करने का निश्चय किया।

आरंभ से ही हमें एक ऐसी समस्या का सामना करना पड़ा जिस ने हमारा पीछा अंत तक नहीं छोड़ा। हम चाहते थे कि हमारी इस कोशिश का पता किसी को न लगे क्योंकि पता लगने से खजाने का भेद खुल जाने का डर था। लंका में गोताखोरों की कमी न थी और कोई भी गोताखोर हमें सदा एक ही स्थान पर डुबकी लगाते देख कर संदेह कर सकता था। किसी बाहरी गोताखोर को भागीदार बनाना हमें मंजूर न था।

विलसन और उस के साथियों ने शुरू के दिनों में ही जो खोज की थी, उस से हमें आशा हो गयी थी कि खजाने की धनराशि काफी होगी। वे नाव में २०० पौंड वजन का सामान लाये थे, जिस में दो तोपों का ही वजन कुल मिला कर ३० पौंड के लगभग रहा होगा। उस स्थान से प्रकाशगृह तक तैर कर आने में एक घंटे से अधिक समय लगता था इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता था कि इतने वजन को नाव द्वारा लाने में उन तीनों को कितनी मुश्किल हुई होगी।

हम में से कोई भी फारसी लिपि नहीं जानता था इसलिए सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि मुद्राओं की पहचान किसी स्थानीय मुद्रा-शास्त्री से करायी जाये। अधिकांश मुद्राएं २५-२५ या ३०-३० पौंड के पिंडों में जुड़ी हुई थीं। पिंड के अंदर मुद्राएं एकदम नयी-सी लग रही थीं जैसे अभी ढल कर आयी हों। इन में से एक दरजन सिक्के ले कर हम एक स्थानीय मुद्रा-शास्त्री के पास गये और उस से उन मुद्राओं का पूरा विवरण देने को कहा। उस ने मुद्राओं को एक खास तेजाब से साफ किया। अब मुद्राओं पर अंकित फारसी लिखावट और उन की तिथि साफ पढ़ी जा सकती थी। मुद्रा-शास्त्री ने मुद्राओं का अच्छी तरह अध्ययन करके बताया कि ये मुगल सम्राट औरंगजेब (१६५८-१७०७) के शासन-काल के चांदी के रुपये हैं जो

उस काल के एक विशेष संवत ४५ में जारी किये गये थे। वे पश्चिम भारत में स्थित सूरत की शाही टक-साल में ढले थे। उस ने यह भी बताया कि ये मुद्राएं १८ वीं शताब्दी में एशिया के अधिकांश भागों में प्रयुक्त होती थीं।

संभवत: ये मुद्राएं किसी व्यापारी की थीं जो इन्हें ले कर माल खरीदने के लिए लंका या अन्य किसी एशियाई देश में जा रहा था। न मालूम क्यों हमें यह विश्वास हो गया कि उस स्थान पर, सागरतल में हमें टनों मुद्राएं मिलेंगी। हम ने एक नये अभियान की योजना बनायी ताकि सारे खजाने का सरलता से पता लगाया जा सके।

मौसम की खराबी के कारण १९६१ में तो इस अभियान को आगे बढ़ाना मुमकिन न दिखायी दिया पर हमारी तैयारियां चुपके-चुपके चलती रहीं। अगले वर्ष मौसम अनुकूल होते ही हम ने कोलंबो में एक नाव खरीदी जिस में हमारे सामान के अलावा एक दिन में खोजा हुआ पूरा सामान भी आसानी से आ सकता था। इस नाव का नाम हम ने रखा—रणमुथु। सिंहली भाषा में रणमुथु का अर्थ होता है—रत्न और सोना।

एक दुर्घटना के कारण मैं इस अभि-यान में अधिक भाग न ले पाया। चार महीने पहले हुई इस दुर्घटना के कारण मेरा शरीर आंशिक रूप से पक्षाघात का शिकार हो चुका था। एक-दो महीने बाद यद्यपि मैं सीधा चल सकता था और धीरे-धीरे तैर भी सकता था, फिर भी मेरी बायीं बांह पुराना था। वह नहीं हो पायी थी। और एकदम जर्जर के बाद, मैं पानी के अ टर की बोतलों वाले कृत्रिम फेफड़े कुछ बोतलें भी भी सीख गया। की दो बोतलें

हमारी योजना यह थी पूरी तरह साफ होते ही विलसन और स्कल से सहायकों के साथ रणमुथु को अलग कोलंबो बन्दरगाह के बाहर जाये जाने उसे शैलमाला के निकट स्थित सपी विक सुरक्षित बंदरगाह में ले जायें। खजाने की खोज तभी शुरू की जाये जब परिस्थितियां पूर्णतया अनुकूल दिखायी दें। जब यह दल उस स्थल पर पहुंचा तो सौभाग्य से परिस्थितियां पूरी तरह उस के अनुकूल थीं। दूर-दूर तक कोई दूसरा गोताखोर वहां मौजूद न था।

हम ने अपने अभियान की बात को गुप्त रखने का पूरा प्रयत्न किया था पर श्रीलंका-जैसे छोटे देश में ऐसी बात को ज्यादा देर तक गुप्त रखना असं-भव था। कुछ दिनों बाद बहुत से लोगों को पता चल गया कि रणमुथु दक्षिणी तट पर क्या छानबीन कर रही है।

अन्य जानकार लोगों से ज्यादा डर न था, डर था प्रतिद्वंद्वी गोताखोरों से। उन से बचने के लिए हम ने अपनी सारी योजना श्रीलंका के पुरा-तत्व-विभाग के कमिश्नर डाक्टर सी. ई. गोदाकुंबरे को समझा दी। उन्होंने हमें उस ध्वस्त जहाज के खजाने का उद्धार करने का सरकारी आदेश-पत्र दे दिया। इस आदेश-पत्र को पाने के बाद कानूनी तौर पर उस

थे। हम ने जब उसे खोज में प्राप्त मुद्राएं और तोपें दिखायीं तो वह बहुत प्रसन्न दिखायी दिया। थ्रोकमार्टन के आने से हमारे अभियान की तैया-रियां एकदम पूरी हो गयीं। मैं पूरी तरह स्वस्थ नहीं था इसलिए इस अभि-यान के प्रारंभिक दौर में भाग नहीं ले सका। अतः मैं तट पर ही रणमुथ् के वापस लौटने की प्रतीक्षा करता रहा।

शाम को रणमुथ् तट पर आया तो सब से पहले पीटर उस में से बाहर निकला। उस के कंधे पर एक बड़ा और भारी थैला था। इस भारी थैले को देख कर तट पर जमे जनसमूह में भांति-भांति के अनुमान लगाये जाने लगे। उन अनुमानों को दूर करने तथा थैले पर से लोगों का ध्यान हटाने के उद्देश्य से हम ने उन्हें कुछ और वस्तुएं दिखायीं। इन्हें हमारे गोता-खोर मुद्राओं के साथ-साथ सागरतल से बटोर कर लाये थे। इन वस्तुओं में सोडावाटर की कुछ खाली बोतलें भी थी। ये सोडावाटर की प्रचलित बोतलों से सर्वथा भिन्न थीं। ये ४०-५० साल पहले की मालूम होती थीं। इन के हरे कांच पर लिखा था—'क्लार्क रोसर एंड कंपनी, सीलोन; सुपीरियर सोडावाटर।'

विलसन और पीटर ने मुझे बताया कि उन्होंने रणमुथ् को उस जलभाग में ले जा कर खड़ा किया था जहां जल अपेक्षाकृत शांत था। उस स्थान पर गोताखोरों को एक डुबकी लगाने पर गोताखोरों को एक [illegible] जहाज के ध्वंसावशेष ही दिखायी [illegible]ये। इन ध्वंसावशेषों से यह अनु-[illegible]न लगाना आसान था कि जहाज कम से कम १०० साल पुराना था। वह १५० फुट लंबा था और एकदम जर्जर हो चुका था। सोडावाटर की बोतलों के साथ-साथ ब्रांडी की कुछ बोतलें भी मिलीं। ब्रांडी और सोडा की दो बोतलें तो मूंगे के सीमेंट से इतनी बुरी तरह चिपक गयी थीं कि बड़ी मुश्किल से उन्हें नुकसान पहुंचाये बिना अलग किया जा सका। अलग किये जाने पर पता लगा कि बोतलों का कार्क अभी तक ज्यों का त्यों लगा हुआ है। अंदर की शराब को चखने का साहस नहीं हुआ।

मुद्राओं वाला जहाज उस स्थान से काफी दूर था। वहां पहुंचने के लिए विलसन और पीटर को तैर कर जाना पड़ा। विलसन उस स्थान से भली-भांति परिचित था क्योंकि पहले वहां जा चुका था। वहां डुबकी लगाने पर दोनों को कुछ दिलचस्प वस्तुएं और मिलीं। मूंगे के एक खोल के नीचे दस तोपें एकसाथ जुड़ी हुई पड़ी थीं। उन में एक बड़ी थी और नौ छोटी। इन तोपों को देख कर हम ने अनुमान लगाया कि वह जहाज उस काल का युद्ध-पोत रहा होगा।

अभियान-दल की सब शामें पहली शाम की भांति बीतने लगीं। हर शाम रणमुथ् का सामान उतारा जाता, कैमरों की जांच की जाती, खाली सिलंडरों को भरा जाता और नाव को बड़ी होशि-यारी से लंगर डाल कर खड़ा कर दिया जाता। इस के बाद पीटर घंटों तक खोजी हुई वस्तुओं की जांच करता। अधिकांश व्यक्तियों के लिए ये वस्तुएं महत्वहीन भले ही हों, पर पुरातत्ववेत्ता

का उद्धार करने की एकमात्र जिम्मेदारी हमारी हो गयी।

इस आदेश-पत्र को दिखा कर हम ने पुलिस से प्रार्थना की कि वह शैलमालाओं के निकट किसी भी व्यक्ति को न आने दे। प्रकाशगृह के अधिकारियों से भी हम ने प्रार्थना की कि वे उस भाग में दिखायी देने वाले किसी भी व्यक्ति की रिपोर्ट तुरंत पुलिस से कर दें।

इस अभियान से कुछ दिन पहले हमें पीटर थ्राकमार्टन नामक पुरातत्ववेत्ता का एक पत्र प्राप्त हुआ था जिस में उस ने लिखा था कि वह भूमध्य सागर और एजियन सागर में ऐसी कई खोजें कर चुका है जो बाद में अनेक देशों के पुरातत्व विभागों को अत्यंत महत्वपूर्ण लगी थीं। उस ने हम से प्रार्थना की थी कि यदि
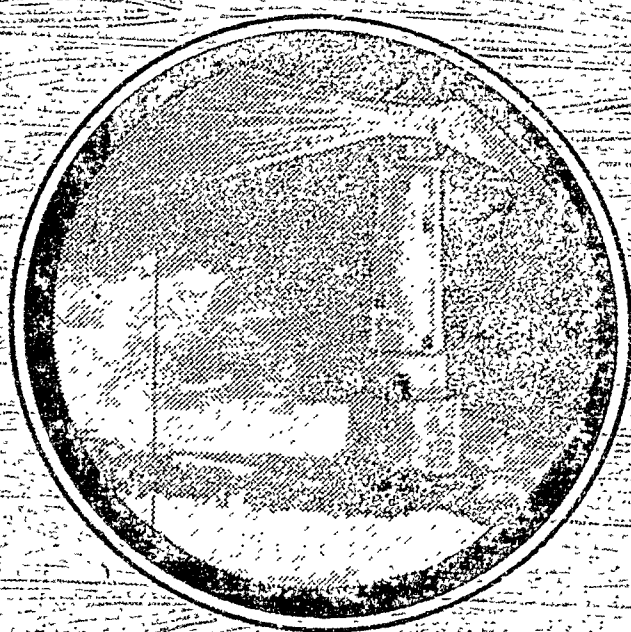
इस प्रकाश-स्तंभ के निर्माण से पूर्व न जाने कितने जहाज लहरों के बीच छिपी चट्टानों से टकरा कर सागर-तल में चले गये

श्रीलंका में भी उसे ऐसी किसी खोज का अवसर मिल सके तो वह लंका आ कर हमारी सहायता करने को तैयार है।

हम ने उसे उत्तर दिया कि ऐसी एक खोज का अवसर आ गया है और वह चाहे तो यहां आ सकता है। कुछ दिन बाद वह आ गया। उस के पास गोताखोरी के नवीनतम साधन और यंत्र
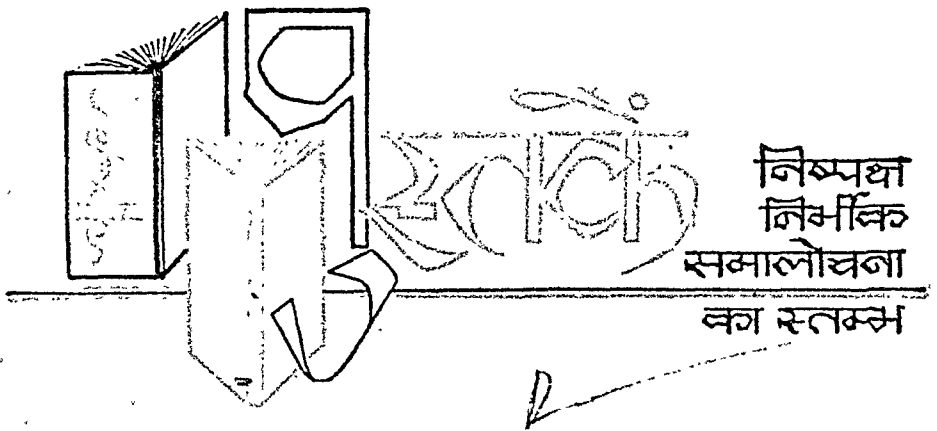
सुल्तान और निहालदे

लेखक—लक्ष्मीनिवास बिरला; प्रकाशक—नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; पृष्ठ—२१५; मूल्य—५.००

प्रस्तुत उपन्यास राजस्थान की एक अत्यन्त लोकप्रिय जन-गाथा पर आधारित है। पहले यह अंगरेजी में लिखा गया। अब यह हिन्दी का रूपान्तर है। देश के विभिन्न भागों में प्रचलित लोक-कथाओं के अनेक संग्रह निकल चुके हैं, किन्तु लोक-कथाओं पर आधारित उपन्यास बहुत कम लिखे गये हैं। इस दृष्टि से यह साहित्य के एक नये क्षेत्र में पदार्पण है। यद्यपि लेखक ने भूमिका में इस लोक-कथा के ऐतिहासिक अंग पर शोधपूर्ण प्रकाश डाला है, तथापि किन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि इस रचना का मूल उद्देश्य नहीं है। उपर्युक्त लोक-कथा की भावना को ... का गया है। तत्कालीन सामाजिक गठन आज की भांति जटिल नहीं था। मनुष्य के जीवन में सादगी थी। इस उपन्यास में भी चरित्र एवं घटनाओं को सीधे-सादे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक साहित्य की मनोवैज्ञानिक गुत्थियों का समावेश न करना रचना के मूल उद्देश्य के विपरीत नहीं है। इस में उस युग की जीवन-शैली, आस्थाओं एवं परंपराओं को यथासंभव सही-सही चित्रित करने का प्रयास है। जिन तथा जादूगरनी की कथाओं का उल्लेख उस युग की प्रचलित धारणाओं के ही अनुरूप है। राजनीतिक दृष्टि से यह सामन्तयुगीन भारत (सीमित अर्थों में उत्तरी-पश्चिमी भारत) तथा देश की सभ्यता के एक संधि-काल का चित्रण है।

उपन्यास का नायक 'सुल्तान' प्रतिहार वंशीय ठाकुर है। लेखक के शब्दों में 'यह कहना कठिन है कि सुल्तान उस का नाम था या उपाधि।' उपन्यास के नायक को लोक-कथा के आधिभौतिक नायक के रूप में प्रस्तुत न कर साधा-

के लिए उन का वड़ा महत्व था। उन की मदद से वह जहाज-दुर्घटना के कारणों और उस जहाज पर लदे सामान का अनुमान लगा सकता था।

एक शाम जब हमें लग रहा था कि हमारा अभियान समाप्ति पर आ गया है, एक ऐसी घटना घटी जिस ने हमारे अभियान के सारे दौर को ही वदल दिया।

उस दिन दोपहर को नाव से सहसा वापस आ कर पीटर ने जो शब्द मुझ से कहे थे, उन्हें मैं कभी भी नहीं भूल पाऊंगा। उस ने कहा, "आज हम ने तल में एक खाई को पा लिया है। उस के अंदर का सामान कई टन होगा।"

मेरा सारा शरीर रोमांचित हो उठा। पीटर एक नया सिलंडर ले कर रण-मुथु की ओर रवाना हो गया और मैं धैर्य के साथ उन लोगों के वापस लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

कई घंटों के वाद मैं ने अपने साथियों को एक वहुत भारी वोझ के साथ आते देखा। रणमुथु उस वोझ को संभालने में असमर्थ प्रतीत हो रही थी। पीटर उस वोझ को एक विशेष विधि द्वारा पानी के अंदर खींचते-खींचते लाया था। उस वोझ को अपने आफिस तक लाने में हमें अपना पूरा जोर लगा देना पड़ा।

एक-एक करके चूना-लगी चांदी की मुद्राओं के ढेर पृथ्वी पर फैलाये जाने लगे। प्रत्येक ढेर का वज़न लगभग ३० पौंड था। उन पर जंग की इतनी मोटी तह जम चुकी थी कि उन्हें कूड़े के ढेर में पड़ा देख कर कोई भी कूड़ा ही समझता। पर वे जंग-लगे ढेर हमें वड़े सुन्दर लग रहे थे। खोजी हुई अन्य वस्तुओं में एक कान की वाली भी थी। ऐसी वालियां आज भी उत्तर भारत में प्रचलित हैं। एक अज्ञात मृत स्त्री का चेहरा हम सव की आंखों के सामने घूम गया। करोड़ों रुपये के मूल्य की चांदी की मुद्राएं अभी भी सागर-तल में पड़ी थीं, पर पीटर और विलसन अपना अधिकांश समय ध्वस्त जहाज की उन वस्तुओं को ऊपर लाने में लगा रहे थे जिन का व्यापारिक दृष्टि से कोई महत्व न था। इन में उस काल के हथगोले तथा पिस्तौल आदि शामिल थे। भारतीय महा-सागर में इस प्रकार की खोज पहली वार हो रही थी और हमारे कंधों पर यह जिम्मेदारी थी कि हम पूरी खोज करें।

इस वार मैं भी पीटर और विलसन के साथ उस स्थल पर गया। जव मेरे पानी में डुवकी लगाने का नंवर आया तो मैं ने वहुत धीरे से डुवकी लगायी। मैं ने वहुत दिनों के वाद पानी में प्रवेश किया था। मैं वीमारी से कुछ कम-जोर हो गया था इसलिए विलसन ने मुझे चार पौंड भार वाला घन दे दिया ताकि उस की सहायता से मैं जल्दी पानी में प्रवेश कर सकूं। इस घन के कारण मैं पानी के अंदर वहुत जल्दी पहुंच गया, माइक और पीटर से भी जल्दी। लेकिन उस समय मुझे मालूम न था कि सागर की लहरें मुझे शैलमालाओं की ओर वड़ी तेजी से वहाये लिए जा रही हैं। जैसे ही मुझे इस [illegible] पता चला, मैं ने अपने को लह[illegible]